२. ऐरावत का पुत्र, एक हाथी। इसे मंद नामांतर भी प्राप्त था। यह ऐलविल का वाहन था (ब्रह्मांड. ३. ७. ३३१)। इसका वर्ण श्वेतशुभ्र था।

३. माणिभद्र नामक शिवगण एवं पुण्यजनी का पुत्र।

४. एक निधि, जो कुबेर की सभा में थी (म. स. परि. १. ३. ३०)।

५. स्कंद का एक सैनिक (म. श. ४४. ५२)।

६. एक राजा, जो यमसभा में रह कर सूर्यपुत्र यम की उपासना करता था (म. स.)

पद्मकेतन—गरुड़ का पुत्र।

पद्मगंधा—पूर्वजन्म में यह क्रौंची थी। इसकी हड्डियाँ गंगा में गिरने के कारण, यह इंद्र की प्रिया दासी बनी (जयंत ११ देखिये)।

पद्मचित्र—कद्रु-पुत्र नाग।

पद्मनाभ—एक ब्राह्मण। एक राक्षस इसे भक्षण करने के लिये आया, तब विष्णु ने अपने चक्र से इसकी रक्षा की। इसी कारण उस जगह पर चक्रतीर्थ उत्पन्न हुआ (स्कंद २. १. २३)।

२. कश्यप एवं कद्रु का पुत्र, एक नाग। यह नैमिषारण्य में गोमती नदी के तट पर 'नागपूर' नगर में रहता था (म. शां)। यह आत्मज्ञानी था। एक ब्राह्मण के पूछने पर इसने उसे सूर्यमंडल की कथा सुनायी थी। इसके शिष्य का नाम धर्मारण्य था।

३. (सो. कुरु.) धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों में से एक।

४. मणिवर नामक शिवगण, एवं देवजनी का पुत्र।

पद्ममित्र--(किलकिला. भविष्य.) विष्णु के अनुसार एक राजा।

पद्मवर्ण--मणिवर नामक शिवगण और देवजनी का पुत्र।

पद्महस्त--राजा नल का अमात्य (गणेश. १.५२. ९)।

पद्माकर—बिंदुगढ़ के राजा शारदानंद (कामपाल) का पुत्र (भवि. प्रति. ३.२५)।

पद्माक्ष—राजा चंद्रहास का कनिष्ठ पुत्र।

२. सीता देखिये।

पद्मावती—विदर्भनृप सत्यकेतु की कन्या, एवं माथुर देश के मथुरा नगर के उग्रसेन राजा की स्त्री। इस दम्पति का एक दूसरे पर अतीव प्रेम था। एक बार यह नैहर गयी थी। वहां गोभिल नामक कुबेर के एक दूत से गर्भवती हुई। हरिवंश में, 'गोभिल' के बदले 'द्रुमिल' नाम दिया गया है (ह. वं. २.२८)।

इसने गर्भ को नष्ट करने का बहुत प्रयत्न किया परंतु अंत में उस गर्भ ने कहा, 'कालनेमिदैत्य का विष्णु ने वध किया। उसका बदला लेने के लिये मैं जन्म ले रहा हूँ'। कालोपरांत यह प्रसूत हुयी तथा इसने कंस को जन्म दिया (पद्म. सृ. ४८-५१)।

२. प्रणिधी नामक एक श्रीमान् वैश्य की स्त्री। एक बार इसका पति व्यापार करने दूसरे ग्राम चला गया था। यह स्नान कर रह थी। फिर धनुर्ध्वज नामक अंत्यज ने इसे देखा। पाप वासना से जागृत हो कर वह इसके बारे में पूछताछ करने लगा। इसकी सखियों द्वारा काफी निषेध किये जाने पर भी वह न माना। फिर उसकी मज़ाक उड़ाने के हेतु उन्होंने कहा, 'गंगा यमुना संगम में अगर प्राण दोगे, तो पद्मावती की प्राप्ति तुम्हे होगी।

फिर गंगा के संगम में जा कर सचमुच ही उसने प्राण दे दिये। तत्काल उसका रूप पद्मावती के पति प्राणिधी वैश्य के समान बन गया। बाद में सच्चा प्रणिधी तथा धनुर्ध्वज दोनों पद्मावती के घर पहुँच गये। फिर अपना वास्तव पति कौन है? इसके बारे में पद्मावती के मन में संदेह उत्पन्न हो गया। पश्चात्, श्री विष्णु ने स्वयं प्रकट हो कर, इसे दोनों के साथ पत्नी के रूप में रहने के लिये कहा, किंतु भूमंडल पर यह निषिद्ध है, ऐसा इसके द्वारा कहे जाने पर, श्री विष्णु उन तीनों को वैकुंठ ले गये (पद्म. क्रि. ४)।

३. शृगाल वासुदेव देखिये।

पद्मिनी—श्रीनिवास देखिये।

पनस—राम की सेना का एक वानर। इसका पटुशों से युद्ध हुआ था (म. व. २६७.६; २६९.९)। राम बिभीषण से मिलने के लिये लंका जा रहा था। राह में वह किष्किंधा नगरी के पास ठहरा। तब यह उत्सुकतापूर्वक उसके दर्शन करने आया था (पद्म. सृ. ३८)।

२. बिभीषण के अमात्यों में से एक।

पन्नग—ऋग्वेदी श्रुतर्षि।

पन्नगारि—व्यास की ऋक्‌शिष्य परंपरा के वायु तथा ब्रह्मांड मत में बाष्कली भरद्वाज का शिष्य।

२. वसिष्ठ कुल का एक गोत्रकार। पर्णागारि इसका पाठभेद है।

पयस्य 'वारुण'—एक महर्षि। अंगिरस् के वारुण संज्ञक आठ पुत्रों में से एक (म. अनु. ८५,३०)।

पयोद—विश्वामित्र कुलोत्पन्न गोत्रकार ऋषिगण।

पयोदा—स्कंद की अनुचरी मातृका (म. श. ४४. ५२)।

पर—विश्वामित्र का पुत्र।

२. (सो. पूरु.) वायु के अनुसार समर राजा का पुत्र।

पर आट्णार—(सो. आयु.) एक वैदिक महाराजा यह 'अट्णार' का वंशज था, इसलिये इसे 'पर आट्णार नाम प्राप्त हुआ था। कई ग्रंथों में इसे 'हिरण्यनाभ कौसल्य' कहा गया है (सां. श्रौ. १३; श. ब्रा. १३.५.४.४; हिरण्यनाभ कौसल्य देखिये)। संभवतः यह कोसल देश के हिरण्यनाभ राजा का वंशज था।

एक विशेष यज्ञ करने के बाद, इसे पुत्र की प्राप्ति हुयी थी (तै. सं. ५.६.५.३; क. सं. २२.३; पं. ब्रा. २५ १६.३; जै. उ. ब्रा. २.६.११)। सांख्यायन श्रौतसूत्र में इसे 'पर आह्णार वैदेह' कहा गया हैं, जिससे कोसल एवं विदेह देश के घनिष्ट संबंध प्रतीत होते है (सां श्रौ. १३.९.११)।

परंजय—(सू. इ.) विष्णु मत में विकुक्षित पुत्र का नामांतर है। भागवत मत में पुरंजय इसका नामांतर है।

परण्यस्त—अंगिराकुल के गोत्रकार ऋषिगण।

परंतप—तामस मनु के दस पुत्रों में से एक।

परपक्ष—(सो. अनु.) एक राजा। वायु के अनुसार यह अनु का पुत्र था। इस के परमेक्ष, परमेषु, परोक्षप तथा पराक्ष नामांतर थे।

परम—वसिष्ठ कुल का गोत्रकार।

परमक्रोधिन—एक विश्वेदेव (म. अनु. २१.३२)

परमेक्ष—(सो. अनु.) विष्णु के अनुसार अनुपुत्र परपक्ष राजा का नामांतर (परपक्ष देखिये)

परमेषु—(सो. अनु.) मत्स्य के अनुसार अनुपुत्र परपक्ष राजा का नामांतर (परपक्ष देखिये)।

परमेष्ठिन्—एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (प्रजापति देखिये)। यह ब्रह्मा का शिष्य था। इसका शिष्य सनग (बृ. उ.२. ६.३; ४.६.३)। 'जैमिनि ब्राह्मण' के अनुसार यह प्रजापति का शिष्य था (जै. उ. ब्रा. ३.४०.२; नारद देखिये)।

२. (स्वा. प्रिय.) एक राजा। भागवत के अनुसार देवद्युम्न का तथा विष्णु के अनुसार इंद्रद्युम्न राजा का धेनुमती से उत्पन्न पुत्र। इसे सुवर्चला नामक स्त्री से प्रतीह नामक पुत्र हुआ (भा. ५.१५.२)।

३. (सो.) एक राजा। भविष्य के अनुसार यह आत्मपूजक राजा का पुत्र था। इसने २७०० वर्षों तक राज्य किया।

४. (सो. अज.) पांचाल देश का एक राजा। यह अजमीढ राजा को नीली से उत्पन्न हुआ था। यह एवं उसका भाई दुष्यंत के सारे पुत्रों को 'पांचाल' कहते थे (म. आ. ८९.२८)।

परवीराक्ष—खर राक्षस के १२ अमात्यों में से एक।

परशु—उत्तम मनु का पुत्र।

२. एक राक्षस। यह शाकल्य को खाने आया था, तब विष्णु की कृपा से मुक्त हुआ (ब्रह्म. १६३)।

परशुचि—उत्तम मनु का पुत्र।

परशुबाहु—प्रियव्रत पुत्र प्रसादन राजा का नामांतर। काशी क्षेत्र में धुंडीराजा ने अपने हाथ का परशु इसे दिया तथा यह नाम रखा (गणेश. २.४९-५६; प्रियव्रत देखिये)।

परशुराम जामदग्न्य—महर्षि जमदग्नि का महान् पराक्रमी पुत्र, जिसने इक्कीस बार क्षत्रियों का संहार किया था।

भृगुवंश में पैदा होने के कारण, जमदग्नि एवं परशुराम 'भार्गव' पैतृक नाम से ख्यातनाम थे। भार्गव वंश के ब्राह्मण पश्चिम भारत पर राज्य करनेवाले हैहय राजाओं के कुलगुरु थे। भार्गववंश के ब्राह्मण आनर्त (गुजरात) देश के रहनेवाले थे। पश्चात् हैहय राजाओं से भार्गवों का झगड़ा हो गया एवं वे उत्तरभारत के कान्यकुब्ज देश में रहने गये। फिर भी, बारह पीढ़ियों तक हैहय एवं भार्गव का वैर चलता रहा। इसीलिये प्राचीन इतिहास में २५५० ई. पू.-२३५० ई. पू. तक यह काल 'भार्गव-हैहय' नाम से पहचाना जाता है। हैहय एवं भार्गवों के वैर की चरम सीमा परशुराम जामदग्न्य के काल में पहुँच गयी, एवं परशुराम ने हैहयों का और संबधित क्षत्रियों का इक्कीस बार संहार किया। इसी कारण ब्राह्मतेज की मूर्तिमंत एवं ज्वलंत प्रतिमा बन कर, परशुराम इस विशिष्ट काल के इतिहास में अमर हो गया है।

'राम भार्गवेय' नामक एक वैदिक ऋषि का नाम एक सूक्तद्रष्टा के रूप में आया है (ऋ. १०.११०)। 'सर्वानुक्रमणी' के अनुसार यही परशुराम है। 'राम भार्गवेय' श्यापर्ण लोगों का पुरोहित था। 'राम भार्गवेय' एवं परशुराम एक ही थे यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

हैहय राजा कार्तवीर्य एवं परशुराम के युद्ध का निर्देश अथर्ववेद में संक्षिप्त रूप में आया है (अ. वे. ५.१८.१०)। अथर्ववेद के अनुसार, कार्तवीर्य राजा ने जमदग्नि ऋषि की धेनु हठात् ले जाने का प्रयत्न किया। इसीलिये परशुराम द्वारा कार्तवीर्य एवं उसके वंश का पराभव हुआ।

परशुराम महर्षि जमदग्नि के पाँच पुत्रों में से कनिष्ठ पुत्र था। इसकी माता का नाम 'कामली रेणुका' था जो इक्ष्वाकु वंश के राजा की पुत्री थी। परशुराम धनुर्विद्या में ही नहीं, बल्कि अन्य सभी अस्त्र-शस्त्र सम्बन्धी विद्याओं में प्रवीण था (ब्रह्म. १०)। यह विष्णु का अवतार था (पद्म. उ. २४८; मत्स्य. ४७.२४४; वायु. ९१.८८; ३६.९०)) इसका जन्म वैशाख शुक्ल तृतीया को हुआ था (रेणु. १४)। यह १९ वें त्रेतायुग में उत्पन्न हुआ था (दे. भा. ४.१६)। त्रेता तथा द्वापर युगों के संधिकाल में परशुराम का अवतार हुआ था (म. आ. २.३)।

शिक्षा—उपनयन के उपरांत यह शालग्राम पर्वत पर गया। वहाँ कश्यप ने इसे मंत्रोपदेश दिया (पद्म. ३. २४१)। इसके अतिरिक्त इसने शङ्कर को प्रसन्न कर धनुर्वेद, शस्त्रास्त्रविद्या एवं मंत्र प्रयोगादि का ज्ञान प्राप्त किया (रेणु. १५; ब्रह्मांड. ३.२२-५६-६०)।

शिष्य—तपस्या से वापस आते समय, राह में शालग्राम शिखर पर शान्ता के पुत्र को लकड़बग्घे से मुक्त करा कर यह उसे अपने साथ ले आया। वही आगे चल कर, अकृतव्रण नाम से परशुराम का शिष्य प्रसिद्ध हुआ।

आश्रम—जमदग्नि का आश्रम नर्मदा के तट पर था (ब्रह्मांड. ३.२३.२६)। परशुराम का आश्रम भी वही था।

रेणुकावध—एक बार जमदग्नि रेणुका पर क्रोधित हुये तथा परशुराम को उसका वध करने की आज्ञा दी, जिसका परशुराम ने तुरन्त पालन किया (म. व. ११६.१४)।

जमदग्नि इस पर प्रसन्न हुये तथा इनकी इच्छानुसार रेणुका को पुनः जीवित कर इसे वरदान दिया—तुम अजेय हो, तथा स्वेच्छा पर ही मृत्यु को प्राप्त हो सकते हो (विष्णुधर्म. १.३६.११)।

अस्त्रविद्या—परशुराम को निम्नलिखित अस्त्र-शस्त्रों की जानकारी प्राप्त थीः—

१ ब्रह्मास्त्र, २ वैष्णव, ३ रौद्र, ४ आग्नेय, ५ वासव, ६ नैर्ऋत, ७ याम्य, ८ कौबेर, ९ वारुण, १० वायव्य, ११ सौम्य, १२ सौर, १३ पार्वत, १४ चक्र, १५ वज्र, १६ पाश, १७ सर्प, १८ गांधर्व, १९ स्वापन, २० भौत, २१ पाशुपत, २२ ऐशीक, २३ तर्जन, २४ प्रास, २५ मारुड, २६ नर्तन, २७ अस्त्ररोधन, २८ आदित्य, २९ रैवत, ३० मानव, ३१ अक्षिसंतर्जन, ३२ भीम, ३३ जृम्भण, ३४ रोधन, ३५ सौपर्ण, ३६ पर्जन्य, ३७ राक्षस, ३८ मोहन, ३९ कालास्त्र, ४० दानवास्त्र, ४१ ब्रह्मशिरस (विष्णुधर्म १.५०)।

हैहयों से शत्रुत्व—हैहय राजा कृतवीर्य ने अपने कुलगुरु 'ऋचीक और्व भार्गव' को बहुत धन दिया था। पश्चात् वह धन वापस करने का ऋचीक ने इन्कार कर दिया। उस कारण कृतवीर्य का पुत्र सहस्रार्जुन (कार्तवीर्य अर्जुन) ने ऋचीक के उपर हाथ चलाया, जिस कारण अपने अन्य भार्गव बांधवों के साथ वह कान्यकुब्ज को भाग गया। ऋचीक स्वयं अत्यंत स्वाभिमानी एवं अस्त्रविद्या में कुशल था। कान्यकुब्ज पहुँचते ही, हैहयों से अपमान का बदला लेने की वह कोशिश करने लगा। उस कार्य के लिये, इसने नाना प्रकार के शस्त्रास्त्र इकठ्ठा किये एवं उत्तर भारत के शक्तिशाली राजाओंको अपने पक्ष में लाने का प्रयत्न करने लगा। इस हेतु से, कान्यकुब्ज देश के गाधि राजा की कन्या सत्यवती के साथ विवाह किया एवं अपने पुत्र जमदग्नि का विवाह अयोध्या के राजवंश में से रेणु राजा की कन्या रेणुका के साथ कराया। इस तरह, कान्यकुब्ज एवं अयोध्या के ये दो देश भार्गवों के पक्ष में आ गये।

कामधेनुहरण—जमदग्नि पराक्रमी एवं अस्त्रविद्यानिपुण था। पर उसका पुत्र परशुराम उससे भी अधिक पराक्रमी था। एक बार परशुराम जब तप करने गया था, तब कार्तवीर्य अर्जुन जमदग्नि से मिलने उसके आश्रम में आया। तपश्चर्या को जाने के पहले, अपनी कामधेनु नामक गौ परशुराम ने अपने पिता जमदग्नि के पास अमानत रूप मे रखी थी। कार्तवीर्य ने उसे जमदग्नि से छीनने की कोशिश की। कामधेनु के शरीर से उत्पन्न हुये हजारों यवनों ने कार्तवीर्य का वध करने का प्रयत्न किया। किंतु अंत में

जमदग्नि को घूंसे लगा कर, एवं उसका आश्रम जला कर कार्तवीर्य कामधेनु के साथ अपने राज्य में वापस चला गया।

तपश्चर्या से लौटते ही, परशुराम को कार्तवीर्य की दुष्टता ज्ञात हुई, एवं इसने तुरंत कार्तवीर्य के वध की प्रतिज्ञा की। कई पुराणों के अनुसार, कार्तवीर्यवध की इस प्रतिज्ञा से इसको परावृत्त करने का प्रयत्न जमदग्नि ऋषि ने किया। उसने कहा--'ब्राह्मणों के लिये यह कार्य अत्याधिक अशोभनीय है'। परंतु परशुराम ने कहा 'दुष्टों का दमन न करने से परिणाम बुरा हो सकता है'। फिर जमदग्नि ने इस कृत्य के लिये ब्रह्मा की, तथा ब्रह्मा ने शंकर की संमति लेने के लिये कहा। संमति प्राप्त कर यह सरस्वती के किनारे अगस्त्य ऋषि के पास आया, तथा उसकी आज्ञा से गंगा के उद्‍गम के पास जा कर, इसने तपश्चर्या की। इस तरह देवों का आशीर्वाद प्राप्त कर, परशुराम नर्मदा के किनारे आया। वहाँ से कार्तवीर्य के पास दूत भेज कर, इसने उसे युद्ध का आह्वान किया।

हैहय एवं भार्गवों के शत्रुत्व का इतिहास जान लेने पर, जमदग्नि ने परशुराम को कार्तवीर्यवध से परावृत्त करने की कोशिश की थी, यह कथा अविश्वसनीय लगती है।

युद्ध—परशुराम की प्रतिज्ञा सुन कर, कार्तवीर्य ने भी युद्ध का आह्वान स्वीकार किया, एवं सेनापति को सेना सजाने के लिये कहा। अनेक अक्षौहिणी सेनाओं के सहित कार्तवीर्य युद्धभूमि पर आया। उसका परशुराम ने नर्मदा के उत्तर किनारे पर मुकाबला किया। युद्ध के शुरु में कार्तवीर्य की ओर से मत्स्य राजा ने परशुराम पर ज़ोरदार आक्रमण किया। बड़ी सुलभता के साथ परशुराम ने उसका वध किया। बृहद्बल, सोमदत्त एवं विदर्भ, मिथिला, निषध, तथा मगध देश के राजाओं का भी परशुराम ने वध किया। सात अक्षौहिणी सैन्य तथा एक लाख क्षत्रियों के साथ आये हुये सूर्यवंशज सुचन्द्र को परशुराम ने भद्रकाली की कृपा से परास्त किया। सुचन्द्र के पुत्र पुष्कराक्ष को भी सिर से पैर तक काट कर, इसने मार डाला।

कार्तवीर्यवध—बाद में प्रत्यक्ष कार्तवीर्य तथा उसके सौ पुत्रों के साथ परशुराम का युद्ध हुआ। शुरु में कार्तवीर्य ने परशुराम को बेहोश कर दिया। किन्तु अन्त में परशुराम ने कार्तवीर्य एवं उसके पुत्रों का सौ अक्षौहिणी सेनासहित नाश कर दिया (ब्रह्मांड. ३.३९.११९; म. द्रो. परि. १ क्र. ८)। महाभारत के अनुसार, परशुराम ने कार्तवीर्य के सहस्र बाहु काट दिये, एवं एक सामान्य श्वापद जैसा उसका वध किया (म. शां. ४९.४१)। कार्तवीर्य के शूर, वृषास्य, वृष, शूरसेन तथा जयध्वज नामक पुत्रों ने पलायन किया। उन्होंने हिमालय की तराई में स्थित अरण्य में आश्रय लिया। परशुराम ने युद्ध समाप्त किया।

पश्चात् यह नर्मदा में स्नान कर के शिवजी के पास गया। वहाँ गणेशजी ने इसे कहा 'शिवजी के पास जाने का यह समय नहीं है'। फिर क्रुद्ध हो कर अपने फरसे से इसने गणेशजी का दाँत तोड़ दिया (ब्रह्मांड. ३.४२)। पश्चात् जमदग्नि के आश्रम में आ कर, इसने उसे कार्तवीर्यवध का सारा वृत्तांत सुनाया।

क्षत्रियहत्या के दोषहरण के लिये, जमदग्नि ने परशुराम को बारह वर्षों तक तप कर के, प्रायश्चित्त करने के लिये कहा। फिर परशुराम प्रायश्चित करने के लिये महेंद्र पर्वत चला गया। मत्स्य के अनुसार, यह कैलास पर्वत पर गणेशजी की आराधना करने गया (मत्स्य. ३६)। जिधर जिधर यह जाता था, वहाँ क्षत्रिय डर के मारे छिप जाते थे, तथा अन्य सारे लोग इसकी जयजयकार करते थे (ब्रह्मांड. ३.४४)।

जमदग्निवध—परशुराम तपश्चर्या में निमग्न ही था कि, इधर कार्तवीर्य के पुत्रों ने तपस्या के लिये समाधि लगाये हुवे जमदग्नि ऋषि का वध कर दिया, तथा वे उसका सिर ले कर भाग गये। ब्रह्मांड के अनुसार, जमदग्नि का वध कार्तवीर्य के अमात्य चंद्रगुप्त ने किया (ब्रह्मांड. ३.२९.१४)।

बारह वर्षों के बाद, परशुराम जब तपश्चर्या से वापस आ रहा था, तब मार्ग में ही इसे जमदग्नि के वध की घटना सुनायी गयी। जमदग्नि के आश्रम में आते ही, रेणुका ने इक्कीस बार छाती पीट कर जमदग्निवध की कथा फिर दोहरायी। फिर क्रोधातुर हो कर, परशुराम ने केवल हैहयों का ही नहीं, बल्कि पृथ्वी पर से सारे क्षत्रियों के वध करने की, एवं पृथ्वी को निःक्षत्रिय बनाने की दृढ़ प्रतिज्ञा की।

मातृतीर्थ की स्थापना—परशुराम के प्रतिज्ञा की यह कथा 'रेणुकामहात्म्य' में कुछ अलग ढंग से दी गयी है। कार्तवीर्य जब जमदग्नि से मिलने उसके आश्रय में गया, तब कामधेनु की प्राप्ति के लिये उसने जमदग्नि का वध किया। फिर अपने पिता का और्ध्वदैहिक करने के लिये, परशुराम एक डोली में जमदग्नि का शव, एवं रेणुका को बैठा कर, 'कान्याकुब्जाश्रम' से बाहर निकला। अनेक

तीर्थस्थानों एवं जंगलों को पार करता हुआ, यह दक्षिण मार्ग से पश्चिम घाट के मल्लकी नामक दत्तात्रेयक्षेत्र में आया। वहाँ कुछ काल तक विश्राम करने के उपरांत यह चलनेवाला ही था, कि इतने में आकाशवाणी हुयी 'अपने पिता का अग्निसंस्कार तुम इसी जगह करो'। आकाशवाणी के कथनानुसार, परशुराम ने दत्तात्रेय की अनुमति से, जमदग्नि का अंतिम संस्कार किया। रेणुका भी अपने पति के शव के साथ अग्नि में सती हो गयी।

बाद में परशुराम ने मातृ-पितृप्रेम से विह्वल हो कर इन्हें पुकारा। फिर दोनों उस स्थान पर प्रत्यक्ष उपस्थित हो गये। इसी कारण उस स्थान को 'मातृतीर्थ' (महाराष्ट्र में स्थित आधुनिक माहूर) नाम दिया गया। इस मातृतीर्थ में परशुराम की माता रेणुका स्वयं वास करती हैं। इस स्थान पर रेणुका ने परशुराम को आज्ञा दी, 'तुम कार्तवीर्य का वध करो, एवं पृथ्वी को निःक्षत्रिय बना दो'।

नर्मदा के किनारे मार्कण्डेय ऋषि का आश्रम था। वहाँ मार्कण्डेय ऋषि का आशीर्वाद लेकर, परशुराम ने कार्तवीर्य का वध किया एवं पृथ्वी निःक्षत्रिय करने की अपनी प्रतिज्ञा निभाने के लिये, यह आगे बढ़ा (रेणु. ३७-४०)।

हैहयविनाश—अपनी प्रतिज्ञा निभाने के लिये, परशुराम ने सर्वप्रथम अपने गुरु अगस्त्य का स्मरण किया। फिर अगस्त्य ने इसे उत्तम रथ एवं आयुध दिये। सहसाह इसका सारथि बना (ब्रह्मांड. ३.४६.१४)। रुद्रद्वारा दिया गया 'अमित्रजित्' शंख इसने फूँका।

कार्तवीर्य के शूरसेनादि पाँच पुत्रों ने अन्य राजाओं को साथ ले कर, परशुराम का सामना करने का प्रयत्न किया। उनको वध कर, अन्य क्षत्रियों का वध करने का सत्र इसने शुरू किया। हैहय राजाओं की राजधानी माहिष्मती नगरी को इसने जला कर भस्म कर दिया। हैहयों में से वीतिहोत्र केवल बच गया, शेष हैहय मारे गये।

हैहयविनाश का यह रौद्र कृत्य पूरा कर, परशुराम महेंद्र पर्वत पर तपस्या करने के लिये चला गया। नये क्षत्रिय पैदा होते ही, उनका वध करने की इसकी प्रतिज्ञा थी। उस कारण यह दस वर्षों तक लगातार तपस्या करता था, एवं दो वर्षों तक महेंद्र पर्वत से उतर कर, नये पैदा हुए क्षत्रियों को अत्यंत निष्ठुरता से मार देता था। इस प्रकार इक्कीस बारा इसने पृथ्वी भर के क्षत्रियों का वध कर, उसे निःक्षत्रिय बना दिया (ब्रह्मांड. ३.४६)।

निःक्षत्रिय पृथ्वी—इस तरह परशुराम ने चौसट कोटि क्षत्रियों का वध किया। उनमें से चौदह कोटि क्षत्रिय सरासर ब्राह्मणों का द्वेष करनेवाले थे। बचे हुए क्षत्रियों को इसने नाना प्रकार की सजाएँ दी। दंतक्रूर का इसने वध किया। एक हजार वीरों को इसने मूसल से मार डाला। हजारों को तलवार से काट डाला। हजारों को पेड़ पर टाँग कर मार डाला, तथा उतने ही लोगों को पानी में डुबो दिया। हजारों के दाँत तोड़ कर नाक तथा कान काट लिये। सात हजार क्षत्रियों को मिर्च की धुनी दी। बचे हुये लोगों को बाँधकर, मार कर, तथा मस्तक तोड़कर नष्ट कर दिया। गुणावती के उत्तर में तथा खांडवारण्य के दक्षिण में जो पहाड़ियाँ हैं, उनकी तराई में क्षत्रियों से इसका युद्ध हुआ। वहाँ इसने दस हजार वीरों का नाश किया। उसके बाद काश्मीर, दरद, कुंति, क्षुद्रक, मालव, अंग, वंग कलिंग, विदेह, ताम्रलिप्त, रक्षोवाह, वीतिहोत्र, त्रिगर्त, मार्तिकावत, शिबि इत्यादि अनेक देश के राजाओं को कीड़ेमकोड़े के समान इसने वध कर दिया। इसी निर्दयता से जंगली लोगों का भी वध किया।

इस प्रकार परशुराम ने बारह हजार मूर्धाभिषिक्त राजाओं के सिर काट डाले। बाद में हजारों राजाओं को पकड़ कर, यह कुरुक्षेत्र ले आया। वहाँ पाँच बड़े कुण्ड खोद कर इसने उसे कैदी राजाओं के रक्त से भर दिया। पश्चात् उन कुंडों में परशुराम ने 'रुधिरस्नान' किया एवं अपने पितरों को तर्पण दिया। वे कुंड 'समंतपंचक तीर्थ' था 'परशुरामह्रद' नाम से आज भी प्रसिद्ध है।

बाद में गया जाकर चन्द्रपाद नामक स्थान पर इसने श्राद्ध किया (पद्म. स्व. २६)। इस प्रकारे अद्भुत कर्म कर के परशुराम प्रतिज्ञा से मुक्त हुआ। पितरों को यह क्षत्रियहत्या पसन्द न आई। उन्हों ने इस कार्य से छुटकारा पाने तथा पाप से मुक्ति प्राप्त करने के लिये, प्रायश्चित करने के लिये कहा (म. आ. २.४.१२)। पितरों की आज्ञा का पालन कर, यह अकृतव्रण के साथ सिद्धवन की ओर गया। रथ, सारथि, धनुष आदिको त्याग कर इसने पुनः ब्राह्मणधर्म स्वीकार किया। सब तीर्थों पर स्नान कर इसने तीन बार पृथ्वी की प्रदक्षिणा की, और महेन्द्र पर्वत पर स्थायी निवास बनाया।

अश्वमेधयज्ञ—पश्चात्, जीती हुयी सारी पृथ्वी कश्यप ऋषि को दान देने के लिये, परशुराम ने एक

महान् अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया। उस यज्ञ के लिये, बत्तीस हाँथ ऊँची सुवर्णवेदी इसने बनायी, एवं निम्नलिखित ऋषिओं को यज्ञाधिकार दिये—काश्यप (अध्वर्यु), गौतम (उद्गातृ), विश्वामित्र (होतृ) तथा मार्कण्डेय (ब्रह्मा)। भरद्वाज, अग्निवेश्यादि ऋषियों ने भी इस यज्ञ में भाग लिया। इस प्रकार यज्ञ समाप्त कर परशुराम ने महेन्द्र पर्वत को छोड़ कर, शेष पृथ्वी कश्यप को दान दे दी (म. शां. ४९; अनु. १३७.१२)। पश्चात् 'दीपप्रतिष्ठाख्य' नामक व्रत किया (ब्रह्मांड ३.४७)।

नया हत्याकांड—इस व्यवहार के कारण, परशुराम के बारे में लोगों के हृदय में तिरस्कार की भावना भर गयी। कुछ दिनों के उपरांत विश्वमित्र-पौत्र तथा रैभ्यपुत्र परावसु ने भरी सभा में के इसे चिढ़ाया तथा कहा 'पृथ्वी निःक्षत्रिय करने की प्रतिज्ञा तुमने की। परन्तु ययाति के यज्ञ के लिये एकत्रित्र प्रतर्दन प्रभृति लोग क्या क्षत्रिय नहीं हैं? तुम मनचाही बकवास कहते हो। सच बात यह है कि सब ओर फैले क्षत्रियों के डर से तुम वन में मुँह छिपा कर बैठे हो'। इससे संतप्त हो कर परशुराम ने पुनः शास्त्र हाथ में लिया, तथा पहले निरपराधी मानकर छोड़े गये क्षत्रियों का वध किया। छोटों का विचार न कर, इसने माँ के गर्भ में स्थित बच्चों का भी नाश किया। अन्त में सम्पूर्ण पृथ्वी का दान कर स्वयं महेन्द्र पर्वत पर रहने के लिये चला गया (म. द्रो. परि. क्र. २६ पंक्ति ८६६)।

अभिमन्यु की मृत्यु से शोकग्रस्त युधिष्ठिर को यह कथा बताकर नारद ने शांत किया।

हत्याकांडसे बचे क्षत्रिय—परशुराम के हत्याकांड से बहुत ही थोड़े क्षत्रिय बच सके। उनके नाम इस प्रकार हैं:—

(१) **हैहय राजा वीतिहोत्र**—यह अपने स्त्रियों के अंतःपुर में छिपने से बच गया।

(२) **पौरव राजा ऋक्षवान्**—यह ऋक्षवान् पर्वतों के रीछों में जाकर छिपने से बच गया।

(३) **अयोध्या का राजा सर्वकर्मन्**—पराशर ऋषि ने शूद्र के समान सेवा कर इसे बचाया।

(४) **मगधराज बृहद्रथ**—गृध्रकुट पर्वत पर रहनेवाले बंदरों ने इसकी रक्षा की।

(५) **अंगराज चित्ररथ**—गंगातीर पर रहने वाले गौतम ने इसकी रक्षा की।

(६) **शिबीराजा गोपालि**—गायों ने इसकी रक्षा की।

(७) **प्रतर्दनपुत्र वत्स**—इसकी रक्षा गोवत्सों ने की।

(८) **मरुत्त**—इसे समुद्र ने बचाया।

इन राजाओं के वंश के लोग क्षत्रिय होते हुये भी, शिल्पकार, स्वर्णकार आदि कनिष्ठ श्रेणी के व्यवसाय करने पर विवश हुये।

इस प्रकार परशुराम के कारण, चारों ओर अराजकता फैल गयी। उस अराजकता को नष्ट करने के लिये, कश्यप ने चारों ओर के क्षत्रियों को ढूंढना पुनः प्रारंभ किया, एवं उनके राज्याभिषेक कर सुराज्य स्थापित करने की कोशिश की (म. शां. ४९.५७-६०)।

'शूर्पारक' की स्थापना—अवशिष्ट क्षत्रियों के बचाव के लिये, कश्यप ने परशुराम को दक्षिण सागर के पश्चिमी किनारे जाने के लिये कहा। 'शूर्पारक' नामक प्रदेश समुद्र से प्राप्त कर, परशुराम वहाँ रहने लगा। भृगुकच्छ (भडोच) से ले कर कन्याकुमारी तक का पश्चिम समुद्र-तट का प्रदेश 'परशुराम देश' या 'शूर्पारक' नाम से प्रसिद्ध हुआ।

शूर्पारक प्रांत की स्थापना के कई अन्य कारण भी पुराणों में प्राप्त हैं। सगरपुत्रों द्वारा गंगा नदी खोदी जाने पर, 'गोकर्ण' का प्रदेश समुद्र में डूबने का भय उत्पन्न हुआ। वहाँ रहनेवाले शुष्क आदि ब्राह्मणों ने महेंद्र पर्वत जा कर, परशुराम से प्रार्थना की। फिर गोकर्णवासियों के लिये नयी बस्ती बसाने के लिये, इसने समुद्र पीछे हटा कर, दक्षिणोत्तर चार सौ योजन लम्बे शूर्पारक देश की स्थापना की (ब्रह्मांड. ३. ५६. ५१-५७)।

परशुरामकथा का अन्वयार्थ—परशुराम द्वारा पृथ्वी निःक्षत्रियकरण की प्राचीन कथा में कुछ अतिशयोक्ति जरूर प्रतीत होती है। अयोध्या एवं कान्यकुब्ज के राजा अपनी माता रेणुका एवं मातामही सत्यवती के तरफ से परशुराम के रिश्तेदार थे। उन राजाओं को साथ ले कर परशुराम ने हैहयों को एवं हैहयपक्षीय राजाओं को इक्कीस बार युद्धभूमियों पर पराजित किया, इस 'परशुराम कथा' के अन्वयार्थ लगा जा सकता है। हैहयविरोधी इस युद्ध में, अयोध्या एवं कान्यकुब्ज के अतिरिक्त, वैशाली, विदेह, काशी आदि देशों के राजा भी परशुराम के पक्ष में शामिल थे। इसी कारण, परशुराम एवं हैहयों का युद्ध, प्राचीन भारतीय इतिहास का पहला महायुद्ध कहा जाता है।

कई अभ्यासकों के अनुसार, भार्गव लोग एवं स्वयं परशुराम 'नाविक' व्यवसाय के लोग थे, एवं पश्चिम

समुद्र किनारे रह कर, योरप, अफ्रीका आदि देशों से व्यापारविनिमय करते थे। इस व्यापार के कारण उन्होंने बहुत संपत्ति इकठ्ठा की थी। पश्चिम भारतवर्ष पर राज्य करनेवाले हैहय लोग, विदेशी व्यापारविनिमय आर्य लोगों के कब्ज़े में लाना चाहते थे। इस कारण, कार्तवीर्य अर्जुन ने '*अत्रि*' *नामक नाविकव्यवसायी लोगों* से दोस्ती की, एवं उनसे एक सहस्र युद्धनौकाएँ बना लीं। उसी एक हज़ार नौकाओं के कारण, कार्तवीर्य को सहस्र हाथोंवाला ('सहस्रार्जुन') नामक उपाधि मिली। पश्चात् कार्तवीर्य ने, भार्गवों से उनकी संपूर्ण संपत्ति माँगी। इस कारण, क्रुद्ध हो कर परशुराम ने हैहयों का नाश किया, एवं नर्मदा नदी के प्रदेश में से सारे हैहय राज्य का विध्वंस किया। यही विध्वंस पुराणों में 'निःक्षत्रिय पृथ्वी' के नाम से वर्णित है।

इस तरह ध्वस्त हैहय प्रदेश में परशुराम ने नया राज्य स्थापित किया, एवं पश्चिम समुद्र किनारे के भृगुकच्छ से लेकर कन्याकुमारी तक सारा प्रदेश नया बसाया। यही प्रदेश 'शूर्पारक' नाम से प्रसिद्ध हुआ, एवं पश्चिम के व्यापारविनिमय का केंद्रस्थान बन गया। हैहयों के विनाश से, पश्चिमी विदेशों का व्यापार उत्तर हिंदुस्थान के आर्य लोगों के हाथों से निकल गया, एवं दाक्षिणात्य द्रविडों के हाथों में वह चला गया (करंदीकर—'नवाकाळ' निबंध, १९३२–३३ ई.)।

फिर भी परशुराम हैहयों का संपूर्ण विनाश न कर सका। परशुराम के पश्चात, हैहय लोग 'तालजंघ' सामूहिक नाम से पुनः एकत्र हुये। तालजंघों में पाँच उपजातियों का सामवेश था, जिनके नाम थेः— वीतहोत्र, शर्यात, भोज, अवन्ति, कुण्डरिक (मत्स्य. ४३.४८–४९; वायु. ९४.५१–५२)। उन लोगों ने कान्यकुब्ज, कोमल, काशी आदि देशों पर बार बार आक्रमण किये, एवं कान्यकुब्ज राज्य का संपूर्ण विनाश किया।

ऐतिहासिक दृष्टि से, परशुराम जामदग्न्य, राम दाशरथि एवं पांडवों से बहुत ही पूर्वकालीन हैं। फिर भी 'रामायण' एवं 'महाभारत' के अनेक कथाओं में परशुराम की उपस्थिति का वर्णन प्राप्त है।

महाभारत में— सौभपति शाल्व के हाथों से परशुराम पराजित हुआ। फिर कृष्ण ने शाल्व का वध किया (म. स. परि. १. क्र. २१. पंक्ति. ४७४–४८५)। करवीर शृगाल के उन्मत्त कृत्यों की शिकायत परशुराम ने बलराम एवं कृष्ण के पास की। फिर उसका वध भी कृष्ण ने किया (ह. वं. २.४४)। सैंहिकेय शाल्व का वध भी कृष्ण ने परशुराम के कहने पर ही किया (ह. वं. २. ४४)। सैंहिकेय शाल्व के वध के बाद, शंकर ने परशुराम को 'शंकरगीता' का ज्ञान कराया (विष्णुधर्म. १.५२.६५)। जरासंध के आक्रमण से डर कर, बलराम तथा कृष्ण राजधानी के लिये नये स्थान ढूँढ रहे थे। उस समय उनकी भेंट परशुराम से हुयी थी। परशुराम ने उन्हें गोमंत पर्वत पर रह कर जरासंध से दुर्गयुद्ध करने की सलाह दी (ह. वं. २.३९)।

महेंद्र पर्वत पर जब यह रहता था, तब अष्टमी तथा चतुर्दशी के ही दिन केवल अभ्यागतों से मिलता था (म. व. ११५.६)। पूर्व समुद्र की ओर भ्रमण करते हुये युधिष्ठिर की भेंट एक दिन परशुराम से हुयी थी। बाद में युधिष्ठिर गोदावरी नदी के मुख की ओर चला गया (म. व. ११७–११८)।

शूर्पारक बसाने के पूर्व परशुराम महेंद्र पर्वत पर रहता था। उसके उपरांत शूर्पारक प्रदेश में रहने लगा (ब्रह्मांड. ३.५८)।

भीष्माचार्य को परशुराम ने अस्त्रविद्या सिखायी थी। भीष्म अम्बा का वरण करे, इस हेतु से इन गुरुशिष्यओं का युद्ध भी हुआ था। एक महीने तक युद्ध चलता रहा, अन्त में परशुरान ने भीष्म को पराजित किया (म. उ. १८६. ८)। परशुराम ने क्षत्रियों की हिंसा की। उसके विषय में भीष्म ने इसे मुँहतोड़ जवाब दिया था। अपने को ब्राह्मण बताकर कर्ण ने परशुराम से शिक्षा प्राप्त की थी। बाद में परशुराम को यह भेद पता चला, और उन्होंने उसे शाप दिया।

परशुराम ने द्रोण को ब्रह्मास्त्र सिखाया था। दंभोद्भव राक्षस की कथा सुनाकर, परशुराम ने दुर्योधन को युद्ध से परावृत करने का प्रयत्न किया था (म. उ. ८४)। बम्बई के वाल्केश्वर मंदिर के शिवलिंग की स्थापना परशुराम ने की थी (स्कंद. सह्याद्रि. २–१)।

रामायण में—रामायण में भी परशुराम का निर्देश कई बार आया है। सीता-स्वयंवर के समय राम ने शिव के धनुष को तोड़ दिया। अपने गुरु शिव का, अपमान सहन न कर, परशुराम राम से युद्ध करने के लिये तत्पर हुआ। किंतु उस युद्ध में राम ने परशुराम को पराजित किया, एवं परशुराम के तपसामर्थ्य नष्ट होने का उसे शाप दिया (वा. रा. बा. ७४–७६)।

कालविपर्यास---परशुराम के महाभारत एवं रामायण में प्राप्त निर्देश कालविपर्यस्त हैं अतएव अनैतिहासिक प्रतीत होते है। जैसे पहले ही कहा है, परशुराम रामायण एवं महाभारत के बहुत ही पूर्वकालीन थे। इस कालविपर्यास का स्पष्टीकरण महाभारत एवं पुराणों में, परशुराम को चिरंजीव कह कर दिया गया है। संभव है कि, प्राचीन-काल के परशुराम की महत्ता एवं ब्रह्मतेज का रिश्ता महाभारत एवं रामायण के पात्रों से जोड़ने के लिये यह 'चिरंजीवत्व' की कल्पना प्रसृत की गयी हो।

परशुराम के स्थान---परशुराम के जीवन से संबंधित अनेक स्थान भारतवर्ष में उपलब्ध हैं। वहाँ परशुराम की उपासना आज भी की जाती है। उनमें से कई स्थान इस प्रकार हैं---

(१) जमदग्नि आश्रम (पंचतीर्थी)---परशुराम का जन्मस्थान एवं सहस्रार्जुन का वधस्थान। यह उत्तरप्रदेश में मेरठ के पास हिंडन (प्राचीन 'हर') नदी के किनारे है। यहाँ पाँच नदियों का संगम है। इसलिये इसे 'पंचतीर्थी' कहते है। यहाँ 'परशुरामेश्वर' नामक शिवमंदिर है।

(२) मातृतीर्थ (महाराष्ट्र में स्थित आधुनिक 'माहूर' ग्राम)---रेणुका दहनस्थान।

(३) महेंद्रपर्वत (आधुनिक 'पूर्वघाट)---परशुराम का तपस्यास्थान। क्षत्रियों का संहार करने के पश्चात् परशुराम यहाँ रहता था। परशुराम ने समस्त पृथ्वी कश्यप को दान में दी, उस समय महेंद्रपर्वत भी कश्यप को दान में प्राप्त हुआ। फिर परशुराम 'शूर्पारक' के नये बस्ती में रहने के लिये गया।

(४) शूर्पारक (बंबई के पास स्थित आधुनिक 'सोपारा' ग्राम)---परशुराम का तपस्यास्थान। समुद्र को हटा कर, परशुराम ने इस स्थान को बसाया था।

(५) गोकर्णक्षेत्र (दक्षिण हिंदुस्थान में कारवार जिले में स्थित 'गोकर्ण' ग्राम)---परशुराम का तपस्यास्थान। समुद्र में डूबते हुये इस क्षेत्र का रक्षण परशुराम ने किया था।

(६) जंबुवन (राजस्थान में कोटा के पास चर्मण्वती नदी के पास स्थित आधुनिक 'केशवदेवराय-पाटन' ग्राम)---परशुराम का तपस्यास्थान। इक्कीस बार पृथ्वी निःक्षत्रिय करने के बाद परशुराम ने यहाँ तपस्या की थी।

(७) परशुरामतीर्थ (नर्मदा नदी के मुख में स्थित आधुनिक 'लोहान्या' ग्राम)---परशुराम का तपस्यास्थान।

(८) परशुरामताल (पंजाब में सिमला के पास 'रेणुका-तीर्थ' पर स्थित पवित्र तालाब)---परशुराम के पवित्रस्थान। यहाँ के पर्वत का नाम 'जमदग्निपर्वत' है।

(९) रेणुकागिरि (अलवार-रेवाडी रेलमार्ग पर खैरथल से ५ मील दूर स्थित आधुनिक 'रैनागिरि' ग्राम)---परशुराम का आश्रमस्थान।

(१०) चिपळूण (महाराष्ट्र में स्थित आधुनिक चिपळूण ग्राम)---परशुराम का पवित्रस्थान। यहाँ परशुराम का मंदिर है।

(११) रामह्रद (कुरुक्षेत्र के सीमा में स्थित एक तीर्थस्थान)---परशुराम का तीर्थ स्थान। यहाँ परशुराम ने पाँच कुंडों की स्थापना की थी (म. व. ८१.२२-३३)। इसे 'समंतपंचक' भी कहते है।

परशुरामजयंती---वैशाख शुध तृतीया के दिन, रात्रि के पहले 'प्रहर' में परशुरामजयंती का समारोह किया जाता है। (धर्मसिंधु पृ. ९)। यह समारोह अधिक तर दक्षिण हिंदुस्थान में होता है, सौराष्ट्र में यह नहीं किया जाता है। इस समारोह में, निम्नलिखित मंत्र के साथ, परशुराम को 'अर्घ्य' प्रदान किया जाता है---

> जमदग्निसुतो वीर क्षत्रियान्तकरः प्रभो।
> ग्रहाणार्घ्यं मया दत्तं कृपया परमेश्वर ॥

परशुराम साम्प्रदाय के ग्रंथ---'परशुरामकल्पसूत्र' नामक एक तांत्रिकसांप्रदाय का ग्रंथ परशुराम के नाम से प्रसिद्ध है। 'परशुरामप्रताप' नामक और भी एक ग्रंथ उपलब्ध है।

परशुरामशक---मलाबार में अभी तक 'परशुराम शक' चालू है। उस शक का वर्ष सौर रीति का है, एवं वर्षारंभ 'सिंहमास' से होता है। इस शक का 'चक्र' एक हजार साल का होता है। अभी इस शक का चौथा चक्र चालू है। इस शक को 'कोल्लमआंडु' (पश्चिम का वर्ष) कहते है (भा. ज्यो. ३७७)।

परस्परायणि---अंगिराकुल का एक ब्रह्मर्षि (नारायणि देखिये)।

पराक्ष---(सो. अनु) एक राजा। ब्रह्मांड के अनुसार, यह अनु राजा का पुत्र था (परपक्ष देखिये)।

परातंस—(सो.) एक राजा। भविष्य के अनुसार, यह प्रतंस का पुत्र था।

परानंद—मगध देश का राजा। नंदसुत को शूद्र स्त्री से उत्पन्न हुए, प्रनंद नामक राजा का यह पुत्र था। इसने १० वर्षों तक राज्य किया (भवि. प्रति. १.६)।

परायण—वायु एवं ब्रह्मांड के अनुसार, व्यास की सामशिष्यपरंपरा के कौथुम पाराशर्य का शिष्य (व्यास देखिये)।

परावसु—एक ऋषि, जो रैभ्य मुनि का पुत्र एवं अर्वावसु ऋषि का बड़ा भाई था। विश्वामित्र ऋषि इसका पितामह था। यह अंगिरा का वंशज माना जाता था (म. शां. २०१.२५)।

हिंसक पशु के धोखे में, इसने अपने पिता रैभ्य का वध किया (म. व. १३९.६)। इस वध के कारण, इसे ब्रह्महत्या का पाप लगा, एवं यज्ञ के ऋत्विज का कार्य करने के लिये अपात्र बन गया।

अपने ब्रह्महत्या का पातक दूर करने के लिये, इसने अपने छोटे भाई अर्वावसु को वेदमंत्रयुक्त अनुष्ठान एवं तपस्या करने की आज्ञा दी, एवं यह स्वयं बृहद्द्युम्न राजा का यज्ञ करने चला गया (म. व. १३९.२)।

बृहद्द्युम्न के यज्ञ से 'ब्रह्मघातकी' होने के कारण, इसे निकलवा दिया। किंतु अर्वावसु के प्रयत्न से, यह निर्दोष साबित हुआ (म. व. १३९.१५)। पश्चात् उपरिचर के अश्वमेध यज्ञ में भी इसे स्थान दिया गया (म. शां. ३२७.७)।

एक बार परशुराम से इसकी मुलाकात हो गयी। इक्कीस बार पृथ्वी निःक्षत्रिय करनेवाले परशुराम से इसने व्यंग्य से कहा, 'पृथ्वी पर क्षत्रिय तो बहुत बाकी है। खुद को निःक्षत्रिय पृथ्वी करनेवाला कहला कर, तुम व्यर्थ ही आत्मप्रशंसा करते हो'। इसके इस उद्गार के कारण, परशुराम क्रोधित हुआ, एवं क्षत्रियसंहार का कार्य उसने पुनः आरम्भ किया (म. द्रो. परि. १ क्र. ८)।

परावृत्—(सो. क्रोष्टु.) एक राजा। पद्म तथा विष्णु के अनुसार, यह रुक्मकवच का पुत्र था।

पराशर—एक वैदिक सूक्तद्रष्टा, स्मृतिकार, एवं 'आयुर्वेद' तथा 'ज्योतिषशास्त्र' के प्रवर्तक ऋषिओं में से एक। यह वसिष्ठ ऋषि का पौत्र, एवं शक्ति ऋषि का पुत्र था। यह शक्ति ऋषि के द्वारा 'अदृश्यन्ती' के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। इसीलिये इसे पराशर 'शाक्त्य' कहते थे। वसिष्ठ का भाई शतयातु ऋषि इसका चाचा था। इसके कुल तीन भाई थे। उनके नामः-अधीगु, गौरीवृिति, एवं जातूकर्ण या जातूकर्ण्य हैं।

ऋग्वेद अनुक्रमणी के अनुसार, ऋग्वेद के कुछ सूक्तों का प्रणयन पराशर ने किया था (ऋ. १.६५-७३)। एक परंपरा के रूप में 'पराशरों' का काठक अनुक्रमणी' में उल्लेख प्राप्त है (इन्डिशे स्टूडियेन ३.४६८०)। दस राजाओं के युद्ध में विजय पानेवाले सुदास राजा की प्रशस्ति में, अपने चाचा शतयातु एवं पितामह वसिष्ठ के साथ पराशर ऋषि का निर्देश आया है (ऋ. ७.१८.२१) इन तीन ऋषियों ने इंद्र के पास जा कर, सुदास के लिये उसकी सहायता प्राप्त की थी (गेल्डनर-इन्डिशे स्टुडियेन २. १३२)।

निरुक्त में 'पराशर' शब्द की व्युत्पत्ति बूढ़े ऋषि को उत्पन्न पुत्र ('पराशीर्णस्य स्थविरस्य जज्ञे') ऐसी दी गयी है (नि.६.३०)। उसका शब्दशः अर्थ ले कर, कई लोग पराशर को वसिष्ठ ऋषि को उसके बुढ़ापे में उत्पन्न हुआ पुत्र मानते हैं। किंतु यह ठीक नहीं है। अपने सातों पुत्रों की मृत्यु हो जाने पर, दुःख से पीड़ित वृद्ध वसिष्ठ ऋषि को पराशर का आधार प्राप्त हुआ था। उसीका संकेत निरुक्त के इस व्युत्पत्ति में किया गया है। महाभारत में भी निरुक्त के व्युत्पत्ति को इसी अर्थ से ले कर, पराशर को वसिष्ठ का पौत्र एवं शक्ति का मृत्यु के पश्चात् उत्पन्न पुत्र कहा गया है (म. आ. १६७.१५)।

एक बार वसिष्ठ का पुत्र शक्ति पुष्पादिक लाने के लिये अरण्य में गया था। वहाँ विश्वामित्र के लोगों ने उसे पकड़ कर अग्नि में झोंक दिया। अग्नि में जल कर मरते हुए शक्ति ने, 'इंद्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा' (हे इंद्र-हमें ज्ञान दे। पिता अपने पुत्र को प्रदान करता है, वैसा धन तुम हमें दे) ऋचा के अर्धभाग की रचना की। पश्चात् वसिष्ठ ने उस ऋचा को पूरा किया (ऋ. ३२.२६)।

महाभारत के अनुसार, शक्ति ऋषि का वध राक्षसयोनि प्राप्त हुए कल्माषपाद ने किया (म. आ. १६६.३६)। शक्ति ऋषि के द्वारा उसकी पत्नी अदृश्यन्ती के गर्भ में से पराशर की उत्पत्ति हुई। बारह वर्षों तक अपने माता के गर्भ में रह कर इसने वेदाभ्यास किया।

अपने पुत्रों के मृत्यु से एवं वंशक्षय के दुःख के कारण जीवन से ऊबकर, एक बार वसिष्ठ आश्रम से बाहर निकल पड़ा। शक्ति की विधवा पत्नी अदृश्यन्ती भी उसके पीछे-पीछे जाने लगी। इतने में यकायक वसिष्ठ के कानों पर सुस्वर 'वेदध्वनि' आने लगी। उसने पीछे मुड़ कर देखा।

उसे पता चला कि, अदृश्यन्ती के गर्भ से वेदध्वनि आ रहीं है। अपना वंश अभी तक जीवित है, यह जान कर वसिष्ठ को अत्यंत आनंद हुआ, एवं वह आश्रम में वापस आया। कुछ दिनों के बाद, अदृश्यन्ती से पराशर उत्पन्न हुआ। इसके पितामह वसिष्ठ ने इसका पालन-पोषण किया। दूसरे का लड़का खुद का समझ कर वसिष्ठ ने इसे सँभाला, इस कारण इसका 'पराशर' नाम रखा गया (म. आ. १६९. ३)।

बाल्यकाल में पराशर, वसिष्ठ ऋषि को अपना पिता समझ कर, उसे 'दादा, दादा' कह कर पुकारता था। वसिष्ठ को 'दादा' कह कर पुकारते ही, इसकी माता अदृश्यन्ती के आँखों में पानी भर आता था। अदृश्यन्ती ने इसे कई बार समझाया, "वसिष्ठ को तुम 'दादा' न कह कर, 'बाबा' ('पितामह) कहो"। किंतु पराशर यह सूक्ष्म भेदाभेद नहीं समझता था।

पराशर के बड़े होने पर, अदृश्यन्ती ने राक्षसद्वारा हुए शक्ति ऋषि के घृणित वध की सारी कहानी इसे सुनायी। उसे सुनते ही, यह संपूर्ण जगत के विनाश के लिये तत्पर हुआ। किंतु भृगवंशी ऋचीक और्व ऋषि की कथा इसे सुना कर, वसिष्ठ ने इसे जगद्विनाश के संकल्प से परावृत्त किया (म. आ. १७२)।

राक्षससत्र—फिर भी पराशर का राक्षसों के प्रति क्रोध शमित न हुआ। आबालवृद्ध राक्षसों को मार डालने के लिये, इसने महाप्रचंड 'राक्षससत्र' का आयोजन किया। राक्षसों के प्रति वसिष्ठ भी पहले से क्रुद्ध था। इस कारण, पराशर के नये सत्र से वसिष्ठ ने न रोका। किंतु इसके 'राक्षससत्र' से अन्य ऋषियों में हलचल मच गयी। अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, क्रतु, महाक्रतु आदि ऋषियों ने स्वयं सत्र के स्थान आकर, पराशर को समझाने की कोशिश की। पुलस्त्य ऋषि ने कहा, 'अनेक दृष्टि से राक्षस निरुपद्रवी एवं निरपराध है। अतः उनका वध करना उचित नहीं'। फिर वसिष्ठ ने भी पराशर को समझाया, एवं 'राक्षससत्र' बंद करने के लिये कहा। उसका कहना मान कर, पराशर ने अपना यज्ञ स्थगित किया। इस पुण्यकृत्य के कारण पुलस्त्य ने इसे वर दिया, 'तुम सकल शास्त्रों में पारंगत, एवं पुराणों के 'वक्ता' बनोगे (विष्णु. १. १)।

राक्षससत्र के लिये सिद्ध की अग्नि, पराशर ने हिमालय के उत्तर में स्थित एक अरण्य में झोंक दी। वह अग्नि 'पर्वकाल' के दिन, राक्षस, पाषाण एवं वृक्षों को भक्षण करती हुयी आज भी दृष्टिगोचर होती है (म. आ. १६९-१७०; १७२; विष्णु. १.१; लिंग १. ६४)।

व्यासजन्म—एक बार पराशर तीर्थयात्रा के लिये गया था। यमुना नदी के किनारे, उपरिचर वसु राजा की कन्या सत्यवती को इसने देखा। सत्यवती के शरीर में मछली जैसी दुर्गंध आती थी। फिर भी उसके रूप यौवन पर मोहित हो कर पराशर ने उससे प्रेमयाचना की। पराशर के संभोग से अपना 'कन्याभाव' (कौमार्य) नष्ट होगा, ऐसी आशंका सत्यवती ने प्रकट की। फिर पराशर ने उसे आशीर्वाद दिया, 'संभोग' के बाद भी तुम कुमारी रहोगी, तुम्हारे शरीर से मछली की गंध (मत्स्यगंध) लुप्त हो जायेगी और एक नयी सुगंध तुम्हें प्राप्त होगी, एवं वह सुगंध एक योजन तक फैल जायेगी। इसी कारण लोग तुम्हें 'योजनगंधा' कहेंगे (म. आ. ५७.६३)। पश्चात् मनसोक्त एकांत का अनुभव लेने के लिये, पराशर ने सत्यवती के चारों ओर नीहार का पर्दा उत्पन्न किया।

पराशर को सत्यवती से व्यास नामक एक पुत्र हुआ। यमुना नदी के द्वीप में उसका जन्म होने के कारण, उसे 'द्वैपायन' व्यास कहते थे। (म. आ. ५७.६९; भा १.३)। सत्यवती को 'काली' नामांतर भी प्राप्त था। उस काली का पुत्र होने के कारण, व्यास को 'कृष्णद्वैपायन' उपाधि प्राप्त हो गयी (वायु. २.१०.८४)।

पार्गिटर के अनुसार, प्राचीन काल में 'पराशर शाक्त्य' एवं 'पराशर सागर' नामक दो व्यक्ति वसिष्ठ के कुल में उत्पन्न हुए। उनमें से 'पराशर शाक्त्य' वैदिक सुदास राजा के समकालीन वसिष्ठ ऋषि का पौत्र एवं शक्ति ऋषि का पुत्र था। दूसरा 'पराशर सागर' सगर वसिष्ठ का पुत्र, एवं कल्माषपाद तथा शंतनु राजा का समकालीन था। इन दो पराशरों में से 'पराशर शाक्त्य' ने राक्षससत्र किया था, एवं दूसरे पराशर ने सत्यवती से विवाह किया था (पार्गि. २१८)। किंतु पार्गिटर के इस तर्कपरंपरा के लिये विश्वसनीय आधार उपलब्ध नहीं हैं। पौराणिक वंशावली में भी एक 'शक्तिपुत्र पराशर' का ही केवल निर्देश प्राप्त है।

आदरणीय ऋषि—एक आदरणीय ऋषि के नाते, महाभारत में पराशर का निर्देश अनेक बार किया गया है। इसने जनक को कल्याणप्राप्ति के साधनों का उपदेश दिया था (म. अनु. २७९-२८७)। कालोपरांत वही उपदेश भीष्म ने युधिष्ठिर को बताया था। उसे ही 'पराशरगीता'

कहते है। इसने युधिष्ठिर को 'रुद्रमाहात्म्य' कथन किया था (म. अनु. ४९)। इसने अपने शिष्यों को विविध ज्ञानपूर्ण उपदेश दिये थे (म. अनु. ९६.२१)। पराशर द्वारा किये गये 'सावित्रीमंत्र' का वर्णन भी महाभारत में प्राप्त है (म. अनु. १५०)।

परिक्षित राजा के प्रायोपवेशन के समय, पराशर गंगानदी के किनारे गया था (भा. १.१९.९)। शरशय्या पर पड़े हुए भीष्म को देखने के लिये यह कुरुक्षेत्र गया था (म. शां. ४७.६६)। इंद्रसभा में उपस्थित ऋषियों में भी, पराशर एक था (म. स. ७.९)।

वेदव्यास—ब्रह्मा से ले, कर कृष्णद्वैपायन व्यास तक उत्पन्न हुए ३२ वेदव्यासों में से पराशर एक प्रमुख वेदव्यास था। जो ऋषिमुनि वैदिक संहिता का विभाजन या पुराणों को संक्षिप्त कर ले, उसे 'वेदव्यास' कहते थे। उन वेदव्यासों में ब्रह्मा, वसिष्ठ, शक्ति, पराशर एवं कृष्ण-द्वैपायन व्यास प्रमुख माने जाते है।

धर्मशास्त्रकार—पराशर अठारह स्मृतिकारों में से एक प्रमुख था। इसकी 'पराशरस्मृति' एवं उसके उपर आधारित 'बृहत्पराशर संहिता' धर्मशास्त्र के प्रमुख ग्रंथों में गिने जाते हैं। पराशर के नाम पर निम्नलिखित धर्मशास्त्रविषयक ग्रंथ उपलब्ध है :—

(१) **पराशरस्मृति**—यह स्मृति जीवानंद संग्रह (२.१–५२), एवं बॉम्बे संस्कृत सिरीज़ में उपलब्ध है। डॉ. काणे के अनुसार, इस स्मृति का रचनाकाल १ली शती एवं ५ वी शती के बीच का होगा। याज्ञवल्क्यस्मृति एवं गरुड पुराण में इस स्मृति के काफी उद्धरण एवं सारांश दिये गये हैं (याज्ञ. १. ४; गरुड. १. १०७)।

इस स्मृति में कुल बारह अध्याय, एवं ५९२ श्लोक है। इस स्मृति की रचना कलियुग में धर्म के रक्षण करने के हेतु से की गयी है। कृतयुग के लिये 'मनुस्मृति', त्रेतायुग के लिये 'गौतमस्मृति', द्वापारयुग के लिये 'शंखलिखितस्मृति', वैसे ही कलियुग के लिये 'पराशरस्मृति' की रचना की गयी (परा. १.२४)। मनुस्मृति गौतम स्मृति की अपेक्षा, पराशरस्मृति अधिक 'प्रगतिशील' प्रतीत होती है। उसमें ब्राह्मण व्यक्ति को शूद्र के घर भोजन करने की एवं विवाहित स्त्रियों को पुनर्विवाह करने की अनुमति दी गयी है। परचक्र, प्रवास, व्याधि एवं अन्य संकटों के समय, व्यक्ति ने सर्वप्रथम अपने शरीर का रक्षण करना आवश्यक है, उस समय धर्माधर्म की विशेष चिन्ता करने की जरूरत नहीं, ऐसा पराशर का कहना है (परा. ७)। पुत्रों के प्रकार बताते समय, 'औरस' पुत्रों के साथ, 'दत्तक, क्षेत्रज' एवं 'कृत्रिम' इन पुत्रों का निर्देश पराशर ने किया है (रा. ४.१४)। पति के मृत्यु के बाद, पत्नी का सती हो जाना आवश्यक है, ऐसा पराशर का कहना है (परा. ४)। क्षत्रिकों के आचार, कर्तव्य एवं प्रायश्चित के बारे में भी, पराशर ने महत्त्वपूर्ण विचार प्रगट किये हैं (परा. १.६–८)।

'पराशरस्मृति' में आचार्य मनु के मतों के उद्धरण अनेक बार लिये गये है (परा. १.४; ८)। सभी शास्त्रों के जाननेवाले एक आचार्य के रूप में इसने मनु का निर्देश किया है। मनु के साथ उशनस् (१२.४९), प्रजापति (४.३; १३), तथा शंख (४.१५) आदि धर्मशास्त्रकारों का भी, इसने निर्देश किया है। वेद वेदांग, एवं धर्मशास्त्र के अन्य ग्रंथो का निर्देश एवं उद्धरण 'पराशरस्मृति' में प्राप्त है। अपने स्मृति के बारहवें अध्याय में इसने कुछ वैदिक मंत्र दिये हैं। उनमें से कई ऋग्वेद में एवं कई शुक्लयजुर्वेद में प्राप्त हैं।

पराशर के राजधर्मविषयक मतों का उद्धरण कौटिल्य ने अपने 'अर्थशास्त्र' में अनेक बार कहा है। 'मिताक्षरा' 'अपरार्क', 'स्मृतिचंद्रिका', 'हेमाद्रि' आदि अनेक ग्रंथों में पराशर के उद्धरण लिये गये हैं। विश्वरूप ने भी इसका कई बार निर्देश किया है (याज्ञ. ३.१६; २५७)। इससे स्पष्ट है की ९ वें शती के पूर्वार्ध में 'पराशरस्मृति' एक 'प्रमाण ग्रंथ' माना जाता था।

(२) **बृहत्पराशरसंहिता**—यह स्मृति जीवानंद संग्रह में (२.५३–३०९) उपलब्ध है। 'पराशरस्मृति' के पुनर्संस्करण एवं परिवृद्धिकरण कर के इस ग्रंथ की रचना की गयी है। इस ग्रंथ में बारह अध्याय एवं ३३०० श्लोक हैं। पराशर परंपरा के सुव्रत नामक आचार्य ने इस ग्रंथ की रचना की है। यह ग्रंथ काफ़ी उत्तरकालीन है।

(३) **वृद्धपराशर स्मृति**—पराशर के इस स्वतंत्र स्मृतिग्रंथ का निर्देश अपरार्क (याज्ञ. २.३१८), एवं माधव (पराशर माधवीय. १.१.३२३०) ने किया है।

(४) **ज्योति पराशर**—इस स्मृतिग्रंथ का निर्देश हेमाद्रि ने अपने 'चतुर्वर्गचिंतामणी (३.२.४८) में एवं भट्टोजी दिक्षित ने अपने 'चतुर्विशांतिमत' में किया है।

(५) पराशर नितिशास्त्र—कौटिल्य ने इसका निर्देश किया है।

ज्योतिषशास्त्रकार--सिद्धांत, होरा एवं संहिता इन तीन स्कंधो से युक्त ज्योतिषशास्त्र के प्रवर्तक अठारह ऋषियों में पराशर प्रमुख था। ज्योतिषशास्त्रकार अठारह ऋषियों के नाम इस प्रकार है—सूर्य, पितामह, व्यास, वसिष्ठ, अत्रि, पराशर, कश्यप, नारद, गर्ग, मरीचि, मनु, अंगिरा, लोमश, पौलिश, च्यवन. यवन, भृगु एवं शौनक (कश्यपसंहिता)। अपने ज्योतिषशास्त्रीय ग्रंथों में, पराशर ने 'वसंत संपात' स्थिति का निर्देश किया है।

पराशर के ज्योतिषशास्त्रीय ग्रंथ इस प्रकार है:—

(१) पराशरसंहिता--इस ग्रंथ में, पराशर ने ज्योतिषशास्त्र से संबंधित निम्नलिखित पूर्वाचार्यों का निर्देश किया है:–ब्रह्मा मायासुण, वसिष्ठ, मांडव्य, वामदेव। पराशर के ज्योतिषशास्त्रीय शिष्यों में, मैत्रेय एवं कौशिक प्रमुख थे।

(२) बृहत्पाराशर होराशास्त्र—इस ग्रंथ में १२००० श्लोक है।

(३) लघुपाराशरी

(४) पाराशर्यकल्प—विमानविद्या पर महाग्रंथ, पराशरपरंपरा के किसी व्यासने लिखा है।

आयुर्वेदशास्त्रज्ञ—पराशर एक आयुर्वेदशास्त्रज्ञ भी था। यह अग्निवेश, भेल, काश्यप एवं खण्डकाप्य इन आयुर्वेदाचार्यों से समकालीन था। पराशर के नाम पर निम्नलिखित आयुर्वेदीय ग्रंथ प्राप्त हैं:--(१) पराशरतंत्र, (२) वृद्धपराशर, (३) हस्तिआयुर्वेद, (४) गोलक्षण, (५) वृक्षायुर्वेद।

पुराण इतिहासज्ञ—पराशर पुराण एवं इतिहासशास्त्र में भी पारंगत था। पुराण ग्रंथो में, 'विष्णु पुराण' सारस्वत ने पराशर को एवं पराशर ने अपने शिष्य मैत्रेयको बताया था। विष्णु पुराण में, पराशर को इतिहास एवं पुराणों में विज्ञ कहा गया है (विष्णु. १. १)। 'भागवत पुराण' भी सांख्यायन ऋषिद्वारा पराशर एवं बृहस्पति को सिखाया गया, एवं वह पराशर ने मैत्रेय को सिखाया (भा. ३.८)। पराशर के नाम पर 'पराशरोप पुराण' नामक एक पुराण ग्रंथ उपलब्ध है। माधवाचार्य ने उसका निर्देश किया है।

अन्य ग्रंथ--पराशर के नाम पर पराशर वास्तुशास्त्र' नामक एक वास्तुशास्त्र विषयक एक ग्रंथ भी उपलब्ध है। विश्वकर्मा ने उसका निर्देश किया है। 'पराशर केवलसार' तथा एक ग्रंथ और भी पराशर ने लिखा था।

पराशर वंश--पराशर के वंश की कुल छः उपशाखायें उपलब्ध है। उनके नाम:-१.गौरपराशर, २. नीलपराशर ३. कृष्णपराशर, ४. श्वेतपराशर, ५. श्यामपराशर, ६. धूम्रपराशर (मत्स्य. २००)।

(१) गौरपराशर--इस वंश के प्रमुख कुल:–कांडशय (कांडूशय), गोपालि, जैह्वाप (समय), भौमतापन (समतापन), वाहनप (वाहयौज)।

(२) नीलपराशर--इस वंश के प्रमुख कुल:--केतुजातेय, खातेय (ग), प्रपोहय (ग), वाह्यमय, हर्यश्वि।

(३) कृष्णपराशर--इस वंश के प्रमुख कुल:--कपिमुख (कपिश्रवस्) (ग), काकेयस्थ (कार्केय) (ग), कार्ष्णायन (ग), जपातय (ख्यातपायन) (ग), पुष्कर।

(४) श्वेतपराशर—इस वंश के प्रमुख कुल:—इषीकहस्त, उपय (ग), बालेय (ग), श्राविष्ठायन, स्वायष्ट (ग)।

(५) श्यामपराशर—इस वंश के प्रमुख कुल:—क्रोधनायन, क्षैमि, बादरि, वाटिका, स्तंब।

(६) धूम्रपराशर—इस वंश के प्रमुख कुल:—खल्यायन (ग), तंति (जर्ति), तैलेय, यूथप, एवाष्णायन।

उपनिर्दिष्ट वंशो में से, 'गौरपराशर' वंश के लोग वसिष्ठ, मित्रावरूण एवं कुंडिन इन तीन प्रवरों के हैं। बाकी सारे वंश के लोग पराशर, वसिष्ठ एवं शक्ति इन तीन प्रवरों के हैं।

२. एक ऋग्वेदी श्रुतर्षि, ऋत्विक एवं ब्रह्मचारी। यह व्यास की ऋक्शिष्यपरंपरा में से बाष्कल ऋषि का शिष्य था। इसके नाम से इसकी शाखा को 'पराशरी' नाम प्राप्त हुआ।

३. वायु एवं ब्रह्मांड के अनुसार, व्यास की सामशिष्यपरंपरा में से हिरण्यनाभ ऋषि का शिष्य। ब्रह्मांड में इसके नाम के लिये 'पाराशर्य' पाठभेद प्राप्त है।

४. व्यास की सामशिष्यपरंपरा में से कुथुमि ऋषि का शिष्य।

५. ब्रह्मांड के अनुसार, व्यास की यजुःशिष्यपरंपरा में से याज्ञवल्क्य का वाजसनेय शिष्य (व्यास देखिये)।

६. ऋषभ नामक शिवावतार का शिष्य।

७. धृतराष्ट्र के वंश में उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजय के सर्पसत्र में स्वाहा हो गया (म. आ. ५२.१७)।

८. एक ऋषि। इसने ऋतुपर्णपुत्र नल राजा का रक्षण किया था (भा. ९.९.१७; सर्वकर्मन् देखिये)।

परिकूट--विश्वामित्रकुल का एक गोत्रकार।

परिकृष्ट-- वायु और ब्रह्मांड के अनुसार, व्यास की सामशिष्यपरंपरा के हिरण्यनाभ ऋषि का शिष्य।

परिक्षित्—एक कुरुवंशीय वैदिक राजा। अथर्ववेद में इसके राज्य की समृद्धि एवं शान्ति का गौरवपूर्ण निर्देश किया गया है (अ. वे. २०.१२७.७-१०)। अथर्ववेद के जिन मंत्रों में इसकी प्रशस्ति है, उन्हें ब्राह्मण ग्रंथों में 'पारिक्षित्य मंत्र' कहा गया हैं (ऐ. ब्रा ६.३२. १०; कौ. ब्रा. ३०.५; गो. ब्रा. २.६.१२; सां. श्रौ. १२-१७; सां. ब्रा. ३०.५)।

वैदिक साहित्य में जनमेजय राजा का पैतृक नाम 'पारिक्षित' दिया गया हैं। वह उपाधि उसे वैदिक साहित्य में निर्दिष्ट 'परिक्षित्' राजा के पुत्र होने से मिली होगी।

महाकाव्य में इसे 'प्रतिश्रवस्' का पितामह एवं 'प्रतीप' का प्रपितामह कहा गया है। त्सिमर के अनुसार, अथर्ववेद में निर्दिष्ट 'प्रातिसुत्वन्' एवं 'प्रतिश्रवस्' दोनों एक ही थे (त्सिमर, आल्टिन्डिशे लेवेन, १३१)। इस राजा की प्रशंसा करने के लिये, अन्य देवताओं, विशेषतः अग्नि के साथ, इसकी स्तुति की गयी है।

२. (सू. इ.) अयोध्या का इक्ष्वाकुवंशीय राजा। मंडूकों के राजा आयु की कन्या सुशोभना से इसका विवाह हुआ था। विवाह के समय, सुशोभना ने इसे शर्त रखी थी, 'मेरे लिये पानी का दर्शन वर्ज्य है। इसलिये पानी का दर्शन होते ही, मैं तुम्हें छोड़ कर चली जाऊँगी।'

एक बार यह मृगया के लिये वन में गया था। वहाँ प्रसंगवशात् यह अपनी पत्नी के साथ एक बावड़ी के पास आया। वहाँ पानी का दर्शन होते ही, अपने शर्त के अनुसार, सुशोभना पानी में लुप्त हो गयी। फिर क्रुद्ध हो कर, परिक्षित् ने अपने राज्य में मंडूकवध का सत्र शुरू किया उस सत्र से घबरा कर, मंडूकराज आयु इसकी शरण में आया, एवं इसकी खोई हुई पत्नी उसने इसे वापस दी। पश्चात् सुशोभना से इसे शल, दल, तथा बल नामक तीन पुत्र हुये (म. व. १९०)।

३. (सो. कुरु) एक कुरुवंशीय राजा, एवं कुरु राजा का पौत्र। यह कुरु आविक्षित के आठ पुत्रों में से ज्येष्ठ था। इसे अश्ववत् तथा अभिष्वत् नामांतर भी प्राप्त थे (म. आ. ८९.४५-४६)। इसके भाइयों के नाम इस प्रकार थे:--शबलाश्व, आदिराज, विराज, शाल्मलि, उच्चैःश्रवा, भंगकार और जितारि।

इसके माता का नाम बाहिनी था। इसे कुल सात पुत्र थे। उनके नाम--१. कक्षसेन, २. उग्रसेन ३. चित्रसेन, ४. इंद्रसेन, ५. सुषेण, ६. भीमसेन, ७. जनमेजय (म. आ. ८९.४६-४८)। वे सारे पुत्र धर्म एवं अर्थ के ज्ञाता थे।

४. (सो. कुरु.) एक कुरुवंशीय राजा। यह कुरु राजा अरुग्वत् (अनश्वत्) एवं मागधी अमृता का पुत्र था। इसकी पत्नी का नाम बाहुदा सुयशा था। उससे इसे भीमसेन नामक पुत्र हुआ था। कुरु राजा से लेकर शंतनु तक का इसका वंशक्रम इस प्रकार है:--कुरु-विडूरथ अरुग्वत्-परिक्षित्-भीमसेन -प्रतीप-शंतनु (म. आ. ९०.४३-४८)।

५. एक कुरुवंशीय सम्राट्। यह अर्जुन का पौत्र तथा अभिमन्यु एवं उत्तरा का पुत्र था।

भारतीय युद्ध के पश्चात्, हस्तिनापुर के राजगद्दी पर बैठनेवाला पहला 'कुरुवंशीय' सम्राट परिक्षित है। राजधर्म एवं अन्य व्यक्तिगुणों से यह परिपूर्ण था। किंतु इसकी राज्य की समृद्धि एवं इसने अन्य देशों पर किये आक्रमणों की जो कथाएँ क्रमशः अथर्ववेद एवं पुराणों में दी गयी हैं, वे इसकी न हो कर, संभवतः किसी पूर्वकालीन 'परिक्षित्' राजा की होंगी (परिक्षित् १. देखिये)।

महाभारत के अनुसार, परिक्षित् का राज्य सरस्वती एवं गंगा नदी के प्रदेश में स्थित था। आधुनिक थानेश्वर, देहली एवं गंगा नदी के दोआब का उपरिला प्रदेश उसमें समाविष्ट था (रॉयचौधरी-पृ. २०)। कलियुग का प्रारंभ, एवं नागराज तक्षक के हाथों इस की मृत्यु, हुयी थी ये परिक्षित् के राज्यकाल की दो प्रमुख घटनाएँ थी।

जन्म— अश्वत्थामा के द्वारा छोड़े गये ब्रह्मास्त्र के कारण, उत्तरा के गर्भ में स्थित परिक्षित् झुलसने लगा। फिर उत्तरा ने भगवान् विष्णु को पुकारा। श्रीविष्णु ने इस गर्भ की रक्षा की। इसलिये इसका नाम 'विष्णुरात' रखा गया।

जन्म लेने के उपरांत, यह गर्भकाल में अपनी रक्षा करनेवाले श्रीविष्णु को इधरउधर ढूँढने लगा। इस कारण, इसे 'परीक्षित्' (परि+ईक्ष) नाम प्राप्त हुआ (भा. १. १२.३०)। 'परिक्षित्' नाम की यह व्युत्पत्ति कल्पनारम्य, प्रतीत होती है, क्यों की, इस व्युत्पत्ति के अनुसार, 'परिक्षित्'

का नाम 'परीक्षित्' होना चाहिये। किंतु महाभारत में सर्वत्र इसका नाम 'परिक्षित्' दिया गया है। महाभातर के अनुसार, कुरुवंश 'परिक्षीण' होने के पश्चात् इसका जन्म हुआ, इस कारण 'परिक्षित्' नाम प्राप्त हुआ (म. आश्व. ७०.१०)

श्रीकृष्ण के मृत्यु के पश्चात्, युधिष्ठिर ने छत्तीस वर्षों तक राज्य किया। पश्चात् युधिष्ठिर ने राज्यत्याग कर, इसे राजगद्दी पर बैठाया गया (म. महा. १.९) बाद में द्रौपदी के सहित सारे पाण्डव महाप्रस्थान के लिए चले गये। राज्याभिषेक के समय यह छत्तीस वर्ष का था। इसकी पत्नी भद्रवती थी। बंबई आवृत्ति में इसका नाम माद्रवती प्राप्त है। भागवत में लिखा है कि, इसके मातुल की कन्या इरावती इसकी पत्नी थी। उससे इसे जनमेजय, श्रुतसेन, उग्रसेन तथा भीमसेन नामक चार पुत्र हुयें (म. आ. ९०-९३; आश्व. ६८; भा. १.१२.१६; ९.२२.३५)।

राज्य में कलिप्रवेश—कृपाचार्य को ऋत्विज बना कर, इसने भागीरथी के तट पर तीन अश्वमेधयज्ञ किये। इसके यज्ञ में देव प्रत्यक्ष रूप से अपना हविर्भाव लेने आये थे। जब यह कुरुजांगल देश में राज्य कर था, इसे ज्ञात हुआ कि कलि ने राज्य में प्रवेश लिया है। तत्काल यह अपनी चतुरंगी सेना ले कर निकल पड़ा। भारत, केतुमाल, उत्तरकुरु, भद्राश्व आदि खण्ड जीत कर, इसने वहाँ के राजाओं से करभार प्राप्त किया।

एक बार इसने सरस्वती के किनारे गोरूप धारी पृथ्वी, तथा तीन पैरोंवाले वृक्षभरूपधारी धर्म का संवाद सुना। इस संबाद से इसे पता चला कि, श्रीकृष्ण के निजधाम चले जाने के कारण, कलि ने इस पृथ्वी में प्रवेश पा लिया है, और शूद्ररूप धारण कर वह सब को दुःख देता हुआ गाय बैलों को मार रहा है। इस से खिन्न हो कर कलि को समाप्त करने के लिये यह उद्यत हो उठा। कलि इसकी शरण में आया। इसके राज्य से बाहर जाने की आज्ञा स्वीकार कर उसने राजा से पूछा, 'मेरे निवास के लिये कौन कौन स्थान हैं?' तब जुआ, मद्य, व्यभिचार, हिंसा, तथा स्वर्ण नामक पाँच स्थान, राजा ने कलि के रहने के लिये नियत किये। इससे धर्म तथा पृथ्वी को भी संतोष हुआ (भा. १.१६.१७)।

शाप—एक बार जब यह मृगया के लिये अरण्य में गया था, तब अत्यधिक प्यासा हो कर पीने के लिए जल ढूँढ़ने लगा। इधरउधर जल ढूँढने के उपरांत, यह शमीक ऋषि के आश्रय गया। शमीक उस समय ध्यान में निमग्न था, अतएव जल के लिये की गई याचना सुन न सका। क्रोधित हो कर, धनुष की नोक से एक मृत सर्प उठा कर, इसने शमीक ऋषि के गले में डाल दिया, और अपने नगर वापस लौट आया (म. आ. ३६.१७-२१)। पास ही खेल रहे शमीक ऋषि के शृंगी नामक पुत्र को यह ज्ञात हुआ। उसने क्रोधित हो कर इसे शाप दिया, मेरे पिता के कंधे पर मृत सर्प डाल कर जिसने उसका अपमान किया है, उस परिक्षित् राजा को आज से सातवें दिन मेरे द्वारा प्रेरित नागराज तक्षक दंश करेगा'। इस कथा में से शमीक ऋषि के पुत्र का नाम, कई जगह 'गविजात' दिया गया है।

बाद में, शमीक को अपने पुत्र का शापवचन ज्ञात हुआ। उसने अपने शिष्य गौरमुख के द्वारा यह शाप परिक्षित को सूचित कराया, और पुत्र की भर्त्सना की (म. आ. ३८.१३-२८)।

शाप का पता चलते ही, परिक्षित् को अपने कृतकर्म का पश्चाताप हुआ। अपनी सुरक्षा के लिये, इसने सात मंजिलवाला स्तम्भयुक्त महल बनवाया, एवं औषधि, मंत्र आदि जाननेवालों मांत्रिको के समेत यह वहाँ रहने लगा। भागवत में लिखा है की, शाप सुनते ही परिक्षित् को वैराग्य उत्पन्न हो गया, और यह गंगा के किनारे प्रायोपवेशन के विचार से ईश्वर का ध्यान करने लगा। वहाँ अत्रि, अरिष्टनेमि इत्यादि कई ऋषि आये।

बाद में इसने अपने पुत्र जनमेजय का राज्याभिषेक किया। महाभारत में दिया गया है कि, परिक्षित् की मृत्यु के बाद जनमेजय का राज्याभिषेक हुआ। ऋषियों के बीच बातचीत चल ही रही थी कि सोलहवर्षीय शुकाचार्य ऋषि सहज भाव से उस स्थान पर उपस्थित हुआ। सब ने उनका स्वागत किया। परिक्षित् ने भी उसे उच्चासन दिया तथा श्रद्धा के साथ उनकी पूजा की। इसने उनसे मरणोन्मुख पुरुष के निश्चित कर्तव्य तथा सिद्धि के साधन पूछे। इसके सिवाय और भी प्रश्न किये। शुकाचार्य ने इसके सारे प्रश्नों के यथायोग्य उत्तर दिये (भा. १.१७.१९; २.८)। इस प्रकार समग्र 'भागवत' पुराण शुकाचार्य के द्वारा श्रवण कर, यह पूर्ण ज्ञानी बना। इसका तक्षक दंश का भय नष्ट हुआ, तथा शुकाचार्य भी वहाँ से चला गया।

पूर्व में दिये गये शाप के अनुसार, ऋषिपुत्र शृंगी के द्वारा सातवें दिन भेजा गया तक्षक, परिक्षित् को दंश करने जा रहा था। इसी समय मार्ग में काश्यप नामक

मांत्रिक, राजा का विष उतार कर, द्रव्य प्राप्ति की इच्छा से राजा के पास जा रहा था। उसे विपुल धनराशि दे कर तक्षक ने वापस भेज दिया (काश्यप २. देखिये)।

तक्षकदंश—तक्षक ने कुछ नागों को फल, मूल, दर्भ, उदक आदि देकर तापस वेश से परिक्षित् के पास भेजा। तक्षक स्वयं अतिसूक्ष्म जन्तु का रूप धारण कर फलों में प्रविष्ट हुआ। तापसवेषधारी नाग राजद्वार के पास आकर कहने लगे, 'हम राजा को अथर्वण मंत्रों से आशीर्वाद देकर अभिषेक करने के लिये, तथा राजा को उत्कृष्ट फल देने के लिये आये हैं।'

परिक्षित् ने उनके फल स्वीकार किये। वे फल सुहृदों को खाने के लिये दे कर, इसने एक बड़ा सा फल स्वयं खाने के लिये फोड़ा। उसमें से एक सूक्ष्म जन्तु बाहर निकला। उसका वर्ण लाल तथा आखें काली थी। उसे देख कर, परिक्षित् ने बड़े ही व्यंग्य से मंत्रियों से कहा, 'आज सातवाँ दिन है, एवं सूर्य अस्ताचल को जा रहा है। फिर भी नागराज तक्षक से मुझे भय प्राप्त नहीं हुआ। इसलिये कहीं यह जन्तु ही तक्षक न बन जाये, तथा मुझे डस कर मुनिवाक्य सिद्ध न कर दे'।

इतना कह कर परिक्षित् ने उस जन्तु को अपनी गर्दन पर धारण किया। तत्काल तक्षक ने भयंकर स्वरूप धारण कर इसके शरीर से लिपट गया, तथा अपने मुख से निकलनेवाली भयंकर विषमय ज्वालाओं से परिक्षित् के शरीर को दग्ध करने लगा। पश्चात् तक्षक आकाशमार्ग से चला गया (म. आ. ३६-४०; ४५-४७; दे. भा. २. ८-१०)।

भागवत के अनुसार, ब्राह्मणरूप धारण कर, तक्षक ने परिक्षित् के महल में प्रविष्ट पाया, तथा परिक्षित को दंश किया। जिससे परिक्षित् की मृत्यु हो गयी (भा. १२.६)। मृत्यु के समय इसकी आयु छियान्नवे वर्ष की थी। इसने कुल साठ वर्षों तक राज्य किया (दे. भा. २.८)।

परिक्षित्कथा का अन्वयार्थ—महाभारत एवं पुराणों में प्राप्त 'परिक्षित्वध' की उपनिर्दिष्ट कथा ऐतिहासिक दृष्टि से यथातथ्य प्रतीत होती है। परिक्षित् के राज्यकाल में, गांधार देश में नाग लोगों का सामर्थ्य काफ़ी बढ़ गया था। भारतीययुद्ध के कारण, हस्तिनापुर के पौरव राज्य क्षीण एवं बलहीन बन गया था। उसकी इस दुर्बल अवस्था का फायदा उठा कर, नागों के राजा तक्षक ने हस्तिनापुर पर आक्रमण किया। तक्षक के इस आक्रमण का प्रतिकार परिक्षित् न कर सका, एवं तक्षक के हाथों इसकी मृत्यु हो गयी।

पौराणिककाल—परीक्षित् के राज्यारोहण से ले कर, मगध देश के बृहद्रथ राजवंश के समाप्ति तक का काल, प्राचीन भारतीय इतिहास में 'पौराणिककाल' माना जाता है। यह कालखंड भारतीययुद्ध (१४०० ई. पू.) से शुरु होता है, एवं मगध देश में 'नंद राजवंश' के उदयकाल (४०० ई. पू.) से समाप्त होता है। इस काल में उत्तर एवं पूर्वभारत में उत्पन्न हुयें पौरव, ऐक्ष्वाकु, एवं मागध राजाओं की विस्तृत जानकारी पुराणों में मिलती है। उन राजाओं के समकालीन पंचाल, काशी, हैहय, कलिंग, अश्मक, मैथिल, शूरसेन एवं वीतहोत्र राजवंशों की प्रासंगिक जानकारी पुराणों में दी गयी है। कहीं-कहीं तो, विशिष्ट राजवंश में पैदा हुए राजाओं की केवल संख्या ही पुराणों में प्राप्त है। पुराणो में प्राप्त इस 'कालखंड' की जानकारी, आधुनिक उत्तर प्रदेश एवं दक्षिण बिहार से मर्यादित है।

पुराणों के अनुसार, 'परिक्षित्जन्म' से लेकर मगध देश के महापद्म नंद के अभिषेक तक का कालावधि, एक हजार पाँचसौ वर्षों का दिया गया है (मत्स्य. २७३.३६)। किंतु 'विष्णुपुराण' में 'ज्ञेय' के बदले 'शतं' पाठ मान्य कर, यही अवधि एक हजार एक सौ पंद्रह वर्षों का निश्चित किया गया है (विष्णु. ४.२४.३२)।

७. एक प्राचीन नरेश, जो कुरुवंशी अभिमन्युपुत्र से भिन्न था। इसके पुत्र जनमेजय की ब्रह्महत्या का निवारण इन्द्रोत मुनि ने किया था (म. शां. १४७-१४८)।

परिघ—(सो. क्रोष्टु.) एक राजा। मत्स्य तथा वायु के अनुसार, यह रुक्मकवच का पुत्र था। पद्म के अनुसार, यह रुक्मकवच का पौत्र, एवं परावृत् का पुत्र था (पद्म. सृ. १३)। इसे पालित तथा पुरुजित् नामांतर प्राप्त थे।

२. अंशद्वारा स्कंद को दिये गये पाँच पार्षदों में से एक। अन्य चार पार्षदों के नाम इस प्रकार थेः—वट, भीम, दहति, एवं दहन।

३. बिडालोपाख्यान में वर्णित व्याध का नाम (म. शां. १३६-११०)।

परिप्लव—(सो. कुरु. भविष्य.) एक राजा। विष्णु के अनुसार, यह सुखीबल राजा का पुत्र था। किन्तु भागवत में इसे सुखीनल का पुत्र कहा गया है। इसके नाम के

लिये प्रजानि, परिष्णाव, एवं परिप्लुत पाठभेद भी प्राप्त है (सुनय देखिये)।

परिप्लुत—परिप्लव का नामांतर।

परिबर्ह—गरुड के पुत्रों में से एक।

परिमति--भव्य देवों में से एक।

परिव्याध—पश्चिम दिशा में रहनेवाला एक महर्षि (म. शां. २०१.२९)।

परिश्रवस्--कुरुवंशीय राजा प्रतीप का नामान्तर (प्रतीप देखिये)।

परिश्रुत—स्कंद के दो सैनिकों के नाम (म. श. ४४. ५५–५६)।

परिष्णव--(सो. कुरु. भविष्य.) एक राजा। मत्स्य के अनुसार यह सुखीनल का पुत्र था। परिप्लव इसीका ही नामांतर था (परिप्लव देखिये)।

परिष्वंग--एक ऋषि। यह स्वायंभुवमन्वंतर के मरीचि ऋषि को, ऊर्णा नामक स्त्री से उत्पन्न, छः पुत्रों में से एक था। इसके अन्य पाँच भाइयों के नाम इस प्रकार थेः--स्मर, उद्गीथ, क्षुद्रभृत्, अग्निष्वात्त, एवं घृणी (भा. १०.८५; दे. भा. ४.२२)। अगले जन्म में इसने कृष्ण के छः बंधुओं में से एक को पुनः जन्म लिया, एवं कंस के हाथों यह मारा गया (भा. १०.८५.५१)।

परिहर—चित्रकूट के पास स्थित कलिंजर नगर का एक राजा। यह अथर्वपरायण एवं बौद्ध लोगों पर विजय पानेवाला था। इसने बौद्ध लोगों की हिंसा कर, उन पर विजय पाया था (भवि. प्रति. ११.७)। इसने बारह वर्षों तक राज्य किया (भवि. प्रति ४.४)।

परुच्छेप दैवोदासी-एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. १. १२७–१३९)। सूक्तद्रष्टा नाते से ब्राह्मण ग्रंथों में भी इसका उल्लेख प्राप्त है (ऐ. ब्रा. ५. १२–१३; सां. ब्रा. २३.४; कौ. ब्रा. २३.४.५)। कुछ शब्दों का बार–बार उपयोग करने की इसकी आदत थी (नि. १०.४२)।

नृमेध तथा परुच्छेप ऋषियों में मंत्रसामर्थ्य के बारे में स्पर्धा हुई थी। उसमें नृमेध ने गीली लकड़ी से धुआँ उत्पन्न किया। फिर परुच्छेप ने बिना लकड़ी से अग्नि उत्पन्न कर, नृमेध को हराया (तै. सं. २.५.८.३)।

परुष—खर राक्षस के १२ अमात्यों में से एक।

परोक्ष—(सो. अनु.) भागवत के अनुसार, अनु राजा के तीन पुत्रों में से कनिष्ठ (परपक्ष देखिये)।

पर्जन्य—एक देवता। ऋग्वेद में इस देवता का वर्णन तीन सूक्तों में आया है। इसे वृषभ (ऋ. ५.८३.१; अ. वे. ४.१५.१), वशा (ऋ. ७.१०१.३), पिता (ऋ. ९.८२.३; अ. वे. ४.१५.१२), पृथ्वी की माता, एवं पर्जन्य का पिता (अ. वे. १०.१०.६) कहा गया है। यह वशा की पत्नी कही गयी है। इसमें एवं इंद्रदेवता में काफी साम्य है (ऋ. ८.३.१)।

२. रैवत मन्वंतर का एक सप्तर्षि।

३. फाल्गुन माह में भ्रमण करनेवाला सूर्य (भा. १२. ११.४०)। इसके साथ निम्नलिखित लोग रहते हैं :— (१) ऋतु नामक यक्ष, (२) वर्चस् नामक राक्षस, (३) भरद्वाज नामक ऋषि, (४) विश्वा नामक अप्सरा, (५) सेनजित् नामक गंधर्व, तथा (६) ऐरावत नामक नाग।

४. कश्यप एवं मुनि के पुत्रों में से एक देवगंधर्व (म. आ. ५९.४३)। पाठभेद 'प्रद्युम्न'। यह अर्जुन के जन्मोत्सव में उपस्थित था (म. आ. ११४.४५)।

पर्णजंघ--विश्वामित्र के पुत्रों में एक।

पर्णय--एक दानव। इंद्र ने अतिथिग्व राजा के लिये इसका वध किया (ऋ. १.५३.८; १०.४८.८)।

पर्णवि--अत्रिकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

पर्णा--हिमवत् को मेना से उत्पन्न तीन कन्याओं में से एक। 'एकपाटला' इसीका ही नामांतर था (एकपाटला देखिये)।

पर्णागारि--वसिष्ठकुल का एक गोत्रकार (पन्नगारि ३. देखिये)।

पर्णाद—एक विदर्भनिवासी ब्राह्मण। इसे दमयंती ने नल राजा के शोधार्थ अयोध्या भेजा था। बाहुक नामधारी नल का समाचार इसने दमयंती को बताया। फिर दमयंती ने इसे पुरस्कार दिया (म. व. ६८.१)।

२. एक ऋषि। विदर्भवासी सत्य नामक ब्राह्मण के यज्ञ में, इसने होतृ का काम किया था (म. शां. २६४. ८ पाठ)।

३. युधिष्ठिर की सभा का एक ऋषि (म. स. ४.११)। हस्तिनापुर जाते समय, मार्ग में श्रीकृष्ण से इसकी भेंट हुयी थी (म. उ. ३८८*)।

पर्णाशा—वरुण की सभा में उपस्थित एक नदी (म. स. १०३*)। इसने वरुण के द्वारा श्रुतायुध नामक पुत्र को जन्म दिया। वरुण ने उस पुत्र को अवध्य होने का वर दिया था (म. द्रो. ६७.४४–५८)।

पर्णिन्--वायु के अनुसार, व्यास की यजुः शिष्यपरंपरा के याज्ञवल्क्य का वाजसनेय शिष्य (व्यास देखिये)।

पर्णिनी--एक अप्सरा (ब्रह्मांड. ३.७.१८-२४)।

पर्युषित--एक पापी पुरुष। प्रेतयोनि में गये इस मनुष्य का पृथु नामक ब्राह्मण ने उद्धार किया (पद्म. सृ. ३२)।

पर्वण--रावण के पक्ष के राक्षसों एवं पिशाचों का एक दल (म. व. २६९.२)।

पर्वत--एक देवर्षि। यह कश्यप ऋषि का मानसपुत्र (ब्रह्मांड. ३.८.८६), एवं नारद महर्षि का भतीजा था (म. स. ४.१३; ७.९; १०.२७; शां. ३०.२८)। महाभारत में अनेक स्थलों पर, यह एवं नारद का साथ साथ निर्देश प्राप्त है। इन दोनों को गंधर्व एवं देवर्षि माना जाता है।

यह जनमेजय के सर्पसत्र का सदस्य था (म. आ. ४८. ८)। यह युधिष्ठिर की सभा में (म. स. ४.१३), इंद्रसभा में (म. स. ७.९), एवं कुबेरसभा में (म. स. १०.२६) विराजता था। यह शरशय्या पर पड़े हुये भीष्म के दर्शन के लिये गया था (भा. १.९.६)। पांडवों के वनवासकाल में, यह उन्हें मिलने 'काम्यकवन' गया था, एवं शुद्धभाव से तीर्थयात्रा करने की आज्ञा उन्हें दी थी (म. व. ९१.१७-२५)।

एक बार सृंजय राजा की कन्या दमयंती से, नारद एवं यह दोनों एकसाथ प्रेम करने लगे। पश्चात् दमयंती एवं नारद का विवाह होने पर, इसने क्रुद्ध हो कर नारद को शाप दिया, 'तुम वानरमुख बनोंगे' (म. शां. ३०.२४; नारद देखिये)।

ब्रह्मसरोवर के तट से, अगस्त्य ऋषि के कमलों की चोरी होने पर, अन्य ऋषियों के साथ इसने भी शपथ खायी थी (म. अनु. १४३.३४)।

पर्वत काण्व--एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. ८.१२; ९.१०४; १०५)। नारद के साथ इसका कई बार उल्लेख आया है (ऐ. ब्रा. ८.२१; ७.१३; ३४; सां. श्रौ. १५. १७.४)। इसे देव भी माना गया है।

पर्वतायु--बालधि ऋषि का पुत्र। 'मेधावी' इसीका नामांतर था।

पर्वतेश्वर--विंध्य देश का राजा। प्रजा को अत्यधिक त्रस्त करने, तथा द्रव्य का अति लोभ करने के कारण, यम ने इसे घोर नरक में भेजा। बाद में इसे वानर का जन्म प्राप्त हुआ। अपहार के कारण, इसका पुरोहित सारसपक्षी बना। एक बार यह वानर उस पक्षी को पकड़ने के लिये गया। तब सारस पक्षी ने गतजन्म बता कर कहा, 'बाद के जन्म में हम दोनों हंस होनेवाले हैं, तथा उसके बाद हमें मनुष्य देह प्राप्त होगी'। उसके कथनानुसार इसे फिर मनुष्यजन्म प्राप्त हुआ (पद्म. उ. १२९)।

पर्शु--पाणिनि के अनुसार एक आयुधजीवि संघ (पा. सू. ५.३.११७)। ऋग्वेद में इन लोगों का निर्देश पृथु लोगों के साथ 'पृथु-पर्शव' नाम से प्राप्त है (ऋ. ७ ८३.१)। इन दो लोगों ने सुदास राजाको मदद दी, एवं मिल कर कुरुश्रवण राजा को पराजित किया (ऋ. १०. ३३.२)। लुडविग के अनुसार, आधुनिक मध्य एशिया में रहनेवाले 'पर्थियन' एवं पर्शियन लोग ही, संभवतः प्राचीन 'पृथुपार्शव' मानवसंघ रहा होगा (लुडविग, ऋग्वेद अनुवाद)।

प्राचीन पर्शिया के लोगों के साथ वैदिक आर्यों का घनिष्ठ संबंध था। उस ऐतिहासिक संबंध को पृथु एवं पर्शुओं के निर्देश से पुष्टि मिलती है। भाषाशास्त्रीय दृष्टि से, वैदिक 'पर्शु' एवं प्राचीन ईरानी 'पार्स' तथा बाबेरु भाषा में प्राप्त 'परसु' (*बहिस्तून शिलालेख*) ये तीन ही शब्दों में काफ़ी साम्यता है।

'पर्शु' संघ का हरएक सदस्य 'पार्शव' कहलाता था। पाणिनि के समय, ये लोग भारत के दक्षिणपश्चिम के प्रदेश में रहते थे। उत्तर भारत में रहनेवाले 'पार्थोइ' लोगों का निर्देश 'पेरिप्लस' में प्राप्त है।

२. ऋग्वेद के दानस्तुति में निर्दिष्ट एक राजा (ऋ. ८.६.४६)। यह संभवतः 'पर्शु' मानवसंघ का राजा रहा होगा। वत्स काण्व ऋषि का प्रतिपालक 'तिरिंदर पारशव्य' नामक एक राजा था (सां. श्रौ. १६.११.२०) वह संभवतः इसी 'पर्शु' राजा का पुत्र होगा।

पर्शु मानवी--पर्शु लोगों की एक राजकुमारी (ऋ. १०.८६.२३)। कात्यायन के अनुसार, यह पर्शु लोगों में से एक स्त्री का नाम था (पा. सू. ४.१.१७७ वार्तिक २)। इसे कुल बीस पुत्र हुये थे।

सायण के अनुसार, यह एक मृगी का नाम था।

पलस्तिजमदग्नि--एक ऋषि इसने ससर्परीविद्या सूर्य से ला कर विश्वामित्र को दी। सायण इसका अर्थ दीर्घायुषी जमदग्नि लेते हैं (ऋ. ३.५३.१६)।

पलांडु--एक यजुर्वेदी श्रुतर्षि।

पलाला--सप्तमाताओं में से एक (म. व. २१७.९)।

पलिगु--इसका उल्लेख हिरण्यकेशी शाखा के पितृतर्पण में है (स. गृ. २०,८.२०)।

पलित--बिडालोपाख्यान में वर्णित एक चूहे का नाम (म. शां. १३६.२१)। इसका लोमश नामक बिलाव के साथ संवाद हुआ था (म. शां. १३६.३४-१९८)।

पलिता--स्कंद की अनुचरी मातृका। पाठभेद-'पालिता'' 'पाणिता' 'प्राणिता' (म. श. ४५.३)।

पलिगुप्त लौहित्य--एक ऋषि। यह श्याम जयंत लौहित्य ऋषि का शिष्य था (जै. उ. ब्रा. ३.४२.१)। प्राचीन वाङ्मय में पलि शब्द प्राप्त नहीं है।

पवन--उत्तममनु के पुत्रों में से एक।

पवमान--अग्नि के स्वाहा से उत्पन्न तीन पुत्रों में से एक। इसका पुत्र हव्यवाह। यह अरणी से उत्पन्न गार्हपत्य अग्नि का अंश था तथा गृहस्थों को पूज्य था (मत्स्य. ५१.३)।

२. (स्वा. उत्तान.) विजिताश्व राजा के तीन पुत्रों में से दूसरा पुत्र। यह पूर्वजन्म में अग्नि था। वसिष्ठ के शाप के कारण इसे मनुष्यजन्म प्राप्त हुआ था (भा. ४.२४.४)।

३. (स्वा. प्रिय.) मेधातिथि के सात पुत्रों में से तीसरा पुत्र। इसका खंड इसी के नाम से प्रसिद्ध है (भा. ५.२०.२५)।

पवित्र--एक ब्राह्मण। इसकी स्त्री बहुला। अनपत्य-पति ब्राह्मण इसका मित्र था। इन दोनों के पूछने पर, लोमश ने इन्हें अतिथिधर्म बताया था।

एक बार पवित्र ने तीक्ष्ण तथा नुकीले हथियार से एक चूहे को मारा। उस चूहेको मरते हुए देख कर इसने उस पर तुलसी के पत्ते रखे, तथा नारायण का नामोच्चार करने लगा। तब उस चूहे का उद्धार हुआ (पद्म. क्रि. २५)।

२. भौत्यमन्वन्तर का देवगण।

३. इंद्रसावर्णि मन्वन्तर का देव।

पवित्र आंगिरस--एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. ९. ६७.२२ ३२; ७३; ८३)।

पवित्रपाणि--एक ब्रह्मर्षि (म. स. ४.१३; ७.८२)। यह युधिष्ठिर की सभा एवं इंद्रसभा का सदस्य था (म. स. ४.१५; ७.८२*)।

पवीरु--एक राजा श्रुष्टिगु ने उल्लेख किया है कि इंद्र की कृपा से इसे संपत्ति प्राप्त हुई (ऋ. ८.५१.९)। 'आयुधवान्' इस अर्थ का इसे विशेषण भी माना है (वा. सं. ३३. ८२)।

पशु--सविता नामक पाँचवें आदित्य के पृश्नि नामक स्त्री से उत्पन्न आठ संतानों में से एक (भा. ६.१८.१)।

पशुदा--स्कन्द की एक अनुचरी मातृका (म. श. ४५.२७)।

पशुमत्--वृष्पण्य देखिये।

पशुसख--सप्तर्षियों का सेवक, एक शूद्र। यह पशुओं का मित्र था, इस कारण इसे यह नाम प्राप्त हुआ (म. अनु. १४२.४३)। इसकी स्त्री का नाम गंडा था (म. अनु. १४१.५)। वसिष्ठ ऋषि के कमल की चोरी के समय, इसे भी शपथ खानी पड़ी थी (म. अनु. १४३.४०)।

पशुहन--वृषा का पुत्र।

पष्ठवाह--एक वैदिक सामद्रष्टा (पं. ब्रा. १२.५. ११)।

पह्लव--हरिश्चंद्र के कुल से गर राजा का राज्य छीन लेनेवाले राजाओं में से एक। इसे गर के पुत्र सगर ने जीत कर, दाढ़ी रखने की शर्त पर छोड़ दिया (पद्म. ३.२०)।

२. एक म्लेंछ जाति, जो 'नंदिनी' नामक गौ की पूँछ से उत्पन्न हुई थी (म. आ. १६५.३५)। नकुल ने इस जाति के लोगों को जीता था (म. स. २९.१५)। ये लोग युधिष्ठिर के राजसूययज्ञ में उपहार लाये थे (म. स. ४८.१४)। ये मान्धाता के राज्य में निवास करते थे (म. शां. ६५.१३-१४)।

पाक--इंद्र के द्वारा मारा गया एक असुर। इसीके कारण इंद्र का नाम 'पाकशासन' हुआ (भा. ७.२.४; ८. ११. २२; म. शां. ९९.४८)।

पाकस्थामन् कौरयाण--एक ऋषि। मेधातिथि काण्व ने इसके उदारतापूर्ण दान का गौरव गान किया था (ऋ. ८.३.२१-२४)।

पाचि--(सो. पुरु.) एक राजा। मत्स्य के अनुसार, यह नहुष राजा के सात पुत्रों में से एक था (मत्स्य. २४.५०)।

पांचजनी--दक्षपत्नी असिक्नी का नामांतर (असिक्नी देखिये)।

पांचजन्य--पाँच ऋषियों के अंश से उत्पन्न एक अग्नि। इसे 'तपस्' नामांतर भी प्राप्त था (म. व. २१०.५)।

पांचाल--प्राचीन उत्तर भारत का एक लोकसमूह। इन्हीं लोगों का निर्देश वेदों में 'क्रिवि' नाम से, एवं

ब्राह्मणग्रंथों में 'पांचाल' नाम से किया हुआ प्रतीत होता है (पंचाल देखिये)।

इन लोगों के देश के, 'उत्तर पांचाल' एवं 'दक्षिण पांचाल' ऐसे दो विभाग, गंगा नदी के द्वारा किये गये थे। उनमें से उत्तर पांचाल देश पर 'नील' राजवंश का राज्य था, एवं दक्षिण पांचाल पर 'अजमीढ' वंश का। इसी देश का पश्चिम-पूर्व प्रदेश 'प्राच्य पांचाल' नाम से सुविख्यात था (संहितोपनिषद् ब्राह्मण २)। महाभारत काल में दक्षिण पांचाल देश का राजा द्रुपद था, एवं उसकी कन्या द्रौपदी थी। पांचाल देश की होने के कारण उसे 'पांचाली' नामांतर प्राप्त था (म. आ.)।

२. दुर्मुख एवं शोण राजाओं का नामांतर (ऐ. ब्रा. ८.२३; श. ब्रा. १३.५.४.७)। पंचाल जाति के लोगों का राजा होने के कारण, उन्हें यह नाम प्राप्त हुआ था।

३. एक ऋषि। इसका मूल नाम 'सुब्रालक' या 'गालव' था। इसका गोत्र 'बाभ्रव्य' था, एवं यह 'पंचाल' देश का रहनेवाला था। इस कारण इसे 'बाभ्रव्य पांचाल' कहते थे (बाभ्रव्य देखिये)।

बामदेव द्वारा बताये ध्यानमार्ग से इसने भगवान् की आराधना की। उसीके कृपा से वेदों का क्रमविभाग करने का दुष्कर कार्य, यह सर्वप्रथम कर सका (म. शां. ३३०.३७-३८; पितृवर्तिन् देखिये)।

पांचालचंड--एक वैदिक ऋषि। वैदिक संहिता का तत्त्वज्ञान की दृष्टि से अर्थ लगाने के लिये 'वाच्' (वाणी) यही संहिता है, ऐसा इसका मत था (ऐ.आ.३.१.६)।

पांचाली--पांचाल देश के द्रुपद राजा की कन्या 'द्रौपदी' का नामांतर (भा. १.७.३८; द्रौपदी देखिये)।

पांचाल्य--आरुणि उद्दालक ऋषि का नामांतर (म. आ. ३.२४)। यह स्वैदायन शौनक एवं शौचेय प्राचीनयोग्य ऋषियों का समकालीन था (श. ब्रा. ११. ४.१-९)। इसके शिष्यों में कहोद (कौशीतकी) प्रमुख था, एवं इसने अपनी सुजाता नामक कन्या उसे विवाह में दी थी (उद्दालक देखिये)।

पांचि--एक वैदिक ऋषि। 'पंचन्' का वंशज होने से इसे 'पांचि' नाम प्राप्त हुआ था (श. ब्रा. २. १. ४.२७)। 'सोमयज्ञ' में, तीन अंगुल ऊँची वेदि बनाने की पद्धति इसने प्रस्थापित की (श. ब्रा. १.२.५.९)।

पाटल--एक वानर। बिभीषण से मिलने लंका जा रहे राम से, यह किष्किंधा नगरी में मिला था, एवं इसने राम का बड़े ही भक्तिभाव से दर्शन लिया (पद्म.सृ.३८)।

पाटव--'चाक्र' नामक वैदिक ऋषि का पैतृक नाम (श. ब्रा. १२.८.१.१७; ९.३.१)। 'पटु का वंशज' इस अर्थ से 'पाटव' शब्द का उपयोग किया होगा।

पाटिक--'श्याम पराशर' के कुल में उत्पन्न एक ऋषि (पराशर देखिये)।

पाडक--वायु के अनुसार, व्यास की सामशिष्य परंपरा के हिरण्यनाभ ऋषि का शिष्य। पाठभेद--'मांडूक'।

पाणिक--अंगिराकुल का एक ऋषि।

पाणिकूर्म--स्कंद का एक सैनिक (म. श. ४४.७१)। पाठभेद--'पाणि कूर्च'।

पाणिन--कश्यप एवं कद्रू का पुत्र, एक नाग।

पाणिनि--लौकिक संस्कृत भाषा का वैयाकरण, जिसका 'अष्टाध्यायी' नामक ग्रंथ संस्कृतभाषा का श्रेष्ठतम व्याकरणग्रंथ माना जाता है।

संस्कृत भाषा के क्षेत्र में, एक सर्वथा नये युग के निर्माण का कार्य आचार्य पाणिनि एवं इसके द्वारा निर्मित 'पाणिनीय व्याकरण' ने किया। यह युग लौकिक संस्कृत का युग कहा जाता है, जो वैदिक युग की अपेक्षा सर्वथा भिन्न है। जब वैदिक संस्कृत भाषा पुरानी एवं दुर्बोध होने लगी, तब उत्तर पश्चिम एवं उत्तर भारत के ब्राह्मणों में उस भाषा का एक आधुनिक रूप साहित्यिक भाषा के रूप में प्रस्थापित हुआ। इस नये साहित्यिक भाषा को व्याकरणबद्ध करने का महत्त्वपूर्ण कार्य पाणिनि ने किया, एवं इस भाषा को 'लौकिक संस्कृत' यह नया नाम प्रदान किया।

पाणिनि केवल व्याकरणशास्त्र का ही आचार्य नहीं था। एक व्याकरणकार के नाते, लौकिक संस्कृत का भाषाशास्त्र एवं व्याकरणशास्त्र की सामग्री इकट्ठा करते करते, तत्कालीन भारतवर्ष (५०० ई. पू.) की राजकीय, सांस्कृतिक, सामाजिक, एवं भौगोलिक सामग्री शास्त्रीय दृष्टि से एकत्र करने का महान् कार्य पाणिनि ने किया। अन्य व्याकरणकारों की अपेक्षा, इस कार्य में पाणिनि ने अत्यधिक सफलता भी प्राप्त की।

इस कारण, पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' वेद के उत्तरकालीन एवं पुराणों के पूर्वकालीन प्राचीन भारतीय इतिहास का श्रेष्ठतम प्रमाणग्रंथ माना जाता हैं। ढाई सहस्र वर्षों के दीर्घ कालावधि के पश्चात्, पाणिनि के 'अष्टाध्यायी' का पाठ जितने शुद्ध एवं प्रामाणिक रूप में आज भी उपलब्ध है, उसकी तुलना केवल वेदों के विशुद्ध पाठों से की जा सकती है। किंतु वेदों के शब्द हमें

विशुद्धरूप में प्राप्त हो कर भी, उनका अर्थ अस्पष्ट एवं धुँधला सा प्रतीत होता है। संस्कृत व्याकरणशास्त्र की श्रेष्ठ परंपरा के कारण, पाणिनीय व्याकरण के शब्द एवं अर्थ दोनों भी विशुद्ध रूप में आज भी उपलब्ध है। इस कारण ऐतिहासिक दृष्टि से, पाणिनि के 'अष्टाध्यायी' का मूल्य वैदिक ग्रंथों की अपेक्षा आज अधिक माना जाता है।

कई वर्षों के पूर्व, केवळ शब्दसिद्धि के दृष्टि से 'पाणिनीय व्याकरण' का अध्ययन किया जाता था। फिर कई अध्ययनशील लोगों ने ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से '*पाणिनीय व्याकरण*' की समालोचन करने का कार्य शुरू किया, एवं ऐतिहासिक सामग्री का एक नया विश्व, अभ्यासकों के लिये खोल दिया। ई. पू. ५०० के लगभग भारत में उपलब्ध प्राचीन लोकजीवन की जानकारी पाने के लिये, एवं उस काल के ऐतिहासिक अंधयुग में नया प्रकाश डालने के लिये 'पाणिनीय व्याकरण' का अध्ययन अत्यावश्यक है, यह विचारप्रणाली आज सर्वमान्य हो चुकी है। इस नयी विचारप्रणाली के निर्माण का बहुतांश श्रेय, बनारस विद्यापीठ के डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल एवं उनके ग्रंथ 'पाणिनिकालीन भारतवर्ष' को देना जरूरी है।

नामांतर---पुरुषोत्तमदेव के 'त्रिकांडशेष' कोश के अनुसार, पाणिनि को निम्नलिखित नामांतर प्राप्त थेः--- पाणिन्, दाक्षीपुत्र, शालंकि, शालातुरीय, एवं आहिक।

मातापिता—पतंजलि ने पाणिनी को 'दाक्षीपुत्र' कहा है, जिससे प्रतीत होता है की, पाणिनि के माता का नाम 'दाक्षी' था, एवं वह दक्षकुल से उत्पन्न था (महा. १.१.२०)। इसके पिता का नाम 'शलंक' था, एवं पाणिनि' इसका कुलनाम था। हरिदत्त के अनुसार, पाणिपुत्र 'पाणिन्' नामक ऋषि का पाणिनि पुत्र था (पदमंजरी २.१४)। छंदःशास्त्र का रचयिता पिंगल ऋषि पाणिनि का छोटा भाई था (षड्गुरुशिष्यकृत 'वेदार्थ-दिपिका')। व्याडि नामक व्याकरणाचार्य को 'दाक्षायणि' नामांतर था, जिससे प्रतीत होता है कि, वह पाणिनि का मामा था। व्याडि के 'संग्रह' नामक ग्रंथ की प्रशंसा पतंजलि ने की है (महा. २.३.६६)।

अध्ययन—पाणिनि के विद्यादाता गुरु का नाम 'वर्ष' था (कथासरित. १.४.२०)। ब्रह्मवैवर्त के अनुसार, शेष इसका गुरु था (ब्रह्मवै. प्रकृति. ४.५७)। काव्य-मिमांसा के अनुसार, वर्ष, उपवर्ष, पिंगल एवं व्याडि इन सहाध्यायियों के साथ, पाणिनि ने पाटलीपुत्र में शिक्षा प्राप्त की, एवं वहाँ शास्त्रपरीक्षा में यह उत्तीर्ण हुआ (काव्यमी. १०)। माहेश्वर को भी पाणिनि का गुरु कहा गया है, जिसका कोई आधार नही मिलता है। कई अभ्यासकों के अनुसार, पाणिनि की शिक्षा तक्षशिला में हुई थी (एस्. के. चटर्जी, 'भारतीय आर्यभाषा तथा हिंदी' पृ. ६६)।

पाणिनी के अनेक शिष्य भी थे (महा. १.४.१)। उनमें 'कौत्स' नामक शिष्य का निर्देश 'महाभाष्य' में प्राप्त है (३.२.१०८)।

अष्टाध्यायी के प्राणभूत १४ सूत्रों का अध्ययन करने पर पता चलता है कि, पाणिनि ने शिवोपासना कर के '१४ माहेश्वरी सूत्रों' (प्रत्याहार सूत्रों) की प्राप्ति साक्षात् शिवजी से की थी, एवं उन सूत्रों के आधार पर अपने व्याकरणग्रंथ की रचना की।

निवासस्थान—'शालातुरीय' नाम से, पाणिनि 'शलातुर' ग्राम का रहनेवाला था, ऐसा कई अभ्यासकों का कहना है (वर्धमान कृत 'गणरत्न महोदधि' पृ. १)। अफगानिस्थान की सीमा पर, अटक के समीप स्थित आधुनिक लाहुर ग्राम ही प्राचीन शलातुर है। अन्य कई अभ्यासकों के अनुसार, शलातुर पाणिनि का जन्मस्थान न हो कर, इसके पूर्वजों का निवासस्थान था। पाणिनि का जन्म वाहीक देश में कहीं हुआ था (अष्टा. ४.२. ११७)।

काल—पाणिनि पारसीकों तथा उनके सेवक यवनों या ग्रीकों से परिचित था। उससे पाणिनी का काल संभवतः ५ वी शताब्दी ई. पू. रहा होगा। डॉ. अग्रवाल के अनुसार, ४८०–४१० ई. पू., पाणिनि का काल था। पाणिनि की मृत्यु एक सिंह के द्वारा हुई थी (पंचतंत्र श्लो. ३६)।

पूर्वाचार्य---पाणिनि को लौकिक संस्कृत का पहला वैय्याकरण माना जाता है। किंतु स्वयं पाणिनि ने 'अष्टाध्यायी' में 'पाराशर्य' एवं 'शिलालि' इन दो पूर्वाचार्यों का, एवं उनके द्वारा विरचित 'भिक्षुसूत्र' एवं 'नटसूत्र' नामक दो ग्रंथो का निर्देश किया है (अष्टा. ४.३.११०)। उनके सिवा, 'अष्टाध्यायी' में निम्नलिखित आचार्यों का निर्देश प्राप्त है---अपिशालि (६.१.९२), काश्यप (८.४.६७), गार्ग्य, गालव (६.३.६१; ७.१.७४; ३.९९; ८.३.२०; ४.६७), चाक्रवर्मन (६.१.१३०), भारद्वाज (७.२.६३),

शाकटायन (३.४. १११; ८.३.१९; ४.५१), सेनक (५.४.११२), स्फोटायन (६.१.१२१)।

'अष्टाध्यायी' में निम्नलिखित ग्रंथों का निर्देश प्राप्त है---अनुब्राह्मण (४.२.६२), अनुप्रवचन (५.१.१११), कल्पसूत्र (४.३.१०५), क्रम (४.२.६१), चात्वारिंश (ऐतरेय ब्राह्मण) (५.१.६२), त्रैश (सांख्यायन ब्राह्मण) (५.१.६२), नटसूत्र (४.३.११०), पद (४.२.६१), भिक्षुसूत्र (४.३.११०), मीमांसा (४.२.६१), शिक्षा (४.२.६१)। उपनिषद एवं आरण्यक ग्रंथों का निर्देश 'अष्टाध्यायी' में अप्राप्य है। 'उपनिषद' शब्द 'पाणिनीय व्याकरण' में आया है। किंतु वहाँ उसका अर्थ 'रहस्य' के रूप में लिया गया है (१.४.७९)।

'अष्टाध्यायी' के लिये जिन वैदिक ग्रंथों से, पाणिनि ने साधनसामग्री ली उनके नाम इस प्रकार हैः— अनार्ष (१.१.१६; ४.१.७८), आथर्वणिक (६.४. १७४), ऋच् (४.१.९; ८.३.८), काठक-यजु (७.४. ३८), छन्दस् (१.२.३६), निगम (३.८१; ४.७४; ४. ९; ६.३.११३; ७.२.६४), ब्राह्मण (२.३.६०; ५.१. ६२), मंत्र (२.४.८०), यजुस् (६.१.११५; ७.४. ३८; ८.३.१०२), सामन् (१.२.३४)।

'अष्टाध्यायी' में निम्नलिखित वैदिक शाखाप्रवर्तक ऋषियों का निर्देश प्राप्त है :-- अश्वपेज, उख, कठ, कठशाठ, कलापिन्, कषाय, (कशाय, का.) काश्यप, कौशिक, खंडिक, खाडायन, चरक, छगल, छंदोग, तल, तलवकार, तित्तिरि, दण्ड, देवदर्शन, देवदत्त शठ, पैङ्गच (४.३-१०५, उदाहरण), पुरुषांसक (पुरुषासक), बहृच, (४.३.१२९), याज्ञवल्क्य (वार्तिक) रज्जुकंठ, रज्जुभार, वरतंतु, वाजसनेय, वैशंपायन, शापेय (सांपेय, का.), शाष्पेय (शाखेय, का.) शाङ्गरव (सांगरव, का.) शाकल, शौनक, सापेय, स्कन्द, स्कन्ध, स्तंभ (स्कंभ, का.) (पा. सू. ४.३.१०२-१०९ गणों सहित; १२८, १२९)।

इन में केवल तलवकार तथा वाजसनेय प्रणीत ब्राह्मण ग्रंथ आज उपलब्ध हैं। अन्य लोगों के कौन से ग्रन्थ थे यह बताना असंभव है।

उलप, तुंबरु तथा हरिद्रु (४.३.१९४) ये नाम 'काशिका' में अधिक हैं।

'अष्टाध्यायी'--पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' ग्रंथ आठ अध्यायों में विभक्त है। प्रत्येक अध्याय में चार पाद हैं। बत्तीस पाद एवं आठ अध्यायों के इस ग्रंथों में कुल ३९९५ सूत्र हैं। इन सूत्रों में 'अइउण' आदि १४ माहेश्वरी सूत्रों का भी संग्रह है।

लौकिक संस्कृत भाषा को व्याकरणीय नीतिनियमों में बिठाना, यह 'अष्टाध्यायी' के अंतर्गत सूत्रों का प्रमुख उद्देश्य है। वहाँ संस्कृत भाषा का क्षेत्र वेद एवं लोकभाषा माना गया है, तथा उन दोनों भाषाओं का परामर्श 'अष्टाध्यायी' में लिया गया है। संस्कृत की भौगोलिक मर्यादा, गांधार से आसम (सूरमस) में स्थित सरमा नदी तक, एवं कच्छ से कलिंग तक मानी गयी है। उत्तर के काश्मीर कांबोज से ले कर, दक्षिण में गोदावरी नदी के तट पर स्थित अश्मक प्रदेश तक वह मर्यादा मानी गयी है।

अष्टाध्यायी में किया गया शब्दों का विवेचन, दुनिया की भाषाओं में प्राचीनतम समझा जाता है। उस ग्रंथ में किया गया प्रकृति एवं प्रत्यय का भेदाभेददर्शन, तथा प्रत्ययों का कार्य निर्धारण के कारण पाणिनि की व्याकरण-पद्धति शास्त्रीय एवं अतिशुद्ध बन गयी है।

पाणिनीय व्याकरणशास्त्र—पाणिनि ने अपनी 'अष्टाध्यायी' की रचना गणपाठ, धातुपाठ, उणादि, लिंगानुशान तथा फिटसूत्र ये ग्रंथों का आधार ले कर की है। उच्चारण-शास्त्र के लिये अष्टाध्यायी के साथ शिक्षा ग्रंथों के पठन-पाठन की भी आवश्यकता रहती है। पाणिनि प्रणीत व्याकरणशास्त्र में इन सभी विषयों का समावेश होता है। पतंजलि के अनुसार, गणपाठ की रचना पाणिनि व्याकरण के पूर्व हो चुकी थी (महाभाष्य. १. ३४)। परस्पर भिन्न होते हुए भी व्याकरण के एक नियम के अंतर्गत आ जानेवाले शब्दों का संग्रह 'गणपाठ' में समाविष्ट किया गया है। गणपाठ में संग्रहीत शब्दों का अनुक्रम प्रायः निश्चित रहता है। गण में छोटे छोटे नियमों के लिये अंतर्गणसूत्रों का प्रणयन भी दिखलायी पड़ता है। गणपाठ की रचना पाणिनिपूर्व आचार्यों द्वारा की गयी होगी। फिर भी वह पाणिनि व्याकरण की महत्त्वपूर्ण अंग बन गयी है।

धातुपाठ तथा उणादि सूत्र भी पाणिनि पूर्व आचार्यों द्वारा प्रणीत होते हुए भी, 'पाणिनि व्याकरण' का महत्त्वपूर्ण अंग बन गयी है। लिंगानुशासन पाणिनिरचित है। 'पाणिनीय शिक्षा' में पाणिनि के मतों का ही संग्रह है।

फिट्सूत्रों की रचना शांतनवाचार्य ने की है। फिर भी पाणिनि ने उनको स्वीकार किया है। प्रत्येक शब्द स्वाभाविक उदात्तादि स्वरयुक्त हैं। तदनुसार, शब्दों का

उच्चारण करने मात्र से ही शब्दों का शुद्ध तथा अर्थ-बोधक ध्वनि निकलती है। इसलिए केवल वर्णों के पठन-मात्र से ही नहीं बल्कि आघातादि सहित शब्दों का उच्चारण वांछनीय है। इसलिए पाणिनि ने स्वरप्रक्रिया लिखी तथा 'फिट्सूत्र' जो उदात्त, अनुदात्त व स्वरित शब्दों का संग्रह तथा नियम बतलाया है और उसको मान्यता दी है।

गणपाठ, धातुपाठ, उणादि, लिंगानुशासन, फिट्सूत्र तथा शिक्षा ये पाणिनि सूत्रों के महत्त्वपूर्ण अंग हैं। इनका संग्रह करने से, सूत्रों की रचना करने में, पाणिनि को सुलभता प्राप्त हुई। इस प्रकार व्याकरण के क्षेत्र में एक रचनात्मक कार्य करके पाणिनि ने संस्कृत भाषा को सर्वाधिक शक्तिशाली बनाया।

पाणिनि का समन्वयवाद—व्याकरणशास्त्र में पाणिनि ने नैरुक्त एवं गार्ग्य सम्प्रदायों के बीच समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया। नैरुक्त संप्रदाय एवं शाकटायन के अनुसार, संज्ञावाचक शब्द धातुओं से ही बने हैं। गार्ग्य तथा दूसरे वैय्याकरणों का मत इससे कुछ भिन्न था। उनका कहना था, खींचतान करके प्रत्येक शब्द को धातुओं से सिद्ध करना उचित नहीं है।

पाणिनि ने 'उणादि' शब्दों को अव्युत्पन्न माना है, तथा धातु से प्रत्यय लगाकर, सिद्ध हुये शब्दों को 'कृदन्त' प्रकरण में स्थान दिया है। पाणिनि के अनुसार, '*संज्ञाप्रमाण*' एवं '*योगप्रमाण*' दोनों अपने अपने स्थान पर इष्ट एवं आवश्यक हैं। शब्द से जाति का बोध होता है, या व्यक्ति का, इस संबंध में भी पाणिनि ने दोनों मतों को समयानुसार मान्यता दी है। धातु का अर्थ 'क्रिया' हो, अथवा 'भाव' हो, यह भी एक प्रश्न आता है। पाणिनि ने दोनों को स्वीकार किया है।

लोकजीवन—जैसे पहले कहा जा चुका है, कि पाणिनि की अष्टाध्यायी में, ५०० ई. पू. के प्राचीन भारतवर्ष के सांस्कृतिक, सामाजिक राजनैतिक एवं धार्मिक लोकजीवन की ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यधिक प्रामाणिक जानकारी प्राप्त होती है। प्राचीन भारतवर्ष के वर्ण, एवं जातियों, आर्य एवं दासों के संबंध, शिक्षा आदि सामाजिक विषयों पर पाणिनि ने काफ़ी प्रकाश डाला है। पाणिनिकालीन भारत में राजशासित एवं लोकशासित दोनों प्रकार की शासन पद्धतियाँ वर्तमान थीं जिसका विवरण अष्टाध्यायी में प्राप्त है।

पाणिनिकालीन भूगोल—अष्टाध्यायी में प्राप्त भौगोलिक विवरण का महत्त्व अन्य सारे विवरणों की अपेक्षा कहीं अधिक है। ५०० ई. पू. प्राचीन भारत के जनपदों, पर्वतों, नदियाँ, वनों एवं ग्राम व नगरों की स्थिति का अत्यधिक प्रामाणिक ज्ञान अष्टाध्यायी द्वारा प्राप्त होता है।

(१) जनपद—पाणिनि के अष्टाध्यायी, एवं गणपाठ में निम्नलिखित जनपदों का निर्देश प्राप्त हैः—अंबष्ठ (८.३.९७); अजाद (४.१.१७१); अवन्ति (४.१.१७६); अश्मक (४.१.७३); उदुंबर (४.३.५३); उरश (४.३.९३; गण.); उशीनर (४.२.११८); ऐषुकारि (४.२.५४); कंबोज (४.१.१७५); कच्छ (४.२.१३४); कलकूट (४.१.१७१); कलिंग (४.१.१७०); काश्मिर (४.२.१३३; ४.३.९३; गण.); कारस्कर (६.१.१५६); काशि (४.१.११६); किष्किंधा (४.३.६३; गण.); कुरु (४.१.१७२; १७६; २.१३०); कुंति (४.१.१७६); केकय (७.३.२); कोसल (४.१.१७१); गंधारि (४.१.१६९); गब्दिका (४.३.६३; गण.) त्रिगर्त (५.३.११६); दरद् (४.३.९३; गण.); धूम (४.२.१२७); पटच्चर (४.२.११०; गण.)। प्रत्यग्रथ (४.१.१७१); पारस्कर (६.१.१४७); बर्बर (४.३.९३; गण.); ब्राह्मणक (५.२.७१); भर्ग (४.१.१११); भारद्वाज (४.१.११०); भौरिकि (४.२.५४); मगध (४.१.१७०); मद्र (४.२.१३१); यकृल्लोम (४.२.११०; गण.); युगंधर (४.२.१३०); यौधेय (४.१.१७८; ५.३.११७); रंकु (४.२.१००); वाहीक (४.२.११७); वृजि (४.२.१३१); सर्वसेन (४.३.९२; गण.); साल्व (४.२.१३५); साल्वावयव (४.१.१७३); साल्वेय (४.१.१६९); सूरमस (४.१.१७०); सिंधु (४.३.९२); सौवीर (४.२.७६)।

(२) पर्वत—पाणिनि के अष्टाध्यायी में निम्नलिखित पर्वतों का निर्देश प्राप्त हैः—अंजनागिरि, किंशुलगिरि; (६.३.११६); त्रिककुत् (५.४.१४७); भंजनागिरि; लोहितागिरि; विदूर (४.३.८४); शाल्वकागिरि।

(३) नदियाँ—पाणिनि के अष्टाध्यायी में निम्नलिखित नदियों का विवरण प्राप्त हैः—अजिरवती (६.३.११७); उभय (३.१.११५); चर्मण्वती (८.२.१२); देविका (७.३.१); भिद्य (३.१.११५); वर्णु (४.२.१०३); विपाश् (४.२.७४); शरावती (६.३.११९); सरयू (६.४.१७४); सिंधु (४.६.९३); सुवास्तु (४.२.७७)।

(५) वन--पाणिनि के अष्टाध्यायी में निम्न वनों का उल्लेख प्राप्त हैः--अग्रेवण (८.४.४); कोटरवण, पुरगावण, मिश्रकावण, शारिकावण, तथा सिध्रकावण।

(५) ग्राम व नगर--पाणिनि के अष्टाध्यायी में निम्नलिखित ग्राम एवं नगरों का निर्देश प्राप्त हैः--अज़स्तुंद (६.१.१५५); अरिष्टपुर (६.२.१००); आश्वायन (४.२.११०); आश्वकायन या अश्वक (४.१.९९); आसंदीवत् (८.२.१२; ४.२.८६); ऐषुकारिभक्त (४.२.५४); कत्रि (४.२.९५); कपिस्थल (७.२.९१); कापिशी (४.२.९९); कास्तीर (६.१.१५५); कुण्डिन (४.२.९५; गण.); कूचवार (४.३.९४); कौशाम्बी (४.२.९७); गौडपुर (६.२.२००); चक्रवाल (४.२.८०); चिहणकंथ (६.२.१२५); तक्षशिला (४.३.९३); तूदी (४.३.९४); तौषावण (४.२.८०); नड्वल (४.२.८८); नवनगर (६.२.८९); पलदी (४.२.११०); फलकपुर (४.२.१०१); मार्देयपुर (४.२.१०१); महानगर (६.२.८९); माहिष्मती (४.२.९५); मंडु तथा खंडु (४.२.७७); रोणी (४.२.७८); वरण (४.२.८२); वर्मती (४.३.९४); वाराणसी (४.२.९७); वार्णव (४.२.७७-१०३); शलातुर (४.३.९४); शर्करा (४.२.८३); शर्यणावत् (४.२.८६); शिखावल (४.२.८९); श्रावस्ती (४.२.९७); संकल (४.२.७५); सरालक (४.३.९३); सांकाश्य (४.२.८०); सौभूत (४.२.८०); सौवास्तव (४.२.७७); हास्तिनायन (६.४.१७४)।

सिक्के--पाणिनि के 'अष्टाध्यायी' में निम्नलिखित सिक्कों का निर्देश प्राप्त हैः--कार्षापण (५.१.२९; ३४.४८); त्रिंशत्क (५.१.२४); माष (५.१.३४); विंशतिक (५.१.२७); शतमान (५.१.२७); शाण (५.१.३५); सुवर्णमाशक (५.१.३४); सुवर्णहिरण्य (६.२.५५)।

परिमाणदर्शक शब्द--पाणिनि के अष्टाध्यायी में निम्नलिखित परिमाणदर्शक शब्द प्राप्त हैंः--

(१) कालपरिमाण--अपराह्ण (४.३.२४); अहोरात्र (२.४.२८); नक्तंदिव (५.४.७७); परिवासर (५.१.९२); पूर्वाह्ण (४.३.२४); मास (५.१.८१); व्युष्ट (५.१.९७); संवत्सर (४.३.५०)।

(२) वस्तुपरिमाण--आचित (४.१.२२; ५.१.५३); कुलिज (५.१.५५); बिस्त (४.१.२२; ५.१.३१); भार (६.२.३८); मंथ (६.२.१२२); शाण (५.१.३५; ७.३.१७)।

(३) परिमाण-- अंजलि (५.४.१०२); आढक (५.१.५३); कंस (५.१.२५; ६.२.१२२); कुंभ (६.२.१०२); खारी (५.१.३३); निष्पाव (३.३.२८); पाय्य (३.१.१२९); वह (३.३.११९); शूर्प (५.१.२६; ६.२.१२२)।

(४) क्षेत्रपरिमाण--अंगुलि (५.४.८६), काण्ड (४.१.२३); किष्कु (६.१.१५७) दिष्टि (६.२.७१); पुरुष (४.१.२४); योजन (४ कोस; ५.१.७४); वितस्ति (६.२.७१); हस्ति (५.२.३८)

अष्टाध्यायी के वार्तिककार-- पतंजलि के महाभाष्य में अष्टाध्यायी के निम्नलिखित वार्तिककारों के निर्देश प्राप्त हैंः--कात्य वा कात्यायन (३.२.११८); कुणरवाडव (३.२.१४; ७.३.१) भारद्वाज (१.१.२०); सुनाग (२.२.१८); क्रोष्टा (१.१.३); वाडव (८.२.१०६), व्याघ्रभूति एवं वैयाघ्रपद्य।

अष्टाध्यायी के वृत्तिकार -- 'अष्टाध्यायी' पर लिखे गये 'वृत्ति' एवं भाष्यग्रंथों में, जयादित्य एवं वामन नामक ग्रंथकारों द्वारा लिखी गयी, 'काशिका' नामक ग्रंथ अत्यधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता है। 'काशिका' के अतिरिक्त, निम्नलिखित वृत्तिकारों ने 'अष्टाध्यायी' पर भाष्य एवं वृत्तियाँ लिखी हैं। उन ग्रंथकारों के लिखे हुए 'वृत्तिग्रंथ' का निर्देश इसी सूची में किया गया है।

'काशिका' के पूर्वकालीन वृत्तिकार--१ कुणी (अष्टाध्यायीवृत्ति) २. माथुर (माथुरिवृत्ति); ३. श्रोभूति (श्रोभूतिवृत्ति); ४. वररुचि (वाररुचवृत्ति); ५. देवनंदी (शब्दावतारन्यास), ६. दुर्विनित (शब्दावतार)

काशिका के उत्तरकालीन वृत्तिकार-- १. भर्तृहरि (भागवृत्ति); २. भर्त्रीश्वर; ३. भट्टजयंत; ४. केशव; ५. इंदुमित्र (इंदुमतिवृत्ति); ६. मैत्रेयरक्षित (दुर्घटवृत्ति); ७. पुरुषोत्तमदेव (भाषावृत्ति); ८. शरणदेव (दुर्घटवृत्ति); ९. भट्टोजीदीक्षित (शब्दकौस्तुभ); १०. अप्पय दिक्षीत (सूत्रप्रकाश); ११. नीलकंठ वाजपेयी (पाणिनीय दीपिका), १२. अन्नंभट्ट (पाणिनीय मिताक्षरा); १३. स्वामी दयानंदसरस्वती (अष्टाध्यायी भाष्य)।

पाणिनि के व्याकरण ग्रंथ--१. अष्टाध्यायी, २. धातुपाठ, ३. गणपाठ, ४. उणादिसूत्र, ५. लिंगानुशासन। इनमें से 'अष्टाध्यायी' को छोड़ कर बाकी सारे ग्रंथ, उसी मूल

ग्रंथ के पाणिनिसम्मत परिशिष्टस्वरूप हैं। इसी कारण, प्राचीन ग्रंथकार उनका 'खिल' शब्द से व्यवहार करते हैं।

उपरिनिर्दिष्ट ग्रंथों के अतिरिक्त, पाणिनि के नाम पर शिक्षासूत्र, जाम्बवतीविजय (पातालविजय) नामक काव्य एवं 'द्विरूपकोश' नामक कोशग्रंथ भी उपलब्ध हैं।

पाणिमत्--एक नाग। यह वरुण की सभा में रह कर वरुण की उपासना करता था (म. स. ९.१००*)।

पाणीतक--पूषाद्वारा स्कन्द को दिये गये दो पार्षदों में से एक। दूसरे का नाम 'कालिक' था (म. श. ४४.३९)। पाठ-पालितक।

पांड--कण्व के पुत्रों में से एक। इसकी माता का नाम आर्यावती था। 'सरस्वती' की कन्या से इसे सोलह पुत्र हुये। वे सब आगे चलकर गोत्रकार बन गये (भवि. प्रति. ४.२१)।

पांडर--ऐरावत के कुल में उत्पन्न हुआ एक नाग। जनमेजय के सर्पसत्र में यह जलकर मर गया (म. आ. ५८.१०)।

पांडव--कुरुवंशीय पाण्डु राजा के पाँच पुत्रों का सामूहिक नाम। युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल तथा सहदेव ये पाँचों पाण्डु-पुत्र, पाण्डव कहलाते हैं (पांडु देखिये)।

पांडु--(सो. कुरु.) हस्तिनापुर का कुरुवंशीय राजा एवं 'पांडवों' का पिता। यह एवं इसका छोटा भाई धृतराष्ट्र कुरुवंशीय सम्राट विचित्रवीर्य के दो 'क्षेत्रज' पुत्र थे। इनमें से धृतराष्ट्र जन्म से अंधा था, एवं यह जन्मतः 'पांडुरोग' से पीड़ित था। शारीरिक दृष्टि से पंगु व्यक्ति का जीवन कैसा दुःखपूर्ण रहता है, इसका हृदय हिला देनेवाला चित्रण, पांडु एवं धृतराष्ट्र इन दो बंधुओ के चरित्रचित्रण के समय श्रीव्यास ने 'महाभारत' में किया है।

जन्म--कुरुवंश में पैदा हुए शंतनु राजा के चित्रांगद एवं विचित्रवीर्य नामक दो पुत्र थे। उनमें से चित्रांगद गंधर्वों के द्वारा, युद्धभूमि में मारा गया, एवं विचित्रवीर्य छोटा हो कर भी, हस्तिनापुर के राज्य का अधिकारी हुआ।

पश्चात् विचित्रवीर्य की युवावस्था में ही अकाल मृत्यु हो गयी। उस समय उसकी पत्नी अंबालिका संतानरहित थी। फिर कुरुकुल निर्वंशी न हो, इस हेतु से विचित्रवीर्य की माता सत्यवती ने अपनी पुत्रवधू अंबालिका को 'नियोग' के द्वारा संतति प्राप्त करने की आज्ञा दी। पराशर ऋषि से उत्पन्न अपने ज्येष्ठ पुत्र व्यास को भी यही आज्ञा सत्यवती ने दी। उस आज्ञा के अनुसार, व्यास अंबालिका के शयनमंदिर गया। व्यास की जटाधारी एवं भस्मचर्चित उग्र आकृति देख कर, अंबालिका मन ही मन घबरा गयी, एवं भय से उसका मुख फीका पड़ गया। यह देखते ही क्रुद्ध हो कर व्यास ने उसे शाप दिया, 'मुझे देखते ही तुम्हारा चेहरा निस्तेज एवं फीका पड़ गया है, अतएव तुम्हारा होनेवाला पुत्र भी निस्तेज एवं श्वेतवर्ण का पैदा होगा एवं उसका नाम भी पांडु रक्खा जायेगा'। बाद में अंबालिका गर्भवती हुई, एवं उसे व्यास की शापोक्तिनुसार, श्वेतवर्ण का पाण्डु नामक पुत्र हुआ (म. आ. ५७.९५; ९०.६०; १००; स. ८.२२)।

शिक्षा--पाण्डु का पालनपोषण इसके चाचा भीष्म ने पुत्रवत् किया। उसने इसके उपनयनादि सारे संस्कार भी किये। इससे ब्रह्मचर्यविहित योग्य व्रत तथा अध्ययन करवाया। यह श्रुति-स्मृतियों में पंडित तथा व्यायाम-पटु बना। चार वेद, धनुर्वेद, गदा, खड्ग, युद्धशास्त्र, गजशिक्षा, नीतिशास्त्र, इतिहास, पुराण, कला तथा तत्वज्ञान में यह पारंगत हुआ (म. आ. १०२.१५-१९)।

विवाह--कुंति-भोज राजाने अपनी कन्या पृथा (कुंती) का स्वयंवर किया, वहाँ कुन्ती ने पाण्डु का वरण किया। उसे ले कर पाण्डु हस्तिनापुर आया। बाद में, भीष्म के मन में पाण्डु का दूसरा विवाह करने की इच्छा हुयी। वह मंत्री, ब्राह्मण, ऋषि तथा चतुरंगिनी सेना के साथ मद्र-राज शल्य के नगर में गया। शल्य ने आदर के साथ उसका स्वागत किया। भीष्म ने पाण्डु के लिये शल्य की बहन माद्री को माँगा। शल्य को यह प्रस्ताव पसन्द आया। किंतु उसने कहा, 'मेरे कुल की रीति पूर्ण होनी चाहिये। इस रीति के अनुसार, स्वर्ण, स्वर्णाभूषण, हाथी, घोड़े, रथ, वस्त्र, मणि, मूंगा तथा अनेकानेक प्रकार के रत्न मुझे माद्री के बदले प्राप्त होना जरूरी है'। भीष्म ने यह शर्त मंजूर की। ये सारी चीजें उसने शल्य को दीं। उन्हें पा कर शल्य अत्याधिक संतुष्ट हुआ तथा अपनी बहन माद्री को यथाशक्ति अलंकार पहना कर, उसने भीष्म के हाथों सौंप दिया। माद्री के साथ भीष्म हस्तिनापुर आया, तथा सुमुहूर्त में पाण्डु ने माद्री का पाणिग्रहण किया (म. आ. १०५)।

राज्यप्राप्ति (दिग्विजय)--पांडु के बंधुओं में से धृतराष्ट्र अंधा तथा विदुर शूद्र था। अतएव पांडु का राज्याभिषेक किया गया तथा यह हस्तिनापुर का राजा बना (म. आ. १०३.२३)। माद्री के पाणिग्रहण के ठीक एक माह के उपरांत, पाण्डु संपूर्ण पृथ्वी जीतने के उद्देश्य से बाहर निकला। इसने साथ में एक बड़ी सेना

भी ली। सब से पहले इसने पर्वतों पर रहनेवाले दशार्ण नामक लुटेरे लोगों को जीत लिया, एवं उनकी सेना तथा निशानादि छीन लिये। बाद में अनेक राजाओं को लूटकर उन्मत्त बने मगधाधिपति दीर्घ को उसी के प्रासाद में मारकर, उसके राज्यकोष एवं हाथियों का दल ले लिया। इसी प्रकार काशी, मिथिला, सुह्म तथा पुंड्र राजाओं को पराजित कर, इसने उन सारे देशों में कौरवों का ध्वज फहराया। यही नहीं, पृथ्वी के सब राजाओं ने पाण्डु को 'राजेंद्र' माना, तथा इसे काफ़ी नज़राने दिये। इस प्रकार अनेक देश तथा राजाओं को पादाक्रांत कर दिग्विजयी हो कर, यह हस्तिनापुर लौट आया (म. आ. १०५)।

विभिन्न देशों को जीत कर लायी हुयी धनराशि, पांडु ने अपने बंधुबांधवों में बाँट दी। पश्चात्, धृतराष्ट्र ने पांडु के नाम से सौ अश्वमेधयज्ञ किये, एवं हर एक यज्ञ में लाख लाख स्वर्ण मुद्रायें दक्षिणा में दान दीं (म. आ. १०६)।

शाप—एकबार यह मृगया के लिये वन में गया था। तब मृगरूप धारण कर अपने मृगरूपधारिणी पत्नी से मृगरूप धारण कर के मैथुन करनेवाले किंदम नामक मुनि को साधारण मृग समझ कर इसने उस पर बाण छोड़े। इससे मुनि का मैथुनभंग हुआ, तथा उसके प्राणपखेरू उड़ चले। मरण के पूर्व उसने पांडु को शाप दिया, 'मिथुनासक्त अवस्था में मेरा वध करनेवाले तुम्हारी मृत्यु भी मैथुनप्रसंग में ही होगी' (म. आ. १०९.२८)।

इस शाप के कारण, पांडु को अत्यधिक पश्चात्ताप हुआ, तथा इसने संन्यासवृत्ति लेकर अवधूत की तरह रहने का निश्चय किया। इसके साथ इसकी पत्नियों ने भी वानप्रस्थाश्रम में रह कर तपस्या करने की इच्छा प्रकट की। कुन्ती तथा माद्री को साथ लेकर यह घूमते घूमते नागशत, कालकूट, हिमालय तथा गंधमादन आदि पर्वतों को लाँघ कर, चैत्ररथवन गया। वहाँ से यह इन्द्रद्युम्न सरोवर गया। पश्चात् हंसगिरि पर्वत को लाँघ कर यह शतशृंगगिरि पर गया, और वहाँ तपस्या करने लगा (म. आ. ११०)।

पुत्रेच्छा—एक बार कुछ ऋषि ब्रह्माजी से मिलने जा रहे थे। पाण्डु को भी उनके साथ स्वर्ग जाने की इच्छा हुई। किंतु ऋषियों ने इसे कहा, 'तुम हमारे साथ ब्रह्मलोक न जा सकोगे, क्योंकि, तुम निःसंतान हो'। फिर पाण्डु ने उनसे कहा, 'निःसंतान होने के कारण, आज मैं ब्रह्मलोक से वंचित किया जा रहा हूँ। मैंने देव, ऋषि, तथा मानवों को तुष्ट किया है, तथापि पितरों को संतुष्ट नहीं कर पाया। ऐसी स्थिति में मुझे क्या करना चाहिये? जिस 'नियोग' के मार्ग से मेरा जन्म व्यास से हुआ, उसी प्रकार क्या मेरी पत्नियों को पुत्र की प्राप्ति नहीं हो सकती हैं?' ऋषियों ने अशीर्वादपूर्वक इससे कहा, 'तथास्तु। उत्कृष्ट तपस्या के कारण तुम्हें यही पुत्रों की प्राप्ति हो जायेगी'।

पश्चात् इसने कुंती से 'नियोग' द्वारा पुत्र उत्पन्न करने के लिए आग्रह किया। इसने कुंती से कहा, 'तुम्हारे बहनोई एवं तुम्हारी बहन श्रुतसेना का पति केकयराज शारदंडायनि 'नियोग' संतति के पुरस्कर्ताओं में से एक है। पुत्रों के बारह प्रकार होते हैं। औरस संतति न होने पर, स्वजातियों से अथवा श्रेष्ठ जातियों से 'नियोग' के द्वारा संतति प्राप्त करने की आज्ञा शारदंडायनि ने दी है। इसलिये अपने पूर्वजों एवं स्वयं को अधोगति से बचाने के लिये, तुम 'नियोग' से तपोनिष्ठ ब्राह्मण के द्वारा संतति प्राप्त करो' (म. आ. १११)।

कुंती ने इसका विरोध किया। उसने इसे कहा, 'व्युषिताश्व राजा की पत्नी भद्रा को उस राजा के शव से पुत्र उत्पन्न हुआ था। यह मार्ग कितना भी नीच क्यों न हो, पर इसे 'नियोग' से कहीं अधिक अच्छा समझती हूँ। तब पाण्डु ने क्रुद्ध हो कर कहा, 'पुत्रोत्पत्ति के लिए समागम करने की आज्ञा पति के द्वारा दी जाने पर, जो स्त्री वैसा आचरण नहीं करती, उसे भ्रूणहत्या का पाप लगता है। उद्दालकपुत्र श्वेतकेतु नामक आचार्य का यही धर्मवचन है। इसी धर्मवचन के अनुसार, सौदास राजा ने अपनी पत्नी दमयंती का समागम वसिष्ठ ऋषि से करवा कर, 'अश्मक' नामक पुत्र प्राप्त किया था'। इतना कह कर, पाण्डु ने कुन्ती को स्मरण दिलाया, 'मेरा जन्म भी व्यास के द्वारा इसी 'नियोग' मार्ग से हुआ है' (म. आ. ११२-११३)।

पुत्रप्राप्ति—फिर कुन्ती ने पांडु को दुर्वासा के द्वारा उसे प्राप्त हुए पुत्रप्राप्ति के मंत्र की कथा बताकर कहा, 'उस मंत्र का जप कर, इष्टदेवता का स्मरण करने पर तुझे अवश्य पुत्रप्राप्त होगा'। फिर पांडु के आज्ञा के अनुसार, कुन्ती ने उस मंत्र का तीन बार जाप कर, क्रमशः यमधर्म, वायु एवं इंद्र को आवाहन किया। उन देवताओं के अंश से कुन्ती को क्रमशः

युधिष्ठिर, भीम एवं अर्जुन नामक पुत्र उत्पन्न हुये (म. आ. ११४)।

इसके उपरांत पुत्रोत्पत्ति करना व्यभिचार होगा, यह कहकर कुन्ती ने पुत्रोत्पन्न करना अमान्य कर दिया। बाद में पांडु की आज्ञा से, कुन्ती ने माद्री को दुर्वासा का मंत्र प्रदान किया, तथा अश्विनीकुमारों के प्रभाव से, उसे नकुल सहदेव नामक जुड़वा पुत्र हुये (म. आ. १११–११३)।

मृत्यु—एक बार वसंत ऋतु में, पांडु राजा अपने भार्यांओं के साथ अरण्य में घूम रहा था। अरण्य की उद्दीप्त सुषमा से प्रभावित हो कर यह कामातुर हुआ। माद्री अकेली इसके पीछे पीछे आ रही थी। झीने वस्त्रों से सुसज्जित माद्री के यौवनाकर्षण पर मुग्ध हो कर उसके न कहने पर भी हठात् इसने उसके साथ समागम किया। किंदम ऋषि द्वारा दिये गये शाप के अनुसार, माद्री से संभोग करते ही इसकी मृत्यु हो गयी।

इसके परलोकवासी होने पर, माद्री इसके शव के साथ सती हो गयी। पांडवों ने इसका एवं माद्री की अंत्येष्टि क्रिया कश्यप ऋषि के द्वारा सम्पन्न करायी (म. आ. ११६; ११८)।

२. धाता का पुत्र (वायु. १.२८)।

३. (सो. कुरु.) एक कुरुवंशीय राजा। यह जनमेजय पारिक्षित (प्रथम) का पुत्र था। इसे धृतराष्ट्रादि सात भाई थे (म. आ. ९९.४९)।

४. अंगिराकुल में उत्पन्न एक गोत्रकार।

पांडुर—स्कन्द का एक सैनिक।

पांडुरोचि—भृगुकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

पांड्य—(सो. तुर्वसु.) दक्षिण भारत का एक राजवंश एवं लोकसमूह। इस वंश के राजा तुर्वसुवंश के जनापीड राजा के वंशज कहलाते थे।

तुर्वसुवंश का मरुत्त राजा पुत्रहीन था। उसने पूरुवंशीय दुष्यंत राजा को गोद लिया, एवं इस तरह तुर्वसुवंश का स्वतंत्र अस्तित्व नष्ट करके, उसे पूरुवंश में शामिल कर लिया गया। किंतु पद्म के अनुसार, तुर्वसुवंश में आगे चल कर, दुष्कृत, शरूथ, जनापीड ये राजा उत्पन्न हुये। उनमें से जनापीड राजा को पांडय, केरल, चोल्य एवं कुल्य नामक चार पुत्र थे। इन चारों पुत्रों ने (दक्षिण भारत में क्रमशः पांडय, केरल, चोल एवं कुल्य कोल) राज्यों की स्थापना की (वायु. ९९.६)।

२. एक पांडयवंशीय राजा। श्रीकृष्ण ने इसका वध किया (म. द्रो. २२.१६७*)।

३. पांडय राजा मलयध्वज का नामांतर। इसके पिता का वध श्रीकृष्ण ने किया (पांडय २. देखिये)। फिर अपने पिता के वध का बदला लेने के लिये, पांडयराज मलयध्वज ने भीष्म, द्रोण एवं कृप से अस्त्रविद्या प्राप्त की एवं यह कर्ण, अर्जुन, रुक्मि के समान शूर बना।

यह श्रीकृष्ण की द्वारकानगरी पर आक्रमण करना चाहता था। किंतु इसके सुहृदों ने इसे इस साहस से परावृत्त किया एवं यह पांडवों का मित्र बना।

यह द्रौपदीस्वयंवर में (म. आ. १७७.१८१६*) तथा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में (म. स. ४८.४७७*) उपस्थित था।

भारतीय युद्ध में, यह पांडवों के पक्ष में शामिल था (म. उ. १९.९)। इसके रथ पर सागर के चिह्न से युक्त ध्वजा फहराती थी एवं इसके रथ, के अश्व चन्द्रकिरण के समान श्वेत थे। इसके अश्वों के उपर 'वैदूर्यमणियों' की जाली बिछायी थी। (म. द्रो. २४.१८३*) अंत में अश्वत्थामा ने इसका वध किया (म. क. १५. ३–४३)।

महाभारत में इसके लिये निम्नलिखित नामांतर प्राप्त है:—

(१) चित्रवाहन—यह मणलूर का नृप, एवं अर्जुन की पत्नी चित्रांगदा का पिता था (म. आ. २०७.१३–१४)।

(२) मलयध्वज पांडय—सहदेव ने अपने दक्षिण दिग्विजय में इसे जीता था (म. स. परि. १. १५. ६७)।

(३) प्रवीर पांडय—यह पांडय देश का राजा था (म. क. १५.१–२)।

४. विदर्भ देश का राजा। यह महान् शिवभक्त था। एक दिन प्रदोष के समय यह शिवपूजा कर रहा था। नगर के बाहर कुछ आवाज सुनाई देने पर, शिवपूजा वैसी ही अधूरी छोड़कर यह बाहर आया। पश्चात् इसके राज्य पर हमला करने के लिये आये शत्रु के प्रधान का इसने वध किया।

शत्रुवध का कार्य समाप्त कर यह घर वापस आया एवं शिव की पूजा वैसी ही अधूरी छोड़कर इसने अन्नग्रहण किया। इस पाप के कारण, अगले जनम में इसे सत्यरथ नामक राजा का जन्म प्राप्त हुआ एवं शत्रु के हाथों इसकी

अकाल मृत्यु हो गयी (शिव. शतरुद्र ३१.४७–५५; सत्यरथ देखिये)।

पात—ऐरावत कुल का एक नाग। जनमेजय के सर्पसत्र में यह अपने पातर नामक मित्र के साथ मारा गया (म. आ. ५७.१२)।

पातालकेतु--जालंधर की सेना का एक असुर (पद्म. उ. १२)।

२. एक असुर। विश्वावसु नामक गंधर्व की मदालसा नामक कन्या का हरण कर, यह उसे पाताल ले गया। ऋतध्वज नामक राजा ने इसे पराजित कर मदालसा को मुक्त किया (ऋतध्वज देखिये)।

पाथ्य—वृषन् ऋषि का पैतृक नाम (वृषन् पाथ्य देखिये)।

पादप--वसिष्ठकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

पादपायन—मत्स्य के अनुसार पालंकायन ऋषि का नामांतर (पालंकायन देखिये)।

पापनाशन—दमन नामक शिवावतार का शिष्य।

पायु—अंगिराकुल का एक ऋषि।

पायु भारद्वाज— एक सूक्तद्रष्टा (ऋ. ६.७५)। यह दिवोदास राजा का आश्रित था (अश्वत्थ देखिये)। भारद्वाज नामक ऋषि की 'पायु' उपाधि थी (ऋ. ६.४७.२४)।

युद्ध के शस्त्रों का वर्णन करनेवाले, तथा राजाओं को युद्ध के लिये आवाहन करनेवाले ऋग्वेद के एक युद्ध-सूक्त के प्रणयन का श्रेय पायु को दिया गया है (ऋ. ६.७५)। बृहद्देवता के अनुसार, अभ्यावर्तिन् चायमान एवं प्रस्तोत सांर्जय नामक राजाओं को सहाय देने के लिए, इसने इस सूक्त की रचना की थी (बृहद्दे. ५.१२४)।

पार--(सो. पूरु.) कान्यकुब्ज देश का राजा। भागवत, विष्णु एवं मत्स्य के अनुसार, यह 'पृथुसेन' एवं वायु के अनुसार, यह 'पृथुषेण' का पुत्र था। मत्स्य में इसे 'पौर' कहा गया है। इसके पुत्र 'नीप' नामक सामूहिक नाम से प्रख्यात थे।

२. (सो. पूरु.) एक नीपवंशीय राजा। विष्णु एवं वायु के अनुसार, यह समर राजा का पुत्र था।

इसका वंशक्रम भागवत में एवं अन्य पुराणों में विभिन्न पद्धति से दिया गया है, जो इस प्रकार है:--

भागवत	अन्य पुराण
—	नीप
—	समर
—	पार
—	पृथु
—	सुकृति
पार	विभ्राज
नीप	अणुह
ब्रह्मदत्त	ब्रह्मदत्त

पुराणों में प्राप्त इन दो वंशक्रमों को एकत्र करने पर *'पार' 'एवं' 'विभ्राज'* ये दोनों एक ही थे, एवं पार का नामान्तर विभ्राज था, ऐसी गलत धारणा हो जाती है। *भागवत में दिये वंशक्रम में नीप से अणुह तक के पाँच* राजाओं के नाम नहीं दिये गये है। इस कारण, यह गड़बड़ी हो गयी है।

३. (सो. अनु.) एक राजा। विष्णु के अनुसार यह अंगराजा का पुत्र था।

४. दक्षसावर्णि मन्वन्तर का एक देवगण।

पारःकारिरेव—'पारिकारारिरेव' नामक अंगिरा-कुल के गोत्रकार।

पारण--अगस्त्यकुल में उत्पन्न एक गोत्रकार ऋषिगण।

पारद--एक प्राचीन जाति का नाम। ये लोग आधुनिक उत्तर बलूचिस्तान के प्रदेश में कहीं रहते थे। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के समय, ये लोग हर तरह के "उपायन" ले कर उपस्थित हुये थे (म. स. ४७.१०)।

महाभारतकालीन एक लोकसमूह। ये लोग द्रोणाचार्य के साथ भीष्मजी के पीछे पीछे चल रहे थे (म. भी. ८३.७)।

२. एक राजा। हरिश्चन्द्र के वंश के गर राजा का राज्य जीतनेवाले राजाओं में से यह एक था। गर राजा के पुत्र सगर ने, इसके सिर के सारे केशों का मुंडन कर इसे मुक्त किया था (पद्म. उ. २०)।

पारशव—धृतराष्ट्र एवं पांडु राजा के बंधु विदुर का नामांतर। शूद्रा के गर्भ से ब्राह्मणद्वारा उत्पन्न पुत्र को 'पारशव' कहते थे (म. अनु. ४८.५)। अंबलिका रानी की शूद्र दासी के गर्भ से व्यासमुनि द्वारा विदुर का जन्म हुआ। इस कारण उसे 'पारशव' कहते थे।

पारशवी—विदुर की पत्नी। यह देवराज की कन्या थी।

पारशव्य—तिरिंदिर ऋषि का पैतृक नाम (सां. श्रौ. सू. १६.११.२०)। 'परशु' का वंशज होने से तिरिंदिर को यह उपाधि प्राप्त हो गयी होगी।

पारस्कर—शुक्लयजुर्वेद के 'पारस्कर' गृह्यसूत्र' नामक सुविख्यात ग्रंथ का कर्ता। डॉ. जयसवाल के अनुसार पारस्करगृह्यसूत्र का रचनाकाल ५०० ई. पू. एवं उसके वर्तमान संस्करण का काल २०० ई. पू. है।

गार्हस्थ्यजीवनविषयक धार्मिक विधियों का वर्णन करना यह गृह्यसूत्रों का प्रमुख उद्देश्य है। 'पारस्कर' गृह्य-सूत्र के अतिरिक्त अन्य प्रमुख गृह्यसूत्रों के नाम इस प्रकार हैः— आश्वलायन-गृह्यसूत्र, शांखायन-गृह्यसूत्र, मानव-गृह्यसूत्र, बौधायन-गृह्यसूत्र आपस्तंब-गृह्यसूत्र हिरण्यकेशी-गृह्यसूत्र, भारद्वाज-गृह्यसूत्र, पारस्कर-गृह्यसूत्र, द्राह्यायण-गृह्यसूत्र, गोभिल-गृह्यसूत्र, खादिर-गृह्यसूत्र तथा कौशिक-गृह्यसूत्र।

कई अभ्यासकों के अनुसार, पारस्कर एवं कात्यायन एक ही थे।

पारावत—वैदिककाल में यमुना नदी के तट पर रहने वाला एक लोकसमूह (ऋ. ८.३४.१८)। पंचविंश ब्राह्मण में, इन लोगों का निर्देश, 'पारावत-गण' नाम से किया गया है एवं तुरश्रवस् को इनका पुरोहित बताया गया है (पं. ब्रा. ९.४.१०-११)। इन लोगों द्वारा दिये गये दानों का निर्देश वसुरोचिष् के दानस्तुति में किया गया है (ऋ. ८.३४.१८)। सरस्वती नदी को 'पारावतघ्नी' (पारावतों का वध करनेवाली) कहा गया है (ऋ. ६. ६१.२)। यह निर्देश भी, इनके यमुना नदी के तट पर रहने की पुष्टि करता है।

हिलेब्रांट के अनुसार, गेड्रोसिया की उत्तरी सीमा पर बसे हुये टॉलेमीकालीन 'पारुएटे' लोग ये ही थे (वेदिये माइथोलोजी १.९७)। इन लोगों का मूल नाम 'पर्वतीय' था एवं पश्चात् अपभ्रंश से पारावत बना।

२. वसिष्ठ के बारह पुत्रों का सामूहिक नाम। बारह 'पारावतों' के नाम इस प्रकार हैं:— अजिह्म, अजेय, क्षायु, विद्यमान, प्रचेतस्, महाबल, महामान, दान, यज्वत्, विश्रुत, विश्वेदेव तथा समंज (ब्रह्मांड. २.३६. ९-१५)।

३. स्वारोचिष मन्वंतर का देवगण।

४. ऐरावत कुल का एक सर्प, जो जनमेजय के सर्पसत्र में जल कर मर गया था (म. आ. ५२.१०)।

पाराशर—वैदिक कालीन एक आचार्य। पाराशर ने ६१ श्लोकों से युक्त पाराशरी शिक्षा लिखी है। यह शुक्लयजुर्वेद की शिक्षा है। शुक्लयजुर्वेद के कहे जानेवाले स्वर, आनुनासिक, विसर्ग आदि का आजकल प्रचलित वर्णन के समान वर्णन इस शिक्षा में प्राप्त है। याज्ञवल्की, वासिष्ठी, कात्यायनी, पाराशरी, गौतमी, मांडव्यी तथा पाणिनि आदि शिक्षाओं का उल्लेख इस शिक्षा में प्राप्त है (श्लो. ७७-७८)। उससे प्रतीत होता है कि यह शिक्षा काफी आधुनिक काल की होगी। यह शिक्षा कहने वाले को वैष्णवपद प्राप्त होगा, ऐसा फल अन्त में बताया गया है (श्लो. १६९)।

पाराशरीकौंडिनीपुत्र—वैदिक कालीन एक ऋषि। यह गार्गीपुत्र का शिष्य था (श. ब्रा. १४.९.४.३०)। माध्यंदिन शाखा के 'बृहदारण्यक उपनिषद' में दिये अंतिम 'विद्यावंश' में भी इसका निर्देश प्राप्त है (बृ. उ. ६.४.३०)।

पाराशरीपुत्र—वैदिक कालीन एक ऋषि। 'बृहदा-रण्यक उपनिषद' में दिये 'विद्यावंश' में इसे विभिन्न स्थानों में निम्नलिखित आचार्यों का शिष्य कहा गया है— कात्यायनीपुत्र (बृ. ६.५.१), औपस्वतीपुत्र (बृ. उ. ६.५.१)। वात्सीपुत्र (बृ. उ. ६.५.२)। तथा वार्कारूणीपुत्र (श. ब्रा. १४.९.४.३१)। इसके शिष्यों में भारद्वाजीपुत्र, औपस्वतीपुत्र तथा वात्सीपुत्र प्रमुख थे। इस में संदेह नहीं कि, इन विद्यावंशों में एक ही 'पाराशरीपुत्र' अभिप्रेत न हो कर, इनसे अलग अलग व्यक्तियों का तात्पर्य है।

पाराशर्य—एक उपनिषदकालीन ऋषि। बृहदारण्यक उपनिषद में दिये गये 'विद्यावंशों' में इसे अन्योन्य स्थानों में भरद्वाज, वैजवापायन तथा जातूकर्ण्य का शिष्य कहा गया है (बृ. उ. २.६.२; ४.६.३)। वैजवापायन का शिष्य होने का अन्यत्र समर्थन हैं (तै. आ. १.९.२)। सामविधान ब्राह्मण में किसी व्यास पाराशर्य ऋषि को विष्वक्सेन का शिष्य बताया गया है (सामविधान ब्रा. ३.४१.१)।

इसके शिष्यों में पाराशर्यायण, सैतव प्राचीन योग्य तथा भारद्वाज ये प्रमुख थे (बृ. उ. २.६.२-३)। पाणिनि के सूत्रों में, भिक्षुसूत्र रचियता पाराशर्य का निर्देश है (४.३.११०)।

२. युधिष्ठिर की सभा का एक ऋषि (म. स. ४.११) हस्तिनापुर जाते समय, श्रीकृष्ण से इसकी भेंट हुई थी।

३. सांकृत्य का शिष्य (बृ. उ. २.५.२०; ४.५.२६ माध्यं.)

पाराशर्य कौथुम—एक आचार्य। वायु तथा ब्रह्मांड के अनुसार, यह व्यास की सामशिष्यपरंपरा में से एक था। यह कुथुमिन् का शिष्य रहा होगा।

पाराशर्यायण—पाराशर्य नामक आचार्य का शिष्य। इसका शिष्य घृतकौशिक (बृ. उ. २.६.३; ४.६.४)।

पारिकारारिरेव—अंगिराकुल का गोत्रकार।

पारिक्षित—जनमेजय नामक आचार्य का पैतृक नाम। अथर्ववेद के कुछ मंत्रों का नाम 'पारिक्षितिऋचा' दिया गया है (ऐ. ब्रा. ६.३२; सां. ब्रा. ३०.५; गो. ब्रा. २.६.१२)। वे मंत्र अथर्ववेद में हैं (१२७.७–१०) पारिक्षित आगे चल कर नामशेष हो गये होंगे, क्योंकि पारिक्षित कहाँ होंगे, इसके बारे में आध्यत्मिक उपपत्ति जोड़ी गयी है (बृ. उ. ३.३.१)। उससे यह इस समय भी प्राचीन था। यह शब्द पारिक्षित तथा पारीक्षित दोनों प्रकार से उपलब्ध है।

पारिजात—नारद के साथ मय की सभा में आया हुआ एक ऋषि (म. स. ५.३)।

२. पुलह तथा श्वेता का पुत्र (ब्रह्मांड. ३.७.१८०–१८१)।

पारिजातक—जितात्मा मुनि, जो युधिष्ठिर की सभा में विराजते थे (म. स. ४.१२)।

पारिप्लव—रैवत मन्वन्तर के भूतरजसों में एक देवगण।

पारिभद्र—(स्वा. प्रिय.) एक राजा। यह प्रियव्रतपुत्र यज्ञबाहु के सात पुत्रों में से पाँचवा पुत्र था।

पारिभद्रक—कौरव पक्ष के योद्धाओं का एक दल, जो संभवतः परिभद्र देश का निवासी था (म. भी. ४७.९)।

३. ऐरावतकुल में उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजय के सर्पसत्र में जलकर मर गया था (म. आ.)।

पारियात्र—(सू. इ.) भागवतमत में अनीह का, वायुमत में अहीनगु का, विष्णुमत में रुरु का तथा भविष्य मत में कुरु का पुत्र।

२. सर्पसत्र में दग्ध हुए ऐरावतकुल का एक सर्प (म. आ. ५२.१०)।

पारिश्रुत—स्कन्द का एक सैनिक (म. श. ४४.५५)।

पारुच्छेप—अनानत ऋषि का पैतृक नाम।

पार्णवल्कि—निगद ऋषि का पैतृक नाम।

पार्थ—कुन्ती (पृथा) के पुत्रों के लिये प्रयुक्त मातृक नाम। महाभारत में यह नाम प्रायः युधिष्ठिर एवं अर्जुन के लिये ही प्रयुक्त है। किंतु कई जगह कुन्ती के तीनों पुत्रों के लिये, एवं एक स्थान पर 'कर्ण' के लिये भी इसका प्रयोग किया गया है (म. उ.)।

पार्थव—अभ्यावर्तिन् चायमान देखिये।

पार्थिव—अंगिराकुल का गोत्रकार गण।

पार्थुश्रवस—धृतराष्ट्र नामक आचार्य का पैतृक नाम (जै. उ. ब्रा. ४.२६.१५) शांत्युदक के समय कौन सा मंत्र कहना चाहिये इस संबंध में इस आचार्य का मत दिया गया है (कौ. सू. ९.१०)। मधुपर्क गाय से करे ऐसा इसका कथन है (कौ. सू. १७.२७)।

पार्थ्य—तान्व नामक वैदिक आचार्य का पैतृक नाम। इसके द्वारा दान माँगने का निर्देश प्राप्त है (ऋ. १०.९३.१५)। सर्वानुक्रमणी से ऐसा प्रतीत होता है की 'पार्थ्य' के स्थान पर 'पार्थ' है जो तान्व का पैतृक नाम है। आश्वलायन श्रौतसूत्रों में भी पार्थ का निर्देश प्राप्त है (१२.१०; तान्व देखिये)।

पार्वणि—कार्षणि देखिये।

पार्वति—दक्ष का पैतृक नाम (श. ब्रा. २.४.४.६; कौ. ब्रा. ४.४)।

पार्वती—हिमालय तथा मेना की कन्या एवं शिवजी की पत्नी। नारद के कहने पर हिमालय ने इसे शंकर को ब्याह दिया। एक समय यह शंकर के साथ क्रीडा कर रही थी, तब इसने शंकर के नेत्र बंद कर लिये। शंकर के नेत्रों में सोम, सूर्य तथा अग्नि का वास होने के कारण चारों ओर अंधकार फैल गया तथा विनाश (क्षय) आरंभ हो गया। ऋषियों के कहने पर इसने क्रीड़ा रोक दी। बाद में शंकर के कथनानुसार इसने अरुणाचल पर तपश्चर्या की। गौतम ने इसे अरुणाचल का माहात्म्य बताया (स्कन्द. १.३. ३–१२)।

पहले यह काले रंग की थी परंतु अनरकेश्वर तीर्थ में स्नान कर वहाँ के लिंग के समक्ष दीपदान करने के कारण यह गौरवर्ण की हो गयी (स्कंद. ५.१.३०)। इसने 'गौरीव्रत' का निर्माण किया तथा उसकी महिमा धर्मराज को बतायी (भवि. ब्राह्म. २१)।

एक समय कल्पवृक्ष के नीचे बैठ कर इसने सुंदर स्त्री की इच्छा की, जिससे 'अशोकसुंदरी' एक सुंदर स्त्री

उत्पन्न हुई। उसे पार्वती ने अपनी कन्या माना तथा उसे वर दिया 'तुम सोमवंश के राजा नहुष की स्त्री होगी' (अशोकसुंदरी देखिये)।

इसके शरीर के मल से गजानन की उत्पत्ति हुयी। शंकर से इसे कार्तिकेय नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। इसके अतिरिक्त बाण तथा वीरभद्र को इसने अपने पुत्र माने थे। देवताओं की प्रार्थना पर इसने दुष्टों के संहार के लिये अनेक अवतार लिये। इस कारण इसके अनेक नाम हैं (देवी, दुर्गा तथा सती देखिये)।

पार्वतीय—महाभारत काल का एक राजा, जो कुपथ नामक दानव के अंश से उत्पन्न हुआ था (म. आ. ६१ ५५८*)।

२. दुर्योधन के मामा शकुनि का नामांतर।

३. महाभारतकालीन एक लोगसमूह। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के समय, ये लोग उपहार ले कर आये थे (म. स. ४८.७)। पांडवों के वनवास काल में जयद्रथ की सेना में शामिल हो कर, इन लोगों ने पांडवों पर आक्रमण किया था (म. व. २५५.८)।

भारतीययुद्ध में ये लोग कौरवदल में शामिल थे, एवं शकुनि तथा उलूक के साथ रहा करते थे (म. क. ३१.१३)। पांडव वीरों ने इनका युद्ध में संहार किया (म. श. १.२६)।

पार्वतेय—एक राजर्षि, जो क्रयनामक दैत्य के अंश से उत्पन्न हुआ था (म. आ. ६१.५५५*)।

पार्षत—द्रुपद राजा का नामांतर (म. आ. १२१. ९)।

पार्षद्वाण—एक वैदिक राजा। 'पृषद्वाण' का वंशज होने से इसे यह नाम प्राप्त हुआ। एक आश्चर्यजनक कार्य करनेवाले राजा के रूप में, इसका निर्देश ऋग्वेद में प्राप्त है (ऋ. ८.५१.२)। ऋग्वेद में इसके बारे में जो सूक्त प्राप्त है, वह श्रुष्टिगु द्वारा रचित हैं। यह प्रस्कण्व का आश्रयदाता था (ऋ. ८.५१.२)।

पार्ष्णि शैलन—वैदिककालीन एक आचार्य (जै. उ. ब्रा. २.४.८)।

पार्ष्णि—चेकितान राजा का सारथि।

पार्ष्णिक्षेमन्—एक विश्वेदेव (म. अनु. ९१.३०)।

पाल—वासुकि के कुल में उत्पन्न एक नाग जो जनमेजय के सर्पसत्र में दग्ध हो गया (म. आ. ५२.५)। पाठभेद 'पैल'।

पालक—(प्रद्योत. भविष्य.) एक राजा। यह प्रद्योत राजा का पुत्र था। मत्स्य के अनुसार, इसने अट्ठाइस वर्षों तक, तथा वायु तथा ब्रह्मांड के अनुसार, चौबीस वर्षों तक राज्य किया।

पालकाप्य—एक वैद्यकाचार्य एवं 'हस्त्यायुर्वेदसंहिता' नामक सुविख्यात ग्रन्थ का रचयिता। प्रस्तुत ग्रन्थ में, हाथियों के रोग–निदान की विवेचना प्राप्त है। इस ग्रंथ में निम्नलिखित विषयों की व्याख्या की गयी है:— १. महारोगस्थान (अध्याय.संख्या १८); २. क्षुद्ररोगस्थान (अध्याय. ७२); ३. शल्यस्थान (अध्याय. ३४); ४. उत्तरस्थान (अध्याय. ३६)।

पालकाप्य ने अंगदेश के राजा रोमपाद को 'हस्त्यायुर्वेद' सिखाया था। इसका यह ग्रंथ प्रायः श्लोकबद्ध है, किन्तु कई अध्यायों की रचना गद्य में भी की गयी है।

'हस्त्यायुर्वेद' के अतिरिक्त पालकाप्य के लिखे अन्य ग्रंथ इस प्रकार हैं:— १. गजायुर्वेद (अग्नि. २२९.४४); २. गजचिकित्सा; ३. गजदर्पण; ४. गजपरीक्षा। इन में से 'गजायुर्वेद' संभवतः हस्त्यायुर्वेद का ही नामांतर होगा।

पालंकायन—वसिष्ठकुल का एक गोत्रकार। मत्स्य में इसका नाम 'पादपायन' दिया गया है (मत्स्य. २००.१२)।

पालित—(सो. क्रोष्टु.) एक राजा। विष्णु के अनुसार यह परावृत राजा का पुत्र था। इसके 'परिघ' एवं 'पुरुजित्' नामांतर भी प्राप्त हैं। (परिघ १. देखिये)।

पालिता—स्कंद की अनुचरी मातृका (म. श. ४५. ३)। पाठभेद-(भांडारकर संहिता)-'पलिता'।

पालितक—पूषन् द्वारा स्कंद को दिये गये पार्षदों में से एक। दूसरे पार्षद का नाम 'कालिक' था (म. श. ४४.३९)।

पालिशय—वसिष्ठकुल के गोत्रकार ऋषिगण।

पावक—(स्वा. उत्तान.) एक राजा। यह विजिताश्व का पुत्र था। वसिष्ठ के शाप से, इसे मनुष्ययोनि में जन्म लेना पड़ा (भा. ४.२४.४)।

२. एक वैदिक सूक्तद्रष्टा। यह अग्नि एवं 'स्वाहा' का पुत्र था (अग्नि एवं अग्नि पावक देखिये)।

३. 'प्रजापति भरत' नामक अग्नि का पुत्र। इसे 'महत्' नामांतर भी प्राप्त है (म. व. २०९.८)।

पावकाक्ष—राम की सेना का एक वानर (वा. रा. यु. ७३.६४)।

पावन—भगवान् कृष्ण का मित्रविंदा नामक पत्नी से उत्पन्न पुत्र (भा. १०.६१.१६)

२. दीर्घतपस् ऋषि का कनिष्ठ पुत्र। इसके बड़े भाई का नाम 'पुण्य' था (पुण्य १, देखिये)।

३. एक विश्वेदेव (म. अनु. ९१.३०)।

पावमान्य—एक वैदिक मंत्रसंघ (ऐ. आ. २.२. २)। आश्वलायन लोगों के तर्पण में, इनका उल्लेख है।

पाशद्युम्न वायत—वैदिककालीन एक राजा। पाशद्युम्न राजा का 'वायत' पैतृक नाम है।

इसके द्वारा किये गये यज्ञ में, इन्द्र स्वयं उपस्थित हुआ था। किन्तु वसिष्ठ के कहने पर, इन्द्र इसके यज्ञ को त्याग कर, सुदास राजा के यज्ञ में चला गया (ऋ. ७. ३३.२)।

पाशिन्—(सो. कुरु.) धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों में से एक। भीमसेन ने इसका वध किया था (म. क. ६२.२-३)।

पाप्याजिति—अंगिराकुल का एक गोत्रकार। 'पौषमजिति' इसी का पाठभेद है (पौषाजिति देखिये)।

पिंग—अंगिराकुल का एक गोत्रकार।

पिंगल—एक छंदःशास्त्रज्ञ आचार्य एवं छंदःशास्त्र नामक सुविख्यात ग्रंथ का कर्ता।

इसे पिंगलाचार्य या पिंगलनाग कहते थे (भट्ट हलायुध टीका)। कई विद्वानों के अनुसार, यह सम्राट अशोक का गुरु था। किन्तु 'पाणिनिशिक्षा' की 'शिक्षाप्रकाश' नामक टीका के अनुसार 'छन्दःशास्त्र' का रचयिता पिंगल, वैयाकरण पाणिनि का अनुज था (शिक्षासंग्रह पृ. ३८५): कात्यायन के सुविख्यात वृत्तिकार षड्गुरुशिष्य का भी यही मत है (वेदार्थदीपिका पृ. ९७)। अन्य विद्वानों के अनुसार यह पाणिनि का मामा था।

छन्दःशास्त्र—छन्दःशास्त्र को छः वेदांगों में से एक गिना जाता है। पाणिनि के गणपाठ में छन्दःशास्त्र के छंदोविजिति, छंदोविचिति, छंदोमान तथा छंदोभाषा ये चार पर्याय प्राप्त हैं (ऋगयनादिगण ४.३.७३)। शेष पाँच वेदांग इस प्रकार हैं, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त तथा ज्योतिष।

छन्दःशास्त्रविषयक प्राचीनतम उपलब्ध ग्रन्थ 'ऋक्प्रातिशाख्य' है। उस ग्रंथ का मुख्य विषय व्याकरण है, किंतु उसमें वैदिक छंदों पर भी प्रकाश डाला गया है।

'ऋक्प्रातिशाख्य' में उपलब्ध छंद विषयक जानकारी काफ़ी अधूरी है, इसी कारण पिंगल का 'छंदःशास्त्र' वेदांग का सर्वाधिक प्राचीन एवं महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ माना जाता है। इसमें वैदिक छंदों के साथ लौकिक छंदों पर भी प्रकाश डाला गया है। इस ग्रन्थ में आरंभ से चौथे अध्याय के सातवें सूत्र तक, वैदिक छंदों की जानकारी दी गयी है। शेष अवशिष्ट ग्रन्थ में लौकिक छंदों की चर्चा की गयी है। इसी ग्रन्थ का एक संस्करण 'प्राकृतपिंगल' नाम से प्रसिद्ध है, जिसमें प्राकृत के छन्दों की जानकारी दी गयी है। 'प्राकृतपिंगल' का रचनाकाल १४ वीं शती माना जाता है।

पूर्वाचार्य—छन्दःशास्त्र के प्रवर्तक भगवान् शिव माने गये हैं। छन्दःशास्त्र की गुरुपरंपरा इस प्रकार दी गयी है:— शिव—बृहस्पति—दुश्च्यवन—इंदु—मांडव्य —पिंगल।

पिंगल के 'छन्दःशास्त्र' में निम्नलिखित पूर्वाचार्यों का निर्देश प्राप्त है:— अग्निवेश्य, आंगिरस, काश्यप (७. ९), कौशिक (३.६६), क्रौष्टुकि (३.२९), गौतम (३.६६), ताण्डिन् (३.३६), भार्गव (३.६६), माण्डव्य (७.३४), यास्क (३.३०), रात (७.३४), वसिष्ठ (३.६६), सैतव (५.१८)।

२. कश्यप तथा कद्रू से उत्पन्न एक नाग (म. आ. ३१.९)।

३. भृगुकुल का एक ऋषि। यह जनमेजय के सर्पसत्र में सदस्य था (म. आ. ४८.६)। इसी नाम के एक और ऋषि का निर्देश महाभारत में अन्यत्र प्राप्त है (म. आ. ४८.७)। पाठभेद–'बोलपिंगल'।

४. एक यक्षराज, जो भगवान शिव का सखा था। यह शिव की रक्षा के लिए श्मशानभूमि में निवास करता था (म. व. २२१.२२)।

५. सूर्य के 'अठारह विनायक' नामक अनुचरों में से एक। सूर्य के द्वारा प्राप्त वरदान के बल पर, दैत्यों ने देवों को त्रस्त करना प्रारंभ किया। तब उन दैत्यों का संहार करने के हेतु, ब्रह्मादि देवों ने 'अठारह विनायक' नामक सशस्त्र अनुचरों का एक दल सूर्य के पास तैनात किया। उनमें से पिंगल नामक अग्नि की योजना सूर्य के दक्षिण दिशा में की गयी। यह अग्नि का वर्ण 'पिंगल'

होते के कारण, इसे यह नाम प्राप्त हुआ था (साम्ब. १६; भवि. ब्राह्म. ५६; ७६; ११७)।

६. पुरुकुत्स नगर का एक दुराचारी ब्राह्मण। इसकी पत्नी व्यभिचारिणी थी, जिसने इसका वध किया।

अगले जन्म में, इसकी पत्नी को तोते का एवं इसे गीध का जन्म प्राप्त हुआ। पूर्वजन्म की शत्रुता याद कर के, गीध (पिंगल) ने तोते का वध किया। बाद में एक व्याध ने इसका भी वध किया। पश्चात्, गंगातट पर रहनेवाले वटु नामक ब्राह्मण ने गीता के पाँचवें अध्याय को सुनाकर इनका उद्धार किया। इस प्रकार इन दोनों को पितृलोक की प्राप्ति हुयी (पद्म. उ. १७९)।

७. एकादश रुद्रों में से एक। ब्रह्मा ने अपनी ग्यारह कन्याओं से विवाह कर, 'एकादश रुद्र' नामक ग्यारह पुत्रों को उत्पन्न किया। उनमें पिंगल एक था (पद्म. सृ. ४०)।

८. कश्यप एवं सुरभि का पुत्र (शिव. रुद्र. १८)।

९. एक राक्षस। भीम नामक एक व्याध शिकार के लिए अरण्य में घूम रहा था। उस समय पिंगल राक्षस उसके पीछे लग गया। फिर भीम शमी के पवित्र पेड़ पर चढ़ गया। पेड़ पर चढ़ते समय, शमी की एक टहनी टूट कर, नीचे स्थित गणेशजी की मूर्ति पर गिर पड़ी। इस पुण्यकर्म के कारण, भीम व्याध एवं पिंगल राक्षस का उद्धार हो गया (गणेश. २.३६)।

१०. सूर्य का एक अनुचर, एवं लेखक (भवि. ब्राह्म. ५६; ७६; १२४)।

पिंगलक--एक यक्ष, जो शिव का सखा एवं स्कन्द का अनुचर था (म. स. १०. १७; म. व. २२१. २२)।

पिंगला--अवन्तिनगर की एक वेश्या। मंदर नामक एक ब्राह्मण इस पर आसक्त था।

इसने ऋषभ नामक योगी की सेवा की। इस पुण्य के कारण, इसे अगले जन्म में चंद्रांगद राजा के कुल में जन्म प्राप्त हुआ। यह चंद्रांगद की पत्नी सीमंतिनी के गर्भ से उत्पन्न हुयी, तथा इसका नाम कीर्तिमालिनी रखा गया। पश्चात्, यह भद्रायु राजा की पत्नी बनी (भद्रायु देखिये)।

२. विदेह देश के मिथिला नगर की एक वेश्या। एक दिन यह हर रोज़ की तरह अर्धरात्रि तक प्रतीक्षा करती रही, पर कोई ग्राहक न आया। इस घटना से इसे वैराग्य उत्पन्न हुआ, तथा अंत में इसे मोक्ष प्राप्त हुआ (भा. ११.८.२२-४४)। इसने अवधूत को आत्मज्ञान का उपदेश दिया था, जिससे वह इसे अपना गुरु मानता था (भा. ११.७.३४)।

इसकी जीवनगाथा भीष्म ने युधिष्ठिर को सुनायी थी (म. शां. १६८. ४६-५२)।

३. अयोध्या नगरी की एक स्त्री। एक बार यह विषयोपभोग की इच्छा से, राम के पास गयी। किन्तु एकपत्नीव्रतधारी राम ने, इसकी माँग अस्वीकार कर दी, तथा कहा, 'कृष्णावतार में तुम कंस की कुब्जा नामक दासी बनोगी। उस समय कृष्ण के रूप में, मैं तुम्हें स्वीकार करूँगा'।

यह बात जब सीता को ज्ञात हुयी, तब क्रुद्ध हो कर उसने पिंगला को शाप दिया 'राम से विषय-भोग की लिप्सा रखनेवाली सुंदरी, तेरा शरीर अगले जन्म में तीन स्थानों से टेढ़ा होगा'। पिंगला ने सीता से दया की याचना की। फिर सीता ने कहा, 'अगले जन्म में कृष्ण तुम्हारा उद्धार करेगा' (आ. रा. विलास. ८)।

पिंगलाक्ष--शिव के रुद्रगणों में से एक।

पिंगा--मांडूकी ऋषि की द्वितीय पत्नी (ऐतरेय देखिये)।

पिंगाक्ष--एक शबर। परोपकार करते हुये, इसकी मृत्यु हो गयी। इस कारण, मृत्यु के पश्चात यह 'निर्ऋति लोक' का अधिपति बन गया (स्कन्द ४. १.१२)।

२. मणिभद्र नामक शिवगण एवं पुण्यजनी के पुत्रों में से एक (मणिभद्र देखिये)।

पिंगाक्षी--स्कन्द की अनुचरी मातृका (म. श. ४५.२१)।

पिच्छल--वासुकिवंश में उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजय के सर्पसत्र में जल कर मर गया (म. आ. ५२. ५)। पाठभेद (भांडारकर संहिता)--'पिच्छिल'।

पिजवन--एक वैदिक राजा, एवं सुदास राजा का पिता (नि. २.२४)। ऋग्वेद में, सुदास के लिए 'पैजवन' उपाधि पैतृक नाम के नाते प्रयुक्त की गयी है (ऋ. ७. १८.२२; २३; २५; ऐ. ब्रा. ८.२१)।

कई अभ्यासकों के अनुसार, 'पिजवन' एवं 'पंचजन', दोनों एक ही थे (पंचजन ३. देखिये)।

पिंजरक--कश्यप एवं कद्रू पुत्र, एक नाग (म. आ. ३१.६; म. उ. १०१.१५)।

पिठर--वरुण की सभा का एक असुर (म. स. ९. १३)।

पिठरक--कश्यप एवं कद्रु का पुत्र, एक नाग (म. आ. ३१.१४)। यह जनमेजय के सर्पसत्र में जल कर मर गया था (म. आ. ५२.१४)। पाठभेद--'पीठरक' (म. उ. १०१.१४)।

पिठीनस्--एक वैदिक राजा। इसके रक्षण के लिये, इंद्र ने रजि नामक दानव का वध किया था (ऋ. ६.२६.६)। सायणाचार्य के अनुसार, 'रजि' एक स्त्री का नाम है, जिसे इंद्र ने पिठीनस् को प्रदान किया था।

पिंडसेक्तृ--तक्षककुल का एक नाग, जो जनमेजय के सर्पसत्र में मारा गया (म. आ. ५२.७)। पाठभेद (भांडारकर संहिता)-'पिंडभेत्तृ'।

पिंडारक--कश्यपवंशी एक नाग, जो जनमेजय के सर्पसत्र में मारा गया (म. आ. ५२.१६)।

२. एक यादव राजा, जो द्रौपदीस्वयंवर में उपस्थित था (म. आ. १७७.१८)।

३. (सो. वसु.) एक राजा। यह वसुदेव राजा का पुत्र था। मत्स्य के अनुसार, यह उसे रोहिणी से, एवं वायु के अनुसार, पौरवी से उत्पन्न हुआ था।

४. धृतराष्ट्रकुल का एक नाग, जो जनमेजय के सर्पसत्र में मारा गया (म. आ. ५२.१६)।

पितरः--एक देवतासमूह। इन्हे 'पिंड' नामांतर भी प्राप्त है (म. शां. ३५५. २०)। मनुष्य प्राणी के पूर्वजों एवं सारे मनुष्यजाति के निर्माणकर्ता देवतासमूह, इन दोनों अर्थों में 'पितर' शब्द का उपयोग ऋग्वेद, महाभारत एवं पुराणों में मिलता है। प्राचीन भारतीय वाङ्मय में प्राप्त 'पितरों' की यह कल्पना प्राचीन ईरानी वाङ्मय में निर्दिष्ट 'फ्रवेशि' से मिलती जुलती है।

ऋग्वेद में प्राप्त 'पितृसूक्त' में पितरों के उत्तम, मध्यम, एवं अधम प्रकार दिये गये है (ऋ. १०.१५.१)। ऋग्वेद में निम्नलिखित पितरों का निर्देश प्राप्त हैः-अंगिरस, वैरूप, अथर्वण, भृगु, नगग्व, दशग्व (ऋ. १०.१४.५-६)। इनमें से 'अंगिरस' पितर प्रायः यम के साथ रहते थे (ऋ. १०.१४.३-५)। वे अग्नि से (ऋ. १०.६२.१), एवं आकाश से (ऋ. ४.२.१५) उत्पन्न हुये थे। नगग्व एवं दशग्व अंगिरस पितरों के ही उपविभाग थे।

पितरों को सोमरस प्रिय था (ऋ. १०.१५.१)। इन्हें यज्ञ में 'स्वधा' कह कर आहुति दी जाती थी। ये कुशासन पर सोते थे (ऋ १०.१५.५)। अग्नि एवं इंद्र के साथ, ये यज्ञभाग को स्वीकार करने के लिए उपस्थित होते थे (ऋ. १०.१५.१०)।

मृत व्यक्ति की आत्मा, अग्नि के माध्यम से यमलोक में बसे हुये पितरों तक पहुँच जाती थी (ऋ. १०.१६.१-२)। पितरो के इस मार्ग को 'पितृयाण' या 'अर्चिरादि' कहते थे (गी. ८.२४-२६)। पितरों का राजा यम था। यम का राज्य 'माध्यामिक' (पितृलोक) नामक लोक में स्थित था (निरुक्त ११.१८)। मानवों में पितृलोक पहुँचने वाला, पहिला मृतक यम था। इसलिये वह पितृलोक का राजा बना। पितृलोक का यह यमराज स्वर्ग में सर्वोच्च था। तैत्तिरीय ब्राह्मण में भूलोक एवं अंतरिक्ष के साथ, पितृलोक का निर्देश प्राप्त है, एवं उसे तृतीयलोक कहा गया है (तै. ब्रा. १.३.१०.५)। बृहदारण्यकोपनिषद में भी भूलोक, देवलोक, एवं पितृलोक ऐसे तीन लोकों का निर्देश प्राप्त है (बृ. उ. १.५.१६)।

शतपथ ब्राह्मण में, पितरों के सोमवंत, बर्हिषद, एवं अग्निष्वात्त, ऐसे तीन प्रकार दिये गये है (श. ब्रा. २.६.१.७)। उस ग्रन्थ के अनुसार, 'सोमयज्ञ,' 'चरुयज्ञ,' एवं 'सामान्ययज्ञ' करनेवाले व्यक्ति मृत्यु के बाद, क्रमशः सोमवन्त, बर्हिषद, एवं अग्निष्वात्त पितर बन जाते हैं।

मनु के अनुसार, पितरो का जन्म ऋषियों से हुआ, एवं उन पितरों से देव एवं मनुष्य जाति का निर्माण हुआ। आगे चल कर, देवों नें चर एवं अचर सृष्टि का निर्माण किया (मनु. ३.२०१)।

वैदिक वाङ्मय में, पितरों को देवों से अलग माना गया है। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार, मानववंश के गंधर्व, पितर, देव, सर्प, एवं मनुष्य ये पाँच प्रमुख विभाग थे। उनमें से, देव एवं पितरों से मनुष्यजाति का निर्माण हुआ (ऐ. ब्रा. ३.३१)।

उत्तरकालीन ग्रन्थों में तीन से अधिक पितरों का निर्देश पाया जाता है। 'नंदिपुराण' के अनुसार, आग्निष्वात्त, बर्हिषद, काव्य, सुकालिन् ये क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रों के पितर माने गये है। मनुस्मृति में इन चार वर्णों के पितरो के नाम, सोमप, हविर्भुज, आज्यप एवं सुकालिन् दिये गये हैं (मनु. ३.१९३-१९८)। मनु ने अन्य एक स्थान पर, अनग्निदग्ध, अग्निदग्ध, काव्य, बर्हिषद, आग्निष्वात्त, सौम्य इन पितरों को ब्राह्मणों के पितर कहा है (मनु. ३.१९९)।

पुराणों एवं महाभारत में प्रायः सर्वत्र सात पितृगणों का निर्देश प्राप्त है। स्कंदपुराण में नौ पितृगणों का निर्देश हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैः—अग्निष्वात्त,

बर्हिषद, आज्यप, सोमप, रश्मिप, उपाहूत, अयंतु, श्राद्धभुज, नांदिमुख (स्कंद. ४.२१६.९-१०)। इनमें से अग्निष्वात्त, बर्हिषद, आज्यप एवं सोमप, ये क्रमशः पूर्व, दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर दिशाओं के रक्षक हैं।

मार्कंडेय पुराण में पितरों के कुल ३१ गणों का निर्देश प्राप्त है, जिनके नाम इस प्रकार हैं:-- विश्व, विश्वभुज, आराध्य, धर्म, धन्य, शुभानन, भूतिद, भूतिकृत, भूति, कल्याण, कल्पताकर्तृ, कल्प, कल्पतराश्रम, कल्पताहेतु, अनघ, वर, वरेण्य, वरद, पुष्टिद, तुष्टिद, विश्वपातृ, धातृ, महत्, महात्मन, महित, महिमावत्, महाबल, सुखद, धनद, धर्मद, भूतिद। इनमें से शुभ्र, आरक्त, सुवर्ण एवं कृष्णवर्णीय पितरों की उपासना क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, एवं शूद्र करते हैं (मार्के. ९२.९२)।

पितृगणों में से निम्नलिखित पितर, अंगिरस एवं स्वधा के पुत्र माने जाते हैः—अग्निष्वात्त, बर्हिषद, सौम्य, आज्यप, साग्नि, एवं अनग्नि। दक्षकन्या स्वधा इनकी पत्नी थी, एवं उससे इन्हें वयुना एवं धारिणी नामक दो कन्यायें उत्पन्न हुयी थीं (भा. ४.१.६४)।

उत्पत्ति--वायुपुराण में पितरो की उत्पत्ति की कथा इस प्रकार दी गयी है। कि, सबसे पहले ब्रह्माजी ने देवों की उत्पत्ति की। आगे चल कर, देवों ने यज्ञ करना बंद किया। इस कारण क्रुद्ध हो कर, ब्रह्माजी ने देवों को शाप दिया, 'तुम मूढ़ बनोगे'। देवों के मूढ़ता के कारण, पृथ्वी के तीनों लोकों का नाश होने लगा। फिर ब्रह्माजी ने देवों को अपने पुत्रोंकी शरण में जाने के लिये कहा।

ब्रह्माजी की इस आज्ञा के अनुसार, देवगण अपने पुत्रों के पास गये। फिर देवपुत्रों ने देवगणों को प्रायश्चित्तादि विधि कथन किये। इस उपदेश से संतुष्ट हो कर, देवगणों ने अपने पुत्रों से कहा, 'यह उपदेश कथन करनेवाले तुम हमारे साक्षात् 'पितर' ही हो। उस दिन से समस्त देवपुत्र 'पितर' नाम से सुविख्यात हुये, एवं स्वर्ग में देव भी उनकी उपासना करने लगे (वायु. २. १०; ब्रह्मांड. ३.९)। यहाँ पितरः—का प्रयोग 'पाताः' (संरक्षण करनेवाला) ऐसे अर्थ से किया गया है।

बाकी सारे पुराणों में, पितरों को ब्रह्माजी का मानसपुत्र कहा गया है (विष्णु. १.५.३३)। पुराणों में निर्दिष्ट सात पितृगणों को सप्तर्षिको का पुत्र भी, कई जगह कहा गया है।

प्रियखाद्यपदार्थ—श्राद्ध के समय 'प्राचीनावीति' कर, एवं 'स्वाध' कह कर दिया गया अन्न एवं सोम, योगमार्ग के द्वारा, पितर भक्षण करते हैं। इन्हें गेंडक का मांस, चावल, यव, मूँग, गन्ना, सफेद पुष्प, फल, दर्भ, उड़द, गाय का दूध, घी, शहद आदि पदार्थ विशेष पसंद थे।

इनके अप्रिय पदार्थों में, मसूरी, सन एवं सेमी के बीज, राजमाष, कुलीथ, कमल, बेल, रुई, धतूरा, कडवा, नीम, अडुलसा, भेड़ बकरियाँ एवं उनका दूध प्रमुख था। इस कारण, ये सारे पदार्थ 'श्राद्धविधि' के समय निषिद्ध माना गया है।

मनोविकार—पितरों को लोभ, मोह तथा भय ये विकार उत्पन्न होते हैं, किंतु शोक नहीं होता। ये जहाँ जी चाहे वहाँ 'मनोवेग' से जा सकते हैं, किंतु अपनी इच्छायें व्यक्त करने में ये असमर्थ रहते हैं।

हर एक कल्प के अंत में, ये शाप के कारण नष्ट हो जाते हैं, एवं कल्पारंभ में, उःशाप के कारण, पुनः जीवित होते हैं (ब्रह्मांड. ३.९-१०; वायु. ७१.५९-६०; पद्म. सृ. ९; ह. वं. १.१६-१८; मत्स्य. १३-१५; १४१)।

तैत्तिरीय संहिता के अनुसार, 'स्मशानचिति' करने से हरएक मनुष्य को 'पितृलोक' में प्रवेश प्राप्त हो सकता है (तै. सं. ५.४.११)। धर्मशास्त्र के अनुसार, पितृकार्य से देवकार्य श्रेष्ठ माना गया है।

पितृगण--पितरों के गणों के दैवी एवं मानुष ऐसे दो मुख्य प्रकार थे। इनमें से दैवी पितृगण अमूर्त हो कर स्वर्ग में ब्रह्माजी के सभा में रहते थे (म. स. ११.४६.)। वे स्वयं श्रेष्ठ प्रकार के देव हो कर, समस्त देवगणों से पूजित थे। वे स्वर्ग में रहते थे, एवं अमर थे।

मानुष पितृगण में मनुष्य प्राणियों के मृत पिता, पितामह, एवं प्रपितामह का अन्तार्भाव था। जिनका पुण्य अधिक हो ऐसे ही 'मृत पितर' मानुष पितृगणों में शामिल हो सकते थे। इन पितृगणों के पितर प्रायः यमसभा में रहते थे। सहस्र वर्षों के हर एक नये युग में, इस पितृगण के सदस्य नया जन्म लेते थे, एवं उनसे नये मनु एवं नये मनुष्यजाति का निर्माण होता था।

दैवी पितर—इन्हें 'अमूर्त' 'देवदेव' 'भावमूर्ति' 'स्वर्गस्थ' ऐसे आकार, उत्पत्ति, महत्ता एवं वसतिस्थान दर्शानेवाले अनेक नामांतर प्राप्त थे। ये आकाश से भी सूक्ष्मस्वरुप थे, एवं परमाणु के उदर में भी रह सकते थे। फिर भी ये अत्यधिक समर्थ थे। दैवी पितृगण संख्या में कुल तीन थे, जिनके नाम इस प्रकार हैं:—

(१) वैराज—यह पितृगण विरजस् (सत्य, सनातन) नामक स्थान में रहता था। इस पितृगण के लोग ब्रह्माजी

के सभा में रहकर, उनकी उपासना करते थे (म. स. १३३*) इनकी मानसकन्या मेना थी। दैत्य, यक्ष, राक्षस, किन्नर, गंधर्व, अप्सरा, भूत, पिशाच, सर्प, एवं नाग इनकी उपासना करते थे।

(२) अग्निष्वात्त—यह पितृगण वैभ्राज (विरजस्) नामक स्थान में रहता था। दैत्य, यक्ष, राक्षसादि इसकी उपासना करते थे।

(३) बर्हिषद—यह पितृगण दक्षिण दिशा में सोमप (सोमपदा) नामक स्थान में रहता था। इनकी मानसकन्या पीवरी थी।

महाभारत में तृतीय दैवी पितर का नाम एकशृंग दे कर, बर्हिषद को मानुष पितर कहा गया है (म. स. ११.३०; १३३*)

मूर्त अथवा मानुष पितर—इन्हें 'मूर्त,' 'संतानक.' (सांतनिक), सूक्ष्ममूर्ति ऐसे नामांतर भी प्राप्त थे। इन पितृगणों में, निम्नलिखित पितृगणों का समावेश होता है:-

१. हविष्मत् (काव्य)—यह पितृगण मरीचिगर्भ प्रदेश में रहता था। इनकी मानस कन्या गो थी। ब्राह्मण इनकी उपासना करते थे।

२. सुस्वाधा (उपहूत)—यह पितृगण कामग (कामधुक्) प्रदेश में रहता था। इनकी मानसकन्या यशोदा थी। क्षत्रिय इनकी उपासना करते थे।

३. आज्यप—यह पितृगण पश्चिम दिशा में मानस (सुमनस्) प्रदेश में रहता था। इनकी उपासना वैश्य करते थे।

४. सोमप—यह पितृगण उत्तर दिशा के सनातन (स्वर्ग) प्रदेश में रहता था। इनकी मानसकन्या नर्मदा थी। शूद्र इन की उपासना करते थे। महाभारत में, 'मानुषि पितर' नाम से सोमप, बर्हिषद, गार्हपत्य, चतुर्वेद, तथा इन, चार पितृगणों का निर्देश किया गया है। वहाँ हविष्मत्, सुस्वधा, आज्यप इन पितृगणों का निर्देश अप्राप्य है।

पितृकन्या—पुराणों में अनेक जगह पितरों के वंश (पितृवंश) की विस्तृत जानकारी दी गयी है (वायु. ७२. १-१९; ७३. ७७.३२.७४-७६; ब्रह्मांड. ३.१०.१-२१; ५२-९८; ३.१३.३२; ७६-७९; ह. वं. १.१८; ब्रह्म. ३४.४१-४२; ८१.९३, मत्स्य. १३.२-९; १४.१-१५; पद्म. सृ. ९.२-५६; लिंग. १.६.५-९; ७०.३३१; ८२.१४-१५; २.४५.८८)

इस जानकारी के अनुसार, सात मुख्य पितरों ने अपने अपने मन से एक एक कन्या ('मानसी कन्या') उत्पन्न की। उन कन्याओं के नाम इस प्रकार थे:—मेना, अच्छोदा (सत्यवती), पीवरी, गो, यशोदा, विरजा, नर्मदा। इस कन्याओं की विस्तृत जानकारी पुराणों में प्राप्त है, जो इस प्रकार है:—

(१) **मेना**—इसका विवाह हिमवंत पर्वत से हुआ था। इसको मैनाक नामक एक पुत्र, एवं अपर्णा, एकपर्णा, एवं एकपाटला नामक तीन कन्याएँ उत्पन्न हुयी थीं।

मेना की तीन कन्याओं में से, अपर्णा 'देवी उमा' बन गयीं। एकपर्णा ने असित ऋषि से विवाह किया, जिससे उसे देवल नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। एकपाटला का विवाह शतशिलाक के पुत्र जैगीषव्य ऋषि से हुआ, जिससे उसे शंख एवं लिखित नामक दो पुत्र हुए।

(२) **अच्छोदा**—सुविख्यात अच्छोदा नदी यही है। इसने पितरों की आज्ञा अमान्य कर, चेदि देश का राजा वसु एवं अद्रिका' नामक अप्सरा के कन्या के रूप में पुनः जन्म लिया, एवं यह नीच जाति की कन्या ('दासेयी') बन गयी इसे काली एवं सत्यवती नामांतर भी प्राप्त थे।

इसे पराशर ऋषि से व्यास नामक एक पुत्र, एवं शंतनु राजा से विचित्रवीर्य, एवं चित्रांगद नामक दो पुत्र हुये।

(३) **पीवरी**—इसका विवाह व्यास ऋषि के पुत्र शुकाचार्य से हुआ था। उससे इसे कृष्ण, गौर, प्रभु, शंभु एवं भूरिश्रुत ऐसे पाँच पुत्र, एवं कीर्तिमती (कृत्वी) नामक एक कन्या उत्पन्न हुयी (ब्रह्मांड. ३.१०.८०-८१)।

पीवरी की कन्या कीर्तिमती का विवाह अनुह राजा से हो कर, उससे कीर्तिमती को ब्रह्मदत्त नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

(४) **गो**—इसे 'एकशृंगा' नामांतर भी प्राप्त था। इसका विवाह शुक्राचार्य से हो कर, उससे इसे सुविख्यात 'भृगु' वंश की स्थापना करनेवाले पुत्र उत्पन्न हुये।

(५) **यशोदा**—इसका विवाह अयोध्या के राजा वृद्धशर्मन् (विश्वशर्मन्) के पुत्र विश्वमहत् (विश्वसह) राजा से हुआ, जिससे इसे दिलीप द्वितीय (खट्वांग) नामक पुत्र हुआ।

(६) **विरजा**—इसका विवाह सुविख्यात सोमवंशीय राजा नहुष से हो कर, उससे इसे ययाति नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

(७) नर्मदा—इसका विवाह अयोध्या के राजा पुरुकुत्स से हो कर, उससे इसे त्रसदस्यु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। कई उत्तरकालीन, ग्रंथों में, नर्मदा को 'नदी' कहा गया है, एवं उसका सुविख्यात नर्मदा नदी से एकात्म स्थापित किया गया है (मत्स्य. १५. २८)।

इनके सिवा निम्नलिखित पितृकन्याओं का निर्देश पुराणों में प्राप्त है :—

१. कृत्वी (कीर्तिमती) अणु ह. पत्नी (ह. वं. १ २३. ६) २. एकपर्णा, ३. एकपाटला, ४. अपर्णा (उमा)।

'पितृकन्या' कथा का अन्वयार्थ—पार्गिटर के अनुसार, पितृकन्याओं के बारे में पुराणों में दी गयी सारी जानकारी, इतिहास एवं काल्पनिक रम्यता के संमिश्रण से बनी है। पुराणों में निर्दिष्ट पितृकन्याओं में, विरजा (वायु. ९३. १२), यशोदा (वायु ८८. १८१-१८२), कृत्वी, (कीर्तिमती) ये तीन प्रमुख हैं। इनके पतियों के नाम क्रमशः नहुष, विश्वमहत् एवं अनुह हैं। ये तीनों कन्याएँ एवं उनके पतियों का आपस में बहन भाई का रिश्ता था। अपने बहनों (पिता की कन्याओं) से नहुष, विश्वमहत्, एवं अनुह ने विवाह किया। इस कारण इन कन्याओं को 'पितृकन्या' (पिता की कन्या) नाम प्राप्त हुये। पितृकन्या के इस ऐतिहासिक अर्थ को त्याग कर, 'पितरों की कन्या' यह नया अर्थ पुराणों ने प्रदान किया है। भाई एवं बहन का विवाह निषिद्ध मानने के कारण, यह अर्थान्तर पुराणों द्वारा स्थापित किया गया होगा।

पुरुकुत्स (नर्मदा), शुक्र (गो), शुक (पीवरी) इन राजाओं ने भी शायद अपने बहनों के साथ शादी की होगी। पितृकन्याओं में से मेना काल्पनिक प्रतीत होती है। मेना की कन्याओं में से, एकपाटला, एकपर्णा, एवं अपर्णा ये तीनों नाम वस्तुतः उमा (देवी पार्वती) के ही पर्यायवाची शब्द हैं (पार्गि. ६९-७०)।

पितृवंश—ब्रह्मांड पुराण में, अग्निष्वात्त एवं बर्हिषद इन दो पितरों के (ब्रह्मांड. २. १३. २९-४३) वंश की विस्तृत जानकारी दी गयी है। पुराणों के अनुसार, 'मैथुनज' मानवी संतति का निर्माण चाक्षुष दक्ष से हुआ था। स्वायंभुव दक्ष के पूर्वकालीन मानववंश की जानकारी अग्निष्वात्त एवं बर्हिषद पितरों के वंशावलि में प्राप्त है, जिस कारण, 'ब्रह्मांडपुराण' में प्राप्त पितृवंश की जानकारी नितांत महत्त्वपूर्ण प्रतीत होती है।

ब्रह्मांड के पुराण के अनुसार, अग्नि एवं बर्हिषद इन दो पितरों को स्वधा से क्रमशः 'मेना' एवं 'धारणी' नामक दो कन्याएँ उत्पन्न हुयीं। इनमें से मेना का विवाह हिमवत् से हो कर, उसे मैनाक नामक पुत्र हुआ। धारणी का विवाह मेरु से हो कर, उससे उसे मंदर नामक पुत्र, एवं वेला, नियति, तथा आयति नामक तीन कन्याएँ उत्पन्न हुयीं।

इनमें से वेला का विवाह समुद्र से हुआ, एवं उससे उसे सवर्णा नामक कन्या उत्पन्न हुयी। सवर्णा का विवाह प्राचीनबर्हि से हो कर, उससे उसे प्रचेतस् नामक दस पुत्र हुये। प्रचेतस् को स्वायंभुव दक्ष नामक पुत्र था, जिसके पुत्र का नाम चाक्षुष दक्ष था। उसी स्वायंभुव एवं चाक्षुष दक्ष से आगे चलकर 'मैथुनज' अर्थात् मानवी सृष्टि का, निर्माण हुआ।

पितामह— एक स्मृतिकार। एक प्राचीन धर्मशास्त्रकार के नाते से, इसका निर्देश 'वृद्धयाज्ञवल्क्यस्मृति' में किया गया है।

इसके 'शौच' विषयक अभिमतों का निर्देश विश्वरूप ने किया है (याज्ञ. १.१७)। 'मिताक्षरा' एवं 'अपरार्क' में, पितामह के व्यवहारशास्त्र, आह्निक एवं श्राद्धसंबंधी मतों का उद्धरण प्राप्त है। 'स्मृतिचंद्रिका' में भी, इसके व्यवहार एवं श्राद्धविषयक दस श्लोकों का उद्धरण लिया गया है।

'पितामहस्मृति' में विशेषतः 'व्यवहारशास्त्र' का विचार किया गया है। पितामह के अनुसार, वेद, वेदांग, मीमांसा, स्मृति, पुराण, एवं न्याय ये सारे ग्रंथ मिला कर 'धर्मशास्त्र' का रूप निर्धारित करते हैं (पिता. पृ. ६०१)। इसकी स्मृति में, 'क्रयपत्र,' 'स्थितिपत्र' 'समाधिपत्र' 'विशुद्धिपत्र' आदि 'दस्तखतों' की व्याख्या प्राप्त है। राजा के न्यायसभा में आवश्यक सेवकों एवं वस्तुओं की नामावलि पितामह ने दी है, जो इस प्रकार है:-लेखक, गणक, शास्त्रपाल, साध्यपाल, सभासद, हिरण्य, अग्नि, एवं उदक।

किन्हीं दो व्यक्तियों में विवाद होने पर, सर्वप्रथम ग्रामपंचायत के सामने उसका निर्णय होना चाहिये, ऐसा पितामह का मत है। उसके बाद, 'नगरसभा' एवं अन्त में राजा के सामने; इस क्रम से विवाद का निर्णय होना आवश्यक है, ऐसा इसने लिखा है।

पितामह की स्मृति में, 'बृहस्पतिस्मृति' का निर्देश प्राप्त है। इस निर्देश के कारण, पितामह का काल

चौथी से सातवीं ईसवी के बीच माना जाता है।

पितृ— दक्षकन्या स्वधा का पति। इसे 'पितर' नामांतर भी प्राप्त है (पितर देखिये)।

पितृवर्तिन्—कुरुक्षेत्र के कौशिक ब्राह्मण के सात पुत्रों में से कनिष्ठ पुत्र। इसके स्वसृप (खसृप), क्रोधन, हिंस्र, पिशुन, कवि और वाग्दुष्ट आदि भाई थे। ये सातो भाई गर्ग ऋषि के शिष्य बन कर रहे थे। हरिवंश के अनुसार, कौशिक विश्वामित्र नामक इनके पिता ने इन्हें शाप दिया, तत्पश्चात् यह एवं इसके भाई गर्ग ऋषि के शिष्य बने।

पिता के पश्चात् इन्हें बड़ा कष्ट सहना पड़ा। एक दिन सातो भाई गर्ग की कपिला नामक गाय को उसके बछड़े के साथ अरण्य में ले गये। वहाँ क्षुधाशांति के हेतु, इसके भाइयों ने गाय को मार कर खाने की योजना बनायी। कवि तथा स्वसृप ने इसका विरोध किया, परन्तु श्राद्धकर्मनिपुण पितृवर्ति ने कहा, 'अगर गोवध करना ही है, तो पितृ के श्राद्ध के हेतु करो, जिससे गाय को भी सद्‌गति मिले और हम लोगों को पाप न भुगतना पड़े'।

इसका कथन सब को मान्य हुआ। दो भाइयों को देवस्थान पर, तीन को पितृस्थान पर, तथा एक को अतिथि के रूप में बैठाया, एवं स्वयं को यजमान बनाकर, पितृवर्तिन् ने गाय का 'प्रोक्षण' किया। संध्या के समय गर्गाश्रम में वापस आने के बाद, बछड़ा गुरु को सौंप कर, इन्होंने बताया, कि 'धेनु व्याघ्र द्वारा भक्षित की गयी'।

कालांतर में इन सातों बन्धुओं की मृत्यु हो गयी। क्रूरकर्म करने, तथा गुरु से असत्य भाषण करने के कारण, इन लोगों का जन्म व्याधकुल में हुआ। इस योनि में इनके नाम निर्वैर, निर्वृति, शान्त, निर्मन्यु, कृति, वैधस तथा मातृवर्तिन् थे। पूर्वजन्म में किये पितृतर्पण के कारण, इस जन्म में, ये 'जातिस्मर' बन गये थे। मातृपितृभक्ति में वैराग्यपूर्वक काल बिता कर, इनकी मृत्यु हुयी। मृत्यु के पश्चात् इन्हें कालंजर पर्वत पर मृगयोनि प्राप्त हुयी।

मृगयोनि में इनके नाम निम्नलिखित थेः---उन्मुख, नित्यवित्रस्त, स्तब्धकर्ण, विलोचन, पंडित, घस्मर तथा नादिन् कहा जाता है। कहा जाता है, अभी तक कालंजर पर्वत पर इनके पदचिह्न दिखाई पड़ते हैं। यह कालंजर पर्वत, वर्तमान बुंदेलखण्ड के बांदा जिले में बदौसा तहसील में स्थित, कालंजर ही होगा।

तीसरे जन्म में, ये शरद्वीप में चक्रवाक पक्षी बने। इस जन्म में, इनके नाम इस प्रकार थेः—निस्पृह, निर्मम, क्षांत, निर्द्वन्द्व, निष्परिग्रह, निर्वृत्ति तथा निभृत (ह. वं. १.२१.३१)। पद्म पुराण में, इनके नाम इस प्रकार दिये गये है :---सुमना, कुसुम, वसु, चित्तदर्शी, सुदर्शी, ज्ञाता तथा ज्ञानपारग (पद्म. सृ. १०)। मत्स्यपुराण के अनुसार, मृगयोनि में इनके नाम इस प्रकार थेः—सुमनस्, कुमुद, शुद्ध, छिद्रदर्शी, सुनेत्रक, सुनेत्र तथा अंशुमान् (मत्स्य. २०.१८)।

चौथे जन्म में ये मानससरोवर पर हंस पक्षी हुये। उस समय के इनके नाम हरिवंश में प्राप्त हैं, पर वहाँ भिन्न भिन्न अध्यायों में भिन्न भिन्न नाम दिये गये है। एक स्थान पर उनके नाम इस प्रकार हैंः-सुमना, शुचिवाच, शुद्ध, पंचम, छिद्रप्रदर्शन, सुनेत्र तथा स्वतंत्र। अन्य स्थान पर वे इस प्रकार प्राप्त हैंः-- पद्मगर्भ, अरविंदाक्ष, क्षीरगर्भ, सुलोचना, उरुबिंदु, सुबिंदु तथा हेमगर्भ। पद्मपुराण तथा मत्स्यपुराण में 'हंसयोनि' नहीं दी गयी है, परन्तु उन पुराणों के 'चक्रवाकयोनि' में दिये गये नामों में, तथा हरिवंश में 'हंसयोनि' के प्रथम दिये गये सात नामों में अत्यधिक साम्य है।

एक बार ये सातो बन्धु मानससरोवर पर तपश्चर्या कर रहे थे। तब कांपिल्य नगर का पुरुकुलोत्पन्न नीप राजा 'विभ्राज' अपने पत्नी के सहित वहाँ आया, एवं सरोवर में क्रीड़ा करने लगा। पद्मपुराण में इसी राजा का नाम 'अणुह' दिया गया है। राजा का ऐश्वर्य देख कर, स्वतंत्र (पितृवर्तिन्), छिद्रदर्शन (कवि), तथा सुनेत्र (स्वसृप) के मन में ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिए लिप्सा जागृत हुयी। फिर अन्य भाइयों ने क्रुद्ध हो कर इन तीन भाइयों को शाप दिया।

इस शाप के कारण, स्वतंत्र (पितृवर्तिन्) अगले जन्म में विभ्राज राजा के कुल में जन्म लेने को विवश हुआ। विभ्राज राजा का पुत्र अणुह एवं उसकी पत्नी कृत्वी के कोख में, इसने ब्रह्मदत्त नाम से जन्म लिया।

इन सातो बंधुओं द्वारा वध की गयी कपिला, नये जन्म में सन्नति नाम से देवल ऋषि की कन्या, एवं ब्रह्मदत्त की पत्नी बनी। उसे ब्रह्मदत्त से विष्वक्सेन नामक पुत्र हुआ। यह पुत्र पूर्वजन्म में स्वयं राजा विभ्राज ही था। ब्रह्मदत्त वेदवेदांगों में निपुण था, एवं उसको समस्त प्राणीजाति की भाषाओं का ज्ञान था (ब्रह्मदत्त देखिये)।

पूर्वोक्त शाप के ही कारण, स्वतंत्र (पितृवर्तिन्) के अन्य दो भाई छिद्रदर्शन तथा सुनेत्र ने पांचाल (पांचाल्य, पांचिक) एवं कंडरिक नाम से वत्स तथा बाभ्रव्य वंश में जन्म लिया एवं वे ब्रह्मदत्त के मित्र बने। इनके नाम पद्मपुराण में 'पुंडलीक' तथा 'सुबालक,' तथा मत्स्यपुराण में 'कंडरीक' तथा 'सुबालक' दिये गये है, एवं उन्हे ब्रह्मदत्त के मंत्री का पुत्र कहा गया है।

उन दो भाइयों में से पांचाल (कवि) ऋग्वेद में प्रवीण था, तथा उसने ब्रह्मदत्त का आचार्यत्व स्वीकार किया। पश्चात् पांचाल ने वेदों का क्रम लगाया तथा 'शिक्षा' नामक ग्रन्थ का नि ाण कर के, 'योगाचार्य' की पदवी प्राप्त की। कण्डरीक सामवेद तथा यजुर्वेद में निष्णात था, तथा उसने ब्रह्मदत्त का छंदोगत्व तथा अध्वर्युत्व स्वीकार किया।

बचे हुये चारों बंधुओं ने एक दरिद्री ब्राह्मण के घर में, धृतिमान्, क्षुमनस्, विद्वान् तथा सत्यदर्शी नामों से जन्म लिया। मत्स्यपुराण में, उनके नाम धृतिमान्, तत्वदर्शी, विद्याचण्ड तथा तपोत्सुक प्राप्त हैं। बाद में, उन ब्राह्मण-पुत्रों ने अरण्य में तपश्चर्या करने का निश्चय किया, एवं उस कार्य के लिये, उन्होंने अपने वृद्ध पिता से अनुमति माँगी। किंतु वृद्ध पिता ने, उसे इन्कार कर दिया। तब इन्होंने अपने पिता की उपजीविका के लिये ब्रह्मदत्त राजा के पास जाने के लिये कहा। वहाँ निम्न-लिखित श्लोक कहने के लिये कह कर, वे बंधु स्वयं अरण्य में चले गयेः—

सप्तव्याधा दशार्णेषु, मृगाः कालिंजरे गिरौ ॥
चक्रवाकाः शरद्वीपे, हंसाः सरसि मानसे ॥ १ ॥
तेऽभिजाताः कुरुक्षेत्रे, ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥
प्रस्थिता दीर्घमध्वानं, यूयं किमवसीदथ ॥ २ ॥

भिन्न भिन्न स्थानों में ये श्लोक भिन्न भिन्न तरह से दिये गये है। किंतु सर्वत्र उनका अर्थ एक ही है।

जैसे ही ब्राह्मण ने ये श्लोक ब्रह्मदत्त के यहाँ जा कर कहे, वैसे ही ब्रह्मदत्त, पांचाल्य, तथा कण्डरीक को अपने पूर्वजन्म का स्मरण हो आया, तथा वे मूर्च्छित हो कर गिर पड़े। बाद में, ब्रह्मदत्त ने उस ब्राह्मण को विपुल धन दिया, तथा विष्वक्सेन का राज्याभिषेक कर, अपनी पत्नी तथा प्रधान के साथ तपश्चर्या करने चला गया।

इन सात बन्धुओं ने जो पित्रार्चन किया, उसके कारण इन्हें अगले सभी जन्मों में अपने पूर्व ब्राह्मण—जन्म का ज्ञान रहा, एवं ये उग्रतम तपस्या करते रहे। इस तपस्या के फलस्वरुप ही, इन्हें उत्तरोत्तर उच्च जन्म की प्राप्ति होती रही, तथा अन्त में इन्हें मोक्ष प्राप्त हुआ। मोक्ष प्राप्ति के पूर्व, इन्हें जो योनि प्राप्त हुयी, एवं इन्हें जो नामांतर मिलते रहे, वे इनके पूर्वसंचित पुण्यकर्मों के कारण ही प्राप्त हुए थे। किन्तु पुराणों में इनके सारे जन्मों का, एवं इन्हे प्राप्त हुए सारे नामों की पूरी जानकारी प्राप्त नहीं है। सभी पुराणों में इस बारे में एकवाक्यता भी नहीं है; तथा कहीं कहीं कथनों को दोहराया भी गाया है।

पितृवर्तिन् की उपर्युक्त कथा मार्कंडेय ऋषि ने भीष्माचार्य को सुनायी थी। श्राद्धकर्म के समय, इन कौशिकपुत्रों के पहले निर्दिष्ट किये श्लोकों का पठन किया जाता है (ह. वं १.२१-२४; मत्स्य. २०-२१; पद्म, सृ. १०)।

पितृवर्धन— (सो.) एक राजा। भविष्य के अनुसार श्राद्धदेव का पुत्र था।

पिनाकिन्— ग्यारह रुद्रों में से एक (म. आ. ६०. २; मं. शां. २०१.१९)। यह ब्रह्माजी के पौत्र, तथा स्थाणु का पुत्र था। अर्जुन के जन्मकाल में यह उपस्थित था (म. आ. ११४.५७)।

२. भगवान् शिव का नामांतर। भगवान शिव का पिनाक नामक धनुष था, जिसके कारण उसे पिनाकिन् नाम प्राप्त हुआ। इसने त्रिपुरासुर को भस्म कर, उससे शशमण्डल का राज्य जीत लिया (भवि. प्रति. ३. ८)

महाभारत के अनुसार, भगवान् शंकर का त्रिशूल उसके पाणि (हाथ) से आनत होकर (मुड़कर) धनुषाकृति बन गया। इस कारण, उस धनुष को 'पिनाक' एवं उसके धारण करनेवाले शिव को 'पिनाकिन्' नाम प्राप्त हुआ (म. शां. २७८.१८ (२८९.१७–१८ नीलकंठ टीका)।

पिप्पल— मित्र नामक आदित्य एवं रेवती के तीन पुत्रों में से कनिष्ठ पुत्र (भ. ६. १८. ६)।

२. एक ब्राह्मणभक्षक राक्षस, जो अगस्त्य ऋषि के द्वादशवर्षीय सत्र के समय लोगों को त्रस्त करता था।

३. एक कश्यप कुलोत्पन्न ब्राह्मण। उग्र तपस्या के कारण इसका अहंकार काफ़ी बढ़ गया था। पर, एक बार माता-पिता की सेवा करके सर्ववश्यता प्राप्त करनेवाले सुकर्मन् ऋषि को देखकर इसका अहंकार जाता रहा (पद्म, भू. ६१-६३; ८४; सुकर्मन् देखिये)।

पिप्पलाद— उपनिषद्कालीन एक महान् ऋषि. एवं अथर्व वेद का सर्व प्रथम संकलनकर्ता। यह व्यास की अर्थवन् शिष्य परम्परा में से देवदर्श (वेदस्पर्श) का शिष्य था (व्यास देखिये, ब्रह्म. उ. १)। पिप्पलाद का शब्दार्थ, पीपल के फल खाकर जीनेवाला (पिप्पल+अद्) होता है।

अथर्ववेद की पिप्पलाद नामक एक शाखा उपलब्ध है। इस शाखा का प्रवर्तक शायद यही होगा।

इसके माता-पिता के नाम के बारे में, भिन्न-भिन्न जानकारी प्राप्त है। दधीचि ऋषि को प्रातिथेयी (वडवा अथवा गभस्तिनी) नामक पत्नी से यह उत्पन्न हुआ। किन्तु कई ग्रथों में इसके माता का नाम सुवर्चा अथवा सुभद्रा दिया गया है। इनमें से सुभद्रा दधीचि ऋषि की दासी थी। सम्भवतः यह दधीचि का दासीपुत्र था।

अन्य कई ग्रंथों में, इसे याज्ञवल्क्य एवं उसकी बहन का पुत्र कहा गया है। फिर भी यह दधीचि ऋषि के पुत्र के रूप में विख्यात है।

दधीचि की मृत्यु के समय, उसकी पत्नी प्रातिथेयी गर्भवती थी। अपने पति की मृत्यु का समाचार सुनकर उसने उदरविदारण कर अपना गर्भ बाहर निकाला तथा उसे पीपल वृक्ष के नीचे रखकर, दधीचि के शव के साथ सती हो गयी। उस गर्भ की रक्षा पीपल वृक्ष ने की। इस कारण इस बालक को पिप्पलाद नाम प्राप्त हुआ।

पशु-पक्षियों ने इसकी रक्षा की, तथा सोम ने इसे सारी विद्याओं में पारंगत कराया। बाल्यकाल में मिले हुए कष्टों का कारण, शनि ग्रह को मानकर, इसने उसे नीचे गिराया। त्रस्त होकर शनि इसकी शरण में आया। इसने शनिग्रह को इस शर्त पर छोड़ा कि, वह बारहवर्ष से कम आयु वाले बालकों को तकलीफ़ न दे। कई ग्रन्थों में बारह वर्ष के स्थान पर सोलह वर्ष का निर्देश भी प्राप्त है। इसीलिये आज भी शनि की पीड़ा से छुटकारा पाने के लिए पिप्पलाद, गाधि एवं कौशिक ऋषियों का स्मरण किया जाता है (शिव. शत. २४–२५)।

एक बार अपने पिता पर क्रोधित होकर इसने एक कृत्या का निर्माण कर, उसे याज्ञवल्क्य पर छोड़ा। याज्ञवल्क्य शंकर की शरण में गया। इस कृत्या का नाश किया तथा याज्ञवल्क्य एवं पिप्पलाद में मित्रता स्थापित करायी (स्कन्द. ५.३.४२)।

यही कथा ब्रह्मपुराण में कुछ अलग ढंग से दी गयी है। अपनी माता-पिता की मृत्यु का कारण देवताओं को मानकर, उनसे बदला लेने के लिए इसने शंकर की आराधना की, तथा एक कृत्या का निर्माण करके उसे देवों पर छोड़ा। यह देखकर शंकर ने मध्यस्थ होकर देवों तथा इसके बीच मित्रता स्थापित करायी। बाद में, अपनी माता-पिता को देखने की इच्छा उत्पन्न होने के कारण, देवों ने स्वर्ग में इसे दधीचि के पास पहुँचाया। दधीचि इसे देखकर प्रसन्न हुआ तथा इससे विवाह करने के लिए आग्रह किया। स्वर्ग से वापस आकर इसने गौतम की कन्या से विवाह किया (ब्रह्म. ११०.२२५)।

एकबार, जब यह पुष्पभद्रा नदी में स्नान करने जा रहा था, तब वहाँ अनरण्य राजा की कन्या पद्मा को देखकर इसने उसकी माँग की। शापभय से अनरण्य राजा ने अपनी कन्या इसे प्रदान की। जिससे इसे दस पुत्र हुये (शिव. शत. २४–२५)।

दधीचि के देहत्याग के स्थान पर कामधेनु ने अपनी दुग्धधारा छोड़ी। इसीसे इस स्थान को 'दुग्धेश्वर' कहते थे। यहाँ पिप्पलाद तपश्चर्या करता था। एकबार जब यह अपनी तपस्या में निमग्न था तब वहाँ कोलासुर आकर इसका ध्यानभंग करने के हेतु इसे पीड़ित करने लगा। तत्काल, इसके पुत्र कहोड़ ने एक कृत्या का निर्माण करके उससे कोलासुर का वध कराया। इसी से इस स्थान को 'पिप्पलादतीर्थ' नाम प्राप्त हुआ (पद्म. उ. १५५, १५७)।

नर्मदा-तट पर इसने तपस्या की थी। इसी से उस स्थान को 'पिप्पलाद-तीर्थ' कहते हैं (स्कन्द. ५.३.४२)।

शरशय्या पर पडे हुए भीष्म के पास अन्य ऋषिगणों के साथ यह भी वहाँ आया था (म. शा. ४७.६६ पंक्ति ६)।

पैप्पलाद संहिता—अथर्ववेद की कुल दो संहितायें उपलब्ध हैं। उनमें से एक की रचना शौनक ने की है, एवं दूसरी का रचयिता पिप्पलाद है। पिप्पलाद विरचित अथर्ववेद की संहिता 'पैप्पलाद संहिता' नाम से प्रसिद्ध है। यह संहिता बीस काण्डों की है, तथा उस संहिता का प्रथम मंत्र 'शन्नो देवीः' है। पतंजलि के व्याकरण महाभाष्य' में एवं ब्रह्मयज्ञान्तर्गत तर्पण में, इसी मंत्र का उद्धरण प्राप्त है। व्हिटने के अनुसार, 'पैप्पलाद संहिता' में 'शौनक संहिता' की अपेक्षा, 'ब्राह्मण पाठ' अधिक हैं, तथा अभिचारादि कर्म भी अधिक दिये गये हैं। (व्हिटने कृत अथर्ववेद अनुवाद–प्रस्तावना पृ. ८०)।

अथर्ववेदसंहिता का संकलन करते समय पिप्पलाद ने ऐन्द्रजालिक मंत्रों का संग्रह किया था। कुछ दिनों बाद पैप्पलाद शाखा के नौ खण्ड हुये जिनमें शौनक तथा पैप्पलाद (काश्मीरी) प्रमुख थे। अथर्ववेद के पैप्पलाद शाखा के मूलपाठ को गार्बे तथा ब्लूमफील्ड ने हस्तलिपि के फोटो-चित्रों में सम्पादित किया है, जिसका कुछ अंश प्रकाशित भी हो चुका है।

अन्यग्रंथ—पिप्पलाद का 'पैप्पलाद ब्राह्मण' नामक एक ब्राह्मणग्रंथ उपलब्ध है, जिसके आठ अध्याय हैं। उसके अतिरिक्त 'पिप्पलाद श्राद्धकल्प' एवं 'अगस्त्य कल्पसूत्र' नामक पिप्पलादशाखा के और दो ग्रंथ भी उपलब्ध हैं।

तत्त्वज्ञान—प्रश्नोपनिषद में एक तत्त्वज्ञानी के नाते इसका निर्देश प्राप्त है। मोक्ष शास्त्र को पैप्पलाद कहने की प्रथा थी (गर्भोपनिषद्)।

प्रश्नोपनिषद, अथर्ववेद का एक उपनिषद है। पिप्पलाद के पास सुकेशा भारद्वाज, शैव्य सत्यकाम, सौर्यायणि गार्ग्य, कौसल्य आश्वलायन, भार्गव वैदर्भी तथा कबंधिन् कात्यायन आदि ऋषि ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने आये थे। उन्हें एक वर्ष तक आश्रम में रहने के बाद, प्रश्न पूछने की अनुज्ञा प्राप्त हुयी। उन्होंने जिस क्रम से प्रश्न पूछे वह ब्रह्मज्ञान की स्वरूपता समझने के लिये पर्याप्त हैं।

कबंधिन् कात्यायन ने प्रथम प्रश्न किया, 'किस मूलतत्त्व से सृष्टि पैदा हुयी?' पिप्पलाद ने कहा, 'प्रजापति ने 'रयि' (अचेतन) एवं प्राणों (चेतन) के मिथुन से सृष्टि का निर्माण किया'

भार्गव वैदर्भी ने दूसरा प्रश्न किया 'उत्पन्न सृष्टि की धारणा किन देवताओं द्वारा होती है। पिप्पलाद ने उत्तर दिया, 'प्राण देवता द्वारा सृष्टि की धारणा होती है'।

कौसल्य आश्वलायन ने तीसरा प्रश्न किया 'प्राण की उत्पत्ति कैसे होती है? पिप्पलाद ने उत्तर दिया, 'आत्मा से'

सौर्यायणि गार्ग्य ने चौथा प्रश्न किया' 'स्वप्न में जाग्रत तथा निद्रित कौन रहता हैं?' उत्तर मिला, 'निद्रा में आत्मा केवल जाग्रत रहती है, शेष सब निद्रा में विलीन हो जाते हैं।

शैव्य सत्यकाम ने पाचवाँ प्रश्न किया, 'प्रणव का ध्यान करने से मानव की इच्छा कहाँ तक सफल होती है?" उत्तर मिला, "सदैव प्रणव ध्यान करनेवाला मनुष्य आत्मज्ञान प्राप्त कर अमरता को प्राप्त होता है।"

सुकेशा भारद्वाज ने छठाँ प्रश्न किया, 'षोडश कल पुरुष' (परमात्मा) का रूप क्या है?' पिप्पलाद ने उत्तर दिया, "वह हर एक व्यक्ति के शरीर में निवास करता है, जिसके कारण वह सर्वव्यापी है। बहती गंगा जिस प्रकार समुद्र में विलीन हो जाती है उसी प्रकार समस्त सृष्टि उसी में विलीन हो जाती है। केवल पुरुष शेष रहता है। इस ज्ञान की प्राप्ति पर मानव को अमरता प्राप्त होती है। वही परब्रह्म है।"

इन छै संवादों में पिप्पलाद द्वारा व्यक्त किये गये विचारों में उनके क्रमबद्ध तत्त्वज्ञान का प्रत्यक्ष परिचय प्राप्त है।

२. परिक्षित् राजा के पास आया हुआ एक ऋषि (भा. १.१९.१०)।

पिप्पलायन--(स्वा. प्रिय.) एक भगवद्भक्त राजा। ऋषभ देवों द्वारा जयंती नामक स्त्री से उत्पन्न नौ सिद्धपुत्रों में से एक (भा. ५.४.११; ११.३.३५)।

पिप्पल्य--कश्यपकुल का एक गोत्रकार।

पिप्रु--वैदिक कालीन एक असुर राजा, एवं इंद्र का शत्रु। ऋजिश्वन् ऋषि के लिए इंद्रने इसको कई बार पराजित किया था (ऋ. १.१०१.१-२; ४.१६.१३; ५.२९.११; ६.२०.७)।

यह अनेक दुर्गों का स्वामी था (ऋ. १.५१.५)। यह दास था (ऋ. ८.३२.२); एवं काली संतानोंवाले तथा काली जाति के लोग इसके मित्र थे।

रॉथ के अनुसार, यह एक दानव था (सेन्ट पीटर्सबर्ग कोश)। लुडविग इसे 'मानवशत्रु' मानते हैं। 'पिप्रु' का शब्दार्थ 'प्रतिरोधक' होता है।

पिलि--भृगुकुल का एक गोत्रकार।

पिशंग--वैदिककालीन एक ऋषि। पञ्चविंश ब्राह्मण के अनुसार, सर्पोत्सव करने वाले दो 'उन्नेतृ' पुरोहितों में से यह एक था (पं. ब्रा. २५.१५.३)।

२. धृतराष्ट्रकुल में उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजय के सर्पसत्र में जलकर मर गया था।

३. मणिवर एवं देवजनी के 'गुह्यक' पुत्रों में से एक (मणिवर देखिये)।

पिशाच--दानवों का एक लोकसमूह। ये लोग उत्तर-पश्चिम सीमा प्रदेश, दर्दिस्थान, चित्रल आदि प्रदेशों में रहते थे। काफिरिस्थान के दक्षिण की ओर एवं लमगान (प्राचीन-लम्पाक) प्रदेश के समीप रहने वाले, आधुनिक 'पशाई-काश्मिर' लोग सम्भवतः यही

हैं। ग्रियर्सन ने भी ध्वनिशास्त्र की दृष्टि से इस मत को समीचीन माना है। (पिशाच, ज. रॉ. ए. सो. १९५०; २९५-२८८)

'पिशाच' का शब्दार्थ 'कच्चा माँस का भक्षण करने वाला है'। अर्थववेद के अनुसार, इन लोगों में कच्चे माँस के भक्षण करने की प्रथा थी, इस कारण इन्हें पिशाच नाम प्राप्त हुआ (अ. वे. ५. २९. ९)। वैदिक वाङ्मय में निर्दिष्ट दैत्य एवं दानवों का उत्तर-कालीन विकृत रूप पिशाच है। पिशाचों का अर्थ सम्भवतः 'वैताल' अथवा 'प्रेतभक्षक' था।

अर्थववेद में दानवों के रूप में इसका नाम कई बार आया है (अ. वे. २. १८. ४; ४. २०. ६-९; ३६. ४; ३७. १०; ५. २९. ४-१०; १४; ६. ३२. २; ८. २. १२; १२. १. ५०)। इन लोगों का निर्देश ऋग्वेद में 'पिशाचि' नाम से किया गया है (ऋ. १. १३३. ५)। राक्षसों तथा असुरों के साथी मनुष्य एवं पितरों के विरोधी लोगों के रूप में इनका निर्देश वैदिक साहित्य में स्थान स्थान पर हुआ है (तै. सं. २. ४; १. १; का. सं. ३७-१४) किन्तु कहीं कहीं इनका उल्लेख मानव रूप में भी हुआ है। कुछ भी हो यह लोग संस्कारों से हीन व बर्बर थे और इसी कारण यह सदैव घृणित दृष्टि से देखे जाते थे। उत्तर पश्चिमी प्रदेश में रहने वाले अन्य जातियों के समान ये भी वैदिक आर्य लोगों के शत्रु थे। सम्भवतः मानव माँस भक्षण की परम्परा इनमें काफ़ी दिनों तक प्रचलित रही।

ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार, इन लोगों में, 'पिशाच-वेद' अथवा 'पिशाचविद्या' नामक एक वैज्ञानिक विद्या प्रचलित थी (गो. ब्रा. १. १. १०; आश्व. श्रौ. सू. १०. ७. ६)। अथर्ववेद की एक उपशाखा 'पिशाचवेद' नाम से भी उपलब्ध है (गो. ब्रा. १. १०)।

ब्रह्मपुराण के अनुसार, पिशाच लोगों को गंधर्व, गुह्यक, राक्षस के समान एक 'देवयोनिविशेष' कहा गया है। सामर्थ्य की दृष्टि से, इन्हे क्रमानुसार इस प्रकार रखा गया है-गंधर्व, गुह्यक, राक्षस एवं पिशाच। ये चारों लोग विभिन्न प्रकार से मनुष्य जाति को पीड़ा देते हैं- यक्ष गंधर्व 'दृष्टि' से, राक्षस शरीरप्रवेश से एवं पिशाच रोगसदृश पीड़ा उत्पन्न करके। ये सारे लोग पुलस्त्य, पुलह एवं अगस्त्य वंशोत्पन्न थे। इनमें से पिशाचो का स्वतंत्र वंश उपलब्ध है। वह रुद्र के उपासक गणों में माना जाता है (ब्रह्मांड. २. ७. ८८-१७०)।

महाभारत में, एक विशेष भूतयोनि के रूप में पिशाचों का निर्देश प्राप्त है। ये कच्चा माँस खानेवाले व रक्त पीनेवाले लोग थे (म. द्रो. ४८.४७)। इन्होंने घटोत्कच के साथ रह कर उसकी सहायता की थी और कर्ण पर आक्रमण किया था (म. द्रो. १४२. ३५;१५०.१०२)। अर्जुन और कर्ण के युद्ध में ये उपस्थित थे (म. क. ६३.३१)।

प्रघस नामक एक राक्षस व पिशाचों का संघ था (म. श. २६९.२)। पिशाचों के राजा के रूप में रावण का निर्देश भी कई जगह प्राप्त है (म. व. २५९.३८)। ब्रह्मा एवं कुबेर के सेवक के रूप में इनका निर्देश प्राप्त है (म. स. ११. ३१)। शिवजी के पार्षदो के रूप में भी पिशाचों का निर्देश आता है। गोकर्ण पर्वत पर इन लोगों ने शिवजी की आराधना की थी (म. व. ८३.२३)। मुञ्जवत पर्वत पर पार्वती सहित तपस्या करते हुए शिव की आराधना इन लोगों ने की थी (म. आश्व. ८.५)।

पैशाची भाषा एवं संस्कृति—इनकी भाषा पैशाची थी, जिसमें 'बृहत्कथा' नामक सुविख्यात ग्रंथ 'गुणाढ्य' (४ थी शती ई. पू.) ने लिखा था। गुणाढ्य का मूल ग्रंथ आज उपलब्ध नहीं है, किंतु उसके आधार लिखे गये 'कथासरित्सागर' (२ री शती ई.) एवं 'बृहत्कथा-मंजरी' नामक दो संस्कृत ग्रंथ आज भी प्राप्त हैं, एवं संस्कृत साहित्य के अमूल्य ग्रंथ कहलाते हैं। इनमें से 'कथासरित्सागर' का कर्ता सोमदेव हो कर, 'बृहत्कथा-मंजरी' को क्षेमेंद्र ने लिखा है।

इन सारे ग्रंथों से अनुमान लगाया जाता है कि, ईसासदी के प्रारंभकाल में, पिशाच लोगों की भाषा एवं संस्कृति प्रगति की चरम सीमा पर पहुँच गयी थी। यहाँ तक, कि, इनकी भाषा एवं ग्रंथों को पर्शियन सम्राटों ने अपनाया था। इनकी यह राजमान्यता एवं लोकप्रियता देखने पर पैशाची संस्कृति एवं राजनैतिक सामर्थ्य का पता चल जाता है। सर्वप्रथम मध्यएशिया में रहनेवाले ये लोग, धीरे धीरे भारतवर्ष के दक्षिण सीमा तक पहुँच गये।

महाभारतकालीन पिशाच जनपद के लोग। ये लोग युधिष्ठिर की सेना में क्रौंचव्यूह के दाहिने पक्ष की जगह खड़े किये थे (म. भी. ४६.४९)। इनमें से बहुत से लोग भारतीययुद्ध में मारे गये थे (म. आश्व. ३९.६)।

दुर्योधन की सेना में राजा भगदत्त के साथ पिशाचदेशीय सैनिक थे (म. भी. ८३.८)। श्रीकृष्ण ने किसी समय पिशाच देश के योद्धाओं को परास्त किया था (म. द्रो. १०.१६)।

३. एक यक्ष का नाम (म. स. १०.१५)।

पिशाचि--पिशाच लोगों का नामांतर (पिशाच देखिये)।

पिशुन--कुरुक्षेत्र के कौशिक ब्राह्मण के सात पुत्रों में से एक। इसके अन्य भाइयों में पितृवर्तिन् प्रमुख था (पितृवर्तिन् देखिये)।

पीठ--नरकासुर का सेनापति, एक असुर। भगवान् कृष्ण ने इसका वध किया (म. द्रो. १०.५; भा. १०. ५९.१४)।

पीडापर--कश्यप एवं खशा के पुत्रों में से एक।

पीतहव्य--वीतहव्य का नामांतर।

पीतायुध--(सो. पूरु.) एक राजा। मत्स्य के अनुसार, चारुपद इसीका नामांतर था (चारुपद देखिये)।

पीवर--तामस मन्वंतर के सप्तर्षियों में से एक।

पीवरी--अग्निष्वात्त पितरों की कन्या तथा व्यास ऋषि के पुत्र शुक की स्त्री। इसे कृष्ण, गौर, प्रभु, शंभु, तथा भूरिश्रुत नामक पाँच पुत्र एवं कीर्तिमती नामक एक कन्या थी। कीर्तिमती का विवाह अणुह राजा से हुआ था, एवं उससे उसे ब्रह्मदत्त नामक पुत्र हुआ था (ब्रह्मांड. ३.१०.८०-८१)।

पद्मपुराण में, इसके पुत्रों के नाम कृष्ण, गौरप्रभ एवं शंभु तथा कन्या का नाम कृत्वी बताया गया है (पद्म. स. ९-४०-४१ १; पुलह २. देखिये)।

पितरों द्वारा उत्पन्न की गयी मानसकन्याओं में पीवरी एक थी (पितरः देखिये)।

पुंजिकस्थला--दस प्रधान अप्सराओं में से एक। अर्जुन के जन्ममहोत्सव में इसने गाया था (म. आ. ११४.४६)। यह कुबेर की सभा में रहकर, उसकी उपासना करती थी (म. स. १०.१०)।

शाप के कारण, अगले जन्म में यह कुंजर नामक वानर की कन्या अंजना हुयी (वा. रा. कि. ६६; अंजना देखिये)।

पुंजिकस्थली--वैशाख में सूर्य के साथ रहनेवाली एक अप्सरा (भा. १२.११.३४)।

पुंडरीक--(सू. इ.) इक्ष्वाकुवंश का एक राजा। इसे पुंडरिकाक्ष भी कहते थे (पद्म. सृ. ८)।

यह नभ राजा का पुत्र था। इसे क्षेमधन्वन् अथवा क्षेमधृत्वन् नामक पुत्र था (क्षेमधृत्वन् पुंडरिक देखिये)।

२. कश्यप वंश का एक नाग, जो पाताललोक में रहता था (म. उ. १०३.१३, बभ्रुवाहन देखिये)।

३. यम की सभा का एक सभासद (म. स. ८. १४)।

४. एक तीर्थसेवी ब्राह्मण, जिसका नारद से 'सर्वोत्तमतत्व' के संबंध में संवाद हुआ था (म. अनु. १८६. ३; पद्म. उ. ८०)।

इसे भगवान् नारायण का प्रत्यक्ष दर्शन हुआ था, एवं उसके साथ परमधाम की प्राप्ति भी हुयी थी (म. अनु. १२४)।

५. एक दिग्गज (म. द्रो. १२१.२५ बंबई प्रत)।

६. एक राजा, जो अम्बरीष राजा का मित्र था। इन दोनों ने अधर्म का आचरण किया। बाद में पश्चाताप कर के इन्होंने जगन्नाथ की आराधना की, जिस कारण इन्हें भगवान् का प्रत्यक्ष दर्शन हुआ, एवं मोक्ष की प्राप्ति हुयी (स्कंद. २.२.४-५)।

७. नागपुर का नाग राजा। इसके दरबार में ललित नामक एक गायक था। 'कामदा एकादशी' का व्रत करने के कारण इसका उद्धार हुआ (पद्म. उ. ४०)। 'कामदाएकादशी' का माहात्म्य कथन करने के कारण इसकी कथा दी गयी है।

८. एक भगवद्भक्त, जिसका 'ॐ नमो नारायणाय' मंत्र से उद्धार हुआ। अंत में विष्णु इसे अपने साथ वैकुंठ ले गया (पद्म. उ. ८१)।

९. एक भगवद्भक्त। यह विदर्भ नगर के मालव नामक ब्राह्मण का भतीजा था। इसके घर विष्णु एक मास तक रहा था। इसका भरत नामक एक दुष्टचरित्र भाई था। भरत के मृत्योपरांत, इसने पुष्करतीर्थ में उसका क्रियाकर्म किया, जिस के कारण भरत का उद्धार हुआ (पद्म. उ. २१५.)।

१०. कुरुक्षेत्र के कौशिक ब्राह्मण के सात पुत्रों में से एक (पितृवर्तिन् देखिये)।

पुंडरीका--एक अप्सरा, जो कश्यप तथा मुनि की कन्या थी। इसने अर्जुन के जन्मोत्सव में नृत्य किया था (म. आ. ११४.५२)।

२. वसिष्ठ ऋषि की कन्या।

पुंडरीकाक्ष— इक्ष्वाकु वंश के पुंडरीक राजा का नामांतर (पुंडरीक १. देखिये)।

२. भगवान् श्रीकृष्ण का नामांतर (म. उ. ६८.६)।

पुंडरीयक-- एक सनातन विश्वेदेव (म. अनु. ९१.३४)।

पुंडलिक-- कुरुक्षेत्र के कौशिक ब्राह्मण के सात पुत्रों में से एक (पितृवर्तिन् देखिये)।

पुंड्र-- (सो. अनु.) अनुवंश का एक राजा। यह बलि राजा के छः पुत्रों में से एक था (अंग एवं बलि देखिये)।

२. पुंड्र देश के लोगों के लिये प्रयुक्त एक सामूहिक-नाम। इन लोगों को पाण्डु राजा ने जीता था (म. आ. १०५.१२)। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के समय ये लोग भेंट लेकर आये थे (म. स. ४८.१७)

कर्ण ने अपने दिग्विजय के समय इन लोगों को, एवं इनके पौंड्रक वासुदेव नामक राजा को जीता था (म. क. ५.१९)। पाण्डवों के अश्वमेध यज्ञ के समय अर्जुन ने इन्हें जीता था (म. आश्व. ८४.२९)।

३. वसुदेव के सुतनु से उत्पन्न दो पुत्रों में से ज्येष्ठ पुत्र।

४. ब्रह्माण्ड के अनुसार, व्यास के यजुःशिष्य परंपरा में से याज्ञवल्क्य का वाजसनेय शिष्य।

पुंड्रक—एक प्राचीन क्षत्रिय नरेश, जो युधिष्ठिर की सभा में उपस्थित था (म. स. ४.२६)। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में यह 'दुकूलादि' भेंट लाया था (म. स. ४८.४७)।

पुण्य--महेन्द्रपर्वत पर रहनेवाले दीर्घतपस् नामक तपस्वी के दो पुत्रों में से एक। इसका भाई पावन था, जो अत्यधिक गँवार था। अपने माता-पिता की मृत्यु के उपरांत इसने अपने शोकग्रस्त भाई पवन को उपदेश देकर उसे शोक से मुक्त किया (यो. वा. ५.१९-२१)।

२. (सो. ऋक्ष.) एक राजा। मत्स्य के अनुसार, यह पुण्यवान नामक राजा का पुत्र था।

पुण्यकृत्—एक सनातन विश्वेदेव (म. अनु. ९१. ३०)।

पुण्यजन—एक राक्षस। कुशस्थली (द्वारिका) का शर्यातवंशीय राजा ककुद्मिन् रैवत जब ब्रह्माजी से मिलने गया था, तब उसकी अनुपस्थिति में इसने उसके राज्य पर अधिकार जमा लिया। इसके भय से त्रस्त होकर, रैवत के सौ भाई राज्य से भाग कर इधर उधर चले गये। आगे चलकर शर्यातवंश हैहयवंश में विलीन हो गया (विष्णु. ४.२.१-२)।

पुण्यजनी—मणिभद्र नामक शिवगण की पत्नी। इसके पिता का नाम ऋतुस्थ था। मणिभद्र से इसे तेइस पुत्र हुये (ब्रह्मांड ३.७.१२२-१२५; मणिभद्र देखिये)।

पुण्यनामन्--स्कंद का एक सैनिक (म. श. ४४. ५५)।

पुण्यनिधि—मथुरा का चन्द्रवंशी राजा। इसने रामेश्वर में रहकर विष्णु की आराधना की। तब इसकी तपस्या से प्रसन्न होकर, भगवान विष्णु 'सेतुमाधव' नाम से रामेश्वर में निवास करने लगे (स्कंद. ३.५१)।

पुण्यवत्--(सो. ऋक्ष.) एक राजा। मत्स्य के अनुसार यह वृषभ राजा का पुत्र था। इसे 'पुण्यवत्' नामांतर भी प्राप्त था।

पुण्यशील—गोदावरी के तट पर निवास करनेवाला एक ब्राह्मण। एक बार इसने एक वंध्या स्त्री के ब्राह्मण पति को श्राद्धकर्म के लिए बैठाया। इस पापकर्म के कारण इसका मुख गर्दभ के समान हो गया। अन्त में, वेंकटाचल के स्वामितीर्थ में तथा आकाशगंगातीर्थ में स्नान करने के उपरांत, इसे इस शाप से छुटकारा मिला, एवं इसका मुख पहले की तरह हो गया (स्कंद. २.१.२२)।

पुण्यश्रवस्--एक ऋषि। विष्णुभक्त होने के कारण, कृष्णवतार के समय इसने नंद के भाई के घर, मे लवंगा नामक गोपी के रूप में जन्म लिया (पद्म. पा. ७२.१५२)।

पुत्र--स्वारोचिष मनु के पुत्रों में से एक।

पुत्रक--(सो. ऋक्ष.) एक राजा। वायु के अनुसार यह कुरु राजा का पुत्र था। इसका 'प्रजन' नामांतर भी प्राप्त है।

पुत्रव--अंगिराकुल का एक गोत्रकार।

पुत्रसेन--मैत्रायणी संहिता में निर्दिष्ट किसी एक व्यक्ति का नाम (मै. सं. ४.६.६)।

पुत्रिकषेण--(आंध्र. भविष्य.) एक आंध्रवंशीय राजा। वायु के अनुसार, हाल तथा पंचसप्तक राजाओं के पश्चात् यह राजगद्दी पर बैठा (वायु. ९९.३५३)। इसके पुरीन्द्रसेन, पुरीषभीरु तथा प्रविल्लसेन नामांतर भी प्राप्त हैं। इसने इक्कीस वर्षों तक राज्य किया।

पुनर्दत्त--सांख्यायन आरण्यक में निर्दिष्ट एक आचार्य (सां. आ. ८.८)।

पुनर्भव समाभाग वा **भागवत** --(शुंग. भविष्य.)

एक शुंगवंशीय राजा। मत्स्य के अनुसार यह वज्रमित्र राजा का पुत्र था।

पुनर्वत्स काण्व--एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. ८.७)।

पुनर्वसु--(सो. कुकुर.) एक यादव राजा। भागवत के अनुसार यह दरिद्योत का, वायु तथा विष्णु के अनुसार अभिजित का, तथा मत्स्य के मतानुसार नल या नंदनोदरदुंदभि का पुत्र था। इसके आहुक तथा आहुकी नामक दो पुत्र थे।

२. दक्ष की कन्या, जो सोम की पत्नी थी।

पुनर्वसु आत्रेय--एक प्राचीन आयुर्वेदाचार्य। चरक संहिता के मूल ग्रंथ 'अग्निवेशतंत्र' के रचयिता अग्निवेश का तथा उसके सहपाठी भेल आदि का यह गुरु था।

यह ब्रह्मा के मानसपुत्र देवर्षि अत्रि का पुत्र था। आत्रेय शब्द से 'अत्रिपुत्र' 'अत्रिवंशज' एवं 'अत्रि-शिष्यपरम्परा' का बोध होता है, किन्तु यहाँ 'आत्रेय' शब्द पुत्र-वाचक ही है। क्योंकि, चरकसंहिता में विभिन्न स्थानों पर इसके लिये 'अत्रिसुत', 'अत्रि-नंदन' आदि का स्पष्ट निर्देश है (चरक. सू. ३.२९; ३०.५०.)।

इसके पिता अत्रि ऋषि स्वयं आयुर्वेदाचार्य थे। 'काश्यपसंहिता' के अनुसार, इन्द्र ने कश्यप, वसिष्ठ, अत्रि एवं भृगु ऋषियों को आयुर्वेद की शिक्षा दी थी। अश्वघोष के अनुसार, आयुर्वेद चिकित्सातंत्र का जो भाग अत्रि ऋषि पूरा न कर सके, उसे उसके पुत्र पुनर्वसु आत्रेय ने पूर्ण किया (अश्वघोष-'बुद्धचरित' १.४३)।

इसकी माता का नाम चन्द्रभागा था, जिस कारण इसे 'चान्द्रभाग' अथवा चान्द्रभागी नामांतर भी प्राप्त है (काश्यप. उपोद्घात पृ. ७७)। कृष्णयजुर्वेदीय होने के कारण इसे 'कृष्णात्रेय' भी कहते हैं (चरक. सू. ११.६५)।

अपने पिता अत्रि ऋषि तथा भरद्वाज ऋषि से आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त कर, यह आयुर्वेदाचार्य बना। सामान्यतः यह भरद्वाज ऋषि का समकालीन माना जाता है। किन्तु एक तिब्बतीय कथा के अनुसार, सुप्रसिद्ध बौद्धभिक्षु जीवक की आयुर्वेदीय शिक्षा आचार्य आत्रेय द्वारा तक्षशिला में हुयी थी।

पुनर्वसु आत्रेय यायावर ऋषि थे, एवं इनके रहने का कोई स्थान निश्चित न था। यह पर्यटन करते हुये आयुर्वेद का उपदेश देते थे, एवं विद्वानों की सभाओं में भाग लेते थे। महर्षि भरद्वाज के द्वारा आयोजित एक 'वैद्यक-सभा' में यह उपस्थित थे।

शिष्य--आत्रेय के कुल छः शिष्य थे, जिनके नाम इस प्रकार थेः--अग्निवेश, भेल, जतूकर्ण, पराशर, हारीत तथा क्षीरपाणि (चरक. १.३०;३७)।

ग्रन्थ--इसका सुविख्यात ग्रन्थ 'आत्रेयसंहिता' है। इस ग्रन्थ के अनेक हस्तलेख विभिन्न हस्तलेखसंग्रहों में प्राप्त हैं।

आजकाल प्रकाशित 'हारीतसंहिता' में पाँच विभिन्न 'आत्रेय संहिताओं' के निर्देश प्राप्त हैं, जिनकी श्लोक-संख्या क्रमशः चौबीस हज़ार, बारह हज़ार, छः हज़ार, तीन हज़ार एवं पंद्रह सौ दी गयी हैं।

आत्रेय के नाम पर लगभग तीस 'आयुर्वेदीय योग' उपलब्ध हैं। इनमें से 'बल तैल' एवं 'अमृताद्य तैल' का निर्देश चरक संहिता में प्राप्त है (चरक. चि. २८.१४८-१५६; १५७-१६४)।

पुरंजन--एक प्राचीन राजा। स्वायंभुव मन्वन्तर के प्राचीनबर्हि राजा को ब्रह्मज्ञान का उपदेश देते समय, नारद ने इस राजा का निर्देश किया था (भा. ४.२५-२९)।

पुरंजय--(सू. इ.) एक इक्ष्वाकुवंशीय राजा। इसे 'इंद्रवाह' एवं 'ककुत्स्थ' नामांतर भी प्राप्त थे।

२. (सो. अनु.) एक अनुवंशीय राजा। विष्णु, मत्स्य, एवं वायु के अनुसार, यह सृंजय राजा का पुत्र था। मत्स्य के अनुसार, इसे 'वीर' नामांतर भी प्राप्त था।

३. (सो. पूरु. भविष्य.) एक पूरुवंशीय राजा। मत्स्य के अनुसार, यह 'मेधावि' राजा का पुत्र था।

४. एक नागवंशीय राजा। विष्णु के अनुसार, यह किलकिला का, एवं ब्रह्मांड के अनुसार यह मथुरा का राजा था। इसके पिता का नाम विंध्यशक्ति था।

५. (सो. मगध. भविष्य.) मगध देश का एक राजा। भागवत के अनुसार, यह जरासंध के वंश का अंतिम राजा था। इसके प्रधान का नाम शुनक था, जिसने इसका वध कर 'प्रद्योत' नामक स्वतंत्र राजवंश की नींव डाली (भा. १२.१.२)।

विष्णु में इसका नाम 'रिपुंजय' दिया गया है (४. रिपुंजय देखिये)।

६. (भविष्य) मागधवंशीय विश्वस्फूर्ति राजा का नामांतर। पापबुद्धि होकर भी यह अति पराक्रमी था। इसकी राजजधानी पद्मावती नगरी थी। गंगाद्वार से प्रयाग तक का सारा प्रदेश इसके राज्य में शामिल था।

इसने 'वर्णाश्रम व्यवस्था' को नष्ट कर, पुलिंद, यदु तथा मद्रक नामक नये वर्ण स्थापित किये (भा. १२.१. ३६-४०)।

पुराणों में दी गयी वंशावली में इसका नाम अप्राप्त है।

पुरंदर—वैवस्वत मन्वन्तर के इन्द्र का नामांतर (इन्द्र देखिये)। मत्स्य पुराण में निर्दिष्ट अठारह वास्तुशास्त्रकारों में पुरंदर का निर्देश प्राप्त है (मत्स्य. २५२. २-३)। अन्य वास्तुशास्त्रकारों के नाम इस प्रकार हैः— भृगु, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वकर्मा, मय, नारद, नग्नजित्, विशालाक्ष, ब्रह्मा, कुमार, नन्दीश, शौनक, गर्ग वासुदेव, शुक्र, बृहस्पति, अनिरुद्ध।

महाभारत के अनुसार, भगवान् शिव ने धर्म, अर्थ, एवं काम शास्त्र पर 'वैशालाक्ष' नामक एक ग्रन्थ की रचना की, जिसकी अध्यायसंख्या कुल दस हज़ार थी। उस बृहद्ग्रन्थ का संक्षिप्तीकरण, आचार्य पुरंदर ने किया। इसके इस ग्रन्थ का नाम 'बाहुदंतक' था, जिसमें अध्यायों की संख्या पाँच सहस्र थी। संभवतः आचार्य पुरंदर की माता का नाम बहुदंती था। हो सकता है इसी कारण, इसने अपने इस ग्रन्थ का नाम 'बाहुदंतक' रक्खा हो (म. शां. ५९.८९-९०)।

२. तप अथवा पांचजन्य नामक अग्नि का पुत्र। महान् तपस्या के पश्चात् 'तप' अग्नि को 'तपस्याफल' की प्राप्ति हुयी। उसे प्राप्त करने के लिए, पुरंदर नाम से स्वयं इंद्र ने अग्नि के पुत्र के रूप में जन्म लिया था (म. व. २११.३)।

पुरंधि—वध्रिमती नामक एक वैदिक स्त्री का नामान्तर (ऋ. १.११६.१२)। अश्विनों ने इसे हिरण्यहस्त नामक एक पुत्र प्रदान किया था।

पुरय—एक वैदिक राजा। ऋग्वेद की एक दानस्तुति में इसका निर्देश प्राप्त है (ऋ. ६.६३.९)। भरद्वाज को इस के द्वारा अश्वों की प्राप्ति हुयी थी।

पुराण—काठकसंहिता में निर्दिष्ट एक ऋषि का नाम (का. सं. ३९.७)

२. कुशिककुल का मंत्रकार। इसे 'पूरण' नामान्तर भी प्राप्त था।

पुरींद्रसेन—(आंध्र. भविष्य.) एक आंध्रवंशीय राजा। मत्स्य के अनुसार, यह मदुलक का पुत्र था। इसे पुत्रिकषेण नामान्तर भी प्राप्त है (पुत्रिकषेण देखिये)।

पुरीमत्—(आंध्र. भविष्य.) एक आंध्रवंशीय राजा भागवत के अनुसार, यह गोमतीपुत्र का पुत्र था। इसे 'पुलीमत्' एवं 'पुलोम' नामांतर भी प्राप्त थे।

पुरीषभीरु—(आंध्र. भविष्य.) एक आंध्रवंशीय राजा। भागवत के अनुसार, यह तलक का, एवं ब्रह्मांड के अनुसार, यह पंचपत्तलक का पुत्र था। इसे 'पुत्रिकषेण' नामान्तर भी प्राप्त है (पुत्रिकषेण देखिये)।

पुरीष्य—पंचचित नामक अग्नि का नामान्तर। यह विधाता नामक आठवें आदित्य को क्रिया नामक पत्नी से उत्पन्न हुआ था (भा. ६.१८.४)।

पुरु—एक प्राचीन क्षत्रिय नरेश, जो युधिष्ठर की सभा में उपस्थित था (४.२३ पाठ.)।

२. भागवत के अनुसार, वसुदेव एवं सहदेवा का पुत्र।

पुरुकुत्स—अंगिराकुल के कुत्स नामक उपगोत्रकार के तीन प्रवरों में से एक। एक मंत्रद्रष्टा के रूप में भी इसका निर्देश प्राप्त है (अंगिरस् देखिये)।

पुरुकुत्स 'ऐक्ष्वाक'—(सू. इ.) पुरु देश का एक इक्ष्वाकुवंशीय राजा (श. ब्रा. १३.५.४.५)।

सुविख्यात वैदिक राजा सुदास के समकालिन राजा के नाते से, इसका निर्देश ऋग्वेद में कई बार आया है (ऋ. १.६३.७)। संभवतः दाशराज्ञ युद्ध में सुदास राजा ने इसे पराजित किया था (ऋ. ७.१८)। इस युद्ध में यह मारा अथवा पकड़ा गया था, जिसके बाद इसकी पत्नी पुरुकुत्सानी ने 'पुरुओं' के भाग्य को लौटाने के लिये, एक पुत्र की उत्पत्ति थी की। उस पुत्र का नाम त्रसदस्यु था (ऋ. ४.४२.८); एवं उसे 'पौरुकुत्स्य' (ऋ. ५.३३.८); तथा 'पौरुकुत्सि' (ऋ. ७.१९.३), नामांतर भी प्राप्त थे।

दासों पर विजय पानेवाला पुरु राजा के नाम से, पुरुकुत्स का निर्देश ऋग्वेद में प्राप्त है (ऋ.६.२०.१०)। दिव्य अस्त्रों की सहायता से, यह अनेक युद्धों में विजित हुआ (ऋ. १.११२.७; १४)।

ऋग्वेद में एक स्थान पर पुरुकुत्स को 'दौर्गह' विशेषण लगाया गया है (ऋ. ४.४२.८)। इससे प्रतीत होता है की, यह 'दुर्गह' का पुत्र या वंशज था। किंतु 'सीग' के अनुसार, 'दौर्गह' किसी अश्व का नाम हो कर, पुरुकुत्स के पुत्रप्राप्ति के लिये आयोजित

किये अश्वमेध यज्ञ की ओर संकेत करता है (सा. ऋ. ९६–१०२)।

पुराणों में भी पुरुकुत्स का निर्देश कई बार प्राप्त है। भागवत, विष्णु तथा वायु के अनुसार, यह इक्ष्वाकुवंशीय राजा मांधाता का बिंदुमती से उत्पन्न पुत्र था। नागकन्या नर्मदा इसकी पत्नी थी।

नागों से शत्रुता करनेवाले गंधर्वों का इसने नाश किया जिस कारण नागों ने इसे वर दिया, 'तुम्हारा नाम लेते ही, किसी भी आदमी को सर्पदंश के भय से छुटकारा प्राप्त होगा' (भा. ९.६.३८; ९.७.३)।

इसके वसुद, त्रसदस्यु, तथा अनरण्य नामक तीन पुत्र थे। पद्म के अनुसार, इसके धर्मसेतु, मुचकुंद तथा शक्तमित्र नामक तीन भाई तथा दुःसह नामक एक पुत्र था (पद्म. सृ. ८)।

मत्स्य के अनुसार इसे 'पुरुकृत्' नामांतर भी प्राप्त है। कुरुक्षेत्र के वन में तपस्या कर, इसने 'सिद्धि' प्राप्ति की थी, जिस कारण यह स्वर्गलोक में पहुँच गया (म. आश्व. २६.१२-१३)। यह यम सभा में रह कर, यम की उपासना करता था (म. स. ८.१३)।

पुरुकुत्स कात्य—एक क्षत्रिय राजा, जो तप से ब्राह्मण बन गया था (वायु. ९१.११६)।

पुरुकुत्सानी—इक्ष्वाकुवंशीय पुरुकुत्स राजा की पत्नी एवं त्रसदस्यु राजा की माता (ऋ. ४.४२.९)।

पुरुकृत्—मत्स्य के अनुसार, इक्ष्वाकुवंशीय पुरुकुत्स राजा का नामांतर (पुरुकुत्स 'ऐक्ष्वाक' देखिये)।

पुरुज--(सो. नील.) एक नीलवंशीय राजा। भागवत के अनुसार, यह सुशांति राजा का पुत्र था। विष्णु, वायु तथा मत्स्य में, इसे 'पुरुजानु' कहा गया है। कई अन्य पुराणों में, इसका 'पुरुजाति' नामांतर भी प्राप्त है (ह. वं.१.३२.६४; ब्रह्म. १३.८३)।

पुरुजाति तथा **पुरुजानु**--नीलवंशीय पुरुज राजा का नामांतर (पुरुज देखिये)।

पुरुजित्—(सू. निमि.) एक निमिवंशीय राजा। भागवत के अनुसार, यह अज नामक 'जनक' राजा का पुत्र था। इसके पुत्र का नाम अरिष्टनेमि था।

२. एक राजा, जो कुन्तिभोज राजा का पुत्र एवं कुंती का भाई था। इसके दूसरे भाई का नाम भी कुन्तिभोज ही था (म. स. १३.१६-१७)।

भारतीय युद्ध में, यह पांडवपक्ष में शामिल था (म. उ. १६९.२; भी. २३.५)। इसके रथ के अश्व इंद्रधनु के समान विविध रंगी थे (म. द्रो. २२.३९)। दुर्मुख के साथ इसका युद्ध हुआ था (म. द्रो. २४.३८)। द्रोण ने इसका वध किया था (म. क. ४.७३)। मृत्यु के पश्चात्, यह यमसभा में यम की उपासना करने लगा (म. स. ८.१८)।

३. (सो. क्रोष्टु.) एक राजा। भागवत के अनुसार, यह ऋचक राजा के पाँच पुत्रों में से ज्येष्ठ था।

४. (सो. कुकुर.) एक राजा। भागवत के अनुसार, यह वसुदेव का भाई एवं अपने पिता आनक के दो पुत्रों में से कनिष्ठ था (भा. ९.२४.४१)। इसकी माता का नाम कंका था।

५. श्रीकृष्ण तथा जांबवती के पुत्रों में से एक।

पुरुणीथ शातवनेय—वैदिककालीन एक यज्ञकर्ता ऋषि, एवं भारद्वाज लोगों का पुरोहित (ऋ. १.५९.७) 'शातवनेय' इसका यह नाम संभवतः शतवनी का पुत्र या वंशज होने की ओर संकेत करता है। भारद्वाज लोगों से इसका घनिष्ठ संबंध था। ऋग्वेद में अन्य एक स्थान पर, एक स्तावक के रूप में इसका निर्देश प्राप्त है (ऋ. ७.९.६)।

पुरुंड—एक दानव, जो कश्यप एवं दनु का पुत्र था।

पुरुदम—अथर्ववेद में निर्दिष्ट एक स्तोता (अ. वे. ७७.७३.१)। इसका निर्देश बहुवचन के रूप में प्राप्त है, जिस कारण, यह किसी समूह का नाम प्रतीत होता है।

पुरुद्वत्—(सो. क्रोष्टु.) एक राजा। मत्स्य के अनुसार, यह पुरुवस् का तथा वायु के अनुसार, यह महापुरुवेश का पुत्र था।

पुरुद्वह--धर्मसावर्णि मनु के पुत्रों में से एक।

२. (सो. क्रोष्टु) एक राजा। वायु के अनुसार यह पुरुद्वत् राजा का भद्रवती से हुआ पुत्र था (वायु. ९४.४७)।

पुरुपंथिन्—एक वैदिक राजा, जो भरद्वाज ऋषि का दाता था (ऋ. ह. ६.६३.१०)

पुरुमाय्य—एक वैदिक राजा, जो इन्द्र का आश्रित था (ऋ. ८.६८.१०)। संभवतः यह अतिथिग्व, ऋक्ष एवं अश्वमेध राजाओं का पिता अथवा रिश्तेदार था। सायण के अनुसार, यह व्यक्तिवाचक नाम न हो कर, प्रियमेध राजा की केवल उपाधि थी।

पुरुमित्र--एक वैदिक राजा, जिसकी कन्या का नाम कमद्यू था। कमद्यू ने अपने पिता की इच्छा के विरुद्ध विमद नामक ऋषि से विवाह किया था (ऋ १.११७.२०; १०.३९.७; विमद देखिये)।

२. (सो. कुरु.) धृतराष्ट्र के ग्यारह महारथि पुत्रों में से एक (३२८*)। पांडवों के द्यूतक्रीड़ा के समय यह उपस्थित था (म. स. ५२.५३)।

भारतीय युद्ध में यह अभिमन्यु द्वारा घायाल हुआ था (म. भी. ६९.२३)।

३. एक क्षत्रिय राजा, जो भारतीय युद्ध में दुर्योधन के पक्ष में शामिल था (म. भी. ५३.२५)।

पुरुमीह्ळ 'आंगिरस'—एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. ८.७१)। पुरुमीह्ळ 'वैददश्वि' एक वैदिक ऋषि (ऋ. १. १५१.२; १८३.५; अ. वे. ४.२९.४; १८.३.१५)। इनका आश्रित एवं तरन्त ऋषि ये दोनों विददश्व के पुत्र थे। श्यावाश्व नामक एक गायक था (बृहद्दे. ५ ४९)। ओल्डेन बर्ग के अनुसार, यह कथा असंभाव्य प्रतीत होती है।

ऋग्वेद में अन्य एक स्थान पर इसे एवं तरन्त को ध्वस्त्र तथा पुरुपन्ति नामक राजाओं से दान मिलने का निर्देश प्राप्त है (ऋ. ९.५८.३)। 'सीग' के अनुसार पुरुमिह्ळ तथा तरन्त ये दोनों राजा थे एवं जब तक ऋषि नहीं बन जाते तब तक अपने जाति के नियमों के अनुसार ये दान नहीं ग्रहण कर सकते थे।

पुरुमिह्ळ सौहोत्र—एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. ४. ४३–४४)। पूरुवंश का सुविख्यात राजा पुरुमीढ यह दोनों एक ही होंगे।

पुरुमीढ—(सो. पूरु.) एक पूरुवंशीय राजा। मत्स्य वायु तथा भागवत के अनुसार, यह हस्ती राजा का, एवं विष्णु के अनुसार यह हस्तिनर राजा का पुत्र था। यह निःसंतान ही था कि मर गया।

महाभारत के अनुसार, यह सुहोत्र राजा का तृतीय पुत्र था, एवं इसकी माता का नाम ऐक्ष्वाकी था। इसके अजमीढ एवं सुमीढ नामक दो भाई थे (म. आ. ८९.२६)। महाभारत में दिये गये इसके मातापिता के नाम ग़लत मालूम होते हैं, क्योंकि, वहाँ दी हुयी वंशावली में कई पीढ़ियाँ छोड़ दी गयी हैं।

पुरुमेध आंगिरस—एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. ८. ८९–९०)।

पुरुयशस्—एक पांचाल देश का राजा। स्कंद के अनुसार, यह भूरियश राजा का पुत्र था। याज एवं उपयाज नामक ब्रह्मण इसके गुरु थे, जिनके उपदेश से इसने 'वैशाख धर्म' का अनुष्ठान किया था। इस अनुष्ठान के कारण, इसे अपार राज्यवैभव प्राप्त हुआ था (स्कंद २.७.१५–१६)।

पुरुवस—(सो. क्रोष्टु.) एक राजा। मत्स्य के अनुसार यह मधु राजा का पुत्र था। इसे 'कुरुवंश' तथा 'कुरुवत्स' नामांतर भी प्राप्त थे।

पुरुवसु—एक वैदिक स्तोता (ऋ ५.३६.३)।

पुरुष—चाक्षुष मनु के पुत्रों में से एक।

२. मरुतों के छठवें गण में से एक।

पुरुषन्ति—एक वैदिक राजा, जिसने किसी गायक को उपहार प्रदान किये थे (ऋ. ९.५८.३)। ऋग्वेद में अन्य एक स्थान पर, इसे अश्विनों का आश्रित कहा गया है (ऋ. १.११२.२३)। इन दोनों स्थानों पर, इसका निर्देश ध्वसन्ति एवं ध्वस्त्र राजाओं के साथ प्राप्त है।

ऋग्वेद की एक दानस्तुति में, इसकी एवं ध्वस्त्र राजा की स्तुति अवत्सार काश्यप ऋषि द्वारा की गयी है (ऋ. ९. ५९.३–४)। पंचविंश ब्राह्मण के अनुसार, 'ध्वस्त्रा' एवं 'पुरुषन्ति' ये दोनों स्त्रीलिंगी प्रयोग हैं एवं संभवतः किन्हीं स्त्रियों के नाम प्रतीत होते हैं (पं. ब्रा. १३.७.१२)।

पुरुषासक—एक वैदिक शाखाप्रवर्तक (पाणिनि देखिये)।

पुरुषोत्तम—पौंड्रक वासुदेव का नामान्तर।

पुरुहन्मन्—एक वैदिक सूक्त द्रष्टा (ऋ. ८.७०)। ऋग्वेद सर्वानुक्रमणिका में इसे आंगिरस कहा गया है। पंचविंश ब्राह्मण के अनुसार, यह 'वैखानस' वंशीय था (पं. ब्रा. १४.९ २९)।

पुरुहोत्र—(सो. क्रोष्टु.) एक राजा। भागवत के अनुसार यह अनु राजा का, पद्म के अनुसार कुरुवंश, विष्णु के अनुसार अनुरथ का, एवं भविष्य के अनुसार कुरुवत्स का पुत्र था। इसे 'पुरुवस' नामांतर भी प्राप्त था। इसके पुत्र का नाम अंशु था (पद्म. सृ. १३)।

पुरूरवस् 'ऐल'—प्रतिष्ठान (प्रयाग) देश का सुविख्यात राजा। सुविख्यात सोमवंश की प्रतिष्ठापना करनेवाले राजा के रूप में, यह पुरुरवस् प्राचीन भारतीय इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण राजा माना जाता है। यह एवं इसके ऐल वंश का राज्य यद्यपि प्रतिष्ठान में था, फिर भी यह स्वयं हिमालय प्रदेश का रहनेवाला था।

पुरूरवस् राजा सूर्यवंश के इक्ष्वाकु राजा के समकालीन था। यह स्वयं अत्यंत पराक्रमी था। इसने पृथ्वी के सात द्वीप जीतकर उन पर अपना राज्य स्थापित कर, सौ अश्वमेध यज्ञ किये थे।

इसके राज्य के उत्तर में अयोध्या जैसा बलिष्ठ राज्य था, एवं दक्षिण में युद्धशास्त्र में विख्यात करुष लोग थे। इस कारण इसका राज्य पूर्व एवं उत्तरपूर्व दिशाओं में स्थित गंगा के दोआब, मालवा एवं पूर्व राजपूताना प्रदेशों तक फैला था। पुरूरवस् के मृत्यु के समय, यह सारा प्रदेश ऐल साम्राज्य में समाविष्ट हो गया।

पुरूरवस् को 'ऐल' (इडा नामक यज्ञीय देवी का वंशज) उपाधि प्राप्त थी। यद्यपि पुरूरवस् का निर्देश वैदिक ग्रंथों में बार बार प्राप्त है, फिर भी इसकी ऐल उपाधि इसे पुराणकालीन राजा के रूप में स्थापित करती है।

उर्वशी एवं पुरूरवस् का सुप्रसिद्ध 'प्रणयसंवाद' वैदिक ग्रंथों में प्राप्त है (ऋ. १०.९५; श. ब्रा. ११.५. १)। ऋग्वेद में इसे 'ऐल' कहा गया है। यह स्वयं क्षत्रिय हो कर भी वैदिक सूत्रकार एवं मंत्रकार था, जिसका निर्देश ऋग्वेद एवं पुराणों में प्राप्त हैं (ऋ. १०.९५; मत्स्य. १४५.११५-११६. ब्रह्मांड. २.३२. १२०-१२१)। अग्नि के द्वारा पुरूरवस् पर अनुग्रह किये जाने का निर्देश भी ऋग्वेद में प्राप्त है (ऋ. १. ३४)।

पौराणिक ग्रंथों के अनुसार पुरूरवस् बुध राजा को इला से उत्पन्न हुआ था (म. आ. ७०.१६; मत्स्य. १२. १५; पद्म. सृ. ८; १२; ब्रह्म. १०; दे. भा. १.१३; भा. ९.१५; ह. वं. १.११.१७)। यह सोमवंश का मूल पुरुष है। इसको ऐल कहा है (वायु. ९१.४९-५०)।

पुरूरवा की राजधानी प्रतिष्ठानपुरी थी (ब्रह्म. ७.२२; ह. वं. १.१०.२२-२३)।

यह काशी का राजा था। इसके द्वारा प्रयाग प्रांत पर भी राज्य करने का उल्लेख मिलता है (वा. रा. उ. २५; ह. वं. २.२६.४९)। यह सप्तद्वीप का राजा था, तथा इसने सौ अश्वमेध किये थे (मत्स्य. २४.१०-१३)। महाभारत में, इसे त्रयोदश समुद्रद्वीपों का अधिपति कहा गया है (म. आ. ७०.१७)।

एक बार देवसभा में नारद ने पुरूरवा के गुणों का गान किया था। यह सुनकर उर्वशी पुरूरवा पर मोहित हो गयी। उसी समय भूतल पर जाने का शाप मित्रावरुणों ने उसे दिया। उर्वशी भूतल पर आई। पृथ्वी पर आते ही केशी नामक दैत्य ने उसे देख लिया, तथा उसका हरण किया।

पुरूरवा ने उर्वशी को केशी से मुक्त कराया। पश्चात् इसने उर्वशी के रूप पर मोहित हो कर, उससे विवाह करने की इच्छा प्रदर्शित की। उर्वशी ने इसकी बात तो मान ली, किंतु उसके साथ तीन विचित्र शर्तें रक्खीः-- (१) मेरे द्वारा पुत्रवत् पाली गयी तीन भेड़ें हैं, जिनकी रक्षा सतर्कता से होनी चाहिये। (२) मैथुन को छोड़कर तुम कभी भी मुझे नग्न स्थिति में न दिखायी दो (३) मेरा आहार केवल घी होगा। हरिवंश में उर्वशी की तीसरी शर्त कुछ भिन्नता से दी गयी है। उसमें लिखा है की उर्वशी ने इसे कहा, 'तुम्हें केवल घी खाकर ही जीवित रहना होगा' (ह. वं. १.२६.१४-१५)।

उर्वशी की सारी शर्तें मानकर राजा ने उससे विवाह कर लिया। उर्वशी गन्धर्वों की प्रिय थी, अतएव उन्होंने उसे स्वर्ग वापस लाने की योजना बनायी। एक दिन पलंग के पाये से बंधी भेड़ों को गन्धर्वगण खोल कर जाने लगे। यह देख कर उर्वशी चिल्लाई, तथा पुरूरवा नग्नावस्था में ही पलंग से शीघ्र दौड़ कर भेड़ो को पकड़ने के लिए आगे बढ़ा। इतने में बिजली के कौंध से, नग्न पुरूरवा उर्वशी को दिख गया। फिर अपने नियम के अनुसार, उर्वशी इसे छोड़कर गंधर्वलोक चली गयी।

उर्वशी के वियोग में पुरूरवा पागल सा इधर उधर भटकने लगा। ऐसी ही अवस्था में उर्वशी ने इसे देखा। फिर इसके प्रति दयालु होकर, उसने इसे कहा, 'गंधर्व तुम्हें वरप्रदान करने वाले हैं। उस समय तुम मेरे नित्य साहचर्य का वर माँग लो।

पश्चात्, गंधर्वों द्वारा वर माँगने के लिये कहे जाने पर, इसने उनसे गंधर्वत्व एवं उर्वशी के साहचर्य का वर माँग लिया। गंधर्वों ने इसे अग्नि के सहित एक स्थाली प्रदान की। उर्वशी न देकर, गंधर्वों ने केवल स्थाली ही दी, इससे नाराज़ होकर, इसने वह स्थाली अरण्य में ही फेंक दी, एवं यह घर वापस लौट आया।

कालोपरांत, इसे अपने कृतकर्म का पश्चात्ताप हुआ। फिर अरण्य में फेंक दी 'स्थाली' वापस लाने, यह अरण्य गया। वहाँ इसने देखा की 'स्थाली' लुप्त हो गयी है, एवं उस स्थान पर एक अश्वत्थ वृक्ष उत्पन्न खड़ा है। उस अश्वत्थ वृक्ष को अग्निरूप मानकर इसने उससे एक 'अरणि' तथा 'मंथा' बनाई, तथा उससे अग्नि उत्पन्न किया। बाद में उस अग्नि के दक्षिणाग्नि, आहवनीय तथा गार्हपत्य नामक तीन विभाग कर, इसने उनसे उत्कृष्ट हवन किया। इस हवन से प्रसन्न होकर, गन्धर्वों ने इसे

'सालोक्य' गंधर्वावस्था प्रदान की (श. ब्रा. ११.५.१. १३-१७; विष्णु. ४.६.१)

शतपथ ब्राह्मण में दी गयी यह कथा ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। पुरूरवस् के पहले एक ही अग्नि की उपासना प्रचलित थी। उसे बदल कर इसने तीन अग्नि की उपासना शुरू की (अग्नि. २७४.१४. विष्णु.४.६. ४९)।

एक बार धर्म, अर्थ, काम नामक तीनों पुरुषार्थ मानव-रूप धारण कर इसका सत्त्व देखने आये। इसने सबका सत्कार किया, परंतु धर्म को अत्यधिक आदर एवं सम्मान दिया। इससे कुपित होकर अर्थ तथा काम ने इन्हें शाप दिया, 'लोभ के कारण तुम्हारा विनाश हो जायेगा'।

गंधर्वलोक में देवअनुचर तुंबरु का उपहास करने के कारण, वह उर्वशी तथा पुरूरवा से क्रुद्ध हुआ एवं उसने इन्हे शाप दिया, 'परस्पर वियोगावस्था को प्राप्त कर तुम दोनो दुःखी होगे'। पश्चात्, इन दोनों ने गंधमादन पर्वत के 'साध्यामृत तीर्थ' में स्नान किया, एवं इस पुण्यक्रम से दोनों शापमुक्त हो गये (स्कन्द ३.१.२२.)। हर महीने की अमावास्या को यह पितरों को तृप्त करता था (वायु. ५६)

नैमिषारण्य के द्वादश वार्षिक सत्र के समय यह अयोध्या का राजा था। उर्वशी इस पर मोहित हो गयी थी। समुद्र के अठारह द्वीप इसने जीते थे, तथापि इसे संपत्ति का लोभ न छूटा। इसने संपत्ति के लोभ से द्वादश-वर्षीय सत्र के स्वर्णमय वेदी पर हमला किया।

अग्नि को गंगा से एक पुत्र उत्पन्न हुआ था। उस पुत्र की नाल को जैसे ही पर्वत पर डाला गया, नाल स्वर्णमय हो गयी। उसी स्वर्ण को लेकर इस द्वादशवर्षीय सत्र की वेदी बनायी गयी। बृहस्पति स्वयं वहाँ उपाध्याय था। ऐल पुरूरवा मृगया करते हुए वहाँ आया। सोने की वेदी देख कर उसे आश्चर्य हुआ। लोभ से पागल होकर यह स्वर्ण-वेदी के स्वर्ण का हरण करने लगा। तब सब ऋषि क्रोधित हो गये। उन्होंने दर्भरूपी वज्र से इसका वध किया, और उर्वशी से उत्पन्न आयु नामक पुत्र गद्दी पर बैठाया गया। कौटिल्य ने, इस प्रसंग का संकेत करते हुये लिखा है, 'पुरूरवा राजा ने अत्याचार तथा अनाचारपूर्वक धन इकठ्ठा किया (कौटिल्य पृ. २२)।

पश्चात् पुरूरवस्पुत्र आयु ने सब को शान्त कर, सत्र को पुनः आरम्भ किया (ब्रह्मांड. १. २. १४-२३; वायु. २)। महाभारत एवं वायु में कश्यप से पुरूरवा ने किये तत्त्वज्ञान पर संवादो का निर्देश प्राप्त है। ब्राह्मणादि चारों वर्णों की उत्पत्ति, तथा उनके अधिकार के बारे में इसका वायु से, तथा इन चारों वर्णो के परस्परव्यवहार के सम्बन्ध में कश्यप से संवाद हुआ था (म. शां. ७३. ७४)।

पद्म एवं ब्रह्म पुराणों में प्राप्त 'एकादशीमाहात्म्य' की कथाओं में पुरूरवा का निर्देश प्राप्त है। एकादशी को उपवास करने के पश्चात्, द्वादशी के दिन तेल खाने का पाप पुरूरवा ने किया, जिस कारण इसका शरीर कुरूप हो गया। इसने दुःखी हो कर तीन महीने तक उपवास कर, विष्णु की आराधना की। इसीसे संतुष्ट हो कर, विष्णु ने इसे ऐसा सुन्दर स्वरूप प्रदान किया कि, उर्वशी इस पर मोहित हो गयी (पद्म. उ. १२५)।

ऐसी ही और एक कथा मत्स्य में दी गयी है। पूर्व जन्म में यह द्विजग्राम का ब्राह्मण था। द्वादशी के दिन उपवास कर, इसने राज्यप्राप्त की इच्छा से जनार्दन की पूजा की। इस पुण्यकर्म के कारण, उसी जन्म में इसे मद्र-देश का राज्य प्राप्त हुआ। किंतु पश्चात् उपवास के दिन अभ्यंग स्नान करने के पाप के कारण, यह रूपहीन बन गया। फिर अपना विगत सौंदर्य पुनः प्राप्त करने के लिए, यह हिमालय पर तपश्चर्या करने गया (मत्स्य. ११५)।

पुरूरवा का पुरोहित वसिष्ठ था (ब्रह्म. १५१. ८-१०; पद्म. भू. १०८)। इसका हिमालय से विशेष सम्बन्ध दिखता है। ऐलवंश के राजाओं के मूलस्थान के सम्बन्ध में पुरूरवाचरित्र से काफ़ी बोध होता है। पुरूरवा का पिता 'इल' था, जिसके नाम से 'इलावृत' देश स्थापित हुआ था (मत्स्य. १२. १४; पद्म. सृ. ८)। यह देश भारतमें हिमालय के उत्तर की ओर, मेरु पर्वत के समीप बसा हुआ था।

इसके अतिरिक्त, पुरूरवा की जन्मकथा भी इसी प्रदेश से संलग्न प्रतीत होती है। ऐलों की सत्ता का उद्गम प्रयाग (इलाहाबाद) में हुआ था। फिर भी उनका मूलस्थान हिमालय के मध्यभाग से तथा उसपार के देशों में था। इसके कई उदाहरण प्राप्त हैं। पुरूरवा की कथा में निर्दिष्ट सारे स्थान, जैसे कि मंदाकिनी नदी, अलका, चैत्ररथ और नंदनवन, गंधमादन तथा मेरु पर्वत एवं कुरु देश नाम से प्रसिद्ध गंधर्वों का देश, ये सारे इसी प्रदेश के हैं। यह निश्चित है कि उत्तर कुरु प्रान्त से गंधर्वो का संबन्ध प्राचीन काल से चला आरहा है (मत्स्य.११४ ८२, वायु ३५; ४१; ४७)।

पुरूरवा की पत्नी उर्वशी गंधर्वी थी। इसके वंशजो ने

भी गंधर्वकन्याओं से विवाह किया था (कूर्म. १.२३.४६)। अन्त में यह स्वयं एक गंधर्व बन गया।

उर्वशी से इसे कुल छः पुत्र हुये, जिनके नाम इस प्रकार थेः—आयु, श्रुतायु, सत्यायु, रय, विजय, जय (भा. ९.१५.१)। महाभारत में उर्वशीपुत्रों के नाम इस प्रकार दिये गये है :—आयु, धीमत्, अमावसु, दृढायु, वनायु, एवं श्रुतायु (म. आ. ७०. २२)। कई ग्रंथो में इसके आठ पुत्रों का भी उल्लेख है और कुछ में सात पुत्र बताये गए हैं (ब्रह्म. १०; लिंग १.६६; ह. वं. १.२७.१-२)। भागवत में दिया गया है कि, इसने अग्नि को भी पुत्र माना था (भा. ९.१५)।

कुछ स्थानों पर रय, विजय तथा जय के स्थान पर 'धीमान्,' 'अमावसु,' 'शतायु,' तथा 'विश्वावसु' पाठभेद भी मिलता है (वायु ९१.५१-५२)। मत्स्य, एवं अग्नि पुराणों में इसके आठ पुत्रों के नाम इस प्रकार दिये गये हैं:—आयु, दृढायु, अश्वायु, धनायु, धृतिमत्, वसु, शुचिविद्य (दिविजात), शतायु (मत्स्य. २४.३३-३४; अग्नि. २७४.१५; पद्म. सृ. १२)।

इसके पुत्रों में से आयु को प्रतिष्ठाननगरी का राज्य प्राप्त हुआ, तथा अमावसु (विजय) कन्नौज का अधिपति बना। इसके पुत्रों के जो सात अथवा आठ नाम पुराणों में प्राप्त होते हैं, वे संभवतः किसी एक या दो व्यक्तियों के नामांतर होंगे। क्योंकि इसके दो प्रमुख पुत्र आयु तथा अमावसु के नाम सारे पुराणों में एकवाक्यता से प्राप्त होते हैं।

पुरूरवस्कथा का अन्वयार्थ—ब्राह्मण लोगों के साथ पुरूरवस् द्वारा किये विरोध का कथाभाग, ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण माना जाता है। वैवस्वत मनु के समय ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों में सहकार्य था। ऐल पुरूरवस् के समय ब्राह्मण-क्षत्रियों में विरोध पैदा हुआ। ऐल पुरूरवस् ब्राह्मणों के साथ विरोध करने लगा। ब्राह्मणों की दौलत पुरूरवस् ने हठ से जब्त कर ली। सनत्कुमार ने ब्रह्मलोक से आकर, पुरूरवस् से को ब्राह्मणविरोध न करने के लिये कहा। फिर भी पुरूरवस् ने एक न सुनी। तब ब्राह्मणों ने लोभवश पुरूरवस् को शाप दिया, एवं उसे नष्ट करने का प्रयत्न किया। तब पुरूरवस् ने उर्वशी के मध्यस्थता से गंधर्वलोग की सहायता प्राप्त की। गंधर्वलोक से अग्नि को प्राप्त कर पुरूरवस् ने अपना कार्य फिर शुरू किया (म. आ. ७०. १२-२१)। इस का तात्पर्य यह होता है कि, स्थानीय लोगों के विरोध को शान्त करने के लिये, पुरूरवस् ने अपने मूलस्थान गंधर्वलोक से सहायता ली, तथा अपना राज्यशासन सुव्यवस्थित किया। पुरूरवस् के पितृव्य वेन नामक राजा का भी ब्राह्मणों ने वध किया था।

धनलोभ के कारण अत्याचार करने से इसका नाश होने का निर्देश, कौटिल्य ने भी किया है (अर्थशास्त्र पृ. २२)।

२. दीप्ताक्षवंश का एक कुलपांसन राजा। कुलपांसन होने के कारण, अपने सुहृद एवं बांधवों के साथ इसका नाश हुआ (म. उ. ७२.१५)।

पुरोचन—दुर्योधन राजा का म्लेच्छ मंत्री एवं मित्र। दुर्योधन के कथनानुसार पांडवों के नाश के लिए इसने वारणावत में लाक्षागृह का निर्माण किया था (म. आ. १३२. ८-१३)।

वारणावत नगरी में इसने पांडवों का स्वागत किया, एवं उन्हें समस्त सुख-सामग्री प्रदान कर लाक्षागृह में ठहराया (म. आ. १३४. ८-१२)। बाद में, पांडवों के साथ रहने के उद्देश्य से यह वहाँ गया। उस समय इसने अपने रथ में खर जोत रक्खे थे। अन्त में, अपने बनाये हुये लाक्षागृह में ही जल कर यह मर गया (म. आ. १३२-१३६)।

पुरोजव—(स्वा. प्रिय.) एक राजा। भागवत के अनुसार यह मेधातिथि के सात पुत्रों में ज्येष्ठ पुत्र था।

२. प्राण नामक वसु का कनिष्ठ पुत्र, जिसकी माता का नाम ऊर्जस्वती था (भा. ६.६.१२)।

३ अनिल नामक वसु का पुत्र।

पुरोद्वह—धर्मसावर्णि मनु के पुत्रों में से एक।

पुलक—एक मृगरूपी दैत्य। तप कर इसने शंकर को प्रसन्न किया, तथा उनसे अद्भुत सुगंध के प्राप्त की याचना कर, वर प्राप्त किया। बाद में, उस सुगंध से यह देवस्त्रियों को मोहित कर, संसार को त्रस्त करने लगा। ऐसी परिस्थिति में देवों ने शंकर से इसकी शिकायत की। शंकर ने कुपित होकर, इससे असुर देह छोड़ने के लिए कहा। इसने शंकर के आदेश को मानते हुए उनसे प्रार्थना की, कि मेरे द्वारा धारण की हुयी सुगंध मुझ से वापस न ली जाये (स्कंद १.३.१.१३)।

२. मत्स्य के अनुसार, शुनक राजा का नामांतर।

पुलस्त्य—ब्रह्माजी के आठ मानसपुत्रों में से एक, जो छः शक्तिशाली महर्षियों में गिने जाते हैं (म. आ. ६०.४)। ब्रह्माजी के अन्य सात मानस पुत्रों के नाम इस प्रकार हैं:—

भृगु, अंगिरस, मरीचि, अत्रि, वसिष्ठ, पुलह एवं क्रतु (वायु. ४९.६८-६९)।

स्वायंभुव मन्वन्तर में यह ब्रह्मा के उदान से उत्पन्न हुआ। यह स्वायंभुव दक्ष का दामाद तथा शंकर का साढू था। दक्ष द्वारा अपमानित होने पर, शंकर ने इसे दग्ध कर मार डाला। दक्षकन्या प्रीति इसकी पत्नी थी (ब्रह्मांड. २.१२.२६-२९; विष्णु. १.१०)।

शंकर के शाप से ब्रह्माजी के बहुत सारे पुत्र मर गये, जिनमें यह एक था (मत्स्य.१९५)।

महाभारत के अनुसार, यह ब्रह्माजी के कान से उत्पन्न हुआ था (म. आ. ५९.१०; मत्स्य ३.६-८; वायु.६६.२२; भा. ३.१२.२४)। ब्रह्माजी द्वारा उत्पन्न हुये प्रजापतियों में यह एक था (मत्स्य. १७१.२६-२७; भा. ३.१२)। कर्दम प्रजापति की कन्या हविर्भुवा अथवा हविर्भुक् इसकी पत्नी थी। महाभारत में इसके प्रतीच्या एवं संध्या नामक दो और पत्नियों का भी निर्देश प्राप्त है (म. उ.११५. ४६०*; ११५.११)।

पुत्र—पुराणों में दी गयी पुलस्त्य के पुत्रों की नामावली इस प्रकार है:—

(१) प्रीतिपुत्र—दानाग्नि, देवबाहु, अत्रि (ब्रह्मांड. २.१२.२६-२९); दंभोलि (अगस्त्य) (विष्णु.१.१०)।

हविर्भुवापुत्र—अगस्त्य; विश्रवा (भा. ४.१.३६)।

इनके सिवा, पुलस्त्य को प्रीति से सद्वती नामक एक कन्या उत्पन्न हुयी थी।

२. वैवस्वत मन्वतर में पैदा हुआ आद्य पुलस्त्य ऋषि का पुनरावतार। शिवाजी के शाप से मरे हुए ब्रह्माजी के सारे मानसपुत्र, वैवस्वत मन्वंतर के प्रारंभ में ब्रह्मा जी द्वारा पुनः उत्पन्न किये। उस समय यह अग्नि के 'पिंगल' केशों में से उत्पन्न हुआ।

एक बार यह मेरु पर्वत पर तपस्या कर, रहा था। उस समय गंधर्वकन्यायें पुनः पुनः इसके समीप आकर इसकी तपस्या में बाधा डालने लगी। फिर इसने क्रुद्ध हो कर, उन्हें शाप दिया, 'जो भी कन्या मेरे सामने आयेगी, वह 'गर्भवती' हो जायेगी।

वैशाली देश के तृणबिंदु राजा की कन्या गौ अथवा इडविडा असावधानी से इसके सामने आ गयीं। तुरंत अप्सराओं को इसके द्वारा दिये गये शाप के कारण, वह गर्भवती हो गयी। बाद में पुलस्त्य से उसका विवाह हो गया, एवं उससे इसे विश्रवस ऐड़विड नामक पुत्र उत्पन्न हुआ (म. व. २५८.१२; वा. रा. उ. ४)।

तृणबिंदु राजा का काल, त्रेतायुग का तीसरा मास माना जाता है। विश्रवस् का निवासस्थान नर्मदा नदी के किनारे पश्चिम भारत प्रदेश में था (म. व. ८७.२-३)। इन दो निर्देशों के आधार पर, पुलस्त्य का काल एवं स्थल-निर्णय किया जा सकता है।

एक बार 'महीसागर संगमतीर्थ' अतिगर्व के कारण, उद्धत हो उठा। इसलिये पुलस्त्य ने उसे 'स्तंभगर्व' यह नया नाम प्रदान किया (स्कंद. १.२.५.८)। ब्रह्माजी ने पुष्करतीर्थ पर किये यज्ञ समारोह में, अध्वर्यु के स्थान पर पुलस्त्य की योजना की गयी थी।

पुत्र—पुलस्त्य को इडविड़ा से विश्रवस् ऐड़विड़ नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ था। विश्रवस् से उत्पन्न पुलस्त्यवंश की बहुत सारी संतति राक्षस थी। इस कारण पुलस्त्य ने अगस्त्य ऋषि का एक पुत्र गोद लिया (मत्स्य. २०२.१२-१३)। इसी दत्तोलि (दंभोलि) नामक पुत्र से, आगे चल कर, पुलस्त्यवंश की 'अगस्त्य शाखा' का निर्माण हुआ।

पुलस्त्यवंश—पुलस्त्यवंश की विस्तृत जानकारी महाभारत एवं पुराणों में प्राप्त है (म. आ. ६६; वायु. ७०.३१-६३; ब्रह्मांड. ३.८; लिंग. १.६३; मत्स्य. २०२, भा ४.१.३६)। इस वंश के लोग 'पौलस्त्य राक्षस' नामक सामूहिक नाम से प्रख्यात थे, जिसमें निम्नलिखित तीन शाखाओं का अंतर्भाव होता था:—

(१) कुबेर वैश्रवण शाखा—पुलस्त्यपुत्र विश्रवस् को बृहस्पतिकन्या देववर्णिनी से कुबेर नामक पुत्र हुआ। कुबेर स्वयं यक्ष था, किंतु उसके चार पुत्र (नलकूबर, रावण, कुंभकर्ण, एवं बिभीषण), तथा एक कन्या (शूर्पणखा) राक्षस थे। उन्हीं से आगे चल कर, पौलस्त्य राक्षसवंश की स्थापना हुयी। इन राक्षसों का सम्राट स्वयं कुबेर ही था।

(२) अगस्त्य शाखा—पुलस्त्य ने गोद में लिये अगस्त्यपुत्र दत्तोलि (दंभोलि) से आगे चल कर, अगस्त्य नामक 'ब्रह्मराक्षस' वंश की स्थापना हुयी। ब्राह्मणवंश से उत्पन्न हुये राक्षसों को ब्रह्मराक्षस कहते थे। ये ब्रह्मराक्षस वेदविद्याओं में पारंगत थे, एवं रात्रि के समय, यज्ञयागादि विधि करते थे। हिरण्यशृंग पर ये कुबेर की सेवा करते थे (वायु. ४७. ६०-६१; ब्रह्मांड २.१८.६३-६४)। इस शाखा के राक्षस प्रायः दक्षिण हिंदुस्थान एवं 'सीलोन' में रहते थे।

(३) विश्वामित्र तथा कौशिक शाखा—अगस्त्यों के साथ, विश्वामित्र एवं कौशिक शाखा के लोग भी 'पौलस्त्य ब्रह्मराक्षसों' में गिने जाते थे। ये लोग पौलस्त्यवंश में किस तरह प्रविष्ट हुये, यह नहीं कह सकते, किंतु 'अगस्त्यों' की तरह इन्हे भी 'रात्रिराक्षस' कहा जाता था।

३. महाभारतकालीन एक ऋषि। अर्जुन के जन्ममहोत्सव में यह उपस्थित था (म. आ. ११४.४२)। पराशर द्वारा किये राक्षससत्र का विरोध करने के लिए अन्य महर्षियों के साथ, यह भी था। एवं इसने पराशर को समझाकर राक्षससत्र बंद करने पर विवश किया (म. आ. १७२.१०-११)।

इसने भीष्म को विभिन्न तीर्थों का वर्णन, एवं पृथ्वी प्रदक्षिणा का महात्म्य कथन किया था (म. व. ८०-८३)। शरशय्या पर पड़े हुये भीष्म से मिलने आये हुये ऋषियों में, यह भी शामिल था (म. शां. ४७.६६*)।

४. एक धर्मशास्त्रकार। 'वृद्धयाज्ञवल्क्य' में प्राप्त स्मृतिकारों की नामावली में इसका निर्देश प्राप्त है। 'शारीर शौच' के विषय पर, इसके एक श्लोक का उद्धरण विश्वरूप ने दिया है (याज्ञ. १.१७)। श्राद्धविधि के समय, ब्राह्मण शाकाहार का, क्षत्रिय तथा शूद्र माँस का, एवं शूद्र शहद का उपयोग करे, ऐसा इसका मत था (याज्ञ. १.२६१)।

'मिताक्षरा' में, पुलस्त्य के दो श्लोकों का उद्धरण प्राप्त है, जिनमें ग्यारह नशा लानेवाली वस्तुओं के नाम देकर, बारहवें अत्यंत बुरे मादक पदार्थ के रूप में शराब का निर्देश किया गया है (याज्ञ. ३.२५३)।

संध्या, श्राद्ध, अशौच, संन्यासधर्म, प्रायश्चित्त आदि के संबंध में, 'पुलस्त्य स्मृति' के अनेक श्लोकों का निर्देश अपरार्क ने किया है। ज्ञानकर्मसमुच्चय के संबंध में भी, पुलस्त्य के दो श्लोक अपरार्क ने दिये हैं (अपरार्क. याज्ञ. ३.५७)। आह्निक तथा श्राद्ध के विषय में, पुलस्त्य के चालीस श्लोक 'स्मृतिचंद्रिका' में दिये गये हैं। रविवार, मंगलवार, एवं शनिवार के दिन स्नान करने से क्या पुण्यफल की प्राप्ति होती है, इसके बारे में भी, पुलस्त्य का निर्देश 'स्मृतिचंद्रिका' में प्राप्त है।

राम, परशुराम, नृसिंह तथा त्रिविक्रम आदि के जपानुष्ठान से क्या लाभ होता है, इस विषय में इसके मत उल्लेखनीय है। चंडेश्वर के 'दानरत्नाकर' में, मृगाजिनदान के विषय में, पुलस्त्य का एक गद्य उद्धरण लिया गया है।

'पुलस्त्यस्मृति' का रचनाकाल संभवतः ईसा के चौथी, सातवीं शताब्दी के बीच कहीं होगा)।

५. चैत्र माह में धाता नामक आदित्य के साथ घूमनेवाला एक ऋषि (भा. १२.११.३३।

पुलह--ब्रह्माजी के आठ मानसपुत्रों में से एक, जो छः शक्तिशाली ऋषियों में गिना जाता था (म. आ. ६०.४)।

स्वायंभुव मन्वंतर में यह ब्रह्माजी के नाभि से अथवा 'व्यान' से उत्पन्न हुआ (भा. ४.१.३८)। यह स्वायंभुव दक्ष का दामाद तथा शिवजी का साढू था। दक्ष द्वारा अपमानित होने पर, शिवजी ने इसे दग्ध कर मार डाला। दक्षकन्या क्षमा इसकी पत्नी थी।

भागवत् में, इसके गति नामक और एक पत्नी का निर्देश प्राप्त है। ब्रह्माजी के अन्य मानसपुत्रों के साथ, यह भी शिवजी के शाप से मृत हुआ (मत्स्य. १९५)।

क्षमापुत्र—अपने क्षमा नामक पत्नी से, इसे निम्नलिखित पुत्र उत्पन्न हुए:—

(१) कर्दम—अत्रि ऋषि की आत्रेयी 'श्रुति' नामक कन्या से इसका विवाह हुआ था, जिससे इसे शंखपाद एवं काम्या नामक दो सन्ताने हुयीं। उनमें से शंखपाद दक्षिण दिशा का प्रजापति था। काम्या का विवाह स्वायंभुव मनु का पुत्र प्रियव्रत राजा से हुआ था, जिससे उसे दस पुत्र, एवं दो कन्यायें उत्पन्न हुयीं। उन दस प्रियव्रतपुत्रों ने आगे चल कर, क्षत्रियत्त्व को स्वीकार किया, एवं वे सप्तद्वीपों के स्वामी बन गये (ब्रह्मांड. २. १२.३०-३५; प्रियव्रत देखिये)।

(२) कनकपीठ--अपनी यशोधरा नामक पत्नी से, इसे सहिष्णु एवं कामदेव नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए।

(३) उर्वरीवत् (४) सहिष्णु (५) पीवरी (कन्या)

गतिपुत्र—अपने गति नामक पत्नी से, इसे कर्दम, उर्वरीवत् एवं सहिष्णु नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए (विष्णु १.१०.१०)।

२. वैवस्वत मन्वन्तर में पैदा हुआ आद्य पुलह ऋषि का पुनरावतार। शिवजी के शाप से मरे हुये ब्रह्माजी के सारे मानसपुत्र, उसने वैवस्वत मन्वन्तर में पुनः उत्पन्न किये। उस समय, यह अग्नि के लंबे केशों में से उत्पन्न हुआ।

इसे संध्या नामक एक पत्नी थी। इसके अतिरिक्त क्रोधा की बारह कन्यायें इसकी पत्नियाँ थीं, जिनके नाम इस प्रकार थे—मृगी, मृगमंदा, हरिभद्रा, इरावती, भूता, कपिशा, दंष्ट्रा, रिषा, तिर्या, श्वेता सरमा तथा सुरसा (ब्रह्मांड. ३.७.१७१)।

पुलहवंश—महाभारत के अनुसार, पुलह की संतति मनुष्य न हो कर, मृग, सिंह, रीछ, व्याघ्र, किंपुरुष आदि योनि की थीं (म. आ. ६०.७)। वायु के अनुसार, इसके पुत्रों में दानव, रक्ष, गंधर्व, किन्नर, भूत, सर्प, पिशाच आदि प्रमुख थे (वायु. ७०. ६४-६५; ७३.२४.२५)।

मार्कण्डेय के अनुसार, पुलह के कर्दम, अर्ववीर एवं सहिष्णु नामक तीन पुत्र थे (मार्क. ५२.२३-२४)। ये पुत्र दुष्टचरित्र थे, अतएव पुलह ने अगस्त्य के पुत्र दृढास्य (दृढच्युत) को गोद लिया। पद्म में इसी अगस्त्यपुत्र का नाम दंभोलि दिया गया है।

इसी कारण पुलह के वंश की दो शाखायें हो गयीं। इनमें से पुलह के निजी पुत्र 'पौलह' अमानुषी योनि के थे, एवं अगस्त्यशाखा के पुत्र ब्रह्मराक्षस योनि के थे (मत्स्य. २०२.९-१०)।

३. महाभारतकालीन एक ऋषि। यह अर्जुन के जन्मोत्सव में उपस्थित था (म. आ. ११४.४२)। शरशय्या पर पड़े हुये भीष्म के पास आये हुये ऋषियों में यह एक था (म. अनु. २६.४)। अलकनंदा नदी के तट पर यह जप-तप करता था (म. व. परि. १.१६.१२)

४. एक ऋषि, जो ब्रह्माजी के द्वारा पुष्करक्षेत्र में किये यज्ञ में 'प्रत्युद्गाता' था (पद्म. सृ. ३४)।

५. वैशाख माह में अर्यमा नामक सूर्य के साथ घूमनेवाला एक ऋषि (भा. १२.११.३४)

पुलिन—अमृतरक्षक देवों में से एक (म. आ. २८. १९)।

पुलिन्द—(शुंग. भविष्य.) एक शुंगवंशीय राजा। भागवत के अनुसार यह भद्रक का, ब्रह्मांड के अनुसार भद्र का, वायु के अनुसार धुक का, एवं मत्स्य के अनुसार अन्तक का पुत्र था। विष्णु में इसे 'आर्द्रकपुत्र पुलिंदक' कहा गया है।

२. किरातों का एक राजा, जो युधिष्ठिर की सभा में उपस्थित था (म. स. ४.४७*)।

३. पुलिंद देश के निवासियों के लिए प्रयुक्त सामूहिक नाम। ये पहले क्षत्रिय थे, किंतु ब्राह्मणों के शाप के कारण शूद्र बन गये (म. अनु. ३३.२२-२३)। ये म्लेच्छ जातियों में थे, जो कलियुग में पृथ्वी के शासक बने (म. व. १८६.३०)।

वसिष्ठ ऋषि की गौ नन्दिनी के कुपित होने पर, उसके मुख से निकले फेन से ये उत्पन्न हुये थे (म. आ. १६५.३६)। भीम ने इन लोगों पर हमला किया, एवं इनके महानगर को ध्वस्त कर, इनके राजा सुकुमार एवं सुमित्र को जीत लिया (म. स. २६.१०)। सहदेव ने भी इन्हीं दोनों राजाओं पर विजय प्राप्त की थी (म. स. २८.४)।

भारतीय युद्ध में, ये लोग दुर्योधन की सेना में सम्मिलित थे (म. उ. १५८.२०)। पांड्य-नरेश के साथ इनका युद्ध हुआ था एवं उसके बाणों द्वारा ये आहत हुये थे (म. क. १५.१०)।

पुलिमत्—(आंध्र. भविष्य.) एक आन्ध्रवंशीय राजा। विष्णु के अनुसार, यह गोमतीपुत्र राजा का पुत्र था। इसे 'पुरीमत्' नामांतर भी प्राप्त था (पुरीमत् देखिये)।

पुलुष प्राचीनयोग्य—एक वैदिक ऋषि, जो 'प्राचीनयोग' का वंशज था। यह द्दति ऐन्द्रोत शौनक नामक ऋषि का शिष्य था (जै. उ. ब्रा. ३.४०.२)।

पुलोमत्—एक राक्षस, जिसने भृगुपत्नी पुलोमा का हरण किया था (म. आ. ५.१५)। हरण के समय पुलोमा के गर्भ में च्यवन ऋषि था, जिसके तेज से यह राक्षस जल कर भस्म हो गया (पुलोमा देखिये)।

२. एक राक्षस, जो हिरण्यकशिपु एवं वृत्रासुर का अनुयायी था (भा. ६.६.३१; १०.२०; ७.२.५)।

३. एक दानव, जो कश्यप एवं दनु के पुत्रों में से एक था।

४. प्रहेति नामक राक्षस का पुत्र। इसके मधु, पर, महोग्र तथा लवण नामक चार पुत्र थे।

५. (आंध्र. भविष्य.) एक आंध्रवंशीय राजा। मत्स्य के अनुसार, यह गौतमीपुत्र राजा का पुत्र था। इसने अठ्ठाइस वर्षों तक राज्य किया।

६. (आंध्र. भविष्य.) एक आंध्रवंशीय राजा। मत्स्य के अनुसार, यह चण्डश्री का पुत्र था। इसने सात वर्षों तक राज्य किया। इसके पुलोवा, पुलोमारि, पुलोमार्चि, सलोमार्चि नामक चार पुत्र थे।

पुलोमजा—पुलोमत् दैत्य की कन्या। 'शिवव्रत' करने के कारण यह इन्द्रपत्नी शची बनी (स्कंद. ४.२. ८०)।

पुलोमा—वारुणि भृगु ऋषि की पत्नी, एवं च्यवन ऋषि की माता (विष्णुधर्म. १. ३२; गणेश. ५. २९)। इसे पौलोमी नामांतर भी प्राप्त है (विष्णु. ७.३२)। इसका पति भृगु ब्रह्मामानसपुत्रों में से एक था।

पुलोमा जब बहुत छोटी थी, तब इसे डराने के विचार से इसके पिता ने सहजभाव से कहा, 'हे राक्षस! इसे ले जा।' संयोग की बात थी, कि उधर से पुलोमत् नामक राक्षस जा रहा था। उसने यह कथन सुनकर, मन से इसका वरण किया। कालांतर में, जब यह बड़ी हुई, तब इसके पिता ने इसकी शादी भृगु के साथ कर दी, क्योंकि उसे पूर्व की अघटित घटना का ज्ञान न था।

एक बार जब यह गर्भवती थी, तब पुलोमत् इसके आश्रम में आया। उस समय भृगु ऋषि स्नान हेतु बाहर गये थे, अतएव इसने पुलोमत् का उचित आदरसत्कार कर, उसे कंदफलादि खाने के लिए दिये। पुलोमत् ने मिले हुये सत्कार को स्वीकार कर, वह पुलोमा के हरण की बात सोचने लगा।

जिज्ञासा को संतुष्ट करने के लिये, उसने अग्नि से पूछा, 'मैंने पुलोमा का मन से वरण किया है, पर समझ नहीं पा रहा, वास्तव में यह किसकी पत्नी है। अग्नि ने कहा 'तुमने इसके बाल्यकाल में ही अपने मन में अवश्य वरण कर लिया हो, किन्तु यह भृगु ऋषि की पत्नी है। मेरे समक्ष भृगु ने इसका विधिवत् वरण किया है।

पुलोमत् राक्षस अग्नि के उत्तर से सहमत न हुआ, और वराहरूप धारण कर, उसने पुलोमा का हरण किया। अपनी माँ पुलोमा का हरण देखकर, उस के गर्भ में स्थित च्यवन ऋषि ने गर्भ से बाहर आकर, वराहरूप राक्षस को अपने तेज से दग्ध किया।

पुलोमा के कुल उन्नीस पुत्र हुये, जिनमें से बारह देव तथा सात राक्षस थे। इन पुत्रों की सूची भृगुवंश में प्राप्त है (म. आ. ५-६)।

२. दैत्य कुल की एक कन्या, जिसके पुत्रों को 'पौलोम' कहते हैं। यह वैश्वानर दानव की कन्याओं में से एक थी।

इसने एवं इसकी सहेली कालका ने घोर तपस्या कर के ब्रह्माजी से वर माँगा 'देवता, राक्षस एवं नागों के लिए अवध्य पुत्रों की प्राप्ति हमें हो। उन्हें रहने के लिये एक सुन्दर नगर हो, जो अपने तेज से जगमगा रहा हो विमान की भाँति आकाश में विचरनेवाला हो, एवं नाना प्रकार के रत्नों से युक्त हो। वहाँ ऐसा नगर हो जिसे देवतागण जीत न सकें (म. व.१७०.७-१२)।

ब्रह्माजी ने इसे एवं कालका को इच्छित वर प्रदान किया एवं प्रजापति कश्यप को इससे विवाह करने की आज्ञा दी। कश्यप से इसे असंख्य संतानें हुयीं, जो 'पौलोम' नाम से सुविख्यात हुयीं।

ब्रह्माजी के वर से कालका को प्राप्त पुत्रों को कालकंज कहते थे। आगे चलकर 'पौलोम' एवं 'कालकंज, निवातकवच' नाम से विख्यात हुये, जो इनका सामूहिक नाम था। वे लोग संख्या में साठ-हज़ार थे, एवं हिरण्यपुर नामक नगरी में रहते थे (म. व. १६९; निवातकवच २ देखिये)।

पुलोमारि—(आंध्र. भविष्य.) एक राजा। ब्रह्मांड के अनुसार, यह दण्डश्री राजा का पुत्र था (पुलोमत् ६. देखिये)।

पुलोमार्चि—(आंध्र. भविष्य.) एक राजा। विष्णु के अनुसार, यह चण्डश्री राजा का पुत्र था (पुलोमत् ६. देखिये)।

पुलोवा—(आंध्र भविष्य.) एक राजा। वायु के अनुसार, यह दण्डश्री राजा का पुत्र था (पुलोमत ६. देखिये)।

पुष्कर—वरुणदेव का प्रिय पुत्र, जिसके नेत्र विकसित कमल के समान सुंदर थे। इसी कारण, सोम की 'ज्योत्स्ना काली' नामक कन्या ने पतिरूप से इसका वरण किया था (म. उ. ९६.१२)।

२. निषधाधिपति नल का छोटा एवं सौतेला भाई, जिसने नल राजा का सारा राज्य जुए के खेल में जीत लिया था (म. व. ५६.९)

कलि ने इसे नल राजा से जुआ खेलने का आदेश दिया था। उस आदेशानुसार, इसने नल से जूआ खेला एवं नल का सर्वस्व जीत लिया।

नल राजा के अज्ञातवास के पश्चात्, उसने पुनः एकबार पुष्कर को जुआ खेलने का आवाहन किया, एवं इससे अपना राज्य वापस जीत लिया (म. व. ७७.१८)।

३. कृष्णपराशर कुल का एक गोत्रकार।

४. (सू. इ.) एक इक्ष्वाकुवंशीय राजा। यह राम दाशरथि का पुत्र, कुश का वंशज, एवं सुनक्षत्र राजा का पुत्र था। इसके पुत्र का नाम अंतरिक्ष था (भा. ९.१२.१२)। इसे 'किन्नर' एवं 'किन्नराश्व' नामांतर भी प्राप्त थे।

५. श्रीकृष्ण के पुत्रों में से एक (भा. १०.९०.३४)।

६. वसुदेव के भाई वृक को दुर्वाक्षी नामक पत्नी से उत्पन्न पुत्र (भा. ९.२४.४३)।

पुष्करमालिन्--विदेह देश का राजा ऐंद्रद्युम्न जनक का नामांतर। इसे 'उग्रसेन' नामांतर भी प्राप्त था। महाभारत के अनुसार, पुष्करमालिन् ऐंद्रद्युम्न एवं उग्रसेन एक ही जनक राजा के नामांतर थे, एवं यह राजा वरुणपुत्र बंदिन् एवं अष्टावक्र ऋषियों के बाद सभा में उपस्थित था (म. व. १३३.१३; १३४.१; बंदिन् देखिये)।

पुराणों में प्राप्त वंशावलि में, इनमें से एक भी जनक का नाम प्राप्त नहीं है। इस कारण, इन नामों में से सही नाम कौनसा है, यह बताना कठिन है।

पुष्करमालिनी--एक धर्मचारिणी स्त्री, जो विदर्भ देश में 'उंच्छवृत्ति' से रहनेवाले सत्य नामक ऋषि की पत्नी थी। महाभारत में, इसके नाम के लिये 'पुष्करमालिनी', एवं 'पुष्करधारिणी', पाठभेद उपलब्ध हैं। अत्यंत व्रतस्थ होने के कारण, यह 'कृशतनु' एवं पवित्र बन गयी थी। यह पति के कथनानुसार आचरण करती थी, एवं वन में सहजरूप से प्राप्त मोरपंखो से बना हुआ वस्त्र धारण करती थी। पशुयज्ञ से इसे सख्त नफ़रत थी (म. शां. २६४.६)।

पुष्कराक्ष--(सू. दिष्ट.) एक राजा, जो सुचंद्र राजा का पुत्र था। परशुराम जामदग्न्य ने सर से पाँव तक विच्छेद कर, इसका वध किया (ब्रह्मांड. ३.४०.१३, परशुराम देखिये)।

पुष्करारुणि--(सो. पूरु.) एक पुरुवंशीय राजा। भागवत के अनुसार, यह दुरितक्षय राजा के तीन पुत्रों में से कनिष्ठ था। जन्म से यह क्षत्रिय था, किंतु तपस्या के कारण ब्राह्मण बन गया (भा.९.२१.२०)। इसे 'पुष्करिन्' नामांतर भी प्राप्त था।

पुष्करिणी--सम्राट भरत की स्नुषा, एवं भरतपुत्र भुमन्यु की पत्नी (म. आ. ८९.२१)। इसे कुल छः पुत्र थे, जिनके नाम इसप्रकार थेः--सुहोत्र, दिविरथ, सुहोता, सुहवि, सुयजु एवं ऋचीक।

२. व्युष्ट राजा की पत्नी, जिसे सर्वतेजस् नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था (भा. ४.१३.१४))।

३. उल्मुक राजा की पत्नी। इसे कुल छः पुत्र थे, जिनके नाम इस प्रकार थेः--अंग, सुमनस्, ख्याति, क्रतु, अंगिरा एवं गय (भा. ४.१३.१७)।

पुष्करिन्--(सो. पूरु.) एक पूरुवंशीय राजा। वायु के अनुसार, यह उभक्षय राजा का, एवं विष्णु के अनुसार उरुक्षय राजा का पुत्र था। इसे 'पुष्करारुणि' नामांतर भी प्राप्त था (पुष्करारुणि देखिये)।

पुष्कल--(सू. इ.) एक इक्ष्वाकुवंशीय राजा, जो दशरथपुत्र भरत के दो पुत्रों में से कनिष्ठ था। इसकी माता का नाम मांडवी था (वायु. ८८; ब्रह्मांड. ३.६३. १९०; विष्णु. ४.४७; अग्नि ११.७-८;९;११-१२)।

पद्म पुराण के पातालखंड में, राम दाशरथि के अश्वमेधां यज्ञ का विस्तृत वर्णन प्राप्त है, जिससे इसकी शूरता की प्रचीति मिलती है (पद्म. पा. १--६८)। राम दाशरथि ने कुल तीन अश्वमेध यज्ञ किये। उन तीनों यज्ञ के समय, अश्व की रक्षा करने का काम शत्रुघ्न के साथ पुष्कल ने ही निभाया था (पद्म. पा.१.११)।

इस कार्य में अनेक राक्षस एवं वीरों से इसे सामन करना पड़ा। सुबाहुपुत्र दमन को इसने परास्त किया (पद्म. पा.२६)। चित्रांग के साथ हुए युद्ध में, इसने उसका वध किया (पद्म. पा.२७)। विद्युन्माली एवं उग्रदंष्ट्र राक्षसों से इसका भीषण युद्ध हुआ (पद्म. पा. ३४)। रुक्मांगद एवं वीरमणि से भी इसका युद्ध हुआ था (पद्म. पा.४१-४६ अन्त में लव ने राम का अश्वमेधीय अश्व रोक करा इसे पराजित किया (पद्म. पा. ६१)।

वाल्मीकि रामायण के अनुसार, पुष्कल ने गांधार देश जीत कर, उस देश में पुष्कलावती अथवा पुष्कलावत नामक नगरी की स्थापना की, एवं उसे अपनी राजधानी बनायी (वा. रा. उ. १०१.११)।

पद्म के अनुसार इसकी पत्नी का नाम कांतिमती था (पद्म. पा. ६७)।

२. (सू. इ. भविष्य.) एक इक्ष्वाकुवंशीय राजा मत्स्य के अनुसार, यह शुद्धोदन राजा का पुत्र था। इसे सिद्धार्थ नामान्तर प्राप्त है (मत्स्य, २७२. १२; सिद्धार्थ देखिये)। इसे 'राहुल', 'रातुल' एवं 'लांगलिन्' नामांतर भी प्राप्त थे।

पुष्टि--स्वायंभुव मन्वन्तर की कन्या, एवं धर्म की पत्नी (म. आ. ६०.१३)। स्मय इसका पुत्र था (भा. ४.१.४९-५१)।

यह ब्रह्माजी के सभा में रह कर उनकी उपासना करती थी (म. स. ११.१३२*)। अर्जुन जब इंद्रलोक की यात्रा के लिए गया था, तब उसकी रक्षा के लिए द्रौपदी ने इसका स्मरण किया था (म. व. ३८.१४९*)।

२. ब्रह्मांड के अनुसार, व्यास की सामशिष्यपरंपरा के हिरण्यनाभ का शिष्य।

३. (सो. वसु.) एक राजा वायु के अनुसार, यह

सुवदेव राजा का पुत्र था एवं इसकी माता का नाम मदिरा था।

४. धर्मसावर्णि मन्वन्तर के सप्तर्षियों में से एक।

पुष्टिगु काण्व—एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. ८, ५०)। ऋग्वेद के 'वालखिल्य सूक्त' में इसका निर्देश प्राप्त है (ऋ. ८.५१.१)।

पुष्टिद—मार्कंडेय पुराण के अनुसार, इक्तीस पितृगणों में से एक (मार्क. ९२-९४; पितर देखिये)।

पुष्टिमति—भरत नामक अग्नि का नामांतर। यह संतुष्ट होने पर पुष्टि प्रदान करता है, इस कारण इसका नाम 'पुष्टिमति' है (म. व. २११.१)।

पुष्प—(सू. इ.) एक इक्ष्वाकुवंशीय राजा। विष्णु के अनुसार, यह हिरण्यनाभ राजा का पुत्र था। इसे 'पुष्य' नामांतर भी प्राप्त था (पुष्य देखिये)।

२. कश्यपवंशीय एक नाग (म. उ. १०१.१३)।

पुष्पदंष्ट्र—एक नाग, जो कश्यप एवं कद्रू का पुत्र था।

पुष्पदंत—विष्णु का एक पार्षद (भा. ९. २१. १७)।

२. एक गन्धर्व, जिसके पुत्र का नाम माल्यवान था (पद्म, उ. ४३)। देवी भागवत के अनुसार, यह 'शिवमहिम्न स्तोत्र' का रचयिता था (दे. भा. ९.२०)।

३. एक रुद्रगण (पद्म. उ. १२)।

४. मणिवर एवं देवजनी के 'गुह्यक' पुत्रों में से एक।

५. पार्वती द्वारा कुमार कार्तिकेय को दिये गये तीन पार्षदों में से एक। अन्य दो पार्षदों के नाम 'उन्माद' एवं 'शंकुकर्ण' थे (म. श. ४४.४७)।

पुष्पवंती—चित्रसेन गंधर्व की नातिन। एक बार इन्द्र की सभा में, यह एवं माल्यवत् गंधर्व अन्य देव-गंधर्वों के साथ नृत्य कर रहे थे। नृत्य के बीच में ही माल्यवत् के रूप पर मुग्ध हो जाने के कारण, यह ताल-स्वर से अलग नृत्य करने लगी। इस कारण क्रुद्ध होकर इन्द्र ने इन दोनों को पिशाच हो जाने का शाप दिया।

पश्चात् 'जया' नामक एकादशीव्रत करने के कारण, ये दोनो इन्द्रशाप से मुक्त होकर स्वर्ग में फिर शामिल हो गये (पद्म. उ. ४३; माल्यवत् देखिये)।

पुष्पधन्वन्—रति का पति, कामदेव का नामांतर। पुष्प का धनुष धारण करने के कारण, कामदेव को यह नामांतर प्राप्त हुआ।

पुष्पयशस् औद्वजि—एक वैदिक आचार्य, जो संकर गौतम नामक ऋषि का शिष्य था। इसका शिष्य भद्रशर्मन् था (वं. ब्रा. ३)।

पुष्पवत्—(सो. ऋक्ष.) महाभारत के अनुसार, एक पृथ्वीशासक राजा। अत्यधिक पराक्रमी एवं अजेय होकर भी, अन्त में इसे मृत्यु का मुख देखना पड़ा (म. शां. २२०.५०-५५)।

भागवत, विष्णु एवं वायु के अनुसार, यह ऋषभ राजा का पुत्र था।

पुष्पवाहन—रथंतर कल्प का एक राजा। इसकी पत्नी का नाम लावण्यवती था, जिसके दस हज़ार पुत्र थे।

पूर्वजन्म में यह व्याध था। 'द्वादशीव्रत' करनेवाली अनंगवती नामक वेश्या को विष्णु-पूजन के लिये इसने कमल के फूल बड़े भक्ति-भाव से प्रदान किये थे। इसी पुण्य के कारण, अगले जन्म में इसे पुष्पवाहन राजा की योनि प्राप्त हुयी।

भृगुऋषि ने पुष्पवाहन राजा को इसके पूर्वजन्म की कथा को बताकर, इससे इस जन्म में भी द्वादशीव्रत करने को कहा, जिससे मुक्ति की प्राप्ति हो सके (पद्म. सृ. २०)।

पुष्पातन—एक यक्ष, जो कुबेर की सभा में रहकर उसकी उपासना करता था (म. स. १०. १७)।

पुष्पान्वेषि—अंगिराकुल में उत्पन्न एक गोत्रकार।

पुष्पार्ण—(स्वा. उत्तान.) एक राजा, जो सुविख्यात बालयोगी ध्रुव राजा का पौत्र था। इसके पिता का नाम वत्सर, एवं माता का नाम स्वर्वीथी था। यह अपने छः भाइयों में ज्येष्ठ था।

इसके प्रभा एवं दोषा नामक दो पत्नियाँ थी। प्रभा से इसे प्रातः, सायं, एवं मध्याह्न, तथा दोषा से प्रदोष, निशीथ और व्युष्ट नामक पुत्र उत्पन्न हुए (भा. ४. १३. १२-१४)।

पुष्पोत्कटा—एक अतिसुन्दरी राक्षसकन्या, जो सुमालि राक्षस की पुत्री थी। इसकी माता का नाम केतुमती था (वा. रा. उ. ५. ४०)।

इसके पति का नाम विश्रवस् था, जिससे इसे रावण एवं कुंभकर्ण नामक पुत्र हुये थे। कुबेर ने इसे विश्रवस् की सेवा में नियुक्त किया था। यह गायन एवं नृत्य में निपुण थी (म. व. २५९. ७)।

पुष्य—(सू. इ.) एक इक्ष्वाकुवंशीय राजा। भागवत एवं वायु के अनुसार, यह हिरण्यनाथ राजा का पुत्र था। वायु एवं विष्णु में इसे 'पुष्य' कहा गया है। इसके पुत्र का नाम ध्रुवसन्धि था (दे. भा. ३. १४)।

पुष्यश्रवस्—एक विष्णुभक्त ऋषि। विष्णुभक्ति के कारण, कृष्णावतार में इसने नंद के भाई के यहाँ, 'लवंगा' नामक कन्या के रूप में जन्म लिया था (पद्म. पा. ७२)।

पूजनी—कांपिल्य नगर के ब्रह्मदत्त राजा के भवन में निवास करनेवाली एक चिड़िया (म. शां. १३७.५) यह समस्त प्राणियों की बोली समझती थी, तथा सर्वज्ञ और सम्पूर्ण तत्त्वों को जाननेवाली थी। राजकुमार सर्वसेन ने इसके बच्चे मार डाले थे, अतएव इसने भी उसकी आँखें फोड़ दी थी (म. शां. १३७.१७)।

पश्चात्, इसने राजभवन छोड़ना चाहा। राजा ब्रह्मदत्त ने इससे रहने के लिए आग्रह किया, किंतु इसने राजा की प्रार्थना अस्वीकार कर दी। राजभवन छोड़ते समय इसका एवं ब्रह्मदत्त का तत्त्वज्ञान सम्बन्धी संवाद हुआ था (म. शां. १३७.२१-१०९; ब्रह्मदत्त देखिये)।

पूतक्रता—ऋग्वेद के 'वालखिल्य' सूक्त में निर्देशित एक स्त्री, जो संभवतः पूतक्रतु राजा की पत्नी थी (ऋ. ९. ५६.४)। पाणिनि के व्याकरण के अनुसार, इस शब्दका रूप 'पूतक्रतायी' था (पा. ४.१.३६)

पूतक्रतु—एक वैदिक राजा, जो अश्वमेध राजा का पुत्र था (ऋ. ८.६८.१७)। कई विद्वानों के अनुसार, अतिथिग्व इंद्रोत, अश्वमेध तथा पूतक्रतु सम्भवतः एक ही व्यक्ति के नाम थे। सायण के अनुसार, पूतक्रतु किसी स्वतंत्र व्यक्ति का नाम नहीं था। इसके पुत्र का नाम दस्यवे वृक था (ऋ. ८.५६.२)।

पूतदक्ष आंगिरस—एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. ८. ९४)।

पूतना—एक राक्षसी, जो कंस की बहन, एवं घटोदर राक्षस की पत्नी थी। कंस ने इसे श्रीकृष्ण का वध करने के लिये गोकुल भेजा था। गोकुल में यह नवतरुणी स्त्री का रूप धारण कर, अपने स्तनों में विष लगाकर, वहाँ के बच्चों को अपने स्तन से दूध पिलाकर, उनका वध करने लगी। इस प्रकार गोकुलग्राम के न जाने कितने बालकों की जान लेकर, श्रीकृष्ण की भी इसी भाँति मारने की इच्छा से, एक दिन यह नंद के घर गयी। इसने अपने स्तनों में श्रीकृष्ण को लगाया ही था, कि बालक कृष्ण ने दूध के साथ इसके प्राणों को भी चूसना शुरू कर दिया। पूतना वेदना में व्याकुल होकर तड़पने लगी, और प्राण त्याग दिये (म. स. परि. १ क्र. २१. पंक्ति ७५९; भा. १०.६; पद्म. ब्र. १३; विष्णु. ५.५. ब्रह्मवै. ४.१०)।

हरिवंश के अनुसार, यह कंस की दाई थी। इसने पक्षिणी का रूप धारण कर, गोकुल में प्रवेश किया था। दिनभर आराम कर, रात में सब के सो जाने पर, कृष्ण के मुख में दूध पिला कर मारने के हेतु से, इसने अपना स्तन दिया। कृष्ण ने दूध के साथ, इसके प्राणों का शोषण कर, इसका वध किया (ह. वं. २.६)

आदिपुराण के अनुसार, यह कैतवी नामक राक्षस की कन्या, एवं कंस राजा की पत्नी की सखी थी। इसकी बहन का नाम वृकोदरी था। कंस के आदेशानुसार गोकुल में जाकर, दस बारह दिन के आयुवाले बच्चों को कालकूटयुक्त स्तन के दूध को पिला कर, इसने उनका नाश किया। बाद में जब कृष्ण को मारने की इच्छा से यह उनके घर गयी, तो कृष्ण ने इसका वध किया (आदि. १८)।

पूर्वजन्म में यह बलि राजा की कन्या थी, और इसका नाम रत्नमाला था। बलि के यज्ञ के समय, वामन भगवान् को देखकर इसकी इच्छा हुयी थी कि, वामन मेरा पुत्र हो, और इसे मैं अपना स्तनपान कराऊँ। इसकी यह इच्छा जान कर, वामन ने कृष्णावतार में कृष्ण के रूप में इसका स्तनपान कर, इसे मुक्ति प्रदान किया था (ब्रह्मवै. ४.१०)।

इसे राक्षसयोनि क्यों प्राप्त हुयी? इसकी कथा आदि पुराण में इस प्रकार दी गयी है। एक बार कालभीरू ऋषि अपनी कन्या चारुमती के साथ कहीं जा रहे थे कि, उन दोनों ने सरस्वती के तट पर तपस्या करते हुये कक्षीवान् ऋषि को देखा। कक्षीवान के स्वरूप को देखकर, एवं उसे योग्य वर समझकर, कालभीरू अपनी पुत्री चारुमती को शास्त्रोक्त विधि से उसे अर्पित की। बाद में, कक्षीवान् तथा चारुमती दोनों सुखपूर्वक रहने लगे। एकबार कक्षीवान् तीर्थयात्रा को गया था। इसी बीच एक शूद्र ने चारुमती को अपने वंश में कर लिया। आते ही कक्षीवान् को अपनी पत्नी का दुराचरण ज्ञात हुआ, तथा उन्होंने उसे राक्षसी बनने का शाप दिया। चारुमती के अत्यधिक अनुनय-विनय करने पर कक्षीवान् ने कहा, 'जाओ, कृष्ण के द्वारा ही तुम्हें मुक्ति प्राप्त होगी।'

कक्षीवान् ऋषि के उपर्युक्त शाप के कारण, चारुमती को पूतना राक्षसी का जन्म प्राप्त हुआ (आदि. १८)।

२. स्कंद की अनुचरी एक मातृका (म. श. ४५.१६)। अन्य मातृकाओं के समान यह भी बालकों द्वारा पूजित है (म. व. २१९.२६)।

पूतिमाष—अंगिराकुल में उत्पन्न एक ऋषि।

पूरण वैश्वामित्र--विश्वामित्रकुल का एक गोत्रकार, सूक्तकार तथा प्रवर (ऋ. १०.१६०)। इसे 'पुराण' नामान्तर भी प्राप्त था।

महाभारत में एक ऋषि के रूप में इसका निर्देश प्राप्त है (म. शां. ४७.६६, पंक्ति ११*)। किन्तु वहाँ इसके नाम का निर्देश 'पूरण' नाम से तो किया गया है, पर वहाँ इसकी 'वैश्वामित्र' उपाधि का कोई भी उल्लेख प्राप्त नहीं है।

पूरु—ऋग्वेदकालीन एक जातिसमूह। अनु, द्रुह्यु, तुर्वसु, एवं यदु लोगों के साथ, इनका निर्देश ऋग्वेद में प्राप्त है (ऋ. १. १०८. ८)।

दाशराज्ञ युद्ध में, सुदास राजा के हाथों पूरु लोगों को पराजित होना पड़ा (ऋ. ७. ८. ४)। ऋग्वेद के एक सूक्त में, पूरु लोगों के एक राजा का, एवं सुदास की पराजय के लिए असफल रूप में प्रार्थना करनेवाले राजपुरोहित विश्वामित्र का निर्देश प्राप्त है (ऋ. ७. १८. ३)।

यद्यपि दाशराज्ञ युद्ध में पूरुओं का पराजय हुआ, फिर भी ऋग्वेदकाल में ये लोग काफी सामर्थ्यशाली प्रतीत होते हैं। इन लोगों ने अनेक आदिवासी लोगों पर विजय प्राप्त किया था (ऋ. १. ५९. ६; १३१. ४; ४. २१. १०)। तृत्सु एवं भरत जातियों से इन लोगों का अत्यंत घनिष्ठ संबंध था, एवं उन जातियों के साथ, पूरु लोग भी सरस्वती नदी के किनारे रहते थे (ऋ. ७. ९६. २)।

कई विद्वानों के अनुसार, पूरु लोग सर्वप्रथम दिवोदास राजा के साथ सिंधु नदी के पश्चिम में रहते थे, और बाद को ये सरस्वती नदी के किनारे रहने लगे। सिकंदर को एक पौरव राजा 'उस ह्यदस्पीस' नामक स्थान के समीप मिला था (अरियन–इंडिका ८. ४)। यह स्थान सरस्वती नदी एवं पश्चिम प्रदेश के बीच में कहीं स्थित था।

पूरु लोगों के अनेक राजाओं का निर्देश ऋग्वेद में प्राप्त है, जिससे इन लोगों का महत्व प्रस्थापित होता है। ऋग्वेद में प्राप्त पूरु राजाओं की वंशावलि इस प्रकार है:— दुर्गह– गिरिक्षित– पुरुकुत्स– त्रसदस्यु। इन में से पुरुकुत्स, तृत्सु लोगों का राजा सुदास का समकालीन था, एवं काले रंग के अनेक 'दास' लोगों पर उसने विजय प्राप्त किया था (ऋ. ७. ५. ३)। काले रंग के दासों से लड़नेवाला पुरुकुत्स राजा स्वयं गौरवर्णीय होगा। कई विद्वानों के अनुसार ऋग्वेद में प्राप्त कृष्णवर्णीय दासों का यह वर्णन, भारतवर्ष के आदिवासियों को लक्षित करता है। किन्तु इस संबंध में निश्चित रूप से कहना कठिन है। ऋग्वेद के अनुसार, पुरुकुत्स के पुत्र त्रसदस्यु का जन्म अत्यंत दुरवस्थ काल में हुआ था (ऋ. ४. ४२. ८–९)। दाशराज्ञ युद्ध में पुरुकुत्स राजा की मृत्यु हो गयी थी।

पूरुवंश के 'कुरुश्रवण त्रासदस्यव' नामक एक राजा का निर्देश ऋग्वेद में प्राप्त है (ऋ. १०. ३३. ४)। दाशराज्ञ युद्ध के पश्चात्, तृत्सु, भरत एवं पूरु जातियों में मित्रता स्थापित हुयी, एवं इन तीन जातियों को मिला कर 'कुरु जाति' की स्थापना की गयी। कुरु जाति का प्रत्यक्ष निर्देश ऋग्वेद में प्राप्त नहीं है, किंतु कुरुश्रवण त्रासदस्यव राजा के निर्देश से इस मित्रता का अप्रत्यक्ष प्रमाण मिलता हैं। सुदास, पौरुकुत्सि, त्रसदस्यु, एवं पूरु इन सभी राजाओं का इंद्रद्वारा रक्षण किया जाने का निर्देश ऋग्वेद में प्राप्त है (ऋ. ७. १९. ३)।

वैदिक ग्रंथो में इसके नाम के लिए, सर्वत्र 'पूरु' पाठ उपलब्ध है। केवल शतपथ ब्राह्मण में 'पुरु' पाठ प्राप्त है, एवं वहाँ पुरु को 'असुर रक्षस्' कहा गया है (श. ब्रा. ६. ८. १. १४)। पौराणिक ग्रंथों में से, केवल वायुपुराण में 'पुरु' पाठ उपलब्ध है।

२. 'पौरववंश' की स्थापना करनेवाला सुविख्यात राजा, जो महाभारत के अनुसार, ययाति राजा के पाँच पुत्रों में से एक था। ययाति राजा के शेष चार पुत्रों के नाम इसप्रकार थेः– अनु, द्रुह्यु, यदु एवं तुर्वसु (म. आ. १. १७२)। ययाति राजा एवं उनके पाँच पुत्रों का निर्देश ऋग्वेद में भी प्राप्त है, किन्तु वहाँ ययाति एक ऋषि एवं सूक्तद्रष्टा बताया गया है, एवं अनु, द्रुह्यु यदु, तुर्वसु तथा पूरु का निर्देश स्वतंत्र जातियों के नाते से किया गया है। 'वैदिक इंडेक्स' के अनुसार, ऋग्वेद की जानकारी अधिक ऐतिहासिक है, एवं महाभारत तथा पुराणों में दी गयी जानकारी गलत है (वै. इ. २. १८७)।

महाभारत के अनुसार, यह ययाति राजा को शर्मिष्ठ के गर्भ से उत्पन्न हुआ था (म. आ. ७०.३१)। इसकी राजधानी प्रतिष्ठान नगर में थी।

यह अपने पिता के सभी पुत्रों में कनिष्ठ था। किंतु इसने ययाति की जरावस्था लेकर उसे अपना तारुण्य प्रदान किया था (म. आ. ७०.४१) इस उदारता एवं पितृभक्ति से प्रसन्न होकर, कनिष्ठ होकर भी, ययाति ने इसे अपना समस्त राज्य दे दिया, एवं इसे 'सार्वभौम राज्याभिषेक' करवाया। इसके राज्याभिषेक के समय, सभाजनों ने दृढ़तापूर्वक कहा, 'जो पिता की आज्ञा का पालन करता है वहीं उसका वास्तविक पुत्र है, एवं उसे ही राज्याधिकार मिलना चाहिये'। अन्त में ययाति के आदेशानुसार, पूरु का राज्याभिषेक किया गया। इसके अन्य भाइयों को भी राज्य प्रदान किये गये, पर अपने पिता का 'सार्वभौमत्त्व' पूरु को ही प्राप्त हुआ (भा. ९. १९. २३)।सुविख्यात 'पूरुवंश' की स्थापना इसने की। इस कारण इसे 'वंशकर' भी कहा गया है (म. आ. ७०.४५)।

कालांतर में, विषयोपभोग से ऊबकर, ययाति ने पूरु का तारुण्य वापस कर दिया (ह. वं. १. ३. ३६; मत्स्य. ३२; ब्रह्म. १२; वायु. ९३. ७५; विष्णु. ४. १०-१६)।

महाभारत में, पूरु को 'पुण्यश्लोक' राजा कहा गया है। यह माँसभक्षण का निषेध कर, परावर-तत्त्व का ज्ञान प्राप्त कर चुका था (म. अनु. ११५.५९)। यह यमसभा में रहकर यम की उपासना करता था (म. स.८.८)।

पुत्र—पूरु की कौसल्या तथा पौष्टी नामक दो पत्नियाँ थी। कौसल्या से इसे जनमेजय, तथा पौष्टी से प्रवीर, ईश्वर, तथा रौद्राश्व नामक पुत्र हुए। इसके पुत्रों में से जनमेजय वीर एवं प्रतापी था, अतएव वही इसके पश्चात् राजगद्दी का अधिकारी हुआ (म. आ.९०.११)।

महाभारत में अन्यत्र, 'पौष्टी' कौसल्या का ही नामांतर माना गया है, एवं जनमेजय तथा प्रवीर एक ही व्यक्ति मान कर प्रवीर को 'वंशकर' कहा गया है (म. आ. ८९.५)। भागवत में प्रवीर को पूरु का नाती कहा गया है (भा.९.२०.२)।

पूरुवंश—पूरु ने सुविख्यात पूरुवंश की स्थापना की। इसलिये इसके वंशज 'पौरव' कहलाते है, एवं उनकी विस्तृत जानकरी आठ पुराणों एवं महाभारत में प्राप्त है (वायु. ९९.१२०; ब्रह्म. १३.२-८; ह. वं.१.२०.३१-३२; मत्स्य.४९.१; विष्णु. ४.१९; भा.९.२०-२१; अग्नि.२७८. १; गरुड़.१.१३९; म. आ. ८९-९०)।

पूरुवंश के तीन प्रमुख विभाग माने जाते है:- १ (**सो. पूरु**)—पूरु से लेकर अजमीढ तक के राजा इस विभाग में समाविष्ट किये जाते हैं; २. (**सो. ऋक्ष**) अजमीढ से लेकर कुरु तक के राजा इस विभाग में समाविष्ट होते है; ३. (**सो. कुरु**)—कुरु से ले कर पांडवों तक के राज इस विभाग में आते हैं।

पूरुवंश के अजमीढ राजा को नील, बृहदिषु एवं ऋक्ष नामक तीन पुत्र थे। इनमें से ऋक्ष हस्तिनापुर के राजगद्दी पर बैठा। नील एवं बृहदिषु ने उत्तर एवं दक्षिण पांचाल के स्वतंत्र राज्य स्थापित किये।

ऋक्ष राजा के वंश में से कुरु राजा ने सुविख्यात कुरु वंश की स्थापना की। कुरु राजा को जह्नु, परीक्षित् एवं सुधन्वन् नामक तीन पुत्र थे। उनमें से जह्नु, कुरु राजा का उत्तराधिकारी बना, एवं उसने हस्तिनापुर का कुरुवंश आगे चलाया। सुधन्वन् का वंशज वसु ने चेदि एवं मगध में स्वतंत्र राजवंश की स्थापना की। परिक्षित् का पुत्र जनमेजय (दूसरा) ने गार्ग्य ऋषि के पुत्र का अपमान किया, जिस कारण गार्ग्य ने उसे शाप दिया। उस शाप के कारण, उसका एवं उसके श्रुतसेन, उग्रसेन एवं भीमसेन नामक पुत्रों का राज्याधिकार नष्ट हो गया।

जह्नु राजा का पुत्र सुरथ था सुरथ से ले कर अभिमन्यु तक की वंशावलि पुराणों एवं महाभारत में विस्तार से दी गयी है।

२. अर्जुन का सारथि, जिसे राजसूय यज्ञ के लिये अन्नसंग्रह के काम पर जुट जाने का आदेश मिला था (म. स. ३०.३०)।

३. (स्वा. उत्तान.) एक राजा। यह चक्षुर्मनु की नड्वला से उत्पन्न पुत्रों में से ज्येष्ठ था। इसे 'पूरुष' नामांतर भी प्राप्त था (भा. ८.५.७) भागवत में इसे 'पुरु' भी कहा गया है (भा. ४.१३.१६)।

४. (सो. अमा.) एक राजा। भागवत के अनुसार यह जह्नु का पुत्र था। इसे अज एवं अजमीढ नामांतर भी प्राप्त थे। इसका पुत्र बलाकाश्व था।

पूरु आत्रेय—एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. ५.१६-१७)।

पूर्ण—वासुकि-कुलोत्पन्न एक नाग, जो जनमेजय के सर्पसत्र में दग्ध हुआ था (म. आ. ५२.५)।

२. एक देवगंधर्व, जो कश्यप द्वारा प्राधा (क्रोधा) से उत्पन्न पुत्र था (म. आ. ५९.४५)।

पूर्णदंष्ट्र—एक नाग, जो कश्यप एवं कद्रू का पुत्र था (म. आ. ३१.१२)

२. कुबेर के अनुचरों में से एक (दे. भा. १२.१०)

३. गंधमादन पर्वत पर रहने वाले रत्नभद्र यक्ष का पुत्र (स्कंद. ४.१.३२)। इसे हरिकेश (पिंगल) नामक एक पुत्र था।

इसका पुत्र हरिकेश शिवभक्त था, अतएव कुबेर-भक्त पूर्णभद्र ने उसे घर से निकाल दिया। अन्त में शिव का कृपापात्र होकर हरिकेश, गणेश बन गया (मत्स्य. १८०)।

स्कंदपुराण में, पूर्णभद्र को भी शिवभक्त कहा गया है।

४. मणिवर तथा देवजनी के 'गुह्यक' पुत्रों में से एक।

पूर्णभद्र वैभांडकि--एक पौराणिक ऋषि, जिसकी कृपा से चंप नामक राजा को हर्यंग नामक पुत्र हुआ था।

यह चंप एवं उसके पुत्र हर्यंग का आचार्य था। इसी कारण हर्यंग के यज्ञ में यह इंद्र का ऐरावत लाया था (ह. वं १.३१.४९-५०; ब्रह्म. १३.४४; मत्स्य. ४८.९८)।

पूर्णमास—अगस्त्यकुल का एक गोत्रकार (अगस्त्य देखिये)।

२. भागवत के अनुसार, कृष्ण के कालिन्दी से उत्पन्न दस पुत्रों में से एक (भा. १०.६.१)

३. बारह आदित्यों में से धातृ नामक आदित्य का पुत्र। इसकी माता का नाम अनुमति था (भा ६.१८.३)।

४. मणिवर तथा देवजनी के 'गुह्यक' पुत्रों में से एक।

पूर्णमुख—धृतराष्ट्रकुलोत्पन्न एक नाग, जो जनमेजय के सर्पसत्र में दग्ध हुआ था (म. आ. ५२.१४)।

पूर्णरसा—कृष्ण की प्राणसखी (पद्म. पा.७४)।

पूर्णाश—एक देवगंधर्व, जो कश्यप तथा क्रोधा का पुत्र था।

पूर्णांगद—धृतराष्ट्र कुलोत्पन्न एक नाग, जो जनमेजय के सर्प-सत्र में दग्ध हुआ था (म. आ. ५२.१४)।

पूर्णायु—एक देवगंधर्व, जो कश्यप एवं क्रोधा (प्राधा) का पुत्र था (म. आ. ५९.४५)।

पूर्णिमत्—कर्दम प्रजापति की कला नामक कन्या के दो पुत्रों में से कनिष्ठ। वह मरीचि ऋषि का पुत्र था। इसके भाई का नाम 'पूर्णिमा' था। इसके विरग तथा विश्वग नामक दो पुत्र, तथा देवकुल्या नामक एक कन्या थी (भा. ४.१.१४)।

पूर्णिमागतिक—भृगुकुल का एक गोत्रकार। कई ग्रंथों में, इसके नाम के लिए 'पौर्णिमागतिक'-पाठभेद प्राप्त है।

पूर्णोत्संग--(आंध्र. भविष्य) एक आन्ध्रवंशीय राजा। विष्णु के अनुसार यह शातकर्णि का, मत्स्य के अनुसार श्रीमल्लकर्णि का, तथा भागवत के अनुसार श्रीशांतकर्ण का पुत्र था। भागवत में इसका 'पौर्णमास' नामांतर प्राप्त है। इसने अठारह वर्षों तक राज्य किया था।

पूर्य--कश्यपकुल का एक गोत्रकार।

पूर्वचित्ति—स्वायंभुव मन्वंतर की एक अप्सरा, जिसकी गणना छः सर्वश्रेष्ठ अप्सराओं में की जाती थी (म. आ. ११४.५४)। अर्जुन के जन्ममहोत्सव में जिन दस अप्सराओं ने भाग लेकर, नृत्य प्रस्तुत किया था, उनमें यह एक थी (म. आ. ११४.५४)।

यह प्रियव्रतपुत्र अग्नीध्र राजा की पत्नी थी। इसे ब्रह्मदेव ने उसके पास भेजा था। अग्नीध्र से इसे कुल नौ पुत्र हुए, जिनके नाम इस प्रकार थे--नाभि, किंपुरुष, हरिवर्ष, इलावृत, रम्यक, हिरण्यमय, कुरु, भद्राश्वव तथा केतुमाला। इसके बाद यह पुनः ब्रह्मदेव के पास चली गयी (भा. ५. २. ३-२०)।

मलय पर्वत पर शुकदेवजी की श्रेष्ठता को देखकर, यह आश्चर्यचकित हो उठी थी, एवं श्रद्धावनत होकर इसने आदरभाव व्यक्त किया था (म. शां. ३१९. २०)।

२. एक अप्सरा, जो कश्यप एवं प्राधा की कन्याओं में से एक थी। यह पूस के महीने में भग नामक सूर्य के साथ घूमती है (भा. १२. ११. ४२)।

पूर्वपालिन्—महाभारतकालीन एक राजा, जो भारतीय युद्ध में पांडवों के पक्ष में शामिल था (म. उ. ४. १७)।

पूर्वा—सोम की सत्ताइस पत्नियों में से एक।

पूर्वा भाद्रपदा—सोम की सत्ताइस पत्नियों में से एक।

पूर्वातिथि--अत्रिकुलोत्पन्न एक प्रवर एवं मंत्रद्रष्टा।

पूर्वेन्द्र--'पूर्वकल्प' में पांडवों के रूप में उत्पन्न पाँच इन्द्र।

पूषणा--स्कंद की अनुचरी मातृका (म. श. ४५.२०)।

पूषन्—ऋग्वेद में निर्दिष्ट एक देवता, जो संभवतः सूर्यदेवता का नामांतर है। ऋग्वेदान्तर्गत आठ सूक्तों में, इस देवता का वर्णन प्राप्त है। इनमें से एक सूक्त में इन्द्र एवं पूषन् की स्तुति की गयी है, एवं दूसरे एक सूक्त में सोम एवं पूषन् को संयुक्त देवता मानकर उनकी स्तुति की गयी है।

उत्तरकालीन वैदिककाल में इस देवता का निर्देश अप्राप्य है। इसकी महत्ता का वर्णन जहाँ वेदों में

प्राप्त है, वहाँ इसका स्वरूपवर्णन स्पष्ट नहीं हो पाया है।

रुद्र की भाँति यह जटा एवं दाढ़ी रखता है (ऋ.६.५५.२; १०. २६. ७)। इसके पास सोने का एक भाला है (ऋ १. ४३. ६)। इसके पास एक अंकुश भी है (ऋ. ६. ५३. ९)। यह दंतहीन है। यह पेज या आटे को तरल पदार्थ के रूप में ही खा सकता है (ऋ. ६.५६. १; श ब्रा. १. ७. ४. ७)। अग्नि की तरह, यह भी समस्त प्राणियों को एक साथ देख सकता है।

यह सम्पूर्ण चराचर का स्वामी है (ऋ. १. ११५. १)। इसे उत्तम सारथि भी कहा गया है (ऋ. ६. ५६. २)। बकरे इसके रथ के वाहन हैं (ऋ. १. ३८.४)।

सूर्य एवं अग्नि की भाँति, यह अपनी माता (रात्रि) एवं बहन (उषा) से प्रेमयाचना करनेवाला है (ऋ. ६ ५५. ५)। इसकी पत्नी का नाम सूर्या था (ऋ. ६. ५८. ४.)। इसकी कामतप्त विह्वलता देखकर, देवताओं ने इसका विवाह सूर्या से संपन्न कराया। सूर्या के पति के नाते, विवाह के अवसर पर इसका स्मरण किया जाता है, एवं इससे प्रार्थना की जाती है, 'नववधू का हाथ पकड़ कर उसे आशीर्वाद दो।'

सूर्य के दूत के नाते, यह अन्तरिक्षसमुद्र में अपने स्वर्ण-नौका में बैठकर विहार करता है (ऋ. ६. ५८. ३)। यह द्युलोक में रहता है, एवं सारे विश्व का निरीक्षण करता हुआ भ्रमण करता है। सूर्य की प्रेरणा से, यह सारे प्राणियों का रक्षण करता है। यह 'आघृणि' अर्थात अत्यंत तेजस्वी माना जाता है।

पृथ्वी एवं द्युलोक के बीच यह सदैव घूमता रहता है। इस कारण, यह मृत व्यक्तियों को अपने पितरो तक पहुँचा देता है।

यह मार्गों में व्यक्तियों का संरक्षण करनेवाला देवता माना जाता है, जो उन्हें लूटपाट, चोरी तथा अन्य आपत्ति-विपत्तियों से बचाता है (ऋ. १.४२.१-३)। इसी कारण यह 'विमुचो नपात्' अर्थात् मुक्तता का पुत्र कहा जाता है। कई जगह इसे 'विमोचन' कह कर, पापों से मुक्ति प्राप्त करने के लिए इसकी प्रार्थना की गयी है (अ.वे.६.११२.३)। शत्रु दूर होकर मार्ग संकटरहित होने के लिये, इसकी प्रार्थना की जाती है (ऋ.१.४२.७)। इसी कारण, प्रवास के प्रारंभ में ऋग्वेद के ६.५३ सूक्त का पठन कर, पूषन् को बलि देने के लिये सूत्रग्रंथों में कहा गया है (सां. गृ. २. १४.१९)।

यह पथदर्शक देवता माना जाता है (वा. सं. २२. २०)। यह मार्गज्ञ होने के कारण, खोया हुआ माल पुनः प्राप्त करवा देता है (ऋ. ६. ४८. १५; आश्व. गृ. ३. ७. ९)। यह पशुओं की रक्षा करता है, एवं उन्हें रोगों तथा संकटों से बचाता है (ऋ. ६. ५४. ५-७)।

इसे प्राणिमात्र अत्यंत प्रिय हैं। यह भूलेभटके प्राणियों को सुरक्षित वापस लाता है (ऋ. ६. ५४. ७)। यह अश्वों का भी रक्षण करता है। इसीकारण गायों के चराने के लिये लेते समय, पूषन् की प्रार्थना की जाती है (सां. गृ. ३. ९)।

ऋग्वेद में इसके लिये निम्नलिखित विशेषण प्रयुक्त किये गये हैं:— अजाश्व, विमुचोनपात्, पुष्टिंभर, अनष्टपशु, अनष्टवेदस्, करंभाद, विश्ववेदस्, पुरूवस्, तथा पशुप। इनमें से विश्ववेदस्, अनष्टवेदस्, पुरूवस्, पुष्टिंभर इन सारी उपाधियों का अर्थ 'वैभव देनेवाला' होता है। 'पूषन्' का शब्दार्थ ही यही है।

निरुक्त के अनुसार, पूषन् को आदित्य एवं सूर्यदेवता का एक रूप माना गया है। वेदोत्तर वाङ्मय में भी 'सूर्य का नामांतर' अर्थ से 'पूषन्' का निर्देश अनेक बार किया गया है। इसे मार्गरक्षक, एवं प्राणिरक्षक देवता मानने का कारण भी संभवतः यही होगा।

'पूषन्' की दन्तविहीन होने की अनेक कथाएँ ब्राह्मण ग्रंथों में प्राप्त हैं। अपनी कन्या के साथ विवाहसंबध रखनेवाले प्रजापति को रुद्र ने वध किया। प्रजापति के यज्ञ में से अवशिष्ट भाग पूषन् ने भक्षण किया। इस कारण 'पूषन्' दन्तविहीन बना (श. ब्रा. १. ७. ४. ७)। प्रजापति द्वारा किये हुए यज्ञ में रुद्र को आमंत्रित न करने के कारण, उसने उस यज्ञ को रोक दिया। पश्चात् यज्ञसिद्धि के लिये देवों ने रुद्र को प्रसन्न किया, एवं हविर्भाग का कुछ भाग पूषन् को दिया। देवों ने प्रदान किये उस हविर्भाग के कारण, पूषन् के दाँत टूट गये (तै. सं. २. ६. ८. २-७)।

पौराणिक ग्रंथोंमें भी, पूषन् का निर्देश प्राप्त है। भागवत के अनुसार, यह स्वायंभुव मन्वन्तर के दक्षयज्ञ में ऋत्विज था। उस यज्ञ में इसनें शंकर की हँसी उड़ायी। इसकारण शिवगणों मे से चंडीश नामक गण नें इसे बाँध कर इसके दाँत तोड़ डाले (भा. ४. ५. २१-२२) पश्चात्, शंकर ने इसे वर दिया, "तुम यजमानों के दाँतो से हविर्भाग भक्षण करोगे एवं लोग तुम्हे 'पिष्टभुज' कहेंगे"। उसी दिन से यह 'पिष्टभुज' बना, एवं

जिनके हाथ न हों, ऐसे लोगों के यज्ञकार्य यह करने लगा (भा. ४. ७. ४-५)।

२. बारह आदित्यों में से एक (भा. ६.६.३९, पद्म. सृ. ६, म. आ. ५९.१५)। यह तपस् (माघ) माह में प्रकाशित होता है (भा. १२.११.३४)। कई ग्रन्थों के अनुसार, यह पौष माह में प्रकाशित होता है (भवि. ब्राह्म. ७.८)। भागवत के अनुसार, दक्षयज्ञ में उपस्थित पूषन् तथा यह दोनों एक ही थे (भा. ६.६. ४३)। महाभारत में भी, भगवान् शंकर द्वारा इसके दाँत तोड़ने का निर्देश प्राप्त है (म. द्रो. १७३.४८)।

किन्तु दक्षयज्ञ का पूषन् एवं द्वादशादित्यों में से एक पूषन् संभवतः दो अलग व्यक्ति थे। क्यों कि, स्वायंभुव मन्वन्तर में द्वादशादित्य अस्तित्व में नहीं थे। उन्हें दक्ष ने यज्ञ कर के वैवस्वत मन्वन्तर में उत्पन्न किया था।

इसने स्कंद को 'पालितक' एवं 'कालिका' नामक दो पार्षद प्रदान किये थे (म. श. ४४.३९)।

पूषमित्र गोभिल—एक वैदिक ऋषि, जो अश्वमित्र गोभिल का शिष्य था। इसके शिष्य का नाम सगर था (वं. ब्रा. ३)

पृथ—रौच्य मनु के पुत्रों में से एक।

पृथग्भाव—चाक्षुष मन्वन्तर का एक देवगण।

पृथवान—दुःशीम नामक उदार दाता का नामांतर (ऋ. १०.९३.१४)।

पृथा—पांडवों की माता कुंती का नामांतर। यह शूरसेन यादव की कन्या थी, एवं संसार की अनुपम सुंदरी मानी जाती थी। कुन्ती या कुंतिभोज राजा ने इसे गोद लिया था (भा. ९.२४. ३१, पद्म. सृ. १३)।

पृथाश्व—एक प्राचीन नरेश, जो यमसभा में रह कर उसकी उपासना करता था (म. स. ८.१८)। पाठभेद (भांडारकर संहिता)—'पृथ्वश्व'।

पृथिन् वैन्य—पृथु 'वैन्य' राजा का नामांतर (पृथु वैन्य देखिये)।

पृथिवी—'द्यावापृथिवी' नामक देवताद्वय में से एक। ऋग्वेद में इसे सर्वत्र माता एवं देवता कह कर, इस पर अनेक सूक्त रचे गये है (द्यावापृथिवी देखिये)।

पृथिवींजय—वरुण की सभा का एक असुर (म. स. ९.१२)।

पृथु—(स्वा. नाभि) एक राजा। विष्णुमतानुसार यह प्रसार राजा का पुत्र था।

२. दक्षसावर्णि मनु का पुत्र।

३. तामसमनु का पुत्र।

४. तामस मन्वंतर के सप्तर्षियों में से एक।

५. द्युआदि अष्ट वसुओं में से एक। भाइयों के कथनानुसार इसने वसिष्ठ की गाय चुराई। अतः वसिष्ठ ने इसे तथा इसके अन्य भाइयों को शाप दिया, 'तुम्हें मनुष्य जन्म प्राप्त होगा।' बाद में यह शंतनु से गंगा के उदर में अपने अन्य भाइयों के साथ जन्मा। परंतु द्यु को छोड़ कर, अन्य वसुओं को जन्मतः ही पानी में डुबों देने के कारण, यह पुनः वसु के जन्म में आया (म. आ. ९३)।

६. (सू. इ.) एक राजा। भागवत तथा विष्णु के अनुसार, यह इक्ष्वाकुवंशीय अनेनस् राजा का पुत्र था। वायु में अनेनस् को पृथुरोमन् नामांतर दिया गया है।

इसने सौ यज्ञ किये थे। इसके पुत्र का नाम विश्वगाश्व था (म. व. १९३.२-३)। रामायण में इसे अनरण्य राजा का पुत्र कहा गया है, और इसके पुत्र का नाम त्रिशंकु दिया गया है (वा. रा. बा. ७०.२४)।

७. (सो. अज.) एक राजा। विष्णु तथा मत्स्य के अनुसार यह पार द्वितीय राजा का पुत्र था। इसे पृथु नामांतर भी प्राप्त है।

८. (सो. नील.) एक राजा। मत्स्य के अनुसार यह पुरुजानु राजा का पुत्र था (चक्षु २ देखिये)

९. (सो. वृष्णि) एक राजा। भागवत के अनुसार यह चित्ररथ राजा का पुत्र था।

१०. (सो. वृष्णि.) एक राजा। मत्स्य के अनुसार यह अक्रूर का पुत्र एवं इसकी माता का नाम अश्विनी है।

११. (सो. वृष्णि.) एक वृष्णिवंशीय राजा। भागवत के अनुसार यह रुचक राजा का पुत्र था। यह द्रौपदी स्वयंवर में उपस्थित था (म. आ. १७७.१७)। रैवतक पर्वत के उत्सव में यह शामिल था (म. आ. २११. १०) हरिवंश में इसे 'पृथुरुक्म' कहा गया है। संभव है, पृथु तथा रुक्म को मिलाकर ही इसे यह नाम प्राप्त हुआ हो।

१२. शुक के पाँच पुत्रों में से प्रभु का नामांतर।

१३. ऋग्वेद में निर्दिष्ट एक मानव संघ (ऋ. ७.८३. १)। इनका निर्देश प्रायः 'पर्शु' लोगों के साथ आता है। लुडविग के अनुसार, आधुनिक पार्थियन एवं पर्शियन लोग ही प्राचीन 'पृथु' एवं 'पर्शु' लोग होंगे।

१४. एक सदाचारसंपन्न ब्राह्मण। एक बार यह तीर्थयात्रा करने जा रहा था। इसे पाँच विद्रूप प्रेतपुरुष दिखलायी पड़े। वे सब अन्नदान के अभाव तथा याचकों के साथ अशिष्ट व्यवहार के कारण निंद्य प्रेतयोनि में गये थे। उनमें से प्रत्येक व्यक्ति विकलांगी था। 'पर्युषित' वेढब था। 'सूचिमुख' सुई के समान था। शीघ्रग पंगु था। 'रोहक' गर्दन न उठा सकता था, तथा 'लेखक' को चलते समय अत्यधिक कष्ट होता था। बाद में, इस ब्राह्मण ने उन्हें प्रेतत्व की निवृत्ति के लिए आहार, आचार तथा व्रत बतलाये, तब उन सबका उद्धार हुआ (पद्म. सृ. २७.१८-४६)।

पृथु 'वैन्य'—पृथ्वी का पहला राजा एवं राजसंस्था का निर्माता (श. ब्रा. ५. ३. ५. ४; क. सं. ३७. ४; तै. ब्रा. २.७. ५. १; पद्म. भू. २८.२१)। इसी कारण प्राचीन ग्रंथो में, 'आदिराज', 'प्रथमनृप', 'राजेंद्र', 'राजराज', 'चक्रवर्ति', 'विधाता', 'इन्द्र' 'प्रजापति' आदि उपाधियों से यह विभूषित किया गया है। महाभारत मे सोलह श्रेष्ठ राजाओं में इसका निर्देश किया गया है (म. द्रो. ६९; शां. २९.१३२; परि. १. क्र. ९)।

पृथ्वीदोहन अथवा नव समाजरचना--इसने भूमि को अपनी कन्या मानकर उसका पोषण किया। इसी कारण 'भू' को 'पृथुकन्या' या 'पृथिवी' कहते है (विष्णु. १.१३; मत्स्य. १०; पद्म. भू. २८; ब्रह्म. ४; ब्रह्मांड. २.३७; भा. ४.१८; म. शां. २९.१३२)।

पृथु के द्वारा पृथ्वी के दोहन की जाने की रूपात्मक कथा वैदिक वाङ्मय से लेकर पुराणों तक चली आ रही है। इस कथा की वास्तविकता यही है कि, इसने सही अर्थों में पृथ्वी का सृजन सिंचन कर, उसे धन-धान्य से पूरित किया।

मानवीय संस्कृति के इतिहास में, कृषि एवं नागरी व्यवस्था का यह आदि जनक था। इसके पूर्व, लोग पशुपक्षियों के समान इधर उधर घूमते रहते थे, प्राणियों को मार कर उनका माँस भक्षण करते थे। इस प्रकार पृथ्वी की प्राणि-सृष्टि का विनाश होता जा रहा था, एवं उनके हत्या का पाप लोगों पर लग रहा था। इसे रोकने के लिए पृथु ने कृषि व्यवस्था को देकर लोगों को अपनी जीवकोपार्जन के लिए एक नए मार्ग का निर्देशन किया। यह पहला व्यक्ति था, जिसने भूमि को समतल रूप दिया, उससे अन्नादि उपजाने की कला से लोगों को परिचित कराया, एवं इस तरह एक नई संस्कृति एवं सभ्यता का निर्माण किया।

कृषि-कला के साथ साथ पृथु ने लोगों को एक जगह बस कर रहना भी सिखाया। इस प्रकार, ग्राम, पुर, पत्तन, दुर्ग, घोष, व्रज, शिबिर, आकर, खेट, खर्वट आदि नए नए स्थानों का निर्माण होने लगा। इसके साथ ही साथ लोगों को पृथ्वी के गर्भ में छिपी हुयी सकल औषधि, धान्य, रस, स्वर्णादि धातु, रत्नादि एवं दुग्ध आदि प्राप्त करने की कला से इसने बोध कराया (भा. ४.१८)।

इसने पृथ्वी के सारे मनुष्य एवं प्राणियों को हिंसक पशुओं, चोरों एवं दैहिक विपत्तियों से मुक्त कराया। अपनी शासन-व्यवस्था द्वारा यक्ष राक्षस, द्विपाद चतुष्पाद सारे प्राणियों, एवं धर्म अर्थादि सारे पुरुषार्थों के जीवन को सुखकर बनाया। इसने अपने राज्य में धर्म को प्रमुखता दी, एवं राज्यशासन के लिए दण्डनीति की व्यवस्था दी। प्रजा की रक्षा एवं पालन करने के कारण इसे 'क्षत्रिय' तथा 'प्रजारंजनसम्राज्' उपाधि से विभूषित किया गया (म. शां. ५९.१०४-१४०)।

पृथु ने पृथ्वी पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यादि वर्गोंकी प्रतिष्ठापना की, एवं हर एक व्यक्ति को अपनी वृत्ति के अनुसार उपजीविका का साधन उपलब्ध कराया। इसी कारण यह संसार में मान्य एवं पूज्य बना (ब्रह्मांड. २.३७.१-११)।

महाभारत के अनुसार, कृतयुग में धर्म का राज्य था। अतएव दण्डनीति की आवश्यकता उस काल में प्रतीत न हुयी। कालान्तर में लोग मोहवश होकर राज्यव्यवस्था को क्षीण करने लगे। इसी कारण शासन के लिए राजनीति, शासनव्यवस्था एवं राजा की आवश्यकता पड़ी। पृथु ही पृथ्वी का प्रथम प्रशासक था।

पृथु के 'पृथ्वीदोहन' की कथा पद्मपुराण में इस प्रकार दी गयी है। प्रजा के जीवन-निर्वाह व्यवस्था के लिए यह धनुष-बाण लेकर पृथ्वी के पीछे दौड़ा। भयभीत होकर पृथ्वी ने गाय का रूप धारण किया। इससे विनती की, 'तुम मूझे न मारकर, मेरा दोहन कर, सर्व प्रकार के वैभव प्राप्त कर सकते हो'। पृथ्वी की यह प्रार्थना पृथु ने मान ली एवं इसने पृथ्वी का दोहन किया (पद्म. सृ. ८)।

दोहकगण—पृथ्वी की नानाविध वस्तुओं के दोहन करनेवाले देव, गंधर्व, मनुष्य, आदि की तालिका अथर्ववेद में एवं ब्रह्मादि पुराणों में दी गयी है। उनमें से

अथर्ववेद में प्राप्त तालिका इस प्रकार है (अ. वे. ८.२८):--

वर्ग	दोहन करनेवाला	वत्स	पात्र	दुग्ध
असुर	द्विमूर्धन्	विरोचन	लोह	माया
पितर	अंतक	यम	रौप्य	स्वधा
मनुष्य	पृथुवैन्य	वैवस्वतमनु	पृथ्वी	कृषि एवं सस्य
ऋषि	बृहस्पति	सोम	छंदस्	तप तथा वेद
देव	रवि	इन्द्र	चमस्	बल
गंधर्व	वसुरुचि	चित्ररथ	कमल	सुगंध
यक्ष	रजतनाभि	कुबेर	मृण्मय	अंतर्धान
सर्प	धृतराष्ट्र	तक्षक	तुंबा	विष
राक्षस	जातुनाभ	सुमाली	करल	रक्त
वृक्ष	शाल (जिससे राल बनती है)	पिंपरी	पलाश	तोड जाने पर भी पुन निर्माण होना
पर्वत	मेरु	हिमालय	पत्थर	महौषधि तथा रत्न

इस तालिका अनुसार, मानवों के जातियों में से असुर, पितर आदि 'वर्गों' ने पृथ्वी से माया, स्वधा आदि वस्तुओं का दोहन किया (प्राप्ति की), जिन पर उन विशिष्ट वर्गों का गुजारा होता है। इस तालिका में, मनुष्य जाति का प्रतिनिधि पृथु वैन्य को मानकर उसने पृथ्वी से 'कृषि' एवं 'सस्य' को प्राप्त किया ऐसा कहा गया है।

पृथु वैन्य चाक्षुष मन्वन्तर में पैदा हुआ माना जाता है। ध्रुव उत्तानपाद राजा के पश्चात् एवं मरुतों के उत्पत्ति के अनंतर, पृथ वैन्य का युगारंभ होता है। पृथ वैन्य के पश्चात् पृथ्वी पर वैवस्वत मनु एवं उसके वंश का राज्य शुरू होता है।

एक उदारदाता, कृषि का आविष्कर्ता, एवं मनुष्य तथा पशुओं के अधिपति के रूप में वैदिक साहित्य में, इसका निर्देश प्राप्त है (ऋ. १०.९३.१४; अ. वे. ८. १०.२४; पं. ब्रा. १३. ५.१९)। वेन का वंशज होने के कारण इसे 'वैन्य' उपाधि प्राप्त थी (ऋ. ८.९.१०) शतपथ। ब्राह्मण में इसका निर्देश 'पृथु' नाम से किया गया है, किन्तु सायणभाष्य में सर्वत्र इसे 'पृथिन्' कहा गया हैं। अथर्ववेद में भी 'पृथिन्' पाठ उपलब्ध है (अ. वे. ८. २८. ११)।

राज्यभिषेक--शतपथ ब्राह्मण के अनुसार, पृथ्वी में सर्वप्रथम पृथु का राज्याभिषेक हुआ। इसी कारण राज्याभिषेक का धार्मिक विधियों में किये जानेवाले 'पूर्वोत्तरांगभूत' होम को 'पार्थहोम' कहते हैं। इस राज्याभिषेक के कारण ग्राम्य एवं आरण्यक व्यक्तियों एवं पशुओं का पृथु राजा हुआ (श. ब्रा. ५. ३. ५. ४)। इसने 'पार्थ' नामक साम कहकर समस्त पृथ्वी का आधिपत्य प्राप्त किया (पं. ब्रा. १३. ५. २०)। एक ऋषि एवं तत्त्वज्ञानी के नाते भी इसका निर्देश प्राप्त है (जै. उ. ब्रा. १.१०.९; ऋ. १०.१४८.५)।

इसका राज्यभिषेक महारण्य अथवा दंडकारण्य में संपन्न हुआ (म. शां. २९.१२९)। इसके राज्याभिषेक के समय, भिन्न भिन्न देवों ने इसे विभिन्न प्रकार के उपहार प्रदान किये। इन्द्र ने अक्षय्य धनु एवं स्वर्ण मुकुट, कुबेर ने स्वर्णासन, यम ने दण्ड, बृहस्पति ने कवच, विष्णु ने सुदर्शन चक्र, रुद्र ने चन्द्रबिम्बांकित तलवार, त्वष्ट्रु ने रथ एवं समुद्र ने शंख दिया।

पुराणों में इसे वैन्य अथवा वेण्य कहा गया है। यह चक्षुर्मनु के वंश के वेन राजा का पुत्र था (पद्म. सृ. २)। वेन राजा अत्यधिक दुष्ट था जिससे प्रजा बड़ी त्रस्त थी। उस समय के महर्षियों ने पूजा के साथ सद्व्यवहार करने के लिए बहु उपदेश दिये, पर उसका कोई प्रभाव न पड़ा। संतप्त होकर ऋषियों ने वेन को मार डाला। राजा के अभाव में अराजकता फैल गयी, जनता चोर, डाकुओं से पीड़ित हो उठी। पश्चात, सब ऋषियों ने मिलकर वेन की दाहिनी भुजा का, तथा विष्णु के अनुसार दाहिनी जंघा का मंथन किया।

इस मंथन से सर्व प्रथम विन्ध्यनिवासी निषाद तथा धीवर उत्पन्न हुए। तत्पश्चात् वेन की दाहिनी भुजा से पृथु नामक पुत्र एवं अर्चि नामक कन्या उत्पन्न हुयी (भा. ४. १५. १-२) पृथु विष्णु का अंशावतार था एवं जन्म से ही धनुष एवं कवच धारण किये हुए उत्पन्न हुआ था। इसके अवतीर्ण होते ही महर्षि आदि प्रसन्न हुए तथा उन्होंने इसे सम्राट बनाया (पद्म. भू. २८)।

राज्याभिषेक होने के उपरांत पृथु ने प्राचीन सरस्वती नदी के किनारे ब्रह्मावर्त में सौ अश्वमेध करने का संकल्प

किया। निन्यानवे यज्ञ पूरे ही जाने के बाद इन्द्र को शंका हुयी कि, कहीं यह मेरा इन्द्रासन न छीन ले। अतएव उसने यज्ञ के अश्व को चुरा लिया। यही नहीं, कापालिक वेष धारण कर इन्द्र ने पृथु का यज्ञ न होने दिया। इस पर क्रोधित होकर पृथु इन्द्र का वध करने को उद्यत हुआ। दोनों में काफ़ी संघर्ष न हो, इस भय से बृहस्पति तथा विष्णु ने मध्यस्थ होकर, दोनों में मैत्री की स्थापना कराई। भागवत के अनुसार अत्रि ऋषि की सहायता से पृथु-पुत्र विजिताश्व ने इन्द्र को पराजित किया (भा. ४.१९)

इसने महर्षियों को आश्वासन दिया, 'मैं धर्म के साथ राज्य करूँगा। आप मेरी सहायता कीजिये'।

महर्षियों ने इस पर 'तथास्तु' कहा। तत्पश्चात् शुक्र इसका पुरोहित बना, एवं निम्नलिखित ऋषि इसके अष्टमंत्री बनेः- वालखिल्य–सारस्वत्य, गर्ग–सांवत्सर, अत्रि–वेदकारक, नारद– इतिहास, सूत, मागध, बंदि (म. शां. ५९. ११६ ११८, १३१*,)। पुरोहित, सारस्वत्य, सांवत्सर, वेदकारक, इतिहास, और राजा ये छः नाम मिलते है। बाकी दो नाम का निर्देश नहीं है। सूत–मागध ये बंदिजन अलग है।

सम्भव है मध्ययुगीन काल में, महाराष्ट्र के छत्रपति शिवाजी ने अष्टप्रधान की शासनव्यवस्था यही से अपनायी हो।

पृथु की राजप्रतिज्ञा—राज्याधिकार प्राप्त करने के पूर्व, ऋषियों ने पृथु वैन्य से निम्नलिखित शपथ ग्रहण करने को कहा–

"नियतो यत्र धर्मो वै, तमशङ्कः समाचर।
प्रियाप्रिये परित्यज्य, समः सर्वेषु जन्तुषु ॥
कामक्रौधौ च लोभं च, मानं चोत्सृज्य दूरतः ॥
यश्च धर्मात्प्रविचलेल्लोके, कश्चन मानवः ॥
निग्राह्यस्ते स बाहुभ्यां, शश्वद्धर्ममवेक्षतः।
प्रतिज्ञां चाधिरोहस्व, मनसा कर्मणा गिरा ॥
प्रालयिष्याम्यहं भौमं, ब्रह्म इत्येव चासकृत्"।

[मैं नियत धर्म को निर्भयता के साथ आचरण में लाऊँगा। अपनी रुचि तथा अभिरुचि को महत्त्व न देकर समस्त प्राणियों के साथ समता का व्यवहार करूँगा।

मैं, काम, क्रोध, लोभ और मान को छोड़कर धर्मच्युत व्यक्तियों को शास्वत धर्म के अनुसार दण्ड दूँगा।

मैं 'मनसा वाचा कर्मणा' बार बार प्रतिज्ञा करता हूँ कि प्रजाजन को भौमब्रह्म समझकर उसका पालन करूँगा (म. शां. ५९. १०९–११६)।]

राजनीति की दृष्टि से इस प्रतिज्ञा में नियतधर्म एवं शाश्वतधर्म के पालन पर जो ज़ोर दिया गया है, वह अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। राज्य में विभिन्न धर्मों के माननेवाले व्यक्ति होते हैं, पर राजा उन सबको एकसूत्र में बाँधकर जिस धर्म के द्वारा राज्य करता है वह समन्वय-वादी, समतापूर्ण, सर्वजनहिताय होता है। इसी को इस प्रतिज्ञा में 'नियत' एवं शाश्वत 'धर्म' कहा गया है। यह शाश्वत धर्म के पालन की कल्पना प्राचीन भारतीय संस्कृति की देन है। पृथु वैन्य की यह प्रतिज्ञा इग्लैण्ड आदि की राज्य-प्रतिज्ञा से काफ़ी मिलती है। अन्तर केवल इतना है, कि वहाँ की प्रतिज्ञा किसी विशेष धर्म-प्रणाली में ही आबद्ध है, पर पृथु द्वारा ग्रहण की गयी प्रतिज्ञा अखिल मानव-धर्म को ही राजधर्म मानकर उसे ही प्रतिस्थापित करते की बात कहती है।

कालिदास के रघुवंश में प्राप्त रघु राजा की प्रशस्ति में भी, 'प्रकृतिरंजन,' प्रजा का 'विनयाधान' एवं 'पोषण' आदि शब्दों द्वारा यही कल्पना दोहरायी, गयी है।

महाभारत के अनुसार, पृथु के अश्वमेध यज्ञ में अत्रि ऋषि ने इसे 'प्रथमनृप' 'विधाता,' 'इंद्र' और 'प्रजापति' कहकर इसका गौरवगान किया। यह गौतम को असहनीय था अतएव उसने अत्रि ऋषि से वाद-विवाद किया। इस वाद-विवाद में सनत्कुमार ने अत्रि का पक्ष लेकर उसका समर्थन किया। तत्पश्चात् पृथु ने अत्रि को बहुत सा धन देकर उसका सत्कार किया (म. व..१८३)।

पृथु की राजपद्धति प्रजा के लिए अत्यधिक सुखकारी सिद्ध हुयी। इसकी राजधानी यमुना नदी के तट पर थी। सूत एवं मागध नामक स्तुतिपाठक जाति की उत्पत्ति इसी के राज्यकाल में हुयी। उनमें से सूतों को इसने अनूप देश एवं मागधों को मगध एवं कलिंग देश पुरस्कार के रूप में प्रदान किये (वायु. ६२.१४७; ब्रह्मांड २.३६.१७२; ब्रह्म. ४.६७; पद्म. भू. १६.२८; आग्नि. १८.८५; वा. रा. बा. ३५.५–३९; कूर्म. पू. १.६; शिव. वाय. ५६.३०–५६.३०-३१)।

काफ़ी समय तक राज्य करने के उपरांत पृथु को वन में जाने की इच्छा हुयी। और यह अपनी पत्नी अर्चि को साथ लेकर वन गया। वन में इसकी मृत्यु हो गयी और इसके साथ इसकी पत्नी भी सती हो गयी (भा. ४.२३)।

पुत्र—भागवत के अनुसार पृथु को कुल पाँच पुत्र थे,

जिनके नाम इस प्रकार थे :—विजिताश्व (अन्तर्धान), धूम्रकेश, हर्यक्ष, द्रविण एवं वृक (भा. ४.२२.५४)। विष्णु के अनुसार, इसके अंतर्धि तथा पालित नामक दो ही पुत्र थे (विष्णु. १.१४.१)।

पृथुवंश—पृथुवंश की जानकारी ब्रह्मांड पुराण में दी गयी है (२.३७.२२-४२)। पृथु के पुत्र का नाम अंतर्धान। कन्या का नाम शिखण्डिनी था, जिसके पुत्र का नाम हविर्धान था। हविर्धान को आग्नेयी धिषणा नामक पत्नी से कुल छः पुत्र हुए, जिनके नाम निम्न-लिखित है:– प्राचीनबर्हिष, शुक्ल, गय कृष्ण, प्रज, अजित इनमें से प्राचीनबर्हिष का विवाह समुद्रतनया सवर्णा से हुआ, जिससे उसे दस प्रचेतस् उत्पन्न हुए। प्रचेतसों का विवाह वृक्षकन्या मारिषा से हुआ जिससे उन्हें दक्ष प्रजापति नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

पृथु-वंश में पृथु से लेकर दक्ष प्रजापति तक की संतति 'अयोनिज' सन्तति कहलाती है। दक्ष प्रजापति के पश्चात मैथुनज सन्तति का आरम्भ हुआ।

पृथुक—रैवत मन्वंतर का देवगण। इस गण में निम्नलिखित आठ देवता सम्मिलित हैं:– अजित, ओजिष्ठ जिगीषु, वानदृष्ट, विजय, शकुन, सत्कृत और सत्यदृष्टि (ब्रह्मांड. २.३६.७३)।

पृथुकर्मन्- (सो. क्रोष्टु) एक राजा। विष्णु के अनुसार यह शशबिन्दु का पुत्र था।

पृथुकीर्ति—(सो. क्रोष्टु.) एक राजा। मत्स्य, विष्णु तथा वायु के अनुसार, यह शशबिन्दु राजा का पुत्र था।

२. शूर राजा की कन्या श्रुतदेवा का नामांतर

पृथुग—चाक्षुष मन्वंतर का देवगण।

पृथुगश्व—एक राजा, जो यम सभा में उपस्थित था। इसके नाम के लिए 'पृथुलाश्व' पाठभेद भी उपलब्ध है (म. स. ८.२०)।

पृथुग्रीव—खर राक्षस का एक अमात्य। इसे 'पृथुश्याम' नामांतर भी प्राप्त है।

पृथुजय—(सो. क्रोष्टु.) एक राजा। भागवत के अनुसार यह महाभोज राजा का पुत्र था। विष्णु, मत्स्य, तथा वायु में इसे शशबिन्दु का पुत्र कहा गया हैं।

पृथुतेजस्--(सो. क्रोष्टु.) एक राजा। यह शशबिंदु राजा का नाती था (पद्म. सृ. १३)।

पृथुदर्भ--(सो. अनु.) शिबि 'औशीनर' के पुत्र बृहद्गर्भ राजा का नामांतर।

पृथुदात्--(सो. क्रोष्टु.) एक राजा। वायु के अनुसार, यह शशबिन्दु राजा का पुत्र था।

पृथुदान--(सो. क्रोष्टु.) एक राजा। विष्णु के अनुसार, यह शशबिन्दु राजा का पुत्र था।

पृथुधर्मन्--(सो. क्रोष्टु.) एक राजा। मत्स्य और वायु के अनुसार, यह शशबिन्दु राजा का पुत्र था।

पृथुपर्शु--ऋग्वेद में निर्दिष्ट मानव जातिसंघद्वय (ऋ. ७. ८३. १)। लुडविग के अनुसार, आधुनिक पार्थियन एवं पर्शियन लोग ही प्राचीन 'पृथु' एवं 'पर्शु' लोग होंगे।

सायण के अनुसार, 'पृथु' किसी जाति का नाम न होकर 'पर्शु' का विशेषण है, तथा 'पृथुपर्शु' नाम से चौड़े कुठार वाले किसी जाति विशेष की ओर संकेत मिलता है।

पृथुमनस्--(सो. क्रोष्टु.) एक राजा। मत्स्य के अनुसार, यह शशबिन्दु राजा का पुत्र था।

पृथुयशस्--(सो. क्रोष्टु.) एक राजा। भागवत के अनुसार, यह महाभोज राजा का पुत्र था। विष्णु, मत्स्य एवं वायु में इसे शशबिन्दु राजा का पुत्र कहा गया है।

पद्म के अनुसार यह शशबिन्दु का नाती था (पद्म. सृ. १३)।

पृथुरश्मि—यति नामक यज्ञविरोधी लोगों में से एक। यति लोग यज्ञविरोधी होने के कारण, इंद्र की आज्ञा से लकड़बग्घे के द्वारा मरवा डाले गये। इनमें से बृहद्-गिरि. रायोवाज एवं पृथुरश्मि ही बच सके। इन्द्र ने इन तीनों का संरक्षण किया एवं उन्हें क्रमशः ब्रह्मविद्या, वैश्यविद्या एवं क्षत्रियविद्या सिखायी।

पृथुरश्मि के अनुरोध पर इन्द्र ने इसे क्षात्रविद्या के साथ क्षत्रियों का सामर्थ्य भी प्रदान किया। इसके नाम से 'पार्थुरश्म' नामक साम प्रसिद्ध है, जिसका पठन-पाठन क्षत्रियों का तेज संवर्धित करता है (पं. ब्रा. १३.४.१७; यति देखिये)।

ब्रह्मांड पुराण में, पुथुरश्मि के पिता का नाम वरुत्रिन् कहा गया है (ब्रह्मांड. ३.१.८३–८४; वरुत्रिन् देखिये)।

पृथुरुक्म--(सो. क्रोष्टु.) एक राजा। विष्णु एवं पद्म के अनुसार यह परावृत्त राजा का पुत्र था। मत्स्य तथा वायु में इसे रुक्मकवच का पुत्र कहा गया है।

पृथुरोमन्--इक्ष्वाकुवंशीय अनेनस् राजा का नामांतर (पृथु. ६. देखिये)।

पृथुलाक्ष--(सो. अनु.) एक अनुवंशीय राजा, जो चतुरंग राजा का पुत्र था। इसके चार पुत्र थे, जिनके नाम बृहद्रथ, बृहत्कर्मन्, बृहद्भानु और चंप थे (भा. ९. २३. ११; म. स. ८.९)। पाठभेद (भांडारकर संहिता) —' पृथ्वक्ष '।

पृथुवक्त्रा--स्कंद की एक अनुचरी मातृका (म. श. ४५.१८)। इसके नाम के लिए 'पृथुवक्षा' एवं 'पृथुवस्त्रा' पाठभेद उपलब्ध हैं।

पृथुवेग--एक राजा, जो यम की सभा में उपस्थित था (म. स. ८.१२)। पाठभेद (भांडारकर संहिता)- 'पंचहस्त'।

पृथुश्याम--पृथुग्रीव नामक राक्षस का नामांतर।

पृथुश्रवस्--दक्ष सावर्णि मनु के पुत्रों में से एक।

२. (सो. क्रोष्टु.) एक यादववंशी राजा। विष्णु, मत्स्य और वायु के अनुसार, यह शशबिन्दु राजा का तथा भागवत के अनुसार महाभोज राजा का पुत्र था। पद्म में इसे शशबिन्दु राजा का नाती कहा गया है (पद्म. सृ. १३)

३. द्वैतवन में पांडवों के साथ रहनेवाला ऋषि। यह युधिष्ठिर का बड़ा सम्मान करता था (म. व. २७.२२)।

४. एक राजा, जो पुरुवंशीय राजा अयुतनायी की पत्नी कामा का पिता था (म. आ. ९०.२०)। यह यमसभा में रहकर यम की उपासना करता था (म. स.८.१२)।

५. स्कंद का एक सैनिक (म. श. ४४.५७)।

६. एक नाग, जो बलराम के स्वागतार्थ प्रभासक्षेत्र में आया था (म. मौ. ५.१४)।

पृथुश्रवस् कानीत—एक उदार दाता, जो वश अश्व्य नामक ऋषि का आश्रयदाता था (ऋ. ८.४६.२१)। अश्विनी कुमारों ने इस पर कृपा की थी (ऋ.१.११६. २१)।

पृथुश्रवस् दौरेश्रवस--एक ऋषि, जो सर्पसत्र में 'उद्गातृ' नामक पुरोहित का काम करता था (पं. ब्रा. २५.१५.३)। 'दूरेश्रवस्' का वंशज होने के कारण, इसे दौरेश्रवस उपाधि प्राप्त हुयी होगी।

पृथुषेण--(स्वा. प्रिय.) एक राजा, जो विभु राजा का पुत्र था। इसकी स्त्री का नाम आकुति तथा पुत्र का नाम नक्त था (भा.५.१५.६)।

पृथुसेन--(सो. अज.) एक राजा। विष्णु, मत्स्य, तथा वायु के अनुसार यह रुचिराश्व राजा का पुत्र था। भागवत में इसे रुचिराश्व राजा का नाती एवं पार राजा का पुत्र माना गया है।

२. (सो. अनु.) मत्स्य के अनुसार अंगराज कर्ण का पुत्र (मत्स्य. ४८)। किन्तु अन्यत्र इसका नाम अप्राप्य है।

पृश्नि--सविता नामक आदित्य की पत्नी (भा. ६. १८१.)।

२. मरुतों की माता। इसे देवी मान कर ऋग्वेद की कई ऋचाओं की रचना की गयी है (ऋ.६.४८.२१-२२)।

३. स्वयंभुव मन्वंतर के सुतपा प्रजापति की पत्नी। इसीने कृष्णावतार में देवकी के रुप में जन्म लिया था (भा. १.३.३२)। इसके उदर से कृष्ण का जन्म हुआ था। अतएव कृष्ण को 'पृश्निगर्भ' भी कहा जाता है (पृश्निगर्भ देखिये)।

४. (सो. वृष्णि.) एक यादव राजा, जो वायु और विष्णु के अनुसार, अनमित्र राजा का पुत्र था। इसे वृष्णि और वृषभ नामांतर भी प्राप्त थे।

५. एक प्राचीन महर्षियों का समूह, जिन्होंने द्रोणाचार्य के पास आकर उनसे युद्ध बंद करने को कहा था (म. द्रोण. १६४.८८)। इन्होंने स्वाध्याय के द्वारा स्वर्ग प्राप्त किया था (म. शां. परि. १.४.१३)।

पृश्निगर्भ--भगवान् श्रीकृष्ण का नामांतर। श्रीकृष्ण की माता देवकी पूर्वजन्म में सुतपा प्रजापति की पत्नी पृश्नि थीं। उसी का पुत्र होने के कारण कृष्ण को पृश्निगर्भ कहते हैं। यह त्रेतायुग का उपास्य देव है, जो कि विष्णु का अवतार माना जाता है (भा. १०.३.३५; ११.५. २६)।

महाभारत के अनुसार,–अन्न, वेद, जल और अमृत को पृश्नि कहते हैं। ये सारे तत्त्व भगवान् श्रीकृष्ण के गर्भ में रहते हैं, इसलिये उसका नाम पृश्निगर्भ पड़ा। इस नाम के उच्चारण से त्रित मुनि कूप से बाहर हो गये थे (म. शां. ३२८.४०)।

पृश्निगु--अश्विनियों के अश्रित राजाओं में से एक (ऋ.१.११२.७)। पुरुकुत्स और शुचन्ति राजाओं के साथ इसका निर्देश ऋग्वेद में प्राप्त है।

२. गेल्डनर के अनुसार, एक वैदिक जाति का सामूहिक नाम (ऋ.७.१८.१०)।

पृश्निमेधस्--सुमेधस् देवों में से एक।

पृषत--(सो. नील.) उत्तर पांचाल देश का एक राजा, जो भरद्वाज ऋषि का मित्र एवं द्रुपद राजा का पिता था (म. आ.१५४.६; ह. वं. १.३२.७९-८०)। विष्णु और वायु के अनुसार यह, सोमक राजा का पुत्र था। भागवत में इसे 'जंतु' राजा का पुत्र कहा गया है।

उत्तर पांचाल देश का राजा सुदास अत्यंत पराक्रमी था, किन्तु सुदास के पश्चात् पुरु एवं द्विमीढ राजाओं ने उत्तर पांचाल देश पर आक्रमण करके उसे जर्जरित कर दिया। द्विमीढ राजा उग्रायुध ने सुदास राजा के नाती एवं पृषत राजा के पितामह सोमक का वध किया, एवं उत्तर पांचाल का राज्य जीत लिया। इस तरह राज्य से पदच्युत हुआ राजकुमार पृषत् दक्षिण पांचाल देश के कांपिल्य नगरी में भाग गया। तत्पश्चात् उग्रायुध ने कुरु राज्यपर आक्रमण किया किन्तु कुरु राजा भीष्म ने उसे पराजित कर उसका वध किया।

पश्चात् भीष्म ने पृषत को उत्तर पांचाल देश देकर पुनः राज्यगद्दी पर बिठाया।

पृषत राजा के पुत्र का नाम द्रुपद था इसी कारण द्रुपद को पार्षत कहते थे। उत्तर पांचाल देश में गंगाद्वार में भरद्वाज ऋषि का आश्रम था। भरद्वाज पृषत राजा का मित्र भी था। इसी कारण पृषत् ने अपने पुत्र द्रुपद को भरद्वाज ऋषि के यहाँ विद्या अध्ययन के लिये भेजा था। भरद्वाजपुत्र द्रोण एवं द्रुपद में पहले बडी मित्रता थी। पर बाद में दोनों एक दूसरे के कट्टर शत्रु बन गये। अपने शिष्य अर्जुन की सहायता से द्रोण ने उत्तर पांचाल का राज्य द्रुपद से जीत लिया एवं उसे दक्षिण पांचाल देश की ओर भगा दिया। (द्रुपद देखिये; ह. वं. १.२०; ७४-७५; म. आ. १२८ १५)।

पृषदश्व--(सू. नाभाग.) एक राजा। भागवत, विष्णु तथा ब्रह्मांड के अनुसार यह विरूप राजा का पुत्र था। इसके पुत्र का नाम रथीवर था। अंगिरस ऋषि की सेवा करने के कारण इसने ब्राह्मणपद प्राप्त किया एवं, यह अंगिरस गोत्र का मंत्रकार हुआ। पाठभेद (भांडारकर संहिता)-- 'रुषदश्व'।

२. (सू. इ.) एक राजा। विष्णु के अनुसार यह अनरण्य राजा का पुत्र था। वायु में इसे त्रसदश्व कहा गया है।

३. यम की सभा का एक क्षत्रिय राजा (म. स. ८. १३)। इसे अष्टक राजा के द्वारा खड्ग की प्राप्त हुयी थी (म. शां. १६०.७९)।

पृषध्र--एक राजा, जो वैवस्वत मनु का नवाँ पुत्र था। इसकी माता का नाम संज्ञा था (म. आ. ७०.१४; ह. वं. १.१०.२)। भागवत के अनुसार, इसकी माता श्रद्धा थी (भा. ९.१.१२)। च्यवन ऋषि का यह शिष्य था।

महाभारत के अनुसार यह प्रातःसायंकालीन कीर्तन करने योग्य राजाओं में से एक है, क्योंकि इसको स्मरण करने से धर्म की प्राप्ति होती है (म. अनु. १६५.५८-६०) इसने कुरुक्षेत्र में तपस्या करके स्वर्ग प्राप्त किया था (म. आश्र. २६.११)।

पृषध्र के कुल दस भाई थे, जिनके नाम इस प्रकार हैः-श्राद्धदेव (सौतेला भाई), इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति, दिष्ट, धृष्ट, करुषक, वरिष्यन्त, नभग तथा कवि। कई अन्य ग्रन्थों में इसके कई और भाइयों के नाम भी प्राप्त है (मनु देखिये)।

२. एक ब्राह्मणपुत्र। गुरुगृह में शिक्षा प्राप्त करते हुए, एक दिन इसने एक सिंह को देखा कि वह गाय को मुँह में दबाये आश्रम से लिये जा रहा है। गाय की रक्षा के हेतु इसने अपना खड्ग शेर को मारा, पर सायंकाल के समय अंधेरा हो जाने के कारण, वह खड्ग गाय को लगा और वह तत्काल मर गयी। दूसरे दिन गुरु को जैसे ही यह समाचार ज्ञात हुआ उसने पृषध्र को उत्पाति तथा उद्दण्ड समझकर तत्काल शाप दिया, 'तू शूद्र हो जा'। इस शाप के कारण, यह शूद्र होकर वन वन भटकता हुआ अन्त में दावानल से घिरकर मृत्यु को प्राप्त हुआ (भा. ९.२.२-१४; ह. वं. १.११; वायु. ८६.२४.२; ब्रह्मांड. ३.६१.२; ब्रह्म. ७.४३; लिंग. १.६६.५२; मत्स्य. १२.२५; अग्नि. २७२.१८; विष्णु. ४.१.१३; गरुड. १.१३८.५; पद्म. सृ. २)।

३. द्रुपद का एक पुत्र, जो भारतीय युद्ध में अश्वत्थामा द्वारा मारा गया था (म. द्रो. १३१.१२९)।

पृषध्र काण्व--एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. ८.५९)। ऋग्वेद के वालखिल्य सूक्त में भी इसका निर्देश प्राप्त है। वहाँ मेध्य एवं मातरिश्वन् के साथ इसका उल्लेख आया है (ऋ. ८.५२.२)।

पृषध्र मेध्य मातरिश्वन्--एक वैदिक राजा, जो प्रस्कण्व का प्रतिपालक था (सां. श्रौ. १६.११.२५-२७)।

पृष्टध्र--वायु के अनुसार, व्यास की सामशिष्य परंपरा में हिरण्यनाभ ऋषि का एक शिष्य।

पेदु--एक वैदिक राजा, जो अश्विनियों का आश्रित

था (ऋ. १.११७.९; ११८.९; ११९.१०; १०.३९.१०) एक निकृष्ट अश्व को बदलने के लिए अश्विनियों ने इसे एक प्रथित अश्व प्रदान किया था। इसीलिये उस अश्व को 'पैद्व' कहा गया है (ऋ. ९.८८.४. अ. वे. १०. ४.५)। मैकडोनेल के अनुसार, 'पैद्व' अश्व सम्भवतः सूर्य के अश्व का ही प्रतिनिधित्व करता है (वैदिक माइथॉलॉजी पृ. ५२)।

पेरुक—एक वैदिक राजा, जो भरद्वाज का आश्रयदाता था। भरद्वाज ने इससे धन प्राप्त किया था (ऋ. ६. ६३. ९)।

पैंगलायनि—भृगुकुलोत्पन्न एक ऋषि। 'पिंगल' के वंश में उत्पन्न होने के कारण, इसे 'पैंगलायनि' नाम प्राप्त हुआ।

पैंगि—यास्क का पैतृक नाम (वेबर : इन्डिशे स्टूडियन. १.७१)।

पैंगीपुत्र—एक ऋषि, जो शौनकीपुत्र का शिष्य था (बृ. उ. ६.४.३०, माध्यं.)। 'पिंग' के किसी स्त्रीवंशज का पुत्र होने के कारण ही, सम्भव है इसे 'पैंगीपुत्र' नाम प्राप्त हुआ हो।

पैंग्य—एक तत्त्वज्ञ जो कौषीतकियों से सम्बद्ध ऋग्वेदिक परम्परा का गुरु, एवं याज्ञवल्क्य का शिष्य था (बृ. उ. ३. ७.११)। एक अधिकारी विद्वान् के रूप में, 'कौषीतकि ब्राह्मण' में अनेक बार इसका उल्लेख आया है (कौ. ब्रा. ८.९; १६.९)। 'कौषीतकि उपनिषद्' में इसे आचार्य कहा गया है (कौ. उ. २. २. १)। आपस्तंब श्रौतसूत्र में इसका उल्लेख 'पैंगायणी' नाम से किया गया है (आ. श्रौ. ५.१५.८)।

शतपथ ब्राह्मण में, इसका नाम मधुक दिया गया है एवं पैंग्य इसका पैतृक नाम बताया गया है (श. ब्रा. १२.२.२.४; ११.७.२.८)। 'पैंग्य' शब्द से एक व्यक्ति को बोध होता है अथवा अनेक का, यह कहना असम्भव है।

इसके सिद्धान्त को पैंग्य-मत कहते ह (कौ. ब्रा ३. १. १९.९)। प्रवर्तन के समान, यह भी प्राण को ब्रह्म माननेवाला था। काशिकाकार ने प्राचीन कल्पों की श्रेणी में पैंगी तथा अरूणपराजी और नवीन कल्पों की श्रेणी में अश्मरथ को उद्धृत किया है। सांख्यायन ब्राह्मण में अनेक स्थानों पर यज्ञकर्मों में इसके मतों को स्वीकार किया गया है (सां. ब्रा. २६.४)। आश्वलायन गृह्यसूत्र के ब्रह्मयज्ञांगतर्पण में इसका उल्लेख है। पौर्णिमा इष्टि तथा आमवास्या इष्टि के विषय में पैंग्य तथा कौषीतकि के मतों में विभिन्नता है (ऐ. ब्रा. ७.१०)।

निदानसूत्र एवं अनुपदसूत्रों में इसके अनुगामियोंको 'पैंगिन' कहा गया है (निदा. ४.७; अनु. १.८)। इसके शिष्यों में चूड भागविति प्रमुख था।

ग्रन्थः—पैंग्य के नाम से निम्न लिखित ग्रन्थ प्राप्त हैः—

१. पैंग्यायन (नि) ब्राह्मण, जिसका निर्देश बौधायन श्रौतसूत्र में किया गया है (बौ. श्रौ. २. ७; आ. श्रौ. ५. १५.८;); २. पैंगलीकल्प, जिसका निर्देश जैन शाकटायन की 'चिन्तामणिवृत्ति' में किया गया है (चिंतामणि. ३. १. ७५); ३. पैंगलोपनिषद्, ४. पैंगिरहास्य ब्राह्मण ५. पैंग्य स्मृति

२ एक ऋषि, जो युधिष्ठिर की सभा में उपस्थित था (म. स. ४. १५)। पाठभेद (भांडारकर संहिता)—'पैंग'

पैज—एक ऋषि, जो भागवत के अनुसार व्यास की ऋकशिष्य परंपरा के जातूकर्ण्य ऋषि का शिष्य था (व्यास देखिये)।

पैजवन—सुदास राजा का पैतृक नाम। पिजवन का पुत्र या पिजवन का वंशज, उन दोनों अर्थ से 'पैजवन' उपाधि प्रयुक्त हो सकती है। संभवतः दिवोदास एवं सुदास के बीच में उत्पन्न कोई राजा का नाम पिजवन हो। गेल्डनर के अनुसार, 'पैजवन' दिवोदास राजा की उपाधि थी, एवं दिवोदास सुदास राजा का पिता था (ऋग्वेद ग्लॉसरी. ११५)।

२. एक शूद्र, जिसने वेदों का अधिकार न होने के कारण, 'ऐंद्राग्न' विधि से मंत्रहीन यज्ञ कर के, उसकी दक्षणा के रूप मे एक लाख पूर्णपात्र दान किये थे (म. शां. ६०.३४-३८)।

पैठक—एक असुर, जिसका श्रीकृष्ण ने वध किया था (म. स. परि. १.२१.१५८२)।

पैठीनसि—एक स्मृतिकार एवं 'पैठनसि धर्मसूत्र' नामक ग्रंथ का कर्ता। यद्यपि याज्ञवल्क्य स्मृति में इसका उल्लेख प्राप्त नहीं है, फिर भी यह काफ़ी प्राचीनकालीन रहा होगा।

धर्मशास्त्रांतर्गत श्राद्धसंबंधी इसके द्वारा दी बहुत सारी विधियाँ अथर्ववेद से मिलती जुलती है। अंतः यह संभवतः अथर्ववेद परंपरा का रहा होगा।

'स्मृतिचंद्रिका,' 'अपरार्क,' 'मिताक्षरा,' एवं अन्य कई में ग्रंथों में इसके मतों के उद्धरण प्राप्त है।

पैठीनसी--भरद्वाज ऋषि की पत्नी (ब्रह्म. १३३.२)

पैप्पल--कश्यप कुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

२. वसिष्ठकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

पैल--अंगिराकुल का एक गोत्रकार।

२. एक ऋषि, जो पिली ऋषि का वंशज एवं भृगुकुलोत्पन्न गोत्रकार था (म. आ. ५७.७४)।

३. एक ऋषि, जो कृष्ण द्वैपायन व्यास का शिष्य था। इसको व्यास ने संपूर्ण वेदों का एवं महाभारत का अध्ययन कराया था (म. आ. ५७.७४)। व्यासने इसे ब्रह्मांडपुराण भी सिखाया था (ब्रह्मांड. १.१.१४)।

यह वसु ऋषि का पुत्र था, एवं युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में धौम्य ऋषि के साथ यह 'होता' बना था (भा. १.४.२१; १२.६.५२)। शरशय्या पर पड़े हुए भीष्म के पास, अन्य ऋषियों के साथ यह भी आया था। (म. शां. ४७.६५*)।

इसके शिष्यों में, इंद्रप्रमति एवं बाष्कल प्रमुख थे। (व्यास देखिये)।

४. एक ऋषि, जो ब्रह्मांड के अनुसार, व्यास की ऋक्शिष्य परंपरा के शाकवैण रथीतर ऋषि का शिष्य था।

५. 'भास्कर संहिता' के अंतर्गत 'निदानतंत्र' ग्रंथ का कर्ता (ब्रह्मवै. २.१६)।

६. वासुकिकुल एक नाग, जो जनमेजय के सर्पसत्र में जल कर मारा गया था (म. आ. ५२.५)।

पैलगार्ग्य--एक ऋषि, जिसके आश्रम पर काशिराज की कन्या अंबा ने तपस्या की थी (म. उ. १८७.२७)।

पैलमौलि--कश्यपकुल एक गोत्रकार।

पोतक--कश्यपवंश का एक नाग (म. उ. १०१ ११)।

पोष्ट--अमिताभ देवो में से एक

पौंस्यायन--सृंजय राजा दुष्टरीतु का पैतृक नाम (श. ब्रा. १२.९.३.१)।

पौंडव--वसिष्ठकुल का एक गोत्रकार। इसके नाम के लिये 'खांडव' पाठभेद उपलब्ध है।

पौंडरिक--इक्ष्वाकु राजा क्षेमधृत्वन् (क्षेमधन्वन्) का पैतृक नाम (पं. ब्रा. २२.१८.७)।

पौंड्र--करुष राजा पौंड्रक वासुदेव का नामांतर (भा. ११.५.४८)।

२. नंदिनी गौ के पार्श्वभाग से प्रकट हुयी एक म्लेच्छ जाति (म. आ. १६५. ३६)। इनके लिये 'पुंड्र' पाठभेद प्राप्त है।

३. पौंड्र देश के निवासियों के लिये प्रयुक्त एक सामूहिक नाम मांधाता के राज्य में जो निवास करते थे (म. शां. ६५.१४)। ये लोग पहले क्षत्रिय थे, किन्तु ब्राह्मणों के क्रोधसे शूद्र हो गये (म. अनु. ३५.१७-१८)।

इन लोगों को श्रीकृष्ण ने पराजित किया था। (म. स. परि. १.२१.१५६३) युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भी ये लोग उपस्थित थे (म. व. ४८.१८)।

भारतीय युद्ध में ये लोग, युधिष्ठिर की ओर से क्रौंच व्यूह में शामिल थे (म. भी. ४६.४९)। अंत में कर्ण ने इन को पराजित किया था (म. द्रो. ३२*)।

पौंड्रक--धर्मसावर्णि मनु के पुत्रों में से एक।

२. कुंभकर्ण का नाती एवं, कुंभकर्णपुत्र निकुंभ का पुत्र। राम-रावण युद्ध के समय निकुंभ की पत्नि गर्भवती होने के कारण, नैहर गयी थी। इस युद्ध में हनुमानजी ने निकुंभ का वध किया था। तत्पश्चात उसकी पत्नी ने पौंड्रक नामक पुत्र को जन्म दिया।

आनंद रामायण के अनुसार, इसने मायापुरी का राजा शतमुखी रावण की सहायता से विभिषण को राज्यभ्रष्ट करने का व्यूह रचा था। किंतु राम ने इसे पकड़ कर विभीषण के हवाले कर दिया, एवं रावण का वध किया (आ. रा. राज्य. ५)।

पौंड्रक मत्स्यक--एक क्षत्रिय राजा, जो दनायु के बलवीर नामक दैत्यपुत्र के अंश से उत्पन्न हुआ था (म. आ. ६१.४१)। भारतीय युद्ध में यह दुर्योधन के पक्ष में शामिल था।

पौंड्रक वासुदेव--पुंड्र, करूष, एवं वंग देशों का राजा जो जरासंध के पक्ष में शामिल था (म. स. १३.१९)।

इसके पिता का नाम वसुदेव था (म. आ. १७७. १२)। पुंड्र देश का राजा होने से इसे पौंड्रक कहते थे। कृष्ण वसुदेव से विभिन्नता दर्शाने के लिये इसका पौंड्रक वासुदेव नाम प्रचलित हुआ था। चेदि देश में यह 'पुरुषोत्तम' नाम से सुविख्यात था। यह द्रौपदीस्वयंवर में उपस्थित था (म. आ. १७७.१२)।

कौशिकी नदी की तट पर किरात, वंग, एवं पुंड्र देशों पर इसका स्वामित्व था। यह मुर्ख एवं अविचारी था। इस कारण यह स्वयं को परमात्मा वासुदेव कहलाने लगा, एवं भगवान कृष्ण का वेष परिधान करने लगा। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के समय, इसने उसे करभार दे कर युधिष्ठिर का एवं भगवान् कृष्ण का सार्वभौमत्व मान्य किया था (म. स. २७.२०.२९२)। फिर भी इस युद्ध के पश्चात्

बडी उन्मत्तता से भगवान कृष्ण को इसने संदेशा भेजा, 'पृथ्वी के समस्त लोगों पर अनुग्रह कर उनका उद्धार करने के लिये, मैंने वासुदेव नाम से अवतार लिया है। भगवान् वासुदेव का नाम एवं वेषधारण करने का अधिकार केवल मेरा है। इन चिह्नोंपर तेरा कोई भी अधिकार नहीं है। तुम इन चिह्नों को एवं नाम को तुरन्त ही छोड़ दो, वरना युद्ध के लिये तैयार हो जाओ।'

इसकी यह उन्मत्त वाणी सुनकर, कृष्ण अत्यंत क्रुद्ध हुआ, एवं उसने इसे प्रत्युत्तर भेजा, 'तेरा संपूर्ण विनाश करके, मैं तेरे सारे गर्व का परिहार शीघ्र ही करुंगा'।

यह सुनकर, पौंड्रक कृष्ण के विरुद्ध युद्ध की तैयारी शुरू करने लगा। अपने मित्र काशीराज की सहायता प्राप्त करने के लिये यह काशीनगर गया। यह सुनते ही कृष्ण ने ससैन्य काशिदेश पर आक्रमण किया। कृष्ण आक्रमण कर रहा है यह देखकर, पौंड्रक स्वयं दो अक्षौहिणी सेना लेकर बाहर निकला। काशिराज भी तीन अक्षौहिणी सेना लेकर इसकी सहायता करने आया। युद्ध के समय पौंड्रक ने शंख, चक्र, गदा, शार्ङ्ग धनुष, वनमाला, रेशमी पीतांबर, उत्तरीय वस्त्र, मौल्यवान् आभूषण आदि धारण किया था, एवं यह गरुड़ पर आरूढ़ था। इस नाटकीय ढंग से, युद्धभूमि में प्रविष्ट हुए इस 'नकली कृष्ण' को देखकर भगवान कृष्ण को अत्यंत हँसी आयी। पश्चात् इसका एवं इसके परिवार के लोगों का वध कर, कृष्ण द्वारका नगरी वापस गया। काशिपति के पुत्र सुदक्षिण ने अभिचार से कृष्णपर हमला किया, जिसे कृष्ण ने पराजित किया (भा. १०.६६)।

पद्मपुराण के अनुसार, पौंड्रक वासुदेव एवं इसके मित्र काशिराज, दोनों एक ही व्यक्ति थे, एवं इसका और कृष्ण का युद्ध द्वारका नगरी में संपन्न हुआ था। इसने शंकर की घोर तपस्या कर, वरदान प्राप्त किया था, 'तुम कृष्ण के समान होगे'। युद्ध में कृष्ण ने इसका शिरच्छेद किया, एवं इसका सर काशी नगरी की ओर झोंक दिया। दण्डपाणि नामक इसके पुत्र ने एक कृत्या कृष्ण पर छोड़ दी। कृष्ण ने अपने सुदर्शनचक्र के द्वारा उस कृत्या एवं दण्डपाणि का वध किया, एवं काशीनगरी को जला कर भस्म कर दिया (पद्म. उ. २७८)।

पौतक्रत—ऋग्वेद में निर्दिष्ट दस्यवें वृक राजा नामान्तर। दस्यवे वृक की माता का नाम संभवतः पूतक्रता था, इस कारण इसे यह नाम प्राप्त हुआ हो (ऋ. ८.५६.१)। पृषध्र के सूक्त में इसका निर्देश प्राप्त है।

पौति मत्स्यक—एक राजा, जिसे भारतीय युद्ध में पांडवो की ओर से रणनिमंत्रण भेजा गया था (म. उ. ४.१७)।

पौतिमाषीपुत्र—काण्वशाखा के बृहदारण्यक उपनिषद में निर्दिष्ट एक आचार्य (बृ. उ. ६.५.१)। संभवतः यह 'पूतिमाष' के किसी स्त्रीवंशज का पुत्र होगा। इसके गुरु का नाम कात्यायनीपुत्र था।

पौतिमाष्य—काण्व शाखा के बृहदारण्यक उपनिषद में निर्दिष्ट एक आचार्य (बृ. उ. २.६.१; ४.६.१)। संभवतः यह 'पूतिमाष' का पुत्र या वंशज होगा। इसके गुरु का नाम गौपवन था।

पौतिमाष्यायण—एक आचार्य, जो कौंडिन्यायन एवं रैभ्य नामक आचार्यों का गुरु था। संभवतः यह 'पौतिमाष्य' का वंशज होगा।

पौत्रायण—एक उदार दाता, जिसका पैतृक नाम जानश्रुति था (छां. उ. ४.१.१; जानश्रुति देखिये)।

पौत्रि—अत्रिकुल का एक प्रवर।

पौर—एक पूरु राजा, जिसकी सहायता इंद्र ने की थी। रुम एवं रुशम राजाओं के साथ, ऋग्वेद में इसका भी निर्देश प्राप्त है (ऋ. ८.१३.१२)। सिकंदर का प्रतिद्वंदी राजा पौरव (पूरोस) संभवतः यही होगा (ऋ. ५.७४.४)।

२. भृगुकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

३. (सो. पूरु.) एक पूरुवंशीय राजा, जो मत्स्य के अनुसार, पृथुसेन राजा का पुत्र था।

पौर आत्रेय—एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. ५.७३-४७)।

पौरव—एक राजा, जो शरभ नामक दैत्य के अंश से उत्पन्न हुआ था (म. आ. ६१.२८)। इसका सही नाम 'विष्वगश्व' एवं कुलनाम पौरव था। यह पर्वतीय देश का राजा था, एवं युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के समय, अर्जुनद्वारा पराजित हुआ था (म. स. २४.१३)।

भारतीय युद्ध में, एक महारथि के नाते, यह दुर्योधन के पक्ष में शामिल था (म. उ. १६४.१९)। चेदिराज धृष्टकेतु के साथ इसका द्वंद्वयुद्ध हुआ था (म. भी. ११२.१५)। पश्चात् इसका अभिमन्यु के साथ युद्ध हुआ, जिसमें अभिमन्यु ने इसके केश पकड़कर इसे घसीटा था (म. क. ४.३५)। इसके पुत्र का नाम दमन था (म. भी. ५७.२०।

२. पूरूकुल का दानवीर राजा, जिसका निर्देश महाभारत में 'षोडष- राजकीय' उपाख्यान में किया गया है (म. द्रो. परि. १, क्र. ८; पंक्ति ३८४)। सृंजयराजा के अश्वमेध में, नारद ने इसका जीवनचरित्र कथन किया था।

३. पांडवों के पक्ष का एक राजा, जिसका अश्वत्थामा ने रथशक्ति फेंक कर वध किया था (म. द्रो. १७१-६४)।

४. विश्वामित्र के ब्रह्मवादी पुत्रों में से एक (म. अ. ४. ५५)।

पौरवक--एक क्षत्रियजाति, जिसके लोग युधिष्ठिर के साथ क्रौंचव्यूह में खडे थे (म. भी. ४६.४७)।

पौरवी--युधिष्ठिर की पत्नी, जिससे इसे देवक नामक पुत्र हुआ था (भा. ९.२२.३०)।

२. वसुदेव की स्त्रियों में से एक (पद्म. सृ. १३)। इसके निम्नलिखित पुत्र थेः—सुभद्र, भद्रवाह, दुमर्द, एवं भद्र (भा. १२.११.३५)।

पौरा--गाधि की माता पौरुकुत्सा का नामांतर (ब्रह्म. १०.२८; पौरुकुत्सा देखिये)।

पौरिक--पुरिका नगरी का एक राजा, जिसे पाप के कारण सियार की योनि में जन्म प्राप्त हुआ था (म. शां. १२२.३-५)।

पौरुकुत्स—अंगिराकुल का मंत्रकार।

२. पूरुराजा त्रसदस्यु का पैतृक नाम।

पौरुकुत्सा—कान्यकुब्ज देश के गाधि राजा की माता (रेणुका. ७)। इसे पौरा नामांतर भी प्राप्त है।

पौरुकुत्सि--पूरुराजा त्रसदस्यु का पैतृक नाम।

पौरुकुत्स्य—पूरुराजा त्रसदस्यु का पैतृक नाम।

पौरुशिष्टि--तपोनित्य नामक आचार्य का पैतृक नाम (तै. उ. १.९.१; तै. आ. ७.८.१)। पुरुशिष्ट का वंशज होने के कारण, इसे यह नाम प्राप्त हुआ होगा।

पौरुषेय—ज्येष्ठ माह में सूर्य के साथ घूमनेवाला एक राक्षस (भा. १२.११.३५)।

२. यातुधान राक्षस का पुत्र। इसे निम्नलिखित पुत्र थे:- क्रूर, विकृत, रुधिराद, मेदाश एवं वपाश (ब्रह्मांड. ३.७.९४)।

पौर्णिमास—अगस्त्य कुल का गोत्रकार।

२. (आंध्र. भविष्य) आंध्रवंशीय पूर्णोत्संग राजा का नामांतर (पूर्णोत्संग देखिये)।

पौर्णिमागतिक--भृगुकुल का गोत्रकार 'पुर्णिमागतिक' के लिये प्रयुक्त पाठभेद।

पौलकायनि--अंगिराकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

पौलस्त्य--पुलस्त्य ऋषि के पुत्र विश्रवस् ऋषि का पैतृक नाम (१ पुलस्त्य देखिये)।

२. पुलस्त्यकुल के राक्षस, जो दुर्योधन के भाइयों के रूप में पुनः उत्पन्न हुए थे (म. आ. ६१.८२)।

३. भृगुकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

४. अगस्त्यकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

५. भौत्य मनु के पुत्रों में से एक।

पौलह—दक्षसावर्णि मन्वंतर के सप्तर्षियों में से एक।

२. अगस्त्यकुलोत्पन्न एक गोत्रकार, जो पुलह का दत्तक पुत्र दृढास्यु के वंश में उत्पन्न हुआ था (२ पुलह देखिये)।

३. पुलहकुल के राक्षस।

पौलि—वसिष्ठकुल का एक गोत्रकार।

पौलुषि—सत्ययज्ञ नामक आचार्य का पैतृकनाम (श. ब्रा. १०.६.१.१)। 'पुलुष' का वंशज होने के कारण, इसे यह नाम प्राप्त हुआ होगा। जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण में 'पौलुषित' पाठभेद प्राप्त है (जै. उ. ब्रा. १.३९.१)।

पौलोम—पुलोमा नामक दैव्यकन्या के पुत्रों के लिये प्रयुक्त सामुहिक नाम (२ पुलोमा देखिये)।

ये हिरण्यपुर नामक नगरी के स्वामी थे (म. व. १७०.१२-६३; भा. ६.६.३५)। ब्रह्माजी ने इनकी माता पुलोमा को दिये वर के कारण, ये अत्यंत उन्मत्त हो गये थे। फिर अर्जुन ने इनके साथ युद्ध कर, इनका संहार किया (म. स. १६९; पद्म. सृ. ६; २ निवातकवच देखिये)।

२. दक्षिण समुद्र के समीप स्थित 'पौलोमतीर्थ' में ग्राह बन कर रहनेवाली एक अप्सरा। इसका एवं इसके वर्गा नामक सखी का अर्जुन ने उद्धार किया था (म. आ. २०८.३)।

पौलोमी—वारुणि भृगु ऋषि की पत्नी पुलोमा का नामांतर (विष्णु. ७.३२; पुलोमा देखिये)। इसे भृगु ऋषि से च्यवन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था (ब्रह्मांड. ३. १.७४-१००; भृगु देखिये)।

२. पुलोमा नामक असुर की कन्या, जिसे 'शची' नामांतर भी प्राप्त है (शची देखिये)। शची पौलोमी का निर्देश एक ऋग्वेद सूक्त की द्रष्टीके रूप में प्राप्त है (ऋ. १०. १५९)। यह देवराज इंद्र की पत्नी थी, जिससे इसे जयंत नामक पुत्र उत्पन्न हुआ (म. आ. १०६.४)।

अध्यात्म रामायण में, इसे पुलोमि असुर की कन्या कहा गया है (अध्या. रा. अयो. १.१५)। भागवत के अनुसार, यह द्वादश आदित्यों में से शक नामक आदित्य की पत्नी थी, जिससे इसे जयंत, ऋषभ एवं मीढुष नामक पुत्र उत्पन्न हुए थे (भा. ६.१८.७)।

पौषाजिति—अंगिराकुलोत्पन्न एक गोत्रकार एवं ऋषि। इसके नाम के लिये 'पौषजिति' एवं 'पाष्याजिति' पाठभेद उपलब्ध हैं।

पौष्करसादि—सांख्यायन आरण्यक में निर्दिष्ट एक गुरु एवं आचार्य (सां. आ. ७.१७; आप. ध. १.६.१९. ७; १०.२८.१)। संभवतः यह किसी 'पुष्करसादि' का वंशज रहा होगा। उपनयन के बाद, उसी दिन गायत्री-मंत्र का उपदेश 'उपनीत' बालक को करना चाहिये, ऐसा इसका मत था (सां. आ. ७.१७)। तदनुसार गायत्रीमंत्र का उपदेश आज भी किया जाता है।

तैत्तिरीय प्रातिशाख्य में, एक वैय्याकरण के नाते पौष्करसादि का निर्देश प्राप्त है (तै. प्रा. ५.३७-३८; पा. सू. वार्तिक. ८.४.४८)। संभवतः धर्मशास्त्रकार एवं वैय्याकरण पौष्करसादि दोनों एक ही होंगे।

पौष्टी—पूरु राजा की पत्नी, जिसे पूरुद्वारा प्रवीर, ईश्वर एवं रौद्राश्व नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे (म. आ. ८९.४)।

पूरु राजा की कौसल्या नामक और एक पत्नी भी थी। किंतु महाभारत में एक स्थान पर प्राप्त निर्देश के अनुसार, पौष्टी का ही नामांतर कौसल्या था (म. आ. ९०.११)।

पौष्णायन—भृगुकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

पौष्पिण्ड्य—सामविधान ब्राह्मण में निर्दिष्ट एक गुरु एवं आचार्य, जो जैमिनि का शिष्य था (वेबर, इन्डिशे स्टूडियेन, ४.३७७)। व्यास की सामशिष्यपरंपरा का सुविख्यात आचार्य 'पौष्यंजि' अथवा 'पौष्पिंजि' संभवतः यही होगा (पौष्यंजि देखिये)।

पौष्य—इक्ष्वाकुवंशीय राजा पुष्यपुत्र ध्रुवसंधि का नामांतर। आचार्य वेद इसका पुरोहित था। इसकी पत्नी ने अपने दिव्य कुंडल उत्तंक ऋषि को प्रदान किये थे (म. आ. ३.८५)।

पश्चात् इसका एवं उत्तंक ऋषि का झगड़ा हो गया, जिस कारण, इसने उसे 'अनपत्य' होने का शाप दिया। उत्तंक ने भी इसे अंधा होने का प्रतिशाप दिया (म. आ. ३.१२७)।

२. एक राजा, जो करवीर नगरी के राजा पूषन् का पुत्र था। इसकी तीन स्त्रियाँ होते हुए भी इसे एक भी पुत्र न था। आगे चल कर शंकर की कृपा से इसे चंद्रशेखर नामक एक पुत्र हुआ।

इसकी राजधानी दृषद्वती नदी के किनारे ब्रह्मावर्त के समीप स्थित करवीर नगरी में थी (कालि. ४९)।

पौष्यंजि—एक आचार्य, जो व्यास की सामशिष्य परंपरा के सुकर्मन् जैमिनि का शिष्य था। इसे 'पौष्पिंजि' एवं 'पौष्पिण्ड्य' नामांतर भी प्राप्त हैं।

यह सामवेदी श्रुतर्षि था। सुकर्मन् जैमिनि नामक सुविख्यात आचार्य के 'पौष्यंजि' एवं 'हिरण्यनाभ कौसल्य' ये दो प्रमुख शिष्य थे। उनमें से पौष्यंजि ने सामवेद की पांचसो संहिताएँ बनायी, एवं वे अपने लौगाक्षि (लोकाक्षि), कुथुमि, कुशुमिन्, एवं लांगलि नामक चार शिष्यों को सिखायीं। आगे चल कर उसी चार शिष्यों से सामवेद की परंपरा का निर्माण हुआ (व्यास देखिये)। इसके निर्माण किये, सामदेवपरंपरा को सामवेद की 'उदीच्या शाखा' कहते है।

ब्रह्मांड के अनुसार, इसने याज्ञवल्क्य को योगविद्या सिखाई थी।

पौष्यायन—भृगुकुल का एक गोत्रकार।

प्रकालन--वासुकिलकुल का एक नाग, जो जनमेजय के सर्पसत्र में जलकर मारा गया (म. आ. ५२.५)।

प्रकाश--एक भृगुवंशी ब्राह्मण, जो गृत्समदवंशीय 'तम' नामक ऋषि का पुत्र था (म. अनु. ३०.६३)।

प्रकाशक--रैवत मनु के पुत्रों में से एक।

प्रकृति--रैवत मन्वंतर का एक देवगण।

प्रगाथ काण्व--एक वैदिक मंत्रद्रष्टा, जो 'प्रगाथ' नामक मंत्रो का प्रणेता था (ऋ. ८.१.१-२; ऐ. आ. २. २.२)।

ऋग्वेदांतर्गत एक मिश्र जाति के छंद का नाम 'प्रगाथ' है। उस छन्द में निबद्ध मंत्रों की रचना करने के कारण, इसे यह नाम प्राप्त हुआ। ऋग्वेदानुक्रमणिका के अनुसार, यह दुर्गह राजा का समकालीन था। आश्वलायन के ब्रह्मयज्ञांग तर्पण में इसका निर्देश प्राप्त है।

प्रगाथ घौर—घोर आंगिरस ऋषि के दो पुत्रों में से एक। इसके भाई का नाम कण्व था। एक बार इसने कण्व की पत्नी से छेड़छाड़ की। इस कारण, कण्व इस पर क्रुद्ध हुआ, एवं इसको शाप देने लगा। फिर इसने उससे एवं उसकी पत्नी की क्षमा माँगी (कण्व १. देखिये)।

प्रघस—रावण के पक्ष का एक राक्षस, जो हनुमान् के द्वारा मारा गया (वा. रा. सुं. ४६. ३७; म. व. २६९. २.)।

२. एक राक्षस, जो सुग्रीव के द्वारा मारा गया (वा. रा. यु. ४३)।

३. राक्षस एवं पिशाचों के दल (म. व. २८५. १ - २)।

प्रघसा—एक राक्षसी, अशोकवन में सीता के रक्षणार्थ नियुक्त की गयी थी (वा. रा. सुं. २४. ४१)।

२. स्कंद की अनुचरी मातृका (म. श. ४५.१६)।

प्रघास—लेखदेवों में से एक।

प्रघोष—श्रीकृष्ण का लक्ष्मणा से उत्पन्न एक पुत्र (भा. १०. ६१. १५)।

प्रचंड—एक राक्षस, जिसने त्रिपुरासुर एव शंकर के युद्ध में कार्तिकेय से युद्ध किया था (गणेश. १.४३)।

२. एक गोप, जिसके घर जाबालि ऋषि नें चित्रगंधा गोपी के रुप में जन्म लिया था।

३. विष्णु का एक पार्षद।

प्रचिन्वत्—(सो. पूरु.) एक पूरुवंशीय राजा, भागवत एवं विष्णु के अनुसार, जनमेजय (प्रथम) का पुत्र था। इसे प्राचिन्वत् नामांतर भी प्राप्त है।

प्रचेतस्—एक प्रजापति, जो ब्रह्मा के मानसपुत्रों में से एक था (वायु. ६५.५३–५४)।

२. प्राचीनबर्हिष तथा समुद्रतनया सवर्णा के दस पुत्रों का सामूहिक नाम। भागवत में इसके माता का नाम शतद्रुती दिया गया है (भा. ४.२४.१३)।

ये दस प्रचेतस् धनुर्वेद में पारंगत थे (विष्णु. १.१४. ६; ह. वं. १.२.३३)। इन्होंने समुद्रजल में रहकर दस हजार वर्षों तक तपस्या की। उस समय पृथ्वी पर जंगल ही जंगल थे। वृक्षों की वृद्धि को देखकर, प्रचेतस् जंगलों को नष्ट करने लगे। तब वृक्षों के अधिपति सोम ने इन्हें वृक्षों को नष्ट करने से रोका, तथा भेंट के रूप में वृक्षकन्या वार्क्षी अथवा मारिषा इन्हें अर्पित की (मारिषा देखिये)। दस प्रचेतसो द्वारा मारिषा से दक्ष नामक पुत्र हुआ। वही पुत्र दक्ष प्राचेतस तथा दक्ष प्रजापति नाम से प्रसिद्ध हुआ (विष्णु, १.१५.१–९; ह. वं. १.२.४६)। इसी प्राचेतस दक्ष से, आगे चल कर 'मैथुनज' मानवसृष्टि का प्रारम्भ हुआ।

३. एक स्मृतिकार, जिसका निर्देश पराशरस्मृति में प्राप्त स्मृतिकारोंकी तालिका में दिया गया है। किंतु याज्ञवल्क्य स्मृति में इसका निर्देश उपलब्ध नहीं है।

नित्यकर्म, श्राद्ध, अशौच, एवं प्रायश्चित के संबंध में प्रचेतस् के मतों के गद्य उद्धरण 'मिताक्षरा', 'अपरार्क' 'स्मृतिचंद्रिका', एवं 'हरदत्त' (गौतम. २३) में प्राप्त हैं। अशौच एवं प्रायश्चित के संबंध में इसने अपने 'बृहत्प्रचेतस' नामक ग्रंथ में दिये मतों का निर्देश 'मिताक्षरा' (याज्ञ. ३.२०.२६३–२६४)। 'हरदत्त' (गौतम. २२ १८), तथा अपरार्क में किया है।

"रसोइया, शिल्पकार, वैद्य, दासदासी, राजा एवं राजा का अधिकारीवर्ग, इन लोगों को अशौचपालन करने की आवश्यकता नहीं है' ऐसा इसका अभिमत था (याज्ञ. ३.२७)। प्रचेतस् के इस श्लोक का मेधातिथि ने स्मृति की तरह निर्देश किया है (मनु. ५.६०)। किंतु वहाँ प्रचेतस् के नाम का निर्देश नही किया गया है। इस उद्धरण से जाहिर है कि, मनु एवं विष्णु जैसे श्रेष्ठ स्मृतिकारों में प्रचेतस् का निर्देश मेधातिथि के काल में हुआ करता है।

इसके द्वारा लिखित 'वृद्धप्रचेतस्' नामक और भी एक ग्रंथ था, जिसके उद्धरण 'मिताक्षरा' एवं 'अपरार्क' में दिये गये है।

४. लेखदेवों में से एक।

५. पारावत देवों में से एक।

६. प्रसूत देवों में से एक।

७. (सो. द्रुह्यु.) एक राजा, जो भागवत के अनुसार 'दुर्मन' राजा का, विष्णु के अनुसार 'दुर्गम' का, एवं मत्स्य के अनुसार, 'दुर्दम' का पुत्र था। इसे 'सुचेतस्' नामांतर भी प्राप्त है।

इसके प्राचेतस नामक सौ पुत्र थे, जो उत्तर दिशा में जा कर म्लेंच्छ लोगों के राजा बन गये। इस प्रकार इसका 'द्रुह्यु' वंश विनष्ट हो गया।

८. भार्गवकुल का एक मंत्रकार।

९. वरुण का नामांतर (भा. ७.१२.२८; म. स. ७. १४)।

प्रचेतस् आंगिरस—एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. १०. १६४)।

प्रचेष्ट—तालध्वज नगर के माधव नामक राजकुमार का सेवक (माधव ५. देखिये; पद्म. क्रि. ५)।

प्रजंघ—रावण के पक्ष का एक राक्षस, जो अंगद द्वारा मारा गया (वा. रा. यु. ७६.२७)।

२. राम के पक्ष का एक वानर, जिसने संपाति नामक राक्षस का वध किया (वा. रा. यु. ४३)।

प्रजन—(सो. ऋक्ष.) एक राजा, जो मत्स्य के अनुसार कुरु राजा के पाँच पुत्रों में से कनिष्ठ था।

प्रजा—एक ब्राह्मण, जो पूर्वजन्म में 'भिल' था। अपने व्याध योनि में, इसने श्रीविष्णु के पूजा के लिये कमल के फूल एकत्र कर, एक ब्राह्मण को प्रदान किये। इस पुण्यकर्म के कारण, अगले जन्म में इसे शुचिर्भुत ब्राह्मणकुल में जन्म प्राप्त हुआ (पद्म. क्रि. १३)।

प्रजागरा—एक अप्सरा, जिसने इंद्रसभा में संपन्न हुए अर्जुन के स्वागतसमारोह में नृत्य गायन किया था (म. व. ४४.३०)।

प्रजाति--स्वायंभुव मन्वंतर के जित देवों में से एक।

२. मनु के पुत्रों में से एक। इसके पुत्र का नाम क्षुप था (म. आश्व. ४. २)। इसके नाम के लिये 'प्रसंधि' पाठभेद भी उपलब्ध है।

प्रजादर्प--एक मध्यमाध्वर्यु।

प्रजानि--(सू. दिष्ट.) एक राजा। विष्णु एवं वायु के अनुसार यह प्रांशु राजा का पुत्र था। भागवत में इसे 'प्रमति' कहा गया है।

२. प्रांशुपुत्र प्रजाति राजा का नामांतर। इसके पुत्र का नाम खनित्र था (मार्क. ११४.७–८)

प्रजापति--एक वैदिक देवता, जो संपूर्ण प्रजाओं का स्रष्टा माना जाता है। महाभारत एवं पुराणों में निर्दिष्ट 'ब्रह्मा' देवता से इस वैदिक देवता का काफी साम्य है, एवं ब्रह्मा की बहुत सारी कथाएँ इससे मिलती जुलती हैं (ब्रह्मन् देखिये)।

ऋग्वेद के दशम मण्डल में चार बार प्रजापति का नाम एक देवता के रूप में आया है। देवता प्रजापति को बहुत सन्तानों 'प्रजाम्' को प्रदान करने के लिये आवाहन किया गया है (ऋ. १०.८५.४३)। विष्णु, त्वष्टु तथा धातृ के साथ इसकी भी सन्तान प्रदान करने के लिए स्तुति की गयी है (ऋ. १०.१८४)। इसे, गायों को अत्यधिक दुग्धवती बनानेवाला कहा गया है (ऋ. १०.१६९)।

इसकी प्रशस्ति में ऋग्वेद का एक स्वतंत्र सूक्त है, जिसमें इसे पृथ्वी का सर्वोच्च देवता कहा गया है (ऋ. १०.१२१)। इस सूक्त में, आकाश एवं पृथ्वी, जल एवं सभी जीवित प्राणियों के स्रष्टा के रूप में इसकी स्तुति की गयी है, तथा कहा गया है, पृथ्वी में जो कुछ भी है, उसके अधिपति (पति) के रूप मे प्रजापति का जन्म (जात) हुआ है। यह श्वास लेनेवाले समस्त गतिशील जीवों का राजा है। यही सब देवों में श्रेष्ठ है। इसी के विधानों का सभी प्राणी पालन करते हैं। यही नहीं, इसका यह विधान देवताओं को भी मान्य है। इसने आकाश तथा पृथ्वी की स्थापना की है, यही अन्तरिक्ष के स्थानों में व्याप्त है, तथा समस्त विश्व तथा समस्त प्राणियों को अपनी भुजाओं से अलिंगन करता है।

अथर्ववेद तथा वाजसनीय संहिता में साधारणतया, ब्राह्मण ग्रन्थों में नियमित रूप से, इसे सर्व प्रमुख देवता माना गया है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार, यह देवों का पिता है (श. ब्रा. ११.१.६; तै. ब्रा. ८.१.३)। सृष्टि के आरम्भ में अकेले इसी का अस्तित्व था (श. ब्रा. २.२.४), एवं यह पृथ्वी का सर्वप्रथम याज्ञिक था (श. ब्रा. २.४.४; ६.२.३)। देवों को ही नहीं, वरन् असुरों को भी इसीने बनाया था (तै. ब्रा. २.२.२)।

सूत्रों में, इसे ब्रह्मा के साथ समीकृत किया गया है (आश्व. गृ. ३.४)। 'वंशब्राह्मण' में इसे ब्रह्मा का शिष्य कहा गया है, एवं इसके शिष्य का नाम मृत्यु कहा गया है (वं. ब्रा. २)। ऋग्वेद के कई सूक्तों का यह मन्त्रद्रष्टा भी है (ऋ. ९.१०१.१३–१६)।

सर्वप्रमुख देवता—उत्तरकालीन वैदिक साहित्य में, इसे सर्वप्रमुख देवता के स्थानपर प्रतिस्थापित किया गया है। उपनिषदों के दर्शनशास्त्र में इसे 'परब्रह्म' अथवा 'विश्वात्मा' कहा गया हैं। तत्वज्ञान के संबंध में जब कभी किसी प्रकार की शंका उठ खड़ी होती थी, तब देव, दैत्य, एवं मानव प्रजापति के पास आकर अपनी शंका का समाधान करते थे (ऐ. ब्रा. ५.३; छां. उ. ८.७.१; श्वेत. उ. ४.२)।

ऋग्वेद, ब्राह्मण एवं उपनिषद् ग्रन्थों में प्रजापति को प्रायः देवता के रूप में माना गया है। लेकिन, इन्हीं ग्रन्थों में कई स्थानों में इसे अन्य रूपों में भी निरूपित किया गया है।

ऋग्वेद में एक स्थानपर, प्रजापति उस 'सवितृ' की उपाधि के रूप में आता है, जिसे आकाश को धारण करनेवाला, एवं विश्व का प्रजापति कहा गया है (ऋ. ४.५३)। दूसरे एक स्थानपर इसे सोम की उपाधि के रूप में प्रस्तुत किया गया है (ऋ. ९.५)। ब्राह्मण एवं उपनिषद ग्रंथों में, प्रजापति शब्द, विभिन्न अर्थोंसे प्रयुक्त किया गया है, जिनमें से कई इस प्रकार है:-यज्ञ, बारह माह, वैश्वानर, अन्न, वायु, साम, एवं आत्मा। इससे प्रतीत होता

है कि, उस समय किसी भी वस्तु की महत्ता वर्णित करने के लिए, 'प्रजापति' उपधि का प्रयोग होता था। पंचविंश ब्राह्मण में, सभी का महत्व वर्णन करने के लिए, उन्हें प्रजापति उपाधि दी गयी है (पं. ब्रा ७.५.६)।

सृष्टि-आरंभ—वैदिक वाङ्मय में प्रजापति के जीवन सम्बन्धी कई कथायें दी गयी हैं जिनमें से निम्नलिखित प्रमुख हैः—

प्रजापति की अस्थि संधियाँ ढीली हो गयीं थीं, तब देवों ने यज्ञ कर उन्हें ठीक किया (श. ब्रा. १.६.३.३५)।

प्रजापति सर्वप्रथम अकेला था। कालान्तर में, प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा से, उसने अपने शरीर के माँस को निकालकर उसकी आहुति अग्नि में दी। अग्नि से इसके पुत्र के रूप में बिना सींगों का एक बकरा उत्पन्न हुआ (तै. सं. २.१.१)।

प्रजापति के द्वारा उत्पन्न की गयी प्रजा इसके अधिकार क अन्दर न रहकर वरुण के अधिकार में चली गयी। जब इसने उन्हें वापस बुलाना चाहा, तब वरुण ने उन्हें अपने कब्जे से छोड़ने के लिए इन्कार कर दिया। फिर प्रजापति ने एक सफ़ेद खुरवाला कृष्णवर्णीय पशु वरुण को भेंट स्वरूप प्रदान करने का आश्वासन दिया। इस पर प्रसन्न होकर, वरुण ने प्रजा के उपर का अपना अधिकार उठा लिया, और प्रजापति प्रजा का स्वामी बन बैठा (तै. सं. २.१.२)।

पृथ्वी उत्पन्न होने के बाद, देवों की प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा हुई, और उन्होंने प्रजापति के कथनानुसार तपश्चर्या कर, अग्नि के आश्रय से एक गाय उत्पन्न की। उस गाय के लिए सब देवों ने प्रयत्न कर अग्नि को संतुष्ट किया। बाद में, उस गाय से प्रत्येक देव को तीन सौ तेंतीस देव प्राप्त हुए। इस प्रकार असंख्य प्रजा उत्पन्न हुई (तै. सं. ७.१.५)।

प्राचीन काल में, प्रजापति ने यज्ञ की ऋचाओं एवं छंदों का परस्पर में वितरण किया। उस समय इसने अपना अनुष्टुप छंद 'अच्छावाकीय' नामक ऋचा को प्रदान किया। अनुष्टुम नाराज होकर प्रजापति को दोष देने लगा। फिर सोमयज्ञ कर प्रजापति ने उस यज्ञ में अनुष्टुप् छंद को अग्रस्थान दिया। तब से उस छंद का उपयोग वैदिक 'सवनों' में सर्वप्रथम होने लगा।

प्रजापति की प्रजा जब उसे त्याग कर जाने लगी, तब इसने अग्नि की सहायता से प्रजा को पुनः प्राप्त किया (ऐ. ब्रा. ३.१२)। इसने 'अग्निष्टोम' नामक यज्ञ कर, उसमें अपने आप को समर्पित कर, देवों से अपनी प्रजा पुनः प्राप्त की (पं. ब्रा. ७.२.१)।

मनुष्य होते हुए भी देवत्व प्राप्त ऋषिओं को, एकबार प्रजापति ने 'तृतीयसवन' में बुलाकर, उनके साथ सोमपान किया। इसको उचित न समझकर, अग्नि आदि देवताओं ने इसकी कटु आलोचना की (ऐ. ब्रा. ३.३०)।

सूर्यपूजाअर्घ्य—राक्षसों की उग्र तपस्या से सन्तुष्ट होकर, प्रजापति राक्षसों के पास आया, इसने उनसे वर माँगने को कहा। राक्षसों ने कहा 'हम सूर्य से लड़ना चाहते हैं'। प्रजापति ने उनकी माँग स्वीकार कर, उन्हें वर प्रदान किया। तब से प्रतिदिन सूर्योदय से सूर्यास्त तक राक्षस सूर्य से लड़ते रहते हैं। इस युद्ध में सूर्य की सहायता करने के लिये, ब्रह्मनिष्ठ लोग पूर्व की ओर भगवान् सूर्य को अर्घ्यदान देते हैं। अर्घ्य के जल का एक एक बूँद वज्र बनकर राक्षसों का प्रहार करता हैं। इससे पराजित होकर राक्षसगण अपने 'अरुणद्वीप' नामक देश को भाग जाते है (तै. आ. २.२)।

इंद्र की उत्पत्ति—प्रजापति ने देव तथा असुर निर्माण किये, परन्तु राजा उत्पन्न नहीं किया। बाद में, देवों के प्रार्थना करने पर इसने इन्द्र उत्पन्न किया। त्रिष्टुप नामक देवता ने १५ धाराओं का वज्र इन्द्र को प्रदान किया। उस वज्र से इन्द्र ने असुरों को पराजित कर, देवों के लिए स्वर्ग प्राप्त किया।

स्वर्ग को भोगभूमि समझकर सभी देवगण आये थे, पर वहाँ पर खानेपीने की कोई वस्तु न पाकर उन्होंने 'अयास्य' नामक आंगिरस गोत्र के ऋषि को, यज्ञ अनुष्ठान की कार्यप्रणाली से अवगत कराकर उसे पृथ्वी पर भेजा। भूलोक पर जाकर 'अयास्य' ने यज्ञानुष्ठान कर देवों को हविर्भाग देने की कल्पना प्रसारित की (तै. ब्रा. २.२.७)।

इन्द्र तथा वृत्र में घोर युद्ध हुआ। युद्ध में वृत्र ने तीव्र गति से अपनी श्वास को छोड़कर इन्द्र के पक्ष के सभी योद्धाओं को भयभीत कर भगा दिया, पर मरुतों ने इन्द्र का साथ न छोड़ा। मरुतों की सहायता से इन्द्र ने वृत्र का वध कर प्रजापति का मान प्राप्त करना चाहा। उसकी यह इच्छा तो पूरी न हो सकी, पर प्रजापति ने उसके इस कार्य से प्रसन्न हो कर उसे 'महेन्द्र' पदवी दी। (ऐ. ब्रा. ३.२०-२२)। प्रजापति के नेतृत्व में, देवों ने इन्द्र का राज्याभिषेक किया, जिससे उसे सभी अभीष्ट वस्तुओं की प्राप्त हुयी। इन समस्त शक्तियों को पाकर

अन्त में, उसने मृत्यु पर भी विजय प्राप्त की (ऐ. ब्रा. ८.१२; १४)।

यज्ञारम्भ—एक बार प्रजापति ने यज्ञ किया, जिसमें यह स्वयं 'होता' बना। इस समय सभी देवताओं की इच्छा थी कि, मुझे अधिष्ठाता मान कर यह यज्ञ किया जाय। ऐसी स्थिति में, प्रजापति ने 'आपो रेवती' (ऋ. १०.३०.१२) मन्त्र के द्वारा यज्ञारम्भ किया। 'आप' तथा 'रेवती' इन दो शब्दों से सब देवों का निर्देश होता है, इसलिये प्रत्येक देव को संतोष हुआ कि, यज्ञ का प्रारंभ मुझे सम्बोधित करके किया गया है (ऐ. ब्रा. २.१६)।

एक बार इसके तीनों पुत्र— देव, मनुष्य तथा असुर उपदेश ग्रहण करने की इच्छा से आये। प्रजापति ने उन तीनों को 'द' का उपदेश दिया। इस 'द' उपदेश का आशय हर एक पुत्रों के लिए भिन्न भिन्न था। देवों के लिए दमन, मनुष्यों के लिए दान, तथा असुरों के लिए दया का उपदेश देकर, इसने उन्हें अपनी मुक्ति प्राप्त करने का एकमेव साधन बताया (बृ. उ. ५.१–३)।

सृष्टि निर्माण व व्यवस्था—एक बार प्रजापति के मन में सृष्टिसृजन की इच्छा उत्पन्न हुयी। इसने अपने अन्तर्मन से एक धूम्रराशि का निर्माण किया, जिससे अग्नि, ज्योति, ज्वाला एवं प्रभा आदि उत्पन्न हुए। पश्चात्, उन सबने मिलकर एक ठोस गोले का रूप धारण किया, जिससे प्रजापति का मूत्राशय बना। इस मूत्राशय को परमेश्वर ने फोड़ा, जिससे समुद्र की उत्पत्ति हुयी। समुद्र, क्योंकि मूत्राशय से उत्पन्न हुआ है, इसी से उसका पानी खारा रहता है तथा वह पीने लायक नहीं होता।

जलमय समुद्र से ही प्रजापति ने क्रमानुसार, पृथ्वी, अंतरिक्ष तथा द्यौ उत्पन्न किये। इसके बाद, अपने शरीर से असुरों का निर्माण कर, दिवस रात्रि तथा अहोरात्रि के संधिकाल को बनाया। इस प्रकार, प्रजापति ने सारी प्रजा का निर्माण किया (तै. ब्रा. २.२.९)।

देवों को पैदा करने के उपरान्त प्रजापति ने देवों में कनिष्ठ इन्द्र को उत्पन्न कर, उससे कहा, 'मेरी आज्ञा से तुम स्वर्ग में जाकर देवो पर शासन करो।'

इन्द्र स्वर्ग गया, पर वहाँ किसी ने उसे अपना राजा न माना, क्योंकि वह सबसे आयु में छोटा, तथा शक्ति में अधिक न था। इन्द्र वापस आया, और प्रजापति से देवों के कथन को दुहरा कर उसने अपने विशेष तेज को देने की याचना की। प्रजापति ने इन्द्र से कहा 'यदि मै तुम्हें अपना तेज दे दूँगा, तो फिर मुझे कौन पूँछेगा?'। इस पर इन्द्र ने उत्तर दिया, 'तुम 'क' नाम से प्रसिद्ध होंगे। अपना तेज मुझे दे डालने के बाद भी तुम्हारा प्रजापतित्व कायम रहेगा'। इतना सुन कर प्रजापति ने अपने तेज को एक 'पदक' का रूप देकर उसे इन्द्र के मस्तक पर बाँध दिया। तब कहीं इन्द्र इस योग्य बना कि, वह देवों का अधिपति बनकर उन पर राज्य कर सके (तै. ब्रा. २.२.१०)।

कन्याविवाह—एक बार प्रजापति ने सोम एवं तीन वेद नामक पुत्र, तथा सीतासावित्री नामक कन्या उत्पन्न की। उन में से तीन वेदों को सोम ने अपनी मुठ्ठी में बन्द कर रखा था।

पश्चात्, सीतासावित्री के मन में सोम से विवाह करने की इच्छा उत्पन्न हुयी। पर सोम सीतासावित्री को न चाह कर, प्रजापति की श्रद्धा नामक अन्य कन्या से विवाह करना चाहता था। प्रजापति की सहानुभूति सीतासावित्री के प्रति अधिक थी, और यह चाहता था कि, सोम का विवाह सीतासावित्री से ही हो। इसी कारण, सलाह लेने के लिए आयी हुयी सीतासावित्री को, इसने एक वशीकरण मंत्र से अवगत कराया। 'स्थागर' नामक एक सुगन्धमय वनस्पति को घिसकर, इसने उसके मस्तक में चन्दन की भाँति टीका लगाकर, उसे आशीष देकर विदा किया।

तब सीतासावित्री सोम के यहाँ गयी। वशीकरण के प्रभाव से, सोम उस पर मोहित हो कर प्रेमभरा व्यवहार करने लगा, और शादी के लिए तैयार हो गया। किन्तु, शादी के पूर्व सीतासावित्री ने सोम की प्रेमपरीक्षा लेने के लिए उसके सामने शर्त रखी, 'वह उसके सिवा किसी अन्य नारी से भोग न करेगा, तथा मुठ्ठी में छिपी हुयी वस्तु का उसे स्पष्ट ज्ञान करायेगा'। सोम को ये शर्तें मंजूर हुयीं और सीतासावित्री का विवाह सोम के साथ सम्पन्न हुआ। इसप्रकार वशीकरण के प्रभाव से दोनों सुखपूर्वक रहने लगे। तैत्तिरीय ब्राह्मण में, प्रजापति का यह वशीकरणप्रयोग विस्तार के साथ बताकर कहा गया है कि, जो इस वशीकरण का प्रयोग करेगा उसे इच्छित वस्तु प्राप्त होगी (तै. ब्रा. २.३.१०)।

ऐतरेय ब्राह्मण में, प्रजापति की कन्या का नाम 'सूर्यासावित्री' बताया गया है (ऐ. ब्रा. ४.७)। अपनी इस कन्या का विवाह प्रजापति ने सोम के साथ निश्चित किया। 'सूर्यासावित्री' के विवाहोत्सव में,

प्रजापति ने सारे देवों को निमंत्रित किया। उस समय प्रजापति ने सहस्र ऋचाओंवाला एक 'आश्विन स्तोत्र' का निर्माण कर, उसे उन देवों के सम्मुख प्रस्तुत किया। उस स्तोत्र को सुन कर सभी देवताओं के मन में उसके प्राति की अभिलाषा उत्पन्न हुयी। ऐसी स्थिति में, देवों के बीच उत्पन्न हुयी कलह को मिटाने के लिए प्रजापति ने एक प्रतियोगिता रक्खी, जिसके अनुसार, यह तय किया गया कि, जो देवता गाहर्पत्य तक दौड़ में प्रथम आयेगा उसे ही यह स्तोत्र प्रदान किया जायेगा। इस दौड़ में अश्विनीकुमार प्रथम आये, और उन्हे स्तोत्र की प्राप्त हुयी (ऐ. ब्रा ४. ७)।

दुहितृगमन—ऐतरेय ब्राह्मण एवं मैत्रायणी संहिता में, प्रजापति के अपनी कन्या 'उषस्' पर ही आसक्त हो जाने की कथा प्राप्त है (ऐ. ब्रा. ३. ३३; मै. सं. ४. २)।

एक बार, अपनी ही कन्या 'द्यौ' तथा 'उषस्' को देखकर, प्रजापति में काम-वासना उत्पन्न हुयी, एवं यह उनके पीछे दौड़ने लगा। इससे डरकर इसकी कन्याओं ने रोहित नामक मृगी का रूप धारण कर लिया। तब इसने ऋष्य नामक मृग का रूप धारण कर, उनसे मैथुन किया। सारे देवताओं ने 'दुहितागमन' का यह निन्दनीय कर्म देखकर, इस पापी पुरुष को नष्ट करने की ठान ली। फिर, हर एक देव ने अपने रौद्रअंश को एकत्र कर 'भूतवान' नामक एक भयंकर पुरुष का निर्माण किया, जिसने प्रजापति का पापी देह नष्ट किया। प्रजापति का मृगरूपी मृतदेह, मृगनक्षत्र के रूप में आज भी आकाश में दिखाई पड़ता है। जिस बाण से प्रजापति का हनन किया गया था, उस बाण की नोंक, मध्य तथा फाल आज भी हमें आकाश में दिखाई पड़ती हैं। रोहिणी नक्षत्र ही प्रजापति की कन्या है।

उस समय जो प्रजापति का वीर्य गिरा उससे निम्नलिखित प्राणी इस क्रम से उत्पन्न हुएः— अग्नि, वायु, आदित्य, तीन वेद, भूः, भुवः, स्वः, अ उ म (ऐ. ब्रा. ३. ३३; ५. २)।

कामी प्रजापति ने अपनी 'द्यौ' एवं 'उषस्' नामक कन्याओं से भोग करते समय, जो वीर्य असावधानी में नीचे भूमि पर स्खलित किया था, कालान्तर में वही वीर्य चारों ओर बहने लगा। मरुतों ने उसे एकत्र कर उसका पिंड बनाया। उस पिंड से आदित्य एवं वारुणि भृगुओं की उत्पत्ति हुयी। उन दोनों के निर्माण के पश्चात्, शेष बचे बचे हुए वीर्यकण दग्ध होकर अंगार के समान फूलने लगे। उन अंगारों से अंगिरस निर्माण हुए। जो अंगार जलकर कोयले के समान काले हो गये, उनसे कृष्णवर्णीय पशुओं की उत्पत्ति हुयी। उन अंगारों के सहयोग से पृथ्वी का जो भाग तप्त होकर लाल हो गया, उनसे रक्तवर्णीय पशुओं का निर्माण हुआ (ऐ. ब्रा. ३. ३४)।

शतपथ ब्राह्मण में भी प्रजापति द्वारा प्रजोत्पत्ति की यही कथा इसी प्रकार दी गयी है। किन्तु इस ग्रन्थ में प्रजापति के हनन के लिए देवों द्वारा उत्पन्न किये भयंकर पुरुष का नाम 'भूतवान' की जगह 'रुद्र' दिया गया है, एवं इसके स्खलित वीर्य से उत्पन्न पुत्र का नाम 'अग्नि मारुत उक्थ' दिया गया है (श. ब्रा. १. ७. ४)।

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार, प्रजापति का वध करने के पश्चात्, देवों का क्रोध पुनः शान्त हुआ, और उन्होंने फिर से इसका अभिषेक किया, एवं इसे 'यज्ञ प्रजापति' नाम प्रदान किया (श. ब्रा. १. ७. ४)।

प्रजा निर्मित करने के उपरांत, प्रजापति को आपसी झगड़ों को निपटा कर के, वैधानिक दण्डादि भी देना पड़ता था। तत्त्वज्ञान के संबंध में जब कभी शंकायें उठती थीं, तो उनके निवारणार्थ देव, दैत्य अथवा मनुष्यलोग प्रजापति के पास जाया करते थे (छां. उ. ८. ७. १. ३; ऐ. ब्रा. ५. ३; श्वेत. ४. २)।

२. ब्रह्मदेवों के मानस पुत्रों के लिये प्रयुक्त सामूहिक नाम।

वायुपुराण के अनुसार, ब्रह्मा ने सृष्टि की उत्पत्ति की, जिसको बढ़ाने के लिए, अपने शरीर के विभिन्न अवयवों से उसने अनेक मानसपुत्र निर्माण किये। मानसपुत्रों के निर्माण के पीछे उनका हेतु सृष्टि विस्तार ही था। इस कारण ब्रह्माने अपने मानसपुत्रों को प्रजा उत्पन्न करने की आज्ञा दी। इसी कारण, ब्रह्मा के मानस पुत्रों को प्रजापति सामूहिक नाम प्राप्त हुआ।

पुराणों में 'प्रजापति' शब्द की व्याख्या 'संतति उत्पन्न करनेवाला' ऐसी की गयी है, जैसा कि वायुपुराण में लिखा है—

लोकस्य संतानकरास्तैरिमा वर्धिताः प्रजाः।
प्रजापतय इत्येवं पठ्यन्ते ब्रह्मणः सुताः॥

(वायु. ६५.४८)

मत्स्य पुराण में भी यही विचार प्रकट किये गये हैं, जो निम्नलिखित श्लोक में द्रष्टव्य है—

'विश्वे प्रजानां पतयो येभ्यो लोका विनिसृताः'
(मत्स्य. १७१.२५)।

प्रजापतियों की संख्या—प्रजापतियों की संख्या के बारे में कहीं भी एकवाक्यता नहीं है। पुराणों में प्रजापतियों की संख्याओं के लिये, सात, तेरह, चौदह, इक्कीस आदि भिन्न भिन्न संख्यायें प्राप्त हैं। बहुत सारे पुराणों में निम्नलिखित व्यक्तियों का निर्देश प्रजापति के नाम से किया गया है—मरीचि, अत्रि, अंगिरस, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष, वसिष्ठ, भृगु, नारद। वायु, ब्रह्मांड, गरुड, मत्स्य एवं महाभारत में 'अन्य', 'बहवः' ऐसा निर्देश कर, और भी कई व्यक्तियों की नामावली प्रजापति के नाम से दी गयी है। जिस व्यक्ति के संतति की संख्या अधिक हो, उसे प्रजापति की संज्ञा पुराणों में प्रदान की गयी दिखती है। पुराणों में बहुत सारी जगहों पर प्रजापति को समस्त सृष्टि का सृजन करनेवाले ब्रह्मा से समीकृत किया गया है। कई जगह इसे व्यास भी कहा गया है (व्यास देखिये)।

प्रजापतियों की नामावलि—विभिन्न पुराणों में प्रजापतियों की नामावलि निम्नप्रकार से दी गयी है—

(१) **वायु एवं ब्रह्मांड पुराण**—कर्दम, कश्यप, शेष, विक्रांत, सुश्रवस्, बहुपुत्र, कुमार, विवस्वत्, अरिष्टनेमि, बहुल, कुशोच्चय, वालखिल्य, संभूत, परमर्षय, मनोजव, सर्वगत, सर्वभोग (वायु. ६५.४८; ब्रह्मांड. २.९.२१; ३.१)।

(२) **गरुड पुराण**—धर्म, रुद्र, मनु, सनक, सनातन, सनत्कुमार, रुचि, श्रद्धा, पितर, बर्हिषद, अग्निष्वात्त, कव्यादान, दीप्यान, आज्यपान (गरुड. १.५)।

(३) **मत्स्य पुराण**—गौतम, हस्तींद्र, सुकृत, मूर्ति, अप्, ज्योति, त्र्यय, स्मय। मत्स्य में निर्दिष्ट ये सारे प्रजापति स्वायंभुव मन्वन्तर में पैदा हुए थे (मत्स्य. ९. ९-१०; १७१.२७)।

(४) **महाभारत**—रुद्र, भृगु, धर्म, तप, यम, मरीचि, अंगिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह क्रतु, वसिष्ठ, चन्द्रमा, क्रोध, विक्रीत, बृहस्पति, स्थाणु, मनु, क, परमेष्ठिन्, दक्ष, सप्त पुत्र, कश्यप, कर्दम, प्रल्हाद, सनातन, प्राचीनबर्हि, दक्ष प्राचेतस, सोम, अर्यमन्, शशबिंदुपुत्र, गौतम (म. स. ११.१४; शां. २०१; भा. ३.१२.२१)।

महाभारत में मरीचि ऋषि के पुत्र कश्यप को प्रजापति कहा गया है, एवं उसे मनुष्य, देव एवं राक्षसों का आदि पुरुष कहा गया है। महाभारत के अनुसार, मरीचि ऋषि के पुत्र का नाम प्रजापति अरिष्टनेमि अथवा कश्यप था, जिसका विवाह दक्ष की कन्याओं से हुआ था। उसी कश्यप से सारी सृष्टि का निर्माण हुआ। यादवों के चक्रवर्ति राजा शशबिन्दु को भी महाभारत में एक जगह प्रजापति कहा गया है (म. शां. २००. ११-१३)।

ब्रह्मांड के अनुसार, हर एक कल्प में, नयी नयी सृष्टि का निर्माण करना प्रजापति का कार्य रहा है। स्वायंभुव मन्वन्तर के प्रजापति को कोई संतान न होती थी। फिर ब्रह्मा ने स्वयं कन्या को उत्पन्न कर उसे दक्ष को दिया। पश्चात्, दक्ष ने अनेक कन्यायें उत्पन्न कर उन्हें उस मन्वन्तर के प्रजापतियों को प्रदान किया। किन्तु दक्षयज्ञ के संहार में शंकर ने सारे प्रजापतियों को दग्ध कर दिया (ब्रह्मांड. २.९.३१-६७)।

पद्म के अनुसार, रोहिणी नक्षत्र की देवता प्रजापति माना गया है। प्रजापति को जब शनि की पीड़ा होती है, तब सृष्टि का संहार (लोकक्षय) होता है (पद्म. उ. ३३)।

३. एक धर्मशास्त्रकार। बौधायन के धर्मसूत्र में, प्रजापति के धर्मशास्त्रविषयक मत ग्राह्य माने गये हैं (बौ. ध. २. ४. १५; २. १०. ७१)। वसिष्ठ ने भी अपने धर्मशास्त्र में इसके मतों का अनेक बार निर्देश किया है (व. ध. ३. ४७; १४.१६.१९; २४-२५; ३०-३२)। बौधायन तथा वसिष्ठ धर्मसूत्रों में निर्दिशित प्रजापति के सारे श्लोक मनुस्मृति में पुनः प्राप्त हैं। इसी के आधार पर कहा जा सकता है कि, बौधायन तथा वसिष्ठ ने प्रजापति को मनु का ही नामांतर माना है।

आनंदाश्रम संग्रह में (९०-९८), प्रजापति, की श्राद्धविषयक एक स्मृति दी गयी है, जिसमें एक सौ अठ्ठान्नवे श्लोक हैं। ये श्लोक अनुष्टुप, इन्द्रवज्रा, उपजाति, वसंततिलका तथा स्रग्धरा वृत्तों में हैं। इस स्मृति में कल्पशास्त्र, स्मृति, धर्मशास्त्र तथा पुराणों पर विचार किया गया है।

'कन्या' एवं 'वृश्चिक' राशियों के बारे में प्रजापति स्मृति में एक श्लोक प्राप्त है, जिसे कार्ष्णाजिनि ने उद्धृत किया है। अशौच एवं प्रायश्चित के बारे में प्रजापति के श्लोक मिताक्षरा में दिये गये हैं (याज्ञ. ३. २५. २६०)। पदार्थशुद्धि, श्राद्ध, गवाह, 'दिव्य' तथा अशौच के सम्बन्ध में इसके श्लोक 'अपरार्क' ने उद्धृत किये हैं। किन्तु वे श्लोक मुद्रित प्रजापतिस्मृति में अप्राप्य हैं। 'परिव्राजक' के सम्बन्ध में इसका एक गद्य उद्धरण भी 'अपरार्क' मे दिया गया है (अपरार्क. ९५२)।

प्रजापति के अनुसार, श्राद्धविधि के अवसर पर अपनी माता को पिण्डदान देते समय अपने मामा के गोत्र का निर्देश करना चाहिये। इसके इस मत का उल्लेख लौगाक्षि एवं अपरार्क ने किया है (अपरार्क. ५४२)।

प्रजापति के लोकव्यवहार सम्बन्धी विचारधारा का उल्लेख अपरार्क, स्मृतिचन्द्रिका, पराशर माधवीय तथा अन्य ग्रन्थों में किया गया है। इसके अनुसार, गवाहों के 'कृत' अथवा 'अकृत' ऐसे दो प्रमुख प्रकार होते हैं। इसका यह मत नारदस्मृति से लिया हुआ प्रतीत होता है (ऋणादान श्लो. १४९; अपरार्क. ६६६; स्मृतिचं. व्य. ८०)। इसने प्रतिवादी के ग्राह्य उत्तरों का विवेचन कर, उनके चार प्रकार बताये हैं (स्मृतिचं. व्य. ९८; परा. मा. ३. ६९-७३)। 'दिव्य' के सम्बन्ध में लिखे गये इसके श्लोक 'पराशरमाधवीय' में दिये गये हैं।

प्रजापति के अनुसार, निःसंतान विधवा का अपने पति की सम्पूर्ण संपत्ति पर अधिकार है, एवं उसके मासिक तथा वार्षिक श्राद्ध करने का अधिकार भी उसे ही प्राप्त है। उक्त श्राद्ध के समय विधवा को अपने पति के सगे संबंधियों का सन्मान करना चाहिये ऐसा इसका अभिमत था (परा. मा. ३.५३६)।

४. महर्षि कश्यप का नामांतर। इसने वालखिल्यों से देवराज इन्द्र पर अनुग्रह करने के लिए प्रार्थना की थी (म. आ. २७.१६-२१)।

५. रथंतर कल्प का एक राजा। इसकी पत्नी का नाम चन्द्ररूपा था, जिसने 'त्रिरात्र तुलसीव्रत' नामक उपासना की थी (पद्म. उ. २५)।

प्रजापति परमेष्ठिन्—एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. १०.१२९)।

प्रजापति वाच्य—एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. ३. ३८; ५४-५६; ९.८४)।

प्रजापति वैश्वामित्र—एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. ३. ३८; ५४-५६)।

प्रजावत् प्राजापत्य—एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. १०.१८३; ऐ. ब्रा. १.२१)। इसकी माता का नाम सुपर्णा था, जिससे इसे सौपर्णेय नाम प्राप्त हुआ था (तै. आ. १०.६३)। ऐसा माना जाता है कि, प्रवर्ग्य नामक अनुष्ठान में यदि कोई व्यक्ति इसके द्वारा रचित सूक्त का पठन करे, तो उसे अवश्य ही पुत्र की प्राप्ति होती है।

प्रज्ञ—अमिताभ देवों में से एक।

प्रज्योति—अमिताभ देवों में से एक।

प्रणित—मरीचिगर्भ देवों में से एक।

प्रणिधि—बृहद्रथ वासिष्ठ के अंश से उत्पन्न पांचजन्य नामक अग्नि का पुत्र (म. व. २१०.४)।

२. एक धनिक वैश्य, जिसकी पत्नी का नाम पद्मावती था (पद्मावति २. देखिये)।

प्रतंस—(सो.) एक राजा, जो भविष्य के अनुसार, अवतंस राजा का पुत्र था।

प्रतपन—एक रावणपक्षीय राक्षस, जिसका नल द्वारा वध हुआ था (वा. रा. यु. ४३.२३)।

प्रतर्दन—(सो. काश्य.) काशी जनपद का सुविख्यात राजा, एवं एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. ९.९६; १०.१७९. २)। यह ययाति राजा की कन्या माधवी का पुत्र था।

वैदिक साहित्य में इसे काशिराज दैवोदासि कहा गया है। इसके पुत्र का नाम भरद्वाज था (क. सं २१.१०)। भरद्वाज ऋषि ने क्षत्रश्री प्रातर्दनि राजा की दानस्तुति की थी, जिससे पता चलता है कि प्रतर्दन राजा को क्षत्रश्री नामक एक और पुत्र था (ऋ. ६.२६.८)।

कौषीतकि ब्राह्मण के अनुसार, नैमिषारण्य में ऋषियों द्वारा किये यज्ञ में यह उपस्थित हुआ, और ऋषियों इसने से प्रश्न किया, 'यज्ञ की, त्रुटियों का परिमार्जन किस प्रकार किया जा सकता है।' उस यज्ञ में उपस्थित अलीकयु नामक ऋषि इसके इस प्रश्न का उत्तर न दे सका था (श. ब्रा. २.६.५)।

कौषीतकि उपनिषद् के अनुसार, युद्ध में मृत्यु हो जाने पर यह इन्द्रलोक चला गया था (कौ. उ. ३.१)। वहाँ इसने बड़ी चतुरता के साथ इन्द्र को अपनी बातों में फँसा कर, उससे ब्रह्मविद्या का ज्ञान एवं इन्द्रलोक प्राप्त किया (कौ. उ. ३.३.१)।

वैदिक वाङ्मय में, इसे दैवोदासि उपाधि दी गयी है, जो इसका वैदिक राजा सुदास के बीच सम्बन्ध स्थापित कराती है। इसका भरद्वाज नामक एक पुरोहित भी था, जो इसके और सुदास राजा के बीच का सम्बन्ध पुष्ट करता है।

भाषा-विज्ञान की दृष्टि से, इसका प्रतर्दन नाम 'तृत्सु' एवं 'प्रतृद्' लोगों के नामों से सम्बन्ध रखता है, क्योंकि उक्त तीनों शब्दों में 'तर्द' धातु है।

पौराणिक साहित्य में इसे सर्वत्र काशीनरेश कहा गया है। किन्तु वैदिक ग्रन्थों में इस प्रकार का निर्देश अप्राप्य है।

महाभारत में इसे ययाति की कन्या माधवी से उत्पन्न पुत्र कहा गया है (म. स. ८; व. परि. १. क्र. २१. ६; पंक्ति ९७; उ. ११९. १५)। ययाति से जोड़ा गया इसका यह सम्बन्ध कालदृष्टि से असंगत है। भीमरथ प्रतर्दन ने शूर-वीरता के कारण ही द्युमत्, शत्रुजित्, कुवलयाक्ष, ऋतध्वज, वत्स आदि नाम प्राप्त किये थे (विष्णु. ४.५-७)।

भीमरथ को काशिराज दिवोदास नामक पुत्र भारद्वाज के प्रसाद से हुआ था। दिवोदास के पितामह हर्यश्व को हैहय राजाओं ने अत्यधिक त्रस्त किया, तथा उसका राज्य छीन लिया। हर्यश्व का पुत्र सुदेव तथा पौत्र दिवोदास दोनों हैहयों को पराजित न कर सके। इसलिये दिवोदास ने हैहयों का पराभव करनेवाला प्रतर्दन नामक पुत्र भारद्वाज से माँगा। यह जन्म लेते ही तेरह वर्ष का था, एवं सब विद्याओं में पारंगत था (म. अनु. ३०.३०)।

प्रतर्दन का पराक्रम—माहिष्मती के हैहयवंश में पैदा हुये चक्रवर्ती कार्तवीर्य अर्जुन ने नर्मदा से लेकर हिमालयप्रदेश तक अपना साम्राज्य स्थापित किया था। काशी के दिवोदास आदि राजा कार्तवीर्य से परास्त होकर अपने प्रदेश से भाग गये। काशी राज्य जंगल में बदल गया, और उसे नरभक्षक राक्षसों ने अपना अड्डा बना लिया।

पिता के दुःख का कारण ज्ञात होते ही, प्रतर्दन ने हैहयवंशीय तालजंघ, वीतहव्य तथा उसके पुत्रों को, पराक्रम के बल पर युद्ध में परास्त कर, काशीप्रान्त को पुनः प्राप्त किया। क्षेमकादि राक्षसों का वध कर, एक बार फिर से काशीप्रदेश को बसा कर इसने उसे सुगठित राज्य का रूप दिया।

यह शूरवीर होने के साथ साथ परमदयालु एवं ब्राह्मणभक्त भी था। इसके द्वारा अपने सब पुत्रों को मरते देखकर वीतहव्य घबरा कर भार्गव के आश्रय में गया। भार्गव ने उसको उबारने के लिये प्रतर्दन से कहा, 'यह ब्राह्मण है, अतएव इसका वध न होना चाहिये'। पश्चात् प्रतर्दन ने उसे छोड़ दिया।

एक बार इसने अपना पुत्र ब्राह्मण को दान दे दिया था, यही नहीं इसने ब्राह्मण को अपनी आँखें (म. शां. २४०. २०), तथा शरीर (म. अनु. १३७-५) तक ब्राह्मण को दान स्वरूप दी थीं। इसका पितामह ययाति स्वर्ग से नीचे गिरा, तब इसने अपना पुण्य देकर उसे पुनः स्वर्ग भेजा था (म. आ. ८७. १४-१५)।

एक बार यह नारद के साथ रथ में बैठकर जा रहा था, तब एक ब्राह्मण ने इसके रथ के अश्व माँग लिये। यह स्वयं अपना रथ खींचकर ले जाने लगा। बाद में कुछ ब्राह्मणादि और आये और उन्होंने भी अश्व माँगे। परन्तु पास में अश्व न होने के कारण यह ब्राह्मणों की माँग पूरी न कर सका, और त्रस्त होकर इसने उन्हें कुछ अपशब्द भी कहे। अतः भाइयों के साथ स्वर्ग जाते जाते आधे मार्ग से यह नीचे गिर गया (म. व. परि. १ क्र. २१. ६. पंक्ति. ११०–१२५)।

इसे अलर्क के सिवाय अन्य पुत्र भी थे, पर अलर्क ही इसके बाद सिंहासन का अधिकारी हुआ (भा. ९. १७. ६)।

प्रतर्दन का तत्त्वज्ञान—कौषीतकी उपनिषद् में इंद्र-प्रतर्दन संवाद से प्रतर्दन के तत्त्वज्ञान का परिचय प्राप्त है। दिवोदास का पुत्र प्रतर्दन तत्त्वज्ञान की शिक्षा प्राप्त करने के लिए इन्द्र के पास गया। इन्द्र ने इसे बताया– 'ज्ञान से परम कल्याण प्राप्त होता हैं। ज्ञाता सर्व दोषों से और पापों से मुक्त होता है। प्राण ही आत्मा है। संसार का मूल तत्त्व प्राण है। प्राण से ही सब दुनिया चलती है। हस्तपादनेत्रादि विरहितों के सारे व्यवहारों को देखने से पता चलता है कि, संसार में प्राण ही मुख्य तत्त्व है।'

उपनिर्दिष्ट इन्द्रप्रतर्दन संवाद में इन्द्र काल्पनिक है। प्रस्तुत संवाद में इन्द्र द्वारा प्रतिपादित समस्त तत्वज्ञान प्रतर्दन द्वारा ही विरचित है। इस संवाद से प्रतर्दन की प्रत्यक्ष प्रमाणवादिता स्पष्ट है।

महाभारत एवं पुराणों में निर्दिष्ट प्रतर्दन दो व्यक्ति न होकर, एक ही व्यक्ति का बोध कराते हैं। जिस दिवोदास राजा के वंश में यह पैदा हुआ, उसकी वंशावलि महाभारत तथा पुराणों में कुछ विभिन्न प्रकार से दी गयी है। इसीलिए इस प्रकार का भ्रम हो जाता है। पर वास्तव में महाभारत तथा पुराणों के दिवोदास दो अलग अलग व्यक्ति हैं। उनमें से महाभारत में निर्दिष्ट दिवोदास का वंशज प्रतर्दन था।

२. उत्तम मन्वन्तर का एक देवगण, जिसमें निम्नलिखित देव अन्तर्निहित हैं:--अवध्य, अवरति, ऋतु, केतुमान्, धिष्ण्य, धृतधर्मन्, यशस्विन्, रथोर्मि, वसु, वित्त, विभावसु, सुधर्मन् (ब्रह्मांड. २.३६. ३०–३१)।

३. शिव देवों में से एक।

प्रताप--सौवीर देश का एक राजकुमार, जो जयद्रथ के रथ के पीछे ध्वजा लेकर चलता था। सम्भवतः यह जयद्रथ का भाई रहा होगा (म. व. २४९.१०)। अर्जुन ने इसका वध किया था (म. व. २५५.१२१४*)। इसके नाम के लिये 'पराकु' पाठभेद प्राप्त है।

प्रतापाग्र्य—एक योद्धा, जो रामचन्द्र के अश्वमेध यज्ञ के समय शत्रुघ्न के साथ अश्वरक्षणार्थ गया था (पद्म. पा. ११.२२)। दमन नामक राक्षस से इसका युद्ध हुआ था, जिसमें यह मूर्च्छित हुआ था (पद्म. पा. २३)।

प्रतापिन्—एक राजकुमार, जो कुण्डलपुर के सुरथ राजा के दस पुत्रों में से एक था (पद्म. पा. ४९)।

प्रति—(सो. क्षत्र.) प्रतिक्षत्र राजा का नामांतर (प्रतिक्षत्र २. देखिये)। भारत मे इसे कुश राजा का पुत्र कहा गया है।

प्रतिक्षत्र—(सो. क्रोष्टु.) एक क्रोष्टुवंशीय राजा, जो विष्णु एवं मत्स्य के अनुसार शमीक राजा का पुत्र था।

२. (सो. क्षत्र.) एक राजा, जो विष्णु के अनुसार, क्षत्रवृद्ध राजा का पुत्र था। वायु में इसका नाम 'प्रतिपक्ष' एवं भागवत में 'प्रति' दिया गया है। यह किस देश में राज्य करता था, कहना कठिन है। हरिवंश में इसे पुरूरवस्वंशीय अनेनस् राजा का पुत्र कहा गया है, एवं इसका वंश भी वहाँ दिया गया है (ह. वं. १.२९; अनेनस् देखिये)।

इसके वंश की जानकारी अन्य पुराणों में भी दी गयी है (भा. ९.१७.१६-१८; ब्रह्म. ११.२७.३१; वायु. ९७. ७-११।

प्रतिक्षत्र आत्रेय—एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. ५.४. ६)।

प्रतिक्षिप्त—(सो. क्रोष्टु.) क्रोष्टुवंशीय प्रतिक्षत्र राजा का नामांतर (प्रतिक्षत्र २. देखिये)।

प्रतिक्षेत्र—(सो. क्रोष्टु.) एक क्रोष्टुवंशीय राजा, जो शोणाश्व राजा का पुत्र था। इसके पुत्र का नाम भोज था (पद्म. सृ. १३)।

प्रतित्वक—(सू. निमि.) एक राजा, जो वायु के अनुसार, मरु राजा का पुत्र था। इसे 'प्रतिबंधक', 'प्रतीपक', 'प्रतींधक' एवं 'प्रदीपक' नामांतर भी प्राप्त है।

प्रतिथि देवतरथ—एक आचार्य, जो देवतरस् श्यावसायन ऋषि का शिष्य था। इसके शिष्य का नाम निकोथन था (वं. ब्रा. २)।

प्रतिपक्ष—(सो. क्षत्र.) प्रतिक्षत्र राजा का नामांतर। वायु में इसे धर्मवृद्ध राजा का पुत्र कहा गया है (प्रतिक्षत्र २. देखिये)।

प्रतिप्रभ आत्रेय—एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. ५.४९)।

प्रतिबंधक—(सू. निमि.) प्रतित्वक राजा का नामांतर (प्रतित्वक देखिये)। विष्णु में इसे मरु राजा का पुत्र कहा गया है।

प्रतिबाहु—(सो. वृष्णि.) एक यादव राजा, जो भागवत के अनुसार, श्वफल्क राजा का पुत्र था। इसकी माता का नाम नंदिनी है। इसे 'प्रतिवाह' नामांतर भी प्राप्त था।

२. एक राजा, जो कृष्ण का प्रपौत्र, एवं वज्र राजा का पुत्र था। इसके पुत्र का नाम सुबाहु था।

प्रतिभानु—श्रीकृष्ण एवं सत्यभामा के पुत्रों में से एक।

प्रतिभानु आत्रेय--एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. ५. ४८)।

प्रतिमेधस्—सुमेधस् देवों में से एक।

प्रतिरथ--(सो. पूरु.) एक पूरुवंशीय राजा, जो मतिनार राजा का पुत्र था। इसके पुत्र का नाम कण्व (अग्नि. २७७. ५; गरुड. १४०. ४)।

प्रतिरथ आत्रेय--एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. ५. ४७)।

प्रतिरूप—एक दैत्य, जो एक समय समस्त पृथ्वी का शासक था। किंतु अंत में कालवश हो कर, इसे अपना समस्त राज्य छोडना पड़ा (म. शां २२०. ५२-५५)।

प्रतिरूपा-- स्वायंभुव मन्वंतर के अग्नीध्र राजा की स्नुषा, एवं अग्नीध्रपुत्र किंपुरुष की पत्नी। यह मेरु की कन्या थी (भा. ५. २. २३)।

प्रतिवाह--(सो. वृष्णि.) प्रतिबाहु नामक यादव राजा का नामांतर (प्रतिबाहु १. देखिये)।

प्रतिविंध्य—(सो. कुरु.) युधिष्ठिर राजा का द्रौपदी से उत्पन्न पुत्र (म. आ. ५७. १०२; ९०. ८२; भा. ९.२२.२९)। जन्म के समय यह विन्ध्य पर्वत के सदृश अचल दिखाई पड़ा, अतएव इसे 'प्रतिविन्ध्य' नाम प्रदान किया गया (म. आ. २१३. ७२)। महाभारत में इसे 'यौधिष्ठिर' एवं 'यौधिष्ठिरि' कहा गया है।

भारतीय युद्ध में इसके अश्व शुभ्रवर्ण के कहे गये हैं, जिनके कंठ नीले थे। इसका चित्र राजा के साथ युद्ध हुआ था, जिसमें इसने उसका वध किया (म. क.

१०.३१)। अलम्बुश एवं दुःशासन के साथ भी इसका युद्ध हुआ था, किन्तु उन दोनों युद्ध में यह पराजित हुआ (म. भी. ९६.३७-४९; द्रो.१४३-३१-४२)।

अश्वत्थामन् ने रात्रि के समय सोते हुए पाण्डवों के कुटुम्बियों का संहार किया था, जिसमें यह भी मारा गया (म. द्रो. २२. २०, सौ. ८. ५०)। इसका मृत्युदिन मार्गशीर्ष अमावस्या माना जाता है (भारत-सावित्री)।

२. शाकल देश का एक सुविख्यात राजा, जो एकचक्र नामक दैत्य के अंश से उत्पन्न हुआ था (म. आ. ६१.२२)।

युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के समय अर्जुन ने इसे पराजित किया था (म. स. २३. १५)। भारतीय युद्ध में, यह पाण्डवों के पक्षमें शामिल था (म. उ. ४. १३)।

प्रतिवेश्य-- एक आचार्य, जो बृहद्दिव का शिष्य था (सां. आ. १५. १)। इसके शिष्य का नाम प्रातिवेश्य था।

प्रतिव्यूह-- (सू. इ. भविष्य.) एक राजा, जो वायु के अनुसार वत्सव्यूह राजा का पुत्र था। इसे 'प्रतिव्योम' नामांतर भी प्राप्त है।

प्रतिव्योमन्--(सू. इ. भविष्य.) एक राजा, जो भागवत के अनुसार वत्सवृद्ध का, विष्णु के अनुसार वत्स व्यूह का और मत्स्य के अनुसार वत्सद्रोह का पुत्र था। इसे प्रतिव्यूह नामांतर भी प्राप्त है।

प्रतिश्रवस्--प्रतीप नामक एक कुरुवंशीय राजा का नामांतर (प्रतीप १. देखिये)।

प्रतिश्रुत--वसुदेव का शांतिदेवा से उत्पन्न पुत्र (भा. ९. २४. ५०)।

प्रतिष्ठा--स्कंद की अनुचरी मातृका (म. श. ४५. २८)।

प्रतिहर्तृ--(स्वा. प्रिय.) एक यज्ञकर्मप्रवीण राजा, जो प्रतीह राजा के तीन पुत्रों में से ज्येष्ठ था। इसकी माता का नाम सुवर्चला था। इसकी स्त्री का नाम स्तुति था, जिससे इसे अज और भूमन् नामक दो पुत्र थे (भा. ५. १५. ५)। विष्णु में इसे नाभिवंशीय प्रतिहार राजा का पुत्र कहा गया है।

२. मरुद्गणो के छठवें गण में से एक।

प्रतिहार--(स्वा. नाभि.) एक नाभिवंशीय राजा, जो विष्णु के अनुसार परमेष्ठिन् राजा का पुत्र था।

प्रतीक--(सू. नृग.) एक राजा, जो वसु राजा का पुत्र था। इसके पुत्र का नाम ओघवत् था (भा. ९.२. १८)।

प्रतीकाश्व--(सू. इ. भविष्य.) एक राजा, जो भागवत के अनुसार भानुमत् राजा का पुत्र था। इसे 'प्रतीकाश्व' और 'प्रतीपाश्व' नामांतर प्राप्त थे।

प्रतीच्या--महर्षि पुलस्त्य की पतिव्रता पत्नी (म. उ. ११५.११*)। प्रतीच्या के स्थान पर कहीं कहीं संध्या पाठभेद भी प्राप्त है।

प्रतीत--स्वारोचिष मनु के पुत्र प्रथित का नामांतर।

२. एक विश्वदेव (म. अनु. ९१.३२)।

प्रतीताश्व--(सू. इ. भविष्य.) एक राजा, जो वायु के अनुसार भानुरथ का पुत्र था। इसे 'प्रतीकाश्व' नामांतर प्राप्त है (प्रतीकाश्व देखिये)।

प्रतीदर्श श्वैक्न--एक वैदिक राजा, जो पांचालदेश के राजा सुप्लन् सहदेव का समकालीन था। यह 'श्विन्कों' का राजा था, जिस कारण इसे 'श्वैक्न' उपाधि प्राप्त हुयी। शतपथ ब्राह्मण में, इसे प्रतीदर्श ऐभावत कहा गया है, जिससे यह किसी इभावत् का वंशज प्रतीत होता है (श. ब्रा. १२. ८. २. ३)।

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार, यह एक बार राजगद्दी से पदच्युत किया गया था। किन्तु दाक्षायणयज्ञ अथवा वसिष्ठयज्ञ करने के पश्चात्, इसे पुनः राजगद्दी प्राप्त हुयी। आगे चलकर यह पुनः लोकप्रिय राजा हुआ (श. ब्रा. २. ४. ४. ३-४)।

प्रतीन्धक--निमिवंशीय प्रतित्वक राजा का नामांतर (प्रतित्वक देखिये)।

प्रतीप-- (सो. कुरु.) एक विख्यात कुरुवंशीय राजा, जो भागवत, विष्णु, मत्स्य, भविष्य और वायु के अनुसार, भीमसेन का प्रपौत्र और दिलीप का पुत्र था। किन्तु महाभारत में इसे भीमसेन राजा का पुत्र कहा गया है, एवं केकय राजकन्या सुकुमारी को इसकी माता कहा गया है। इसे परिश्रवस् (पर्यश्रवस्) नामांतर भी प्राप्त है (म. आ. ९०. ४५)। यह ब्रह्मदत्त राजा का समकालीन था, एवं भीष्म का पितामह था (ह. वं. १. २०. ११-१२) महाभारत में इसका वंशक्रम निम्न प्रकार दिया गया हैः- कुरु-विडूरथ अरुग्वत्-परिक्षित्-भीमसेन-प्रतिश्रवस् तथा प्रतीप (म. आ. ९०.४१-४५)।

इसकी पत्नी का नाम शैव्या सुनन्दा था, जिससे इसे देवापि, शन्तनु तथा बाह्लीक नामक पुत्र थे (म. आ. ९०.४६)।

महाभारत में अन्य एक स्थान पर इसे जनमेजय पारिक्षित (प्रथम) का पौत्र एवं धृतराष्ट्र राजा का पुत्र कहा गया है। वहाँ इसका वंशक्रम निम्नप्रकार से दिया गया है :--कुरु-अविक्षित् एवं परिक्षित्-जनमेजय-धृतराष्ट्र-प्रतीप (म. आ. ८९.४२-५२)।

यह काफ़ी वृद्ध हो गया था, फिर भी इसे कोई पुत्र न था। अतएव सन्तानप्राप्ति की इच्छा से इसने तप करना प्रारम्भ किया। तपस्या करते समय, एक दिन मनस्विनी गंगा उत्तम गुणों से युक्त होकर एक नवयौवना स्त्री का रूप धारण कर उपस्थित हुयीं, और इसके गोद में जा बैठी। गंगा ने प्रतीप से प्रार्थना की, 'वह उसे पत्नी के रूप में स्वीकार करले' पर इसने उस प्रार्थना को इन्कार करते हुए कहा, जब मुझे पुत्र होगा, तब उससे तुम विवाह करना'।

तपश्चर्या के उपरांत यह अपने निवासस्थान वापस आया। कालान्तर में, इसे शंतनु, देवापि तथा बाह्लीक नामक तीन पुत्र हुए। शंतनु को यह अत्यधिक चाहता था। अतएव मृत्यु के समय इसने उससे कहा 'तुम मेरी आज्ञा मान कर अरण्य में जाओ। वहाँ तुम्हें एक सुन्दर स्त्री मिलेगी, जो तुमसे विवाह की इच्छा प्रकट करेगी। तुम विना किसी सोच विचार के उससे विवाह कर लेना।' पश्चात्, शंतनु जंगल में गया एवं गंगा से उसका विवाह हो गया (म. आ. ९० ५०)।

२. ब्रह्मसावर्णि मन्वन्तर के सप्तर्षियों में से एक ऋषि।

प्रतीप प्रातिसुत्वन—अथर्ववेद में निर्दिष्ट एक राजा (अ. वे. २०. १२९. २; ऐ. ब्रा. ६. ३३. २)।

सांख्यायन श्रौतसूत्र में इसे केवल 'प्रतिसुत्वन' कहा गया है, जिस शब्द की निरुक्ति बौटलिंग के अनुसार यह है— सत्वनों के विपरीत दिशा में जिसका जन्म हुआ था।

प्रतीपक—निमिवंशीय प्रतित्वक राजा का नामांतर (प्रतित्वक देखिये)।

प्रतीपाश्व (सू. इ. भविष्य.) इक्ष्वाकुवंशीय प्रतीकाश्व राजा का नामांतर (प्रतीकाश्व देखिये)। मत्स्य में इसे ध्रुवाश्व राजा का पुत्र कहा गया है।

प्रतीबोध—अथर्ववेद में निर्दिष्ट एक ऋषि, जिसका बोध ऋषि के साथ उल्लेख आया है (अ. वे. ५.३०. १०;८.१.१३)

प्रतीर—मौत्य मनु का पुत्र।

प्रतीह--(स्वा. प्रिय.) एक राजा, जो परमेष्ठिन् राजा का पुत्र था। इसकी माता तथा स्त्री दोनों का ही नाम सुवर्चला है। इसके प्रतिहर्तृ, प्रस्तोतृ और उद्गातृ नामक तीन पुत्र थे (भा. ५.१५.३)।

प्रतृद्-तृत्सु नामक जातिसमूह का नामांतर (ऋ. ७ ३३.१४) तृत्सु राजा दिवोदास के वंश में प्रतर्दन नामक एक राजा उत्पन्न हुआ था, जो तृत्सु एवं 'प्रतृद्' के समीकरण की पुष्टि करता है (लुडविग-ऋग्वेद अनुवाद, ३.१५९)

प्रतोष- यज्ञ नामक विष्णु के सातवें अवतार का पुत्र, जिसकी माता का नाम दक्षिणा था।

२. स्वारोचिष मन्वंतर का एक देव।

प्रत्यग्र- (सो.ऋक्ष.) एक राजा, जो भागवत और विष्णु के अनुसार उपरिचर वसु के पुत्रों में से एक था (म.आ.६४.४४)। वायु एवं मत्स्य में इसके नाम क्रमशः प्रत्यग्रह, तथा प्रत्यश्रवस् दिये गये हैं (वा. रा. बा. ३२. १-११)।

यह 'चैद्यवंश' का अन्तिम राजा प्रतीत होता है, क्योंकि, इसके वंश की चली आई परंपरा का इतिहास इसके उपरांत लुप्तप्राय है। केवल तीन राजाओं के नाम भारतीय युद्धकाल में मिलते हैं जिसके नाम, दमघोष, शिशुपाल, और धृष्टकेतु है।

प्रत्यग्रह--उपरिचर वसु के द्वितीय पुत्र प्रत्यग्र राजा का नामांतर (प्रत्यूह देखिये)।

प्रत्यंग--एक प्राचीन नरेश (म. आ. १.१७८)।

प्रत्यश्रवस्--उपरिचर वसु के द्वितीय पुत्र प्रत्यग्र राजा का नामांतर (प्रत्यग्र देखिये)।

प्रत्यह--भृगुकुल के गोत्रकार। प्रत्यूह का नामांतर।

प्रत्यूष--अष्टवसुओं में से एक, जो धर्म एवं प्रभाता का पुत्र था (म. आ. ६०.१७-१९; प्रत्यूह देखिये)।

प्रत्यूह-- भृगुकुल का एक गोत्रकार। इसके नाम के लिए 'प्रत्यूष-पाठभेद भी प्राप्त है।

प्रथ वासिष्ठ--एक वैदिक मंत्रद्रष्टा (ऋ. १०.१८१.१)।

प्रथित-- स्वारोचिष मनु के पुत्रों में से एक।

प्रदातृ—एक विश्वेदेव (म. अनु. ९१.३२)।

प्रदीपक--निमिवंशीय प्रतित्वक राजा का नामांतर (प्रतित्वक देखिये)।

प्रदोष--(स्वा. उत्तान.) एक राजा, जो पुष्पार्ण राजा का ज्येष्ठ पुत्र था। इसकी माता का नाम दोषा था (भा. ४.१३.१४)।

प्रद्युम्न--एक राजा, जो चक्षुर्मनु के बारह पुत्र में से एक था। इसकी माता का नाम नड्वला (भा. ४.१३. १६)। इसे 'सुद्युम्न' नामांतर भी प्राप्त है।

२. (सू. निमि.) एक राजा, जो वायु के अनुसार भानुमत् राजा का पुत्र था।

३. (सो. क्रोष्टु.) एक सुविख्यात यादव राजा, जो सनत्कुमार के अंश से भगवान् कृष्ण को रुक्मिणी से उत्पन्न हुआ था (म. आ. ६१.९१)। यह श्रीकृष्ण का तीसरा स्वरूप माना जाता है (म. अनु. १५८.३९)।

पूर्वजन्म—यह मदन का अवतार था, जिसने शंबरासुर का वध करने के लिए रुक्मिणी की कोख में जन्म लिया था। शंबरासुर की पत्नी मायावती, पूर्वजन्म में इसकी पत्नी रति थी। पूर्वजन्म में मदन की मृत्यु के उपरांत, इसकी पत्नी रति को शंबरासुर भगा लाया, इसी का बदला लेने के लिए इसे अवतार लेना पड़ा।

बाल्यकाल--शंबरासुर को जैसे ही ज्ञात हुआ कि मदन ने उसका वध करने के हेतु प्रद्युम्न के रूप में रुक्मिणी के उदर में जन्म लिया हैं, वह तत्काल सूतिकागृह में जा कर छः दिन के शिशु प्रद्युम्न को लेकर भागा, तथा इसे ले जाकर समुद्र में फेंक कर निश्चिंत हो गया। दैवयोग से, इसे एक मछली ने निगल लिया, तथा यह वहाँ उसके पेट में भी जीवित रहा। यह मछली एक मछुए को मिली। मछुए ने अच्छी मछली देखकर उसे शंबरासुर को भेंट की।

शंबरासुर हँसी-खुशी घर आया तथा उक्त मछली को अपनी स्त्री मायावती को दे दी। जैसे हीं मायावती ने मछली काटी वैसे ही उसमें एक दिव्य बालक को देखकर वह आश्चर्य-चकित हो गयी, एवं उसके मन में विभिन्न शंकाएँ उठने लगी। उसी क्षण भ्रमण करते हुए नारद वहाँ आ पहुँचे तथा उन्होने मायावती की शंका का समाधान करते हुए कहा, 'यह दिव्य बालक साधारण न होकर साक्षात मदन है, जिसने इस जन्म में रुक्मिणी के उदर में जन्म लिया है। पूर्वजन्म में तुम इसकी पत्नी रति, थीं, अतः तुम इसकी सेवा करो। यह तुम्हारा पति है।' नारद के वचनों का विश्वास करके, मायावती अत्यधिक आनन्दित हुयी। उसने बालक प्रद्युम्न को पाल-पोस कर बड़ा किया, तथा सारी विद्याओं में उसे पारंगत कराया। कालान्तर में, बड़े होने के बाद इसका और शंबरासुर का युद्ध हुआ, जिसमें इसने शंबरासुर का वध किया। पश्चात् अपनी भार्या को पुनः प्राप्त कर, यह उसके साथ रुक्मिणी से मिलने गया (विष्णु. ५.२६; ह. वं. २.१०४-१०७; भा. १०.५५)।

हरिवंश में, यह कथा कुछ इसी प्रकार दी गयी है, अन्तर केवल इतना है कि, शंबरासुर ने शिशु प्रद्युम्न को समुद्र में न फेंक कर, उसे मायावती को दे दिया, क्योंकि निःसंतान होने के कारण वह दुःखित थी।

ब्रह्मवैवर्त पुराण में प्राप्त कथा हरिवंश से मिलती जुलती है। अन्तर केवल इतना है कि, प्रद्युम्न के बड़े हो जाने पर एक दिन सरस्वती मायावती के पास आयी और उसने ही शंबरासुर के पूर्व कुकृत्यों का लेखा जोखा प्रद्युम्न तथा मायावती के सम्मुख प्रस्तुत किया उस कारण प्रद्युम्न ने शंबरासुर का वध किया (ब्रह्मवै. ४. ११२)।

प्रद्युम्न-शाल्व युद्ध--प्रद्युम्न यादव सेना का महारथि था (भा. १०. ९०. ३३)। कृष्ण ने राजसूय यज्ञ में शिशुपाल का वध किया था। उससे क्रुद्ध होकर अपने मित्र शिशुपाल का बदला लेने के लिए, शाल्व ने बड़े ज़ोर शोर से कृष्ण की द्वारका पर चढ़ाई कर दी। युद्ध की विकरालता को देख कर, यादवसेना घबरा गयी। तब इसने यादवसेना का नेतृत्व कर बड़े पराक्रम के साथ शाल्व का मुक़ाबला किया (म. व. १६. ३०-३२; म. व. १७)। युद्ध करते करते यह युद्धभूमि में मूर्च्छित हो गया (म. व. १७. २२)। इसका सारथि सूतपुत्र दारुक इसे रणभूमि से हटा कर ले गया (म. व. १८. ३)। ठीक हो जाने पर, यह पुनः युद्धभूमि में आ उठा, और घमासान युद्ध करके अपने शत्रुनाशक अद्भुत बाण से शाल्व को परास्त किया (म. व. १५.१६.२०; भा. १०.७६.१३)।

युधिष्ठिर द्वारा किये गये अश्वमेध यज्ञ में, इसने उसकी काफ़ी सहायता की थी, और यह हस्तिनापुर आया था (म. आश्व. ६५.३)। यही नहीं, अश्वरक्षण के लिए यह ससैन्य अर्जुनादि के साथ देशविदेश गया था (जै. अ. १२)।

कालान्तर में, यादववंशीय लोग आपस में एक दूसरे से लड़ने लगे, जिससे कि उनमें वह शक्ति न रह गयी जो पूर्व थी। मौसल युद्ध में उनका भोजों के साथ युद्ध हुआ, जिसमें प्रद्युम्न की मृत्यु हो गयी (म. मौ. ४.३३; भा. ११.३०.१६; गणेश. १.४९)। मृत्योपरांत यह सनत्कुमार के स्वरूप में प्रविष्ट हो गया (म. स्व. ५.११)।

परिवार---इसे शतद्युम्न नामांतर भी प्राप्त है। मायावती के अतिरिक्त, रुक्मिन् की कन्या रुक्मवती अथवा शुभांगी इसकी दूसरी पत्नी थी (भा. १०.६१.१८;

९०.१६), जिसने स्वयंवर में इसका वरण किया था (ह. वं. २.६१.४)। रुक्मवती (शुभांगी) से इसे अनिरुद्ध नामक पुत्र था (म. भी. ६५. ७१)।

वज्रनाभ दैत्य की कन्या प्रभावती इसकी तीसरी पत्नी थी, जिसका इसने हरण किया था (ह. वं. २. ९०. ४)। इस कारण वज्रनाभ का भाई निकुंभ से इसका युद्ध हुआ था।

प्रद्युम्न से बदला लेने के लिए, निकुंभ ने भानु यादव की कन्या भानुमती का हरण किया। इससे क्रुद्ध हो कर कृष्णार्जुनों ने निकुंभ पर हमला किया, जिसमें यह भी निकुंभ के विपक्ष में था। इस युद्ध में इसने अपने मायावी युद्धकौशल का अच्छा परिचय दिया। अन्त में निकुंभ श्रीकृष्ण द्वारा मारा गया (ह. वं. २. ९०-९१)।

प्रद्योत--कुबेरसभा का एक यक्ष (म. स. १०. १५)।

२. (प्रद्योत. भविष्य.) प्रद्योत वंश का प्रथम राजा, जो शुनक का पुत्र था। वायु में इसे सुनीक का पुत्र कहा गया है।

इसका पिता शुनक सूर्यवंश का अंतिम राजा रिपुंजय अथवा अरिंजय राजा का महामात्य था। उसने रिपुंजय राजा का वध कर, राजगद्दी पर अपने पुत्र प्रद्योत को बिठाया, जिससे आगे चल कर प्रद्योत राजवंश की स्थापना हुयी।

भविष्य में इसे क्षेमक का पुत्र कहा गया है, एवं इसे 'म्लेच्छहंता' उपाधि दी गयी है (भवि. प्रति. १. ४)। इसके पिता क्षेमक अथवा शुनक का म्लेच्छों ने वध किया। अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए, नारद के सलाह से इसने 'म्लेच्छयज्ञ' आरम्भ किया। उस यज्ञ के लिए इसने सोलह मील लम्बा एक यज्ञ-कुण्ड तैयार किया। पश्चात्, इसने वेदमंत्रों के साथ निम्नलिखित म्लेच्छ जातियों को जला कर भस्म कर दियाः- हारहूण, बर्बर, गुरुंड, शक, खस, यवन, पल्लव, रोमज, खरसंभव द्वीप के कामस, तथा सागर के मध्यभाग में स्थित चीन के म्लेच्छ लोग। इसी यज्ञ के कारण इसे 'म्लेच्छहंता' उपाधि प्राप्त हुयी।

प्रद्योतवंश—प्रद्योत के राजवंश में कुल पाँच राजा हुए, जिनके नाम क्रम से इस प्रकार थेः-प्रद्योत, पालक, विशाखयूप, जनक (अजक), तथा नंदवर्धन (नंदिवर्धन अथवा वर्तिवर्धन)। इन सभी राजाओं ने कुल एक सौ अड़तीस वर्षों तक राज्य किया (भा. १२.१; विष्णु. ४.२२.२४; वायु. ९९.३११-३१४)।

इस वंश का राज्यकाल संभवतः ७४५ ई. पू. से ६९० ई. पू. के बीच माना जाता है। उक्त राजाओं के नाम सभी पुराणों में एक से मिलते हैं। जनक तथा नंदवर्धन राजाओं के नामांतर केवल वायु में प्राप्त है।

प्रद्वेषी—अंगिराकुलोत्पन्न दीर्घतमस् ऋषि की पत्नी, जिससे इसे गौतमादि पुत्र उत्पन्न हुए थे।

दीर्घतमस् ऋषि बूढ़ा एवं अंधा होने के कारण, यह उससे तलाक लेना चाहती थी। किंतु एक धर्मशास्त्रकार के नाते से दीर्घतमस् ने इसे धर्मनीति का उपदेश देते हुए कहा, 'पत्नी का कर्तव्य है कि एक व्यक्ति को ही अपना पति मान कर अपने संपूर्ण जीवन को उसे समर्पित कर दे'। दीर्घतमस् के द्वारा इतना समझाये जाने पर भी यह न मानी, तथा अपने गौतमादि पुत्रों की सहायता से इसने दीर्घतमस् को उठा कर नदी में झोंक दिया (दीर्घतमस् देखिये; म. आ. ९८.१०३७*; परि. १.५६)।

प्रधान--एक प्राचीन राजर्षि, जिसे सुलभा नामक सुविख्यात ब्रह्मनिष्ठ कन्या थी। सुलभा के साथ विदेहराज जनक का तत्वज्ञान के विषय पर संवाद हुआ, जो सुविख्यात है (म. शां. ३०८.१८२; सुलभा देखिये)

प्रधिमि--एक ऋषि, जो जटीमालिन् नामक शिवावतार का शिष्य था।

प्रपोहय--पराशरकुल का एक गोत्रकार ऋषिगण।

प्रबल—कृष्ण का लक्ष्मणा से उत्पन्न पुत्र (भा. १०. ६१.१५)।

२. विष्णु का एक पार्षद (भा. ८.२१.१६)।

प्रबाहु—कौरवपक्ष का योद्धा। इसने अभिमन्यु पर बाणों की वर्षा की थी (म. द्रो. ३६.२५.२६)।

प्रबुद्ध--(स्वा. प्रिय.) एक भगवद्भक्त राजर्षि, जो ऋषभदेव के नौ सिद्धपुत्रों में से एक था। इसने निमि को उपदेश दिया था (भा. ५.४.११; ११.३.१८)।

प्रभ—रामसेना का एक वानर (वा. रा. उ. ३६)।

प्रभंकर--जयद्रथ राजा का भाई (म. व. २४९.११)।

प्रभंजन--एक राजा, जो मणिपुरनरेश चित्रवाहन का पूर्वज था। पाठभेद (भांडारकर संहिता)--'प्रभंकर'।

प्रभंजन राजा ने निःसंतान होने कारण, शिव की उग्र तपस्या कर के उनसे वंशवृद्धि के लिए संतानप्राप्ति की प्रार्थना की। तपस्या से संतुष्ट, होकर शिव ने वरदान

दिया, 'तुम्हारे वंश में कोई व्यक्ति निःसंतान न होगा। पर हर व्यक्ति के केवल एक एक ही संतान होगी, उससे अधिक नहीं।'

वरप्राप्ति के उपरांत, इसके कुल में हर एक को एक एक पुत्र हुआ, और चित्रवाहन तक राज्य चलता रहा। किन्तु चित्रवाहन के चित्रांगदा नामक कन्या हुयी। चित्रवाहन राजा को इसी कन्या के द्वारा वंश आगे चलाना था। इसलिए चित्रवाहन ने 'दौहित्राधिकार' के शर्त पर, यह कन्या अर्जुन को दी। पश्चात् चित्रांगदा को अर्जुन से बभ्रुवाहन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसे चित्रवाहन ने मणिपुर का राज्य प्रदान किया (म. आ. २०७)।

२. गंधवती नगरी का राजा। दस हजार वर्षों तक शिव की आराधना कर के इसने 'दिग्पालत्व' प्राप्त किया। इसके पुत्र का नाम पूतात्मन् था (स्कन्द. ४.१.१३)।

३. क्षत्रियकुलोत्पन्न एक राजा। बालक को स्तनपान कराती हुई हिरनी को बाण से इसने मारा। उसके द्वारा दिये गये शाप के कारण, १०० वर्षों तक इसे व्याघ्रयोनि में रहना पड़ा। व्याघ्रयोनि में जब इसे नंदा नामक गाय ने उपदेश दिया, तब यह व्याघ्रदेह को नष्ट कर पुनः राजदेह प्राप्त कर सका (पद्म. सृ. १८)।

प्रभद्रक—पांचालो का एक क्षत्रियदल, जो भारतीय युद्ध में पांडवो के पक्ष में शामिल था (म. उ. ५६.३३)। ये युद्ध में अजेय थे, एवं प्रायः द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न तथा शिखण्डी का अनुगमन करते थे (म. भी. १९.२१-२२; ५२.१४)।

ये अधिकतर शल्य द्वारा मारे गये (म. श. १०. २१)। जो व्यक्ति शल्य के द्वारा बाकी बचे थे, वे अश्वत्थामा द्वारा रात्रिसंहार में मारे गये (म. सौ. ८.६१)।

प्रभद्रा—अंगराज कर्ण के पुत्र वृषकेतु की पत्नी। इसे भद्रावती नामांतर भी प्राप्त है (जै. अ. ६३)।

प्रभव—एक देव, जो भृगु तथा पौलोमी के पुत्रों में से एक था।

प्रभा—विवस्वान् आदित्य की पत्नी, जिसकी संज्ञा तथा राज्ञी नामक दो सौतें थीं। इसके पुत्र का नाम प्रभात था (पद्म. सृ. ८)।

२. देवमाताओं में से एक, जो ब्रह्मा के सभा में रहकर उनकी उपासना करती थी (म. स. ११.१३२*, पंक्ति १)। इसके नाम के लिए 'प्राधा' पाठभेद उपलब्ध है।

३. अलकापुरी की एक अप्सरा, जिसने अष्टावक्र के स्वागतसमारोह में नृत्य किया था (म. अनु. १९.४५)।

४. (स्वा. उत्तान.) पुष्पार्ण राजाकी दो स्त्रियों में से एक (भा. ४.१३.१३)।

५. स्वर्भानु नामक दानव की कन्या, जिसका विवाह आयु राजा से हुआ था। इसे नहुष आदि पुत्र थे (ब्रह्मांड. ३.६.२६)।

६. सगर की सुमति नामक ज्येष्ठ पत्नी का नामांतर। इससे ही सगर को साठ हज़ार पुत्र हुये थे (मत्स्य. १२. ३९-४२)।

७. मद्रदेश का राजा प्रियव्रत की एक पत्नी (प्रियव्रत ३. देखिये)।

प्रभाकर—अत्रिकुल का एक महान् ऋषि, जिसका विवाह पूरुवंशीय रौद्राश्व (भद्राश्व) की घृताची अप्सरा से उत्पन्न दस कन्याओं से हुआ था। इसकी पत्नियों के नाम इस प्रकार थे-रुद्रा, शूद्रा, भद्रा, मलदा, मलहा, खलदा, नलदा, सुरसा, गोचपला तथा स्त्रीरत्नकूटा।

राहु से ग्रसित सूर्य को देखकर उसे कष्ट से उबारने के लिए, इसने 'स्वस्ति' कहा, जिससे सूर्य कष्ट से मुक्तता पा कर पुनः पूर्व की भाँति प्रकाशित होने लगा। इस पुण्यकृत्य के कारण इसे प्रभाकर नाम प्राप्त हुआ। ज्ञानगरिमा तथा योग्यता के बल पर इसने अत्रिकुल के गौरव को संवर्धित किया।

एक बार इसने यज्ञ किया, जिसके उपलक्ष में देवों ने विपुल धनराशि के साथ साथ इसे दस पुत्र प्रदान किये। उनमें से प्रमुख इस प्रकार थेः--स्वस्ति, आत्रेय, कक्षेय, संत्रय, समानर, चाक्षुष तथा परमन्यु (ह. वं. १.३१. ८-१७)।

२. एक कश्यपवंशीय नाग।

३. सुतप देवों में से एक।

प्रभाता--धर्म की पत्नी वसु का नामांतर। प्राचेतस दक्ष की कन्या एवं धर्म की पत्नी वसु को कल्पभेदानुसार प्रभाता, धूम्रा आदि नाम प्राप्त थे (वसु १५. देखिये)। प्रत्यूष तथा प्रभास नामक दो वसु इसके पुत्र माने जाते हैं (म. आ. ६०.१९)।

प्रभानु--श्रीकृष्ण का सत्यभामा से उत्पन्न पुत्र (भा. १०.६१.१०)।

प्रभावती--मेरुसावर्णि की कन्या स्वयंप्रभा का नामांतर (स्वयंप्रभा देखिये; म. व. २६६.४१)। यह एक तपस्विनी थी, जो मय दानव के निवासस्थान पर

तपस्या करती थी। यह सीता की खोज में गये वानरों से मिली थी।

२. यौवनाश्व राजा की पत्नी।

३. चंपकनगरी के राजा हंसध्वज के पुत्र सुधन्वन् की पत्नी।

४. अंगराज चित्ररथ की पत्नी, जो सुविख्यात ऋषि देवशर्मन् की पत्नी रुचि की बड़ी बहन थी (म. अनु. ४२.८)। इसने अपनी बहन रुचि से दिव्य पुष्प मँगवा देने के लिए अनुरोध किया था, जो देवशर्मन् ने अपने शिष्य विपुल द्वारा पूरा किया (म. अनु. ४२. १०)।

५. मयासुर के पुत्र बल नामक दैत्य की पत्नी (बल ८. देखिये)।

६. वज्रनाभ नामक दानव की कन्या। वज्रनाभ का वध कर कृष्णपुत्र प्रद्युम्न ने इससे विवाह किया था (ह. वं. २.९०-९७)।

७. स्कंद की अनुचरी मातृका (म. श. ४५.३)।

८. सूर्यदेव की पत्नियों मे से एक (म. उ. ११५.८)।

प्रभास--एक वसु, जो धर्म का पुत्र था। इसकी माता का नाम प्रभाता था (म. आ. ६०. १९)। विष्णु में, इसके पुत्र निम्नलिखित बताये गये हैं:—विश्वकर्मन् (प्रजापति), अजैकपात्, अहिर्बुध्न्य, रुद्र, हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, अपराजित, बृषाकपि, शम्भु, कपर्दिन्, रेवत्, मृगव्याध, शर्व एवं कपालिन् (विष्णु. १. १५)। इन पुत्रों में से विश्वकर्मन् नामक पुत्र इसे बृहस्पति की बहन वरस्त्री (भुवना) से उत्पन्न हुआ था (म. आ. ६०. २६; ब्रह्मांड. ३.३.२१-२९)।

२. स्कंद का एक सैनिक (म. श. ४४.५९)। इसके नाम के लिये 'प्रवाह' पाठभेद उपलब्ध है।

३. सुतप देवों में से एक।

प्रभु—दक्षयज्ञ के ऋत्विज भग नामक ऋषि को सिद्धि नामक पत्नी से उत्पन्न पुत्र (मा. ६. १८. २)।

२. स्कंद का एक सैनिक (म. श. ४४.५८)। इसके नाम के लिये 'वासुप्रभ' पाठभेद उपलब्ध है।

३. तुषित देवों में से एक।

४. साध्य देवों में से एक।

५. सुमेधस् देवों में से एक।

६. अमिताभ देवों में से एक।

७. ब्रह्मसभा का एक ऋषि।

८. अंगिराकुल का एक गोत्रकार।

९. शुक ऋषि का पीवरी से उत्पन्न एक पुत्र, जिसे पृथु नामांतर भी प्राप्त है।

प्रभुवसु आंगिरस--एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. ५. ३५-३६; ९. ३५. ३६)।

प्रभुसुत--इक्ष्वाकुवंशीय प्रसुश्रुत राजा का नामांतर (प्रसुश्रुत देखिये)।

प्रभूति--मरीचिगर्भ देवों में से एक।

प्रभोज्य--एक वानर, जो राम के पक्ष में शामिल था (वा. रा. उ. ३६.४८)।

प्रमगंद नैचाशाख— ऋग्वेद में निर्दिष्ट कीकट लोगों का राजा, जो सुदास राजा का शत्रु था (ऋ. ३.५३ १४)। प्रमगंद नाम से यह कोई अनार्य राजा प्रतीत होता है। इसकी 'नैचाशाख' (नीच जाति में उत्पन्न) उपाधि भी इसी ओर संकेत करती है।

सायण के अनुसार, नैचाशाख से किसी स्थान के नाम के सम्बन्ध की ओर संकेत मिलता है। यास्क ने निरुक्त में इसे कुसीदकपुत्र कहा है (नि. ६.३२)। सम्भव है, इसके नाम प्रमगंद से ही मगध शब्द का निर्माण हुआ।

प्रमतक—एक ऋषि, जो जनमेजय के सर्पसत्र कर सदस्य था (म. आ. ४८.७)। पाठभेद (भांडारकर संहिता)–'शमठक'।

प्रमति—विष्णु का एक अवतार, जो चाक्षुष मन्वन्तर के कलियुग नामक अन्तिम युग में चंद्र का पुत्र, हुआ था (मत्स्य. १४४.६०)।

२. प्रयाग के शूर नामक ब्राह्मण का पुत्र, जिसे सेनापति बना कर कृतयुग के अंतिम चरण में ब्राह्मणों ने क्षत्रियों को परास्त किया था (विष्णुधर्म १.७४)।

३. विभीषण के चार अमात्यो में से एक (वा. रा. यु. ३७.७)।

४. च्यवन ऋषि का पुत्र, जिसकी माता का नाम सुकन्या था (म. आ. ५.७)। महाभारत में अन्य स्थान पर, इसे वीतहव्य के पुत्र गृत्समद के कुल में जन्म लेनेवाले वागीन्द्र का पुत्र बताया गया है (म. अनु. ३०.५८-६४)। इसे प्रमिति नामांतर भी प्राप्त हैं (म. आ.८.२; अनु. ३०.६४)।

घृताची नामक अप्सरा से इसे रुरु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था (म. आ. ५.६-७)। स्थूलकेश मुनि की कन्या प्रमद्वारा से इसने रुरु का विवाह कराया था (म. आ.

८.१२-१३)। आस्तीकपर्व की कथा इसने रुरु को सुनाई थी (म. आ. ५३.४६७ *)।

शरशय्या पर पड़े हुए भीष्म के पास आये हुए ऋषियों में यह भी एक था।

५. (सू. दिष्ट.) एक राजा, जो वायु के अनुसार जनमेजय का पुत्र था। भागवत के अनुसार, यह 'प्रजानि' राजा का ही नामांतर था (प्रजानि देखिये)। विष्णु में, इसे 'स्वमति' कहा गया है।

६. अमिताभ देवों में से एक।

प्रमथ--एक रुद्रगण, जिन्होंने धर्माधर्मसंबंधी रहस्य का कथन किया था (म. अनु. १३१)।

२. (सो. कुरु.) धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों में से एक।

प्रमद--एक वसिष्ठपुत्र, जो उत्तम मन्वंतर के सप्तर्षियों में से एक था (भा. ८.१.२४)।

२. एक दानव, जो कश्यप एवं दनु का पुत्र था।

प्रमद्वरा--एक अप्सरा, जो मेनका को विश्वावसु गंधर्व द्वारा उत्पन्न हुयी थी। स्थूलकेश नामक ऋषि ने इसका पालनपोषण कर, इसका विवाह रुरु ऋषि से कर दिया (म. आ. ८.२; १३; अनु. ३०.६५)। रुरु से इसे शुनक नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

एक बार साँप ने इसे काटा, जिससे इसकी मृत्यु हो गयी, फिर पति की आयु से यह पुनः जीवित हो गयी (म. आ. ९.१५)।

प्रमंथु--(स्वा. प्रिय.) एक राजा, जो वीरव्रत राज के दो पुत्रों में से कनिष्ठ था। इसकी माता का नाम भोजा था (भा. ५.१५.१५)।

प्रमंदनी--अथर्ववेद में निर्दिष्ट एक अप्सरा (अ. वे. ४.३७.३)। मूलतः यह शब्द किसी मधुर गंधयुक्त लता का नाम है (कौ. सू. ८.१७)।

प्रमंधु--एक यक्ष, जो हरिश्चन्द्र राजा के धन का संरक्षक था। इसके शरीर की दुर्गंध को विश्वामित्र ने तीर्थोदक की सहायता से दूर किया था (स्कंद. २.८.७)।

प्रमर--ऋग्वेद में निर्दिष्ट एक व्यक्ति (ऋ. १०.२७.२०)।

प्रमाथ--एक राक्षस, जो खरदूषण नामक राक्षसों का अमात्य था (वा. रा. अर. २३.३३)। वाल्मीकि रामायण में अन्यत्र इसे प्रमाथिन् कहा गया है। इसका वध राम ने किया (वा. रा. अर. २६.२१)।

२. राम की सेना का एक वानर।

३. यमराज के द्वारा स्कंन्द को दिये गये पार्षदों में से एक। दूसरे पार्षद का नाम उन्माथ था (म.श.४४.२७)।

प्रमथिन्--एक राक्षस, जो दूषण राक्षस का छोटा भाई था (म. व. २७१.१९-२०)। यह विश्रवस् ऋषि को बलाका राक्षसी से उत्पन्न पुत्रों में से एक था।

यह कुंभकर्ण का अनुयायी था। लक्ष्मण के साथ युद्ध करते समय, यह वानर सेनापति नील द्वारा मारा गया था (म. व. २७१.२५)।

२. दूषण के प्रमाथ नामक अमात्य का नामांतर (प्रमाथ १. देखिये)।

३. धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों में से एक, जो भीम के द्वारा मारा गया था (म. द्रो. १३२.११३५ *, पंक्ति २)।

४. घटोत्कच का साथी एक राक्षस, जिसका दुर्योधन द्वारा वध हुआ था (म. भी. ८७.२०)।

प्रमाथिनी--एक अप्सरा, जो अर्जुन के जन्मोत्सव के समय उपस्थित थी (म. आ. ११४.५२)।

प्रमाद--वसिष्ठ का पुत्र, जो उत्तम सावर्णि मन्वन्तर के सप्तर्षियों में से एक था।

प्रमिति--च्यवन ऋषि पुत्र प्रमति का नामांतर (प्रमति ४. देखिये)।

प्रमिला--हिमालय-प्रदेश में स्थित 'स्त्रीराज्य' की स्वामिनी।

भारतीय युद्ध के उपरांत, पांडवों द्वारा किये गये अश्वमेध का घोडा भ्रमण करता हुआ इसके राज्य में आया था, जिसे इसने पकड कर अपने अधिकार में कर लिया। घोडे के संरक्षण के लिए अन्य महारथियों के साथ वीर अर्जुन भी था। घोडे के पकडे जाने पर इसका तथा अर्जुन का घोर युद्ध हुआ, जिसमें यह अत्यधिक वीरता के साथ लड़ी तथा अर्जुन के छक्के छुडा दिये।

अर्जुन की असमर्थता देख कर आकाशवाणी हुयी, 'अर्जुन, तुम प्रमिला को युद्ध में परास्त कर के घोड़ा वापस नहीं ले सकते। यदि तुम्हें अश्वमेध के घोडे की रक्षा ही करनी है, तो इससे सन्धि कर, विवाह कर के सफलता प्राप्त करो'।

अर्जुन ने आकाशवाणी की आज्ञानुसार, प्रमिला से सन्धि करके उससे विवाह किया, तथा अश्वमेध के घोडे को छुड़ा लिया (जै. अ. २१-२२)।

प्रमुच--दक्षिण दिशा में रहनेवाला एक महर्षि (म. शां. २०१.२७)।

प्रमुचि—एक ऋषि, जो दाशरथि राम से मिलने अयोध्या आया था (वा. रा. उ. १.३)।

प्रमोद—ब्रह्मा का मानसपुत्र, जो उसके कंठ से उत्पन्न हुआ था। इसे हर्ष नामांतर भी प्राप्त है (मत्स्य. ३. ११)।

२. (सू. इ.) एक राजा, जो मत्स्य के अनुसार दृढाश्व राजा का पुत्र था। इसे हर्यश्व नामक एक पुत्र था।

३. ऐरावतकुल में उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजय के सर्पसत्र में मारा गया था (म. आ. ५२.१०)।

४. स्कन्द का एक सैनिक।

प्रमोदन—एक ब्रह्मर्षि (वा. रा. उ. ९०.५)।

प्रमोदिनी—सुसंगित नामक गंधर्व की कन्या (पद्म. उ. १२८)।

प्रम्लोचा—दस प्रमुख अप्सराओं में से एक, जो अर्जुन के जन्मोत्सव में उपस्थित थी (भा. १२.११.३७; म. आ. ११४.५४; स. १०.११)।

२. एक अप्सरा, जिसे इन्द्र ने कण्डु ऋषि के तपोभंग के लिए भेजा था। इसकी कन्या का नाम मारिषा था, जिसे सोम तथा वृक्षों ने पालपोस कर बड़ा किया, एवं प्रचेतसों को विवाह में प्रदान किया (भा. ४.३०.१३)।

प्रयस्वत आत्रेय—एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. ५. २०)।

प्रयुत—एक गन्धर्व, जो कश्यप एवं मुनि का पुत्र था (म. आ. ५९.४२)।

प्रयोग भार्गव—एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. ८.१०२; तै. सं. ५.१.१०.२; क. सं. १९.१०)।

प्ररुज—अमृत की रक्षा करनेवाला एक देव, जिसका गरुड से युद्ध हुआ था (म. आ. २८.१९)।

२. राक्षसों तथा पिशाचों का एक दल, जो रावण के पक्ष में शामिल था (म. व. २६९.२)।

प्रलंब—एक राक्षस, जो कश्यप तथा दनु के पुत्रों में से एक था (म. आ. ५९.२८)। देवासुर संग्राम में जब पराजित हुआ था, तब यह उसके विरोध में राक्षसपक्ष की ओर का एक सेनापति था (म. स. परि. १; क्र. २१)।

२. एक असुर, जिसे कंस ने कृष्णवध के लिए गोकुल भेजा था। गोकुल में गोपवेष धारण कर, यह कृष्ण बलराम आदि गोपों के साथ खेलने लगा। खेल के बीच में, कृष्ण की अजेय शक्ति का अनुमान लगा कर इसकी हिम्मत कृष्ण से बोलने की न हुयी। इसी कारण बलराम को अपने कंधे पर रखकर, दैत्याकार रूप धारण कर यह भागने के लिए उद्यत हुआ। फिर बलराम ने मस्तक पर मुष्टिप्रहार कर तत्काल इसका वध किया (ह. वं. २.१४; भा. १०.१८; विष्णु. ५.९-३७)।

बलराम ने जिस स्थान पर प्रलंब का वध किया था, उस स्थान को हरिवंश में 'भांडीरवन,' तथा भागवत में, 'भांडीरवट' कहा गया है।

महाभारत में प्रलंब का वध बलराम के द्वारा न होकर कृष्ण के द्वारा हुआ है (म. द्रो. १०.९)। बलराम को कृष्ण का अभिन्न रूप माना जाता है। इसी अर्थ से यह निर्देश महाभारत में किया गया होगा।

प्रलंबक—एक ऋषि, जो तप नामक शिवावतार का शिष्य था।

प्रलंबायन—एक ऋषिगण, जो वसिष्ठकुलोत्पन्न गोत्रकारों में से एक था।

प्रवसु— (सो. पूरु.) एक पूरुवंशीय राजा, जो ईलिन राजा का पुत्र था। इसकी माता का नाम रथंतरी था। इसे निम्नलिखित चार भाई थेः—दुष्यंत, शूर, भीम, तथा वसु (म. आ. ८९. १४-१५)।

प्रवहण—उत्तम मन्वन्तर के सप्तर्षियों में से एक।

२. तामस मन्वन्तर के योगवर्धनों में से एक।

प्रवालक—कुबेर की सभा का एक यक्ष (म. स. १०. १७)।

प्रवाह—स्कंद का एक सैनिक (म. श. ४४. ६५)।

प्रवाहक—एक ऋषि, जो दंडीमुंडी नामक शिवावतार का शिष्य था।

प्रवाहण जैवालि—पांचाल देश का एक राजा, जो दार्शनिक शास्त्रार्थों में प्रवीण था (बृ. उ. ६.१.१.७, माध्यं; छां. उ. १.८.१; ५.३.१)। यह उद्दालक राजा का समकालीन था। सम्भवतः जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण में निर्दिष्ट 'जैवलि' इसीका नामांतर है। जीवल का वंशज होने के कारण, इसे 'जैवलि' अथवा 'जैवल' उपाधि प्राप्त हुयी होगी।

यह परम विद्वान् एवं ज्ञानी होने के साथ, तत्वज्ञान का महापंडित भी था। एक बार इसने अपने पांचाल राज्य में तत्वज्ञान परिषद् का आयोजन किया। वहाँ तत्वचर्चा में इसे पराजित करने के उद्देश्य से, श्वेतकेतु आरुणेय उस परिषद् में आया। किन्तु राजा के द्वारा पूँछे गये पाँच प्रश्नों में से एक का भी उत्तर वह न दे सका। पराजित होकर वह अपने घर गया, तथा ज्ञानशिक्षा देनेवाले अपने

पिता पर अत्यधिक क्रुद्ध हो कर, प्रवाहण द्वारा पूँछे गये प्रश्नों के उत्तर पूँछने लगा।

श्वेतकेतु का पिता उद्दालक आरुणि भी उन प्रश्नों का उत्तर न दे सका। फिर वे दोनों प्रवाहण राजा की शरण में आकर, इससे 'ब्रह्मविद्या' की दीक्षा माँगने लगे। इसने स्वयं क्षत्रिय हो कर भी उन ब्राह्मणों को दीक्षित किया। अब तक यह ज्ञान क्षत्रियों के ही पास था। यह पहली व्यक्ति है, जिसने यह परमज्ञान ब्राह्मणों को प्रदान किया।

उद्‌गीथ की उपासना के सम्बन्ध में इसका 'शिलक शालावत्य' एवं 'चैकितायन दाल्भ्य' नामक ऋषियों से शास्त्रार्थ हुआ था (छां. उ. १.८.१; बृ. उ. ६.२.१)।

प्रवाहित--उत्तम मन्वन्तर के सप्तर्षियों में से एक।

प्रविल्लसेन--आंध्रवंशीय पुत्रिकषेण राजा का नामांतर (पुत्रिकषेण देखिये)।

प्रवीण--भौत्य मनु के पुत्रों में से एक।

प्रवीर--काशीनगर का एक चाण्डाल, जिसने राजा हरिश्चन्द्र को खरीदा था। इसे वीरबाहु नामातर भी प्राप्त है।

२. (सो. पूरु.) एक पूरुवंशीय राजा, जो भागवत, विष्णु तथा भविष्य के अनुसार, प्राचिन्वत् राजा का पुत्र था। किन्तु महाभारत में इसे पूरु राजा पुत्र माना गया है। इसके दो भाइयों का नाम ईश्वर एवं रौद्राश्व था।

पूरु राजा का ज्येष्ठ पुत्र जनमेजय किसी कारण राज्य के लिए अयोग्य साबित हुआ, जिससे उसे हटाकर प्रवीर को राजगद्दी पर बिठाया गया। पश्चात् इसीसे पूरुवंश आगे चला। इसी कारण महाभारत में इसे 'वंशकृत' (वंश को आगे चलानेवाला) कहा गया है (म. आ. ९०.४)।

महाभारत में इसकी पत्नी का नाम शूरसेनी (श्येनी) एवं पुत्र का नाम मनस्यु (नमस्यु) बताया गया है (म. आ. ८९.४)।

इसने तीन अश्वमेध यज्ञ एवं एक विश्वजित् यज्ञ किये थे। उन यज्ञों को संपन्न करने के उपरांत इसने वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण किया (म. आ. ९०.११)।

३. (सो. नील.) एक राजा, जो विष्णु के अनुसार हर्यश्व राजा का पुत्र था। इसे जवीनर नामांतर भी प्राप्त है (जवीनर देखिये)।

४. माहिष्मती के नीलध्वज राजा का पुत्र।

५. पांड्य देश का एक राजा, जिसे मलयध्वज एवं चित्रवाहन नामांतर प्राप्त है। इसकी कन्या का नाम चित्रांगदा था, जिससे इसने 'पुत्रिकाधर्म' के शर्त पर अर्जुन को प्रदान किया था।

भारतीय युद्ध में अश्वत्थामा के साथ युद्ध करते समय यह मारा गया (म. क. १५.४२)।

६. एक क्षत्रिय-कुल, जिसमें अजबिंदु नामक कुलांगार राजा उत्पन्न हुआ था (म. उ. ७२.१४)।

प्रवीरक--(किलकिला. भविष्य.) किलकिला नगरी का एक राजा, जो मौन राजवंश के नष्ट होने पर राजगद्दी पर बैठा था (भा. १२.१.१३)।

प्रवेपन--तक्षक-कुल का एक नाग, जो जनमेजय के सर्पसत्र में जलकर भस्म हो गया था (म. आ. ५२.८)।

प्रशागी--अलकापुरी की एक अप्सरा, जिसने अष्टावक्र के स्वागत-समारोह में नृत्य किया था (म. अनु. ५०.४८)।

प्रश्रय--स्वायंभुव मन्वंतर के धर्म ऋषि का ह्री नामक स्त्री से उत्पन्न पुत्र।

प्रश्रुत--इक्ष्वाकुवंशीय प्रसुश्रुत राजा का नामांतर।

प्रसंधि--वैवस्वत मनु के पुत्रों में से एक। इसके पुत्र का नाम क्षुप था। इसके नाम के लिए 'प्रजापति' पाठभेद उपलब्ध हैं (म. आश्व. ४.२)।

प्रसन्न--इक्ष्वाकुवंशीय सेनजित् राजा का नामांतर (सेनजित् २ देखिये)।

प्रसभ--रामसेना का एक वानर।

प्रसाद--स्वायंभुव मन्वंतर के धर्म ऋषि का मैत्री नामक स्त्री से उत्पन्न पुत्र।

प्रसार--(स्वा. नाभि.) एक राजा, जो विष्णु के अनुसार उद्गीथ का पुत्र था।

प्रसुश्रुत--(सू. इ.) एक इक्ष्वाकुवंशीय राजा, जो भागवत, विष्णु एवं वायु के अनुसार मरु का पुत्र था। इसके नाम के लिए 'प्रसुसुत' एवं 'प्रश्रुत' पाठभेद उपलब्ध हैं।

प्रसूत--रैवत मन्वंतर के अंत में उत्पन्न हुआ एक देवतासमूह, जिसमें निम्नलिखित आठ देव शामिल थेः--प्रचेतस्, महायशस्, मुनि, वनेन, श्येनभद्र, श्वेतचक्षु, सुप्रचेतस् तथा सुमनस् (ब्रह्मांड. २.३६.७०)।

२. चाक्षुष मन्वंतर में उत्पन्न एक देवगण।

प्रसूति--स्वायंभुव मनु की तीन कन्याओं में से एक, जो दक्ष प्रजापति को ब्याही थी (भा. ३.१२.५४; ४.१.१)।

प्रसृत--एक दैत्य, जिसका गरुड़ द्वारा वध हुआ था (म. उ. १०३.१२)।

प्रसृति--स्वारोचिष मनु के पुत्रों में से एक।

प्रसेन--(सो. वृष्णि.) एक यादववंशीय राजा, जो निम्न नामक राजा का द्वितीय पुत्र था। विष्णु, मत्स्य, पद्म एवं वायु में इसे निम्न राजा का पुत्र कहा गया है, तथा इसके ज्येष्ठ भ्राता का नाम सत्राजित बताया गया है। ये दोनों भाई जुड़वा पैदा हुए थे एवं कुबेर की भाँति सद्गुणों से संपन्न थे। इसे 'प्रसेनजित्' नामांतर भी प्राप्त था।

इसके पास स्यमंतक मणि था, जिससे प्रतिदिन प्रचुर धनराशि झरती रहती थी। इसे धारण कर एक बार यह जंगल गया, वहाँ सिंह ने इसका वध किया। पश्चात् ऋक्षराज जांबवत् ने वह मणि इसके मृतदेह से निकाल कर प्राप्त की (पद्म. सृ. १३; भा. ९.२४.१३; १०.५६.१३; दे. भा. माहात्म्य. २)। पद्म में प्राप्त कथा में सिंह का वृत्तांत नहीं है, उसमें जांबवत् द्वारा प्रसेन के वध की कथा वर्णित है।

२. कर्ण का पुत्र, जिसका सात्यकि द्वारा वध हुआ (म. क. ६०.४)। वध के पूर्व केकय सेनापति उग्रकर्मन् से इसका युद्ध हुआ था। पाठभेद (भांडारकर संहिता)- 'सुषेण'।

प्रसेनजित्—एक राजा, जो महाभौम राजा की सुयशा नामक पत्नी का पिता था। इसने एक लाख सवत्सा गऊओं का दान कर के उत्तम लोक प्राप्त किया था (म. शां. २४०.३६)।

२. (सू. इ.) एक इक्ष्वाकुवंशीय राजा, जो भागवत, विष्णु एवं वायु के अनुसार कृशाश्व राजा का पुत्र था। इसकी पत्नी का नाम गौरी था, जिससे इसे 'युवनाश्व' नामक पुत्र उत्पन्न हुआ (युवनाश्व ३. देखिये)। भविष्य में इसे संकटाश्व राजा का पुत्र कहा गया है।

३. एक राजा, जो जमदग्नि की पत्नी रेणुका का पिता था। इसे रेणु नामांतर भी प्राप्त है (म. व. ११६.२)। कई विद्वानों के अनुसार, रेणुका के पिता एवं सुयशा के पिता दोनों एक ही व्यक्ति थे (प्रसेनजित् १. देखिये)।

४. (सू. इ.) एक राजा, जो भागवत के अनुसार विश्वसाह्व का पुत्र था।

५. (सू. इ. भविष्य.) एक राजा, जो भागवत के अनुसार लांगल का, विष्णु के अनुसार रातुल का, मत्स्य के अनुसार पुष्कल का, एवं वायु के अनुसार राहुल का पुत्र था।

पालिग्रन्थों में इसका निर्देश 'पसेनदि' नाम से किया गया है। यह गौतम बुद्ध का समकालीन राजा था। पूरुवंशीय राजा उदयन (दुर्दमन) एवं शिशुनागवंशीय राजा अजातशत्रु ये दोनों भी इसके समकालीन थे।

प्रस्कण्व—(सो. पूरु.) एक राजा, जो भागवत के अनुसार मेधातिथि राजा का पुत्र था। प्रस्कण्ववंश के लोग पहले क्षत्रिय थे, किन्तु बाद में वे ब्राह्मण हुए (भा. ९.२०.७)।

प्रस्कण्व काण्व—एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. १.४४-५०; ८.४९; ९.९५)। सांख्यायन श्रौतसूत्र के अनुसार इसे पृषध मेध्य मातरिश्वन् से पारितोषिक प्राप्त हुआ था (सां. श्रौ. १६.११.२६)।

प्रस्ताव--(स्वा. प्रिय.) एक राजा, जो भूमन् राजा का पुत्र था। इसकी माता का नाम देवकुल्या था। इसकी स्त्री का नाम नियुत्सा था, जिससे इसे विभु नामक पुत्र था (भा. ५.१५.६)।

२. (स्वा. प्रिय.) एक राजा, जो भागवत के अनुसार, उद्गीथ राजा का पुत्र था।

प्रस्तोक सार्ञ्जय—एक वैदिक राजा एवं उदार दाता (ऋ. ६.४७.२२)। लुडविग के अनुसार, दिवोदास अतिथिग्व और अश्वत्थ (अश्वथ) इसी के ही नामांतर हैं (लुडविग-ऋग्वेद अनुवाद ३.१५८)। सायणाचार्य का भी यही अभिमत है।

सांख्यायन श्रौतसूत्र के अनुसार, इसने भरद्वाजपुत्र गार्ग को अतुल धनराशि दानस्वरूप प्रदान की थी (सां. श्रौ. १६.११.११; बृहद्दे. ५.१२४)।

प्रस्तोतृ—(स्वा. प्रिय.) एक यज्ञकुशल राजा, जो प्रतीह और सुवर्चला का द्वितीय पुत्र था।

प्रहरण—श्रीकृष्ण का भद्रा से उत्पन्न एक पुत्र।

प्रहस्त—रावण के परिवार का एक राक्षस, जो सुमाली राक्षस का पुत्र था। इसकी माता का नाम केतुमती था। इसके भाइयों के नाम अकंपन, विकट, कालिकामुख, दंड, धूम्राक्ष, सुपार्श्व, संह्रादिन्, प्रघस तथा भासकर्ण थे, तथा राका, कैकसी, कुंभीनसी तथा पुष्पोत्कटा नामक चार बहनें भी थीं (वा. रा. उ. ५.३८-४०)।

यह रावण का मामा और मंत्री (वा. रा. उ. ११.२) होने के साथ साथ, उसकी सेना का अधिपति भी था (वा. रा. सुं. ४९.११; भा. ९.१०.१८)।

यह अत्यधिक वीर एवं पराक्रमी था। इसने कैलास पर्वत पर मणिभद्र को पराजित किया था (वा. रा. यु. १९. ११)। राम-रावण युद्ध में यह रावण की सुरक्षा तथा उसकी मदद के लिए सदैव उसके साथ रहता था। युद्धभूमि में इसने अपना अभूतपूर्व कौशल भी दिखाया। युद्ध के पाँचवे दिन रावणपक्षीय नरांतक आदि अधिकांश योद्धाओं को युद्ध में परास्त होता देख कर, इसने नील नामक वानर पर धावा बोल दिया। किन्तु, नील के द्वारा इसका वध हुआ (वा. रा. यु. ५८. ५४)।

महाभारत के अनुसार, इसका विभीषण के साथ युद्ध हुआ और यह विभीषण द्वारा ही रणभूमि में मारा गया (म. व. २७०.५)

२. विश्रवस् तथा पुष्पोत्कटा का पुत्र।

प्रहास--धृतराष्ट्र कुल में उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजय के सर्पसत्र में दग्ध हुआ था (म. आ. ५२. १४)। इसके नाम के लिए 'प्रहस' पाठभेद भी प्राप्त है।

२. वरुण का मंत्री (वा. रा. उ. २३. ४९)

३. स्कंद का एक सैनिक (म. श. ४५.२६४*)।

प्रहासक--एक राक्षस, जो कश्यप और खशा का पुत्र था।

प्रहेति--राक्षसों का आदि पुरुष। इसका कनिष्ठ भ्राता हेति था (वा. रा. उ. ४.१३)। इसकी पत्नी का नाम भया था, जिससे इसे विद्युत्केश नामक पुत्र था।

२. एक राक्षस, जो वृत्रासुर का अनुयायी था (भा. ६. १०. २०)।

३. एक राक्षस, जो वैशाख में अर्यमा नामक सूर्य के साथ घूमता है। इसे वैश्रवण के सेवक ब्रह्मधाता का पुत्र कहा गया है (भा. १२. ११. ३४)

४. ब्रह्मांड के अनुसार युयुधान का पुत्र, जिसे माल्यवत्, सुमालिन् और पुलोमत् नामक पुत्र थे (ब्रह्मांड. ३.७.९१)।

प्रह्लाद--एक हरिभक्त असुर, इन्द्र, एवं धर्मज्ञ, जो हिरण्यकशिपु नामक असुर राजा का पुत्र था। पालिग्रंथों में इसका निर्देश 'पहाराद' नाम से किया गया है, एवं इसे 'असुरेंद्र' कहा गया है (अंगुत्तर ४.१९७)। इसकी माता का नाम कयाधू था (म. आ. ५९.१८; भा. ७.४; विष्णु. १.१६)।

इसका, इसकी माता कयाधू एवं पुत्र विरोचन का निर्देश तैत्तिरीय ब्राह्मण में प्राप्त है (तै. ब्रा. १.५.९)। यह निर्देश देवासुर संग्राम के उपलक्ष्य में किया गया है।

कई विद्वानों के अनुसार, ईरान का पुण्यात्मा शासक 'परधात' अथवा 'पेशदात' और ये दोनों एक ही थे। ईरानी राजा 'परधात' का पूरा नाम 'हाओश्यांग परधात' था। हाओश्यांग का अर्थ होता है, 'पुण्यात्माओं का राजा'। परधात ने पूजा-पाठ से ईश्वर को प्रसन्न कर लिया था (मैथोलोजी ऑफ ऑल रेसेस-ईरान, पृ. २९९-३००)।

जन्म--पद्मपुराण के अनुसार, कयाधू के गोद में प्रह्लाद ने दो बार जन्म लिया था। इसका पहला जन्म हिरण्यकशिपु एवं हिरण्याक्ष दानवों का देवों से जब युद्ध शुरू था, उस समय हुआ था। उस जन्म में इसे विश्वरुपदर्शन भी हुआ था। पश्चात्, श्रीविष्णुद्वारा इसका वध हुआ।

इसके वध का समाचार सुन कर, इसकी माता रोने लगी। फिर नारद वहाँ आया एवं उसने कहा, 'तुम शोक मत करो। यही प्रह्लाद पुनः तुम्हारे गर्भ में जन्म लेगा, एवं उस जन्म में वह श्रीविष्णु का परमभक्त बनेगा। अपने पराक्रम एवं पुण्यकर्म के कारण, उसे इंद्रत्व प्राप्त होगा। यह मेरी भविष्यवाणी है, जिसे तुम गुप्त रखना'। पद्मपुराण के इस कथा में प्रह्लाद की माता का नाम कयाधू के बदले कमला दिया गया है। (पद्म. भू. ५.१६.३०)।

नारद द्वारा कयाधू को दिया हुआ सारा उपदेश कयाधू के गर्भ में स्थित प्रह्लाद ने सुना। इसी कारण यह जन्मसे ही ज्ञानी पैदा हुआ।

विष्णुभक्ति--जन्म से यह परमविष्णुभक्त था। इसकी विष्णुभक्ति इसके असुर पिता हिरण्यकशिपु को अच्छी नहीं लगती थी। इसे विष्णुभक्ति छोड़ने पर विवश करने के लिये, उसने इसे डराया, धमकाया तथा मरवाने का भी प्रयत्न किया। विष्णुपुराण के अनुसार, हिरण्यकशिपु ने इसका वध करने के लिये, इसे हाथी द्वारा कुचलने का प्रयत्न किया। यही नहीं, इसे सर्पद्वारा डसाने का, पर्वत से गिराने का, गड्ढे में गाड़ने का, विष पिलाने का, वारुणीपाश से बाँधने का, शस्त्रद्वारा मारने का, जलाने का, कृत्या छोड़ने का, माया छोड़ने का, संशोषक वायु छोड़ने का, तथा समुद्रतल में गाडने का आदि बहुत सारे प्रयत्न किये, किन्तु श्रीविष्णु की कृपा से, प्रह्लाद अपने पिता द्वार रचे गये इन सारे षड्यंत्रों से बच गया (विष्णु. १.१७; भा. ७. ५)। अन्य पुराणों में हिरण्यकशिपु द्वारा प्रह्लाद को दिये गये इन कष्टों का निर्देश अप्राप्य है (नृसिंह देखिये)

इतने कष्ट सहकर भी प्रह्लाद ने विष्णुभक्ति का त्याग न किया। अंत में पिता के बुरे वर्ताव से तंग आ कर, इसने दीनभाव से श्रीविष्णु की प्रार्थना की। फिर, श्रीविष्णु नृसिंह का रूप धारण कर प्रकट हुए। नृसिंह ने इसके पिता का वध किया, एवं इसे वर माँगने के लिये कहा। किन्तु अत्यन्त विरक्त होने के कारण, इसने विष्णुभक्ति को छोड़ कर बाकी कुछ न माँगा (भा. ७.६.१०)।

इसके भगवद्भक्ति के कारण, नृसिंह इसपर अत्यंत प्रसन्न हुआ। हिरण्यकशिपु के वध के कारण, नृसिंह के मन में उत्पन्न हुआ क्रोध भी इसकी सत्वगुणसंपन्न मूर्ति देखने के उपरांत शमित हो गया।

यह अत्यन्त पितृभक्त था। पिता द्वारा अत्यधिक कष्ट होने पर भी, इसकी पितृभक्ति अटल रही, एवं इसने हर समय अपने पिता को विष्णुभक्ति का उपदेश दिया। पिता की मृत्यु के उपरांत भी, इसने नृसिंह से अपने पिता का उद्धार करने की प्रार्थना की। नृसिंह ने कहा, 'तुम्हारी इक्कीस पीढ़ियों का उद्धार हो चुका है'। यह सुन कर इसे शान्ति मिली। पश्चात् हिरण्यकशिपु के वध के कारण दुःखित हुये सारे असुरों को इसने सांत्वना दी।

पश्चात् यह नृसिंहोपासक एवं महाभागवत बन गया (भा. ६.३.२०)। यह 'हरिवर्ष' में रह कर नृसिंह की उपासना करने लगा (भा. ५.१८.७)।

विष्णुभक्ति के कारण प्रह्लाद के मन में विवेकादि गुणोंका प्रादुर्भाव हुआ। विष्णु ने स्वयं इसे ज्ञानोपदेश दिया, जिस कारण यह सद्विचारसंपन्न हो कर समाधि-सुख में निमग्न हुआ। फिर श्रीविष्णु ने पांचजन्य शंख के निनाद से इसे जागृत किया, एवं इसे राज्याभिषेक किया। राज्याभिषेक के उपरान्त श्रीविष्णु ने इसे आशीर्वाद दिया, 'षड्रिपुओं की पीड़ा से तुम सदा ही मुक्त रहोगे' (यो. वा. ५.३०-४२)। यह आशीर्वचन कह कर श्रीविष्णु स्वयं क्षीरसागर को चले गये।

इंद्रपदप्राप्ति—इंद्रपदप्राप्ति करनेवाला यह सर्वप्रथम दानव था। इसके पश्चात् आयुपुत्र रजि इंद्र हुआ, जिसने दानवों को पराजित कर के इंद्रपद प्राप्त किया।

परिवार—इसके पत्नी का नाम देवी था। उससे इसे विरोचन नामक पुत्र एवं रचना नामक कन्या हुई (भा. ६.६; ६.१८.१६; म. आ. ५९.१९; विष्णु. १.२१.१)।

संवाद—विभिन्न व्यक्तिओं से प्रह्लाद ने किये तत्वज्ञान पर संवादों के निर्देश महाभारत एवं पुराणों में प्राप्त हैं, जिनसे इसके ज्ञान, विवेकशीलता एवं तार्किकता पर काफ़ी प्रकाश डाला जाता है।

हंस (सुधन्वन्) नामक ऋषि से इसका 'सत्यासत्य भाषण' विषय पर संवाद हुआ था। हंस ऋषि का प्रह्लादपुत्र विरोचन से झगड़ा हुआ था, एवं उस कलह का निर्णय देने का काम प्रह्लाद को करना था। इसने अपना पुत्र असत्य भाषण कर रहा है, यह जानकर उसके विरुद्ध निर्णय दिया, एवं सुधन्वन् का पक्ष सत्य ठहराया। इस निर्णय के कारण सुधन्वन् प्रसन्न हुआ एवं उसने विरोचन को जीवनदान दिया (म. उ. ३५.३०-३१; विरोचन देखिये)।

इसका तथा इसके नाती बलि का लोकव्यवहार के संबंध में संवाद हुआ था। बलि ने इसे पुछा 'हम क्षमाशील कब रहे, तथा कठोर कब बने?' बलि के इस प्रश्न पर प्रह्लाद ने अत्यंत मार्मिक विवेचन किया।

बलि ने वामन की अवहेलना की। उस समय क्रुद्ध हो कर इसने बलि को शाप दिया, 'तुम्हारा संपूर्ण राज्य नष्ट हो जायेगा।' पश्चात् वामन ने बलि को पाताललोक में जाकर रहने के लिये कहा। बलि ने अपने पितामह प्रह्लाद को भी अपने साथ वहाँ रखा (वामन. ३१)।

एकबार प्रह्लाद के ज्ञान की परीक्षा लेने के लिये, इंद्र इसके पास ब्राह्मणवेश में शिष्यरूप में आया। उस समय प्रह्लाद ने उसे शील का महत्व समझाया। उन बातों से इंद्र अत्यधिक प्रभावित हुआ, एवं उसने इसे ब्रह्मज्ञान प्रदान किया (म. शां. २१५)।

अजगर रूप से रहनेवाले एक मुनि से ज्ञानप्राप्ति की इच्छा से इसने कुछ प्रश्न पूछे। उस मुनि ने इसके प्रश्नों का शंकासमाधान किया, एवं इसे भी अजगरवृत्ति से रहने के लिये आग्रह किया (म. शां. १७२)।

उशनस् ने भी इसे तत्वज्ञान के संबंध में दो गाथाएँ सुनाई थी (म. शां. १३७.६६-६८)।

पूर्वजन्मवृत्त—पद्म के अनुसार, पूर्वजन्म में प्रह्लाद सोमशर्मा नामक ब्राह्मण था, एवं इसके पिता का नाम शिवशर्मा था (पद्म. भू. ५.१६)। पद्म में अन्यत्र उस ब्राह्मण का नाम वसुदेव दिया गया है, एवं उसने किये नृसिंह के व्रत के कारण, उसे अगले जन्म में राजकुमार प्रह्लाद का जन्म प्राप्त हुआ, ऐसा कहा गया है (पद्म. उ. १७०)

२. कद्रूपुत्र एक सर्प, जिसने कश्यपऋषि को उच्चैःश्रवस् नामक घोडा प्रदान किया था (म. शां. २४.१५)।

३. एक बाह्लीकवंशीय राजा, जो शलभ नामक दैत्य के अंश से उत्पन्न हुआ था (म. आ. ६१.२९)।

प्रांशु—चाक्षुष मनु का एक पुत्र।

२. वैवस्वत मनु का एक पुत्र।

३. (सू. दिष्ट.) एक राजा, जो भागवत के अनुसार वत्सप्रीति का, विष्णु के अनुसार वत्सप्रि का, तथा वायु के अनुसार भलंदन का पुत्र था। इसकी माता का नाम सुनंदा (मुदावती) था (मार्क. ११४.३)।

प्राक्शृंगवत्—कुणिगर्ग ऋषि की वृद्धकन्या नामक मानसकन्या का पति (वृद्धकन्या देखिये)।

प्रागहि—एक आचार्य, जिसके यज्ञविषयक मतों का निर्देश सांख्यायन ब्राह्मण में प्राप्त है (सां. ब्रा. २६.४)। यज्ञ करते समय यदि कोई कर्म करने से छूट जाये, तो उस अंतरित क्रिया को कब तथा कैसे किया जाये, उसका विधान इसने बताया है।

प्रागाथ—अंगिराकुल का एक ब्रह्मर्षि। इसके कुल में उत्पन्न निम्नलिखित आचार्यों का निर्देश ऋग्वेद में सूक्तद्रष्टा के नाते से आया हैः—हर्यत प्रागाथ (ऋ. ८.७२), भर्ग प्रागाथ (ऋ. ८.६०–६१), कलि प्रागाथ (ऋ. ८.६६)।

प्रागाथम—'प्रागावस' नामक अंगिराकुल के गोत्रकार का नामांतर।

प्रागायण—एक ऋषिगण, जो कश्यपकुल का गोत्रकार था।

प्रागावस—अंगिरा कुल का एक गोत्रकार, जिसके नाम के लिए 'प्रागाथम' पाठभेद प्राप्त है।

प्राचिन्वत्—पूरुवंशीय 'प्राचीन्वत्' राजा का नामांतर (प्राचीन्वत् देखिये)।

प्राचीनगर्भ—अलम्बुषा नामक अप्सरा के पुत्र सारस्वत ऋषि का नामांतर।

२. सृष्टि तथा छाया का एक पुत्र।

प्राचीनबर्हि 'प्रजापति'—(स्वा. उत्तान.) एक प्रजापति, जो मनुवंशीय हविर्धान नामक राजा को हविर्धानी नामक पत्नी से उत्पन्न ज्येष्ठ पुत्र था (म. अनु. १४७.२४–२५)।

इसका वास्तविक नाम 'बर्हिषद' था। कहते हैं, इसने इतने यज्ञ किये कि, यज्ञ करते समय पूर्व दिशा की ओर रक्खे गये 'पूर्वाग्र दर्भों' से पृथ्वी आच्छादित हो उठी। इसीलिये इसे प्राचीनबर्हि (प्राचीन = पूर्व; बर्हि = दर्भ) नाम प्राप्त हुआ।

समुद्रकन्या शतद्रुति अथवा सवर्णा इसकी पत्नी थी, जिससे इसे प्रचेतस् नामक दस पुत्र उत्पन्न हुए (भा. ४.२४.८.१३; ह. वं. १.२.३१; विष्णु. १.१४.३–६; म. अनु. १४७.२४–२५)।

कर्मकाण्ड और योगाभ्यास में यह अत्यंत कुशल था। इसके निम्नलिखित पाँच भाई थे, जिनकी सहायता से इसने विभिन्न स्थानों पर अनेक यज्ञ किये—गय, शुक्ल, कृष्ण, सत्य और जितव्रत।

इसे योग्य राजर्षि देख कर, नारद ने पुरंजन राजा का आख्यान बता कर ब्रह्मज्ञान दिया (भा. ४. २५–२९)। ब्रह्मा ने नारायण से श्रवण किया हुआ 'सात्त्वतधर्म' इसे सिखाया, यही नहीं, ब्रह्मा ने 'ऋष्यादि क्रम' का ज्ञान भी इसे दिया।

महाभारत में इसे अत्रिकुलोत्पन्न एक नृप, एवं प्रजापति कहा गया है (म. शां. २०१.६)। वृद्धावस्था में यह अपने पुत्रों पर प्रजारक्षण का भार सौंप कर, तपस्या के हेतु कपिलाश्रम चला गया (भा. ४.२९.८१)। आकाश में स्थित, सप्तार्षियों में, पूर्वदिशा की ओर बर्हिषद नाम से यह निवास करता है।

२. स्वायंभुव मन्वन्तर का एक राजा। दक्ष प्रजापति के यज्ञ में सती ने देहत्याग किया था, उस समय यह भरतखण्ड का राजा था।

प्राचीनयोग—एक आचार्य, जो वायु और ब्रह्मांड के अनुसार, व्यास की सामशिष्यपरंपरा में शृंगीपुत्र ऋषि का पुत्र था (व्यास देखिये)।

प्राचीनयोगीपुत्र—एक आचार्य, जो सांजीवीपुत्र नामक ऋषि का पुत्र था। इसके शिष्य का नाम कार्षकेयीपुत्र था (बृ. उ. ६.५.२)। शतपथ ब्राह्मण में इसके शिष्य का नाम भालुकीपुत्र दिया गया है (श. ब्रा. १४. ९. ४. ३२)। संभव है, 'प्राचीनयोग' की किसी स्त्री-वंशज का पुत्र होने के कारण, इसे यह नाम प्राप्त हुआ हो।

२. एक आचार्य, जो वायु एवं ब्रह्मांड के अनुसार, व्यास की सामशिष्यपरंपरा में कौथुम पाराशर्य ऋषि का शिष्य था।

प्राचीनयोग्य 'शौचेय'—तत्त्वज्ञान का एक आचार्य, जो पाराशर्य का शिष्य था (बृ. उ. २. ६. २)। यह उद्दालक का समकालीन था, एवं इसके शिष्य का नाम गौतम था (श. ब्रा. ११. ५. ३. १; ८)। सम्भव है,

' प्राचीनयोग ' ऋषि का वंशज होने के कारण, इसे यह नाम प्राप्त हुआ हो।

एक तत्वज्ञानी के नाते से इसका उल्लेख उपनिषदों में प्राप्त है (छां. उ. ५.१३.१; तै. उ. १.६.२)। इसके वंश के निम्नलिखित आचार्यों का निर्देश जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण में प्राप्त हैं:--पुलुष, सत्ययज्ञ, सोमशुष्म (जै. उ. ब्रा. १. ३९. १)।

प्राचीनशाल औपमन्यव--एक आचार्य एवं ईश्वर-शास्त्रविद्, जो सत्ययज्ञ एवं इन्द्रद्युम्न का समकालीन था (छां. उ. ५.११.१)। जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण में इसका निर्देश ' प्राचीनशालि ' नाम से किया गया है, एवं इसे एक उद्गाता पुरोहित कहा गया है (जै. उ. ब्रा. ३.१०.१)। इसकी परंपरा के ' प्राचीनशाल ' लोगों का निर्देश भी उक्त ब्राह्मण ग्रंथ में प्राप्त है।

प्राचीनशालि--प्राचीनशाल औपमन्यव नामक आचार्य का नामांतर (जै. उ. ब्रा. ३.७.२; ३; ५; ७)।

प्राचीन्वत्--(सो. पूरु.) एक पूरुवंशीय राजा, जो पूरु राजा का पौत्र एवं जनमेजय (प्रथम) का पुत्र था। इसकी माता का नाम अनंता था। इसे ' अविद्ध ' नामांतर भी प्राप्त है। इसने एक रात्रि में, उदयाचल से लेकर सारी प्राची दिशा को जीत लिया, इसीलिए इसका नाम प्राचीन्वत् पड़ा। इसकी स्त्री का नाम आश्मकी यादवी था, जिससे इसे शय्याति (संयाति) नामक पुत्र था (म. आ. ९०.१२-१३)।

प्राचेतस--वाल्मीकि ऋषि का नामांतर (भा. ९.११.१०)। वाल्मीकि रामायण में वाल्मीकि ने स्वयं को प्राचेतस कहा है (वा. रा. उ. ९६.१८)। यह भृगुकुल में उत्पन्न हुआ था (वा. रा. उ. ९३.१६-१८; ९४.२५; मत्स्य. १२.५१; म. शां. ५८.४३)। इसने अघमर्षण तीर्थ पर दीर्घकाल तक तपस्या की थी (भा. ६.४.२१)।

२. (सो. द्रुह्यु.) दस प्रचेताओं द्वारा वार्क्षी या मारिषा से उत्पन्न सौ पुत्रों का सामूहिक नाम, जिनमें दक्ष प्रजापति प्रमुख था (म. आ. ७०.४)। ये उत्तर दिशा में रहनेवाले म्लेंच्छों के अधिपति हुए।

३. प्राचीनबर्हि के दस पुत्रों का सामूहिक नाम।

प्राचेय--कश्यपकुल का एक गोत्रकार।

प्राजापत्य--प्रजापति के वंशजों का सामुहिक नाम। प्रजापति के वंशज होने के नाते, निम्नलिखित वैदिक सूक्तकारों को 'प्राजापत्य' उपाधि प्राप्त है--आरुणि सौपर्णेय (तै. आ. १०.७९), पतंग (ऋ. १०.१७७), परमेष्ठिन् (जै. उ. ब्रा. ३.४०.२), प्रजावत् (ऐ. ब्रा. १.२१), यक्ष्मनाशन (ऋ. १०.१६१), यज्ञ (ऋ. १०. १३०), विमद (ऋ. १०.२०), विष्णु (ऋ. १०.१८४), संवरण (ऋ. ५.३३)।

प्राण--स्वायंभुव मनु के दामाद भृगु ऋषि का पौत्र। भृगुपुत्र विधाता इसका पिता एवं मेरुकन्या नियति इसकी माता थी। इसे वेदशिरस् नामक एक पुत्र था (भा. ४.१.४४)

२. स्वारोचिष मन्वंतर के सप्तर्षियों में से एक।

३. अष्टवसुओं में से दूसरा वसु। इसके पिता का नाम सोम और माता का नाम मनोहरा था। इसके बड़े भाई का नाम वर्चा, एवं दो छोटे भाइयों का नाम शिशिर और रमण था (म. आ. ६०.२१)।

४. एक देव, जो अंगिरा और सुरूपा मारीची के पुत्रों में से एक था।

५. साध्य देवों में से एक।

६. तुषित देवों में से एक।

७. एक राजा, जो वसिष्ठ की कन्या पुंडरिका का पति था (वसिष्ठ देखिये)।

प्राणक--प्राण नामक अग्नि का पुत्र (म. व. २१०.१)।

प्रातर--(स्वा. उत्तान.) एक राजा, जो पुष्पार्ण एवं प्रभा का ज्येष्ठ पुत्र था।

२. धाता नामक सातवें आदित्य का पुत्र, जिसकी माता का नाम राका था (भा. ६.१८.३)।

३. कौरव्यकुल का एक नाग, जो जनमेजय के सर्पसत्र में दग्ध हुआ था (म. आ. ५२.१२)। पाठभेद-(भांडारकर संहिता)-' पातपातर '।

प्रातरह्न कौहल-- एक आचार्य, जो केतु वाज्य ऋषि का शिष्य था। इसके शिष्य का नाम सुश्रवस् वार्षगण्य था (वं. ब्रा. १)।

प्रातर्दन-- संयमन नामक आचार्य का पैतृक नाम (कौ. उ. २.५)।

प्रातर्दनि--क्षत्रश्री राजा का नामांतर (ऋ. ६.२६.८)। प्रतर्दन का वंशज होने के कारण, इसे यह नाम प्राप्त हुआ होगा।

प्रातिकामिन् (**प्रातिकामी**)--दुर्योधन का सारथि (म. स. ६०.२-३)। दुर्योधन की सभा में द्रौपदी को लाने के लिए सर्वप्रथम यही गया था। द्रौपदी ने जब सभा में आने से इन्कार कर दिया, तब इसने द्रौपदी के द्वारा कहीं हुयी बात सभा में आ कर दुर्योधन से कहीं (म. स. ६०.

४-१७)। दुर्योधन ने इसे पुनः द्रौपदी के पास जाने के लिये कहा। लेकिन भीम के डर के कारण, इसने पुनः जाना अस्वीकार कर दिया (म. स. ६०.२९)। यह भारतीय युद्ध में मारा गया (म. श. ३२.४३)।

प्रातिथेयी—लोपामुद्रा की बहन गभस्तिनी का नामांतर (वडवा एवं गभस्तिनी देखिये)। इसके नाम के लिये 'नातिथेयी' पाठभेद भी प्राप्त हैं।

प्रातिपीय—कुरु राजा 'बल्हिक' का पैतृक नाम (श. ब्रा. १२.९.३.३)। इसे प्रतिवंश राजा का शिष्य कहा गया है (सां. आ. १५.१)।

प्रातिवेश्य—एक आचार्य, जो प्रतिवेश्य ऋषि का शिष्य था (सां. आ. १५.१)।

प्रातीबोधीपुत्र—सांख्यायन आरण्यक में निर्दिष्ट एक आचार्य (सां. आ. ७.१३; ऐ. ब्रा. ३.१.५)। संभव है, 'प्रतीबोध' के किसी स्त्रीवंशज का पुत्र होने के कारण, इसे यह नाम प्राप्त हुआ हो।

प्रातृद्—भाल्ल नामक आचार्य का पैतृक नाम (जै. उ. ब्रा. ३.३१.४; बृ. उ. ५.१३.१)।

प्राद्युम्नि—यादव राजा अनिरुद्ध का नामांतर (म. स. ६०)।

प्राधा—प्राचेतस दक्ष प्रजापति की कन्या एवं कश्यप ऋषि की पत्नी। इसकी माता का नाम असिक्री था। इसे 'अरिष्टा' नामांतर भी प्राप्त है (अरिष्टा देखिये)।

कश्यप ऋषि से इसे तेइस देवगंधर्व पुत्र, एवं इक्कीस अप्सरा कन्यायें उत्पन्न हुयीं। इसके पुत्रों में हाहा, हूहू, तुम्बरु एवं असिबाहु, तथा कन्याओं में अलम्बुषा तथा अनवद्या प्रमुख थीं (कश्यप देखिये)।

महाभारत में प्राधा के दस पुत्र, एवं आठ कन्यायें दी गयीं हैं (म. आ. ५९.१२; ४४-४६)।

प्राध्वंसन—एक आचार्य, जो प्रध्वंसन नामक ऋषि का शिष्य था। बृहदारण्यक उपनिषद् मे मृत्यु नामक आचार्य का पैतृक नाम 'प्राध्वंसन' बताया गया है (बृ. उ. २.६.३; ४.६.३)। अथर्वन् दैव इसका शिष्य था।

प्राप्ति—जरासन्ध की कन्या एवं जरासन्धपुत्र सहदेव की छोटी बहन। यह कंस की पत्नी थी। इसकी दुसरी बहन अस्ति भी कंस को ब्याही थी (भा. १०. ५०. १)।

महाभारत में, इसका निर्देश प्रास्ति नाम से किया गया है (म. स. १४. ३०)। किन्तु यह पाठभेद त्रुटिपूर्ण प्रतीत होता है।

२. धर्म के शम नामक पुत्र की पत्नी (म. आ. ६०. ३०)।

प्रामति—ब्रह्मसावर्णि मन्वंतर के सप्तर्षियों में से एक।

प्रायण—एक दानव, जो कश्यप एवं दनु के पुत्रों में से एक था।

प्रावरेय—गर्गों का पैतृक नाम (क. सं. १३. १२)।

प्रावहि—एक आचार्य, जिसके द्वारा यज्ञविधि में असावधानी से हुए 'कर्मविपर्यास' के लिये प्रायश्चित्त बताया गया है (सां. ब्रा. २६.४)। इसके नाम के लिये 'प्रागहि' पाठभेद प्राप्त है।

२. अंगिराकुल का एक गोत्रकार।

प्रावारकर्ण—एक चिरंजीवी उलूक, जो हिमालय-पर्वत पर निवास करता था (म. व. १९१.४)।

प्रावाहणि—बबर नामक साहित्याचार्य का पैतृक नाम (बबर देखिये)।

प्रावेणि—अंगिराकुल का एक गोत्रकार।

प्राश्नीपुत्र—एक आचार्य, जो आसुरायण ऋषि का शिष्य था। इसके शिष्य का नाम सांजवीपुत्र था (बृ. उ. ६.५.२)। शतपथ ब्राह्मण में, इसे आसुरिवासिन् का शिष्य, एवं इसके शिष्य का नाम काशीकेयीपुत्र बताया गया है (श. ब्रा. १४.९.४.३३)।

प्रास्ति—जरासंध की कन्या 'प्राप्ति' का नामांतर (प्राप्ति १. देखिये)।

प्रास्रवण—अवत्सार ऋषि का पैतृक नाम (सां. ब्रा. १३.३)। इसके नाम के लिए 'प्राश्रवण' पाठभेद भी उपलब्ध है।

प्रियक—स्कंद का एक सैनिक (म. श. ४४.६०)।

प्रियभृत्य—एक नृप (म. आ. १.१७६)।

प्रियंवदा—राधिका की सखी। अर्जुनि नामक स्त्री का रूप धारण करनेवाले अर्जुन के जपानुष्ठान के समय, इसने उसका संरक्षण किया था (पद्म. पा. ७४)।

प्रियदर्शन—द्रुपद का एक पुत्र। द्रौपदीस्वयंवर के उपरांत हुए युद्ध में, कर्ण ने इसका वध किया था (म. आ. परि. १. क्र. १०३; पंक्ति १३१-१३२)।

प्रियनिश्चय—भव्य देवों में से एक।

प्रियमाल्यानुलेपन—स्कंद का एक सैनिक (म. श. ४४.५५)।

प्रियमेध आंगिरस—एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. ८. २.१-४०; ६८; ६९; ८७; ९.२८)। ऋग्वेद में इसके

परिवार के लोगों का निर्देश ‘प्रियमेधाः’ नाम से किया गया है (ऋ. १.४५.४)। प्रियमेध ब्राह्मण अजमीढ वंश में उत्पन्न माने जाते हैं (भा. ९.२१.२१)। इसके वंश में पैदा हुए ‘प्रियमेध’ नामक ऋषियों ने आत्रेय उद्मय राजा के लिए यज्ञ किया था (ऐ. ब्रा. ८.२२; प्रैयमेध देखिये)।

इसके द्वारा रचित सूक्तों में अतिथिग्वपुत्र इंद्रोत, आश्वमेध और ऋक्षपुत्र राजाओं का उल्लेख आश्रयदाता के रूप में किया गया है (ऋ. ८.६८.१५-१९)। इसका संरक्षण अश्विनीयों ने भी किया था (ऋ. ८.५.२५)।

ओल्डेनबर्ग के अनुसार, जिन सूक्तों के प्रणयन का श्रेय इसे ऋग्वेद में दिया गया है, वे इसके द्वारा रचित नहीं हो सकते (ओल्डेन. त्सी. गे. ४२.२१७)।

प्रियरथ--एक राजा, जो पज्रों का आश्रयदाता था (ऋ. १.१२२.७)। सायणाचार्य के अनुसार, यह किसी व्यक्तिविशेष का नाम न होकर विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है।

प्रियवर्चा--कुवेर की एक अप्सरा। यह शाप के कारण मगर बनी थी, जिसका अर्जुन ने बाद में उद्धार किया था (स्कंद. १.२.१)।

प्रियव्रत--एक राजा, जो स्वायंभुव मनु के पुत्रों में से एक था। इसकी माता का नाम शतरूपा था। इसके पराक्रम के कारण, पृथ्वी पर सात द्वीप एवं सात समुद्रों का निर्माण हुआ (भा. ३.१२.५५; ४.७.८; पद्म. सृ. ३; भवि. ब्राह्म. ११७)।

इसके द्वारा सात द्वीपों एवं सात समुद्रों के निर्माण की चमत्कारपूर्ण कथा भागवत में निम्न रूप से वर्णित है।

प्रियव्रत राजा अत्यंत पराक्रमी था। एकबार अपने एक पहियेवाले रथ में बैठ कर अत्यंत वेग से इसने मेरु के चारों ओर प्रदक्षिणा की। इसका वेग इतना अधिक था कि, सूर्य मेरु के जिस भाग पर प्रकाश डालता था, उसके विपरीत दिशा में हमेशा यह रथ घुमा लेता था। इसलिये मेरु पर्वत की जो दिशा सूर्य के अभाव में अंधकारमय रहनी चाहिये, वह भी इसके प्रकाश के योग से आलोकित रहती थी। इसलिये इसके राज्यकाल में पृथ्वी पर कभी भी अंधकार न रहा। इसके रथ के पहियों के कारण मेरु के चारों ओर जो सात गड्ढे हुए, वे ही बाद में सप्तसमुद्र के नाम से प्रसिद्ध हुए, तथा प्रत्येक दो गड्ढों के बीच में जो जगह बची, वे द्वीप बन गये। इस प्रकार प्रियव्रत के रथ के कारण, मेरु पर्वत के चारों ओर सात समुद्र तथा सप्तद्वीप बने।

प्रियव्रत को विश्वकर्मा की कन्या बर्हिष्मती दी गयी थी। उससे इसे इध्मजिह्व, यज्ञबाहु, महावीर, अग्नीध्र, सवन, वीतिहोत्र, मेधातिथि, घृतपृष्ठ, कवि तथा हिरण्यरेतस् नामक दस पुत्र तथा ऊर्जस्वती नामक कन्या हुयी। उनमें से महावीर, कवि तथा सवन नामक तीन पुत्र बचपन में ही तपस्या के लिए वन में चले गये। बाकी बचे सात पुत्रों को इसने एक एक द्वीप बाँट दिये (भा. ५.१; वराह. ७४)। इसके पुत्रों में बाँटे गये सप्तद्वीप इस प्रकार थे:-इध्मजिह्व--प्लक्षद्वीप, यज्ञबाहु--शाल्मलिद्वीप, अग्नीध्र-जंबुद्वीप, वीतिहोत्र-पुष्करद्वीप, मेधातिथि-शाकद्वीप, घृतपृष्ठ-क्रौंचद्वीप, हिरण्यरेतस्-कुशद्वीप। इसकी ऊर्जस्वती नामक कन्या का विवाह कविपुत्र उशनस् ऋषि से हुआ था।

ब्रह्माण्ड में इसकी पत्नी का नाम काम्या बताया गया है, एवं उसे पुलहवंशीय कहा गया है। काम्या से उत्पन्न हुए प्रियव्रत राजा के दस पुत्रों ने आगे चल कर क्षत्रियत्व को स्वीकार किया, एवं वे सप्तद्वीपों के स्वामी बन गये (ब्रह्माण्ड. २.१२.३०-३५)।

इसे बर्हिष्मती (काम्या) के अतिरिक्त और भी एक पत्नी थी, जिससे इसे उत्तम, तापस एवं रैवत नामक तीन पुत्र हुए। वे पुत्र स्वायंभुव एवं स्वारोचिष मन्वन्तरों के पश्चात् संपन्न हुए उत्तम, तामस तथा रैवत मन्वन्तरों के स्वामी बन गये।

प्रियव्रत अत्यंत धर्मशील था, एवं देवर्षि नारद इसका गुरु था। इसने ग्यारह अर्बुद (दशकोटि) वर्षों तक राज्य किया। बाद में राज्यभार पुत्रों को सौंप कर, यह नारद द्वारा उपदेशित योगमार्ग का अनुसरण कर; अपनी पत्नी के साथ साधना में निमग्न हुआ।

इसका मेधातिथि नामक पुत्र शाकद्वीप का राजा था। वहाँ इसने सूर्य का एक देवालय बनवाया। किन्तु शाकद्वीप में एक भी ब्राह्मण न होने के कारण, अब समस्या यह थी कि, मूर्ति की स्थापना किस प्रकार की जाय। तब इसने सूर्य का आवाहन कर उससे सहायता के लिए याचना की। सूर्य ने इसे दर्शन दे कर ‘मग’ नामक आठ ब्राह्मणों का निर्माण किया, तथा उनके सन्मान की इसे रीति बतायी (भविष्य. ब्राह्म. ११७; मग देखिये)।

२. आद्य देवों में से एक।

३. मद्र देश का राजा। इसे कीर्ति तथा प्रभा नामक दो स्त्रियाँ थीं। इसके दो प्रधानों का नाम धूर्त तथा कुशल था। इसके पुत्र का नाम क्षिप्रप्रसादन था, जो परम गणेशभक्त था। इसे गणेशजी द्वारा परशु प्राप्त होने के कारण, परशुबाहु भी कहा जाता है (गणेश.)।

प्रियव्रत रौहिणायन—शतपथ ब्राह्मण में निर्दिष्ट एक आचार्य (श. ब्रा. १०.३.५.१४)।

प्रियव्रत सोमापि— एक आचार्य, जो सोमप नामक ऋषि का पुत्र था (ऐ. ब्रा. ७.३४; सां. आ. १५.१)। इसके नाम के लिए 'प्रियव्रत सौमापि' पाठभेद भी उपलब्ध है। सांख्यायन आरण्यक में इसे 'सोमप' (सोम पीनेवाला) उपाधि से उद्देशित किया गया है।

पितरों के 'मृत' और 'अमृत' दो प्रकार होते हैं। पितरों में से 'ऊम' नामक पितर 'अमृत' प्रकार में आते हैं। किन्तु प्रियव्रत के अनुसार, जो पितर यज्ञ में भाग लेते हैं वे सभी 'अमृत' प्रकार में आते हैं।

प्रीति--दक्ष की कन्या, जो पुलस्त्य ऋषि की पत्नी थी। पुलस्त्य से इसे दानाग्नि, देवबाहु, अत्रि नामक तीन पुत्र, एवं सद्वती नामक एक कन्या थी (पुलस्त्य देखिये)।

२. कामदेव की पत्नी रति का नामांतर।

प्रैयमेध--आचार्यों का एक सामूहिक नाम, जिन्होंने अंगराज के पुरोहित आत्रेय उद्मय के लिये यज्ञ किया था (ऐ. ब्रा. ८.२२)। तैत्तिरीय ब्राह्मण में तीन प्रैयमेधों का निर्देश प्राप्त है (तै. ब्रा. २.१.९.१)। उनमें से एक केवल एक समय, सुबह ही 'अग्निहोत्र' होम करता था; दूसरा सुबहशाम दो बार, तथा तीसरा सुबह, दोपहर, तथा शाम तीनों समय 'अग्निहोत्र' होम करता था। पश्चात्, इन तीनों में यह तय पाया गया कि, उक्त होम दिन में केवल दो बार ही किया जाये। तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी यह कथा इसी प्रकार दी गयी है।

यजुर्वेद संहिताओं में इन्हें सभी यज्ञगायनों का विज्ञ कहा गया है (का. सं. ६.१; मै. सं. १.८)। गोपथ ब्राह्मण में इन्हें भारद्वाज कहा गया है (गो. ब्रा. १.३.१५)।

ऋग्वेद के सिंधुक्षित् नामक सूक्तद्रष्टा को प्रियमेधपुत्र के अर्थ से 'प्रैयमेध' पैतृक नाम प्रदान किया गया है।

प्रोति कौशांबेय कौसुरुबिन्दि—एक आचार्य, जो उद्दालक ऋषि का शिष्य और उसका समकालीन था (श. ब्रा. १२.२.२.१३)। गोपथ ब्राह्मण में इसे 'प्रेदि कौशाम्बेय कौसुरविन्द' कहा गया है (गो. ब्रा. १. २. २४)। किसी कुसुरुविन्द का वंशज होने के कारण, इसे यह नाम प्राप्त हुआ होगा।

तैत्तिरीय संहिता में इसे औद्दालकि (उद्दालक का वंशज) कहा गया है (तै. सं. ७.२.२.१)। इससे प्रतीत होता है कि, इसके पैतृक नाम एवं समकालीनता से सम्बन्धित वक्तव्यों को अधिक महत्त्व न देना चाहिये।

प्रोवा—प्राचेतस दक्ष प्रजापति की कन्या, जो कश्यप ऋषि की पत्नी थी। इसकी माता का नाम असिक्नी था। कश्यप से इसे कोई भी सन्तान न हुयी (कश्यप देखिये)।

प्रोष्ठपाद वारक्य—एक आचार्य, जो कंस वारकि नामक ऋषि का शिष्य था (जै. उ. ब्रा. ३.४१.१)।

प्रौष्ठपद—कुबेर का कोषाध्यक्ष और मंत्री (वा. रा. उ. १५.१६)।

प्लक्ष--दारुक नामक शिवावतार का शिष्य।

प्लक्ष दय्यांपति—एक आचार्य, जो अत्यंहस् आरुणि नामक ऋषि का समकालिन था। उसने अपने शिष्यों के द्वारा इससे सावित्राग्नि के बारे में अशोभनीय प्रश्न पुछवाये थे (तै. ब्रा. ३.१०. ९.३)।

प्लति--गय प्लात नामक आचार्य का पिता।

प्लवंग--राम की सेना का एक वानर (वा. रा. उ. ४०.७)।

प्लाक्षायण--एक वैयाकरण, जो आचार्य प्लाक्षि का समकालीन था। विसर्ग सन्धि के बारे में इसके मत तैत्तिरीय प्रातिशाख्य में निर्देशित है (तै. प्रा. ९.६)।

प्लाक्षि—एक वैयाकरण, जो प्लाक्षायण नामक आचार्य का समकालीन था। विसर्गसन्धि के बारे में इसके इसके मत तैत्तिरीय प्रातिशाख्य में दिये गये है (तै. प्रा. ५.३.८; ९.६; तै. आ. १.७.३)। प्लक्ष का वंशज होने के कारण, इसे प्लाक्षि नाम प्राप्त हुआ होगा।

'प्लाक्षि' उपाधि पैतृक नाम के रूप में 'सप्तकर्ण' को भी दी गयी है (सप्तकर्ण देखिये)

प्लात--गय प्लात नामक वैदिक सूक्तद्रष्टा का पैतृक नाम (ऐ. ब्रा. ५.२; गय प्लात देखिये)। संभव है, 'प्लति' का वंशज होने के कारण, इसे यह नाम प्राप्त हुआ होगा।

प्लायोगि—आसंग नामक दानवीर राजा एवं वैदिक सूक्तद्रष्टा का पैतृक नाम (आसंग देखिये)।

फ

फलभक्ष--कुवेर की सभा का एक यक्ष (म. स. १०.१७)।

फलहार--अंगिराकुल का एक गोत्रकार।

फलौदक--कुवेर की सभा का एक यक्ष (म. स. १०.१७)।

फल्गुतंत्र--अयोध्या का राजा, जो सगर राजा का पिता था। इसकी वृद्धावस्था में तालजंघादि हैहयों ने अयोध्या पर आक्रमण कर, उसे अपने अधिकार में कर लिया, और इसे अपनी पत्नी के साथ राज्य से निकाल दिया। अयोध्या से निकल कर, यह सपत्नीक और्वाश्रम में आकर रहने लगा, और वहीं इसकी मृत्यु भी हुयी। मृत्यु के समय इसकी पत्नी गर्भवती थी, जिसे कालांतर में सगर नामक पुत्र हुआ (ब्रह्मांड. ३.४७)।

मत्स्य तथा विष्णु पुराण में इसके नाम के लिए 'बाहु' पाठभेद प्राप्त है (बाहु देखिये)।

फाल्गुन--अर्जुन का नामांतर। हिमालय के शिखर पर, उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में अर्जुन का जन्म हुआ था। इसीसे उसे यह नाम प्राप्त हुआ (म. वि. ३९.१०)।

फेन--(सो. उशी.) उशीनरवंशीय एक राजा, जो उषद्रथ राजा का पुत्र था। इसके पुत्र का नाम सुतपस् एवं पौत्र का नाम बलि औशीनर था, जो अपने समय का सुविख्यात शासक था (ह. वं. १.३१.३२)।

फेनप--एक ऋषिसमुदाय, जो गोदुग्ध के फेन को खा कर ही जीवित रहते थे (म. उ. १००.५; अनु. ४५. ४१ कुं.)।

२. भृगुकुल का एक गोत्रकार, जिसकी कथा भीष्म द्वारा युधिष्ठिर को गोमहात्म्य बताने के लिए निवेदित की गयी थी। इसका मूल नाम सुमित्र था। यह त्रिशिखर पर्वत पर, कुलजा नदी के तट पर, गाय के दूध का फेन खा कर जीवित रहता था। इसलिये इसे फेनप नाम प्राप्त हुआ (म. अनु. १२०-१२३ कुं.)।

३. पितरों में से एक।

ब

बक--कंस के पक्ष का एक असुर, जिसे कंस ने कृष्ण के वध के लिये गोकुल भेजा था।

बगुले का वेश धारण कर यह गोकुल गया। वहाँ गोप सखाओं के साथ क्रीड़ा में निमग्न कृष्ण को देख कर इसने उसे निगल लिया। कृष्ण इसके शरीर में पहुँच कर इसे पीड़ा से दग्ध करने लगा। अतएव इसने उसे तत्काल उगल कर, यह अपनी पैनी चोंच से उसे मारने लगा। इसका यह कुकृत्य देखकर, कृष्ण ने इसकी चोंच के दोनों जबड़ों को चीरकर इसका वध किया (भा. १०. ११)।

ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार, पूर्वजन्म में यह सहोत्र नामक गंधर्व था। यह कृष्णभक्त था, और दुर्वास ऋषि के आश्रम में रहकर, कृष्ण की प्राप्ति लिए इसने अत्यधिक तपस्या भी की। एक बार कृष्ण की पूजा के हेतू पार्वती के सरोवर से कमल तोड़ने के अपराध में, वहाँ के रक्षकों द्वारा यह शिवजी के सम्मुख पेश किया गया। शिवजी ने इसकी निष्ठा को देखकर आशीष देते हुए कहा, 'अगले जन्म में तुम्हें कृष्ण के दर्शन होंगे, एवं उन्हींके हाथों तुम्हें मुक्ति भी प्राप्त होगी' (ब्रह्मवै. ४. १६)।

२. एक नरभक्षी राक्षस, जो एकचक्रा से दो कोस की दूरी पर, यमुना नदी के किनारे वेत्रवन नामक घने जंगल की एक गुफा में रहता था। इसका एकचक्रा नगरी तथा वहाँ के जनपद पर शासन चलता था (म. आ. १४८. ३-८)। अलंबुस तथा किर्मीर इसके भाई थे।

एकचक्रा नगरी के व्यक्तियों ने अत्यधिक परेशान हो कर, इसे घरबैठे ही भोजन भेजवा देने के लिए, हर एक व्यक्ति की पारी बाँधी दी।

अब हर एक दिन इसके भोजन के लिए, तीस मन चावल, दो भैंसे तथा एक व्यक्ति नगरनिवासियों की ओर से जाने लगी। एक दिन एक गरीब ब्राह्मण की पारी आयी, जिसके घर लाक्षागृह से निकलने के उपरांत कुंती के साथ पांडवों ने निवास किया था। ब्राह्मण के उपर आयी हुयी विपत्ति को देख कर, कुंतीद्वारा भीम सब खाने-पीने के सामान के साथ राक्षस के निवासस्थान भेजा गया। भीम बक के यहाँ जाकर सारे सामान को स्वयं खाने लगा। यह देख कर बक क्रोधित होकर भीम पर झपटा, और दोनों में मल्लयुद्ध आरम्भ हो गया। अन्त में भीम ने बक का वध किया (म. आ. ५५.२०; १४४–१५२)।

३. अंधकासुर के पुत्र आडि नामक असुर का नामांतर (आडि देखिये)।

बक दाल्भ्य—एक ऋषि, जो दाल्भ्य ऋषि का भाई था (म. स. ४.९; २६.५; परि. १. क्र. २१. पंक्ति १–४)। महाभारत में इसके नाम का निर्देश दाल्भ्य के साथ प्रायः हर एक जगह आया है। किन्तु, यह निर्देश कभी 'बकदाल्भ्यौ' (बक एवं दाल्भ्य) रूप से, एवं कभी 'बको दाल्भ्यः' (दल्भ का पुत्र बक) रूप में भी प्राप्त है। इसीकारण यह दाल्भ्य ऋषि का भाई था, अथवा दल्भ ऋषि का पुत्र था, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। उपनिषदों में 'दाल्भ्य' बक ऋषि का पैतृक नाम दिया गया हैं (छां. उ. १.२.१३; क. सं. ३०.२; दाल्भ्य देखिये)।

कई विद्वानों के अनुसार, ग्लाव मैत्र एवं यह दोनों एक ही व्यक्ति थे। 'जैमिनि उपनिषद् ब्राह्मण' में, आजकेशिनों के लिए इन्द्र को विवश करनेवाले एक व्यक्ति के रूप में, तथा कुरू-पंचाल के रूप में इसका उल्लेख किया गया है (जै. उ. ब्रा. १.९.२;४.७.२)।

तीर्थयात्रा करता हुआ बलराम, बक दाल्भ्य के आश्रम आया था। वहाँ बलराम को इसके बारे में निम्नलिखित कथा ज्ञात हुअी। उस कथा में बक दाल्भ्य के प्रत्यक्ष उपस्थिति का उल्लेख नहीं है, जिससे ज्ञात होता है कि, उस समय यह आश्रम में न था।

एक बार, यह नैमिषारण्य के ऋषियों द्वारा आयोजित द्वादशवर्षीयसत्र एवं विश्वजित् यज्ञ में भाग लेकर, पांचाल देश पहुँचा। वहाँ के राजा ने इसका उचित आदरसत्कार कर, उत्तम जाति की इक्कीस गायों को दक्षिणा के रूप में इसे भेंट की। इन गायों को स्वीकार कर, इसने उन्हें नैमिषारण्यवासी ऋषियों का प्रदान करते हुए कहा, 'इन गायों को आप लोग ग्रहण करें, मैं सार्वभौम कुरुराजा धृतराष्ट्र के पास जाकर पुनः दक्षिणा प्राप्त करूँगा'।

धृतराष्ट्र से विरोध—धृतराष्ट्र के पास जाने के बाद इसे वहाँ धृतराष्ट्र द्वारा मृतक गायों की दक्षिणा प्राप्त हुयी। अपने इस अपमान को देखकर, यह कुरुराज पर अत्यधिक क्रोधित हुआ एवं उसके विनाश के लिए यज्ञ करने लगा। दक्षिणा में प्राप्त मृतक गायों को उसी यज्ञ में हवन कर, इसने धृतराष्ट्र के वंश, राज्य आदि के विनाश के लिए प्रार्थना की।

इस यज्ञ का प्रभाव यह हुआ कि, धृतराष्ट्र का राज्य दिन पर दिन उजड़ कर नष्टप्राय होने लगा, मानों किसी–ने हरेभरे बन के वृक्षों को कुल्हड़ी से काट कर रख दिया हो। राष्ट्र की हालत देखकर, ज्योतिषियों के परामर्श से धृतराष्ट्र बक ऋषि की शरण गया, एवं राष्ट्र को विनाश से मुक्त करने की याचना करने लगा। धृतराष्ट्र की दयनीय स्थिति को देख कर, तथा उसकी प्रार्थना से द्रवीभूत होकर, यह राष्ट्रसंहारक मन्त्रों को छोड़कर राष्ट्रकल्याणकारी मन्त्रों के उच्चारण के साथ पुनः यज्ञ करने लगा, जिससे राष्ट्र विनाश से बच गया। इससे प्रसन्न होकर धृतराष्ट्र ने बक ऋषि को अनेकानेक सुन्दर गायोंको दक्षिणा के रुप में भेंट दी, जिन्हें लेकर यह नैमिषारण्य वापस लौट गया (म. श. ४०)।

तत्त्वज्ञान—युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में यह ब्रह्मा नामक ऋत्विज बना था। पाण्डवों के अश्वमेध यज्ञ के समय, अश्व के रक्षणार्थ निकला हुआ अर्जुन इसका दर्शन करने के लिए इसके आश्रम आया था। उस समय अर्जुन के साथ जो इसका संवाद हुआ था, वह इसकी परम विरक्ति एवं मितभाषणीय स्वभाव पर काफ़ी प्रकाश डालता है।

इसके आश्रय में कोई झोपडी न थी। यह खुले मैदान में, सर पर एक वटवृक्ष के पत्ते को रक्खे हुए तपस्या कर रहा था। अर्जुन ने इसे इसप्रकार बैठा देखकर प्रश्न किया 'यह सर पर वटपत्र क्या अर्थ रखता है?' इसने जवाब दिया 'धूप से बचने के लिए'। अर्जुन ने पुछा, 'इसके लिए आप को झोपडी आदि बनवाना चाहिये'। इसने जवाब दिया 'उम्र इतनी कम है कि, इन चीज़ों के लिए समय ही कहाँ?' इस पर अर्जुन ने इसकी आयु पूँछी। तब इसने जवाब दिया 'ब्रह्मा की बीस अहोरात्रि'।

ब्रह्मा का हर एक दिन और रात एक सहस्त्र वर्षों की होती है, यह मन ही मन जान कर, अर्जुन को इसकी आयु हजारों सालों की प्रतीत हुयी। बाद में, अर्जुन इसे पालकी में सम्मानपूर्वक बिठा कर युधिष्ठिर के अश्वमेधयज्ञ में ले गया (जै. अ. ६०)।

बहुत वर्षों तक जीनेवाले व्यक्ति को किन दुःख-सुखों के बीच गुजरना पडता है, इस सम्बन्ध में इसका तथा इन्द्र का संवाद हुआ था। इस संवाद में इन्द्र ने उल्लेख किया है कि, इसकी आयु एक लाख वर्षों से भी अधिक थी (म. व. परि. १. क्र. २१)।

यह अधिक काल तक जीवित रहा, इसके सम्बन्ध में एक और कथा 'जैमिनि अश्वमेध' में दी गयी है। एक बार इसने अभिमान में आ कर ब्रह्मा से कहा, 'मैं तुमसे आयु में ज्येष्ठ हूँ, अतएव मेरा स्थान तुमसे ऊँचा है'। ब्रह्मा ने इसके द्वारा इसप्रकार की अपमानभरी वाणी सुन कर, इसके मिथ्याभिमान एवं भ्रम के निवारणार्थ प्राचीन ब्रह्मदेवों का साक्षात् दर्शन करा कर सिद्ध कर दिया कि, यह उसकी तुलना में कुछ भी नही था (जै. अ. ६१)।

लंकाविजय के पूर्व, राम बक दाल्भ्य के आश्रम गया था, और समुद्र किस प्रकार पार किया जाय, इसके बारे में राय माँगी थी। तब इसने राम को 'विजया एकादशी' का व्रत बता कर उसे करने के लिए कहा। इसी व्रत के कारण ही, राम रावण का वध कर विजय प्राप्त कर सका (पद्म. उ. ४४)।

छांदोग्य उपनिषद् में—बक दाल्भ्य की एक कथा दी गयी है, जिसमें ऐहिक सुखप्राप्ति के लिए मन्त्रोच्चारण का स्वांग रचानेवाले लोगों का लक्षणात्मक रूप से उपहास किया गया है। यह कथा कुत्तों से सम्बधित है, जो बक दाल्भ्य द्वारा देखी गयी। इन्होंने देखा कि, एक सफेद कुत्ते से अन्य कुत्ते अपने खाने की समस्या को रखकर निवेदन कर रहे है, 'हम भुखे है, क्या खायें! कहाँ से हमें कैसे अन्न प्राप्त हो!' सफेद कुत्ते ने कहा, 'ठीक है, कल आओ, हम देंगे तुम्हें भोजन'। यह सुनकर कुत्ते चले गये और दुसरे दिन फिर उसी सफेद कुत्ते के पास पहुँचे। बक ऋषि भी जिज्ञासावश दूसरे दिन सफेद कुत्ते की करामत देखने को हाजिर हुए। ऋषि ने देखा कि, सभी कुत्तों के चुपचाप खडे हो जाने के उपरांत, गर्दन उँची कर सफेद कुत्ता साभिमानपूर्वक मनगठन्त मन्त्र उँच्चारीत करने लगा—'हिम् ॐ। हम खायेंगे। ॐ हम पियेंगे। भगवान् हमें अनाज दे। हे अनाज देनेवाले प्रभो, हमें अनाज दे। (छां. उ. १.१२)।

बकनख—विश्वामित्र का ब्रह्मवादी पुत्रों में से एक। (म. अनु. ४.१८)।

बकी—पूतना राक्षसी का नामांतर।

बटु—गीता का नित्यपाठ करनेवाला भक्त ब्राह्मण। धर्माचरण करने के कारण, मृत्योपरांत इसे स्वर्ग की प्राप्ति हुयी। पर इसका नश्वर शरीर इसी लोक में रहा। पक्षियों ने इसके मृत शरीर के समस्त मांस को खा डाला, केवल अस्थिपंजर ही शेष बचा। पश्चात् वर्षा के दिनों में इसकी खोपडी बरसाती पानी से भर गयी, जिसके स्पर्श से एक पापी का उद्धार हुआ (पद्म. उ. १७९)

बध्यश्व—(सो. नील.) एक राजा, जो वायु के अनुसार सुमहायशस् राजा का पुत्र था। मत्स्य के अनुसार, 'बध्यश्व' सुविख्यात 'वध्र्यश्व' राजा का ही पाठभेद है (वध्र्यश्व देखिये)।

बंदिन्—ऐंद्रद्युम्नि जनक राजा के राजसभा का वाक्पटु पंडित (म. व. १३२.४)। राजा जनक को इसने अपना परिचय 'वरुणपुत्र' के रूप में दिया था (म. व. १३४.२४)। किन्तु महाभारत में अन्यत्र, इसे सूतपुत्र भी कहा गया है (म. व. १३४.२१)।

इसने अन्य ब्राह्मणों के साथ कहोड को शास्त्रार्थ में परास्त कर, शर्त के अनुसार जल में डूबोया था (म. व. १३२.१३)। अन्त में, अष्टावक्र ने अपने पिता कहोड की मृत्यु का बदला लेने के लिये, इसे वादविवाद में हराया था (म. व. १३४.३-२१)। इस समय अष्टावक्र की आयु दस ग्यारह वर्षों ही की थी (म. व. १३२.१६; १३३.१५; अष्टावक्र देखिये)। इस प्रकार पुरानी शर्त के अनुसार, ऐंद्रद्युम्नि जनक ने इसे समुद्र में प्रवेश करने के लिए विवश किया (म. व. १३४.३७)।

महाभारत में दी गयी बंदिन् की कथा में, जनक को ऐन्द्रद्युम्नि (म. व. १३३.४), उग्रसेन (म. व. १३४.१। तथा पुष्करमालिन् (म. व. १३३.१३) कहा गया है। विदेह की वंशावलि में जनक के ये नाम अनुपलब्ध हैं।

महाभारत में इसके नाम के लिए बंदिन् (म. व. १३२.१३; १३३.१८; १३४.२), तथा बंदि (म. व. १३१.४.१३३.५) दोनों पाठभेद प्राप्त हैं।

बंधु—(सू. दिष्ट.) एक राजा, जो भागवत के अनुसार, वेगवान् राजा का पुत्र था। अन्य पुराणों में इसे 'बुध' भी कहा गया है।

बंधु गौपायन (**लौपायन**)--एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. ५. २४. १; १०. ५७–६०)।

बंधुपालित (मौर्य. भविष्य)—एक राजा, जो वायु के अनुसार कुनाल का, एवं ब्रह्मांड के अनुसार कुशाल का पुत्र था। इसने आठ वर्षों तक राज्य किया।

बंधुमत्—(सू. दिष्ट.) एक राजा, जो भागवत एवं वायु के अनुसार केवल राजा का पुत्र था। इसके पुत्र का नाम वेगवान् था। इसके नाम के लिए 'धुंधुमत्' पाठभेद भी उपलब्ध है (धुंधुमत् देखिये)।

बबर प्रावाहणि—एक आचार्य, जो श्रेष्ठ वक्ता बनना चाहता था। इसी इच्छा के वशीभूत होकर इसने पंचविंश यज्ञ किया था, जिससे इसे भाषासौन्दर्यशक्ति, साहित्यज्ञान तथा वक्तृत्वकला प्राप्त हुयी (तै. सं. ७. १. १०. २)।

बभ्रु--(सो. पुरूरवस्.) एक राजा, जो ययाति का पौत्र एवं द्रुह्यु का पुत्र था। इसके पुत्र का नाम सेतु था। कई ग्रन्थों में इसें बभ्रुसेतु भी कहा गया है, पर वास्तविकता यह है कि, सेतु इसके भाई का नाम था। वायु में इसके पुत्र का नाम रिपु दिया गया है (वायु. ९९.७.)।

२. (सो. क्रोष्टु.) एक राजा, जो रोमपाद का पुत्र था। पद्म में इसे लोमपाद का पुत्र कहा गया है, और इसके पुत्र का नाम धृति बताया गया है (पद्म. सृ. १३)।

कई ग्रन्थों में इसके पुत्र का नाम कृति भी मिलता है।

३ विश्वामित्र ऋषि के ब्रह्मज्ञानी पुत्रों में से एक (म. अनु. ४.५०)। इसके वंश के लोग भी 'बाभ्रव्य' नाम से ही प्रसिद्ध हुए (ब्रह्म. १०. ६१; वायु. ९१. ९९)।

४. सात्वतवंशीय अक्रूर राजा का नामांतर (ब्रह्मांड. १.७१.८१; म. शां. ८२. १७; अक्रूर देखिये)।

५. एक आचार्य, जो भागवत के अनुसार, व्यास के अथर्ववेदशिष्य परंपरा के आंगिरस शुनक का शिष्य था। इसे आंगिरस ने अथर्वसंहिता प्रदान की थी (भा. १२ ७.३; व्यास देखिये)।

६. मत्स्यनरेश विराट का एक पुत्र (म. उ. ५६. ३३)।

७. कश्यप कुलोत्पन्न संपाति का ज्येष्ठ पुत्र। इसके भाई का नाम शीघ्रग था (पद्म सृ. ६.६८)।

८. ऋषभ पर्वत पर रहनेवाला एक गंधर्व।

९. एक स्मृतिकार, जो बभ्रुस्मृति का रचियता कहा जाता है (C. C.)।

बभ्रुआत्रेय--एक वैदिक आचार्य एवं सूक्तद्रष्टा, जिसने ऋणंचय राजा से उपहार प्राप्त किये थे (ऋ. ५. ३०. ११–१४)। ऋग्वेद में अन्य जगह इसे अश्वियों का आश्रित भी कहा गया है (ऋ. ८.२२.१०; बृहद्दे. ५. १३.३३–३४)। अथर्ववेद में भी एक स्थान पर बभ्रु का निर्देश प्राप्त है (अ. वे. ४.२९.२)। किन्तु व्हिट्नें इसे व्यक्तिवाचक नाम नहीं मानते।

बभ्रु काश्य--काशी का सुविख्यात राजा, जिसे श्रीकृष्ण की कृपा से राज्यश्री का लाभ हुआ था (म. ३. २८. १३)।

बभ्रु कौरूभ्य--तांड्य ब्राह्मण में निर्दिष्ट एक सामद्रष्टा (तां. ब्रा. १५.३.१३)।

बभ्रु दैवावृध—(सो. क्रोष्टु.) एक यादववंशीय राजा, जो सात्त्वतपुत्र देवावृध का पुत्र था। इसकी माता का नाम पर्णाशा था। इसके नाम के लिये 'भानु' पाठभेद प्राप्त है।

यह राजर्षि यज्ञविद्या में बडा ही निपुण था। सहदेव सार्ञ्जय ने इसे सोम बनाने की विशेष पद्धति प्रदान की थी। ऐतरेय ब्राह्मण में इसे पर्वत एवं नारद का शिष्य कहा गया है (ऐ. ब्रा. ७. ३४)। सायणाचार्य इसे दो अलग व्यक्ति मानते है।

यह बड़ा ही दयालु एवं उपकारी राजा था। इसने लोगों को दान भी प्रचुर यात्रा में दिये थे। इसकी उदारता के कारण ही, इसे दानपति नाम प्राप्त हुआ था।

इसके पुण्यकर्मों के कारण, इसके वंश का उद्धार हुआ (भा. ९.२४.१०.)। इसके वंश के नृप भोज 'मार्तिवतक' नाम से सुविख्यात हैं (ब्रह्म. १५.३५–४५.)।

महाभारत में इसे वृष्णिवंशीय यादव, एवं यदुवंशियों के सात मंत्रिपुंगवों में से एक कहा गया है (म. स. १३. १५९*)।

सुभद्राहरण के समय रैवतक पर्वत पर हुए महोत्सव में यह उपस्थित था (म. आ. २११.१०)। एकबार श्रीकृष्ण से मिलने यह द्वारका गया था, उस समय शिशुपाल ने इसके पत्नी का हरण किया था (म. स. ४२.१०)।

द्वारका में हुए 'यादवी युद्ध' के समय, इसने श्रीकृष्ण के पास ही बने हुए पेयपदार्थों का सेवन किया था (म. मौ. ४.१५)। द्वारका में हुए यादवी युद्ध में सारे यादव लोगों का संहार हो गया, एवं द्वारकानिवासी यादव स्त्रियों की जान खतरे में आ गयी। उस समय दस्यु आदि

चोर धनादि के लोभ से आक्रमण न करे, इसलिये यादव स्त्रियों का रक्षण करने का काम, श्रीकृष्ण नें इसे एवं दारुक को कहा था। किंतु इसके पहले ही मौसलयुद्ध में फेंके गये एक मूसल से इसकी मृत्यु हो गयी (म. मौ. ५.५-६)।

बभ्रुमालिन्—युधिष्ठिर की सभा का ऋषि (म. स. ४.१४)।

बभ्रुवाहन— मणिपुरनरेश चित्रवाहन की पुत्री चित्रांगदा के गर्भ से अर्जुनद्वारा उत्पन्न एक शूरवीर शासक (म. आ. २०७.२१-२३)। चित्रवाहन ने अर्जुन को अपनी कन्या देने से पूर्व वह शर्त रक्खी थी कि, 'इसके गर्भ से जो भी पुत्र होगा, वह यही रह कर इस कुलपरम्परा का प्रवर्तक होगा। इस कन्या के विवाह का यही शुल्क आपको देना होगा।' 'तथास्तु' कह कर अर्जुन ने वैसा ही करने की प्रतिज्ञा की।

जन्म—चित्रांगदा के पुत्र हो जाने पर उसका नाम बभ्रुवाहन रख्खा गया। उसे देख कर अर्जुन ने राजा चित्रवाहन से कहा—'महाराज! इस बभ्रुवाहन को आप चित्रांगदा के शुल्क के रूप में ग्रहण कीजिये, जिससे मैं आप के ऋण से मुक्त हो जाऊँ'। इस प्रकार बभ्रुवाहन धर्मतः चित्रवाहन का पुत्र माना गया (म. आ. २०६.२४-२६)। चित्रवाहन राजा उसी प्रभंजन राजा का वंशज था, जिसने पुत्र न होने पर शंकर की तपस्या कर पुत्रप्राप्ति के लिये वर प्राप्त किया था (प्रभंजन देखिये)। चित्रवाहन के उपरांत यह मणिपूर राज्य का अधिकारी बना, जिसकी राजधानी मणलूरपूर थी (म. आ. ३.८१; परि. १, क्र. ११२)।

युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के समय, इसने सहदेव को करभार दिया था (म. स. परि. १, क्र. १५. पंक्ति ७३)।

अर्जुनविरोध—युधिष्ठिर द्वारा किये गये अश्वमेध के अश्व के साथ, घूमता घूमता अर्जुन इसके राज्य में आया था। इसने यज्ञ का अश्व देख कर उसे अपने अधिकार में कर लिया। पर जैसेहि इसे पता चला कि, यह मेरे पिता का ही अश्व है, इसने अश्व को धनधान्य तथा द्रव्यादि के साथ अर्जुन के पास लौटा दिया। अर्जुन ने बभ्रुवाहन के इस कार्य की कटु आलोचना की, तथा इसकी निर्बलता तथा असहाय स्थिति पर शोक प्रकट करते हुए इसके द्वारा दिये गये द्रव्यादि को लौटा दिया।

अर्जुन के व्यंग वचनों को सुन कर, इसने अपने मंत्री सुबुद्धि के साथ यज्ञ के अश्व को पकड़ कर नगर भेज दिया, तथा अपने सेनापति सुमति के साथ ससैन्य अर्जुन पर धावा बोल दिया। इस युद्ध में बभ्रुवाहन ने अपने अभूतपूर्व शौर्य का प्रदर्शन किया, तथा अर्जुन को रण में परास्त कर उसका वध किया। इसी युद्ध में कर्णपुत्र वृषकेतु का भी इसने वध किया (जै. अ. ३७)।

विजयोल्लास में निमग्न बभ्रुवाहन राजधानी वापस लौटा, तथा अपनी वीरता की कहानी के साथ अर्जुन की मृत्यु का समाचार इसने चित्रांगदा को कह सुनाया। यह समाचार सुनते ही, इसकी माँ शोक में विलाप करती हुयी पति के शव के साथ सती होने को तत्पर हुयी। इस प्रतिक्रिया को देख कर, अपनी माता-पिता का हत्यारा अपने को मान कर, यह स्वयं ही आत्महत्या के लिये प्रस्तुत हुआ।

मृतसंजीवन—उक्त स्थिति को देख कर, इसकी सौतेली माँ उलूपी, जो अर्जुन की नागपत्नी थी, वह भी दुःखित हुयी। उसने इसे तथा चित्रांगदा को सात्वना देते हुए युक्त बतायी कि, यदि यह शेषनाग के पास जा कर मृतसंजीवक मणी को ले आये, तो अर्जुन पुनः जीवित हो सकता है। इसपर यह शेषनाग से मणि लाने गया, किंतु अन्य सर्पों के बहकाने पर शेषनाग ने इसे मणि देने से इन्कार कर दिया। अन्त में, शेषनाग को युद्ध में परास्त कर, यह उस मणि को लेकर अपने नगर वापस आया।

मणि को लेकर यह अर्जुन के शवके पास गया। किंतु इसने वहाँ देखा कि, अर्जुन का कटा हुआ सर किसी के द्वारा चुरा लिया गया है। यह बड़ा हताश हुआ, किन्तु कृष्ण अपने पुण्यप्रभाव से पुनः उस सर को वापस लाया। इस प्रकार अर्जुन मणि के द्वारा जीवित किया गया। दोनों पिता-पुत्र पुनः मिले, तथा अर्जुन अश्वमेध अश्व के साथ आगे चल पड़ा (जै. अ. २१-४०)।

महाभारत में अर्जुन एवं बभ्रुवाहन के बीच हुए युद्ध की कथा कुछ अलग ढंग से दी गयी है। इस ग्रन्थ में अर्जुन की मृत्यु नहीं दिखायी गई है, बल्कि दिखाया गया है कि, बभ्रुवाहन ने अपनी सौतेली माता उलूपी के द्वारा प्राप्त किये हुए मायावी अस्त्रों के द्वारा अर्जुन को युद्ध में मूर्च्छित किया (उलूपी देखिये)।

यह घटना सुन कर चित्रांगदा ने उलूपी की निर्भत्सना की, तथा उसे बुरा भला कहा। उलूपी ने अपनी गल्ती स्वीकार कर बभ्रुवाहन को मृतसंजीवक मणि दी, तथा कहा 'इसे ले जा कर अर्जुन के वक्षस्थल पर रक्खो। वह पुनः

जीवित हो जायेगा' (म. आश्व. ८१.९-१०)। मणि के स्पर्श से अर्जुन पुनः जीवित हो उठा। पितापुत्र दोनों गले मिले। पश्चात्, अर्जुन ने बड़े सम्मान के साथ बभ्रुवाहन को युधिष्ठिर के होनेवाले अश्वमेध के लिये निमंत्रित किया, एवं यह अपनी दोनों माताओं के साथ यज्ञ में सम्मिलित हुआ (म. आश्व. ९०. १)।

२. कृतयुग का एक राजा। एक बार यह मृगया के हेतु वन को गया था, जहाँ सुदेव की प्रेतात्मा ने अपने पूर्वजन्म की कथा इससे कही थी (गरुड़. २.९)।

बम्ब आजद्विष—एक आचार्य, जो अजद्विष का वंशज था (जै. उ. ब्रा. २. ७. २-६)। इसके नाम के लिए 'बिम्ब' पाठभेद उपलब्ध है।

बम्बाविश्वावयस्—एक ऋषिद्वय, जिन्होंने एक विशिष्ट देवता को सोमरस अर्पित करने का एक नया संप्रदाय स्थापित किया था। इन्होंने किसी अन्य संस्कारों का भी प्रणयन किया था (तै. सं. ६. ६. ८. ४; क. सं. २९. ७)। काठक संहिता में, इनके नाम के लिये 'बम्भा', एवं मैत्रायणी संहिता में 'बम्ब' पाठभेद दिया गया है (मै. सं. ४. ७. ३)।

बरु—एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. १०. ९६; ऐ. ब्रा. ६. २५; सां. ब्रा. २५. ८)।

बर्कु वार्ष्ण—शतपथ ब्राह्मण में निर्दिष्ट एक तत्त्वज्ञ आचार्य, जिसने 'अन्तिम तत्व नेत्र' का प्रतिपादन किया था (श. ब्रा. १. १. १. १०; बृ. उ. ४. १. ४; ५. १. ८)।

बर्बर—बर्बर देश के निवासी। इनकी गणना उन म्लेच्छ जातियों में की जाती है, जिनकी उत्पत्ति नन्दिनी के पार्श्वभाग से हुयी थी (म. आ. १६५.३६)। अन्य म्लेच्छ वंशियों के साथ, राजा सगर ने इन्हें भी पराजित किया था, किन्तु अपने गुरु विश्वामित्र के आग्रह पर, इन्हे विकृतरूप बना कर छोड़ दिया (सगर देखिये)।

महाभारत के अनुसार, भीमसेन ने अपने पूर्वदिग्विजय के समय, तथा नकुल ने अपने पश्चिमदिग्विजय के समय इन्हें जीतकर भेट वसूल की थी (म. स. २९.१५)। ये युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ में भी भेंट लेकर आयें थे (म. आ. ४७.१९)।

बर्बरिक—भीमपुत्र घटोत्कच का पुत्र, जो प्रग्ज्योतिषपुर के गुरु दैत्य की कन्या मौर्वी से उत्पन्न हुआ था। 'चंडिका कृत्य' में अतिशय पराक्रम दिखाने के कारण, इसे 'चंडिल' नामांतर भी प्राप्त हुआ। श्रीकृष्ण ने स्नेहवंश इसे 'सुहृदय' नाम दिया था।

पूर्वजन्म—पूर्वजन्म में यह सूर्यवर्चस् नाम यक्ष था। एक बार दानवों के अत्याचार से पीड़ित हो कर, समस्त देव विष्णु के पास गये एवं दानवों का नाश कर पृथ्वी के भूभार हरण की प्रार्थना उन्होंने विष्णु से की। उस समय इसने अहंकार के साथ कहा, 'विष्णु की क्या आवश्यकता है, मैं अकेला सारे दैत्यों का नाश कर सकता हूँ'। इसकी यह गर्वोक्ति सुन कर ब्रह्मा ने इसे शाप दिया, 'अगले जन्म में कृष्ण के हाथों तेरा वध होगा'।

देवी उपासना—ब्रह्मा के द्वारा मिले हुए शाप का शमन करने के हेतु, अगले जन्म में कृष्ण ने इससे देवी उपासना करने के लिये उपदेश दिया। अंत में विजय नामक ब्राह्मण की कृपा से देवी को प्रसन्न कर, इसने महाजिह्वा नामक बलिष्ठ राक्षसी, तथा रेपलेंद्र राक्षस का वध किया। दुहद्रु नामक गर्दभी एवं एक जैन श्रमण का भी मुष्टिप्रहार द्वारा वध किया। विजय ने इसे शत्रु के मर्मस्थान को वेधने के लिये विभूति प्रदान की, एवं भारतीय युद्ध में कौरवों के विपक्ष में उसे प्रयोग करने के लिये कहा।

एक बार अपने पितामह भीम को न पहचान कर, इसने उसके साथ मल्लयुद्ध कर पराजित किया। बाद में पता चलने पर, आत्मग्लानि अनुभव कर यह आत्महत्या के लिए प्रस्तुत हुआ। तत्काल, देवी ने प्रकट हो कर कहा, 'तुम्हें कृष्ण के हाथों मर कर मुक्ति प्राप्त करनी है, अतएव यह कुकृत्य न करो'।

भारतीय युद्ध में यह पांडवों के पक्ष में शामिल था, तथा कौरवपक्ष को परास्त करने के लिए इसने अपनी विभूति का प्रयोग किया था। वह विभूति पाण्डव, कृपाचार्य, एवं अश्वत्थामा को छोड कर बाकी सारे मित्रों तथा शत्रुओं के मर्मस्थान पर लगी, जिससे रणभूमि में कोलाहल मच गया। यह विभूति कृष्ण के पैर के तलवे पर भी लगी, जिससे क्रोधित हो कर कृष्ण ने सुदर्शन चक्र से इसका सर काट दिया। पश्चात् देवी ने इसे पुनः जीवित किया। भारतीय युद्ध के पश्चात्, श्रीकृष्ण के कहने पर यह 'गुप्तक्षेत्र' में जा कर निवास करने लगा (स्कंद. १.२.६०-६६)।

बर्हकेतु—दक्ष सावर्णि मनु का एक पुत्र।

बर्हणाश्व—(सू. इ.) एक राजा, जो भागवत के अनुसार निकुंभ राजा का पुत्र था। विष्णु, वायु तथा मत्स्य में, इसे 'संहताश्व' कहा गया है।

बर्हिन्--एक देवगंधर्व, जो कश्यप एवं प्राधा के दस देवगंधर्व पुत्रों में से एक था (म. आ. ५९.४५)।

बर्हिषद्-- दैवी जाति के पितरों का एक गण, जो दक्षिण दिशा में सोमप (सोमपदा) नामक स्थान में रहता था। इसकी मानसकन्या का नाम पीवरी था (पितर देखिये)।

२. (स्वा. उत्तान.) प्राचीनबर्हि प्रजापति का नामान्तर (प्राचीनबर्हि प्रजापति देखिये)।

३. त्रिलोकी को उत्पन्न करने में समर्थ पूर्वदिशा-निवासी सप्तर्षियों में से एक (म. शां. २०८. २७-२८)। ब्रह्माजी नें इसे सात्वतधर्म का उपदेश दिया था (म. शां. ३३८. ४५-४६)।

बर्हिष्मती--स्वायंभूव मन्वंतर के प्रजापति की कन्या, जो स्वायंभूव मनु के ज्येष्ठपुत्र प्रियव्रत को विवाह में दी गयी थी (भा. ५. १. २४)।

बर्हिसादि--अंगिराकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

बल--एक असुर, जो कश्यप एवं दनायु के पुत्रों में से एक था (म. आ. ६५; स्कंद १.४.१४)। इसे निम्न-लिखित तीन भाई थे:--विक्षर, वीर एवं वृत्र (म. आ. ५९.३२)। यही पौंड्र देश के राजा के रूप में उत्पन्न हुआ था (म. आ. ६१.४१)।

हिरण्याक्ष की ओर से यह इंद्र के साथ युद्ध करने गया था, जिस समय इसने इंद्र को ऐरावत के साथ नीचे गिरा कर मूर्च्छित किया था। अन्त में इंद्र ने इसका वध किया (पद्म. सृ. ६७)।

२. वरुण एवं उसकी ज्येष्ठ पत्नी देवी का एक पुत्र (म. आ. ६०.५१)।

३. (सू. इ.) एक इक्ष्वाकुवंशीय राजा, जो परिक्षित् एवं मंडुकराज की कन्या सुशोभना का पुत्र था। इसके शल एवं दल नामक दो भाई थे (म. व. १९०)। भागवत में दल एवं बल ये दोनो एक ही व्यक्ति माने गये है (दल १. देखिये)।

४. रामसेना का एक वानर, जो कुंभकर्ण के साथ युद्ध में उसका ग्रास बन गया था (म. व २७१. ४)।

५. वायुद्वारा स्कंद को दिये गये दो पार्षदों में से एक। दुसरे पार्षद का नाम अतिबल था (म. श. ४४.४०)।

६. एक प्राचीन ऋषि, जो अंगिरा का पुत्र था एवं पूर्व दिशा में निवास करता था (म. शां. २०१.२५)। इसके नाम के लिये 'नल' पाठभेद प्राप्त है।

७. एक सनातन विश्वेदेव (म. अनु. ९१.३०)।

८. एक दैत्य, जो कश्यप एवं दिति के पुत्रों में से एक था। दिति द्वारा सौ वर्षोंतक तप करने पर यह उत्पन्न हुआ था। बड़ा होने पर कश्यप ने इसका व्रतबंध किया, एवं इसे ब्रह्मचर्य का उपदेश दिया। पश्चात् इसने सौ वर्षों तक ब्रह्मचर्यव्रत का पालन कर घोर तपस्या की।

इसका तप समाप्त होने पर, दिति ने इसे स्वर्ग पर आक्रमण करने के लिये कहा। किन्तु कश्यप की दूसरी पत्नी अदिति को यह वृत्तांत ज्ञात होते ही उसने इंद्र को चेतावनी दी। अनंतर समुद्रकिनारे जाप करते हुए इसे देख कर, इंद्र ने वज्रप्रहार कर इसका वध किया (पद्म. भू. २३)।

९. विष्णु का एक पार्षद। वामनावतार के समय, वामनरूपधारी श्रीविष्णु ने बलि को पाताल में ढकेल दिया। तत्पश्चात् बलि के यज्ञमंडप में उसके अनुगामियों ने काफी हलचल मचा दी। उससमय उन राक्षसों का जिन विष्णुपार्षदों ने निवारण किया, उनमें यह एक था (भा. ८.२१.१६)।

१०. कुशिककुल का एक मंत्रकार, जिसे उद्गल नामांतर भी प्राप्त था।

११. वायु के अनुसार भृगुकन्या श्री का पुत्र।

१२. गरुड एवं कश्यपकन्या शुकी के छः पुत्रों में से एक (ब्रह्मांड. ३.७.४५०)।

१३. अनायुषा नामक राक्षसी के पाँच पुत्रों में से एक (ब्रह्मांड. ३.६.३१-३७)।

१४. श्रीकृष्ण एवं लक्ष्मणा के पुत्रों में से एक।

१५. बलराम का नामांतर।

१६. एक मायावी दैत्य, जो मयासुर का पुत्र था। यह अतल नामक पाताल में रहता था। इसने छियान्नवे प्रकार की 'माया' का निर्माण कर, उसे मायावी दैत्यों को दिया था, जिसका प्रयोग कर वे लोगों को त्रस्त किया करते थे।

एक बार इसने जमुहाई ली, जिससे स्वैरिणी, कामिनी तथा पुंश्चली नामक तीन प्रकार की दुश्चरित्र स्त्रियों के गण उत्पन्न हुए। उन स्त्रियों पास हाटक नामक एक ऐसा पेयपदार्थ था, जिसे पुरुषों को पिला कर एवं उन्हें कामवासना की भावना में उन्मत्त बना कर, वे संभोग करवाती थी (भा. ५.२४.१६)।

इंद्र एवं जालंधर दैत्य के बीच हुए युद्ध में, इसने जालंधर की ओर से लड़कर, युद्ध में इन्द्र के छक्के छुड़ा दिये, तथा अन्त में इन्द्र परास्त होकर इसकी शरण में

आया। इन्द्र ने बल की स्तुति की, जिससे प्रसन्न होकर इसने उससे वर माँगने को कहा। इन्द्र ने कहा 'तुम मुझे अपने शरीर का दान दो, उसे ही मैं चाहता हूँ'। बल ने कहा, 'तुम मेरे शरीर को ही चाहते हो, तो उसके टुकडे कर उसे प्राप्त करो'। फिर इन्द्र ने इसके शरीर के अनेक टुकडें कर उन्हें इधरउधर फेंक दिये। ये टुकडें जहाँ जहाँ गिरे, वही रत्नों की खाने खडी हो गयी।

इसकी मृत्यु के बाद, इसकी पत्नी प्रभावती शोक में विलाप करती हुयी असुरों के गुरु शुक्राचार्य के पास गयी, तथा उनसे सारी कथा बता कर, अपने पति के जिलाने की प्रार्थना की। शुक्राचार्य ने कहा, 'बल को जिलाना असम्भव है। मैं माया के प्रभाव से उसकी वाणी को तुम्हे अवश्य सुनवा सकता हूँ'। गुरुकृपा से प्रभावती ने बल की वाणी सुनी—'तुम मेरे शरीर में अपने शरीर को त्याग कर मुझे प्राप्त करो'। ऐसा सुन कर बल की देह में अपने शरीर को त्याग कर, प्रभावती उसीमें मिल कर नदी बन गयी (पद्म. उ. ६)।

बलक--तामस मन्वन्तर के सप्तर्षियों में से एक।

२. एक दानव, जो कश्यप एवं दनु के पुत्रों में से एक था।

३. मणिवर एवं देवजनी के 'गुह्यक' पुत्रों में से एक।

बलद्--एक अग्नि, जो भानु नामक अग्नि का जेष्ठ पुत्र था। यह प्राणियों को प्राण एवं बल प्रदान करता है।

बलन्धरा--काशिराज की कन्या, जो पांडुपुत्र भीमसेन की भार्या थी। इसके विवाह के लिये काशिराज ने यह शर्त रखी थी कि, जो अधिक बलवान् हो, वही इसके साथ विवाह कर सकता है। भीमसेन ने यह शर्त जीत ली, एवं उसका इसके साथ विवाह संपन्न हो गया। भीमसेन से इसे सर्वग नामक पुत्र उत्पंन्न हुआ था (म. आ. ९०. ८४)।

बलबन्धु--रैवत मनु का एक पुत्र।

२. एक प्राचीन नरेश (म. आ. १.१७७)।

३. त्रिधामन् नामक शिवावतार का शिष्य।

बलमित्र--एक राजा, जो वीरमणिपुत्र रुक्मांगद का मौसेरा भाई था। राम के अश्वमेध यज्ञ का अश्व वीरमणि ने पकड लिया था। उस समय हुए शत्रुघ्न एवं वीरमणि के युद्ध में, यह वीरमणि के पक्ष में शामिल था (पद्म. पा. ४०)।

बलमोदक--कुंडल नगरी का राजा सुरथ का पुत्र। राम के अश्वमेध यज्ञ का अश्व सुरथ ने पकड लिया था। उस समय हुए शत्रुघ्न एवं सुरथ के युद्ध में, यह सुरथ के पक्ष में शामिल था (पद्म. पा. ४९)।

बलराम--(सो. वृष्णि.) वसुदेव तथा रोहिणी का पुत्र, जो भगवान् श्रीकृष्ण का अग्रज, एवं शेष का अवतार था (म. आ. ६१. ९१)। भगवान् नारायण के श्वेत केश से इसका अविर्भाव हुआ था (म. आ. १८९.३१)।

वसुदेव देवकी कंस के द्वारा कारागार में बन्दी थे। उसीसमय देवकी गर्भवती हुयी, तथा बलराम उसके गर्भ में सात महीने रहा। इसके उपरांत योगमाया से यह वसुदेव की द्वितीय पत्नी रोहिणी के गर्भ में चला गया, जो उस समय गोकुल में थी। वहीं इसका जन्म हुआ (भा. ९. २४. ४६; १०. २. ८; पद्म. उ. २४५)। एक गर्भ से दूसरे गर्भ में जाने के कारण, इसे संकर्षण नाम प्राप्त हुआ।

यह देखने में अत्यंत सुन्दर था, अतएव इसे 'राम', तथा बलपौरुष के कारण 'बलराम' कहा गया। यह शत्रुओं के दमन के लिये सदैव हल तथा मूसल धारण करता था। अतएव इसे 'हली', 'हलायुध', 'सीरपाणी', 'मूसली' तथा 'मुसलायुध' भी कहते है।

बलराम कृष्ण से तीन माह बड़ा था तथा सदैव कृष्ण के साथ रहता था (म. आ. २३४)। यह बाल्यावस्था से ही परमपराक्रमी, युद्धवीर एवं साहसी था, तथा इसने धेनुक तथा प्रलंब नामक असुरों का वध किया था (म. स. परि. १. क्र. २१, पंक्ति. ८१९–८२०; विष्णु. ५. ८–९; भा. १०. १८; ह. वं. २. १४. ६२)।

यह सदैव नीलवस्त्र धारण करता था, तथा इसके शरीर में सदैव कमलों की माला रहती थी। ये सारी चीजे इसे यमुना नदी से प्राप्त हुयी थी, जिसकी कथा निम्न प्रकार से विष्णुपुराण में दी गयी है।

एक बार इसने भावातिरेक में आ कर यमुना से भोग करने की इच्छा प्रकट की। यमुना तैयार न हुयी, तब क्रोध में आ कर इसने मथुरा के पास उसका प्रवाह मोड़ दिया, जिसे विष्णु में 'यमुनाकर्ष' कहा गया है। तब यमुना ने बलराम को शरीर में धारण करने के लिए नील परिधान, तथा कमलों की माला दे कर इसे प्रसन्न किया (विष्णु. ५.२५)।

बाल्यकाल--सांदीपनि ऋषि के यहाँ कृष्ण के साथ इसने वेदविद्या, ब्रह्मविद्या तथा अस्त्रशस्त्रादि का ज्ञान प्राप्त किया। यह गदायुद्ध में अत्यधिक प्रवीण था। इसकी शक्ति-साहस के ही कारण, कृष्ण जरासंध को सत्रह बार युद्ध में

पराजित कर सका। जरासंध का वध करने के लिये, इसने तपस्या कर 'संवर्तक' नामक हल, एवं 'सौनंद' नामक मुसल प्राप्त किया था (ह. वं. २.३५.५९-६५; विष्णु. ५.२२.६-७)।

विद्याध्ययन के उपरांत, ककुद्मीकन्या रेवती से इसका विवाह हुआ, तथा अधिकाधिक यह आनर्त देश में अपने श्वसुर के यहाँ ही रहता था। जरासंध इतनी बार कृष्ण से हार चुका था, फिर भी चिन्ता का कारण बना हुआ था; अतएव कृष्ण ने मथुरा से हटकर अपनी राजधानी द्वारका बनायी।

एक बार यह नंद तथा यशोदा से मिलने के लिए गोकुल गया था, तथा वहाँ दो माह रहा भी था। यह आसवपान का बड़ा शौकीन था, अतएव इसके लिये उसकी भी व्यवस्था की गयी थी।

जल्दबाज स्वभाव--यह वीरपराक्रमी एवं अजेय था, उसी तरह यह इतना भावुक एवं जल्दबाज़ भी था कि, उतावलेपन में ऐसा कार्य कर बैठता कि, जिससे परिवार के लोक तंग आ जाते। इसमें किसी चीज़ के सोचने समझने की विवेकपूर्ण समझदारी न थी।

हस्तिनापुर में दुर्योधन की पुत्री लक्ष्मणा के विवाह के संबंध में स्वयंवर था। बलराम के भतीजे कृष्णपुत्र सांब ने स्वयंवर में जा कर, लक्ष्मणा का हरण किया। किन्तु दुर्योधन द्वारा हस्तिनापुर में दोनों पकड़ कर लाये गये। दुर्योधन कौरववंशीय होने के कारण, कभी न चाहता था कि उसकी कन्या यादववंशीय कृष्णपुत्र सांब को ब्याही जाये। उक्त घटना को सुनते ही बलराम हस्तिनापुर गया। क्रोधाग्नि में सारे कौरवपक्षीय राजाओं को इसने पराजित किया, एवं इसने हस्तिनापुर को अपने हल से खींच उसकी रचना ही घुमायी, एवं उसको टेढ़ामेढ़ा बना दिया (विष्णु. ५.३५; भा. १०.६८; लक्ष्मणा २. देखिये)। यही कारण है कि, हस्तिनापुर का धरातल आज भी ऊँचानीचा अजीब तरह का है।

यादववंशीय राजा सत्राजित् के पास स्यमंतक मणि था, जिसे कृष्ण चाहता था। पर सत्राजित् ने उसे देने से इन्कार कर दिया। उस मणि के संबंध में सत्राजित् एवं कृष्ण के दरम्यान हुए झगड़े में, बलराम ने सत्राजित् का पक्ष स्वीकार लिया, एवं लोगों के सामने कृष्ण को दोषी ठहराते हुए आरोप लगाया, 'तुम मणि के इच्छुक थे, तुमने ही स्यमंतक चुराया है'। इस घटना के कारण बलराम कृष्ण से इतना नाराज हुआ कि, बिना कुछ कहे मिथिला चला गया, एवं इसने दुर्योधन को गदायुद्ध की शिक्षा भी दी (विष्णु. ४.१३; भा. १०. ५७; सत्राजित् देखिये)। बलराम के नाराज होने की यह कथा भागवत में नहीं दी गयी है।

दुर्योधन एवं भीम उसके शिष्य थे। अतएव यह नहीं चाहता था कि, इसके दोनो शिष्य आपस में लड़कर मृत्यु को प्राप्त हो। इसी कारण भारतीय युद्ध के प्रारंभ में, जब दुर्योधन कृष्ण की मदद माँगने के लिये आया था, तब इसने कृष्ण से कहा था, 'कौरव एवं पांडव हमारे लिये एकसरीखे है। इसी कारण सहाय्यता करनी ही हो, तो वह हमने दुर्योधन की करनी चाहिए'। किन्तु कृष्ण ने इसकी बात न सुनी। इस कारण, भारतीय युद्ध के पूर्व ही, यह कृष्ण से क्रुद्ध हो कर, तीर्थयात्रा के लिये चला गया।

बलराम की तीर्थयात्रा--बलराम की तीर्थयात्रा का विस्तृत वर्णन भागवत तथा महाभारत शल्यपर्व में दिया गया है। भागवत की तीर्थयात्रावर्णन में विभिन्न प्रकार के तीर्थस्थानों का विवरण प्राप्त है।

बलराम का प्रथम संकल्प 'प्रतिलोम सरस्वती यात्रा' करने का था। इस निश्चय के अनुसार यह प्रभास, पृथूदक, बिंदुसर, त्रितकूप, सुदर्शन, विशाल, ब्रह्मतीर्थ, चक्रतीर्थ, सरस्वती, यमुना एवं गंगा नदी के तट पर स्थित तीर्थों की यात्रा कर के, नैमिषारण पहुँच गया।

नैमिषारण्य में ऋषिमुनियों की पुराणचर्चा चल रही थी। सारे मुनियों ने उत्थापन दे कर, इसके प्रति आदरभाव प्रकट किया। किन्तु पुराणचर्चा में मुख्य सूत का काम करनेवाला रोमहर्षण नामक ऋषि धर्मकार्य में व्यस्त होने के कारण, इसे उत्थापन न दे सका। इस कारण क्रोधित हो कर, शराब के नशे में इसने उसका वध किया (भा. १०. ७८. २८; रोमहर्षण देखिये)। पुराणचर्चा समारोह मे एक ही कोलाहल मच गया, एवं सारे ऋषियों ने इसे ब्रह्महत्या के पातक से दोषी ठहराया। इस पातक से छुटकारा पाने के लिये, यह ग्यारह वर्षों की यात्रा करने के लिये पुनः निकला।

मार्केडेय के अनुसार, सूत का वध इसके द्वारा द्वारका के समीप स्थित रैवतोद्यान में हुआ (मार्क. ६. ७; ३५-३६)। किन्तु महाभारत एवं भागवत में यह वधस्थान नैमिषारण्य ही बताया गया है। यह वध बलराम के यात्रा के मध्य में हुआ, ऐसा भागवत का कथन है; किन्तु मार्कंडेय के अनुसार, यह वध बलराम के यात्रारंभ में ही हुआ था।

अपने द्वितीय यात्रा के लिये यह निकलनेवाला ही था कि, शल्य ने इसके सम्मुख आकर भीम एवं दुर्योधन के गदायुद्ध की वार्ता इसे सुनाई। अपने दो प्रियशिष्यों के युद्ध की वार्ता सुन कर, यह शीघ्र ही द्वैपायन ह्रद नामक युद्धस्थान में चला आया। इसने उस युद्ध को टालने का काफी प्रयत्न किया, किन्तु दोनो प्रतिपक्षियों ने इसकी एक न सुनी। इस पर क्रुद्ध हो कर, यह द्वारका चला गया (भा. १०.७८-७९)।

महाभारत के अनुसार, दुर्योधन एवं भीम के दरम्यान हुए गदायुद्ध में भीम ने कपट से दुर्योधन का वध किया। इस कारण बलराम भीम पर अत्यधिक क्रुद्ध हुआ, एवं भीम को मारने दौड़ा। किन्तु कृष्ण ने इसे दुर्योधन के सारे कुकृत्यों की याद दिला कर, इसका क्रोध शान्त किया (म. श. ५९. १४-१५)।

तीर्थयात्रा का द्वितीय पर्व—भागवत में इससे की गयी यात्रा के द्वितीय पर्व का सविस्तृत वर्णन प्राप्त है। उस यात्रा में इसने निम्नलिखित पवित्र स्थानों के दर्शन कियें:— सरयु, हरिद्वार, गोमती, गंडकी, विपाशा, शोणभद्र, गया, परशुराम क्षेत्र, सप्तगोदावरी, वेणा, पंपा, भीमरथी, शैलपर्वत, वेंकटगिरी, कामोष्णी, कांची, कावेरी, श्रीरंग, मदुरा, सेतुबंध, कृतमाला, ताम्रपर्णी, अगस्त्याश्रम, दुर्गादेवी, अनंतपुर, पंचाप्सरा, केरल, त्रिगर्त, गोकर्ण, आर्यादेवी, शूर्पारक, तापी, पयोष्णी, निर्विंध्या, दंडकारण्य, नर्मदा, एवं मनु। इन सारे स्थानों की यात्रा समाप्त कर, यह कुरुक्षेत्र वापस आया।

श्रीकृष्ण का पौत्र अनिरुद्ध का विवाह विदर्भराजा रुक्मिन् की पौत्री रोचना से संपन्न हुआ। उस समय, रुक्मिन् ने बलराम के साथ कपट से द्यूत खेलना चाहा, एवं उसने इसकी काफी निंदा भी की। क्रोधाविष्ट हो कर, बलराम ने द्यूत का सुवर्णमय पट रुक्मिन् को मार कर, उसका वध किया (ह. वं. २. ६१; रुक्मिन् देखिये)। नरकासुर का मित्र द्विविद नामक वानर का भी इसने वध किया था (विष्णु. ५. ३६)।

भारतीय युद्ध के पश्चात्, इसने द्वारकापुरी में मद्यपान-निषेध की आज्ञा जारी की था (म. मौ. १.२९)। किंतु इसके अनुयायी यादवों ने इसकी एक न सुनी, एवं वे आपसमें लड़कर मर गये। इस तरह सारे यादवों का संपूर्ण विनाश होने पर, इसने प्रभास क्षेत्र में यौगिकमार्ग से देहत्याग किया (म. मौ. ५.१२-१५; भा. ११. ३०)। इसकी मृत्यु के पश्चात् इसके मुख से एक विशालकाय श्वेतसर्प बाहर निकला, जिसका श्रीकृष्ण को दर्शन हुआ (म. मौ. ५.१२-१६)। इसके मृत देह पर इसकी पत्नी रेवती सती हो गयी (पद्म. उ. २५२)।

२. एक महाबली नाग (म. अनु. १३२.८)।

बलवर्धन—(सो.पूरु.) धृतराष्ट्र के शतपुत्रों में से एक।

बलवाक—युधिष्ठिर की मयसभा मे उपस्थित एक ऋषि (म. स. ४.१२)।

बला—अत्रि की पत्नी।

बलाक—(सो. अमा.) एक राजा, जो भागवत के अनुसार पूरु राजा का, एवं वायु तथा विष्णु के अनुसार, अज राजा का पुत्र था। इसे बलाकाश्व नामांतर भी प्राप्त था (बलाकाश्व देखिये)।

२. एक आचार्य, जो विष्णु के अनुसार व्यास की ऋक्शिष्यपरंपरा में से शातपूर्ण का शिष्य था। भागवत में इसे जातुकर्ण का शिष्य कहा गया हैं।

३. एक व्याध, जो जानवरों की शिकार कर अपने मातापिता एवं आश्रितों की जीविका चलाता था। एक बार इसने एक हिंसक श्वापद को मार डाला। उस श्वापद ने समस्त प्राणियों का अंत कर देने के लिये वर प्राप्त किया था, एवं इसी कारण ब्रह्मा ने उसे अंधा कर दिया था। उस श्वापद को मार देने के कारण, इस व्याध के उपर पुष्पों की वृष्टि हुई, तथा यह विमान पर बैठ कर स्वर्गलोक को चला गया (म. क. ४९.३४-४१)।

बलाकाश्व—(सो. अमा.) एक राजा, जो जन्हु का पौत्र एवं अज (सिंहद्वीप) का पुत्र था। इसके पुत्र का नाम कुशिक था (म. अनु. ७.४)। इसे बलाक नामांतर भी प्राप्त था (बलाक १. देखिये)।

बलाकिन्—(सो. कुरु.) धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों में से एक (म. आ. ६१. परि. १. क्र. ४१)।

२. एक ऋषि, जो अंगिराकुल का गोत्रकार था।

बलाक्ष—एक प्राचीन नरेश, जो विराट के गोग्राहण के समय अर्जुन एवं कृपाचार्य का युद्ध देखने के लिये, इंद्र के विमान पर बैठ कर आया था (म. वि. ५९.९)।

बलाढ्य—एक दानव, जो कश्यप एवं दनु के पुत्रों में से एक था।

बलानीक—द्रुपद राजा का एक पुत्र, जो अश्वत्थामा द्वारा मारा गया (म. द्रो. १३१.१२७)।

२. मत्स्यराज विराट का भाई, जो भारतीय युद्ध में पांडवों के पक्ष में शामिल था (म. द्रो. १३३.३५)।

बलायु--पुरूरवस् को ऊर्वशी से उत्पन्न आठ पुत्रों में से एक (पद्म. सृ. १२)।

बलारक—अत्रिकुल के मंत्रकार वल्गूतक का नामांतर (वल्गूतक देखिये)।

बलाश्व—(सू. दिष्ट.) खनिनेत्रपुत्र करंधम राजा का मूल नाम (मार्क. ११८. ७)। इसके पुत्र का नाम अविक्षित् था।

बलाहक—एक नाग, जो कश्यप एवं कद्रु के पुत्रों में से एक था।

२. एक राजा, जो जयद्रथ का भाई था। इसके पिता का नाम वृद्धक्षत्र था (म. व. २४९. १२)।

३. एक राजा, जिसे शिव ने गोवत्स के रूप में दर्शन दिया था। पश्चात् गोवत्स के दर्शन के स्थान पर एक दिव्य शिवलिंग उत्पन्न हुआ, एवं वह अणुप्रमाण में दिन बदिन परिवर्धित होने लगा। किन्तु एक कर्मचांडाल उसके दर्शन के लिये आते ही, उसका वर्धन स्थगित हुआ (स्कंद. ३. २. २७)।

४. श्रीकृष्ण के रथ का एक अश्व, जो दाहिने पार्श्व में जोता जाता था (म. वि. ४०.२१)।

बलि—एक सुविख्यात असुर, जो वामनावतार में श्रीविष्णु द्वारा पाताल में ढकेल दिया गया था (बलि वैरोचन देखिये)।

२. अनु देश का सुविख्यात राजा (बलि आनव देखिये)।

३. युधिष्ठिर के सभा का एक ऋषि, जो जितेंद्रिय तथा वेदवेदाङ्गों में पारंगत था। इसने युधिष्ठिर को अनेक पुण्यकारक गाथाएँ सुनाई थी (म. स. ४. ८)। हस्तिनापुर जाते समय, मार्ग में इसकी श्रीकृष्ण से भेंट हुयी थी (म. उ. ८१.३८८*)।

४. एक शिवावतार, जो वाराहकल्प में से वैवस्वत मन्वन्तर की तेरहवी चौखट में उत्पन्न हुआ था। इसका अवतार गंधमादन पर्वत पर स्थित वालखिल्याश्रम में हुआ था। इसके सुधामन्, कास्यप, वसिष्ठ तथा विरजस् नामक चार पुत्र थे (शिव. शत. ५)।

५. (आंध्र. भविष्य.) एक राजा, जो भागवत के अनुसार आंध्र वंश का पहला राजा था। इसे शिप्रक, शिशुक एवं सिंधुक नामान्तर भी प्राप्त थे।

६. सावर्णि मन्वन्तर का इंद्र।

७. (सो. यदु.) एक यादव राजा, जो कृतवर्मन् का पुत्र था। रुक्मिणी की कन्या चारुमती इसकी पत्नी थी (भा. १०.६१.४)।

८. अत्रिकुल का एक गोत्रकार।

९. आंगिरसकुल का एक गोत्रकार।

१०. रैवत मनु के पुत्रों में से एक।

बलि आनव--(सो. अनु.) पूर्व आनव प्रदेश का सुविख्यात राजा, जो सुतपस् राजा का पुत्र था। यह इक्ष्वाकुवंशीय सगर राजा का समकालीन था। आनव प्रदेश शुरु में आधुनिक मोंघीर तथा भागलपुर प्रान्तों में सीमित था। किन्तु अपने पराक्रम के कारण, इसने अपना साम्राज्य काफी बढ़ा कर, पूर्व हिंदुस्थान का सारा प्रदेश उसमें समाविष्ट कराया।

हरिवंश के अनुसार, पूर्वजन्म में वह बलि वैरोचन नामक सुविख्यात दैत्य था। अपनी प्रजा में यह अत्यंत लोकप्रिय था, एवं उन्हींके अनुरोध पर इसने अगले जन्म में बलि आनव नाम से पुनः जन्म लिया।

इसने ब्रह्मा की कठोर तपस्या की थी, जिस कारण ब्रह्मा ने इसे वर दिये, 'तुम महायोगी बन कर कल्पान्त तक जीवित रहोगे। तुम्हारी शक्ति अतुल होगी, एवं युद्ध में तुम सदा ही अजेय रहोगे। अपनी प्रजा में तुम लोकप्रिय रहोगे, एवं लोग सदैव तुम्हारी आज्ञा का पालन करेंगे। धर्म के सारे रहस्य तुम्हे ज्ञात होंगे, एवं तुम्हारे धर्मसंबंधी विचार धर्मविज्ञों में मान्य होंगे। धर्म को सुसंगठित रूप दे कर, तुम अपने राज्य में चातुर्वर्ण्य की स्थापना करोगे' (ह. वं. १. ३१. ३५-३९)।

इसकी पत्नी का नाम सुदेष्णा था। काफी वर्षों तक इसे पुत्र की प्राप्ति न हुयी थी। फिर दीर्घतमस् औचथ्य मामतेय नामक ऋषि के द्वारा इसने सुदेष्णा से पाँच पुत्र उत्पन्न कराये (दीर्घतमस् देखिये)। दीर्घतमस् ऋषि से उत्पन्न इसके पुत्रो के नाम निम्न थेः—अंग, वंग, कलिंग, पुंड्र एवं सुह्म (ब्रह्मांड. ३.७)। भागवत में इसके आंध्र नामक और एक पुत्र का निर्देश किया गया है (भा. ९. २३)। हरिवंश में सुह्म के बदले सुम्ह नामान्तर प्राप्त है (ह. वं. १.३१)। इसके वंशजों को 'बालेय क्षत्र' अथवा 'बालेय ब्राह्मण' सामूहिक नाम प्राप्त था (मत्स्य. ४८.२५; विष्णु. ४.१८.१; ब्रह्म. १३.३१; ह. वं. १.३१ ३४-३५)। इसके द्वारा स्थापित किये हुए वंश को आनव वंश कहते है।

अपने कल्प के अन्त में, देहत्याग कर यह स्वर्गलोक चला गया। इसकी मृत्यु के पश्चात् इसका साम्राज्य इसके पुत्रों में बाँट दिया गया। जिस पुत्र को जो राज्य मिला, उसीके नाम पर उस राज्य का नामरण हुआ (भा. ९.

२३; म. आ. ९२.१०४२*)। इसके पुत्रों को प्राप्त राज्यों की जानकारी निम्न प्रकार है:—

(१) अंग—अंगदेश (आधु. भागलपुर एवं मोंघीर इलाका)।

(२) वंग—वंगदेश (आधु. ढाका एवं चितगाँव इलाका)।

(३) कलिंग—कलिंग देश (आधु. उडीसा राज्य में से समुद्र तटपर स्थित प्रदेश)।

(४) पुंड्र—पुंड्र देश (आधु. उत्तर बंगाल प्रदेश)।

(५) सुह्म—सुह्मदेश (आधु. बर्दवान इलाका)।

यह एवं असुर राजा बलि वैरोचन सरासर अलग थे। किन्तु कई पुराणों में असावधानी से इन्हे एक व्यक्ति मान कर, बलि आनव को 'दानव' एवं 'वैरोचन' कहा गया है (ब्रह्मांड. ३.७४.६६; मत्स्य. ४८.९८)। किन्तु पुराणों में प्राप्त वंशावलियों में इसे स्पष्ट रूप से आनव कहा गया है, एवं इसकी वंशावलि भी आनव नाम से ही दी गयी है।

बलि वैरोचन—एक सुविख्यात विष्णुभक्त दैत्य, जो प्रह्लाद का पौत्र एवं विरोचन का पुत्र था। इसकी माता का नाम देवी था (म. आ. ५९.२०; स. ९.१२; शां. २१८.१; अनु. ९८; भा. ६.१८.१६; ८.१३. वामन. २३.७७)। स्कंद में इसकी माता का नाम सुरुचि दिया गया है (स्कंद. १.१.१८)। विरोचन का पुत्र होने से, इसे 'वैरोचन' अथवा 'वैरोचनि' नामान्तर प्राप्त थे। इसे महाबलि नामांतर भी प्राप्त था, एवं इसकी राजधानी महाबलिपुर में थी।

'आचाररत्न' में दिये गये सप्तचिरंजीव पुण्यात्माओं में बलि का निर्देश प्राप्त है (आचार. पृ. १०)। बाकी छः चिरंजीव व्यक्तिओं के नाम इस प्रकार हैः—अश्वत्थामन्, व्यास, हनुमान्, विभीषण, कृप, परशुराम, (मार्कंडेय)।

बलिकथा का अन्वयार्थ—बलि दैत्यों का राजा था (वामन. २३)। दैत्यराज होते हुए भी, यह अत्यंत आदर्श, सत्त्वशील एवं परम विष्णुभक्त सम्राट था (ब्रह्म. ७३; कूर्म. १.१७; वामन. ७७–९२)।

दैत्यलोग एवं उनके राजा पुराण एवं महाभारत में बहुशः असंस्कृत, वन्य एवं क्रूर चित्रित किये जाते है। बाण, गयासुर एवं बलि ये तीन राजा पुराणों में ऐसे निर्दिष्ट है कि, जो परमविष्णुभक्त एवं शिवभक्त होते हुए भी, देवों ने उनके साथ अत्यंत क्रूरता का व्यवहार किया, एवं अंत में अत्यंत निर्घृणता के साथ उनका नाश किया। डॉ. राजेंद्रलाल मित्र, डॉ. वेणिमाधव बारुआ आदि आधुनिक विद्वानों ने पुराणों में निर्दिष्ट इन असुरकथाओं के इस विसंगति पर काफि प्रकाश डाला है। संभव यही है कि, देव एवं दैत्यों का प्राचीन विरोध सत् एवं असत् का विरोध न होकर, दो विभिन्न ज्ञाति के लोगों का विरोध था, एवं बलि, बाण एवं गयासुर केवल देवों के विपक्ष में होने के कारण देवों ने उनका नाश किया हो।

स्वर्गप्राप्ति—एक बार श्रीविष्णु ने किंचित्काल के लिये देवों के पक्ष का त्याग किया। यह सुसंधी जान कर, दैत्यगुरु शुक्राचार्य ने बलि को देवों पर आक्रमण करने की प्रेरणा दी। तदनुसार बलि ने स्वर्गपर आक्रमण किया, एवं देवों के छक्के छुड़ा दिये। बलि से बचने के लिये, देवों अपने मूल रूप बदल कर स्वर्ग से इतस्ततः भाग गये। किन्तु वहाँ भी बलि ने उनका पीछा किया, एवं उनको संपूर्णतः हराया।

पश्चात् बलि ने अपने पितामह प्रह्लाद को बड़े सम्मान के साथ स्वर्ग में आमंत्रित किया, एवं उसे स्वर्ग में अत्यधिक श्रेष्ठता का दिव्य पद स्वीकारने की प्रार्थना की। प्रह्लाद ने बलि के इस आमंत्रण का स्वीकार किया, एवं बलि को स्वर्ग के राज्यपद का अभिषेक भी कराया। अभिषेक के पश्चात्, बलि ने प्रह्लाद की आशिश माँगी एवं स्वर्ग का राज्य किस तरह चलाया जाय इस बारे में उपदेश देने की प्रार्थना की। प्रह्लाद ने इस उपदेश देते हुए कहा, 'हमेशा धर्म की ही जीत होती है, इस कारण तुम धर्म से ही राज्य करो' (वामन. ७४)।

प्रह्लाद के उपदेश के अनुसार, राज्य कर, बलि ने एक आदर्श एवं प्रजाहितदक्ष राजा ऐसी कीर्ति त्रिखंड में संपादित की (वामन. ७५)।

समुद्रमंथन—एकबार बलि ने इंद्र की सारी संपत्ती हरण की, एवं उसे यह अपने स्वर्ग में ले जाने लगा। किन्तु रास्ते में वह समुद्र में गिर गयी। उसे समुद्र से बाहर निकलाने के लिये श्रीविष्णु ने समुद्रमंथन की सूचना देवों के सम्मुख प्रस्तुत की। समुद्रमंथन के लिए बलि का सहयोग पाने के लिये सारे देव इसकी शरण में आ गये। बलि के द्वारा इस प्रार्थना का स्वीकार किये जाने पर, देव एवं दैत्यों ने मिल कर समुद्रमंथनसमारोह का प्रारंभ किया (भा. ८. ६; स्कंद. १. १. ९)।

बलि के विगत संपत्ति को पुनः प्राप्त करना, यह देवों की दृष्टि से समुद्रमंथन का केवल दिखावे का कारण था। उनका वास्तव उद्देश तो यह था कि, उस मंथन से

अमृत प्राप्त हो एवं उसकी सहाय्यता से देवदैत्यसंग्राम में देवपक्ष विजय प्राप्त कर सके। दैत्यपक्ष के पास 'मृत-संजीवनी विद्या' थी, जिसकी सहाय्यता से युद्ध में मृत हुए सारे असुर पुनः जीवित हो सकते थे। देवों के पास ऐसी कौनसी भी विद्या न होने के कारण, युद्ध में वे पराजित होते थे। इसी कारण देवों ने समुद्रमंथन का आयोजन किया, एवं उसके लिए दैत्यों का सहयोग प्राप्त किया। समुद्रमंथन का यह समारोह चाक्षुषमन्वन्तर में हुआ, जिस समय मंत्रद्रुम नामक इंद्र राज्य कर रहा था (भा. ८. ८; विष्णु. १. ९; मत्स्य, २५०-२५१)।

समुद्रमंथन का समारोह एकादशी के दिन प्रारंभ हो कर द्वादशी के दिन समाप्त हुआ। एकादशी के दिन, उस मंथन से सर्व प्रथम 'कालकूट' नामक विष उत्पन्न हुआ, जिसका शंकर ने प्राशन किया। पश्चात् अलक्ष्मी नामक भयानक स्त्री उत्पन्न हुई, जिसका विवाह श्रीविष्णु द्वारा उद्दालक नामक ऋषि के साथ किया गया। तत्पश्चात् ऐरावत नामक हाथी, उच्चैःश्रवस् नामक अश्व एवं धन्वन्तरि, पारिजातक, कामधेनु, तथा अप्सरा इन रत्नों का उद्भव हुआ। द्वादशी के दिन लक्ष्मी उत्पन्न हुई, जिसका श्रीविष्णु ने स्वीकार किया। तत्पश्चात् चंद्र एवं अमृत उत्पन्न हुए। अमृत से ही तुलसी का निर्माण हुआ (पद्म. ब्र. ९. १०)।

समुद्रमंथन से प्राप्त रत्न—समुद्रमंथन से निर्माण हुए रत्नों के नाम, संख्या एवं उनका क्रम के बारे में पुराणों में एकवाक्यता नहीं है। एक स्कंदपुराण में ही इन रत्नों के नाम एवं क्रम निम्नलिखित दो प्रकारों में दिये गये हैं:—

१. लक्ष्मी, २. कौस्तुभ, ३. पारिजातक, ४. धन्वन्तरि, ५. चंद्रमा, ६. कामधेनु, ७. ऐरावत, ८. अश्व (सप्तमुख), ९. अमृत, १०. रम्भा, ११. शार्ङ्ग धनुष्य, १२. पांचजन्य शंख, १३. महापद्मनिधि तथा, १४. हालाहलविष (स्कंद. ५. १. ४४)।

१. हालाहलविष, २. चंद्र, ३. सुरभि धेनु, ४. कल्पवृक्ष, ५. पारिजातक, ६. आम्र, ७. संतानक, ८. कौस्तुभ रत्न (चिंतामणि), ९. उच्चैःश्रवस्, १०. चौसष्ट हाथियों के समूह के साथ ऐरावत, ११. मदिरा, १२. विजया, १३. भंग, १४. लहसुन, १५. गाजर, १६. धतूरा, १७. पुष्कर, १८. ब्रह्मविद्या, १९. सिद्धि, २०. ऋद्धि, २१. माया, २२. लक्ष्मी, २३. धन्वन्तरि, २४. अमृत (स्कंद. १. १. ९-१२)।

महाभारत एवं मत्स्य में निम्नलिखित केवळ सात रत्नों का निर्देश प्राप्त है:—सोम, श्री (लक्ष्मी), सुरा, तुरग, कौस्तुभ, धन्वन्तरि, एवं अमृत (म. आ. १६. ३३-३७; मत्स्य. २५०-२५१)।

इंद्र-बलि संग्राम—समुद्रमंथन हुआ, किंतु राक्षसों को कुछ भी प्राप्त न हुआ। अतएव राक्षसों ने संघठित हो कर देवों पर चढाई कर दी। देवों-दैत्यों के इस भीषण युद्ध में बलि ने अपनी राक्षसी माया से इंद्र के विरोध में ऐसा युद्ध किया कि, उसके हारने की नौबत आ गयी। इस युद्ध में इसने मयासुर द्वारा निर्मित 'वैहानस' विमान का प्रयोग किया। इंद्र की शोचनीय स्थिति देख कर विष्णु प्रकट हुए, तथा उन्होंने बलि के मायावी जाल को काट फेंका। पश्चात् बलि इंद्र के वज्रद्वारा मारा गया। बलि के मर जाने पर, नारद की आज्ञानुसार, इसका मृत शरीर अस्ताचल ले जाया गया, जहाँ पर शुक्राचार्य के स्पर्श तथा मंत्र से यह पुनः जीवित हो उठा (भा. ११. ४६-४८)।

इंद्रपदप्राप्ति—बलि के जीवित हो जाने पर शुक्राचार्य ने विधिपूर्वक इसका ऐन्द्रमहाभिषेक किया, एवं इससे विश्वजित् यज्ञ भी करवाया। पूर्णरूपेण राज्यव्यवस्था को अपने हाथ ले कर इसने सौ अश्वमेध यज्ञ भी किये (भा. ८.१५.३४)।

विश्वजित् यज्ञ के उपरांत यज्ञदेव ने प्रसन्न हो कर, इसे इंद्ररथ के समान दिव्य रथ, सुवर्णमय धनुष, दो अक्षय तूणीर तथा दिव्य कवच दिये। इसके पितामह प्रह्लाद ने कभी न सूखनेवाली माला दी। शुक्राचार्य ने एक दिव्य शंख, तथा ब्रह्मदेव ने भी एक माला इसे अर्पित की (म. शां. २१६.२३)।

प्रह्लाद के द्वारा शाप—इसप्रकार सारी स्वर्गभूमि बलि के अधिकार में आ गयी। देवतागण भी निराश हो कर देवभूमि छोड़ कर अन्यत्र चले गये।

इसके राज्य में सुख सभी को प्राप्त हुआ, किन्तु ब्राह्मण एवं देव उससे वंचित रहे। उन्हें विभिन्न प्रकार के कष्ट दिये जाने लगे, जिससे ऊब कर वे सभी विष्णु से फरियाद करने के लिए गये। सब ने विष्णु से अपनी दुःखभरी व्यथा कह सुनाई। विष्णु ने कहा, 'बलि तो हमारा भक्त है, पर तुम्हारे असहनीय कष्टों को देख कर, उनके निवारणार्थ में शीघ्र ही वामनावतार लूँगा' (ब्रह्म. ७३)।

धीरे धीरे बलि के राज्य की व्यवस्था क्षीण होने लगी। राक्षसों का बल घटने लगा। एकाएक इस गिरावट को देख कर, बलि अत्यधिक चिंतित हुआ, तथा इस विचित्र परिवर्तन का कारण जानने के हेतु प्रह्लाद के पास गया। कारण पूँछने पर प्रह्लाद ने बताया 'भगवान विष्णु वामनावतार लेने के लिए आदिति के गर्भ में वासी हो गये हैं, यही कारण है कि तुम्हारा आसुरी राज्य दिन पर दिन रसातल को जा रहा है'। प्रह्लाद के बचनों को सुन कर इसने तत्काल उत्तर दिया, 'उस हरि से हमारे राक्षस अधिक बली है'। बलि की इस अहंकारभरी वाणी को सुन कर प्रह्लाद ने क्रोधित हो कर शाप दिया 'तुम्हारा राज्य नष्ट-भ्रष्ट हो जायेगा'। प्रह्लाद की वाणी सुन कर यह आतंकित हो उठा तथा, तुरंत क्षमा माँगते हुए उसकी शरण में आया। किंतु प्रह्लाद ने इससे कहा, 'मेरी शरण में नही, तुम विष्णु की ही शरण जाओ, वही तुम्हारा कल्याण निहित है' (वामन. ७७)।

वामन को दान—नर्मदा के उत्तरी तट पर स्थित भृगुकच्छ नामक प्रदेश में जब इसका अन्तिम अश्वमेध यज्ञ चल रहा था, तब एक ब्राह्मणवेषधारी बालक के रूप में वामन भगवान् ने प्रवेश किया। बलि ने वामन का आदरसत्कार कर उनकी पूजा की, तथा कुछ माँगने के लिए प्रार्थना की (भा. ८. १८. २०-२१)। वामन ने इससे तीन पग भूमि माँगी। शुक्राचार्य ने यह देख कर बलि को तुरन्त समझाया, 'यह ब्राह्मण बालक और कोई नहीं, स्वयं वामनावतारधारी विष्णु हैं। तुम इन्हें कुछ भी न दो'। किन्तु बलि ने गुरु की वाणी की उपेक्षा करते हुए कहा, 'नहीं ! मैं अवश्य दूँगा ! जब प्रत्यक्ष ही परमेश्वर मेरे द्वार पर अतिथि रूप से आया है, तो मैं उसे अवश्य ही इच्छित वस्तु प्रदान करूँगा (वामन. ९१)।

बलि की इस प्रकार की वाणी सुन कर, शुक्र ने क्रोधित हो कर शाप दिया, 'बलि ! तुमने मेरी उपेक्षा की है, मेरे आज्ञा की अवहेलना की है। तुम अपने को अत्यधिक बुद्धिमान् समझते हो। तुम्हारा यह ऐश्वर्य, यह राजपाट नष्ट-भ्रष्ट हो जाये'।

वामन भगवान् ने इसकी तथा इसके पूर्वजों की यशगाथा का गान किया, और बलि ने उसे तीन पग भूमि दान देने के लिए मंत्र पढ़ते हुए अर्घ्य दिया। हाथों पर जल छोड़ते ही वामनरूपधारी विष्णु ने विशाल रूप धारण कर प्रथम पर में पृथ्वी, द्वितीय में स्वर्गलोक नापते हुए, इससे प्रश्न किया कि, तीसरा पैर किधर रखूँ (म. स. परि. १ क्र. २१. पंक्ति. ३३४-३३५)।

बलि को वामन द्वारा इस प्रकार ठगा जाना देख कर इसके सैनिकों ने उद्यत हो कर उस पर आक्रमण करने लगे। किन्तु इसने उन्हें समझाते हुए कहा, 'हमारा अन्तिम समय आ गया है, जो हो रहा है उसे होने दो'। पश्चात् वरुण ने विष्णु की इच्छा जान कर, इसे वरुणपाश में बाँध लिया (वामन. ९२)।

वामन द्वारा तीसरे पग के लिए भूमि माँगे जाने पर, गुरु शुक्राचार्य ने एक बार फिर बलि को दान के लिए रोका, पर बलि न माना। यह देख कर अर्घ्यदान देनेवाले पात्र के अन्दर शुक्र ऐसा बैठ गया कि, जिससे दान देते समय उस पात्र से जल न निकल सके। बलि को शुक्र की यह बात मालूम न थी। जैसे ही पात्र की टोंटी से जल न गिरा, यह कुश के अग्रभाग से उसे साफ करने लगा जिससे शुक्राचार्य की एक आँख फूट गयी और तब से शुक्राचार्य को 'एकाक्ष' नाम प्राप्त हुआ (नारद. १.११)।

बलिबंधन—पश्चात् वामन ने कहा, 'तुमने तीसरे पग की जमीन दे कर अपने बचनों का पालन नहीं किया है। यह सुन कर बलि ने उत्तर दिया 'तुमने कपट के साथ मेरे साथ व्यवहार किया है, पर मैं अपना वचन निभाऊंगा। भूमि तो बाकी नहीं बची; मैं अपना मस्तक बढाता हूँ, उसमें अपना तीसरा पग रख कर, इच्छित वस्तु प्राप्त करो' (पद्म. पा. ५३)।

बलि की यह स्थिति देख कर इसकी स्त्री विंध्यावली ने वामन भगवान् से बलि के उद्धार के लिए प्रार्थना की। विंध्यावली की भक्तिपूर्ण मर्मवाणी को सुन कर विष्णु प्रसन्न हो कर वर देते हुए कहा 'तुम अभी पाताल लोक में निवास करो, वहाँ मैं तुम्हारा द्वारपाल बनूँगा, मेरा सुदर्शन चक्र सदैव तुम्हारी रक्षा करेगा। आगे चल कर सावर्णि मन्वन्तर में तुम इन्द्र बनोगे'।

उक्त घटना कृतयुग के पूर्व काल की है। वह दिन कार्तिक शुद्ध प्रतिपदा का था, जब बलि ने वामन को दान दिया था। इस लिए उस दिन को चिरस्मरणीय रखने के लिये वामन ने बलि को वर दिया, 'यह पुण्यदिन 'बलि प्रतिपदा' के नाम से विख्यात होगा, और इस दिन लोग तुम्हारी पूजा करेंगे' (स्कंद. २४.१०)।

इसके पश्चात्, वामन ने इसे वरुण पाश से मुक्त किया, और बलि ब्रह्मा, विष्णु, महेश को नमस्कार कर,

पाताललोक चला गया। बलि के जाने के उपरांत विष्णु ने शुक्राचार्य को आदेश दिया कि वह यज्ञ के कार्य को विधिपूर्वक समाप्त करें (भा. ८.१५-२३; म. स. परि. १. क्र. २१; वामन ३१; ब्रह्म. ७३)। वामन ने बलि का राज्य मन पुत्रो को देख कर, पृथ्वी एवं स्वर्ग को दैत्यों से मुक्त कराया (स्कंद. ७.२.१९)।

विष्णुद्वारा, बलि के 'पातालबंधन' की पुराणों में दी गयी कथा ऐतिहासिक, एवं काफी प्राचीन प्रतीत होती है। पतंजलि के व्याकरण महाभाष्य में इस कथा का निर्देश प्राप्त हैं (पा. सू. ३.१.२६)। पतंजलि के अनुसार बलि का पातालबंधन काफी प्राचीन काल में हुआ था; फिर भी उसका निर्देश महाभाष्यकाल में 'बलिम् बन्धयति' इस वर्तमानकालीन रूप में किया जाता था।

रावण का गर्वहरण—वाल्मीकि रामायण में बलि के पाताल निवास की एक रोचक कथा दी गयी है, जो द्रष्टव्य है। एक बार रावण ने इसके पास आ कर कहा, 'मैं तुम्हारी मुक्ति के लिये आया हूँ, तुम हमारी, सहायता प्राप्त कर, विष्णु के बन्धनों से मुक्त हो सकते हो। यह सुन कर बलि ने अग्नि के समान चमकनेवाले दूर पर रक्खे हुए हिरण्यकशिपु के कुंडल उठा कर लाने के लिये रावण से कहा। रावण ने उस कुण्डल को उठाना चाहा, पर बेहोश हो कर गिर पडा, तथा मुँह से खून की उल्टियाँ करने लगा। बलि ने उसे होश में ला कर समझाते हुए कहा, 'यह एक कुण्डल है, जिसे मेरा प्रपितामह हिरण्यकशिपु धारण करता था।' उसे तुम उठा न सके। महान् पराक्रमी भगवान् विष्णु द्वारा ही हिरण्यकशिपु मारा गया, तथा उसी विष्णु को किस बल से चुनौती दे कर तुम मुझे मुक्त कराने आये हो। वह विष्णु परमशक्तिमान् एवं सब का मालिक है'। ऐसा कह कर इसने उसे विष्णुलीला का वर्णन सुनाया (वा. रा. उ. प्रक्षिप्त सर्ग १)।

आनंद रामायण में इसी प्रकार की एक और कथा दी गयी है। एक बार रावण बलि को अपने वश में करने के लिए पाताललोक गया। वहाँ बलि अपनी स्त्रियों के साथ पाँसा खेल रहा था। किसी ने रावण की ओर गौर किया। एकाएक एक फाँसा उछल कर दूर गिरा, तब इसने उस फँसे को उठाने के लिये रावण से कहा। रावण ने फाँसा उठा कर देना चाहा, पर उसे हिला तक सका। तब वहाँ पर फाँसा खेलती हुयी स्त्रियों ने रावण का ऐसा उपहास किया कि, यह वहाँ से चम्पत हो गया (आ. रा. सार. १३)।

महाभारत के अनुसार राज्य से च्युत किये जाने पर बलि को गर्दभयोनि प्राप्त हुयी, एवं यह इधर उधर भटकने लगा। ब्रह्मदेव ने बलि को ढूँढ़ने के लिए इन्द्र से कहा, तथा आदेश दिया की इसका वध न किया जाये।

महाभारत में यह भी कहा गया है कि, इसने ब्राह्मणों से मदपूर्ण अनुचित व्यवहार किया, इसी लिए लक्ष्मी ने इसका परित्याग किया (म. शां. २१६. २१८)। योगवसिष्ठ जैसे वेदान्त ग्रन्थों में भी अनासक्ति का प्रतिपादन करने के लिए, इसकी कथा दृष्टान्तरूप में दी गयी है (यो. वा. ५.२२.२९)।

महाभारत के अनुसार, अपनी मृत्यु के पश्चात् बलि वरुणसभा में अधिष्ठित हो गया (म. स. ९. १२)। स्कंद पुराण में बाष्कलि नामक एक दैत्य की एक कथा दी गयी है, जो बलि के जीवनी से बिलकुल मिलती जुलती है (स्कंद. १. १. १८; बाष्कलि देखिये)। उसी पुराण में इसके पूर्वजन्म की कहानी दी गयी है, जिसके अनुसार पूर्वजन्म में इसे कितव बताया गया हैं। भागवत में एक स्थान पर इसे 'इंद्रसेन उपाधि से विभूषित किया गया है (भा. ८. २२. ३३)।

संवाद—यह बड़ा तत्त्वज्ञानी था। तत्त्वज्ञान के संबंध में इसके अनेक संवाद महाभारत तथा पुराण में प्राप्त हैं। राजा अपनी राजलक्ष्मी किस प्रकार खो बैठता है, उसके संबंध में बलि तथा इंद्र का संवाद हुआ (म. शां. २१६)। इसके पितामह प्रह्लाद से 'क्षमा श्रेष्ठ अथवा तेज श्रेष्ठ' पर इसका संवाद हुआ (म. व. २९)। दैत्यगुरु शुक्र से इसका 'उपासना में पुष्प तथा धूप-दीप' के बारे में संवाद हुआ (म. अनु. ९८)।

परिवार—बलि की कुल दो पत्नियाँ थी :— (१) विंध्यावलि (भा. ८.२०.१७; मत्स्य. १८७.४०); (२) अशना, जिससे इसे बाण प्रभृति सौ पुत्र उत्पन्न हुये थे (भा. ६.१८.१७, विष्णु. १.२१.२)। भागवत में इसकी कोटरा नामक और एक पत्नी का निर्देश प्राप्त है, जिसे बाणासुर की माता कहा गया है (भा. १०.६३.२०)।

बलि के सौ पुत्रों में निम्नलिखित प्रमुख थे :— बाण (सहस्रबाहु), कुंभगर्त (कुंभनाभ), कुष्मांड, मुर, दय, भोज, कुंचि (कुशि), गर्दभाक्ष (वायु. ६७.८२-८३)। महाभारत में केवल बलिपुत्र बाण का निर्देश प्राप्त है (म. आ. ५९.२०)।

बलि की कन्याओं में निम्नलिखित प्रमुख थीः—शकुनी, पूतना (वायु. ६७.८२-८३; ब्रह्मांड. ३.५. ४२-४४)।

बलि के वंशज इस अर्थ से 'बालेय' नाम का प्रयोग पुराणों में प्राप्त है। किंतु वहाँ बलि वैश्वानर एवं बलि आनव इन दोनों में से किस के वंशज निश्चित अभिप्रेत है, यह कहना मुष्किल है (बलि आनव देखिये)।

बलि की उपसना--श्रद्धारहित हो कर एवं दोषदृष्टि रखते हुए जो दान किया जाता है, उस निकृष्ट जाति के दान में से कई भागों का स्वामी बलि माना जाता है (म. अनु. ९०.२०)। देवीभागवत के अनुसार कौनसा भी धर्मकर्म दक्षिणा के सिवा किया जाये, तो वह देवों तक न पहुँच कर बलि उसका स्वामी बन जाता है। उसी तरह निम्नलिखित हीनजाति के धर्मकृत्यों का पुण्य उपासकों के बदले बलि को प्राप्त होता है:— श्रद्धारहित दान, अधम ब्राह्मण के द्वारा किया गया यज्ञ, अपवित्र पुरुष का पूजन, अश्रोत्रिय के द्वारा किया गया श्राद्धकर्म, शूद्र स्त्री से संबंध रखनेवाले ब्राह्मण को किया हुआ द्रव्यदान, अश्रद्ध शिष्य के द्वारा की गयी गुरुसेवा (दे. भा. ९.४५)।

बलिप्रतिपदा के दिन बलि की उपासना जाती है। यह उपासना बहुशः राजाओं द्वारा की जाती है, एवं वहाँ बलि, उसकी पत्नी विंध्यावलि एवं उसके परिवार के कुष्मांड, बाण, मुर आदि असुरों के प्रतिमाओं की पूजा बड़े ही भक्तिभाव से की जाती है। उस समय निम्नलिखित बलिस्तुति का पाठ ही भक्तिभाव से किया जाता है:--

बलिराज नमस्तुभ्यं विरोचनसुत प्रभो।
भविष्येंद्र सुराराते पूजेयं प्रतिगृह्यताम्।

(भविष्योत्तर. १४०. ५४; पद्म. उ. १३४. ५३)

बलिभद्र--रुद्र गणों में से एक।

बलिवाक--युधिष्ठिर के मयसभा का एक ऋषि (म. स. ४. १२)। पाठभेद (भांडारकर संहिता)— 'बल्वाक'।

बलिविंध्य--एक राजा, जो रैवत मनु का पुत्र था।

बलीह--एक क्षत्रियकुल, जिसमें अर्कज नामक कुलांगार राजा उत्पन्न हुआ था (म. उ. ७२. २०)। उस राजा के कारण, इस कुल का नाश हुआ।

बलेक्षु--एक गोत्रकार ऋषिगण, जो वसिष्ठ कुल में उत्पन्न हुआ था। इसके नाम के लिये 'दलेशु' पाठभेद प्राप्त है।

बलोत्कटा--स्कंद की अनुचरी मातृका (म. श. ४५. २२)।

बलोन्मत्त-- रुद्रगणों में से एक।

बल्गुतक--अत्रिकुल के मंत्रकार 'वल्गूतक' का पाठभेद (वल्गूतक देखिये)।

बल्बूथ-- ऋग्वेद में निर्दिष्ट एक दानशूर पुरुष, जिसने तरुक्ष एवं पृथुश्रवस् के साथ अनेक गायकों को उपहार प्रदान किये थे (ऋ. ८.४६.३२)। वश अश्व्य नामक ऋषि ने इसके द्वारा दिये दिये दानों का गौरवपूर्ण उल्लेख किया है।

ऋग्वेद में इसे एक दास कहा गया है, किन्तु रोथ के अनुसार, यह स्वयं दास न हो कर इसके द्वारा किये गये एक सौ दासों के दान का उल्लेख वहाँ अभिप्रेत है। त्सिमर के अनुसार यह स्वयं एक आदिवासी अथवा आदिवासी माता का पुत्र था (आल्टिन्डिशे लेबेन ११७)।

बल्लव--अज्ञातवास के समय पाण्डुपुत्र भीमसेन का सांकेतिक नाम, जिसका व्यवसाय सूपान (पाककर्ता) बताया गया है (म. वि. २. १)।

बल्लाल--गणेश का परमभक्त, जो कल्याण नामक वैश्य का पुत्र था। अपने बाल्यकाल से श्रीगणेश की पूजा यह करता था। छोटे छोटे पत्थरों को एकत्र कर एवं उन्हे गणेश मान कर यह उनकी पूजा करता था।

इसके मातापिता ने इसे गणेश की पूजा से परावृत्त करने के काफी प्रयत्न किये। किंतु वे सारे असफल हुए। एक बार उन्हों ने इसे पेड़ पर उलटा टाँग कर काफी पीटा। फिर भी इसने अपनी गणेशभक्ति न छोड़ी। अंत में, जिस स्थान पर यह गणेश की पूजा करता था, वहाँ बल्लालेश्वर अथवा बल्लालविनायक नामक गणेश का स्वयंभु स्थान का निर्माण हुआ (गणेश. १.२२)।

बल्वल--एक दानव, जो विप्रचित्ति दानव का पौत्र एवं इल्वल दानव का पुत्र था। नैमिषारण्य के ऋषियों को यह अत्यधिक पीड़ा देता था। इस कारण बलराम ने इसका वध किया (भा. १०.७८.११; स्कंद. ३.१.१९)।

बस्त रामकायन--मैत्रायणि संहिता में निर्दिष्ट एक आचार्य (मै. सं. ४. २. १०)। इसके नाम के लिये 'बस्त समकायन' पाठभेद प्राप्त है।

बहुगव--(सो. पूरु.) एक पूरुवंशीय राजा, जो भागवत के अनुसार सुद्यु का, एवं विष्णु के अनुसार सुद्युम्न का पुत्र था। इसके नाम के लिये 'बहुगविन्' तथा 'बहुविध' पाठभेद प्राप्त है।

बहुगविन्--धुंधु दैत्य के पुत्रों में से एक।

२. (सो. पूरु.) पूरुवंशीय बहुगव राजा का नामान्तर, जिसे वायु में धुंधु का पुत्र कहा गया है। (बहुगव देखिये)।

बहुदन्ती—वैवस्वत मन्वन्तर के पुरन्दर नामक इंद्र की माता। पुरन्दर द्वारा वास्तुशास्त्र पर एक ग्रंथ लिखा गया है, जिसमें उसने स्वयं को बाहुदन्तक नाम से अपना निर्देश किया है (पुरन्दर देखिये)।

बहुदंष्ट्र—रावण के पक्ष का एक राक्षस (वा. रा. सुं. ६)।

बहुदामा—स्कंद की अनुचरी मातृका (म. श. ४५. १०)।

बहुपुत्र—एक प्रजापति, जो ब्रह्मा के मानसपुत्रों में से एक था (वायु. ६५.५३)।

२. (सो. कुकुर.) एक राजा, जो तित्तिर राजा का पुत्र था। इसके पुत्र का नाम नरि था।

बहुपुत्रिका—स्कंद की अनुचरी मातृका (म. श. ४५. ३)।

बहुमूलक--एक नाग, जो कश्यप एवं कद्रू के पुत्रों में से एक था (म. आ. ३१.३७६*)।

बहुयोजना--स्कंद की अनुचरी मातृका (म. श. ४५. ९)।

बहुरथ-- (सो. द्विमीढ.) एक राजा, जो भागवत के अनुसार रिपुञ्जय राजा का पुत्र था। यह द्विमीढ वंश का अन्तिम राजा माना जाता है। विष्णु में इसे बृहद्रथ, मत्स्य में विरथ, एवं वायु में वीररथ कहा गया है।

बहुरूप—एकादश रुद्रों में से एक (म. शां. २०१.१९)।

२. (स्वा. प्रिय.) एक राजा, जो प्रियव्रत राजा का पौत्र, एवं मेधातिथि राजा का पुत्र था।

बहुल--एक नाग, जो कश्यप एवं कद्रू के पुत्रों में से एक था। वायु में इसे प्रजापति कहा गया है (वायु. ६५.५४)।

२. तालजंघ वंश का एक कुलांगार राजा, जिसके दुर्वर्तन के कारण तालजंघ वंश का नाश हुआ (म. उ. ७२. १३)।

बहुलध्वज-- रत्ननगरी के ताम्रध्वज राजा का प्रधान।

बहुला— विदुर नामक वेश्यागामी ब्राह्मण की पत्नी। अपने पति की मृत्यु के पश्चात्, इसने गोकर्ण क्षेत्र में पुराणश्रवण का पुण्यकर्म किया, जिसके कारण पापी विदुर मुक्त हुआ (स्कंद. ३. ३. २२)।

बहुलाश्व—(सू. निमि.) एक निमिवंशीय राजा, जो धृति जनक राजा का पुत्र था। श्रीकृष्ण इससे मिलने आया था। इसके पुत्र का नाम कृति जनक था (भा. १०. ८६. १६)।

बहुविध-- (सो. पूरु.) पूरुवंशीय बहुगव राजा का नामान्तर (बहुगव देखिये)। मत्स्य में इसे धुंधु राजा का पुत्र कहा गया है।

बहुवीति--अंगिराकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

बाह्लिक--अथर्ववेद में निर्दिष्ट किसी जाति के लोगों का सामूहिक नाम, जो मूजवन्त एवं महावृष लोगों के तरह उत्तरी प्रदेश में रहते थे। अथर्ववेद में ज्वर (तक्मन्) को इन तीन लोगों के प्रदेश में स्थानांतरित होने का आवाहन किया गया है (अ. वे. ५.२२)। इस निर्देश से प्रतीत होता है कि, ये सारे लोग वैदिक आर्यों के विपक्ष में थे।

ब्लूमफिल्ड के अनुसार, बह्लिक शब्द से 'बहिस्' याने किसी बाहर से आये गये लोगों का संकेत किया जाता है।

बह्लिक प्रातिपीय—एक कुरुवंशी राजा, जो संजय राजा दुष्टरीतु पौंस्यायन का विरोधक था (श. ब्रा. १२. ९.३.३)। दुष्टरीतु अपना वंशानुगत राज्यपद प्राप्त न कर सके, इसलिये इसने काफ़ी प्रयत्न किये। किन्तु रेवोत्तरस् पाटव चाक्र स्थपति इन मित्र की सहाय्यता से दुष्टरीतु ने राज्यपद प्राप्त कर ही लिया।

महाभारत में इसका निर्देश बाह्लीक नाम से किया गया है, एवं इसे प्रतीप राजा का पुत्र, तथा शंतनु एवं देवापि राजा का भ्राता कहा गया है (म. आ. ९०. ४६; बाह्लीक देखिये)।

बह्वाशिन्--(सो. कुरु.) धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों में से एक। यह भीम के द्वारा मारा गया (म. भी. ८४.२८)।

बह्वीच--एक राक्षस, जो कश्यप एवं क्रोधा के पुत्रों में से एक था।

बाडभीकार (वाडवीकार)—एक वैयाकरण, जिसके द्वारा वर्णविकार के सम्बंध में मत प्रतिपादित है (तै. प्रा. १४. १३)।

बाडेयीपुत्र--एक आचार्य, जो बृहदारण्यक उपनिषद् के अनुसार, मौषिकीपुत्र का शिष्य था (बृ. उ. ६.४.३० माध्यं.)। इसके शिष्य का नाम गर्गीपुत्र था (श. ब्रा. १४. ९. ४. ३०)।

बाण--एक दानव, जो कश्यप एवं दनु के पुत्रों में से एक था।

२. एक सुविख्यात असुर, जो असुर राजा बलि वैरोचन का पुत्र था। शिव का पार्षद होने के कारण, इसे महाकाल नामान्तर भी प्राप्त था (म. आ ५९.२०-२१)। पद्म में

इसे 'भूतों' का राजा कहा गया है (पद्म. २५.११)। यह सहस्रबाहु होने के कारण, अत्यधिक पराक्रमी एवं युद्ध में अजेय था।

बलिपत्नी अशना से उत्पन्न हुए शतपुत्रों में यह ज्येष्ठ था। मत्स्य में इसकी माता का नाम विंध्यावलि दिया गया है (मत्स्य. १८७.४०)। इसकी राजधानी दैत्यों के सुविख्यात त्रिपुरों में से शोणितपुर में थी। कई ग्रंथों में, उस नगरी का निर्देश 'लोहितपुर' नाम से भी किया गया है। हरिवंश में बाण की जीवनकथा विस्तृत रूप में दी गयी है (ह. वं. २.११६-१२८)।

दैत्यों की ये त्रिपुर नगरियों आकाश में सदैव संचरण किया करती थीं। ये निर्भेद्य थी, जिन्हें कोई जीत न सकता था। इसके रहस्य का कारण थीं दैत्य स्त्रियाँ, जिनके पति-सेवा के प्रभाव से ये नगरियाँ पृथ्वी पर न आतीं थी तथा आकाश में ही तैरती थी। दैत्य लोग इन नगरियों में रहते तथा देवों एवं ऋषियों के आश्रमों में जाकर उत्पात मचाते। इससे अब कर देव ऋषि आदि भगवान् शंकर के पास गये, तथा अपने कष्टों का निवेदन कर उबारने के लिए प्रार्थना की।

शंकर भगवान ने भक्तों की मर्मान्तक वाणी को सुनकर नारद को स्मरण किया। याद करते ही, स्मरणगामी नारद तत्काल प्रकट हुए। शंकर ने देवर्षि नारद से निवेदन किया कि, वह राक्षसों की नगरियों में जाकर वहाँ की पत्नियों का ध्यान पतिसेवा से हटाकर दूसरी ओर लगा दें, जिससे ये नगर पृथ्वी पर आ सकें, तथा इन अजेय राक्षसों का नाश हो सके।

शंकर के वचनों को स्वीकार कर, नारद वहाँ गया, तथा वहाँ की स्त्रियों को विभिन्न प्रकार के अन्य धार्मिक पूजा-पाठों की ओर उनका ध्यान आकर्षित कर पति-सेवा व्रत से हटा दिया। जिसके कारण, नगरों की शक्ति कम होने लगी। ऐसी स्थिति देखकर, शंकर ने तीन नोकों वाले बाण से तीनों नगरों को वेध दिया। शंकर ने अग्नि को भी आज्ञा दी कि, ये त्रिपुर नगरियों जला दी जाय। अग्नि ने आज्ञा पाते ही उन्हें भस्मीभूत करना शुरू किया।

शिवभक्ति—नगरों को जलता देख कर, बाण अपनी नगरी से अपने उपास्यदेव का शिवलिंग साथ ले कर बाहर निकला। यह शिवभक्त था, अतएव अपने को कष्ट में पाकर इसने 'तोटक छन्द' के द्वारा, शंकर की पूजा कर के उसे प्रसन्न किया। प्रसन्न हो कर शंकर ने इसकी शोणितपुर नगरी बचा दी, तथा अन्य दो को जलने दिया। वे दोनों जलकर क्रमशः 'शैल' तथा 'अमरकंटक' पर्वत पर गिरी। इसी कारण उन दो स्थानों पर दो तीर्थ बन गये (मत्स्य १८७-१८८; पद्म. स्व. १४-१५)।

एक बार खेल में निमग्न शिवपुत्र कार्तिकेय को देख कर यह प्रसन्नता से विभोर हो उठा। तथा इसके मन में यह इच्छा जाग्रत हुयी कि मैं शंकर-पुत्र बनूँ। यह सोच कर इसने कड़ी तपस्या की, जिससे प्रसन्न हो कर शंकर ने इसे वर माँगने के लिए कहा। इसने शंकर से प्रार्थना की, 'मेरी उत्कट अभिलाषा है कि, कार्तिकेय की भाँति माता पार्वती मुझे पुत्र के रूप में ग्रहण करे'। शंकर ने वरप्रदान करते हुए, कार्तिकेय के जन्मस्थान का नित्य के लिए इसे अधिपति बनाया (ह. वं. २.११६.२२)। कार्तिकेय ने प्रसन्न हो कर इसे अपना तेजस्वी ध्वज एवं मयूर वाहन प्रदान किया। शिवपुत्र द्वारा दिये गये ध्वज में मयूर की छाप थी, जिसका सर मयूर का न हो कर मनुष्य का था (ह. वं. १.११६.२२; शिव. रुद्र. यु. ५३)।

शंकर द्वारा प्राप्त वरों का निर्देश शिव पुराण में भी प्राप्त है, लेकिन उसमें कुछ भिन्नता हैं। शिवपुराण में लिखा है कि, इसने भगवान शंकर के साथ ताण्डव में भाग लेकर अत्यधिक सुन्दर नृत्य किया था, जिससे प्रसन्न हो कर इसे ये वर प्राप्त हुए थे। इसके सिवाय इसने शंकर से यह भी वर माँगा कि, वह भविष्य में उसके परिवार का रक्षण करता हुआ इसे चिरन्तन आनंद प्रदान करता रहेगा। शंकर ने इसे यह वरदान दे कर, वह स्वयं अपने पुत्र कार्तिकेय एवं गणेश के साथ इसकी रक्षार्थ इसके नगर में रहने लगा (शिव. रुद्र. यु. ५१)।

भागवत के अनुसार, तांडवनृत्य के समय इसने शिव के साथ वाद्यवादन किया था, जिससे प्रसन्न हो कर उसने इसे उक्त वरप्रदान किये थे (भा. १०. ६२)।

बाण ने शंकर द्वारा प्राप्त किये हुए इन वरों के बल पर, अनेकानेक बार इन्द्रादि देवों को जीत कर, जब जैसा चाहा किया। किसी में इतनी शक्ति न थी, जो इसके तेज के सामने ठहर सके। एक बार महाबली बाण ने शंकर से कहा, 'मेरी अनंत शक्ति मेरे अंदर लड़ने के लिए मुझे मजबूर कर रही है;-पर कोई भी मेरी टक्कर का नजर नहीं आ रहा। हज़ार बाहुओं को तृप्ति करने के लिए मैं दिग्गजों से भी लड़ने गया, पर वे भी मेरी शक्ति के सामने ठहर न सके। अब मै युद्ध करना चाहता हूँ। मुझे उसमें ही शान्ति है। यह युद्ध कब होगा?' उत्तर देते हुए

शंकर ने कहा 'जिस दिन कार्तिकेय द्वारा दिया गया ध्वज ध्वस्त होगा, उसी के बाद तुम्हारी यह इच्छा पूर्ण होगी। तुम्हे युद्ध का अवसर प्राप्त होगा'। पश्चात इसके ध्वज पर इन्द्र का वज्र गिरा, तथा वह ध्वस्त हो गया।

उषा-अनिरुद्ध-प्रणय—इसके उषा नामक एक कन्या थी, जो अत्यधिक नियंत्रण में रख्खी जाती थी। एक बार एक पहरेदार द्वारा इसे यह सूचना प्राप्त हुई कि, उषा किसी परपुरुष से अपने सम्पर्क बढ़ा रही हैं। इससे संतप्त होकर, सत्यता जानने की इच्छा से यह उसके महल गया। वहाँ इसने देखा कि, उषा एक पुरुष के साथ द्यूत खेल रही है। दोनों को इस प्रकार निमग्न देखकर यह क्रोध से लाल हो उठा, तथा अपने शस्त्रास्त्र तथा गणों के साथ उस पर आक्रमण बोल दिया। पर उस पुरुष का बाल बाँका न हुआ। उसने बाण के हर वार का कस कर मुकाबला किया। वह पुरुष कोई साधारण नहीं, वरन् कृष्ण का पौत्र अनिरुद्ध ही था। अन्त में बाण ने अपने को गुप्त रखकर अनिरुद्ध पर नागपाश छोड़े। उन नागों ने उषा तथा अनिरुद्ध को चारों ओर से जकड़ लिया, तथा दोनों कारागार में बन्दी बनाकर डाल दिये गये।

कृष्ण से युद्ध—अनिरूद्ध के कारावास हो जाने की सूचना जैसे ही कृष्ण को प्राप्त हुयी, वह अपनी यादव सेना के साथ शोणितपुर पहुँचा, तथा समस्त नगरी को सैनिकों से घेर लिया। दोनों पक्षों में घनघोर युद्ध हुआ। बाण की रक्षा के लिए उसकी ओर से शंकर भगवान्, कार्तिकेय एवं गणेश भी थे। इस युद्ध में गणेश का एक दाँत भी टूटा, जिससे उसे 'एकदंत' नाम प्राप्त हुआ।

इस युद्ध में, पद्म के अनुसार, बाण का युद्ध सबसे पहले बलराम से हुआ, तथा भागवत एवं शिवपुराण के अनुसार, इसका सर्वप्रथम युद्ध सात्यकि से हुआ। कृष्ण के साथ इसका युद्ध बाद में हुआ, जिसमें कृष्ण के अपार बलपौरुष के समक्ष इसके सभी प्रयत्न असफल हो गये। इन समस्त युद्धों में, पहले बाण की ही जीत नज़र आती थी; किन्तु अन्त में इसको हर एक युद्ध में पराजय का ही मुँह देखना पड़ा।

अन्त में जैसे ही कृष्ण ने सुदर्शन चक्र के द्वारा इसका वध करना चाहा, वैसे ही अष्टावतार लम्बा के रूप में पार्वती इसके संरक्षण के लिए नग्नावस्था में ही दौड़ी आई। भागवत में पार्वती के इस रूप को 'कोटरा' कहा गया है। इसके पूर्व भी, इसी युद्ध में पार्वतीजी अपने पुत्र कार्तिकेय की रक्षा के लिये आई थी, तथा उन्हें अब दुबारा इसकी रक्षा के लिए आना पड़ा, क्योंकि वह वचनबद्ध थीं। कृष्ण ने पार्वती से अलग रहने के लिए कहा, किन्तु वह न मानी तथा कृष्ण से निवेदन किया, 'यदि तुम चाहते हो कि मैं पुत्रवती रहूँ, मेरा पुत्र जीवित रहे, तो बाण को जीवनदान दो। मैं इसकी रक्षा के ही लिये तुम्हारे सम्मुख हूँ'। कृष्ण ने प्रत्युत्तर देते हुए कहा 'मैं तुम्हारी उपेक्षा नहीं कर सकता, किन्तु यह अहंकारी हैं, इसे अपने हज़ार बाहुओं पर गर्व है; अतएव इसके दो हाथों को छोड़कर समस्त हाथों को नष्ट कर दूँगा'। इतना कह कर कृष्ण ने इसको दो हाथों को छोड़कर शेष हाथ काट दिये (पद्म. ३. २. ५०)। भागवत तथा शिवपुराण के अनुसार विष्णु ने इसके चार हाथ रहने दिये, तथा शेष काट डाले (भा. १०.६३.४९)।

शिवपुराण में कृष्ण द्वारा इसका वध न होने कारण दिया गया है। जब कृष्ण ने इसका वध करना चाहा, तब शिव ने उनसे कहा 'दधीचि, रावण एवं तारकासुर जैसे लोगों का वध करने के पूर्व तुमने मेरी संमति ली थी। बाण मेरे लिये पुत्रवत् है, उसको मैंने अमरत्व प्रदान किया है; अतः मेरी यही इच्छा है कि, तुम इसका वध न करो।

वरप्राप्ति--भागवत के अनुसार कृष्ण ने इसे इसलिये जीवित छोडा, क्यों कि, उसने इसके प्रपितामह प्रह्लाद को वर प्रदान किया था कि, वह उसके किसी वंशज का वध न करेगा। इसी कारण इसका वध नही किया, केवल गर्व को चूर करने के लिये हाथ तोड़ दिये। इसके साथ ही कृष्ण ने वर दिया, 'तुम्हारे ये बचे हुए हाथ जरामरण रहित होंगे, एवं तुम स्वयं भगवान् शिव के प्रमुख सेवक बनोंगे (भा. १०.६३)।

युद्ध समाप्त होने पर भगवान् शिव ने भी इसे अन्य वर भी दिये, जिनके कारण इसे अक्षय गाणपत्य, बाहुयुद्ध में अग्रणित्व, निर्विकार शंभुभक्ति, शंभुभक्तों के प्रति प्रेम, देवों से तथा विष्णु से निर्वैरत्व, देवसाम्यत्व (अजरत्व एवं अमरत्व) इसे प्राप्त हुए (शिव. रुद्र. यु. ५९)। हरिवंश तथा विष्णु पुराण के अनुसार, शिव ने इसे निम्न वर और प्रदान कियेः--बाहुओं टूटने के वेदना का शमन होना, बाहुओं के टूटने के कारण मिली विद्रूपता का नष्ट होना, शिव की भक्ति करने पर पुत्र की प्राप्ति होना आदि (ह. वं. २.१२६; विष्णु. ५.३०)।

उषा-अनिरुद्ध विवाह—तत्पश्चात् कृष्ण ने इसे बड़े सम्मान के साथ द्वारका बुलाया, एवं उषा तथा अनिरुद्ध का विवाह संपन्न कराया। विवाहोपरान्त कृष्ण ने इसे बड़े स्नेह से विदा किया। इसने उषा के अनिरुद्ध से उत्पन्न पुत्र को अपने राज्य का उत्तराधिकारी बनाया, जिससे प्रतीत होता है कि इसको कोई पुत्र न था (शिव. रुद्र. यु. ५९)। किन्तु ब्रह्मांड में इसकी पत्नी लोहिनी से उत्पन्न इसके 'इंद्रधन्वन्' नामक पुत्र का निर्देश प्राप्त हैं (ब्रह्मांड. ३.५.४५)।

इसे 'अनौपम्या' नामक और भी अनेक पत्नियाँ थीं, जिनका निर्देश पद्म एवं मत्स्य में प्राप्त है (पद्म. १४; मत्स्य. १८७. २५)।

'नित्याचार पद्धति' नामक ग्रंथ के अनुसार, बाण के द्वारा चौदह करोड शिवलिंगों की स्थापना देश के विभिन्न भागों में की गयी थी। ये लिंग 'बाणलिंग' नाम से सुविख्यात थे। नर्मदा गंगा आदि पवित्र नदियों में प्राप्त शिवलिंगाकार पत्थरों को भी, बाणासुर के नाम से 'बाणलिंग' कहा जाता है (नित्याचार. पृ. ५५६)।

बाणकथा का अन्वयार्थ—सदाचारसंपन्न एवं परम ईश्वरभक्त हो कर भी जिन असुरों का देवों के द्वारा अत्यंत निर्घृणता के साथ संहार किया गया, उन असुरों में बाण प्रमुख था। इसके वंश में से इसका पिता बलि, इसका प्रपितामह प्रह्लाद, एवं इसका पितुःप्रपितामह हिरण्यकशिपु इन सारे राजाओं को देवों के साथ लड़ना पडा। इससे प्रतीत होता है कि, देव एवं दैत्य जातिओं के पुरातन शत्रुत्व के कारण ये सारे युद्ध उत्पन्न हुए थे। पिढ़ियों से चलता आ रहा यह शत्रुत्व किसी व्यक्ति का व्यक्तिगत शत्रुत्व न हो कर, दो जातिओं का संघर्ष था (बलि वैरोचन देखिये)। बाण की जीवनकथा में शैव एवं वैष्णवों के परंपरागत संघर्षो की परछाइयाँ भी अस्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

आकाश में तैरती हुयी बाण की शोणितपुर राजधानी किसी पर्वतीय प्रदेश में स्थित नगरी के ओर संकेत करती है। शोणितपुर को लोहितपुर एवं बाणपुर नामान्तर भी प्राप्त थे (त्रिकाण्ड. ३२. १७; अमि. १३३. ९७७)। आसाम में स्थित ब्रह्मपुत्रा नदी का प्राचीन नाम भी लोहित ही था। इससे प्रतीत होता है कि, बाण का राज्य सद्यःकालीन आसाम राज्य के किसी पहाडी में बसा होगा। यह पहाडी अत्यंत दुर्गम होने के कारण, देवों के लिये बाण अजेय बना होगा।

३. स्कंद का एक सैनिक (म. श. ४४.६२)।

बादरायण—एक आचार्य, जिसने ब्रह्मसूत्रों की रचना की थी (जै. सू. १.१.५; २.१९; १०.८.४४; ११.१. ६४)। बदर का वंशज होने से इसे यह नाम प्राप्त हुआ होगा।

'वैष्णव भागवत' में, कृष्णद्वैपायन व्यास एवं बादरायण एक ही व्यक्ति माने गये है (भा. ३.५.१९)। स्वयं शंकराचार्य भी ब्रह्मसूत्रों के रचना का श्रेय बादरायण को प्रदान करते है (ब्र. सू. ४.४.२२)। किन्तु संभवतः ब्रह्मसूत्रों की मूल रचना जैमिनि के द्वारा हो कर, उन्हे नया संस्कारित रूप देने का काम बादरायण ने किया होगा। सुरेश्वराचार्य ने अपने 'नैष्कर्म्यसिद्धि' नामक ग्रंथ में वैसा स्पष्ट निर्देश किया है (नैष्कर्म्य. १.९०)। द्रमिडाचार्य ने भी अपने 'श्रीभाष्यश्रुतप्रकाशिका' नामक ग्रंथ में सर्वप्रथम वंदन जैमिनि को किया है, एवं उसके पश्चात् बादरायण का निर्देश किया है।

कई विद्वानों के अनुसार, बादरायण एवं पाराशर्य व्यास दोनो एक ही व्यक्ति थे। किन्तु सामविधान ब्राह्मण में दिये गये आचार्यों के तालिका में इन दोनों का स्वतंत्र निर्देश किया गया है, एवं इन दोनों में चार पीढ़ीयों का अंतर भी बताया है। बादरायण स्वयं अंगिरसकुल का था (आप. श्रौ. २४.८-१०), एवं इसके शिष्यों में तांडि एवं शाट्यायनि ये दोनो प्रमुख थे। पाराशर्य व्यास अंगिरसकुल का न हो कर वसिष्ठकुल का था।

बादरि-बादरायण-भिन्नता—जैमिनिसूत्रों में निर्दिष्ट बादरि नामक आचार्य एवं बादरायण दो स्वतंत्र व्यक्ति थे। क्यों कि, बादरायण के मतों से विपरीत बादरि के अनेक मतों का निर्देश 'बादरि सूत्रों' में प्राप्त है। बादरायण देह का भाव तथा अभाव इन दोनों को मान्य करता है। इसके विपरीत, बादरि देह की अभावयुक्त अवस्था को ही मानता है। इस मतभिन्नता से दोनों आचार्य अलग व्यक्ति होने की संभावना स्पष्ट होती है (ब्र. सू. ४. ४.१०-१२)।

सत्याषाढ के गृह्यसूत्र में इसके गर्भाधान विषयक मतों का निर्देश प्राप्त है, जिसमें यह विधि स्त्री को प्रथम ऋतु प्राप्त होते ही करने के लिये कहा गया है (स. गृ. १९. ७.२५)।

ब्रह्मसूत्र—बादरायण के द्वारा रचित 'ब्रह्मसूत्र' के कुल चार अध्याय, सोलह पाद, एक सौ बयान्नवे अधिकरण एवं पाँच सौ पछपन सूत्र हैं। इस ग्रंथ को उत्तर

मीमांसा, बादरायण सूत्र, ब्रह्ममीमांसा, वेदान्तसूत्र, व्याससूत्र एवं शारीरक सूत्र आदि नामान्तर भी प्राप्त है।

इस ग्रंथ में बृहदारण्यक, छांदोग्य, कौषीतकी, ऐतरेय, मुंडक, प्रश्न, श्वेताश्वतर, जाबाल एवं आथर्वणिक (अप्राप्य) आदि उपनिषद् ग्रंथों में प्राप्त वाक्यों का विचार किया गया है।

इस ग्रंथ में निम्नलिखित पूर्वाचार्यों के मत उनके नामोल्लेख के साथ ग्रथित किये गये हैं:— आत्रेय, आश्मरथ्य, औडुलोमि, काशकृत्स्न, कार्ष्णाजिनि, जैमिनि एवं बादरि। इन पूर्वाचार्यों में से बादरि का निर्देश चार सूत्रों में, औडुलोमि का तीन सूत्रों में, आश्मरथ्य का दो सूत्रों में, एवं बाकी सारे आचार्यों का निर्देश एक एक सूत्र में किया गया हैं। स्वयं बादारायण के मत आठ सूत्रों में दिये गये है।

इन सूत्रों का मुख्य उद्देश उपनिषदों के तत्त्वज्ञान का समन्वय करना, एवं उसे समन्वित रूप में प्रस्तुत करना है। महाभारत, मनुस्मृति एवं भगवद्गीता के तत्त्वज्ञान को उद्देश कर भी कई सूत्रों की रचना की गयी है। ये सारे सूत्र काफी महत्त्वपूर्ण है, किन्तु भाष्यग्रन्थों के सहाय्य के सिवाय उनका अर्थ लगाना मुष्किल है। उन में से कई सूत्रों के शंकराचार्य के द्वारा दो दो अर्थ लगाये गये हैं (ब्र. सू. १.१.१२–१९; ३१; ३.२७; ४.३; २.२.३९–४० आदि)। कई जगह पाठभेद भी दिखाई देते हैं (ब्र. सू. १.२.२६; ४.२६)।

इस ग्रन्थ की रचनापद्धति प्रथम पूर्वपक्ष, एवं पश्चात् सिद्धान्त इस पद्धति से की गयी है। किंतु कई जगह प्रथम सिद्धान्त दे कर, बाद में उसका पूर्वपक्ष देने की 'प्रतिलोम' पद्धति का भी अवलंब किया गया है (ब्र. सू. ४.३.७–११)।

अपना विशिष्ट तत्त्वज्ञान स्पष्ट रूप से ग्रथित करने का प्रयत्न बादरायण ने इस ग्रन्थ के द्वारा किया है। इसका यह प्रयत्न श्री व्यासरचित भगवद्गीता से साम्य रखता है।

बादरायणि—शुक ऋषि का नामांतर।

बादरि—जैमिनि सूत्रों में निर्दिष्ट एक आचार्य (जै. सू. ३.१.३; ६.१.२७; ८.३.६; का. श्रौ. ४.३.१८; ब्र. सू. ४.४.११; बादरायण देखिये)।

२. श्याम पराशर कुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

बादुलि—विश्वामित्र के ब्रह्मवादी पुत्रों में से एक (म. अनु. ४.५३)।

बाध्यश्व—भार्गवकुल का एक मंत्रकार।

बाध्योग—जिह्वावत् नामक आचार्य का पैतृक नाम (बृ. उ. माध्यं ६.४.३३; जिह्वावत् देखिये)। बध्योग का वंशज होने के कारण उसे यह पैतृक नाम प्राप्त हुआ होगा।

बाभ्रव—एक आचार्य, जो वेद, छंद, शरीर एवं महापुरुष आदि को अध्ययन के विषय मानता था (ऐ. आ. ३.२.२)। सांख्यायन आरण्यक में इसके नाम के लिए 'वात्स्य' पाठभेद प्राप्त है (सां. आ. ८.३)।

२. एक तत्वज्ञ, जिसका बाष्कलि नामक आचार्य से 'ब्रह्म की अनिर्वचनीयता' के बारे में संवाद हुआ था (४ बाष्कलि देखिये)।

बाभ्रव— वत्सनपात् नामक आचार्य का पैतृक नाम (बृ. उ. माध्यं. २. ५. २२; ४. ५. २८)।

ऐतरेय ब्राह्मण में प्राप्त शुनःशेप की कथा में कापिलेय एवं बाभ्रव लोगों को शुनःशेप के वंशज बताये गये है (ऐ. ब्रा. ७. १७)। बभ्रु का वंशज होने से इसे 'बाभ्रव' नाम प्राप्त हुआ होगा। बभ्रु के द्वारा रचित एक सामन् का निर्देश पंचविंशब्राह्मण में प्राप्त है (पं. ब्रा. १५. ३.१२)।

बाभ्रव्य—गिरिज एवं शंख नामक आचार्यों का पैतृक नाम (ऐ. ब्रा. ७.१; जै. उ. ब्रा. ३.४१.१; ४.१७.१)।

आश्वलायन गृह्यसूत्र के ब्रह्मयज्ञांग तर्पण में, क्रम के पाठन की परंपरा शुरु करनेवाले आचार्य के रूप में इसका निर्देश प्राप्त है (ऋ. प्रा. ११. ३३)।

२. विश्वामित्रकुल का एक गोत्रकार।

३. एक गोत्र का नाम। गालवमुनि इसी गोत्र में उत्पन्न हुए थे।

बाभ्रव्य पांचाल—एक आचार्य, जो दक्षिण पांचाल देश के ब्रह्मदत्त राजा के दो मंत्रियों में से एक था (ह. वं. १.२०.१३)। इसका संपूर्ण नाम 'सुबालक (गालव) बाभ्रव्य पांचाल' था। इसे 'बहूवृच' एवं 'आचार्य' ये उपाधियाँ प्राप्त थी (ह. वं. १.२३.२१)। यह सर्वशास्त्रविद् एवं योगशास्त्र का परम अभ्यासक था (मत्स्य. २०.२४; २१.३०)।

इसने ऋग्वेद की शिक्षा तयार कर उसका प्रचार किया। इसने वेदमंत्रों का क्रम निश्चित किया, एवं उसका प्रचार भी किया (पद्म. पा. १०; ह. वं. १.२४.३२; म. शां. ३३०. ३७–३८; पांचाल ३. देखिये)। ऋक् संहिता के क्रमपाठ के रचना का श्रेय वैदिक ग्रंथों में भी बाभ्रव्य पांचाल को

दिया गया है। पाणिनि ने भी बाभ्रव्य एवं इसके द्वारा रचित क्रम का निर्देश किया है (पा. सू. ४.१.१०६; २.६१)।

ब्रह्मदत्त राजा के कंडरिक (पुंडरिक) एवं बाभ्रव्य नामक दो मंत्रियों ने समस्त वैदिक ऋचाओं को एकत्र कर उनको ऋग्वेद, सामवेद एवं यजुर्वेद इन संहिताओं में विभाजित किया। उन संहिताओं का अंतीम एकत्रीकरण एवं संस्करण व्यास ने किया।

२. एक कामशास्त्रकार एवं वात्स्यायन के कामसूत्र का पूर्वाचार्य। वात्स्यायन के अनुसार, कामशास्त्र की सर्वप्रथम रचना श्वेतकेतु ने की, एवं श्वेतकेतुप्रणीत कामशास्त्र के संक्षेपीकरण का कार्य बाभ्राव्य पांचाल ने किया।

मत्स्य में 'क्रमपाठ रचयिता' बाभ्रव्य एवं 'कामसूत्रकार' बाभ्रव्य को अनवधानी से एक माना गया है। किन्तु कामसूत्रकार बाभ्रव्य का पूर्वाचार्य श्वेतकेतु क्रमपाठरचयिता बाभ्रव्य से काफी उत्तरकालीन था। इससे प्रतीत होता है कि, ये दो बाभ्रव्य अलग व्यक्ति थे।

बाभ्रव्यायणि—विश्वामित्र के पुत्रों में से एक।

बार्हत्सामा—अथर्ववेद में निर्दिष्ट एक स्त्री, जो बृत्सामन् की कन्या थी। गर्भाधान सरल बनानेवाले एक सूक्त में इसका निर्देश प्राप्त है (अ. वे. ५. २५. ९)।

बार्हदिषु—अजमीढवंशीय राजाओं के लिये प्रयुक्त सामुहिक नाम। अजमीढपुत्र बृहदिषु राजा से ले कर, उसी वंश के भल्लाट तक के राजा 'बार्हदिषवः' नाम से विख्यात थे (भा. ९.२१.२६)।

बार्हद्रथ—मगध देश के बृहद्रथ राजा के वंशजों के लिये प्रयुक्त सामुहिक नाम। इनकी राजधानी गिरिव्रज नगर में थी। पुराणों में इस वंश के कुल बाइस या बत्तीस राजाओं का निर्देश प्राप्त है (बृहद्रथ देखिये)।

बार्हस्पत्य—शंयु, विदथिन् एवं भारद्वाज आदि आचार्यों का पैतृक नाम। बृहस्पति का वंशज होने से उन्हे यह नाम प्राप्त हुआ होगा।

बाल—एक ब्राह्मण, जो अत्यंत पापी एवं पाखंड मत-प्रवर्तक था। अपनी मृत्यु के पश्चात्, इसे पुनः एक बार मनुष्यजन्म प्राप्त हुआ। अपने इस नये जन्म में इसने गतपापों का क्षालन करने के लिये सरस्वती मंत्र का जप किया, जिस कारण इसके सारे पापों का नाश हो कर, अगले जन्म में यह मैत्रेय नामक सद्वर्तनी ऋषि बन गया (स्कंद २.४६)।

२. वसिष्ठकुल का एक गोत्रकार।

बालखिल्य—ब्रह्माजी के वालखिल्य नामक शक्तिशाली पुत्रों का नामांतर (बालखिल्य देखिये)।

बालडि—अंगिराकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

बालधि—एक शक्तिशाली ऋषि, जिसने पुत्रप्राप्ति के लिए घोर तपस्या की थी। इसकी तपस्या से प्रसन्न हो कर देवों ने इसे वर माँगने के लिए कहा। किंतु इसके द्वारा अमरपुत्र की माँग की जाने पर देवों ने इसे कहा, 'इस सृष्टि की हर एक वस्तु नश्वर है, इसी कारण अमर पुत्र की अपेक्षा करना भी व्यर्थ है'। फिर सामने दिखाई देनेवाले पर्वत की ओर निर्देश करते हुए इसने देवताओं से कहा, 'यह पर्वत जितने वर्ष रह सकेगा उतनी आयु का पुत्र आप मुझे प्रदान करे'।

इसकी प्रार्थना के अनुसार, देवों ने इसे एक पुत्र प्रदान किया जिसका नाम मेधावी था। उसे यह बड़े लाड़प्यार से 'पर्वतायु' कहता था। बड़ा होने पर पर्वतायु देवों के वर का आश्रय ले कर अत्यंत उद्दण्ड बन गया। एक बार उसने धनुषाक्ष नामक महर्षि का बिना किसी कारण अपमान किया। उस समय महर्षि ने पर्वतायु को शाप दिया, 'तुम भस्म हो जाओगे'।

महर्षि के इस शाप का पर्वतायु पर कोई भी असर न हुआ, एवं वह जीवित ही रहा। अपना शाप विफल हुआ यह देख कर धनुषाक्ष ऋषि को अत्यंत आश्चर्य हुआ। पश्चात् दिव्यदृष्टि से उसने पर्वतायु के वर का रहस्य जान लिया, एवं अपने तपोबल से एक भैंसा निर्माण कर उसके द्वारा वह पर्वत खुदवा डाला, जिसके उपर पर्वतायु की आयु निर्भर थी। उसी क्षण पर्वतायु की मृत्यु हो गयी (म. व. १३४)। अपने प्रिय पुत्र की मृत्यु पर बालधि ऋषि ने काफ़ी विलाप किया।

बालन्दन—वत्सप्री ऋषि का पैतृक नाम, जो संभवतः भालन्दन (भलंदन का वंशज) का विभेदात्मक रूप है (वेबर-इंडिशे स्टूडियन ३.४५९.४७८)।

बालपि—भृगु कुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

बालवय—वसिष्ठकुल का एक गोत्रकार।

बालस्वामी—स्कंद का एक सैनिक (म. श. ४४.६०)।

बालाकि—भृगुकुल का एक गोत्रकार।

२. गार्ग्य बालाकि नामक ऋषि का नामांतर (गार्ग्य बालाकि देखिये)। इसे दृप्त बालाकि नामांतर भी प्राप्त है (श. ब्रा. १४.५.१)। इसके नाम के लिए 'बालाक्या'

पाठभेद भी उपलब्ध है (काश्यपीबालाक्या माठरीपुत्र देखिये)।

बालानामयिक--स्कन्द का एक सैनिक (म. श. ४४.६९)।

बालायनि--एक आचार्य, जिसे बाष्कलि ने वालखिल्य संहिता सिखायी थी (भा. १२.६.६०)।

बालावती--कण्व ऋषि की कन्या, जिसने उत्तम पति के प्राप्त्यर्थ कठोर तपस्या की थी। एक बार भगवान् सूर्यनारायण अतिथि रूप में इसके यहाँ आया, एवं कुछ बेर इसे प्रदान कर उन्हे पकाने के लिए कहा।

सूर्यनारायण की आज्ञानुसार यह बेर पकाने लगी। किन्तु चुल्हे की सारी लकडियाँ समाप्त होने पर भी बेर न पके; फिर इसने अपने पाँव चुल्हे में लगा दिये। यह देख कर सूर्य इसपर प्रसन्न हुआ, एवं इसे वर देते हुए कहा, 'तुम्हारी सारी कामनाएँ पूरी होंगी'। उसी दिन से उस स्थान को 'बालार्प' नाम प्राप्त हुआ (पद्म. उ. १५२)।

इसकी उपरिनिर्दिष्ट कथा में, एवं अरुंधती की कथा में काफी साम्य है (अरुन्धती ३. देखिये)।

बालिशय--वसिष्ठकुल का गोत्रकार ऋषिगण।

बालिशायनि--अंगिराकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

बालेय--गंधर्वायण नामक आचार्य का पैतृक नाम।

२. पराशर गोत्रोत्पन्न एक ऋषिगण।

३. बलि आनव राजा से उत्पन्न ब्राह्मण एवं क्षत्रिय लोगों का सामुहिक नाम।

बाष्कल--हिरण्यकशिपु का एक पुत्र (म. आ. ५९. १८)। इसे कुल चार भाई थेः- प्रह्लाद, संह्लाद, अनुह्लाद, एवं शिबि (म. आ. ५९.१८)। भगदत्त असुर के रूप में, यह पृथ्वी पर पुनः उत्पन्न हुआ था (म. आ. ६१.९)।

२. हिरण्यकशिपु का पौत्र एवं अनुह्लाद का पुत्र। इसकी माता का नाम सूर्मि था।

३. प्रह्लाद का पुत्र। इसके नाम के लिये बाष्कलि पाठभेद भी प्राप्त है।

४. महिषासुर का एक पुत्र (मार्क. ७९. ४२)।

५. संह्लाद नामक असुर का पुत्र। इसे चंड, दक्ष एवं सुर नामक तीन पुत्र थे।

६. एक आचार्य, जो व्यास की ऋक्शिष्यपरंपरा में से पैल ऋषि का पुत्र था। इसके नाम के लिये 'बाष्कलि' पाठभेद प्राप्त है (व्यास देखिये)।

बाष्कलि--प्रह्लाद का पुत्र (पद्म. सृ. ६)।

२. अंगिराकुलोत्पन्न एक गोत्रकार एवं मंत्रकार ऋषि। यह वालखिल्य संहिता का रचयिता था, जो इसने अपने बालायनि, भज्य, एवं कासार नामक शिष्यों को सिखायी थी (भा. १२.६.५९)।

३. एक ऋग्वेदी श्रुतर्षि एवं ब्रह्मचारी।

४. एक तत्त्वज्ञ, जिसका निर्देश शंकराचार्य के ब्रह्मसूत्रभाष्य में प्राप्त हैं। उक्त ग्रन्थ में इसका एवं बाध्व ऋषि के बीच हुए शास्त्रार्थ एक आख्यायिका के रूप में वर्णित है। बाष्कलि ने बाध्व से पूँछा 'ब्रह्म कैसा है?' वह मौन रहा। उसकी मौनता को देख कर, इसने दो तीन बार अपने प्रश्न को बार बार रक्खा। तब बाध्व ने कहा, 'अपने मौन सम्भाषण से ही, मै व्यक्त कर चुका हूँ कि, ब्रह्म अनिर्वचनीय है (यतो वाचो निवर्तन्ते)। अब तुम समझ न सको तो दोष किसका है?' (ब्र. सू. ३. २.१७)।

बाध्व द्वारा बाष्कलि को ब्रह्म की स्वरूपता का कराया हुआ यह ज्ञान, बड़ा नाटकीय एवं तार्किक है।

५. एक दैत्य, जिसने तपस्या के बल पर सारा त्रैलोक्य जीत कर इन्द्रपद प्राप्त किया। विष्णुधर्म एवं पद्म में इसकी कथा दी गयी है, जो सम्पूर्णतः बलि वैरोचन की वामनावतार की कथा से मिलती जुलती है। इसे 'त्रिविक्रम' का अवतार कहा गया है। सम्भव है, यह एवं 'बलि वैरोचन' दोनों एक ही हों।

इसके द्वारा इंद्रपद प्राप्त कर लेने के बाद, वामनावतारी विष्णु ने ब्राह्मणकुमार के रूप में आ कर, इससे यज्ञ के लिए तीन पग भूमि दान माँगी। जैसे ही बाष्कलि ने दानसंकल्प के लिए अर्घ्य दिया, कि वामन ने विशाल रूप धारण कर, एक पग से ब्रह्माण्ड, द्वितीय से सूर्यमण्डल, तथा तृतीय से ध्रुवमण्डल नाप कर, इसके सम्पूर्ण ऐश्वर्य का हरण कर लिया।

वामन ने जैसे ही ब्रह्मांड पर पैर रक्खा, वैसे ही उसके पगस्पर्श से वह फूट गया, तथा उससे गंगा की धारा फूट चली (विष्णुधर्म. २१.१; पद्म. सृ. ३०)।

बाष्कलि भारद्वाज--एक आचार्य, जो वायु एवं भागवत के अनुसार व्यास की ऋक्शिष्यपरंपरा के सत्यश्री ऋषि का शिष्य था।

बाष्किह--शुनस्कर्ण राजा का पैतृक नाम (पं. ब्रा. १७.१२.६)। 'बष्किह' का वंशज होने से उसे यह नाम

प्राप्त हुआ होगा। बौधायन श्रौतसूत्र में इसे शिबि राजा का वंशज कहा गया है (बौ. श्रौ. २१.१७)।

बार्हीक--उत्तरी पश्चिम पंजाब में रहनेवाले लोगों के लिए प्रयुक्त सामुहिक नाम (श. ब्रा. १.७.३.८)। ये अग्नि को 'भव' नाम से संबोधित करते थे।

बाहु--(सू. इ.) एक इक्ष्वाकुवंशीय राजा, जो सगर राजा का पिता था (म. शां. ५७.८)। मत्स्य एवं विष्णु में इसे वृक राजा का, एवं वायु में इसे धृतक राजा का पुत्र कहा गया है। ब्रह्मांड में इसे 'फल्गुतंत्र' नामान्तर दिया गया है, एवं भागवत में इसके नाम के लिये 'बाहुक' पाठभेद प्राप्त है। इसे 'असित' नामान्तर भी प्राप्त है (वा. रा. बा. ७०.३०; अयो. ११०.१८)।

ब्रह्मांड के अनुसार यह कृतयुग में पैदा हुआ, एवं इसने पृथ्वी के सप्तद्वीपों में सात अश्वमेध यज्ञ किये (ब्रह्मांड. ३.६३.१२१; वायु. ८९.१२३; ह. वं. १.१४; ब्रह्म. ८.३०; शिव. वा. ६१.२३; नारद. १.७१.५)। इसे कुल दो पत्नियाँ थी। उनमें से केशिनी अथवा कालिंदी नामक पत्नी से इसे सगर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ (सगर देखिये)।

हैहय राजा तालजंघ ने शक, कंबोज आदि राजाओं के सहाय्यता से इसपर आक्रमण कर इसका पराजय किया। इस पराजय के पश्चात्, यह और्व ऋषि के आश्रम में रहने के लिए गया, एवं उसी आश्रम में इसकी मृत्यु हो गयी (मत्स्य. १२.४०; पद्म. सृ. ८; लिंग. १.६६.१५; विष्णुधर्म. १.१६)।

२. एक शक्तिशाली राजा, जिसे भारतीय युद्ध के समय पाण्डवों की ओर से रणनिमंत्रण भेजा गया था (म. उ. ४.२९)।

३. सुंदरवेग वंश का एक 'कुलपांसन' राजा, जिसने अपने दुर्वर्तन के कारण अपने कुल का विनाश कराया (म. उ. ७२.१३)।

४. (स्वा. उत्तान.) एक राजा, जो पृथु राजा का पुत्र था।

५. इंद्रसावर्णि मन्वन्तर के सप्तर्षियों में से एक।

६. स्वारोचिष मनु का एक पुत्र।

बाहुक--(सू. इ.) इक्ष्वाकुवंशीय बाहु राजा का नामान्तर (बाहु १. देखिये)। भागवत में इसे वृक राजा का पुत्र कहा गया है।

२. निषधराज नल राजा का नामान्तर, जब की वह सूतअवस्था में अयोध्यानरेश ऋतुपर्ण के यहाँ रहता था (म. व. ६४.२; नल १. देखिये)।

३. कौरव्य कुल का एक नाग, जो जनमेजय के सर्पसत्र में दग्ध हुआ था (म. आ. ५२.१२)।

४. एक वृष्णिवंशीय वीर, जिसके पराक्रम के बारे में सात्यकि ने श्रीकृष्ण से चर्चा की थी (म. व. १२०.१८)।

बाहुगर--(सो.) एक राजा, जो भविष्य के अनुसार सुद्युम्न राजा का पुत्र था।

बाहुदा सुयशा--परिक्षित् द्वितीय राजा की कुरुवंशीय पत्नी (सुयशा देखिये)। इसके पुत्र का नाम भीमसेन था।

बाहुरि--वसिष्ठ कुल के वाग्ग्रंथि नामक गोत्रकार के लिये उपलब्ध पाठभेद (वाग्ग्रंथि देखिये)।

बाहुवृक्त-- ऋग्वेद में निर्दिष्ट एक ऋषि, जिसने युद्ध में शत्रुओं पर विजय प्राप्त की थी (ऋ. ५.४४. १२)।

बाहुवृक्त आत्रेय--एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. ५.७१-७२)।

बाहुशालिन्--धृतराष्ट्र के शतपुत्रों में से एक।

बाह्य--अंगिराकुलोत्पन्न एक ऋषि।

२. (सो. क्रोष्टु.) एक यादववंशीय राजा, जो वायु के अनुसार भजमान राजा का पुत्र।

बाह्यकर्ण--एक नाग, जो कश्यप एवं कद्रू के पुत्रों में से एक था (म. आ. ३१. ९)।

बाह्यका--यादवराजा सात्वत भजमान की पत्नी जो संजय राजा की कन्या थी। इसे शताजित्, सहस्राजित् एवं आयुताजित् नामक तीन पुत्र थे।

बाह्यकुंड--कश्यप वंश में उत्पन्न एक नाग, जिसे नारद ने इंद्रसारथि मातलि को वरस्वरूप में दिखाया था (म. स. १०१. १०)।

बाह्लीक--(सो. पूरु.) कुरुवंशीय प्रतीप राजा का पुत्र, जो देवापि एवं शन्तनु का ज्येष्ठ भाई था (भा. ९. २२)। इसकी माता का नाम सुनंदा था, जो शिबि देश की राजकन्या थी (म. आ. ८९.५२)। शिबि राजा को पुत्र न था, जिस कारण यह उस राज्य का उत्तराधिकारी बन गया। प्रतीप का पुत्र होने से इसे 'प्रातिपीय' उपाधि प्राप्त थी। भागवत के अनुसार, इसके पुत्र का नाम सोमदत्त था (भा. ९. २२. १८)।

भारतीय युद्ध में, यह कौरवों के पक्ष में शामिल था। दुर्योधन की ग्यारह अक्षौहिणी सेनाओं के जो सेनापति चुने गये थे, उनमें यह भी एक था। यह स्वयं अतिरथि था (म. उ. १६४. २८)। धृष्टकेतु, द्रुपद,

शिखण्डिन् आदि के साथ इसका युद्ध हुआ था। अन्त में भीम ने इसका वध किया (म. द्रो. १३२. १९)।

महाभारत में इसका नाम बाह्लीक, बाहिलक, तथा बाह्लिक इन तीन प्रकारों में उपलब्ध है।

२. बाह्लीक देश में रहनेवाले लोगों के लिये प्रयुक्त सामुहिक नाम (बाहीक देखिये; म. भी. १०.४५)।

३. (सो. पूरु.) एक राजा, जो भरतवंशीय कुरु राजा का पौत्र, एवं जनमेजय का तृतीय पुत्र था।

४. एक राजा, जो शत्रुपक्षविनाशक महातेजस्वी 'अहर' के अंश से उत्पन्न हुआ था (म. आ. ६१.२५)।

५. कौरव पक्ष का एक योद्धा, जो क्रोधवश नामक दैत्य के अंश से उत्पन्न हुआ था (म. आ. ६१.५५)।

महाभारत में इसे 'बाह्लीकराज' कहा गया है। द्रौपदीपुत्रों के साथ इसका युद्ध हुआ था (म. द्रो. ७१.१२)।

६. युधिष्ठिर के सारथि का नाम (म. स. ५२.२०)।

७. (किलकिला. भविष्य.) किलकिलावंशीय एक राजा।

बिड़ाल—दैत्यराज महिषासुर का एक प्रधान।

बिड़ालज--अंगिराकुल के गोत्रकार 'विराडप' के नाम के लिए उपलब्ध पाठभेद (विराडप देखिये)।

बिडौजस्--देवी आदिति का पुत्र, जो उसे विष्णु के प्रसाद से प्राप्त हुआ था (पद्म. भू. ३.५)।

बिद--भृगुकुल का एक गोत्रकार एवं मंत्रकार।

बिन्दु--एक दानव, जो कश्यप एवं दनु के पुत्रों में से एक था।

२. अंगिरसकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

बिन्दुग—बाष्कलग्राम में रहनेवाला एक ब्राह्मण, जिसकी पत्नी का नाम चंचला था। यह वेश्यागामी एवं निकृष्ट विचारोंवाला था, अतएव इसकी सदाचरणी पत्नी चंचला भी इसके प्रभाव में आ कर, बुरे कर्मों की ओर अग्रेसर हो, उसीमें लिप्त हो गयी। बिन्दुग को जब यह पता चला तो इसने उसके सामने यह शर्त रखी, 'तुम वेश्यावृत्ति का कर्म खुशी से अपना सकती हो, किंतु तुम्हे सारे पैसे मुझे देने होंगे'। इस शर्त को मान कर चंचुला पूर्ण रूप से वेश्या बन गयी। मृत्यु के उपरांत, दोनो विंध्य पर्वत पर पिशाच बने।

बाद को शिवपुराण के श्रवण तथा शिवभजन के कारण, चंचला पिशाचयोनि से मुक्त हुयी। उसके प्रार्थना करने पर, पार्वतीजी ने अपने पार्षद तुंबरु द्वारा विंध्य पर्वत पर पिशाची बिन्दुग को शिवकथा का श्रवण करवाया, जिससे उसे भी मुक्ति प्राप्त हुयी (शिवपुराण-महात्म्य अ. ४)।

बिन्दुमत्—(स्वा. प्रिय.) एक राजा, जो भागवत के अनुसार मरीचि एवं बिंदुमती का पुत्र है। इसकी पत्नी का नाम सरधा था, जिससे इसे मधुर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था।

बिन्दुमती—(स्वा. प्रिय.) ऋषभदेव के वंश में उत्पन्न मरीचि राजा की पत्नी। इसके पुत्र का नाम बिन्दुमत् था।

२. सोमवंशीय शशबिन्दु राजा की ज्येष्ठ कन्या, जो युवनाश्वपुत्र मांधाता की पत्नी थी। इसे 'चैत्ररथी' नामान्तर भी प्राप्त है। मांधाता राजा से इसे अंबरीष, पुरुकुत्स एवं मुचकुंद नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए (वायु. ८८.७२; ब्रह्मांड ३.६३.७०)।

३. मदनपत्नी रति के अश्रुबिंदुओं से उत्पन्न एक कन्या, जिसे 'अश्रुबिन्दुमती' नामान्तर भी प्राप्त है। मदन का पुनर्जन्म होने के पश्चात् रति के आँखों में आनंदाश्रु झरने लगे। उनमें से दाये आँख से टपके हुए अश्रुओं से इसका जन्म हुआ।

बड़ी होने पर इसका विवाह पूरुवंशीय ययाति राजा से हुआ। गर्भवती होने पर, पृथ्वी के सारे लोकों में प्रवास करने की इसे इच्छा हुयी। फिर ययाति ने सारा राज्यभार अपना पुत्र पूरु पर सौंप कर, वह इसे पृथ्वीप्रदक्षिणार्थ ले गया (पद्म. भू. ७७–८२)। किन्तु ययाति से उत्पन्न इसके पुत्र का नाम क्या था, इसका निर्देश अप्राप्य है।

बिन्दुसार—(शिशु. भविष्य.) एक शिशुनागवंशीय राजा, जो विष्णु के अनुसार क्षत्रौजस् का पुत्र था। जैन एवं बौद्ध वाङ्मय में निर्दिष्ट 'श्रेणिक बिंबिसार' यही है। इसे विधिसार, विविसार एवं विंध्यसेन आदि नामान्तर प्राप्त थे।

२. (मौर्य. भविष्य.) एक मौर्यवंशीय राजा, जो विष्णु एवं भविष्य के अनुसार, पट्टण के चंद्रगुप्त राजा का पुत्र था। इसे वारिसार एवं भद्रसार नामान्तर भी प्राप्त थे।

यह स्वयं बौद्धधर्मीय था, एवं पौरसाधिपति सुलून (सेल्युकस निकेटर) राजा की कन्या से इसने विवाह किया था (भवि. प्रति. २.७)।

बिम्ब—(सो. वृष्णि.) एक राजा, जो वसुदेव एवं भद्रा के पुत्रों में से एक था।

बिल्व—एक विष्णु भक्त, जो आगे चल कर शिवभक्त बन गया।

आदिकल्प में ब्रह्मा ने बिल्व वृक्ष (वेलपत्र वृक्ष) का निर्माण किया, जिसे 'श्रीवृक्ष' भी कहते है। इस वृक्ष के नीचे एक व्यक्ति रहने लगी, जिसे ब्रह्मा ने 'बिल्व' नाम दिया। बाद में, इसकी भक्तिभावना तथा व्यवहार से प्रसन्न हो कर, इन्द्र ने इसे पृथ्वी का राज्य करने के लिये कहा। इस महान् उत्तरदायित्व को सभाँलने के लिये इसने इन्द्र से वज्र माँगा, जिसके बलपर सुलभता के साथ राज्य किया जा सके। इन्द्र ने इससे कहा, 'तुम वज्र ले कर क्या करोगे? जब कभी भी आवश्यकता पड़े, तुम मुझे याद कर उसे प्राप्त कर सकते हो'।

एक बार कपिल नामक एक शिवभक्त ब्राह्मण घूमता घामता इसके यहाँ आ पहुँचा। शीघ्र ही दोनों में मित्रता हो गयी। एक दिन इसमें तथा कपिल में शास्त्रार्थ हुआ, जिसका विषय था, 'तप श्रेष्ठ है अथवा कर्म'। यह चीज यहाँ तक जोर पकड़ गयी, कि इसने वज्र का स्मरण कर उसके द्वारा कपिल के दो टुकडे कर दिये। कपिल में भी शिव की भक्ति तथा अपने तप का बल था; अतएव उसने शिव के द्वारा पुनः अमरत्व प्राप्त किया।

इधर बिल्व ने विष्णु के पास जा कर उन्हें प्रसन्न कर, वर प्राप्त किया कि, संसार के समस्त प्राणी इससे डरते रहें। किन्तु इस वर द्वारा इसे कुछ लाभ न हुआ। अन्त में, विष्णुभक्ति से इसका मन शिवभक्ति की ओर झुका, तथा यह महाकालबन में शिवलिंग की आराधना करने लगा। एक बार घुमता हुआ कपिल उधर आ पहुँचा। वहाँ इसे इस रूप में देख कर वह अति प्रसन्न हुआ, तथा दोनो मित्र हो गये (स्कंद. ५. २. ८३)।

बिल्वक--एक नाग, जो कश्यप एवं कद्रू के पुत्रों में से एक था।

बिल्वतेजस्—तक्षककुल का एक नाग, जो जनमेजय के सर्पसत्र में दग्ध हुआ था (म. आ. ५२.८)। पाठभेद (भांडारकर संहिता)-'बलहेड'।

बिल्वपत्र—कश्यपवंशीय एक नाग, जो नारदद्वारा मातलि को वरस्वरूप में दिखाया गया था (म. उ. १०१. १४)।

बिल्वपांडुर--एक नाग, जो कश्यप एवं कद्रू के पुत्रों में से एक था।

बिल्वि--भृगुकुलोत्पन्न एक गोत्रकार। इसके नाम के लिये 'भल्हि' पाठभेद प्राप्त है।

बीज--विश्वेदेवों में से एक।

बीजवाप (बीजवापिन्)-- अत्रिकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

बीभत्सु--अर्जुन का नामान्तर (म. वि. ३९.१०)।

बुडिल आश्वतराश्वि वैयाघ्रपद्य--एक गायत्री-वेत्ता एवं मूलतत्त्वप्रतिपादक आचार्य, जो विदेह जनक एवं केकयराज अश्वपति का समकालीन था (बृ. उ. ५. १४.८; श. ब्रा. १०.६.१.१)। संभव है, 'बुलिल आश्वतर अश्वि' तथा यह दोनो एक ही व्यक्ति हो।

अनेक ज्ञाताओं की विद्वत्सभा में इसने आत्मा की संबंध में अपने विचार प्रकट किये, एवं 'शर्य' स्वयं ही आत्मा है, ऐसा अभिमत इसने व्यक्त किया (छां. उ. ५. ११.१)। इसका एवं विदेह जनक का विवाद हुआ था, जिसमें जनक ने इस पर 'प्रतिग्रह' लेने का दोषारोप किया था।

संभव है, व्याघ्रपद का वंशज होने के कारण, इसे 'वैयाघ्रपद्य' पैतृक नाम प्राप्त हुआ हो।

बुद्धि—दक्षप्रजापति की कन्या, जो धर्म की पत्नी थी। इसे कुल नौ बहने थी, जो सारी धर्म ऋषि की पत्नियाँ थी। इसने एवं इसके बहनों ने ब्रह्माजी द्वारा धर्म का द्वार निश्चित किया था (धर्म देखिये; म. आ. ६०.१४)।

२. एक राजा, जो सावर्णि मनु का पुत्र था।

३. तुषित देवों में से एक।

बुद्धिकामा--स्कंद की अनुचरी मातृका (म. श. ४५.१२)। इसके नाम के लिए 'वृद्धिकामा' पाठभेद प्राप्त है।

बुदबुदा—एक अप्सरा, जो वर्गा नामक अप्सरा की सखी थी (म. आ. २०८.१९; स. १०.११) ब्राह्मण के शाप के कारण, यह ग्राह हो कर जल में रहने लगी। पश्चात् अर्जुन द्वारा इसका ग्राहयोनि से उद्धार हुआ। (म. आ. २०८.१९)।

बुध--एक ग्रह, जो बृहस्पति की पत्नी तारा का चन्द्रमा से उत्पन्न पुत्र था (पद्म. सृ. ८२)। यह बृहस्पति-पत्नी का पुत्र था, इस कारण इसे 'बृहस्पतिपुत्र' नामांतर प्राप्त है। क्यों कि, यह चन्द्रमा से उत्पन्न हुआ, इसलिये इसे चन्द्र (सोम) वंश का उत्पादक कहा जाता है (पद्म. उ. २१९)।

इसकी पत्नी का नाम इला था, जो मनु की कन्या थी। इला से इसे पुरूरवस् नामक पुत्र उत्पन्न हुआ (म. अनु. १४७.२६-२७)। यही पुरुरवस् सोमवंश

का आदि पुरुष माना जाता है (पद्म. सृ. ८; १२; दे. भा. १.१३)। 'भविष्य' में इसे चन्द्र एवं रोहिणी का पुत्र कहा गया है।

जन्म—बृहस्पति की दो पत्नियाँ थीं, जिनमें से दूसरी का नाम तारा था। सोम ने तारा का हरण किया था, एवं उससे ही उसे बुध नामक पुत्र हुआ (ऋ. १०.१०९)। पुराणों में भी यह कथा अनेक बार आयी है (वायु. ९०.२८–४३; ब्रह्म. ९.१९–३२; मत्स्य. २३; पद्म. सृ. १२.३३–५८)। उक्त ग्रन्थों में निर्दिष्ट बुध के जन्म की कथा रूपात्मक प्रतीत होती है, एवं आकाश में स्थित गुरु (बृहस्पति), चन्द्र, बुध आदि ग्रहनक्षत्रों को व्यक्ति मान कर इस कथा की रचना की गयी है।

विष्णुधर्म में इसके जन्म की कथा कुछ दूसरी भाँति दी गयी है। कश्यप ऋषि की धनु नामक स्त्री थी, जिससे उसे रज नामक उत्पन्न हुआ पुत्र था। रज का विवाह वरुण की कन्या वारुणी से हुआ। एक बार समुद्र में स्नान करते समय, वारुणी उसी में डूब गयी। उसे डूबा हुआ देख कर, उसे ढूँढ़ने के लिए चन्द्रमा ने जल में प्रवेश किया। उसके प्रवेश करते ही समुद्र में हिलोरें उठने लगी, और उससे एक बालक बाहर निकला। वही बालक बुध था। बृहस्पतिपत्नी तारा ने इस बालक बुध के संरक्षण का भार लिया, किन्तु बाद को असुविधा के कारण इसे चन्द्रपत्नी दाक्षायणी को दे दिया (विष्णुधर्म. १. १०६)।

बृहस्पति ने इसका जातिकर्मादि संस्कार किये थे। यह परम विद्वान् हो कर 'हस्तिशास्त्र' में विशेष पारंगत था (पद्म. सृ. १२.)। भास्कर संहिता के अन्तर्गत 'सर्वसारतंत्र' का यह रचयिता माना जाता है (ब्रह्मवै. २. १६)।

अदिति को शाप—एक बार इसने व्रत किया, एवं उसकी समाप्ति होने पर यह कश्यप ऋषि की पत्नी अदिति के पास भिक्षा के लिए गया और भिक्षा की याचना की। भिक्षा न मिलने पर इसने अदिति को शाप दिया, जिस कारण उसे एक मृत-अण्ड पैदा हुआ। उस अण्ड से कालोपरान्त श्राद्धदेव की उत्पत्ति हुयी। मृत अण्ड से पैदा होने के कारण, उसे 'मार्तंड' नामांतर प्राप्त हुआ (म. शां. ३२९.४४)।

भागवत में इसका विवरण एक ग्रह के रूप में दिया गया है। बुध ग्रह सौरमण्डल में शुक्रग्रह से दो लाख योजन की दूरी पर स्थित माना जाता है। यह शुभग्रह अवश्य है; किन्तु जब सूर्य का उल्लंघन कर जाता है, तब अनावृष्टि द्वारा संसार को त्रस्त करता है (भा. ५. २२)।

२. एक वानप्रस्थी ऋषि, जिसने वानप्रस्थधर्म का पालन एवं प्रसार कर स्वर्गलोक प्राप्त किया था (म. शां. २३९. १७)।

३. (सू. दिष्ट.) एक राजा, जो विष्णु एवं वायु के अनुसार वेगवत् राजा का पुत्र था। इसे 'बंधु' नामांतर भी प्राप्त है।

४. एक स्मृतिकार एवं धर्मशास्त्रज्ञ, जिसका निर्देश अपरार्क, कल्पतरु, जीमूतवाहनकृत 'कालविवेक' आदि ग्रन्थों में प्राप्त है। इसके द्वारा रचित धर्मशास्त्र का ग्रन्थ काफी छोटा है, जिसमें निम्नलिखित विषयों का विवेचन करते हुए, इसने उन पर अपने विचार प्रकट किये हैं:—गर्भाधान से लेकर उपनयन तक के समस्त संस्कार, विवाह तथा उसके प्रकार, पंच-महायज्ञ, श्राद्ध, पाकयज्ञ, हविर्यज्ञ, सोमयाग, एवं ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं संन्यासियों के कर्तव्य आदि।

बुध के द्वारा रचित उक्त ग्रन्थ प्राचीन नहीं प्रतीत होता। उसके अनुशीलन से यह पता चलता है कि, इसने पूर्ववर्ती धर्मशास्त्रवेत्ताओं द्वारा कथित सामग्री को संग्रहीत मात्र किया है। इस ग्रन्थ के सिवाय 'कल्पयुक्ति' नामक इसका एक अन्य ग्रन्थ भी प्राप्त है (C. C.)

५. मगध देश का एक राजा, जो हेमसदन राजा का पुत्र था। इसकी माता का नाम अंजनी था (स्कंद. १. २. ४०)।

६. एक राक्षस, जो पुलह एवं श्वेता के पुत्रों में से एक था।

७. सुतप देवों में से एक।

८. गौड देश में रहनेवाला एक ब्राह्मण, जो दुर्व एवं शाकिनी का पुत्र था। यह अत्यंत दुराचारी, दुर्व्यसनी एवं पाशविक वृत्तियों का था। एक बार शराब पी कर वेश्यागमन के हेतु यह एक वेश्या के यहाँ आ कर रातभर वहीं पड़ा रहा। इसके घर वापस न लौटने पर, इसका पिता ढूंढ़ता हुआ इसके पास पहुँचा, एवं इसकी निर्भत्सना की। उसके इस प्रकार कहने पर, इसने तत्काल अपने पिता को लात से मार कर उसका वध किया।

बाद को जब यह घर आया, तब इसको माता ने अपनी बुरी आदतों को छोड़ने केलिये इसे समझाया। इसने उस बेचारी का भी वध किया। कालांतर में इस हत्यारे ने अपनी पत्नी को भी न छोड़ा, तथा उसे भी मार कर खतम कर दिया।

एक दिन इसने कालभी ऋषि की सुलभा नामक पत्नी को देखा, तथा तुरंत ही उसका हरण कर उसके, साथ बलात्कार किया। इससे क्रुद्ध हो कर ऋषिपत्नी ने शाप दिया, 'तुम कोढ़ी हो जाओ'। फिर यह कोढ़ी हो कर इधर उधर घूमने लगा।

घूमते घूमते यह शूरसेन राजा के नगर आ पहुँचा, जहाँ वह अपनी संपूर्ण नगरी के साथ विमान में बैठकर स्वर्ग जाने की तैयारी में था। विमान चालकों ने लाख प्रयत्न किया, लेकिन वह उड़ न सका। तब देवदूतों ने कोढ़ी बुध को दूर भगा देने के लिए शूरसेन से प्रार्थना की, क्यों कि, इस हत्यारे की पापछाया के ही कारण विमान पृथ्वी से खिसक न सका।

शूरसेन दयालु प्रकृति का धर्मज्ञ शासक था। अतएव उसने बुध को देखा, एवं गजानन नामक चतुरक्षरी मंत्र से इसके कोढ को समाप्त कर, इसे भी स्वानंदपुर ले जाने की व्यवस्था की (गणेश. १. ७६)।

१०. द्रविण देश में रहनेवाला एक ब्राह्मण। इसकी पत्नी अत्यंत दुराचारिणी थी, किंतु दीपदान के पुण्य-कर्म के कारण, उसके समस्त पाप नष्ट हो गयें (स्कंद. २४.७)।

११. एक अग्निहोत्र करनेवाला ब्राह्मण, जो मधुवन में रहनेवाले शाकुनि नामक ऋषि का पुत्र था (पद्म. स्व. ३१)।

बुध आत्रेय--एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. ५.१)।

बुध सौमायन--पंचविंश ब्राह्मण में निर्दिष्ट एक आचार्य, जिसके द्वारा यज्ञदीक्षा ली गयी थी (पं. ब्रा. २४.१८.६)। सोम का वंशज होने से, इसे 'सौमायन' पैतृक नाम प्राप्त हुआ होगा।

बुध सौम्य--एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. १०.१०१)।

बुधकौशिक--एक ब्रह्मर्षि, जो रामरक्षा नामक सुविख्यात स्तोत्र का रचयिता है।

बुध्न--एक राक्षस, जो कश्यप एवं खशा के पुत्रों में एक था।

बुलिल आश्वतर आश्वि--बुडिल आश्वतराश्वि नामक आचार्य का नामान्तर (बुडिल आश्वतराश्वि देखिये)। विश्वजित् याग में पठन करने योग्य शस्त्रमंत्रों के संबंध में, इसका गौश्ल नामक आचार्य से वादविवाद हुआ था (ऐ. ब्रा. ६.३०; गौश्ल देखिये)।

बृबु तक्षन्--ऋग्वेद में निर्दिष्ट एक उदार दाता, जो पणि लोगों का अधिपति था (ऋ. ६.४५.३१-३३)। बृबु तक्षन् एवं प्रस्तोक सार्न्जय राजाओं से भरद्वाज ऋषि को विपुल उपहार प्राप्त होने का निर्देश ऋग्वेद एवं सांख्यायन श्रौतसूत्र में प्राप्त है (सां. श्रौ. १६.११.११)।

यह स्वयं पणि अतएव हीन जाति का होने के कारण, इसके द्वारा कोई ऋषि दान न लेता था। किंतु भरद्वाज ऋषि अपने परिवार के साथ निर्जन अरण्य में रहता था, एवं उसे जीविका का कोई भी साधन उपलब्ध नहीं था। इस कारण बृबु से गायों का दान (प्रतिग्रह) लेते हुए भी, उसे भरद्वाज को कोई दोष न लगा (मनु. १०.१०७) संभवतः मनुस्मृति में निर्दिष्ट बृधु तक्षन् एवं बृबु तक्षन् एक ही व्यक्ति होंगे।

बृबु स्वयं एक पणि था। किंतु 'पाणियों का उन्मूलन करनेवाला' ऐसा भी आशय ऋग्वेद के निर्देश से ग्रहण किया जा सकता है। यदि ऐसा ही है, तो 'पणि' का अर्थ 'व्यापारी लोग' हो कर, बृबु उनका राजा होना संभवनीय है।

बृसय--ऋग्वेद में निर्दिष्ट एक दानव जाति, जो पणि एवं पारावत् लोगों के साथ संबंधित थी (ऋ. १.९३.४; ६.३१.१)। ये लोक पणि एवं पारावतों के साथ 'अर्कोसिया' अथवा 'ड्रैन्जियाना' प्रदेश निवास करते थे।

सायण के अनुसार, ऋग्वेद के भारद्वाज रचित सूक्त में इसे 'त्वष्टावृत्रपिता' कहा गया है, एवं इसके पुत्र वृत्र का वध करने की प्रार्थना सरस्वती से की गयी है (ऋ. ६. ३१.३)।

ऋग्वेद में अन्यस्थान पर, अग्नि एवं सोम के द्वारा बृसय के वंशजों का वध होने के कारण, उन देवताओं की स्तुति की गयी है (ऋ. १.९३.४)।

बृहच्छुक्र--अंगिराकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

बृहच्छ्लोक--एक आदित्य, जो उरुक्रम आदित्य का पुत्र था। इसकी माता का नाम कीर्ति था। सौभाग्यादि आदित्य इसके पुत्र थे।

बृहज्जिह्व--एक राक्षस, जो कश्यप एवं खशा के पुत्रों में से एक था।

बृहज्जोति-- एक ऋषि, जो महर्षि अंगिरा को सुभा से उत्पन्न सात पुत्रों में से एक (म. व. २०८.२)।

बृहत्--एक राजा, जो कालेय नामक दैत्य गणों में से आठवे दैत्य के अंश से उत्पन्न हुआ था (म. आ. ६७.५५)।

२. स्वायंभूव मन्वन्तर के जिताजित् देवों में से एक।

३. अंगिराकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

४. (सो. पूरु.) पूरुवंशीय हस्तिन् राजा का नामान्तर (ब्रह्म. १३. ८०)।

५. (सू. इ. भविष्य.) इक्ष्वाकुवंशीय बृहद्राज राजा का नामान्तर (बृहद्राज देखिये)।

६. दक्षसावर्णि मनु का एक पुत्र।

बृहती—देवसावर्णि मन्वन्तर के विष्णु की माता, जो देवहोत्र ऋषि की पत्नी थी (भा. ८. १३. ३२.)।

बृहत्कर्मन्--एक अनुवंशीय राजा, जो भागवत के अनुसार पृथुलाक्ष राजा का, एवं विष्णु, मत्स्य एवं वायु के अनुसार भद्ररथ राजा का पुत्र था।

२. (सो. पूरु.) एक पूरुवंशीय राजा, जो विष्णु के अनुसार बृहद्वसु का, एवं वायु के अनुसार महाबल का पुत्र था। इसे बृहत्काय नामान्तर भी प्राप्त है।

३. (मगध. भविष्य.) एक राजा, जो ब्रह्मांड एवं विष्णु के अनुसार सुक्षत्र का, वायु के अनुसार सुकृत का, एवं मत्स्य के अनुसार सुरक्ष का पुत्र था। भागवत में इसे बृहत्सेन कहा गया है। मत्स्य, वायु एवं ब्रह्मांड के अनुसार इसने २३ वर्षों तक राज्य किया।

बृहत्काय--(सो. पूरु.) एक राजा, जो भागवत के अनुसार, बृहद्भानु का पुत्र।

बृहत्कीर्ति--एक ऋषि, जो अंगिरा ऋषि को सुभा नामक पत्नी से उत्पन्न हुआ था।

बृहत्केतु—महाभारत में निर्दिष्ट एक प्राचीन नरेश (म. आ. १.७७)।

बृहत्क्षण---इक्ष्वाकु वंशीय बृहत्क्षय राजा का नामांतर।

बृहत्क्षत्र---(सो. पूरु.) एक पूरुवंशीय राजा, जो भागवत के अनुसार मन्यु का, एवं विष्णु तथा वायु के अनुसार सुवन्मन्यु का पुत्र था। इसे बृहत्क्षेत्र नामांतर भी प्राप्त है।

२. भगीरथवंशीय एक राजा, जो द्रौपदी के स्वयंवर में उपस्थित था (म. आ. १७७.१९)।

३. केकय देश का नरेश, जो भारतीय युद्ध में पांडवों के पक्ष में शामिल था (म. आ. १७७.१९)। महाभारत में इसके रथ के अश्वों का वर्णन प्राप्त है (म. द्रो. २२. १७)। भारतीययुद्ध में कृपाचार्य एवं क्षेमधूर्ति से इसका द्वंद्व युद्ध हुआ था, जिसमें इसने उन दोनों को परास्त किया था (म. द्रो. ४५.५२)। अंत में द्रोणाचार्य के द्वारा यह मारा गया (म. द्रो. १०१.२१)।

४. निषध देश का राजा, जो भारतीययुद्ध में कौरव पक्ष में शामिल था। द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न द्वारा इसका वध हुआ (म. द्रो. ३१.६३)

बृहत्क्षय--(सू. इ. भविष्य.) एक इक्ष्वाकुवंशीय राजा, जो वायु के अनुसार बृहद्बल राजा का पुत्र था। संभवतः यह भारतीययुद्धकालीन रहा होंगा।

बृहत्क्षेत्र--पूरुवंशीय बृहत्क्षत्र राजा का नामांतर (बृहत्क्षत्र १. देखिये)।

बृहत्सामन् आंगिरस--एक अंगिरसकुलोत्पन्न आचार्य, जिसे क्षत्रियों ने अत्यधिक त्रस्त किया था। उन कष्टों के फलस्वरूप, अंत में स्वयं क्षत्रिय लोग भी विनष्ट हो गये (अ. वे. ५.१९.२)।

बृहत्सेन--एक राजा, जो क्रोधवश नामक दैत्य के अंश से उत्पन्न हुआ था। इसकी कन्या का नाम लक्ष्मणा था, जो कृष्ण की पत्नी थी। भारतीय युद्ध में यह दुर्योधन के पक्ष में शामिल था।

२. मगधवंशीय बृहतकर्मन् राजा का नामांतर (बृहत्कर्मन् ३. देखिये)।

३. श्रीकृष्ण को भद्रा नामक पत्नी से उत्पन्न पुत्र।

४. एक आचार्य, जिसे नारद ने ब्रह्मविद्या की परंपरा कथन की थी। आगे चल कर यही परंपरा इसने इंद्र को निवेदित की थी (गरुड. २.१)।

बृहत्सेना–नलपत्नी दमयंती की धाय एवं परिचारिका, जो परिचर्या के काम में निपुण, एवं मधुरभाषिणी थी। राजा नल को जुवे में हरते जान कर, दमयन्ती ने इसे अपने मंत्रियों को बुलाने के लिए भेजा था (म. व. ५७. ४)। तदनुसार इसने विश्वसनीय पुरुषों के द्वारा वार्ष्णेय नामक सुत को बुलवाया था।

बृहदनु--(सो. पूरु.) एक राजा, जो मत्स्य के अनुसार अजमीढ राजा के प्रपौत्र का पुत्र था। इसके पुत्र का नाम बृहदिषु था (बृहदिषु १. देखिये)।

बृहदंबालिका--स्कंद की अनुचरी मातृका (म. श. ४५.४)।

बृहदश्व--(सू. इ.) एक इक्ष्वाकुवंशीय राजा, जो श्रावस्त का पुत्र था। इसकी राजधानी श्रावस्ती नगरी में थी, एवं इसके पुत्र का नाम कुवलाश्व था।

यह एक आदर्श एवं प्रजाहितदक्ष राजा था। वृद्धापकाल में, इसने अपने पुत्र कुवलाश्व को राजगद्दी पर बिठा

कर, वानप्रस्थाश्रम के लिये अरण्य में जाना चाहा। किन्तु उत्तंक ऋषि ने इसे रोंक दिया, एवं वन में जाने के पहले धुंधु नामक दैत्य का विनाश करने की प्रार्थना इसे की। फिर इसने अपने पुत्र कुवलाश्व को धुंधु दैत्य को नष्ट करने की आज्ञा दी, एवं यह स्वयं वन चला गया (म. व. १९३-१९४; वायु. ६८; विष्णुधर्म १.१६)।

२. एक महर्षि, जो काम्यकवन में युधिष्ठिर से मिलने आये थे। युधिष्ठिर ने इसका उचित आदर सत्कार किया, एवं इसके प्रति अपने दुःखदैन्य का निवेदन किया। इसने युधिष्ठिर को समझाते हुए निषधराज नल के दुःखदैन्य की कथा उसे सुनाई। पश्चात् युधिष्ठिर को 'अक्षहृदय' एवं 'अश्वशिर' नामक विद्याओं का उपदेश दे कर, यह बिदा हो गया (म. व. ७८)।

शरशय्या पर पडे हुए भीष्म से मिलने आये ऋषियों में, यह भी शामिल था (भा. १.९.६)।

३. अंगिराकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

४. शिव के श्वेत नामक दो अवतारों में से श्वेत (द्वितीय) का शिष्य।

५. (सू. इ. भविष्य.) एक इक्ष्वाकुवंशीय राजा, जो सहदेव राजा का पुत्र था। मत्स्य में इसे 'ध्रुवाश्व' कहा गया है।

बृहदिषु—(सो. अज.) एक अजमीढवंशीय राजा, जो भागवत, विष्णु एवं वायु के अनुसार अजमीढ राजा का पुत्र था। मत्स्य में इसे अजमीढ के प्रपौत्र का पुत्र बृहदनु का पुत्र कहा गया है। मत्स्य के अतिरिक्त बाकी सारे पुराणों में अजमीढ से बृहदनु तक के राजाओं का निर्देश अप्राप्य है।

२. (सो. नील.) एक नीलवंशीय राजा, जो भागवत के अनुसार भर्म्याश्व का, विष्णु के अनुसार हर्यश्व का, मत्स्य के अनुसार भद्राश्व का, एवं वायु के अनुसार रिक्ष राजा का पुत्र था।

बृहदुक्थ—अंगिराकुलोत्पन्न एक मंत्रकार एवं ऋषिक। इसे 'बृहदुत्थ' एवं 'बृहद्वक्षस्' नामान्तर भी प्राप्त है।

२. निमिवंशीय देवराज जनक राजा का नामान्तर (बृहद्रथ ३. देखिये)।

बृहदुक्थ वामदेव—एक वैदिक सूक्तद्रष्टा एवं पुरोहित (ऋ. १०.५४-५६)। शतपथब्राह्मण में इसे वामदेव का पुत्र इस अर्थ से 'वामदेव्य' कहा गया है (श. ब्रा. १३.२.२.१४)। पंचविंश ब्राह्मण में इसे वामनेय (वाम्नी का वंशज) कहा गया है (पं. ब्रा. १४. ९. ३७.३८)। किन्तु हॉपकिन्स के अनुसार, यहाँ वामदेव्य पाठ ही स्वीकरणीय है।

इसके द्वारा किये गये स्तुतिपाठों का निर्देश वव्रि के सूक्त में प्राप्त है (ऋ. ५.१९.३)। इसने पांचाल देश के दुर्मुख नामक राजा को राज्याभिषेक किया था (ऐ. ब्रा. ८.२३)।

इसके पुत्र का नाम वाजिन् था, जिसकी मृत्योपरान्त उसके मृत शरीर के भाग उठा कर ले जाने के लिये, इसने देवों से प्रार्थना की थी (ऋ. १०.५६)।

बृहदुच्छ—निमिवंशीय देवराज जनक का नामान्तर (बृहद्रथ ३. देखिये)।

बृहदुत्थ—बृहदुक्थ नामक अंगिराकुलोत्पन्न गोत्रकार का नामान्तर (बृहदुक्थ १. देखिये)।

बृहदैशान—(सू. इ.) एक इक्ष्वाकुवंशीय राजा, जो भविष्य के अनुसार बृहद्वल राजा का पुत्र था।

बृहद्गर्भ—(सो. उशी.) शिबि औशीनर राजा का पुत्र। एक बार शिबिराजा के पास एक अतिथि आया, एवं उसने कहा, 'मेरी यही इच्छा है, तुम्हारे पुत्र बृहद्गर्भ का माँस पक कर मुझे खाने के लिए मिले'।

शिबि राज नें अपनी इसके प्रति की सारी वात्सल्या-भावना दूर रख कर इसका वध किया, एवं अतिथि की माँग पूरी की (म. शां. २२६. १९; शिबि देखिये)।

बृहद्गिरि—यति नामक यज्ञविरोधी लोगों में से एक। यति लोग यज्ञविरोधी होने के कारण, इंद्र की आज्ञा से लकडबग्घे के द्वारा मरवा डाले गये। इस वधसत्र में से यह, रयोवाज एवं पृथुरश्मि ही बच सके। इंद्र ने इन तिनों का संरक्षण किया, एवं उन्हें क्रमशः ब्रह्मविद्या, वैश्यविद्या एवं क्षत्रियविद्या सिखायी (पं. ब्रा. ८. १. ४. पृथुरश्मि देखिये)। पंचविंश ब्राह्मण में इसके द्वारा रचित एक सामन् का निर्देश प्राप्त है (पं. ब्रा. १३.४.१५-१७)।

बृहद्गुरु—एक प्राचीन राजा (म. आ. १.१७३)।

बृहद्दिव आथर्वण—एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. १०. १२०.८-२०)। इससे रचित सूक्त में इसने स्वयं को 'अथर्वन्' कहा है। यह सुम्नयु नामक आचार्य का शिष्य था (सां. आ. १५.१)। ऐतरेय ब्राह्मण में भी इसका नामोल्लेख प्राप्त है (ऐ. ब्रा. ४.१४)।

बृहद्द्युम्न—एक महाप्रतापी नरेश, जिसने अपने यज्ञ में रैभ्यपुत्र अर्वावसु और परावसु को सहयोगी बनाया था (म. व १३९.१; रैभ्य एवं पुनर्वसु देखिये)।

बृहद्धनु--(सो. पूरु.) एक पूरुवंशीय राजा, जो बृहन्मनस् का पुत्र था।

बृहद्बल--(सू. इ.) कोसल देश का एक सम्राट, जो भागवत के अनुसार तक्षक राजा का, एवं अन्य पुराणों के अनुसार विश्रुतवत् राजा का पुत्र था।

युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के समय, भीमसेन ने किये पूर्व दिग्विजय में उसने इसे परास्त किया था (म. स. २७.१)। राजसूय यज्ञ में इसने युधिष्ठिर को चौदह हजार उत्तम अश्व भेंट में प्रदान किये थे।

भारतीय युद्ध में यह कौरवों के पक्ष में शामिल था। दुर्योधन ने अपने सैन्यसमुद्र में इनकी उपमा 'समुच्चाल' (ज्वार) से की थी (म. उ. १५८.३८)। अन्त में अभिमन्यु से हुए घनघोर युद्ध में, यह उसीके द्वारा मारा गया था (म. द्रो. ४६.२४; भा. ९.१२.८)।

२. (सो. क्रोष्टु.) एक यादव राजा, जो वसुदेवभ्राता देवभाग एवं कंसा का पुत्र था (भा. ९.२४.४०)।

३. गांधारराज सुबल राजा का एक पुत्र, जो शकुनि का भाई था। अपने भाई शकुनि एवं वृषक के साथ यह द्रौपदी के स्वयंवर में उपस्थित था।

४. (सो. अनु.) एक अनुवंशीय राजा, जो विष्णु के अनुसार बृहत्कर्मन् का पुत्र था।

बृहद्बलध्वज--एक कुष्ठरोगी ऋषि, जो सूर्य की आराधना कर कुष्ठरोग से मुक्त हुआ (भवि. ब्राह्म. २१०))

बृहद्ब्रह्मन्--एक ऋषि, जो अंगिरस ऋषि को सुभा नामक पत्नी से उत्पन्न सात पुत्रों में से एक था (म. व. २०८.२)।

बृहद्भानु--एक देव, जो द्यु का पुत्र था (म. आ. १.४०)।

२. (सो. अनु.) एक अनुवंशीय राजा, जो भागवत के अनुसार पृथुलाक्ष का, एवं विष्णु एवं मत्स्य के अनुसार बृहत्कर्मन् का पुत्र था।

३. (सो. पूरु.) एक पूरुवंशीय राजा, जो भागवत के अनुसार बृहदिषु का पुत्र था। विष्णु के अनुसार, इसे बृहद्वसु, तथा वायु के अनुसार बृहद्विष्णु नामान्तर प्राप्त है।

४. श्रीकृष्ण एवं सत्यभामा के पुत्रों में से एक।

५. इंद्रसावर्णि मन्वन्तर में उत्पन्न एक अवतार, जो सत्रायण एवं विताना का पुत्र था।

६. भानु नामक अग्नि का नामान्तर।

बृहद्भास--एक ऋषि, जो अंगिरस ऋषि को सुभा नामक पत्नी से उत्पन्न सात पुत्रों में से एक था।

बृहद्भासा--सूर्य की एक कन्या, जो भानु (मनु) नामक अग्नि की भार्या थी (म. व. २११.९)।

बृहद्रण--इक्ष्वाकुवंशीय बृहत्क्षय राजा का नामान्तर।

बृहद्रथ--एक राजा, जिसका निर्देश ऋग्वेद में 'नवावास्त्व' राजा के साथ प्राप्त है (ऋ. १.३६.१८)। वैकुंठ नामक इंद्र ने इसका वध किया (ऋ. १०.४९.६)। संभव है कि, बृहद्रथ स्वतंत्र राजा का नाम न हो कर, 'नवावास्त' राजा की ही उपाधि हो।

२. (सो. ऋक्ष.) मगध देश का राजा, जो चेदिराज सम्राट उपरिचर वसु का पुत्र, एवं जरासंध का पिता था (म. आ. ५७.२९)। यह मगध देश का बलवान् राजा तीन अक्षौहिणी सेना का स्वामी, एवं अत्यंत पराक्रमी योद्धा था (म. स. १६.१२)।

काशिराज की दो जुडवी कन्याए इसकी पत्नियाँ थी। इसने एकांत में अपनी दोनो पत्नियों के साथ प्रतिज्ञा की थी, 'मैं तुम दोनों के साथ कभी विषम व्यवहार न करूँगा।'

इसे दुनिया के सारे सुख एवं भोग इसे प्राप्त थे, किंतु पुत्र न था। पुत्रप्राप्ति के लिये इसने पुत्रकामेष्टि यज्ञ भी किया, किंतु कुछ लाभ न हुआ। अंत में यह अपनी दोनों पत्नियों के साथ चंडकौशिक नामक मुनि के पास गया, एवं अनेक प्रकार के रत्नों से इसने उसे संतुष्ट किया। पश्चात् ऋषि ने इसे वन में आने का कारण पूछने पर, इसने अपनी निपुत्रिक अवस्था उसे कथन की।

पुत्रप्राप्ति के लिये चंडकौशिक मुनि ने इसे आम का एक फल दिया, एवं उसे अपने दो पत्नियों को समविभाग में देने के लिये कहा। ऋषि के आदेशानुसार राजा ने वह फल दो भागों में विभक्त कर के, एक एक भाग पत्नियों को खिलाया। पश्चात् दोनों को गर्भ रहा। प्रसवकाल आने पर दोनों के गर्भ से शरीर का आधा-आधा भाग उत्पन्न हुआ। उन दो टुकडो को रानियों ने बाहर फेंक दिया। जरा नामक राक्षसी ने उन दोनों टुकडों को जोड़ दिया, जिससे एक बलवान् कुमार सजीव हो उठा।

राक्षसी ने वह बालक राजा को अर्पित कर दिया। राजा उस बालक को ले कर महल में आया। इसने बालक का जातकर्म आदि किया, एवं उसका नाम जरासंध रखा गया। पश्चात् इसने मगध देश में राक्षसीपूजन का

महान् उत्सव मनाने की आज्ञा दी (म. स. १६-१७)।

जरासंध बड़ा होने पर, इसने उसे अपने राज्य पर अभिषिक्त किया, एवं अपनी दोनों पत्नियों के साथ यह तपोवन चला गया (स. १७.२५)।

इसने ऋषभ नामक राक्षस का वध कर के उसकी खाल से तीन नगाड़े बनवाये थे, जिनपर चोट करने से महिने भर आवाज होती रहती थी। ये नगाड़े इसने अपनी गिरिव्रज नामक राजधानी के महाद्वार पर रखे थे (म. स. १९.१५-१६)।

बृहद्रथ राजा को 'बार्हद्रथ' राजवंश का आद्य पुरुष माना जाता है। इसीसे आगे चल कर उस वंश का विस्तार हुआ (बार्हद्रथ देखिये)।

३. (सू. निमि.) विदेह देश का एक राजा, जो देवरात जनक का पुत्र था। विष्णु के अनुसार इसे बृहदुक्थ, एवं वायु के अनुसार बृहदुच्छ तथा दैवराति नामान्तर भी प्राप्त है।

अध्यात्मज्ञान के प्राप्ति के लिये इसने शाकल्य, याज्ञवल्क्य आदि ऋषियों को अपने राज्य में निमंत्रित किया था। उपस्थित सारे ऋषियों में से याज्ञवल्क्य ही अत्यंत ब्रह्मनिष्ठ है, यह जान कर इसने उससे अध्यात्मज्ञान का उपदेश प्राप्त किया (म. शां. २९८; भा. ९.१३; याज्ञवल्क्य देखिये)।

इसे महावीर्य नामक पुत्र था, जो इसके पश्चात् विदेह देश का राजा बन गया।

४. (सो. अनु.) एक अनुवंशीय राजा, जो भागवत के अनुसार पृथुलाक्ष का, वायु के अनुसार बृहत्कर्मन् का, एवं विष्णु के अनुसार भद्ररथ राजा का पुत्र था। इसे बृहत्कर्मन् एवं बृहद्भानु नामक दो भाई थे।

५. (सो. अनु.) एक राजा, जो मत्स्य के अनुसार जयद्रथ का पुत्र था।

६. एक तत्वज्ञानी, जिसका नामोल्लेख मैत्रायणी उपनिषद में प्राप्त है (मै. उ. १.२; २.१)।

७. (सो. द्विमीढ.) द्विमीढवंशीय बहुरथ राजा का नामान्तर (बहुरथ देखिये)।

८. एक राजा, जिसकी पत्नी का नाम इंदुमती था (इंदुमती ३. देखिये)।

९. अंगदेश का एक दानशूर राजा, जिसके द्वारा किये गये दान का वर्णन स्वयं श्रीकृष्ण ने किया था। महाभारत में निर्दिष्ट सोलह श्रेष्ठ राजाओं में इसका निर्देश प्राप्त है, जहाँ इसे 'अंग बृहद्रथ' कहा गया है (म. शां. २९.२८-३४)।

परशुराम के द्वारा किये गये क्षत्रिय संहार से इसे गोलांगूल नामक वानर ने बचाया, एवं गृध्रकूट नामक पर्वत पर इसे छिपा कर रख दिया। पश्चात् परशुराम के द्वारा सारी पृथ्वी कश्यप को दान दिये जाने पर, यह अपने राज्य में लौट आया, एवं पहले की तरह राज्य करने लगा (म. शां. ४९.७३)।

१०. एक राजा, जो सूक्ष्म नामक दैत्य के अंश से उत्पन्न हुआ था (म. आ. ६१.१९)। यह द्रौपदी के स्वयंवर में उपस्थित था (म. आ. १७७.१९)। पाठभेद (भांडारकर संहिता)-बृहन्त।

११. एक अग्नि, जो वसिष्ठपुत्र होने के कारण, 'वासिष्ठ' भी कहलाता है। इसके पुत्र का नाम प्रणिधि था (म. व. २११.८)।

१२. दुर्योधनपक्षीय एक राजा (म. उ. १९६.१०)। पाठभेद (भांडारकर संहिता)-'बृहद्बल'।

१३. (सो. पूरु. भविष्य.) एक राजा, जो भविष्य के अनुसार तिग्मज्योति का, मत्स्य एवं विष्णु के अनुसार तिग्म का, तथा भागवत के अनुसार तिमि राजा का पुत्र था।

१४. (मौर्य. भविष्य.) एक राजा, जो भागवत, विष्णु एवं मत्स्य के अनुसार शतधन्वन् का, एवं ब्रह्मांड के अनुसार शतधनु का पुत्र था। मत्स्य के अनुसार इसने ७० वर्षों तक, एवं ब्रह्मांड के अनुसार इसने ७ वर्षों तक राज्य किया। मत्स्य के अतिरिक्त बाकी सारे पुराणों में इसे मौर्यवंश का अंतीम राजा माना गया है।

१५. दक्षसावर्णि मनु के पुत्रों में से एक।

बृहद्रथ ऐक्ष्वाक--एक राजा, जो शाकायन्य ऋषि के पास आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए गया था। शाकायन्य स्वयं मैत्री ऋषि का शिष्य था।

शाकायन्य को इसने कहा, 'अत्यंत गहरे कुएँ में गिरे हुए जानवर के समान मनुष्यप्राणि की स्थिति है। अतएव आप ही मुझे मुक्ति का रास्ता बताने की कृपा करें'। फिर शाकायन्य ने ब्रह्मज्ञान एवं पुनर्जन्म का विवेचन कर इसे मुक्ति का मार्ग बता दिया (मैत्रा. उ. १.१-७)।

बृहद्राज--(सू. इ. भविष्य.) एक इक्ष्वाकुवंशीय राजा, जो भागवत एवं भविष्य के अनुसार अमित्रजित् राजा का, विष्णु के अनुसार मित्रजित् का, एवं मत्स्य के

अनुसार सुमित्र का पुत्र था। इसे बृहत् एवं भरद्वाज नामान्तर भी प्राप्त है।

बृहद्वक्षस्--अंगिराकुलोत्पन्न मंत्रकार बृहदुक्थ का नामांतर।

बृहद्वन्--एक गंधर्व, जो अर्जुन के जन्मोत्सव में उपस्थित था (म. आ. ११४.४६)।

बृहद्वपु--सत्यदेवों में से एक।

बृहद्वसु--वंश ब्राह्मण में निर्दिष्ट एक आचार्य (वं. ब्रा. ३)।

२. वशवर्तिन् देवों में से एक।

३. पूरुवंशीय बृहद्भानु राजा का नामांतर (बृहद्भानु ३. देखिये)।

बृहद्विष्णु--पूरुवंशीय बृहद्भानु राजा का नामांतर (बृहद्भानु ३. देखिये)।

बृहद्ध्वज--एक राक्षस, जो दूसरे लोगों के धनधान्य एवं स्त्रियों का अपहार करता था।

एक बार भीमकेश नामक राजा की केशिनी नामक स्त्री को इसने देखा। यह उसका अपहार करनेवाला ही था, कि केशिनी ने इसे कहा, 'मैं अपने पति का अत्यधिक द्वेष करती हूँ। इसी कारण, मैं स्वयं तुम्हारे साथ आने के लिए तैयार हूँ'।

कोशिनी के अपने रथ में बिठा कर, यह उसे गंगासागरसंगम पर ले गया। किंतु उस प्रदेश में कोशिनी का पति भीमकेश का राज्य होने के कारण, वह डर के मारे मर गयी। फिर उसकी मृत्यु के दुख से यह भी मर गया। किंतु इन दोनों की मृत्यु गंगासागरसंगम जैसे पवित्र स्थल पर होने के कारण, इन्हे विष्णुलोक की प्राप्ती हुयी (पद्म. क्रि. ४)।

बृहन्त--कुलूत देश का राजा। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के समय, अर्जुन ने किये उत्तर दिग्विजय में, इसका अर्जुन के साथ युद्ध हुआ था। उस युद्ध में इसका पराजय हुआ, एवं अनेक प्रकार के रत्नों की भेंट लेकर यह अर्जुन की सेवा में उपस्थित हुआ था (म. स. २४.४-११)। द्रौपदी के स्वयंवर में भी यह उपस्थित था (म. आ. १७७.७)।

युधिष्ठिर के प्रति इसके मन में अत्यधिक आदरभाव था। इस कारण, भारतीय युद्ध में यह पांडवों के पक्ष में शामिल था (म. उ. ४.१३)। इसके रथ को जोते गये अश्व अत्यधिक सुंदर थे (म. द्रो. २२.४४)। अन्त में दुःशासन के द्वारा यह मारा गया (म. क. ४.६५)।

२. कौरव पक्ष का एक योद्धा, जो क्षेमधूर्ति का भाई था। भारतीय युद्ध में सात्यकि के साथ इसका युद्ध हुआ था (म. द्रो. २४.४५)। अन्त में इसी युद्ध में यह मारा गया (म. क. ४. ४१)।

३. (सो. पूरु.) एक राजा, जो मत्स्य के अनुसार बृहदनु राजा का पुत्र था।

बृहन्नडा--अर्जुन का नामान्तर, जो उसने विराट नगर में अज्ञातवास के समय स्वीकृत किया था (म. वि. २२-अर्जुन देखिये)।

बृहन्मति आंगिरस-एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. ९. ३९-४०)।

बृहन्मनस्--(सो. अनु.) एक अनुवंशीय राजा, जो भागवत एवं वायु के अनुसार, बृहद्रथ राजा का पुत्र था। इसे यशोदेवी एवं सत्या नामक दो पत्नियाँ थी। उनमें से यशोदेवी से इसे जयद्रथ, एवं सत्या से विजय नामक पुत्र उत्पन्न हुए।

२. एक ऋषि, जो महर्षि अंगिरा को सुमना (सुभा) नामक पत्नी से उत्पन्न सात पुत्रों में से एक था (म. व. २०८.२)।

३. (सो. पूरु.) एक राजा, जो मत्स्य के अनुसार बृहन्त राजा का पुत्र था।

बृहन्मित्र--एक ऋषि, जो महर्षि अंगिरा को सुमना (सुभा) से उत्पन्न सात पुत्रों में से एक था (म. व. २०८.२)।

बृहन्मेदस्--(सो. क्रोष्टु.) एक यादववंशीय राजा, जो वसुष्मत् राजा का पुत्र था। इसके पुत्र का नाम श्रीदेव था (कूर्म. १.२४.६-१०)।

बृहस्पति--एक वैदिक देव, जो बुद्धि, युद्ध एवं यज्ञ का अधिष्ठाता माना जाता है। इसे 'सदसस्पति', 'ज्येष्ठराज' तथा 'गणपति' नाम भी दिये गये हैं (ऋ. १.१८. ६-७; २.२३.१)। बृहदारण्यक उपनिषद में बृहस्पति को वाणी का पति (बृहती+पति = वाणी + पति) माना गया है (बृ. उ. १.३.२०-२१)। मैत्रायणी संहिता एवं शथपथ ब्राह्मण में इसे 'वाचस्पति' (वाच का स्वामी) कहा गया है (मै. सं. २.६.; श. ब्रा. १४.४.१)। वैदिकोत्तर साहित्य में, इसे बुद्धि एवं वाक्पटुता का देवता के रूप में व्यक्त किया गया है।

इस देवता का ऋग्वेद में प्रमुख स्थान है, एवं उसमें ग्यारह सम्पूर्ण सूक्तों द्वारा इसकी स्तुति की गयी है। दो सूक्तो में इन्द्र के साथ युगुलरूप में भी इसकी

गुणावली गायी गई है (ऋ. ४.४९; ७.९७)। इस ग्रन्थ में बृहस्पति नाम प्रायः एक सौ बीस बार, एवं 'ब्रह्मणस्पति' के रूप में इसका नाम लगभग पचास बार आया है। ऋग्वेद के लोकपुत्र नामक सूक्त के प्रणयन का भी श्रेय इसे प्राप्त है (ऋ. १०.७१-७२)।

जन्म--उच्चतम आकाश के महान् प्रकाश से बृहस्पति का जन्म हुआ था। जन्म होते ही इसने अपनी महान तेजस्वी शक्ति एवं गर्जन द्वारा अन्धकार को जीत कर उसका हरण किया (ऋ. ४.५०; १०.६८) इसे दोनों लोगों की सन्तान, तथा त्वष्टृ द्वारा उत्पन्न हुआ भी कहा जाता है (ऋ. ७.९७; २.२३)। जन्म की कथा के साथ साथ यह भी निर्देश प्राप्त होता है की, यह देवों का पिता है, तथा इसने लुहार की भाँति देवों को धमन द्वारा उत्पन्न किया है (ऋ. १०.७२)।

रूप-वर्णन--ऋग्वेद के सूक्तों में इसके दैहिक गुणों का सांगोपांग वर्णन तो नहीं मिलता, फिर भी उसकी एक स्पष्ट झलक अवश्य प्राप्त है। यह सप्त-मुख एवं सप्त-रश्मि, सुन्दर जिह्वावाला, तीक्ष्ण सींगोंवाला, नील पृष्ठवाला तथा शतपंखोंवाला वर्णित किया गया है (ऋ. ४.५०; १.१९०; १०.१५५; ५. ४३; ७.९७)। इसका वर्ण स्वर्ण के समान अरुणिम आभायुक्त है, तथा यह उज्वल, विशुद्ध तथा स्पष्ट वाणी बोलनेवाला कहा गया है (ऋ. ३.६२; ५.४३; ७.९७)।

इसके पास एक धनुष्य है, जिसकी प्रत्यंचा ही 'ऋत' है; एवं अनेक श्रेष्ठ बाण हैं, जिन्हें शस्त्र के रूप में प्रयोग करता है (ऋ. २.२४; अ. वे. ५.१८)। यह स्वर्ण कुठार एवं लौह कुठार धारण करता है, जिसे त्वष्टा तीक्ष्ण रखता हैं (ऋ. ७.९७; १०.५३)। इसके पास एक सुन्दर रथ है। यह ऐसे ऋत रूपी रथ पर खड़ा होता है, जो राक्षसों का वध करनेवाला, गाय के गोष्टों को तोड़नेवाला, एवं प्रकाश पर विजय प्राप्त करनेवाला है। इसके रथ को अरुणिम अश्व खींचते हैं (ऋ. १०.१०३; २.२३)।

गुण-वर्णन--बृहस्पति को 'ब्रह्मणस्पति' (स्तुतियों का स्वामी) कहा गया है, क्यों कि, यह अपने श्रेष्ठ रथ पर आरूढ हो कर देवों तथा स्तुतियों के शत्रुओं को जीतता है (ऋ. २.२३)। इसी कारण यह द्रष्टाओं में सर्वश्रेष्ठ एवं स्तुतियो का श्रेष्ठतम अधिराज कहा गया है (ऋ. २.२३)। यह समस्त स्तुतियों को उत्पन्न एवं उच्चारण करनेवाला है (ऋ. १.१०९; १.४०)। यह मानवीय पुरोहितों को स्तुतियां प्रदान करनेवाला देव है (ऋ. १०.९८.२७)।

बृहस्पति एक पारिवारिक पुरोहित है (ऋ. २.२४)। शतपथ ब्राह्मण में इसे सोम का पुरोहित कहा गया है (श. ब्रा. ४.१.२), एवं ऋग्वेद में इसे प्राचीन ऋषियों ने पुरोहितों में श्रेष्ठपद (पुरो-धा) पर प्रतिष्ठित किया है। बाद के वैदिक ग्रन्थों में इसे ब्रह्मन् अथवा पुरोहित कहा गया है।

बृहस्पति युद्धोपम प्रवृत्तियोंको अर्जित करनेवाला है। इसने सम्पत्ति से भरे पर्वत का भेद कर, शम्बर के गढों को मुक्त किया था (ऋ. २.२४)। इसे दोनों लोकों में गर्जन करनेवाला, प्रथमजन्मा, पवित्र, पर्वतों में बुद्धिमान्, वृत्रों (वृत्राणि) का वध करनेवाला, दुर्गों को छिन्न-भिन्न करनेवाला, तथा शत्रुविजेता कहा गया है (ऋ. ६. ७३)। यह शत्रुओं को रण में पछाड़नेवाला, उनका दमन करनेवाला, युद्धभूमि में असाधारण योद्धा है, जिसे कोई जीत नहीं सकता (ऋ. १०.१०३; २.२३; १.४०)। इसीलिए युद्ध के पूर्व आह्वान करनेवाले देवता के रूप में इसका स्मरण किया जाता है (ऋ. २.२३)।

इन्द्रपुराकथा में, गायों को मुक्त करनेवालों में, अग्नि की भाँति बृहस्पति का भी नाम आता है। बृहस्पति ने जब गोष्ठों को खोला तथा इन्द्र को साथ लेकर अन्धकार द्वारा आवृत्त जलस्रोतों को मुक्त किया, तब पर्वत इनके वैभव के आधीन हो गया (ऋ. २.२३)। अपने गाय-कदल के साथ, इसने गर्जन करते हुए 'बल' को विदीर्ण किया; तथा अपने सिंहनाद द्वारा रेंभती गायों को बाहर कर दिया (ऋ. ४.५०)। पर्वतों से गायों को ऐसा मुक्त किया गया, जिस प्रकार एक निष्प्राण अण्डे को फोड़ कर जीवित पक्षी उन्मुक्त किया जाता है (ऋ. १०.६८)।

बृहस्पति त्रितायुओं का हरणकर्ता एवं समृद्धि प्रदाता देव के रूप में, अपने भक्तों द्वारा स्मरण किया जाता है (ऋ. २.२५)। यह एक ओर भक्तों को दीर्घव्याधियों से मुक्त करता है, उनके समस्त संकटो, विपत्तियों, शापों तथा यंत्रणाओं का शमन करता है (ऋ. १.१८; २.२३); तथा दूसरी ओर उन्हें वांछित फल, सम्पत्ति, बुद्धि तथा समृद्धि से सम्पन्न करता है (ऋ. ७.१०.९७)।

बृहस्पति मूलतः यज्ञ को सम्पन्न करनेवाला पुरोहित है, अतएव इसका एवं अग्नि का सम्बन्ध अविछिन्न है। मैक्स मूलर इसे अग्नि का एक प्रकार मानता है। रौथ कहता है,

'यह पौरोहित्य-प्रधान देवता स्तुति की शक्ति का प्रत्यक्ष प्रतिरूप है'।

चतुर्विंश तथा अन्य याग इसके नाम पर उल्लिखित है (तै. सं. ७.४.१)। इसके नाम पर कुछ साम भी है, जिनके स्वरों के गायन की तुलना क्रौंच पक्षी के शब्दों से की गयी है (छां. उ. १.२.११)।

इसके पत्नी का नाम धेना था (गो.ब्रा.२-९)। धेना का अर्थ 'वाणी' है। इसकी जुहू नामक एक अन्य पत्नी का भी उल्लेख प्राप्त है।

कई अभ्यासकों के अनुसार, आकाश के सौरमंडल में स्थित बृहस्पति नामक नक्षत्र यही था। इसकी पत्नी का नाम तारा था, जिसे सोम के द्वारा अपहार किया गया था। बृहस्पति की पत्नी तारा से सोम को बुध नामक पुत्र भी उत्पन्न हुआ था (वायु. ९०.२८-४३; ब्रह्म. ९.१९-३२; म. उ. ११५.१३)। ज्योतिर्विदों के अनुसार बृहस्पति के इस कथा में निर्दिष्ट सोम, तारा, बुध एवं बृहस्पति ये सारे सौरमंडल में स्थित विभिन्न नक्षत्रों के नाम हैं (बुध देखिये)।

२. एक ऋषि; जो देवों का गुरु एवं आचार्य था। (ऐ. ब्रा. ८.२६)। महाभारत में इसे एवं सोम को ब्राह्मणों का राजा कहा गया है (म. आश्व. ३)। यह दैत्य एवं असुरों का गुरु 'भार्गव उशनस् शुक्र' का समवर्ती था। देवदैत्यों का सुविख्यात संग्राम, जिसमें बृहस्पति एवं शुक्र इन दोनों ने बड़ा ही महत्वपूर्ण भाग लिया था, इक्ष्वाकुवंशीय ययाति राजा के राज्यकाल में हुआ था। दैत्यगुरु शुक्र की कन्या देवयानी से ययाति ने विवाह किया था। इस कारण, शुक्र एवं देवगुरु बृहस्पति ययाति के समकालीन प्रतीत होते हैं।

एक बार, देवगुरु बृहस्पति का इंद्र ने अपमान किया, जिसके कारण, इसने इंद्र तथा देवों को त्याग दिया। लेकिन जब बिना बृहस्पति के, तरह तरह की अड़चनें पड़ने लगीं, तब देवों ने मिलकर इससे माफी माँगी, और पुनः इसे देवगुरु के स्थान पर सुशोभित किया (भा. ६.७)।

दैत्यों का पराजय—देवदानवों के बीच घोर संग्राम हुआ, जिसमें देवों को हार का मुँह देखना पड़ा। दानवों ने शक्ति, शासन और संजीवनी आदि के बल पर देवों को हर प्रकार के कष्ट देना आरम्भ किया। यही नहीं, शुक्राचार्य देवों को समूल नष्ट करने के लिए घोर तपस्या में लग गया। तब इन्द्र ने अपनी कन्या जयन्ती को शुक्र के पास उसके तप को भंग करने के लिये भेजा। वहाँ जा कर, जयन्ती ने उसे अपने सेवाभाव तथा मोहपाश में बाँध लिया। इस अवसर का लाभ उठाकर बृहस्पति ने तेजबल से शुक्र का रूप धारण कर एवं दानवों में नास्तिक धर्म प्रचार से उन्हें धर्मभ्रष्ट करने लगा। तब दैत्यों का पराभव हुआ (पद्म. सृ. १३; उशनस् देखिये)।

इन्द्रपद प्राप्त कर नहुष तामसी प्रवृत्तियों में इतना लिप्त हो गया कि, उसने धार्मिक विधियों को त्याग कर स्त्रीभोग में ही अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ ली, तथा उत्पात मचाने लगा। एक बार उसने इन्द्राणी को देखा, तथा उसके रूपयौवन पर मोहित हो कर उसे पकड़ मंगाया। तब वह भागती हुई बृहस्पति के पास आयी, तथा इसने इसे आश्वासन दिया, 'इन्द्र तेरी रक्षा करेगा, तेरा सतीत्व रक्षित है। तुम्हें चिन्ता की आवश्यकता नहीं।' इसने ही इन्द्राणी को सलाह दी कि, नहुष से वह कुछ अवधि माँगे तथा इस प्रकार उसे धीरज दिला कर तरकीब से अपनी रक्षा करे (म. उ. १२.२५)। बाद को इन्द्र के द्वारा बताये हुए मार्ग पर चल कर, इन्द्राणी ने नहुष पर विजय प्राप्त की (म. उ. ११; नहुष देखिये)।

उपरिचर वसु के द्वारा निमंत्रण दिया जाने पर बृहस्पति ने उसके द्वारा किये यज्ञ में होता होना स्वीकार किया। उपरिचर वसु विष्णु का परम भक्त था। इसीलिये विष्णु ने इस यज्ञ में स्वयं भाग ले कर यज्ञ के प्रसाद (पुरोडाश) को प्राप्त किया। बृहस्पति को विष्णु की उपस्थिति का विश्वास न हुआ। उसने समझा कि, उपरिचर झूट बोल रहा है, तथा स्वयं की महत्ता बढ़ाने के लिए खुद पुरोडाश खाकर विष्णु की उपस्थिति का बहाना कर रहा है। यह समझ कर इसने उसे शाप देना चाहा। किन्तु एकत, द्वित तथा त्रित ने बृहस्पति के क्रोध को शांत कराया, एवं विश्वास दिलाया कि, 'उपरिचर सत्य कहता है। हम लोगों ने स्वयं विष्णु के दर्शन किये है' (म. शां. ३२३)। इसने उपरिचर वसु राजा को 'चित्रशिखण्डि-शास्त्र' का ज्ञान विधिवत् प्रदान किया था (म. शां. ३२३.१-३)।

असुर एवं गंधर्वों के समान देवों ने भी पृथ्वी का दोहन किया। उस समय देवों ने बृहस्पति को वत्स बनाया था (भा. ४.१८.१४)। अथर्ववेद के अनुसार, ऋषियों के द्वारा किये पृथ्वीदोहन में बृहस्पति दोग्धा (दोहन करनेवाला) बनाया था, सोम को वत्स, तथा छंदस को पात्र बनाया गया था। उस दोहन से तप तथा वेदों

का निर्माण दुग्ध रूप में हुआ (अ. वे. ८.२८; पृथु वैन्य देखिये)।

प्रभासक्षेत्र में स्थित सोमेश्वर के शिवमंदिर में, बृहस्पति ने एक हजार वर्षों तक शिव की आराधना कर उसे प्रसन्न किया। शिव ने इसे आशीर्वाद दिया 'आकाश में स्थित सौरमण्डल में तुम बृहस्पति नामक ग्रह रूप में प्रतिष्ठित होगे' (स्कंद. २.४.१-१७)। शिवकृपा से इसने प्रभासक्षेत्र में बृहस्पतीश्वर नामक शिवलिंग की स्थापना की (स्कन्द. ७.१.४८)।

संवाद—देवों के गुरु बृहस्पति का तत्त्वज्ञानी के नाते कई विद्वानों से शास्त्रार्थ हुआ, जो इसके ज्ञान, तर्क एवं त्वरितबुद्धि को प्रत्यक्ष प्रमाणित करते है।

युधिष्ठिर तथा इसके बीच जन्ममरण के संबंध में संवाद हुआ था, जिस में इसने उनके प्रकारों का वर्णन था। इसने युधिष्ठिर को बताया था कि, किस प्रकार प्राणी विभिन्न प्रकार के पाप कर के, उसके अनुसार ही भिन्न भिन्न योनियों में जन्म ले कर जन्ममरण के बन्धनों के बीच विचरण किया करता है (म. अनु. १११)। इसने उसे दान के स्वरूप की व्याख्या करते हुए, अन्नदान की महिमा का गान किया था (म. अनु. ११२)। युधिष्ठिर को जीवन में धर्मकर्म की आवश्यकता पर बल देते हुए, इसने उसे धर्म एवं अहिंसा का उपदेश दिया था (म. अनु. ११३)।

देवराज इंद्र को भी इसने अपनी ज्ञानगरिमा से कई उपदेश दिये। उसको वाणी की महत्ता बताते हुए इसने उसे मधुर बचन बोलने का उपदेश दिया (म. शां.८५.३-१०)। उसे धर्मोपदेश दिया, तथा धर्माचरण की आज्ञा दी (म. अनु. १२५)। भूमि का मूल्य तथा भूमिदान की महत्ता का ज्ञान भी इसने इंद्र को कराया था (म. अनु. ६२.५५-९२)। इसके समय में मनुष्यों का पशु की तरह यज्ञ में हवन किया जाता था। अतएव इंद्र ने प्रार्थना की कि, यह मनुष्यों को बलि के रूप में समर्पित करना बंद करे (म. आश्व. ५.२५-२७)।

कोसलाधिपति वसुमनस् से इसने राजसंस्था की आवश्यकता एवं राजा के कर्तव्य के बारे में उपदेश दिया था (म. शां. ६८)। इक्ष्वाकुवंशीय मांधाता राजा के पूँछने पर, इसने उसे गोदान के संबंध में अपने विचार प्रकट किये थे (म. अनु. ७६.५-२३)।

३. आंगिरस कुलोत्पन्न एक ऋषि, जो वैशाली के मरुत्त आविक्षित राजा का पुरोहित था। यह वैशाली के करंधम राजा का पुरोहित अंगिरा नामक महर्षि का पुत्र था। यह स्वायंभुव मन्वंतर में पैदा हुआ था। इसकी माता का नाम स्वरूपा था (भा. ४. १; म. आ. ६०.५, आश्व. ५.४; ब्रह्मांड ३.३.१)। कई ग्रंथों में, इसकी माता का नाम श्रद्धा दिया गया है। यह निर्देश सही हों, तो यह स्वायंभुव मन्वंतर का न हो कर, वैवस्वत मन्वंतर में उत्पन्न हुआ होगा। महाभारत में अन्यत्र, इसकी उत्पत्ति अग्नि से बताई गई है (म. व. २०७.१८)।

इसे संवर्त, तथा उतथ्य नामक दो भाई थे, जिनके साथ आजीवन इसका संघर्ष चलता रहा। इन भाइयों में से, उतथ्य इसका ज्येष्ठ भाई था, जिसके नाम के लिये, वेदार्थदीपिका में, 'उचथ्य,' ब्रह्मांड एवं मत्स्य में 'उशिज,' एवं वायु में 'अशिज' पाठभेद प्राप्त हैं। इन पाठभेदों में से, 'उचथ्य' पाठभेद ही सही प्रतीत होता है।

एक बार इसने उतथ्य की गर्भवती पत्नी ममता के साथ संभोग किया। संभोग करते समय ममता के उदर में स्थित बालक ने बृहस्पति से बार बार उक्त क्रिया करने पर प्रतिबन्ध लगाया। इस पर क्रोधित हो कर इसने उस बालक को शाप दिया कि, वह जन्मांध पैदा हो। यही बालक बाद को अन्धे दीर्घतमस् के रूप में पैदा हुआ। इसके तथा ममता के संभोग द्वारा भरद्वाज नामक पुत्र हुआ, जो बाद को इक्ष्वाकुवंशीय नरेश दुष्यन्तपुत्र भरत द्वारा गोद लिया गया (म. आ. ९८; मत्स्य. ४९; वेदार्थ-दीपिका ६. ५२)।

संवर्त से इसका झगड़ा ईर्ष्या के कारण हुआ। यह आरम्भ से ही देवों का एवं पृथ्वी के पाँच सम्राटों में से मरुत्त नामक सम्राट का भी पुरोहित था। एक बार अपना यज्ञ कराने के लिए इन्द्र ने इसे आमंत्रित किया। यह वहाँ गया, तथा वहाँ की सुखसामग्री एवं विलास देख कर वहीं रहा गया। इधर पृथ्वी पर मरुत्त को भी यज्ञ करना था। अतएव उसने इसे उपस्थित न जानकर, इसके भाई संवर्त द्वारा यज्ञ कार्य कराना आरम्भ किया। जैसे ही इसे यह ज्ञात हुआ, इसने इसमें अपना अपमान समझा, तथा इंद्र को आदेश दिया कि, वह संवर्त द्वारा किया गया मरुत्त का यज्ञ विध्वंस कर दे। इन्द्र अपनी समस्त सेना को ले कर यज्ञ विध्वंस हेतु गया, किंतु संवर्त के ब्रह्मतेजोबल के सम्मुख उसे परास्त होना पड़ा। पश्चात् मरुत्त का यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हुआ (म. आश्व. ५.९)।

परिवार--बृहस्पति की पत्नियाँ, एवं पुत्रों के बारे में अनेक निर्देश महाभारत एवं पुराणों में प्राप्त है। किंतु, वहाँ देवता बृहस्पति, देवगुरु बृहस्पति एवं बृहस्पति आंगिरस इन तीन स्वतंत्र व्यक्तियों के बारे में पृथगात्मता नही है, एवं इन तीनों को बहुत बूरी तरह संमिश्रित किया गया है। उदाहरणार्थ, तारा की कथा में, बृहस्पति को देवगुरु एवं आंगिरस कहा गया है (मत्स्य. ८३.३०; विष्णु. ४.६.७)। देवगुरु बृहस्पति को भी, अनेक स्थानों पर, आंगिरस कहा गया है, एवं बृहस्पति आंगिरस को अनेक स्थानों पर देवगुरु कहा गया है। वस्तुतः इन तीनों व्यक्तियाँ संपूर्णतः विभिन्न थी, जैसे कि ऊपर बताया गया है।

इस कारण, बृहस्पति की पत्नियाँ एवं पुत्रों के जो नाम पुराणों में प्राप्त हैं, वे निश्चित कौन से बृहस्पति से संबधित है, यह कहना असंभव है।

बृहस्पति को तारा (चांद्रमसी) एवं शुभा नामक दो पत्नियाँ थी। कई ग्रंथों में, प्रजापति की कन्या उषा को भी बृहस्पति की पत्नी बताया गया है। उनमें से शुभा से इसे सात कन्याँ, एवं तारा से सात पुत्र एवं एक कन्या उत्पन्न हुयी।

शुभा की कन्याओं के नाम इस प्रकार थेः—भानुमती, रागा, अर्चिष्मती, महामती, महिष्मती, सिनिवाली एवं हविष्मती। तारा को अग्नि के नाम धारण करनेवाले सात पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके नाम इस प्रकार थेः—शंयु, निश्चवन, विश्वभुज, विश्वजित्, वडवाग्नि, एवं स्विष्टकृत। उतथ्य नामक अपने भाई की पत्नी ममता से इसे भरद्वाज नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ था, जिसे इसने 'आग्नेयास्त्र' प्रदान किया था।

तारा की कन्या का नाम स्वाहा था, जो वैश्वानर अग्नि की पत्नी थी (स्वाहा २. देखिये)।

कुशध्वज (कच) नामक इसके और एक पुत्र का निर्देश महाभारत में अनेक बार आता है (म. अनु. २६; कच २. देखिये)। किन्तु बृहस्पतिपत्नियों में से कौनसी पत्नी से वह उत्पन्न हुआ था, यह कहना मुष्किल है, क्यों कि, शुभा एवं तारा के पुत्रों में कही भी कच का नाम प्राप्त नही होता है।

द्रोणाचार्य की उत्पत्ति भी बृहस्पति के अंश से ही हुई थी, ऐसा माना जाता है। बृहस्पति की भुवना नामक एक ब्रह्मवादिनी एवं योगपरायण बहन थी, जो प्रभास नामक वसु की पत्नी थी, तथा उससे उसे विश्वकर्मन् नामक पुत्र पैदा हुआ था।

४. एक तत्वज्ञ आचार्य, जिसने धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, एवं व्याकरणशास्त्र पर अनेक ग्रंथों की रचना की थी।

इसके द्वारा लिखित 'बृहस्पतिस्मृति' नामक एक ही ग्रंथ मुद्रित रूप में प्राप्त है। किंतु कौटिलीय अर्थशास्त्र, कामंदकीय नीतिसार, याज्ञवल्क्यस्मृति, अपरार्क, स्मृतिचंद्रिका आदि विभिन्न विषयक ग्रंथों में, इसके मत एवं इसके ग्रंथों के उद्धरण प्राप्त है, जिनसे प्रतीत होता है कि, इसके द्वारा धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, व्याकरणशास्त्र, वास्तुशास्त्र, अदि विषयों पर काफी ग्रंथरचना की गई होगी।

बृहस्पति के द्वारा लिखित 'बृहस्पतिस्मृति' नामक जो ग्रंथ सांप्रत उपलब्ध है, वह अत्यधिक छोटा है, उसमें केवळ अस्सी श्लोक हैं, एवं उसे आनंदाश्रम पूना ने प्रकाशित किया है। जीवानंद के संग्रह में भी इसके नाम पर एक छोटी स्मृति है, किन्तु उसमें दानप्रशंसा आदि साधारण विषयों की चर्चा की गयी है।

अपरार्क आदि स्मृतियों में बृहस्पतिस्मृति के काफी उद्धरण लिये गये हैं, जिनसे इसकी मूल स्मृति की महत्ता का अनुमान किया जा सकता है। मुकदमों के दो प्रकारो (फौज़दारी तथा दीवानी) का प्रचलन सर्वप्रथम इसके द्वारा ही किया गया है। इसने ही सर्वप्रथम यह विधान रक्खा कि, जिन विधवाओं का पुत्र न हों, उन्हे पति के मृत्यु के बाद समस्त संपत्ति की अधिकारणी समझा जाय। वात्स्यायन कामसूत्र में इसके मतों का निर्देश प्राप्त है। राजा के सोलह प्रधान होने चाहिये, ऐसा इसका अभिमत था, जो कौटिल्य अर्थशास्त्र में निर्दिष्ट है। इसकी 'स्मृति' में नाणक, दीनार आदि सिक्कों की जानकारी प्राप्त है। बृहस्पति, आंगिरस, नारद एवं भृगु इन चार ऋषियों ने मनुस्मृति को चार विभागो में विभक्त करने का निर्देश प्राप्त है। इन चार आचार्यों में बृहस्पति के मत संपूर्णतः मनु के अनुकूल हैं।

अपरार्क एवं कात्यायन द्वारा लिये गये इसके उद्धरणों एवं नाणक एवं दीनार सिक्कों के आधार पर अनुमान किया गया है कि, धर्मशास्त्रकार बृहस्पति का समय दूसरी शताब्दी ईसा उपरांत होगा।

वायु में बृहस्पति द्वारा किये गये इतिहास पुराण विषयक प्रवचन का निर्देश प्राप्त है, एवं 'अष्टांगहृदय' में

इसके द्वारा रचे गए 'अंगदतंत्र' नामक वैद्यकीय ग्रंथ का निर्देश प्राप्त है (वायु. १०३-५९; अष्टांग. पृ. १८)।

ग्रन्थ--१. बृहस्पतिस्मृति; २. बार्हस्पत्यशास्त्रः--ब्रह्मदेव द्वारा रचित 'बाहुदन्तक' नामक ग्रंथ को बृहस्पति ने तीन हज़ार अध्यायों में संक्षिप्त किया जिसे 'बार्हस्पत्यशास्त्र' कहते हैं; ३. दानबृहस्पति-बृहस्पति के इस ग्रंथ का निर्देश अपरार्क एवं दानरत्नाकार में प्राप्त हैं; ४. स्वप्नाध्याय; ५. चार्वाक दर्शनः-बृहस्पति द्वारा रचित इस ग्रंथ का निर्देश प्राप्त है। ६. वास्तुशास्त्रः- बृहस्पति द्वारा वास्तुशास्त्र पर लिखित एक ग्रंथ का निर्देश मत्स्य में प्राप्त है (मत्स्य. २५२; व्यास देखिये)।

५. जनमेजय के सर्पसत्र में उपस्थित एक ऋषि।

बृहस्पति शायस्ति--एक आचार्य, जो भवत्रात शायस्थि नामक ऋषि का शिष्य (इंडिशे स्टूडियेन ४. ३७२)।

बैजभृत—भृगुकुल का एक गोत्रकार।

बैजवाप--बृहदारण्यक उपनिषद में निर्दिष्ट एक आचार्य (बृ. उ. माध्यं. २.५.२०; ४.५.२६; श. ब्रा. १४.५.५.२०)। बीजवाप का वंशज होने से इसे यह नाम प्राप्त हुआ होगा।

बैजवापायन—बृहदारण्यक उपनिषद् में निर्दिष्ट एक आचार्य (बृ. उ. माध्यं. २.५.२०; ४.५.२०; श. ब्रा. १४.५.२०)। बैजवाप का वंशज होने से इसे यह नाम प्राप्त हुआ होगा। इसके नाम के लिए 'वैजवापायन' पाठभेद भी प्राप्त है।

बैजवापि—एक आचार्य, जो संभवतः बीजवाप अथवा बीजवापिन् का वंशज होगा (मै. सं. १.४.७)।

बैद्—धौम्य ऋषि का एक शिष्य (म. आ. ६. ७९)।

२. हिरण्यदत्त नामक आचार्य का पैतृक नाम।

बोध--व्यास की ऋक् शिष्य परंपरा में से बौध्य नामक आचार्य के लिये उपलब्ध पाठभेद (बौध्य देखिये)।

२. एक ऋषि, जो अथर्ववेद में प्रतिबोध नामक ऋषि के साथ निर्दिष्ट है (अ. वे. ५.३०.१०; ८.१.१३)।

बोधप--वसिष्ठकुलोत्पन्न एक गोत्रकार ऋषिगण।

बोध्य--व्यास की ऋक्शिष्यपरंपरा में से बौध्य नामक आचार्य का नामांतर (बौध्य देखिये)।

२. एक आचार्य, जिसका नहुष राजा के साथ तत्त्वज्ञान विषय में संवाद हुआ था, जो 'बोध्यगीता' नाम से प्रसिद्ध है (म. शां. १७१.५८)।

बोध्य ने नहुष से कहा, 'मैं दूसरों को जो उपदेश करता हूँ, उसी अनुसार सर्वप्रथम मेरा आचरण रहता है। मै स्वयं किसी का गुरु न हो कर, सारे विश्व को मैं गुरु मानता हूँ। मैं ने पक्षियों से अद्रोह का पाठ सीखा है। उसी तरह पिंगला वेश्या से नैराश्य, मृग से त्याग, इषुकार से एकाग्रता, एवं कुमारी कन्या से एकाकित्व का पाठ मुझे प्राप्त हुआ है' (म. शां. १७१.५७-६१)।

'बोध्य गीता' में प्राप्त उपर्युक्त तत्त्वज्ञान, एवं मंकि ऋषि प्रणीत 'मंकिगीता' का प्रतिपादन दोनो एक ही है।

बौधक—एक आचार्य, जो ब्रह्मांड के अनुसार व्यास की यजुःशिष्यपरंपरा में से याज्ञवल्क्य ऋषि का वाजसनेय शिष्य था।

बौधायन—कल्पसूत्रों का प्रवर्तक एक आचार्य, जो संभवतः कृष्ण यजुर्वेदशाखा का ऋषि था। इसके द्वारा विरचित 'बौधायन धर्मसूत्र' में कण्व बोधायन नामक पूर्वाचार्य का निर्देश प्राप्त है (बौ. ध. २.५.२७)। संभव है, यह उसी कण्व बोधायन का पुत्र अथवा वंशज होगा। धर्मसूत्र का भाष्यकार गोविंदस्वामिन् के अनुसार, बौधायन को 'काण्वायन' नामान्तर प्राप्त है (बौ. ध. १.३.१३.)।

बौधायन धर्मसूत्र में इसके नाम के लिए 'बोधायन' एवं 'बौधायन' दोनो भी पाठ प्राप्त है। कई स्थानों में इसे 'भगवान्' बोधायन कहा गया है।

बौधायन शाखा—यह संभवतः दक्षिण भारत में स्थित कृष्णा नदी के मुहाने में स्थित प्रदेश में रहता होगा। बौधायन शाखा के ब्राह्मण आज भी उसी प्रदेश में अधिकतर दिखाई देते हैं। वेदों का सुविख्यात भाष्यकार सायणाचार्य स्वयं बौधायन शाखा का था। बौधायन शाखा के ब्राह्मणों को 'प्रवचनकार शाखीय' नामान्तर भी प्राप्त है। गृह्यसूत्रों में स्वयं बौधायन को भी 'प्रवचनकर्ता' कहा गया है। पल्लव राजा नंदिवर्मन् के ९ वी शताब्दी के अनेक शिलालेखों में 'प्रवचनकार' लोगों को दान देने का निर्देश प्राप्त है (इन्डि. ॲन्टि. ८.२७३-२७४)। बौधायन के धर्मसूत्रों में भी दाक्षिणात्य लोगों के रीतिरिवाजों का निर्देश प्राप्त है।

बौधायन सूत्र—बौधायन के द्वारा रचित बौधायन सूत्रों का संग्रह संपूर्ण अवस्था में अभी तक अप्राप्य है जैसे

कि, आपस्तंब एवं हिरण्यकेशिन् आचार्यों का संग्रह किया गया है। डॉ. बर्नेल के द्वारा बौधायन के बहुत सारे सूत्र छः विभागों में एकत्रित किये गये है, जो इस प्रकार हैः-- (१) श्रौतसूत्र (१९ प्रश्न); (२) कर्मान्तसूत्र (२० प्रश्न); (३) द्वैधसूत्र (४ प्रश्न); (४) गृह्यसूत्र (४ प्रश्न); (५) धर्मसूत्र (४ प्रश्न); (६) शूल्बसूत्र (३ प्रश्न)।

बौधायन सूत्रों के विभाग--डॉ. कालेन्ड के अनुसार बौधायन के सूत्र निम्नलिखित उन्चास प्रश्नों में विभाजित हैः-प्रश्नक्रमांक १-२१ श्रौतसूत्र; २२-२५ द्वैधसूत्र; २६-२८ कर्मान्तसूत्र; २९-३१ प्रायश्चित्त सूत्र; ३२ शूल्बसूत्र; ३३-३५ गृह्यसूत्र; ३६ गृह्यप्रायश्चित्त; ३७ गृह्यपरिभाषा सूत्र; ३८-४१ गृह्य परिशिष्ट सूत्र; ४२-४४ पितृमेध सूत्र; ४५ प्रवरसूत्र; ४६-४९ धर्मसूत्र।

बौधायन श्रौतसूत्र—कालेन्ड के अनुसार, बौधायन का श्रौतसूत्र उपलब्ध श्रौतसूत्रों में प्राचीनतम है। उस सूत्रग्रंथ में 'द्वैध' एवं 'कर्मान्त' नामक दो स्वतंत्र अध्याय सम्मीलित है, जिनमें द्वैध अध्याय में तैत्तिरीय शाखा के बहुत सारे पूर्वाचार्यों के मत उद्धृत किये गये है। इस सूत्रग्रंथ का अंग्रेजी अनुवाद वैदिक संशोधक मंडल (पूना) के द्वारा प्रकाशित किये गये 'श्रौत-कोश' नामक ग्रंथ में प्राप्त है।

बौधायनधर्मसूत्र—कृष्ण यजुर्वेद के तीन प्रमुख आचार्यों में काण्व बोधायन, आपस्तंब, एवं हिरण्यकेशिन् ये तीन प्रमुख माने जाते हैं। उनमें से भी कण्व बोधायन प्राचीनतम था, एवं कृष्ण यजुर्वेदियों के ब्रह्मयज्ञांगतर्पण में उसका निर्देश बाकी दो आचार्यो के पहले किया जाता है। किन्तु जो 'बौधायनधर्मसूत्र' वर्तमान काल में उपलब्ध है, वह निश्चित रूप में आपस्तंब धर्मसूत्र के उत्तरकालीन है। यह प्रायः उपनिषदों से भी उत्तरकालीन है, क्यों कि, इसके धर्मसूत्र में छांदोग्य उपनिषद से मिलताजुलता एक उद्धरण प्राप्त है।

आपस्तंब की तुलना में बौधायन, गौतम एवं वसिष्ठ ये उत्तरकालीन धर्मसूत्रकार अधिक प्रगतिशील विचारों के प्रतीत होते है। नियोगजनित संतति आपस्तंब तिरस्करणीय मानता है (आप. २.६.१३.१-९)। किन्तु गौतम, बौधायन एवं वसिष्ठ के द्वारा विशेष प्रसंगों में नियोग स्वीकार किया गया है।

शबर के द्वारा लिखित धर्मशास्त्र का काल ५०० ई. के पूर्व का माना जाता है। शबर के काल में 'बौधायनधर्मसूत्र' एक सर्वमान्य एवं सन्मान्य धर्मग्रंथ माना जाता था। इससे प्रतीत होता है कि, बौधायन धर्मशास्त्र का रचना काल ईसा पूर्व ५००-२०० के बीच कही होगा।

बौधायन के धर्मसूत्र में वसंत सम्पात की स्थिति वेदांगज्योतिष के अनुसार दी गयी है। उससे प्रतीत होता है कि, इसका काल ईसा शताब्दी के पूर्व लगभग १२०० होगा (कविचरित्र)

बौधायन धर्मसूत्र का जो संस्करण सांप्रत प्राप्त है, उसमें बहुत सारा भाग प्रक्षिप्त है, एवं कई भाग गौतम धर्मसूत्र एवं विष्णु धर्मसूत्र में से लिया गया है। उसमें पुनरुक्ति भी काफी प्राप्त है।

बौधायन धर्मसूत्र के प्रश्न चार विभागों में विभाजित है, एवं उसमें मुख्यतः निम्नलिखित विषयों का विवेचन किया गया हैः-चातुवर्ण्य में आवश्यक नित्याचार के नियम, पंचमहायज्ञ एवं अन्य यज्ञ यथासांग करने के लिए आवश्यक वस्तु, विवाह के नानाविध प्रकार, प्रायश्चित्त, नियोग संतति उत्पन्न करने के लिए आवश्यक नियम, श्राद्धविधि, प्राणायाम, अघमर्षण एवं जप आदि।

बौधायन धर्मसूत्र में वेद, तैत्तिरीय संहिता, तैत्तिरीय ब्राह्मण, तैत्तिरीय आरण्यक, शतपथ ब्राह्मण, उपनिषदों, निदान आदि ग्रंथों से उद्धरण लिये गये हैं। ऋग्वेद के अघमर्षण एवं पुरुषसूक्त ये दोनो ही सूक्त बौधायन ने लिये हैं। उसी तरह बौधायन ने औपंजाघनि, कात्य, काश्यप प्रजापति आदि धर्मशास्त्रकारों का उल्लेख अपने ग्रंथों में किया है।

शबर, कुमारिल, मेधातिथि आदि टीकाकारों ने बौधायन धर्मसूत्र का उल्लेख अपने ग्रंथों में किया है। उसी तरह विश्वरूप में, एवं मिताक्षरा में बौधायन के चौथे प्रश्न के अनेक सूत्र उद्धृत किये गये हैं।

बौधायन धर्मसूत्र में गणेश की पूजा का निर्देश प्राप्त है, एवं उसमें गणेश के निम्नलिखित नामान्तर दिये गये है :— विघ्न, विनायक, स्थूल, वरद, हस्तिमुख, वक्रतुंड, लंबोदर (बौ. ध. २.५.२१)। उस ग्रंथ में रवि, चंद्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि आदि राशियों के ग्रहों का, तथा राहु एवं केतु ग्रहों का निर्देश प्राप्त है (बौ. ध. २.५.२३)। विष्णु के बारह नाम भी उस ग्रंथ में दिये गये है (बौ. ध. २.५.२४)। रंगभूमि पर अभिनय करना, एवं अभिनय सिखाना इन दोनो कार्यों की गणना बौधायन के द्वारा 'उपपातको' में की गयी है (बौ. ध.

२.१.४४)। 'दत्तकमीमांसा' नामक ग्रंथ में बौधायन के 'दत्तक' संबंधी जो सारे उद्धरण लिये गये है, वे बौधायन धर्मसूत्र के न हो कर, बौधायन गृह्यशेषसूत्र में से लिये गये है (बौ. गृ. २.६)।

टीकाकार--बर्नेल के अनुसार, बौधायन श्रौतसूत्र का सर्वाधिक प्राचीन टीकाकार भवस्वामिन् था, जो ८ वीं शताब्दी में पैदा हुआ था। बौधायन धर्मसूत्र की अत्यधिक ख्यातिप्राप्त टीका गोविंदस्वामिन् के द्वारा विरचित है, किन्तु वह टीकाकार काफ़ी उत्तरकालीन प्रतीत होता है।

बौधायनस्मृति--आनंदाश्रम (पूना) के द्वारा प्रकाशित 'स्मृतिसमुच्चय' नामक ग्रंथ में, बौधायन के द्वारा विरचित एक स्मृति दी गयी है, जो आठ अध्यायों की है। उस स्मृति के हर एक अध्याय में तीन चार प्रश्न पूछे गये हैं, एवं उन प्रश्नों के उत्तर वहाँ दिये गये है।

२. एक आचार्य, जो ब्रह्मसूत्र का सुविख्यात 'वृत्तिकार' माना जाता है। रामानुजाचार्य के द्वारा लिखित 'श्रीभाष्य' बौधायन के 'ब्रह्मसूत्रवृत्ति' पर आधारित है। इससे प्रतीत होता है कि, वृत्तिकार बौधायन स्वयं शंकराचार्य के काफी पहले का होगा। अनेक विद्वानों के अनुसार, यह द्रविड देश में पैदा हुआ था।

बौधीपुत्र--एक आचार्य, जो शालंकायनीपुत्र का शिष्य था (बृ. उ. माध्यं. ६.४.३१)। इसके शिष्य का नाम कौत्सीपुत्र था (श. ब्रा. १४.९.४.३१)। बोध के किसी स्त्रीवंशज का पुत्र होने के कारण इसे यह नाम प्राप्त हुआ होगा।

बौधेय--एक आचार्य, जो ब्रह्मांड के अनुसार, व्यास की यजुःशिष्य परंपरा में से याज्ञवल्क्य का वाजसनेय शिष्य था।

बौध्य--एक आचार्य, जो विष्णु के अनुसार, व्यास की ऋक्‌शिष्यपरंपरा में से बाष्कलि ऋषि का शिष्य था। इसके नाम के लिये 'बोध' एवं 'बोध्य' पाठभेद प्राप्त है (व्यास देखिये)।

ब्रध्न--एक राजा, जो भौत्य मनु के पुत्रों में से एक था।

ब्रध्नश्व--एक राजा। एक बार श्रुतर्वन् नामक राजा को साथ ले कर अगस्त्य ऋषि इसके पास आया, एवं इससे धन की याचना करने लगा।

इसने अगस्त्य ऋषि के सामने अपने आय-व्यय का संपूर्ण विवरण रख दिया, जिसमें इसकी आय एवं व्यय दोनों एक बराबर थे, एवं बचा हुआ पैसा एक भी न था। फिर अगस्त्य ने इससे कोई भी धन लेने के लिए इन्कार कर दिया; एवं इसे साथ ले कर, वह किसी अन्य जगह धन की याचना के लिए चला गया (म. व. ९६)।

ब्रह्मकृतेजन--वसिष्ठकुलोत्पन्न एक गोत्रकार 'ब्राह्मपुरेयक' के नाम के लिए उपलब्ध पाठभेद (ब्राह्मपुरेयक देखिये)।

ब्रह्मगार्ग्य--एक ब्राह्मण, जो श्रीकृष्ण का पुरोहित था (पद्म. सृ. २३)।

ब्रह्मचारिन्--एक देवगंधर्व, जो कश्यप एवं प्रावा का पुत्र था (म. आ. ५९.४५)। महाभारत में अन्यत्र इसे क्रोधा का पुत्र कहा गया है। अर्जुन के जन्मोत्सव में यह उपस्थित था (म. आ. ११४.३७)।

२. स्कंद का नामान्तर।

ब्रह्मजित्--संह्लादपुत्र कालनेमि नामक राक्षस का पुत्र (ब्रह्मांड. ३.५.३८)।

ब्रह्मतन्वि--अंगिराकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

ब्रह्मदत्त--(सो. पूरु.) पांचालदेशीय कांपिल्य नगर का एक राजा, जो भागवत के अनुसार नीप राजा का पुत्र था (म. शां. १३७)। विष्णु, मत्स्य एवं वायु में इसे अणुह राजा का पुत्र कहा गया है।

इसकी माता का नाम कीर्तिमती अथवा कृत्वी था, जो शुकाचार्य की कन्या थी। देवल ऋषि की कन्या सन्नति इस कीपत्नी थी (ह. वं. १.२३-२५)। किन्तु भागवत में इसकी पत्नी का नाम गो दिया गया है (भा. ९.२२.२५)। भागवत एवं विष्णु में इसके पुत्र का नाम विष्वक्सेन दिया गया है। किन्तु मत्स्य एवं वायु में इसके पुत्र का नाम क्रमशः युगदत्त, एवं युगसूनु दे कर, इसके पौत्र का नाम विष्वक्सेन बताया गया है। महाभारत में इसके पुत्र का नाम सर्वसेन बताया गया है।

इसके भवन में निवास करनेवाली पूजनी नामक चिड़िया के बच्चों को इसका पुत्र सर्वसेन ने मारा, अतएव पूजनी ने भी सर्वसेन की आँखे फोड डाली (म. शां. १३७.१७)। पश्चात् पूजनी ने इसका राजभवन छोड़ना चाहा। राजा ब्रह्मदत्त ने उसे रहने के लिये काफ़ी आग्रह किया। किन्तु अपने शत्रु के घर रहने से उसने इन्कार कर दिया। राजभवन छोड़ते समय पूजनी का एवं इसका तत्वज्ञान संबंधी संवाद हुआ था (म. शां. १३७.२१-१०९; पूजनी देखिये)।

इसने जैगीषव्य ऋषि से योगविद्या प्राप्त कर, योगतंत्र नामक ग्रंथ का निर्माण किया था (भा. ९.२२.२६)।

महाभारत के अनुसार, सुविख्यात वैदिक आचार्य कण्डरीक के वंश में इसका जन्म हुआ था, एवं उसीके वंश में उत्पन्न हुआ कण्डरीक नामक अन्य एक पुरुष इसका मंत्री था। मत्स्य में बाभ्रव्य पांचाल सुब्रालक एवं कण्डरीक को क्रमशः इसका मंत्री एवं मंत्रीपुत्र कहा गया है (मत्स्य. २०.२४; २१.३०)। यह स्वयं वेदशास्त्रविद् था, एवं इसने अथर्ववेद के एवं कण्डरीक ने सामवेद के क्रमपाठ की रचना की थी (म. शां. ३३०.३८-३९)। अथर्ववेद संहिता का पदपाठ एवं शिक्षा की भी इसने रचना की थी।

योगाचार्य गालव इसका मित्र था, एवं इसने सात जन्मों के जन्ममृत्युसंबंधी दुःखों का बारबार स्मरण कर के योगजनित ऐश्वर्य प्राप्त किया था। इसने ब्राह्मणों को 'शंखनिधि' दे कर ब्रह्मलोक भी प्राप्त किया था (म. अनु. १३७.१७; शां. २२६.२९)। समस्त प्राणियों एवं पक्षियो की बोली इसे अवगत थी (ह. वं.१.२०-२४)।

भीष्म का पितामह प्रतीप राजा का यह समकालीन था (ह. वं. १.२०.११-१२)।

२. कांपिल्य नगरी का राजा, जो सोमदा नामक गंधर्वी का पुत्र था। सोमदा गंधर्वी ने चूलि नामक महर्षि की अनन्यभाव से सेवा की, जिससे प्रसन्न हो कर उस ऋषि ने सोमदा को इसे पुत्ररूप में प्रदान किया।

कुशनाभ नामक दैत्य ने वायु (वात) के कारण वक्र हुयी अपनी सौ कन्याएँ इसे प्रदान की। इसने उन कन्याओं की वक्रता दूर कर उनका स्वीकार किया (वा. रा. बा. ३३)।

३. सूर्यवंशीय एक राजा, जिसने साबरमती नदी के तट पर शंकर की उग्र तपस्या कर, वहाँ अपने नाम से प्रसिद्ध एक शिवलिंग की स्थापना की (पद्म. उ. १३५)।

४. शाल्व देश का एक राजा, जिसके पुत्र का नाम हंस था (हंस ७. देखिये)।

ब्रह्मदत्त चैकितानेय--एक आचार्य, जो कुरुवंशीय राजा अभिप्रतारिन् का आश्रित था (जै. उ. ब्रा. १.३८. १; ५९.१)। चेकितान का वंशज होने से इसे 'चैकितानेय' उपाधि प्राप्त हुयी होगी (चैकितानेय देखिये)। इसके द्वारा प्राणविद्या कथन किये जाने का निर्देश बृहदारण्यक उपनिषद में प्राप्त है (बृ. उ. १.३.२४)।

ब्रह्मदेव--पांडवपक्षीय एक योद्धा, जो पांडवों की सेना की रक्षा के लिए शिखण्डी के क्षत्रदेव नामक पुत्र के साथ उपस्थित था (म. उ. १९६.२५)।

ब्रह्मधना--कश्यप ऋषि के रक्षस नामक असुरपुत्र की पत्नी। इसे निम्नलिखित नौ पुत्र थे:--अम्बुक, केलि, क्षम, ध्वति, ब्रह्मपेत, यज्ञहा, यज्ञापेत, श्वात एवं सर्प। इसे निम्नलिखित चार कन्याएँ भी थी:--अपहारिणी, क्षमा, महाजिह्वा एवं रक्तकर्णी (ब्रह्मांड. ३.७.९८)।

ब्रह्मधातृ--कुबेर का एक सेवक, जो प्रहेति राक्षस का पुत्र था।

ब्रह्मन्--एक पौराणिक देवता, जो सम्पूर्ण प्रजाओं का स्रष्टा माना जाता है। इसने सर्वप्रथम प्रजापति बनाये, जिन्होंने आगे चल कर प्रजा का निर्माण किया। वैदिक ग्रन्थों में निर्दिष्ट प्रजापति देवता से इस पौराणिक देवता का काफ़ी साम्य है एवं प्रजापति की बहुत सारी कथायें इससे मिलती जुलती (प्रजापति देखिये)। सृष्टि के आदि-कर्ता एवं जनक चतुर्मुख ब्रह्मन् का निर्देश, जो पुराणों में अनेक बार आता है, वह वैदिक ग्रन्थों में अप्राप्य है। किंतु वेदों में 'धाता', 'विधाता', आदि ब्रह्मा के नामांतर कई स्थानों पर आये है।

उपनिषद् ग्रन्थों में ब्रह्मन् का निर्देश प्राप्त है, किन्तु वहाँ इसके सम्बन्ध में सारे निर्देश एक तत्त्वज्ञ एवं आचार्य के नाते से किये गये है। वहाँ उसे सृष्टि का सृजनकर्ता नहीं माना है। उपनिषदों के अनुसार यह परमेष्ठिन् ब्रह्म नामक आचार्य का शिष्य था (बृ. उ. २.६.३; ४.६. ३)। सारी सृष्टि में यह सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ (मुं. उ. १.१.२)। इसने अथर्वन् को ब्रह्मविद्या प्रदान की थी (मुं. उ. १.१.२)। इसी प्रकार इसने नारद को भी ब्रह्म विद्या का ज्ञान कराया था (गरुड. उ. १-३)। छांदोग्य उपनिषद में ब्रह्मोपनिषद् नामक एक छोटा उपनिषद् प्राप्त है, जो सुविख्यात ब्रह्मोपनिषद् से अलग है। इस उपनिषद् का ज्ञान ब्रह्मा ने प्रजापति को कराया, एवं प्रजापति ने 'मनु' को कराया था (छां. उ. ३.११.३-४)। ब्रह्मन् नामक एक ऋत्विज का निर्देश भी उपनिषद् ग्रन्थों में प्राप्त है।

जन्म--पुराणों के अनुसार भगवान् विष्णु ने कमल रूपधारी पृथ्वी का निर्माण किया, जिससे आगे चल कर ब्रह्मन् उत्पन्न हुआ (मत्स्य. १६९.२; म. व. परि. १ क्र. २७; पंक्ति. २८.२९; भा. ३.८.१५)।

महाभारत के अनुसार, भगवान विष्णु जब सृष्टि के निर्माण के सम्बन्ध में विचारनिमग्न थे, उसी समय उनके मन में जो सृजन की भावना जागृत हुयी, उसीसे ब्रह्मा का सृजन हुआ (म. शां. ३३५.१८)।

महाभारत में अन्यत्र कहा है कि, सृष्टि के प्रारम्भ में सर्वत्र अन्धकार ही था। उस समय एक विशाल अण्ड प्रकट हुआ, जो सम्पूर्ण प्रजाओं का अविनाशी बीज था। उस दिव्य एवं महान् अण्ड में से सत्यस्वरूप ज्योतिर्मय सनातन ब्रह्म अन्तर्यामी रूप से प्रविष्ट हुआ। उस अण्ड से ही प्रथमदेहधारी प्रजापालक देवगुरु पितामह ब्रह्मा का अविर्भाव हुआ। एक तेजोमय अण्ड से सृष्टि का निर्माण होने की यह कल्पना, वैदिक प्रजापति से, चिनी 'कु' देवता से, एवं मिस्र 'रा' देवता से मिलती जुलती है (प्रजापति देखिये, म. आ. १.३०; स्कंद. ५.१,३)।

विष्णु के अनुसार, विश्व के उत्पत्ति आदि के पीछे अनेक अज्ञात एवं अगम्य शक्तियों का बल सन्निहित है, जो स्वयं ब्रह्मन् है। यह स्वयं उत्पत्ति आदि की अवस्था से अतीत है। इसी कारण इसकी उत्पत्ति की सारी कथाएँ औपचारिक हैं (विष्णु. १.३)।

महाभारत में ब्रह्मन् के अनेक अवतारों का वर्णन प्राप्त है, जहाँ इसके निम्नलिखित अवतारों का विवरण दिया गया है:— मानस, कायिक, चाक्षुष, वाचिक, श्रवणज, नासिकाज, अंडज, पद्मज (पाद्म)। इनमें से ब्रह्मन् का पद्मज अवतार अत्यधिक उत्तरकालीन माना जाता है (म. शां. ३५७.३६-३९)।

सृष्टि के सृजन के समय, इसने सृष्टि के सृजनकर्ता ब्रह्मा, सिंचनकर्ता विष्णु, एवं संहारकर्ता रुद्र ये तीनों रूप स्वयं धारण किये थे। यही नहीं, सृष्टि के पूर्व मत्स्य, तथा सृष्टि के सृजनोपरांत वाराह अवतार भी लेकर इसने पृथ्वी का उद्धार भी किया था।

चतुर्मुख——यह मूलतः एक मुख का रहा होगा, किन्तु पुराणों में सर्वत्र इसे चतुर्मुख कहा गया है, एवं उसकी कथा भी बताई गयी है। इसने अपने शरीर के अर्धभाग से शतरूपा नामक एक स्त्री का निर्माण किया, जो इसकी पत्नी बनी। शतरूपा अत्यधिक रूपवती थी। यह उसके रूप के सौन्दर्य में इतना अधिक डूब गया कि, सदैव ही उसे देखते रहना ही पसन्द करता था।

एक बार अनिंद्य-सुंदरी शतरूपा इसके चारों ओर परिक्रमा कर रही थी। वहीं पास में इसके मानसपुत्र भी बैठे थे। अब यह समस्या थी कि, शतरूपा को किस प्रकार देखा जाये कि, वह कभी आँखो से ओझल न हो। बार बार मुड़ मुड़कर देखना पुत्रों के सामने अभद्रता थी। अतएव इसने एक मुख के स्थान पर चार मुख धारण किये, जो चारों दिशाओं की ओर देख सकते थे।

शतरूपा एक बार आकाशमार्ग से ऊपर जा रही थी। अतएव इसने जटाओं के उपर एक पाँचवाँ मुख भी धारण किया था, किन्तु वह बाद को शंकर द्वारा तोड़ डाला गया। इसे स्त्री के रूप सौन्दर्य में लिप्त होने कारण, अपने उस समस्त तप को जड़मूल से खो देना पड़ा, जो इसने अपने पुत्रप्राप्ति के लिए किया था (मत्स्य. ३.३०-४०)।

'जैमिनिअश्वमेध' में ब्रह्मा की एक कथा प्राप्त है, जिससे प्रतीत होता है कि, अति प्राचीन काल में ब्रह्मा को चार से भी अधिक मुख प्राप्त थे। बक दाल्भ्य नामक ऋषि को यह अहंकार हो गया था कि, मैं ब्रह्मा से भी आयू में ज्येष्ठ हूँ। उसका यह अहंकार चूर करने के लिए, ब्रह्मा ने पूर्वकल्प में उत्पन्न हुए ब्रह्माओं का दर्शन उसे कराया। उन ब्रह्माओं को चार से भी अधिक मुख थे, ऐसा स्पष्ट निर्देश प्राप्त है (जै. अ. ६०-६१)।

शंकर से विरोध—शंकर ने इसका पाँचवा मुख क्यों तोड़ा इसकी विभिन्न कथायें पुराणों में प्राप्त हैं।

मत्स्य के अनुसार, एक बार शंकर की स्तुति कर ब्रह्मा ने उसे प्रसन्न किया एवं यह वर माँगा कि वह उसका पुत्र बने। शंकर को इसका यह अशिष्ट व्यवहार सहन न हुआ, और उसने क्रोधित होकर शाप दिया, 'पुत्र तो तुम्हारा मैं बनूँगा, किन्तु तेरा यह पाँचवा मुख मेरे द्वारा ही तोड़ा जायेगा'।

सृष्टिनिर्माण के समय इसने 'नीललोहित' नामक शिवावतार का निर्माण किया। शेष सृष्टि का निर्माण करते समय, इसने उस शिवावतार का स्मरण न किया, जिसकारण क्रुद्ध होकर उसने इसे शाप दिया, 'तुम्हारा पाँचवाँ मस्तक शीघ्र ही कटा जायेगा'।

मत्स्य में अन्यत्र लिखा है कि, इसके पाँचवें मुख के कारण बाकी सारे देवों का तेज हरण किया गया। एक दिन यह अभिमान में आकर शंकर से कहने लगा, 'इस पृथ्वी पर तुम्हारे अस्तित्त्व होने के पूर्व से मैं यहाँ निवास करता हूँ, मैं तुमसे हर प्रकार ज्येष्ठ हूँ'। यह सुनकर क्रोधित हो कर शंकर ने सहजभाव से ही इसके मस्तके को अपने अँगूठे से मसल कर पृथ्वी पर ऐसा फेंक दिया, मानों किसी ने फूल को क्रूरता के साथ डाली से नोच कर जुदा कर दिया हो (मत्स्य १८३. ८४-८६)। इसका मस्तक तोड़ने के कारण, शंकर को ब्रह्महत्या का पाप लगा। उस पाप से छुटकारा पाने के लिये, ब्रह्मा के कपाल को लेकर उसने कपालीतीर्थ में उसका विसर्जन किया (पद्म. सृ. १५)।

पाँचवे मस्तक के कट जाने के उपरांत, इसके अन्य मस्तक स्तम्भित हो गये। उनमें से स्वेदकण निकल कर मस्तक पर छा गये। जिसे देखकर इसने उन स्वेदकणों को हाथ से निचोड़ कर जमीन में फेंका। फेंकते ही उससे एक रौद्र पुरुष उत्पन्न हुआ, जिसको इसने शंकर के पीछे पीछे छोड़ दिया। अंत में शंकर ने उसे पकड़ कर विष्णु के हवाले किया (स्कंद ५.१.३-४)।

ब्रह्मा एवं शंकर के आपसी विरोध की और अन्य कथाएँ भी पुराणों में प्राप्त हैं। एक बार शिवपत्नी सती के रूपयौवन पर यह आकृष्ट हुआ, जिस कारण क्रुद्ध हो कर शंकर इसे मारने दौड़ा। किन्तु विष्णु ने शंकर को रोकने का प्रयत्न किया। फिर भी शंकर ने इसे 'ऐंद्रशिर' एवं 'विरूप' बनाया। इसकी विरूपता के कारण सारे संसार में यह अपूज्य ठहराया गया (शिव. रुद्र. स. २०)।

एक बार शंकर ने अपनी संध्या नामक कन्या का दर्शन इसे कराया। उसे देखते ही ब्रह्मा मोहित हो गया। शंकर ने इसका यह अशोभनीय एवं अनुचित कार्य इसके पुत्रों को दिखा कर, उनके द्वारा इसका उपहास कराया। अपने इस अपमान का बदला लेने के लिए, ब्रह्मा ने दक्षकन्या सती का निर्माण कर, दक्ष द्वारा शंकर का अत्यधिक अपमान कराया (स्कंद २.२.२३)। इसे दाहिने अँगूठे से दक्ष का, एवं बाये से दक्षपत्नी का निर्माण हुआ था (म. आ. ६०.९)।

स्कन्द के अनुसार, सृष्टि का निर्माण करने के लिए ब्रह्मा एवं नारायण सर्वप्रथम उत्पन्न हुए थे। सृष्टि निर्माण करने के पश्चात्, ब्रह्मा तथा नारायण में यह विवाद हुआ कि, उन दोनों में कौन श्रेष्ठ है? यह झगड़ा जब तय न हो सका, तो दोनों शंकर के पास गये। वहाँ शंकर ने दोनों के सामने एक प्रस्ताव रखा कि, जो व्यक्ति शिवलिंग के आदि एवं अन्त को शोध कर, सर्वप्रथम उसकी सूचना उसे देगा, वही ज्येष्ठ बनने का अधिकारी होगा। ब्रह्मा ने उर्ध्वमार्ग से शोध करना आरम्भ किया, किन्तु इसे सफलता न मिली। तब इसने 'गौ' एवं 'केतकी' को अपना झूठा गवाह बना कर, शंकर के सामने पेश करते हुए कहा, 'मै ने शिवलिंग के आदि एवं अन्त शोध किया है, जिसके प्रत्यक्ष गवाह देनेवाले गौ एवं 'केतकी' सम्मुख है'। यह सुन कर ब्रह्मा को ज्येष्ठपद दिया गया। किन्तु बाद में असलियत मालूम होने के उपरांत, शंकर ने नारायण को ज्येष्ठ, एवं इसे कनिष्ठ एवं अपूज्य ठहराया।

पश्चात्, शंकर के कथनानुसार, इसने गंधमादन पर्वत पर एक यज्ञ किया, जिस कारण श्रौत एवं स्मार्त धर्मविधियों में इसे पूज्यत्व प्रदान किया गया (स्कन्द. १.१.६; १.३.२; ९-१५; ३.१.१४)।

सृष्टि निर्माण—इसने अनेकानेक प्राणियों का सृजन किस प्रकार किया, इसकी कथा विभिन्न पुराणों में तरह तरह से दी गयी है।

महाभारत के अनुसार, वरुणरूपधारी शंकर ने एक बार यज्ञ किया, जिसमें ब्रह्मा ने अपने वीर्य की आहुति दी। उसी यज्ञ से प्रजापतियों का जन्म हुआ (म. अनु. ८५.९९-१०२)।

पद्म के अनुसार, इसने सर्वप्रथम तमोगुणी प्रजा उत्पन्न की, एवं उसके उपरांत क्रमशः रजोगुणी, तथा सतोगुणी प्रजा का निर्माण किया। इसके द्वारा निर्माण की गयी तमोगुणी सृष्टि पाँच प्रकार की थी, जो निम्नलिखित हैं:— तम, मोह, महामोह, तामिस्र एवं अन्धतामिस्र। यह पाँचो प्रकार की सृष्टि अन्धकारमय थी, एवं उसमें केवल नागों की उत्पत्ति ब्रह्मा ने की थी।

तत्पश्चात् इसने विभिन्न प्रकारों की कुल आठ सृष्टियों का निर्माण किया, जिनके नाम एवं उनमें उत्पन्न प्राणियों के नाम इस प्रकार हैं:—तिर्यक्स्रोतस् (पशु), ऊर्ध्वस्रोतस् (देव), अर्वाक्स्रोतस् (मनुष्य), अनुग्रह, भूत, प्राकृत, वैकृत एवं कौमार।

पद्म में यह भी लिखा है कि, देव, राक्षस, पितर, मनुष्य, यक्ष एवं पिशाच्च गणों की उत्पत्ति ब्रह्मा ने अपने मनःसामर्थ्य से की। ब्रह्मा का पहला शरीर तमोगुणी था, जिसके 'जघन' से असुरों का निर्माण हुआ। पश्चात, इसने अपने तमोगुणी शरीर का त्याग कर, नये सतोगुणी शरीर को धारण किया। इसके द्वारा परित्याग किये गये तमोगुणी शरीर से रात्रि का निर्माण हुआ, एवं इसके द्वारा धारण किये गये सतोगणी शरीर से देवों की उत्पत्ति हुई। पश्चात् इसने अपने द्वितीय शरीर का भी त्याग किया, जिससे दिन की उत्पत्ति हुयी। इसके तृतीय शरीर से 'पितर' उत्पन्न हुए, एवं उसके त्यक्त भाग से संध्याकाल की उत्पत्ति हुयी। इसके चतुर्थ शरीर से मनुष्य उत्पन्न हुए, एवं उसके त्यक्त भाग से उषःकाल का निर्माण हुआ। इसके पाँचवे शरीर से यक्ष एवं राक्षस उत्पन्न हुए।

अपने शरीर के द्वारा देवता, ऋषि, नाग एवं असुर निर्माण करने के पश्चात्, इसने उन चारों प्राणिगणों को एकाक्षर 'ॐ' का उपदेश किया था (म. आश्व. २६. ८; देव देखिये)।

ब्रह्मा के शरीर के विभिन्न भागों से किन किन प्राणियों की उत्पत्ति हुयी है, इसकी जानकारी विभिन्न पुराणों में तरह तरह से दी गयी है। पद्म के अनुसार, ब्रह्मा के हृदय से बकरी, उदर से गाय, भैस आदि ग्राम्य पशु, पैरों से अश्व, गद्धे, उँट आदि वन्य पशु उत्पन्न हुए। मत्स्य के अनुसार, इसके दाहिने अंगूठे से दक्ष, हृदय से मदन, अधरों से लोभ, अहंभाव से मद, आँखो से मृत्यु, स्तनाग्र से धर्म, भ्रूमध्य से क्रोध, बुद्धि से मोह, कंठ से प्रमोद, हथेली से भरत, एवं शरीर से शतरूपा नामक पत्नी उत्पन्न हुयीं। उक्त वस्तुओं एवं व्यक्तियों की कोई माता नहीं थी, कारण ये सभी ब्रह्मा के शरीर से ही पैदा हुए थे। मत्स्य एवं महाभारत के अनुसार, इसके शरीर से मृत्यु नामक स्त्री की उत्पत्ति हो गयी थी (म. द्रो. परि. १.८. १५०)।

वेदों का निर्माण—पुराणों के अनुसार, ब्रह्मा के चार मुखों से समस्त वैदिक साहित्य एवं ग्रंथों का निर्माण हुआ है। विभिन्न प्रकार के वेद निर्माण करने के पूर्व, इसने पुराणों का स्मरण किया था। पश्चात्, अपने विभिन्न मुखों से इसने निम्नलिखित वैदिक साहित्य का निर्माण किया:— (१) **पूर्वमुख से**-गायत्री छंद, ऋग्वेद, त्रिवृत, रथंतर एवं अग्निष्टोम; (२) **दक्षिणमुख से**-यजुर्वेद, पंचदश ऋक्समूह, बृहत्साम एवं उक्थयज्ञ; (३) **पश्चिममुख से**-सामवेद, सप्तदश ऋक्समूह, वैरुपसाम एवं अतिरात्रयज्ञ; (४) **उत्तरमुख से**-अथर्ववेद, एकविंश ऋक्समूह, आप्तोर्याम, अनुष्टुप छंद एवं वैराजसाम।

वेदादि को निर्माण करने के पश्चात्, इसने ब्रह्मा नाम से ही सुविख्यात हुए अपने निम्नलिखित मानसपुत्रों का निर्माण किया:—मरीचि, अत्रि, अंगिरस्, पुलस्त्य, पुलह, ऋतु, दक्ष, भृगु एवं वसिष्ठ (ब्रह्मांड. २. ९)। महाभारत में इसके धाता एवं विधाता नामक दो मानसपुत्र और दिये गये हैं (म. आ. ६०.४९)।

मदन को शाप—ब्रह्मा की पत्नी शतरूपा के लिए मत्स्य में सावित्री, सरस्वती, गायत्री, ब्रह्माणी आदि नामांतर दिये गये है। अपने द्वारा उत्पन्न पुत्रों को प्रजोत्पत्ति करने की आज्ञा देकर, यह स्वयं अपनी पत्नी सावित्री के साथ रत हुआ, जिससे स्वायंभुव मनु की उत्पत्ति हुयी। शतरूपा अथवा सावित्री इसके द्वारा ही पैदा की गयी थी। अतएव उसका एवं ब्रह्मा का सम्बन्ध पिता एवं पुत्री का हुआ। किन्तु इसने उसे अपनी धर्मपत्नी मानकर उसके साथ भोग किया। पुराणों में प्राप्त यह कथा, वैदिक ग्रन्थों में निर्दिष्ट प्रजापति के द्वारा अपनी कन्या उषा से किये 'दुहितृगमन' से मिलती जुलती है (प्रजापति देखिये)। मत्स्य के अनुसार, ब्रह्मा स्वयं वेदों का उद्गाता एवं 'वेदराशि' होने के कारण, यह दुहितृगमन के पाप से परे है (मत्स्य. ३)।

अपने द्वारा किये गये दुहितृगमन से लज्जित होकर, एवं कामदेव को इसका जिम्मेदार मानकर, इसने मदन को शाप दिया कि, वह रुद्र के द्वारा जलकर भस्म होगा। इसके शाप को सुनकर मदन ने जवाब दिया, 'मैने तो अपना कर्तव्य निर्वाह किया है। उसमें मेरी त्रुटि क्या है?' यह सुनकर ब्रह्मा ने उसे उःशाप दिया, 'रुद्र के द्वारा दग्ध होने के बाद भी तुम निम्नलिखित बारह स्थान पर निवास करोगे:—स्त्रियों के नेत्रकटाक्ष, जंघा, स्तन, स्कंध, अधरोष्ठ आदि शरीर के भाग, तथा वसंतऋतु, कोकिलकंठ, चंद्रिका, वर्षाऋतु, चैत्रमास और वैशाखमास आदि' (मत्स्य. ४. ३-२०; स्कंद ५.२.१२)।

प्रभासक्षेत्र में यज्ञ—स्कंद में, ब्रह्मा की पत्नी सावित्री एवं गायत्री को एक न मान कर अलग अलग माना गया है, एवं सावित्री के द्वारा इसे तथा अन्य देवताओं को जो शाप दिया गया था उसकी कथा निम्न प्रकार से दी गयी है:— एक बार ब्रह्मा ने प्रभासक्षेत्र में एक यज्ञ किया, जिसमें यज्ञ की मुख्य व्यवस्था विष्णु को, ब्राह्मणसेवा इन्द्र को, एवं दक्षिणादान कुबेर को सौंपी गयी थी।

ब्रह्मा के इस यज्ञ में निम्नलिखित ऋषि ब्रह्मन्, उद्गातृ, होतृ एवं अध्वर्यु बने थे:—

(१) **ब्रह्मन्गण**—नारद (ब्रह्मा), गौतम अथवा गर्ग (ब्राह्मणाच्छंसी), देवगर्भ व्यास (होता), देवल भरद्वाज (आग्नीध्र)।

(२) **उद्गातृगण**—अंगिरस् मरीचि गोभिल (उद्गाता), पुलह कौथुम (उद्गाता अथवा प्रस्तोता), नारायण शांडिल्य (प्रतिहर्ता), अत्रि अंगिरस् (सुब्रह्मण्य)।

(३) **होतृगण**—भृगु (होता), वसिष्ठ मैत्रावरुण (मैत्रावरुण ऋत्विज्), ऋतु मरीचि (अच्छावाच्), च्यवन गालव (ग्रावा अथवा ग्रावस्तुद्)।

(४) **अध्वर्युगण**—पुलस्त्य (अध्वर्यु), शिबि अत्रि (प्रतिष्ठाता अथवा प्रस्थाता), बृहस्पति रैभ्य (नेष्टा),

अंशपायन सनातन (उन्नेता)। बाकी सारे ऋषि इसके यज्ञ के सदस्य बने थे।

सावित्री से शाप--यज्ञ की दीक्षा लेकर यह यज्ञ प्रारम्भ करने ही वाला था कि, इसे ध्यान आया कि, यज्ञकुण्ड के पास सावित्री उपस्थित नहीं है, और बिना पत्नी के यज्ञ आरम्भ नहीं किया जा सकता। अतएव इसने सावित्री को बुलावा भेजा, पर सावित्री के आने में देर हुयी। पता नहीं उसे वहाँ आने में हिचकिचाहट थी, अथवा वह अकेले न आकर लक्ष्मी के साथ आने के लिए उसे ढूँढ़ रही थी, बहरहाल उसे देरी हुयी। इस देरी से ब्रह्मा चिड़ गया, तथा उसने इन्द्र को आज्ञा दी कि, शीघ्र ही किसी स्त्री को इस कार्य की पूर्ति के लिए लाया जाय। इन्द्र एक ग्वाले की कन्या ले आया। ब्रह्मा ने उसे 'गायत्री' नाम देकर वरण किया, एवं यज्ञ पर उसे बिठा कर कार्य आरम्भ किया।

कुछ समय के बाद सावित्री आयी, तथा उसने देखा कि यज्ञ करीब करीब हो चुका है। यह देखकर वह ब्रह्मा एवं उपस्थित देवों पर अत्यधिक क्रुद्ध हुयी कि, मेरे बिना यज्ञ किस प्रकार आरम्भ हुआ। कुपित होकर उसने ब्रह्मा को शाप दिया कि, वह अपूज्य बनकर रहेगा, उसकी कोई पूजा न करेगा (स्कंद ७.१.१६५)।

सावित्री ने अन्य देवताओं को भी शाप दिये जो इस प्रकार थेः--**इन्द्र को**--हमेशा पराभव होने का एवं कारावास भोगने का; **विष्णु को**--भृगु ऋषि के द्वारा शाप मिलने का, स्त्री का राक्षसद्वारा हरण होने का, तथा पशुओं की दास्यता में रहने का; **रुद्र को**--ब्राह्मणों के शाप से पौरुष के नष्ट होने का; **अग्नि को**--अपवित्र पदार्थों की ज्वाला से अधिक भड़कने का; **ब्राह्मणों को**--लोभी बनने का, दूसरे के अन्न पर जीवित रहने का, पापियों के घर भी यज्ञहेतु जाने का, तथा द्रव्यसंचय में अधिक प्रयत्नशील रहने का आदि।

इस प्रकार प्रमुख देवताओं को शाप देकर सावित्री वापस आयी। देवस्त्रियों ने उसका साथ न दिया अतएव सावित्री ने उन्हें शाप दिया कि 'तुम सभी वंध्या रहोगी' लक्ष्मी को शाप दिया 'तुम चंचल रहकर, मूर्ख, म्लेंच्छ, आग्रही तथा अभिमानी लोगों की संगति करोगी'। इन्द्राणी को शाप दिया, 'तुम्हारी इज्जत लेने के लिए नहुष तुम्हारा पीछा करेगा, तथा तुम्हें अपनी रक्षा के लिए बृहस्पति के घर पर छिपकर बैठना पडेगा।

गायत्री से वरदान--सावित्री के चले जाने के उपरान्त, गायत्री ने समस्त देवताओं एवं उनकी धर्मपत्नियों को विभिन्न वरप्रदान करते हुए कहा, 'ब्रह्मा की पूजा करनेवाले व्यक्ति को सुख एवं मोक्ष प्राप्त होगा। इन्द्र शत्रुद्वारा पराजित होकर भी, ब्रह्मा की सहायता प्राप्त कर पुनः अपना पद प्राप्त करेगा। विष्णु को मनुष्यजन्म में पत्नी विरह सहन करना पडेगा, किन्तु अन्त में वह शत्रुओं को परास्त कर लोगों का पूज्य बनेगा। शंकर के पूजक पाप से मुक्त होकर अपना उद्धार करेंगे। अग्नि की तृप्ति पर ही देवों को सुख और शान्ति मिलेगी। लक्ष्मी सब को प्रिय होगी, तथा वह हरएक जगह पूजी जायेगी; उसके कारण ही लोग तेजस्वी होंगे। देवस्त्रियाँ संततिविहीन होने पर भी उन्हे निःसंतान होने का दुःख न होगा' (पद्म. सृ. १७)।

यज्ञ में उपस्थित तीन अतिथि--ब्रह्मा का यह यज्ञ सहस्र युगों तक चलता रहा, अर्थात् यह ब्रह्मा की वर्षगणना से करीब अर्ध वर्ष तक चला (स्कंद. ६.१९४)। स्कंद के अनुसार, ब्रह्मा के इस यज्ञ में तीन विभिन्न व्यक्ति विचित्र रूप से यज्ञ में आये, जिनकी कथा अत्यधिक रोचक है।

यज्ञ चल रहा था कि, शंकर अपनी विचित्र वेशभूषा में आया, और अपना कपाल मंडप में रख दिया। उसे कोई पहचान न सका। ऋत्विजों में से एक ने उस कपाल को बाहर फेंकने का प्रयत्न किया, किन्तु उसके फेंकते ही उस स्थान पर लाखों कपाल उत्पन्न हो गये। यह कृत्य देख कर सब को आभास हुआ कि, यह भगवान् शंकर की ही लीला हो सकती है। अतएव समस्त देवताओं ने तुरंत उसकी स्तुति कर, उससे क्षमा माँगी। शंकर प्रसन्न हुए और ब्रह्मा से वर माँगने को कहा। किन्तु ब्रह्मा ने यज्ञ की दीक्षा लेने के कारण शंकर से वर माँगने की मजबूरी प्रकट की, और स्वयं शंकर को वर प्रदान किया। इसके उपरांत ब्रह्मा ने यज्ञकुण्ड की उत्तर दिशा की ओर शंकर को उचित आसन देकर, उसके प्रति अपना सम्मान प्रकट किया।

दूसरे दिन एक बटु ने यज्ञमंडप में प्रवेश कर सहजभाव से एक सर्प छोड़ दिया, जिसने उपस्थित होतागणों को अपने पाश में बाँध लिया। इस कृत्य से क्रोधित होकर उपस्थित सदस्यों ने शाप दिया कि, वह स्वयं सर्प हो जाये। किन्तु उस बटु 'शंकर भगवान्' की स्तुति कर शाप से मुक्त हुआ।

तीसरे दिन एक विद्वान् अतिथि आया और उसने कहा, 'आप सभी लोगों से मैने केवल गुण प्राप्त किये हैं, अतएव मैं विद्वान् बनने का अधिकारी हूँ'। ब्रह्मा ने उसका सत्कार किया एवं उसे उचित आसन दिया।

उपर्युक्त यज्ञ के अतिरिक्त, ब्रह्मा के द्वारा निम्नलिखित स्थानों पर यज्ञ करने के निर्देश प्राप्त हैं:- हिरण्यशृंग पर्वत पर बिंदुसर के समीप, धर्मारण्य में ब्रह्मसर के समीप, एवं कुरुक्षेत्र में (म. स. ३.८-९; म. व. ८२.७४; १२९.१)।

अन्य कथाएँ—एक बार अभिमान में आ कर तारकासुर नामक दैत्य देवों को अत्यधिक त्रस्त करने लगा। फिर उसके विनाश के लिए ब्रह्मा ने अपनी एक मानसकन्या निशा अथवा विभावरी को शंकरपत्नी पार्वती बनने के लिए भेजा। आगे चलकर उसी पार्वती के गर्भ से उत्पन्न हुए स्कंद ने तारकासुर का नाश किया (मत्स्य. १५४. ४७-७२)। शिवप्रसाद से इसने पुलोमा नामक दैत्य का वध किया (स्कंद. ५.२.६६)। जिस समय शंकर ने त्रिपुरासुर का वध किया था, उस समय ब्रह्मा उसका सारथी था (म. क. २४.१०८)।

इसकी मानसकन्याओं में सरस्वती नामक कन्या इसे विशेष प्रिय थी। इस कारण इसके दर्शनार्थ वह प्रतिदिन आया करती थी। एक बार, इसके दर्शन के लिए सहजवश आया हुआ पुरूरवस् राजा सरस्वती को देखकर उसपर मोहित हुआ। फिर अपनी पत्नी उर्वशी के द्वारा सरस्वती को बुलवा कर, उसके साथ रत हुआ। यह जान कर क्रुद्ध हुए ब्रह्मा ने अपनी पुत्री सरस्वती को नदी बन जाने का शाप दिया। उर्वशी के द्वारा प्रार्थना की जाने पर ब्रह्मा ने सरस्वती को उःशाप दिया, नदी हो जाने के उपरांत तुम नदियों में पवित्र समझी जाओगी' (ब्रह्म. १०१)।

विष्णु, रुद्र आदि अन्य देवताओं के समान ब्रह्मा के द्वारा भी अनेक तीर्थस्थान, एवं पवित्र क्षेत्रों का निर्माण किया गया था। इन्द्रद्युम्न नामक राजा के द्वारा अनुरोध करने पर, ब्रह्मा ने सुविख्यात 'जगन्नाथ' क्षेत्र की स्थापना की थी (स्कंद. २.२.२३)।

ब्रह्मा की कालगणना—ब्रह्मा की आयु सौ वर्षों की मानी जाती है। किन्तु ये सौ वर्ष सामान्य लोगों की वर्षगणना से भिन्न हैं। अतएव उस हिसाब से इसकी कुल आयु लाखों वर्षों की ठहरती है।

ब्रह्मा की कालगणना में एक वर्ष में तीन सौ साठ दिन रहते है। किन्तु इसका एक दिन एक हजार 'पर्यायों' का बनता है, एवं एक पर्याय में कृतयुग (१७२८००० वर्ष), त्रेतायुग (१२९६००० वर्ष), द्वापरयुग (८६४००१ वर्ष), तथा कलियुग (४३२००० वर्ष) समाविष्ट होते है। ब्रह्मा के कालगणना की तालिका इस प्रकार है:—

ब्रह्मा का एक दिन अथवा एक कल्प = १००० पर्याय,
१ पर्याय = कृत, त्रेता, द्वापर एवं कलियुग
(कृतयुग = १,७२८००० वर्ष
त्रेतायुग = १२,९६००० वर्ष
द्वापरयुग = ८,६४००१ वर्ष
कलियुग = ४,३२००० वर्ष)
४,३२०००१ वर्ष
∴ ब्रह्मा का एक दिन = ४३,२००००×१०००
= ४३,२०००००० वर्ष
(विष्णु. ३.२.४८)।

पौराणिक कालगणना के अनुसार, ब्रह्मा का एक वर्ष विष्णु के एक दिन के बराबर होता है, एवं विष्णु का एक वर्ष शंकर के एक दिन के बराबर होता है (स्कंद. ६.१.९४)।

पद्म के अनुसार, ब्रह्मा के आयु के ५० वर्ष अर्थात् एक परार्ध समाप्त हो चुका है, एवं दूसरा चल रहा है (पद्म. सृ. ३; स्कंद. ७.१.१०४)। इसकी रात्रि का काल वही हैं, जिसे नैमित्तिक प्रलय का काल कहा जाता है (भा. ३.११.२२-३५; १२.४.२; विष्णु. १.३.११-२७; मत्स्य. १४२.५.३६)। हर एक कल्प के आरम्भ में, जो अवतार ब्रह्मा द्वारा लिए गये हैं, उस कल्प को वही नाम दिया जाता है।

ग्रन्थ—ब्रह्मा द्वारा 'वास्तुशास्त्र' पर लिखित एक ग्रन्थ उपलब्ध है (मत्स्य. २५२.२)। 'दण्डनीति' नामक एक लक्ष अध्यायों का एक अन्य ग्रन्थ भी इसके द्वारा लिखा गया था। आगे चलकर शंकर ने उस ग्रन्थ को दस हजार अध्यायों में संक्षित किया, जिसे 'वैशालाक्ष' कहते है। बाद में, इन्द्र ने उसे पाँच हजार अध्यायों में संक्षित किया, एवं उसे 'बाहुदंतक' नाम दिया। आगे चलकर अन्य ऋषियों के द्वारा वह और संक्षित किया गया। बृहस्पति ने उसे संक्षिप्त कर तीन हजार अध्यायों का, एवं उसके बाद शुक्राचार्य ने उसे और भी संक्षिप्त कर एक हजार अध्यायों का बना दिया। बाद में वह ग्रन्थ प्रजापति के द्वारा अति संक्षिप्त कर दिया गया (म. शां. ५९.८७; प्रजापति देखिये)।

स्थान—पद्म में ब्रह्म के एक सौ आठ स्थानों का निर्देश प्राप्त है (पद्म. सृ. २९.१३२-१५९)।

ब्रह्मबल—व्यास की अथर्वन् शिष्यपरंपरा में से ब्रह्मबलि नामक आचार्य का नामान्तर।

२. वसिष्ठकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

३. ऋग्वेदी ब्रह्मचारी।

ब्रह्मबलि—एक आचार्य, जो व्यास की अथर्वन् शिष्यपरंपरा में से देवदर्श ऋषि के चार शिष्यों में से एक था।

ब्रह्मबलिन्—वसिष्ठकुलोत्पन्न एक ऋषि।

ब्रह्ममालिन्--वसिष्ठकुलोत्पन्न एक गोत्रकार गण।

ब्रह्मरात--याज्ञवल्क्य ऋषि का पिता (विष्णु. ३. ५.२)। भागवत में इसके नाम के लिए 'देवरात' पाठभेद प्राप्त है (देवरात ३. देखिये)। वायु. में इसे 'ब्रह्मवाह' कहा गया है।

२. शुक्राचार्य का नामान्तर (भा. १.९.८)।

ब्रह्मराति—याज्ञवल्क्य ऋषि का पैतृक नाम।

ब्रह्मवत्—भृगुकुलोत्पन्न एक ऋषि एवं मंत्रकार।

ब्रह्मवादिनी—प्रभास नामक वसु की पत्नी।

ब्रह्मवाह—याज्ञवल्क्य का पिता 'ब्रह्मरात' के नाम के लिये उपलब्ध पाठभेद (वायु. १.६०.४१; ब्रह्मरात देखिये)।

ब्रह्मवृद्धि छंदोगमाहकि—एक आचार्य, जो मित्रवर्चस् ऋषि का शिष्य था (वं. ब्रा. १)।

ब्रह्मशत्रु—रावणपक्षीय एक राक्षस (वा. रा. सुं. ५.५४)।

ब्रह्मसावर्णि—दसवे मन्वन्तर का अधिपति मनु, जो ब्रह्मा एवं दक्षकन्या सुव्रता का पुत्र था (ब्रह्मांड. ४.१. ३९-५१; मार्क. ९१.१०)। यह चाक्षुष मन्वन्तर में पैदा हुआ था (वायु. १००.४२; मनु देखिये)।

भागवत में इसे उपश्लोक का पुत्र कहा गया है (भा. ८.१३.२१)। देवीभागवत में दसवें मन्वन्तर का नाम 'मेरुसावर्णि' बताया गया है, एवं उसके अधिपति के नाते ब्रह्मसावर्णि का नाम न दे कर, वैवस्वतपुत्र पृषध्र का नाम दिया गया है (दे. भा. १०.१३)।

ब्रह्मसूनु—ग्यारहवें मन्वन्तर का अधिपति मनु (मत्स्य. ९.३६)।

ब्रह्महत्या—शंकर के द्वारा निर्माण की गयी एक देवी, जो उसने भैरव नामक राक्षस का वध करने के लिये उत्पन्न की थी।

भैरव नामक राक्षस ने ब्रह्मा का सर काट लिया। फिर शंकर ने इसे निर्माण किया, एवं इसे भैरव के पीछे छोड़ दिया। भारत के सारे शिवस्थानों में इसका उत्सव मनाया जाता है; केवल काशी में इसका उत्सव नही होता। शिवपुराण में वर्णन किया इसका माहात्म्य अतिशयोक्त प्रतीत होता है।

ब्रह्महन्—एक राक्षस, जो अनायुषा नामक राक्षसी का पौत्र, एवं वृत्र राक्षस का पुत्र था।

ब्रह्मातिथि काण्व--एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. ८.५)।

ब्रह्मापेत--एक राक्षस, जो ब्रह्मधान राक्षस का पुत्र था (ब्रह्मांड ३.७.९८)। यह अश्विन माह में सूर्य के साथ भ्रमण करता हैं (भा. १२.११.४३)।

ब्रह्मावर्त--(स्वा। प्रिय.) एक राजा, जो ऋषभ एवं जयंती का पुत्र था (भा. ५.४.१०)।

ब्रह्मिष्ठ--(सो. नील.) एक राजा, जो मत्स्य एवं वायु के अनुसार मुद्गल राजा का पुत्र था। इसकी स्त्री का नाम इंद्रसेना था।

ब्राह्मण--एक नाग, जो कश्यप एवं कद्रू का पुत्र था।

ब्राह्मपुरेयक--वसिष्ठकुलोत्पन्न एक गोत्रकार ऋषिगण। इसके नाम के लिए 'ब्रह्मकृतेजन' पाठभेद प्राप्त है।

भ

भक्षक—एक शूद्र, जो अत्यंत पापी था। एक बार प्यास से अत्यधिक व्याकुल होकर, इसने तुलसी चौरे के पास आकर, उसके पवित्र जल को ग्रहण किया, जिससे इसके समस्त पाप धुल गये। पश्चात्, एक व्याध द्वारा मारे जाने के उपरांत इसे स्वर्ग प्राप्त हुआ।

यह पूर्व जन्म में एक विलासी राजा था, जिसने एक सुन्दर स्त्री का अपहरण कर, उसका सतीत्व नष्ट किया था। इसी पापकर्म के कारण इस शूद्रयोनि में अनेकानेक यातनाए भोगनी पड़ी (पद्म. ब्र. २२)।

भग—एक वैदिक देवता जो सम्पत्ति, वैभव एवं सौभाग्य

की देवता मानी जाती है। यह बारह आदित्यों में से एक माना ज़ाता है। ऋग्वेद में आदित्यों की संख्या छः दी गयी है, एवं निम्नलिखित देवताओं को आदित्य कहा गया हैः—भग, मित्र, अर्यमन्, वरुण, दक्ष एवं अंश (ऋ. २.२७)।

ऋग्वेद का एक सूक्त प्रमुखतःभग की स्तुति में अर्पित किया गया है (ऋ. ७.४१)। ऋग्वेद में कुल साठ स्थानों में इस देवता का नाम आता है। भग का शाब्दिक अर्थ 'प्रदान करनेवाला' है। यही कारण है कि, वैदिक सूक्तों में सम्पत्ति के वितरक के रूप में इसका निर्देश कई बार हुआ है। अपने उपासकों को यह सम्पत्ति से परिपूर्ण (भगवान्) बनाता है (ऋ. ५.४६)। इसकी बहन का नाम उषा था (ऋ. १.१२३.५)।

भग के नेत्रों को रश्मियों से विभूषित कहा गया है (ऋ. १. १३६)। यास्क ने इसे पूर्वाह्ण का अधिपति कहा है (नि. १२.१३)। ऋग्वेद में आदित्य, सूर्य, विवस्वत्, पूषन्, अर्यमन्, वरुण, मित्र तथा भग को अलग अलग देवता माना गया है। पर वास्तव में ये सारे सूर्य के ही अनेक रूप हैं (ऋ. ८.३५.१३-१५)। भग नाम का ईरानी रूप 'बघ' (देव) है, जो 'अहुर मज्द' की एक उपाधि के रूप में प्राप्त है।

२. बारह आदित्यों मे से एक। शतपथ ब्राह्मण में, प्रजापति के यज्ञ मे इसने अपनी आँखे किस प्रकार खोई इसका वर्णन प्राप्त है। प्रजापति के यज्ञ में यह दक्षिण दिशा में बैठा था। रुद्र के द्वारा प्रजापति का 'वेध' किये जाने पर, उसके यज्ञ का हविर्भाग इसके पास लाया गया जिसे देखने से इसकी आँखे जाती रही (श. ब्रा. १.७.४)।

रुद्र के द्वारा इसकी आँखे नष्ट होने की यही कथा भागवत में अन्य प्रकार से दी गयी है। दक्ष के यज्ञ में यह ऋत्विज था। दक्षद्वारा शिव की निंदा किये जाने पर,आँखो के संकेत से इसने दक्ष को इशारा करते हुए उसे और प्रोत्साहित किया था। इस कारण शिव के पार्षद वीरभद्र ने इसकी आँखे बाहर निकाल लीं (भा. ४.५.१७-२०)। महाभारत के अनुसार, स्वयं रुद्र ने इसकी आँखे फोड़ डाली थीं (म. अनु. २६५. १८ कुं.)। पश्चात् यह शंकर की शरण में गया, जिस कारण शंकर ने इसे उःशाप दिया 'तुम मित्रों की आँखों से देख सकोगे (भा. ४.७.३)।

इसकी पत्नी का नाम सिद्धि था, जिससे इसे महिमा, विभु तथा प्रभु नामक पुत्र, तथा आशि नामक कन्या थी (भा. ६.१८.२; ६.६. ३९)।

महाभारत में इसे बारह आदित्यों में से एक कहा गया है, एवं इसकी माता का नाम अदिति, एवं पिता का नाम कश्यप बताया गया है। यह अर्जुन के जन्मोत्सव में तथा स्कंद के अभिषेक में उपस्थित था (म. आ. ११४.५५; श. ४४.५)। खाण्डववनदाह के समय घटित हुए युद्ध में यह इन्द्र के पक्ष में था, एवं तलवार तथा धनुष्य लेकर इसने शत्रु पर आक्रमण किया था (म. आ. २१८.३५)।

३. सौरमण्डल का एक आदित्य (म. आ. ५९.१५)। यह माघ माह में प्रकाशित होता है, एवं इसकी ११०० किरणें होती है (भवि. ब्राह्म. १.७८)। भागवत के अनुसार, यह पौष माह में प्रकट होता है, और इसके साथ स्फूर्ज, राक्षस, अरिष्टनेमि गंधर्व, ऊर्ण, यक्ष, आयु ऋषि कर्कोटक नाग तथा पूर्वचित्ति अप्सरा रहती हैं (भा. १२. ११.४२)।

४. एकादश रुद्रों में से एक, जो अर्जुन के जन्मोत्सव में सम्मिलित था (म. आ. ११४.५८)।

भगदत्त—प्राग्ज्योतिषपुर का अधिपति, जो नरक (भौमासुर) तथा भूमि का पुत्र था (म. द्रो. २८.१)। इसे 'भौमासुर' मातृकनाम भी था, परन्तु कई ग्रंथों में इसे 'भौमासुरपुत्र' भी कहा गया हैं (भा. १०.५९)।

एक बार इसके पिता भौम ने इन्द्र के कवच एवं कुण्डल का हरण किया, जिसके कारण क्रुद्ध होकर कृष्ण ने युद्ध में उसे परास्त कर उसका एवं उसके सात पुत्रों को मौत के घाट उतार दिया। भूमि ने कृष्ण से विलाप कर अपने पुत्र का जीवनदान माँगा। इस प्रकार कृष्ण ने प्रसन्न होकर भगदत्त को पुनः जीवित कर दिया।

पिता के पश्चात् यह प्राज्योतिषपुर देश का अधिपति हुआ, जिसकी राजधानी प्रागज्योतिष थी। यह देश आधुनिक काल का आसाम प्रांत ही है। इसका किरात, चीन एवं समुद्रतटवर्ती सैनिकों के साथ युद्ध भी हुआ था। यह युद्धशिक्षा में पारंगत था। इसे यवनाधिप भी कहा गया है (म. स. १३.१३-१४)। आसाम प्रांत में हाथी उस समय भी होते थे, अतएव यह गजयुद्ध में बड़ा प्रवीण था।

यह पण्डु राजा का मित्र था (म. स. १३.१४)। यह द्रौपदी के स्वयंवर गया था (म. आ. १७७.१२)। जरासंध का मित्र होने पर भी यह युधिष्ठिर के प्रति पिता की भाँति स्नेह रखता था। यह इन्द्र का मित्र एवं इन्द्र के समान ही पराक्रमी था। राजसूय दिग्विजय के समय अर्जुन के साथ इसका घोर युद्ध हुआ था। अर्जुन की

वीरता से प्रसन्न हो कर, इसने उसकी इच्छा के अनुसार कार्य करने की प्रतिज्ञा की थी, तथा अतुल धनराशि भेंट देकर उसे बिदा किया था (म. स. २३.२७४)

युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में यह यवनों के साथ उपस्थित था, तथा अच्छी जाति के वेगशाली अश्व एवं बहुत सी भेंटसामग्री इसने युधिष्ठिर को दी थी। इसने युधिष्ठिर को बड़ी शान शौकत के साथ हीरे तथा पद्मरागमणि के आभूषण एवं विशुद्ध हाथीदाँत की बनी मूठवाली तलवार भेंट दे कर अपनी आदर भावना प्रकट की थी (म. स. ४७. १४)। भारतीय युद्ध में, चीन तथा किरात सैनिकों के साथ भगदत्त कौरवों के पक्ष में शामील हुआ था (म. उ. १९.१४–१५)

यह युद्धभूमि में बड़ा बलवान् एवं साहसी राजा था। बड़े बड़े योद्धाओं से इसकी लड़ाइयाँ हुयी थी। भारतीय युद्ध में यह कौरवपक्ष में था। यह सेनासहित दुर्योधन की सहायता के लिए आया था (म. उ. १९.१५)। प्रथम दिन के संग्राम में ही इसका एवं विराट का युद्ध हुआ था (म. भीष्म. ४३.४६-४८)। इसने अपने बाहुबल से भीम को भी रणभूमी में मूर्च्छित कर, घटोत्कच को पराजित किया था (म. भी. ६०.४७)।

इसनें दशार्णराज को युद्धभूमि में पराजित किया था, एवं वह इसके द्वारा ही मारा गया (म. भी.; ९१. ४२–४४)। इसने भीमसेन के सारथि विशोक को युद्धभूमि में लडते लडते मूर्च्छित कर दिया था। इसके द्वारा क्षत्रदेव की दाहिनी भुजा का विदारण हुआ था इसके सिवाय सात्यकि एवं द्रुपद के साथ भी इसका घोर संग्राम हुआ, जिसमें गजयुद्ध का कौशल दिखाते हुए, इसने अपने बाणों से सेना को त्रस्त कर दिया था (म. भी. १०७.७–१३)

एकबार कर्ण ने अपने दिग्विजय के समय इसे पराजित किया था (म. व. परि. १.२४.३६)। इसका अर्जुन के साथ कई बार युद्ध हुआ (म. भी. ११२.५६–६०)।

इसका अन्तिम युद्ध भी अर्जुन के साथ हुआ। उस समय यह काफ़ी वृद्ध हो चुका था। बुढापे के कारण बढी हुई श्वेत पल्कों को पट्टे से बाँध कर, यह युद्धभूमि में अर्जुन के साथ डटा रहा। इसने उसके ऊपर वैष्णवास्त्र फेंका, तब अर्जुन ने उस अस्त्र का नाश कर, इसके पल्कों के पट्टे को तोड कर इसका वध किया। यह घटना मार्गशीर्ष वद्य दशमी को हुयी थी (भारत सावित्री)

भगदत्त के कृतप्रज्ञ तथा वज्रदत्त नामक पुत्र थे। कृतप्रज्ञ भारतीय नकुल के द्वारा मारा गया अतएव वज्रदत्त राजगद्दी का अधिकारी बनाया गया (म. अ.४.२९)। अर्जुन का वज्रदत्त से भी युद्ध हुआ था, जिसमें अर्जुन ने उसे जीता था (म. आश्व. ७५.१–२०)।

भगदा—स्कंद की अनुचरी मातृका (म. श. ४५.२६)

भगधर—(सो. ऋक्ष.) एक राजा, जो वायु के अनुसार विद्योपरिचर का पुत्र था (वायु. ९९.२२१)। कई पुराणों में इसके पिता के नाम के लिए 'चैद्योपरिचर' पाठभेद प्राप्त है।

भगनंदा—स्कंद की अनुचरी मातृका (म. श. ४५. ११)। इसके नाम के लिए, 'भंगदा' पाठभेद प्राप्त है।

भगपाद—अत्रिकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

भगवत्—तुषित देवों में से एक।

भगवत् औपमन्यव काराडि:—एक सामवेदी आचार्य, जिसका निर्देश जैमिनिगृह्यसूत्र के अन्तर्गत उपाकर्मांग तर्पण में प्राप्त है (जै. गृ. १.१४)।

भगीरथ—(सू. इ.) सुविख्यात इक्ष्वाकुवंशीय राजा, जो सम्राट दिलीप का पुत्र था। अपने पितरों के उद्धार करने के लिए इसने अनेकानेक प्रयत्न कर गंगा नदी को पृथ्वी पर लाया, एवं इस तरह अपने प्रपितामह असमंजस्, पितामह अंशुमत् एवं पिता दिलीप से चलता आ रहा प्रयत्न सफल किया। इसी कारण आगे चलकर लोगों ने अत्यधिक प्रयत्न के लिए 'भगीरथ' नाम को लाक्षणिक रूप में प्रयुक्त करना आरम्भ किया।

इसके प्रपितामह असमंजस् के पिता सगर के कुल साठ हजार पुत्र थे, जो कपिल ऋषि के शाप के कारण दग्ध हो गये। बाद को कपिल ऋषि ने अंशुमत् तथा दिलीप से उनके मुक्ति का मार्ग बताते हुए कहा 'यदि तुम लोग अपने पितरों का उद्धार ही करना चाहते हो, तो गंगा नदी की आराधना कर उसे पृथ्वी पर आने के लिए प्रार्थना करो, तभी तुम्हारे पूर्वजों का निस्तार सम्भव है'।

अंशुमत् तथा दिलीप ने तप किया, लेकिन वे सफल न हो सके; उनका प्रयत्न अधूरा ही रहा। तब इसने हिमालय पर जा कर गंगा लाने के लिए घोर तप किया। गंगा इससे प्रसन्न हुयी, तथा पृथ्वी पर उतरने के लिए उसने अपनी अनुमति दे दी। अब समस्या थी कि, गंगा के तीव्र प्रवाह को पृथ्वी पर किस प्रकार उतारा जाय; कारण सम्भव था, पृथ्वी उसके वेग गति से बह जाये। इस कार्य के लिए गंगा ने इसे शंकर की सहायता लेने के लिए कहा।

गंगा के कथनानुसार इसने शंकर की आराधना आरम्भ कर दी। पश्चात् शंकर इसकी तपस्या से प्रसन्न हो, गंगा के वेग प्रवाह को जटाओं के द्वारा रोकने के लिए तैयार हो गये।

गंगावतरण—बाद में शंकर ने अपनी जटा के एक बाल को तोड़ कर गंगा को पृथ्वी पर उतारा। गंगा का जो क्षीण प्रवाह सर्वप्रथम पृथ्वी पर आया, उसे ही 'अलकनंदा' कहते हैं। बाद को, गंगा ने वेगरूप धारण कर भगीरथ के कथनानुसार, उसी मार्ग का अनुसरण किया, जिस जिस मार्ग से होता हुआ यह गया। अंत में यह कपिलआश्रम के उस स्थान पर गंगा को ले गया, जहाँ इसके पितर शाप से दग्ध हुए थे। वहाँ गंगा के स्पर्शमात्र से सभी पितर शाप से मुक्ति पाकर हमेशा के लिए उद्धरित हो गये (म. व. १०७; वा. रा. बा. १.४२–४४; भा. ९.९. २–१०; वायु. ४७.३७; ८८.१६८; ब्रह्म. ७८; विष्णु. ४.४.१७)।

गंगा को पृथ्वी पर उतारने का श्रेय इसे ही है। इसी लिये गंगा को इसकी कन्या कहा गया है, तथा इसके नाम पर ही उसे 'भागीरथी' नाम दिया गया है (ह. वं. १.१५–१६; नारद. १.१५; ब्रह्मवै. १.१०)।

पद्म के अनुसार, गंगा आकाश से उतर कर शंकर की जटाओं में ही उलझ कर रह गयी। तब सगर ने शंकर से प्रार्थना कर, उसे पृथ्वी पर छोड़ने के लिए निवेदन किया (पद्म. उ. २१)। भगीरथ से सम्बन्धित गंगावतरण की कथा में, सगर का नाम जो पद्म पुराण में सम्मिलित किया गया है, वह उचित नहीं प्रतीत होता है।

गंगा को पृथ्वी पर लाने के उपरांत यह पूर्ववत् फिर राज्य करने लगा। यह धर्मप्रवृत्तिवाला दानशील राजा था। इसने दान में अपनी हंसी नामक कन्या कौत्स ब्राह्मण को दी थी (म. अनु. १२६.२६–२७) इसने भागीरथी के तट पर अनेकानेक घाट बनवाये थे। न जाने कितने यज्ञ कर ब्राह्मणों को हजारों सालंकृत कन्याएँ, एवं अपार धनराशि दक्षिणा के रूप में देकर उन्हें सन्तुष्ट किया था। इसके यज्ञ की महानता इसी में प्रकट है कि, उसमें देवगण भी उपस्थित होते थे (म. द्रो. परि. १. क्र. ८)। ब्राह्मणों को अनेकानेक गायों का दान देकर इसने अपनी दानशीलता का परिचय दिया था। अकेले कोहल नामक ब्राह्मण को ही इसने एक लाख गायें दान में दी थी, जिसके कारण इसे उत्तमलोक की प्राप्ति हुयी (म. अनु. १३७.२६–२७; २००.२७)। श्रीकृष्ण ने भी इसकी दानशीलता की सराहना की है (म. शां. २९.६३–७०)। महाभारत में दिये गये गोदानमहात्म्य में भी इसका निर्देश प्राप्त है (म. अनु. ७६.२५)।

वैदिक वाङ्मय में निर्दिष्ट 'भगीरथ ऐक्ष्वाक' एवं यह सम्भवतः एक ही व्यक्ति रहे होंगे। भगीरथ के नाभाग (नभ), तथा श्रुत नामक दो पुत्र थे। इसके उपरांत श्रुत गद्दी पर बैठा।

महाभारत में सोलह श्रेष्ठ राजाओं का जो आख्यान नारद ने संजय राजा को सुनाया था, उसमें भगीरथ की कथा सम्मिलित है (म. शां. ५३–६३)।

भगीरथकथा का अन्वयार्थ—आधुनिक विद्वानों के अनुसार, भगीरथ की यह कथा रूपात्मक है। गंगा पहले तिब्बत में पूर्व से उत्तर की ओर बहती थी, जिससे कि, उत्तरी भारत अक्सर आकालग्रस्त हो जाता था। इसके लिये भगीरथ के सभी पूर्वजों ने प्रयत्न किया कि, किसी प्रकार गंगा के प्रवाह को घुमाकर दक्षिणीवाहिनी बनाया जाये। किन्तु वह न सफल हो सके। लेकिन भगीरथ अपने प्रयत्नों में सफल रहा, तथा उसने गंगा की धार मोड़ कर उत्तर भारत को हराभरा प्रदेश बना दिया। सगर के साठ हजार पुत्र सम्भवतः उसकी प्रजा थी, जिसे यह पुत्र के समान ही समझाता था।

२. द्रौपदी के स्वयंवर में उपस्थित एक राजा (म. आ. १७७.१९)।

भगीवसु—वसिष्ठकुलोत्पन्न एक प्रवर। इसके नाम के लिए 'भार्गिवसु' पाठभेद प्राप्त है।

भगेरथ ऐक्ष्वाक—इक्ष्वाकुवंशीय एक राजा (जै. उ. ब्रा. ४.६.१.२)। एकबार इसने यज्ञसमारोह का आयोजन किया, एवं उपस्थित ऋषिमुनियों से पृच्छा की, 'वह ज्ञान कौनसा है, जो जान लेने पर संसार की सारी जानकारी प्राप्त होती है'। इसके इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कुरुपांचालों में से बक दाल्भ्य नामक ऋषि ने कहा, 'गायत्रीमंत्र यह एक ही मंत्र ऐसा है, जिसमें सृष्टि की सारी जानकारी छिपी हुयी है'।

इस निर्देश से प्रतीत होता है कि, इक्ष्वाकुगण के लोग कुरुपांचालों से संबंधित थे। बौद्ध ग्रंथों में उन्हे पूर्वी भारत में रहनेवाले बताया गया है, वह असंभवनीय दिखाई देता है।

भङ्ग—तक्षक कुल का एक नाग, जो जनमेजय के सर्पसत्र में मारा गया (म. आ. ५२.८)। पाठभेद (भांडारकर संहिता)—'डङ्ग'।

भङ्गकार—एक राजा, जो सोमवंशीय कुरु राजा का पौत्र, एवं अविक्षित् राजा का पुत्र था (म. आ. ८९.४६)।

२. (सो. वृष्णि.) यादववंशीय एक राजा, जो मत्स्य के अनुसार शक्तिसेन राजा का, एवं वायु के अनुसार शक्रजित् राजा का पुत्र था। इसकी पत्नी का नाम द्वारवती था (म. आ. २११.११; वायु. ९६.५३-५५)। मत्स्य में इसकी पत्नी का नाम वीरवती दिया गया है (मत्स्य. ४५.१९, ब्रह्मांड. ३.७१.५४-५६)। इसकी निम्नलिखित तीन कन्याएँ थी :— सत्यभामा, व्रतिनी एवं पद्मावती (प्रस्वापिनी, तपस्विनी) (ह. वं. १.३८.४५-४६; मत्स्य ४५.१९-२१)। इसे सभाक्ष एवं नावेय (तारेय) नामक दो पुत्र थे (ह. वं. १.३८.४८; ब्रह्म. १६.४८)। यह रैवतक पर्वत के महोत्सव में उपस्थित था। पाठभेद (भांडारकर संहिता)—'भद्रकाल'।

भङ्गश्रवस्—वैदिक ग्रंथों में निर्दिष्ट एक आचार्य (क. सं. ३८.१२)। इसके नाम के लिए 'भङ्ग्यश्रवस्' पाठभेद प्राप्त हैं।

भङ्गश्विन्—एक राजा, जो शफाल का राजा ऋतुपर्ण का पिता था (बौ. श्रौ. २०.१२)। आपस्तंब श्रौतसूत्र में ऋतुपर्णकयोवधि का 'भंग्याश्विनौ' के रूप में उल्लेख है (आ. श्रौ. २१.२०)। महाभारत में इसे 'भांगासुरि' (भागास्वरि, भांगस्वरि, भांग) कहा गया है (म. स. ८.१५; व. ६८.२; ६९.१०)।

भङ्गास्वन—एक प्राचीन राजर्षि, जो आजन्म इन्द्र का विरोधी रहा (म. अनु. १२.१०)। इसके नाम के लिए 'भाङ्गस्वन' पाठभेद प्राप्त है।

इसे कोई सन्तान न थी, अतएव यह अत्यधिक चिन्तित रहता था। पुत्रप्राप्ति के लिए इसने अग्नि देवता को प्रसन्न करने के लिए 'अग्निष्टोम यज्ञ' किया। उस यज्ञ को देखकर इन्द्र इस पर नाराज हुआ कि, 'यह यज्ञ मेरे अपमान के लिए किया जा रहा हैं, क्योंकि सारे हविर्भाग के प्राप्त करने का अधिकार अग्नि को ही होगा, मुझे नहीं'। अतएव वह इससे बदला लेने का मार्ग ढूंढने लगा। कालान्तर में अग्नि की कृपा से इसे सौ पुत्र हुए।

एक बार यह अपने कुछ सैनिकों के सहित शिकार खेलने गया। वहाँ यह जंगल में भटकता हुआ एक सुन्दर सरोवर के पास आ खड़ा हुआ, तथा फिर उसमें नहाने की इच्छा से उतर पडा। इंद्र नें सुअवसर देख कर बदला लेने की भावना से, इसे एक स्त्री बना दिया (म. अनु. १२. १०)। बाद को जब इसने अपने विचित्र शरीर के परिवर्तन को देखा, तब दुःखी होकर अपने राज्य वापस आया, तथा अपना समस्त राज्यभार पुत्रों को देकर वन चला गया।

वन में जाकर स्त्रीरूपधारणी भङ्गास्वन ने एक तपस्वी से विवाह किया, तथा उससे इसे सौ पुत्रों हुए। कालोपरांत इसने अपने इन पुत्रों को पहलेवाले पुत्रों के पास भेजकर, उन्हें भी राज्य से उचित भाग दिलवाया। इस प्रकार यह इस स्त्रीरूप में भी आनंदपूर्वक जीवन बिताता रहा।

इसके इस सुखी जीवन को देखकर इन्द्र को बड़ा क्रोध आया, क्योंकि उसने इसे यह स्त्रीरूप कष्टमय जीवन बिताने के लिए दिया था, सुख भोगने के लिए नहीं। इन्द्र को एक तरकीब सूझी। वह ब्राह्मणवेष धारण कर इसके पुत्रों के राज्य में गया, जहाँ इसके दो सौ पुत्र भलीप्रकार रहते थे। वहाँ जाकर उसने उनमें ऐसी फुट डाल दी कि, सब आपस में लड़भिड़ कर कट मरे।

यह अपने राज्य गया, तथा पुत्रों की यह दशा देखकर फूट फूट रोने लगा। इन्द्र जो ब्राह्मणवेश में वहीं उपस्थित था, वह भी इसके दुःख को देखकर पसीज उठा।

फिर इन्द्र ने अपने साक्षात् स्वरूप को प्रकट कर इसे दर्शन दिया। इसने उसकी प्रार्थना की, तथा फिर इन्द्र ने प्रसन्न हो कर इसके सभी पुत्रों को पुनः जीवित कर दिया। इन्द्र ने इससे पूँछा, 'यदि तुम पुनः पुरुषयोनि में आना चाहते हो, तो मै तुम्हे पुरुषरूप प्रदान कर सकता हूँ'। किन्तु इसने कहा, 'पुरुष की अपेक्षा स्त्री अधिक मोहक एवं कोमल है, अतएव मै स्त्री ही रहना चाहती हूँ।' इस प्रकार मृत्यु तक भङ्गस्वत स्त्री ही रहा (म. अनु. १२)।

भङ्गचश्रवस्—एक आचार्य (तै. आ. ६.५.२)। यह एवं भङ्गश्रवस् संभवतः एक ही होंगे।

भज—एक आचार्य, जो ब्रह्मांड के अनुसार, व्यास की ऋक्शिष्य परंपरा में से शाकवैण रथीतर ऋषि का शिष्य था (व्यास देखिये)।

भजमान—(सो. क्रोष्टु.) एक यादववंशीय राजा, जो सत्वत राजा का पुत्र था। इसकी माता का नाम कौसल्या था। इसे सात्वत अथवा अन्धक नामक एक भाई था। इसे बाह्यका एवं सृंजया (उपबाह्यका) नामक दो पत्नियाँ थी, जो दोनों ही सृंजय राजा की कन्याएँ थी। उनमें से बाह्यका से इसे शताजित्, सहस्राजित् एवं अयुताजित्; एवं सृंजया से निम्लोचि, वृष्णि एवं किंकिण नामक पुत्र उत्पन्न हुए थे (भा. ९.२४.६-८)। ब्रह्म में बाह्यका से उत्पन्न

इसके पुत्रों का नाम क्रिमि, क्रमण, धृष्ट, शूर, एवं पुरंजय दिये गये हैं, एवं शताजित् आदि पुत्रों को पुत्र सृजया के पुत्र कहा गया है (ब्रह्म. १५.३२-३४).।

२. (सो. क्रोष्टु.) एक यादव राजा, जो सात्वत (अंधक) राजा का पुत्र था।

३. (सो. क्रोष्टु.) एक यादव राजा, जो भागवत के अनुसार विदूरथ राजा का पुत्र था।

भजिन्—(सो. क्रोष्टु.) एक यादव राजा, जो भागवत के अनुसार सात्वत राजा का पुत्र था।

भजेरथ--ऋग्वेद में निर्दिष्ट एक व्यक्तिनाम, जिसका निर्देश अगस्त्य, असमाति एवं इक्ष्वाकु ऋषियों के साथ प्राप्त है। सायण के अनुसार, यह असमाति ऋषि का शत्रु, अथवा वैकल्पिक अर्थ में उसका पूर्वज था। लुड्विग एवं ग्रिफिथ के अनुसार, यह किसी व्यक्तिनाम न हो कर इससे किसी स्थाननाम का आशय है।

भज्य--एक आचार्य, जो व्यास की ऋक्‌शिष्य परंपरा में से बाष्कलि का शिष्य था। बाष्कलि ऋषि ने इसे 'वालखिल्य संहिता' सिखाई थी (भा. १२. ६. ६०)।

भट्टादित्य--सूर्य देवता का नामान्तर। उस देवता को नारदभट्ट ने पृथ्वी पर लाया, इस कारण उसे यह नामान्तर प्राप्त हुआ था (स्कंद. २.४३)।

भद्र—एक दानव, जो कश्यप एवं दनु के पुत्रों में से एक था।

२. एक यक्ष, जो कुबेर का मंत्री था। गौतम ऋषि के शाप के कारण, इसे पशुयोनि प्राप्त होकर यह सिंह बन गया।

३. भद्र गणराज्य में रहनेवाले लोगों का सामुहिक नाम। इन लोगों के क्षत्रिय राजकुमारों नें युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के समय बहुतसा धन उसे अर्पित किया था (म. स. ४८. १३)। इनके नाम के लिए 'मद्र' पाठभेद प्राप्त है। कर्ण ने अपने दिग्विजय के समय इन्हे जीता था (म. व. परि. १.२४.६७)।

४. चेदि देश का एक राजा, जो भारतीय युद्ध में पांडवों के पक्ष में शामिल था। अन्त में कर्ण ने इसका वध किया (म. क. ४०.५०)।

५. तुषित देवों में से एक।

६. उत्तम मन्वन्तर का एक देव

७. वसिष्ठकुलोत्पन्न एक ऋषि, जो इंद्रप्रमति ऋषि का पुत्र था। इसके पुत्र का नाम उपमन्यु था।

८. (सो. अनु.) एक अनुवंशीय राजा, जो भागवत के अनुसार शिवि राजा के पांच पुत्रों में से एक था। इसके नाम के लिए 'भद्रक, एवं 'मद्रक' पाठभेद प्राप्त है।

९. (सो. वसु.) एक राजा, जो भागवत के अनुसार वसुदेव एवं पौरवी के पुत्रों में से एक था।

१०. (सो. वसु.) एक राजा, जो वसुदेव एवं देवकी के पुत्रों में से एक था।

११. श्रीकृष्ण का कालिंदी से उत्पन्न एक पुत्र (भा. १०.६१.१४)।

१२. (शुंग. भविष्य.) एक राजा, जो ब्रह्मांड के अनुसार वसुमित्र राजा का पुत्र था। इसने दो वर्षों तक राज्य किया।

भद्रक--अनुवंशीय भद्र राजा के लिए उपलब्ध पाठभेद (भद्र. ८. देखिये)।

२. (शुंग. भविष्य.) एक राजा, जो भागवत के अनुसार वसुमित्र राजा का पुत्र था।

३. एक आचारभ्रष्ट ब्राह्मण। अपनी सारी आयु इसने पापकर्मों में व्यतीत की। किन्तु संयोगवश इसने प्रयाग में तीन दिन माघस्नान पुण्य संपादन किया।

आगे चल कर, इसकी एवं अवंती के पुण्यश्लोक राजा की मृत्यु एक ही दिन हुयी। वीरसेन राजा नें सोलह अश्वमेधयज्ञ कर काफ़ी पुण्य संपादन किया था। फिर भी इसने किये माघस्नान के पुण्य के कारण, यह एवं वीरसेन दोनों एक ही विमान में बैठकर स्वर्ग चले गये (पद्म. उ. १२८)।

भद्रकल्प—(सो. वसु.) एक राजा, जो वसुदेव एवं रोहिणी का पुत्र था।

भद्रकार—एक राजा, जो जरासंध के भय से अपने भाई एवं सेवकों के सहित दक्षिण दिशा में भाग गया था (म. स. १३.२५)।

२. अविक्षितपुत्र भङ्गकार के लिए उपलब्ध पाठभेद (भङ्गकार देखिये)।

भद्रकाली—स्कंद की अनुचरी एक मातृका (म. श. ४५.११)।

२. देवी दुर्गा का एक नामांतर। दक्षयज्ञ के विध्वंस के समय यह पार्वती के कोप से प्रकट हुयी थी (म. शां. २८४.५३)। अर्जुन ने इस नाम से देवी दुर्गा का स्तवन किया था (म. भी. २३. परि. १ क्र. १)।

भद्रगुप्ति--(सो. वसु.) एक राजा, जो वसुदेव एवं रोहिणी का पुत्र था।

भद्रचारु--श्रीकृष्ण एवं रुक्मिणी का एक पुत्र।

भद्रज--(सो. वसु.) एक राजा, जो वसुदेव एवं रोहिणी के पुत्रों में से एक था।

भद्रतनु--एक दुराचारी ब्राह्मण, जो दान्त की कृपा से विष्णुभक्त बन कर मुक्त हुआ (पद्म. क्रि. १७)।

भद्रदेह--(सो. वसु.) एक राजा, जो विष्णु के अनुसार वसुदेव एवं देवकी के पुत्रों में से एक था।

भद्रबाहु--एक दैत्य, जो हिरण्याक्ष के पक्ष में शामिल था। हिरण्याक्ष ने देवों से किये युद्ध में यह अग्नि के द्वारा दग्ध हो गया (पद्म. सृ. ७५)।

२. (सो. वसु.) एक राजा, जो वसुदेव एवं रोहिणी के पुत्रों में से एक था।

भद्रमति--एक दरिद्री ब्राह्मण। इसे छः पत्नियाँ, एवं दो सौ चवालिस पुत्र थे (नारद. १.११)।

एकबार इसने 'भूमिदान महात्म्य' सुना, जिससे इसे स्वयं भूमिदान करने की इच्छा उत्पन्न हुयी। किन्तु इसके पास भूमि न होने के कारण, इसने कौशांबी नगरी में जा कर वहाँ के राजा से ब्राह्मणों दान देने के लिए भूमि माँगी। इस तरह प्राप्त भूमि इसने ब्राह्मणों को दान में दी। पश्चात् इसने व्यंकटाचल में स्थित पापनाशनतीर्थ में स्नान भी किया। इन पुण्यकर्मों के कारण इसे मुक्ति प्राप्त हो गयी (स्कंद. २.१.२०)।

भद्रमनस्--पुलह की पत्नी, जो कश्यप एवं क्रोधा की नौ कन्याओं में से एक थी। इसके नाम के लिए 'भद्रमना' पाठभेद भी प्राप्त है। देवताओं का हाथी ऐरावत इसका पुत्र था (म. आ. ६९.६८)।

भद्ररथ--(सो. वसु.) एक राजा, जो वायु के अनुसार वसुदेव एवं रोहिणी के पुत्रों में से एक था।

२. (सो. अनु.) एक राजा, जो हर्यंग राजा का पुत्र था।

भद्रवती--परिक्षित (प्रथम) राजा की भार्या, जिसके पुत्र का नाम जनमेजय था (म. आ. ९०.९३)। पाठभेद (भांडारकर संहिता)--'माद्रवती'।

भद्रवाह--एक राजा, जो भागवत के अनुसार वसुदेव एवं पौरवी के पुत्रों में से एक था।

भद्रविप्र--(सो. वसु.) एक राजा, जो वसुदेव एवं रोहिणी के पुत्रों में से एक था।

भद्रविद्--कंस के द्वारा मारे गये वसुदेव एवं देवकी के पुत्रों में से एक।

भद्रशर्मन् कौशिक--एक आचार्य, जो पुष्पयशस् औदव्रजि का शिष्य था। इसके शिष्य का नाम अर्यमभूति था (वं. ब्रा. ३)।

भद्रशाख--स्कंददेव का एक नामान्तर, जो इसे बकरे के समान मुख धारण करने के कारण प्राप्त हुआ था (म. व. २१७.४)।

भद्रश्रवस्--एक ऋषि, जो भद्राश्वखंड में रहनेवाले धर्म ऋषि का पुत्र था। यह हयग्रीव की प्रतिमा की उपासना करता था (भा. ५.१८.१)

भद्रश्रेण्य--(सो. सह.) काशी देश का एक हैहय राजा, जो विष्णु एवं वायु के अनुसार, महिष्मत् राजा का पुत्र था। इसे भद्रसेनक एवं रुद्रश्रेण्य नामान्तर भी प्राप्त थे। दिवोदास राजा ने इसे पराजित कर काशी देश का राज्य इससे जीत लिया। पश्चात् इसने दिवोदास को पराजित किया; किन्तु दिवोदास ने पुनः एक बार इसपर हमला कर, इसका एवं इसके सौ पुत्रों का वध किया। इस आक्रमण में से इसका दुर्दम नामक पुत्र अकेला ही बच सका, जिसने आगे चलकर दिवोदास को पराजित किया (दिवोदास २. देखिये; ह. वं. १.२९.६९-७२; ३२.२७-२८)।

भद्रसार--(मौर्य. भविष्य.) एक मौर्यवंशीय राजा, जो वायु एवं ब्रह्मांड के अनुसार, चंद्रगुप्त राजा का पुत्र था (बिंदुसार २. देखिये)।

२. (सो. वसु.) एक राजा, जो वसुदेव के रोहिणी से उत्पन्न पुत्रों में से एक था।

३. काश्मीर देश का राजा। इसे सुधर्मन् नामक एक पुत्र था, जो तारक नामक प्रधानपुत्र के साथ हमेशा शिव की उपासना करता रहता था। इसने अपने पुत्र को शिवभक्ति से परावृत्त करने का काफी प्रयत्न किया। किन्तु उसका कुछ फायदा न होकर, सुधर्मन् की शिवोपासना बढ़ती ही रही।

एक बार पराशर ऋषि इसके यहाँ अतिथी बनकर आया था। उस समय इसने अपने पुत्र की शिवोपासना एवं विरक्ति की समस्या उसके सामने रख दी। पराशर ने इसकी एवं इसके पुत्र के पूर्वजन्म की कहानी इसे सुनाकर इसे सांत्वना दी, एवं इससे रुद्राभिषेक करवाया। तदोपरान्त अपने पुत्र सुधर्मन् को राजगद्दी पर बिठाकर यह वन में चला गया (स्कंद. ३.३.२०-२१)।

भद्रसेन--(स्वा. प्रिय.) एक राजा, जो ऋषभदेव एवं जयन्ती के पुत्रों में से एक था।

भद्रसेन आजातशत्रव—एक राजा, जिसके नाश के लिए उद्दालक आरुणि नामक ऋषि ने अभिचाररूप (वशीकरण) याग किया था (श. ब्रा. ५.५.१४)।

भद्रसेनक—हैहय राजा भद्रश्रेण्य का नामान्तर (भद्रश्रेण्य देखिये)।

भद्रा--कुबेर की प्रियपत्नी। कुन्ती ने द्रौपदी को दृष्टान्त रूप में इसका वर्णन बताया था (म. आ. १९१.६)।

२. विशालक नामक नरेश की कन्या, जिसका विवाह करुषाधिपति वसुदेव से हुआ था। चेदिराज शिशुपाल ने करुषराजा का वेष धारण कर, माया से इसका अपहरण कर लिया (म. स. ४२.११)।

३. श्रीकृष्ण की भगिनी सुभद्रा का नामांतर (म. आ. २११.१४)।

४. सोम की कन्या, जो अपने समय की सर्वश्रेष्ठ सुंदरी मानी जाती थी। इसने उचथ्य ऋषि को पतिरूप में प्राप्त करने के लिये तीव्र तपस्या की थी। इसकी यह इच्छा जान कर, सोम के पिता अत्रि ऋषि ने उचथ्य को बुला कर, उसके साथ इसका विवाह संपन्न कराया (म. अनु. १५४.१०-१२)।

पश्चात् वरुण ने इसका अपहरण किया, जिस कारण क्रोधित हो कर, इसके पति उचथ्य ने पृथ्वी का सारा जल प्राशन किया। फिर वरुण उसकी शरण में आया, एवं उसने भद्रा को अपने पति के पास लौटा दिया (म. अनु. १५४.२८)।

५. वसुदेव की चार पत्नियों में से एक (भा. ९.२४.२५)। वसुदेव की मृत्योपरांत, यह उसके साथ सती हो गयी (म. मौ. ७.१८; २४)।

६. मेरु की कन्या, जो प्रियव्रत राजा के भद्राश्व नामक पौत्र की पत्नी थी (भा. ५.२.२३)।

७. अत्रि ऋषि की पत्नी (ब्रह्मांड. ३.८.७४-८७)।

८. श्रीकृष्ण की एक पत्नी, जो केकयाधिपति धृष्टकेतु की कन्या थी। इसकी माता का नाम श्रुतकीर्ति था। भागवत में इसे वसुदेव की बहन, एवं श्रीकृष्ण की फफेरी बहन कहा गया है (भा. १०.५८.५६)।

इसे एक कन्या एवं निम्नलिखित दस पुत्र थे:-संग्रामजित्, बृहत्सेन, शूर, प्रहरण, अरिजित, जय, सुभद्र, वाम, आयु एवं सत्यक (भा. १०.६१.१)।

९. पूरुवंशीय परिक्षित् (प्रथम) राजा की पत्नी भद्रवती के लिये उपलब्ध पाठभेद (भद्रवती देखिये)।

भद्रा काक्षीवती—पूरुवंशीय व्युषिताश्व राजा की पत्नी, जो कक्षीवान् राजा की कन्या थी। यह अत्यंत रुपवती थी। पति के मृत्यु के बाद, उसके शव से इसे सात पुत्र पैदा हुए (म. आ. १२०.३३-३६)।

भद्रायु--एक राजा, जो शिव का परम भक्त था। इसे कोढ़ था, जिस कारण इसे जीवित अवस्था में ही मृत्यु की यातना सहनी पडती थी। इसकी पत्नी का नाम कीर्तिमालिनी था।

यह सोलह वर्ष का होने पर, इसके घर ऋषभ नामक शिवावतार अवतीर्ण हुआ। उसने इसे 'राजधर्म' का उपदेश दिया, एवं प्रसाद के रूप में इसके मस्तक में विभूति लगाया। शस्त्र के रूप में, उसने इसे खड्ग एवं शंख दे कर, बारह सहस्र हाथियों का बल इसे प्रदान किया। उस शस्त्रास्त्रों के बल से, यह युद्ध में अजेय बन गया (शिव. शत. ४.२७)।

शिव के ऋषभ अवतार के शिवपुराण में प्राप्त वर्णन से, वह अवतार प्रवृत्तिमार्गीय प्रतीत होता है।

एक बार इसके राज्य में, शिव ने एक व्याघ्र का रूप धारण कर, एक ब्राह्मण के पत्नी का अपहरण किया। फिर इस प्रजाहितदक्ष राजा ने अपनी पत्नी उस ब्राह्मण को दान में दी, एवं यह स्वयं अग्निप्रवेश के लिए सिद्ध हुआ। इसकी इस त्यागवृत्ति से संतुष्ट हो कर, शिव ने इसे अनेकानेक वर प्रदान किये, एवं ब्राह्मण की पत्नी उसे लौटा दी (स्कंद. ३.३.१४)।

अपने पूर्वजन्म में, यह मंदर नामक राजा था, एवं इसकी पत्नी कीर्तिमालिनी उसकी पिंगला नामक पत्नी थी (स्कंद. ३.३.१२; ९.१४)।

भद्रावती--व्युषिताश्व की पत्नी भद्रा का नामांतर।

भद्राश्व—(स्वा. प्रिय.) एक राजा, जो सुविख्यात सम्राट प्रियव्रत् का पौत्र, एवं अग्नीध्र का पुत्र था (म. शां. १४.२४)। इसकी माता का नाम उपचित्ति था। मेरु की कन्या भद्रा इसकी पत्नी थी (भा. ५.२.१९)। इसका पिता अग्नीध्र जंबुद्वीप का सम्राट था। जंबुद्वीप का जो भाग इसे प्राप्त हुआ, वह इसीके नामसे 'भद्राश्ववर्ष' नाम से प्रसिद्ध हुआ (म. भी. ७.११)।

२. (सू. इ.) एक इक्ष्वाकुवंशीय राजा, जो भागवत एवं महाभारत के अनुसार, कुवलाश्व राजा का पुत्र था। पाठभेद (भांडारकर संहिता)—'दृढाश्व'।

३. (सो. नील.) एक राजा, जो मत्स्य के अनुसार, पृथु राजा का पुत्र था। इसे हर्यश्व एवं भर्म्याश्व नामांतर भी प्राप्त थे।

४. (सो. वसु.) एक राजा, जो विष्णु एवं वायु के अनुसार, वसुदेव एवं रोहिणी के पुत्रों में से एक था।

५. (सो. पूरु.) एक राजा, जो मत्स्य के अनुसार अहंवर्च राजा का पुत्र था। इसे रौद्राश्व नामांतर भी प्राप्त था। इसे कुल दस कन्याएं थी, जो प्रभाकर (आत्रेय) ऋषि को विवाह में दी गयी थी।

भद्रेश्वर—मध्यदेश का एक सूर्योपासक राजा। इसके दाहिने हाथ पर यकायक कोढ़ उत्पन्न हुआ, जिससे छुटकारा पाने के लिए, इसने एवं इसके प्रजा ने कठोर सूर्योपासना की। सूर्यप्रसाद से इसका कोढ़ नष्ट हुआ, एवं इसे मुक्ति मिल गयी (पद्म. सृ. ७९)।

भनस्य—(सो.) एक राजा, जो भविष्य के अनुसार प्रवीर राजा का पुत्र था।

भय—एक राक्षस, जो अधर्म के द्वारा उत्पन्न तीन भयंकर राक्षसों में से एक था। इसकी माता का नाम निर्ऋति था। इसके अन्य दो भाइयों का नाम महाभय एवं मृत्यु था। ये तीनों राक्षस सदा पापकर्म में लगे रहते थे (म. आ. ६६.५५)।

२. एक वसु, जो द्रोण एवं अभिमति का पुत्र था (भा. ६.६.११)।

भयंकर—सौवीर देश का राजकुमार, जो जयद्रथ के रथ के पीछे हाथ में ध्वजा ले कर चलता था। यह द्रौपदीहरण के समय जयद्रथ के साथ गया था। भारतीय युद्ध में अर्जुन ने इसका वध किया (म. व. २४९.११–१२; २५५.२७)।

२. एक सनातन विश्वेदेव (म. अनु. ९१.३१)।

भयंकरी—स्कंद की अनुचरी मातृका (म. श. ४५.४)।

भयद आसमात्य—एक राजा, जो संभवतः असमाति राजा का वंशज था (जै. उ. ब्रा. ४. ८. ७)। भयद राजा का निर्देश पुराणों में भी प्राप्त है।

भयमान वार्षागिर—एक राजा, जो सायणाचार्य के अनुसार, एक वैदिक मंत्रद्रष्टा भी था (ऋ. १.१००. १७)।

भया—एक राक्षसी, जो हेति नामक राक्षस की पत्नी थी। इसके पुत्र का नाम विद्युत्केश था (वा. रा. उ. ४.१६)।

भयानक—जालंधर के पक्ष का एक दैत्य (पद्म. उ. ९)।

भर—एक राजा, जो आर्ष्टिषेण नामक राजर्षि का पुत्र था। इसकी माता का नाम जया, एवं पत्नी का नाम सुप्रभा था।

भरणी—प्राचेतस दक्ष की सत्ताईस कन्याओं में से एक, जो सोम को विवाह में दी गयी थी। आकाश में स्थित भरणी नक्षत्र यही है। 'चंद्रव्रत' में, भरणी नक्षत्र को चंद्रमा का सिर मान कर पूजा करने का विधान प्राप्त है (म. अनु. ११०.९)। भरणी नक्षत्र में जो ब्राह्मणों के धेनु का दान करता है, वह इस लोक में बहुतसी गौओं को, तथा परलोक में महान् यश को प्राप्त करता है (म. अनु. ६४.३५)।

भरत—(सो. पूरु.) एक सुविख्यात पूरुवंशीय सम्राट, जो दुष्यन्त राजा का शकुंतला से उत्पन्न पुत्र था (भरत दौःषन्ति देखिये)।

२. (सो. इ.) अयोध्या के दशरथ राजा का पुत्र (भरत 'दाशरथि' देखिये)।

३. (स्वा. नाभि.) एक महायोगी राजर्षि, जो ऋषभ राजा का पुत्र था (भरत 'जड' देखिये)।

४. **एक सुविख्यात मानवसमूह**। ऋग्वेद के तीसरे एवं सातवें मण्डल में सुदास एवं तृत्सुओं के सम्बन्ध में इनका निर्देश प्राप्त है (ऋ. ३.३३.११–१२; ७.३३.६)।

ऋग्वेद में विश्वामित्र को 'भरतों का ऋषभ' अर्थात भरतों में श्रेष्ठ कहा गया है। विपाश् एवं शतुद्री नदियों के संगम के उस पार जाने के लिए विश्वामित्र ने भरतों को मार्ग बताया था (ऋ. ३.३३.११)। ऋग्वेद में अन्यत्र, भरतों की एक पराजय एवं वसिष्ठ की सहायता से उनकी रक्षा होने का स्पष्ट निर्देश प्राप्त है (ऋ. ७.८.४)। ऋग्वेद के छठवें मण्डल में इन्हें दिवोदास राजा का सम्बन्धी बताया गया है (ऋ. ६.१६.४–५)। सम्भव है, सुदास एवं दिवोदास यह दोनों राजा स्वयं भरतगण के थे (ऋ. ६.१६. १९)।

ऋग्वेद में दूसरे स्थान पर भरतगण एवं तृत्सुओं को पूरुओं के शत्रु के रूप में वर्णित किया गया है। इस प्रकार तृत्सुओं तथा भरतों का घनिष्ट सम्बन्ध अवश्य था, चाहे उसका कारण कुछ भी रहा हो। गेल्डनर तृत्सुओं को इनके परिवार का कहता है, तथा ओल्डेनबर्ग भरतों के पारिकारिक गायक वसिष्ठ को ही तृत्सुगण कहता है (वेदिशे. स्टूडियन. २.१३६)। हिलेब्रान्ट तृत्सुओं तथा

भरतों के सम्बन्ध में दो जातियों के मिश्रण का आभास देखता है (वेदिशे माइथॉलोजी १.१११)।

भरतगण का उल्लेख यज्ञकर्ता राजाओं के रूप में कई ग्रन्थों में आया है। शतपथ ब्राह्मण में, अश्वमेध यज्ञ करनेवाले राजा के रूप में 'भरत दौःषन्ति' तथा 'शतानीक सात्रजित' नामक अन्य भरतों का उल्लेख प्राप्त है (श. ब्रा. १३.५.४)। ऐतरेय ब्राह्मण में, दीर्घतमस् मामतेय द्वारा अपना राज्याभिषेक करानेवाले 'भरत दौःषन्ति', तथा सोमशुष्मन् वाजरत्नायन नामक पुरोहित के द्वारा अभिषिक्त हुए 'शतानीक' का विवरण प्राप्त है (ऐ. ब्रा. ८.२३)। इन भरत राजाओं ने काशी के राजाओं को जीत कर, गंगा तथा यमुना के पवित्र तटों पर यज्ञ किये थे (श. ब्रा. १३.५.४; ११.२१)।

महाभारत में कुरु राजवंश के राजाओं को भरतवंशीय ही माना गया है। इससे प्रतीत होता है कि, ब्राह्मण ग्रन्थों के काल तक भरतगण कुरु पांचालजाति में विलीन हो चुके थे (श. ब्रा. १३.५.४)।

ऋग्वेद में एक जगह सुदास एवं दिवोदास, तथा पुरुकुत्स एवं त्रसदस्यु इन दोनों की मित्रता का निर्देश मिलता है। ओल्डेनबर्ग के अनुसार, ये निर्देश भरत, पूरु तथा कुरु राजवंशों के सम्मीलन की निशानी माननी चाहिये (ऋ. १.११२.१४; ७.१९.८)।

ऋग्वेद में 'अग्नि भारत' को भरतों की अग्नि के अर्थ में, तथा 'भारती' का प्रयोग भरतों की देवी के रूप में हुआ है (ऋ. २.७.१; १.२२.१०)।

इस मानववंश में उत्पन्न हुए राजा (जैसे, सुदास एवं दिवोदास) सूर्यवंशी थे अथवा नहीं, यह कहना कठिन है। वायुपुराण में मनु राजा को 'लोगों का पोषण करनेवाला' अर्थ से 'भरत' कहा गया है, एवं उसीके नाम से इस देश तथा यहाँ के निवासियों को 'भारत' नाम प्राप्त होने का निर्देश है (वायु. ४५.७६)।

५. नाट्यशास्त्र का प्रणयन करनेवाला सुविख्यात आचार्य, जिसका 'भारतीयनाट्यशास्त्र' नामक ग्रंथ नाट्यलेखन एवं नाट्यप्रयोगशास्त्र का सर्वप्रथम एवं प्रमाण ग्रंथ माना जाता है।

इसके द्वारा लिखित नाट्यशास्त्र में, 'नंदिभरत संगीत पुस्तकम्' ऐसा निर्देश प्राप्त है, जिससे प्रतीत होता है की, इसका नाम नंदिभरत होगा। नंदिभरत के नाम पर 'अभिनयदर्पण' नामक अभिनयशास्त्र का एक ग्रन्थ, एवं संगीतशास्त्र पर अन्य एक भी उपलब्ध है। विष्णु पुराण में 'गंधर्ववेद' नामक संगीतशास्त्रीय ग्रंथ का भी इसे कर्ता कहा गया है (विष्णु. ३.६.२७)। पिशेल ने अपने नाट्यशास्त्र के जर्मन अनुवाद में 'भरत' शब्द का अर्थ 'अभिनेता' ऐसा किया है, एवं इसे देवों द्वारा अभिनीत नाट्यप्रयोगों का निर्देशक कहा है।

नाट्यप्रयोग में अभिनय करनेवाले अभिनेताओं को मार्गदर्शन करनेवाले 'नटसूत्र' पाणिनिकाल में अस्तित्व में थे (पा. ४.३.११०)। भरत ने इन्ही नटसूत्रों का विस्तार कर, अपने नाट्यशास्त्र की रचना की। इसके ग्रंथ में नाट्याभिनय, नृत्य, संगीत, नाट्यगीत एवं काव्यशास्त्र का विस्तारशः परामर्श लिया गया है।

दुर्भाग्यवश भरत के द्वारा रचित मूल 'नाट्यशास्त्र' आज उपलब्ध नही है। संप्रत उपलब्ध नाट्यशास्त्र का बहुतसारा भाग प्रक्षित है; एवं वह एक ग्रंथकार की नही, बल्की अनेक ग्रंथकारों की रचना प्रतीत होती है। उसमे से कई श्लोक अनुष्टुभ वृत्त में, एवं कई आर्या वृत्त में रचे गये है; एवं कई भाग गद्यमय है।

नाट्यशास्त्र की उत्पत्ति—भरत के नाट्यशास्त्र के कुल ३८ अध्याय है, जिसमे से पहिले एक एवं आखिरी तीन अध्यायों में नाट्यशास्त्र की उत्पत्ति की कथा दी गयी है। उस कथा के अनुसार, एक बार इंद्रादि सारे देव ब्रह्मा के पास गये, एवं उन्होने प्रार्थना की, 'नेत्र एवं कान इन दोनों को तृप्त करे ऐसे कोई कलामाध्यम का निर्माण करने की आप कृपा करे'। देवों की इस प्रार्थना के अनुसार, ब्रह्मा ने 'नाट्यवेद' नामक पाँचवे वेद का निर्माण किया।

'नाट्यवेद' में निर्दिष्ट तत्त्वों के अनुसार निर्माण किये गये प्रथम नाट्यप्रयोग का आयोजन इंद्र ने असुरों पर प्राप्त किये विजय के सम्मानार्थ, भरत मुनि द्वारा इंद्र के राजप्रासाद में किया गया। इस नाट्यप्रयोग का कथाविषय 'देवासुर संग्राम' ही था, जिसे देख कर उपस्थित असुरगण संतप्त हो उठा। उन्होनें अपने राक्षसी माया से नाट्यप्रयोगों में भाग लेनेवाले अभिनेताओं की वाणी, स्मृति एवं अभिनयसामर्थ्य पर पाश डालना शुरु किया, जिससे नाट्यप्रयोग, में बाधा आ गयी।

राक्षसों के इस असंमजस व्यवहार का कारण ब्रह्मा के द्वारा पूछा जाने पर राक्षस कहने लगे, 'भारतमुनि निर्मित नाट्यकृति में राक्षस का चित्रण देवों की अपेक्षा गिरे हुए खलनायक के रूप में किया गया है। यह हमे पसंद नही है'। फिर ब्रह्मा ने जवाब दिया, 'देव एवं असुरों की सुष्टता एवं

दुष्टता दर्शाने के लिये नाट्यवेद का निर्माण मैंने किया है। मानवी जीवन की साकार प्रतिमा दर्शकों के सामने प्रगट करना, इस कला का मुख्य ध्येय है। जीवन के सारे पहलू, यथातथ्य रूप में प्रगट कर, एवं दुनिया के उत्तम, मध्यम एवं नीच व्यक्तियों को दिखा कर, दर्शकों को ज्ञान एवं मनरंजन एकसाथ ही प्रदान करना नाट्यमाध्यम का मुख्य उद्देश्य है। इसी कारण दुनिया का सारा कला-ज्ञान, शास्त्र, धार्मिक विचार एवं यौगिक सामर्थ्य का दर्शन इस कला में तुम्हे प्राप्त होगा'।

नाट्यकला का पृथ्वी पर अगमन—स्वर्ग में स्थित इंद्र प्रासाद में सर्वप्रथम निर्मित भरत की नाट्यकृति पृथ्वी पर कैसी अवतीर्ण हुयी, इसकी कथा भी 'भरत नाट्यशास्त्र में' दी गयी है। इस कथा केअनुसार, इस नाट्यकृति में भाग लेनेवाले अभिनेताओं ने उपस्थित ऋषिओं का व्यंजनापूर्ण हावभावों से उपहास किया, जिस कारण ऋषिओं ने क्रुद्ध होकर नाटयव्यवसायी लोगो को शाप दिया, 'उच्च श्रेणी के कलाकार हो कर भी समाज की दृष्टि से तुम नीच एवं गिरे हुए होकर रहोगे। अपनी स्त्रिया एवं पुत्रों के सहारे तुम्हे जीना पडेगा'।

ऋषिओं के इस शाप के कारण नाटयकला नष्ट न हो, इस हेतु से भरत ने यह कला अपने पुत्र एवं स्वर्ग की अप्सराओं को सिखायी, एवं उन्हे पृथ्वी पर जा कर उसका प्रसार करने के लिए कहा। पृथ्वी पर जाने से पहले ब्रह्मा ने उन्हे वर प्रदान किया, 'तुम्हारी कला सदैव लोगों को प्रिय, अतएव अमर रहेगी'।

मत्स्य के अनुसार, भरतमुनि रचित 'लक्ष्मी स्वयंवर' नामक नाटयकृति में लक्ष्मी की भूमिका करनेवाली उर्वशी अप्सरा से कुछ त्रुटि हो गयी, जिस कारण भरत ने उसे पृथ्वी पर जाने का, एवं पुरुरवस् राजा की पत्नी बनने का शाप दिया (मत्स्य. २४.१-३२)।

भारतीय नाट्यशास्त्र एवं मत्स्य में प्राप्त इन कथाओं से ज्ञात होता है कि, उस समय नाटयकाल आज की भाँति लोकप्रिय थी, एवं जनमानस में उसके प्रति अतीव आकर्षण था।

भारतीय नाट्यशास्त्र—भरतरचित नाटयशास्त्र में नाटयकृति का केवल साहित्यिक दृष्टि से नही, बल्की कला, संगीत, नृत्य, अभिनय आदि सर्वांगीण दृष्टि से विचार किया गया है। उस ग्रन्थ में नाट्यप्रयोग संबंधी निम्नलिखित विषयों का परामर्श लिया गया है:-रंगमंच की रचना, एवं उसके उद्घाटन के लिये आवश्यक धार्मिक विधि (अ. २-३); नृत्य एवं अभिनय में शारीरीक चलनवलन से वसंत, ग्रीष्मादि ऋतु, एवं त्वेष, दुःख हर्षादि भावना कैसी सूचित करे (अ. ४-५); नानाविध रस, भावना, एवं अलंकार आदि का नाट्यकृति में आविष्कार (अ. ६-८, १६); पात्रों की भाषा उनका देश एवं व्यवसाय के अनुसार कैसी बदल देना चाहिये (अ. १७); नाटयकृतिओं के दस प्रकार, एवं उनके वैशिष्टय (अ. १८); नाटयकृति की गतिमानता बढ़ाना (अ. १९); नाटयशैली के विभिन्न प्रकार (अ. २०); देव, दानव, मनुष्यों के पात्रचित्रण के लिये नानाविध वेषभूषा, रंगभूषा आदि (अ. २१); नाटयकृति के नायक, नायिका, खलनायक आदि पात्रों के विभिन्न प्रकार (अ. २२-२४); अभिनेताओं की नियुक्ति एवं शिक्षा (अ. २६, ३५), नाटय-प्रयोग का समय, स्थल एवं प्रसंग की नियुक्ती (अ. २७); नाटयसंगीत एवं नृत्य (अ. २८-३४)।

भरत के नाट्यशास्त्र में, नाट्यकृतिओं के निम्नलिखित दस प्रकार माने गये है:—नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, डीम, व्यायोग, समवकार, वीथी, उत्सृष्टांक एवं इहामृग। अग्निपुराण में भरत नाट्यशास्त्र के काफ़ी उद्धरण लिये गये है (अग्नि. ३३७-३४१)। किंतु वहाँ नाट्यकृतिओं के सत्ताईस प्रकार दिये गये है।

भरत के नाट्यशास्त्र में, निम्नलिखित आठ रसों का विवरण प्राप्त है:—शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, एवं अद्भुत। इस नामावलि में शांतरस का अंतर्भाव नही किया गया है, क्यो कि, वह विदग्ध काव्य का रस माना जाता है।

नाटयकृति का संविधानक (वस्तु, इतिवृत्त), नायक एवं नायिकाओं के विभिन्न प्रकार भी भरत नाट्यशास्त्र में दिये गये है।

विंटरनिट्स के अनुसार, भरत की नाटयकृति में रस, नायक आदि की वर्गीकरणपद्धति अधिकतर ग्रांथिक पद्धति की है, व्यवहारिक उपयोगिता एवं नये विचारों का दिग-दर्शन उसमें कम है।

काल—हरप्रसाद शास्त्री के अनुसार, उपलब्ध नाटय-शास्त्र का काल ई. स. दुसरी शताब्दी माना लेना चाहिये। संभव है, नाटयशास्त्र में अंतर्गत अभिनयसंबंधी कारिका इससे पुरानी हो। देवदत्त भांडारकर के अनुसार, इस ग्रंथ में प्राप्त संगीतसंबंधी अध्याय काफ़ी उत्तरकालीन, अतएव

चौथी शताब्दी का प्रतीत होता है। महाकवि भास के काल में भरत का नाट्यशास्त्र सुविख्यात् ग्रन्थ था। कालिदास को भी भरत एवं उसके नाट्यशास्त्र से काफी परिचय था। 'विक्रमोवर्शीयम्' में भरत नाट्यनिर्देशक के नाते इंद्र के राजप्रासाद में प्रवेश करता हुआ दिखाया गया है, एवं उक्त नाट्यकृति में भरत के 'अष्टरस' संबधी सिद्धांत का विवरण प्राप्त है।

६. मगधाधिपति इंद्रद्युम्न राजा के दरबार एक धर्मज्ञ ऋषि। इंद्रद्युम्न राजा के पत्नी ने इंद्र नामक ब्राह्मण से व्यभिचार किया। पश्चात् राजा के द्वारा प्रार्थना करने पर, इसने इंद्र ब्राह्मण को शाप दे कर उसका नाश किया (यो. वा. ३.९०)।

७. एक अग्नि, जो शंभु नामक अग्नि का द्वितीय पुत्र था। इसे ऊर्ज नामांतर भी प्राप्त था। पौर्णमास याग के समय, इसे सर्व प्रथम हविष्य एवं घी अर्पण किया जाता है (म. व. २०९.५)।

८. एक अग्नि, जो अद्भुत नामक अग्नि का पुत्र था। यह मरे हुए प्राणियों के शव का दाह करता है। इसका अग्निष्टोम में नित्य वास रहता है; अतः इसे 'नियत' भी कहते है (म. व. २१२.७)।

९. एक अग्नि, जो शंभुपुत्र भरत नामक अग्नि का पुत्र था (म. व. २०९.६-७)। इसे पुष्टीमति नामांतर भी प्राप्त था (म. व. २११.१; पुष्टीमति देखिये)।

१०. वाराणसी क्षेत्र में रहनेवाला एक योगी, जिसने गीता के चौथे अध्याय का पाठ कर बदरी (बेर) बनी हुई दो अप्सराओं का उद्धार किया था (पद्म. उ. १७८)।

११. शूद्रवृत्ति से रहनेवाला एक दुराचारी ब्राह्मण। इसके भाई का नाम पुंडरीक था। एक मृत मनुष्य के शव को अग्नि देने का पुण्यकर्म करने के कारण, यह मुक्त हो गया (पद्म. उ. २१८-२१९)।

१२. एक राजा, जो भौत्य मनु के पुत्रों में से एक था।

१३. (सो. तुर्वसु.) करंधमपुत्र मरुत्त राजा का नामांतर (मरुत्त १. देखिये)।

भरत 'जड'--(स्वा. नाभि.) एक महायोगी एवं गुणवान् राजर्षि, जो 'जडभरत' नाम से सुविख्यात हैं। अजनाभवर्ष का राजा नाभि के पुत्र ऋषभदेव को इन्द्र की की कन्या जयन्ती से सौ पुत्र हुए, जिनमें यह ज्येष्ठ था। पहले इस देश का नाम अजनाभ वर्ष था। बाद को इसीके नाम से इस देश का नाम भारतवर्ष हुआ (भा. ५.४.९; वायु. ३३.५२; ब्रह्मांड. २.१४.६२; लिंग. १. ४७.२४; विष्णु. २.१.३२)। वायु के अनुसार, इसके पूर्व इस देश का नाम 'हिमवर्ष' था।

बहुत दिनों तक राज्य करने के उपरांत, इसका पिता राजा ऋषभ इसका राज्याभिषेक कर वन चला गया। पिता के द्वारा राज्यभार सौंप देने के उपरांत, इसने विश्वरूप की कन्या पंचजनी का वरण किया। यह अपने पिता की ही भाँति प्रजापालक, दयालु एवं धार्मिक प्रवृत्ति का राजा था। इसकी प्रजा भी निजधर्म का पालन करती हुयी सुख के साथ जीवन निर्वाह करती थी। इसने यज्ञकर्मों के 'प्रकृति विकृतियो' का पूर्ण ज्ञान संपादित कर, बडे बडे यज्ञों को कर यज्ञपुरुष की आराधना की थी। इस प्रकार भक्तिमार्ग का अवलंबन करता हुआ इसने एक कोटि वर्षों तक राज्य किया। तदोपरांत राज्य को छोड़कर यह तप के लिए पुलहाश्रम चला गया (भा. ५.७.८)।

द्वितीय जन्म--पुलह का आश्रम गंडकी नदी के किनारे बडे सुन्दर स्थान पर बना था। वहीं जाकर यह सूर्यमंत्र का जाप कर तपस्या करने लगा। एक दिन इसने एक गर्भवती हरिणी देखी, जो तृषित होकर श्लथ शरीर बडी जल्दी जल्दी पानी पी रही थी। इतने में सिंहगर्जना से भयत्रस्त होकर वह एकदम भगी। वैसे ही उसके गर्भ में स्थित शावक गिर कर पानी के प्रवाह में वह गया, तथा वह त्रस्तनयनों से देखती कुंजो में विलीन हो गयी। भरत ने शावक को पानी से निकाला, तथा इसे आश्रम ले आया। इस हरीणशावक के प्रति इसकी स्नेह भावना इतनी बढ़ गयी, कि उसी मोह में नित्य होनेवाली दिनचर्या तथा अपनी तपस्या से भी वह उदासीन हो गया। उन्हें चौबीस घन्टे मृगशावक ही याद रहता तथा उसी की ही चिन्ता। यहा तक कि, मृत्यु के समय भी इसे यही चिन्ता थी कि, मेरे बाद इस शावक का क्या होगा? इसी कारण मृत्योपरांत इसे मृगजन्म ही प्राप्त हुआ।

मृगयोनि में इसे अपने पूर्वजन्म का पूर्णज्ञान था। अतएव अपने मातापिता के मोह का परित्याग कर, यह उसी पुलहआश्रम में आकर, शाल वृक्षों की पवित्र छाया में एकाग्रचित्त होकर तपस्या करने लगा। जब इसे पता चला कि इसकी मृत्यु निकट आ गयी है, तब गंडकी नदी के पवित्र जल में गले तक डूबकर इसने अपने मृग शरीर का त्याग किया।

तृतीय जन्म—मृगयोनि के उपरांत, इसने अंगिराकुल के एक सद्गुणसम्पन्न ब्राह्मण की दूसरी पत्नी के गर्भ से जन्म लिया। इस जन्म में इसे 'जड़ भरत' नाम प्राप्त हुआ। इस जन्म में भी इसे अपने पूर्वजन्मों का ज्ञान था, तथा यह भी पता था कि मेरा यह अन्तिम जन्म है। अतः कही फिर जन्म न लेना पडे इस कारण, यह मोहमाया को छोडकर सब से अलग रहने लगा। इसका विचार था, 'यदि मैं किसी से, किसी प्रकार का सम्पर्क सम्बन्ध तथा प्रेमभाव रखूँगा तो लोग भी मुझसे सम्बन्ध बढायेंगे, तथा इसप्रकार मायामोह के बन्धनों में उलझ कर मुझे जन्म मरण के बन्धनों में बार बार बन्धना पड़ेगा'। इसीलिए यह इस प्रकार का आचरण दिखाने लगा कि, लोक इसे मूर्ख, मंदबुद्धि, अंधा तथा बहरा समझे। इसप्रकार कर्मबन्धनों से अलग रहकर, दत्तचित्त होकर यह ब्रह्मचिन्तन मैं सदैव निमग्न रहने लगा।

इसको इस प्रकार उदासीन देखकर भी, इसके पिता ने गृहस्थाश्रम के उपनयनादि सभी संस्कारों को कर के इसे वेदशास्त्रों की शिक्षा आदि का भी ज्ञान कराया। किन्तु यह तो अपने राग में ही मस्त रहा। इसकी यह उदासीनता तथा उपेक्षित भाव देखकर इसके पिता पुत्र दुःख में ही मर गये। इसकी माता भी उसीके साथ सती हो गयी; किन्तु इसमें कोई अन्तर न आया। आगे चलकर, इसके भाइयों ने भी इसे जड़ समझ कर, इसकी पढ़ाईलिखायी बन्द कर, इससे सम्बन्ध तोड़ लिए। यह भी भक्तिभावना में निमग्न कभी बेगारी करता, कभी भिक्षा माँगता, तथा कभी मज़दूरी कर के अपना पेट पालता। एक बार यह वीरासन में बैठा खेत की रक्षा कर रहा था, की राजदूतों ने इसे देखा, तथा पकड़ कर बलि देने के लिए भद्रकाली के मन्दिर ले गये। किन्तु देवी ने इसकी परम प्रतिभा को पहचान कर, इसका संरक्षण कर लिया, एवं उन राजदूतों का नाश किया (भा. ५.९-१०; विष्णु. २.१३-१६)।

एक बार सिंधु-सौवीर देश का राजा रहूगण कपिलाश्रम में ब्रह्मज्ञान का उपदेश सुनने के लिए जा रहा था। जाते जाते वह इक्षुमती के तट पर आ पहुँचा। उसने वहाँ के अधिपति से पालकी ले जाने के लिए कहारों को मँगाने के लिए कहा। पालकी ले जाने के लिए जब कोई दीख न पड़ा, तो बेगार रूप में राजा की पालकी उठाने के लिए इससे कहा गया। यह बिना हिचकिचाहट के तैयार हो गया। पालकी ले जानेवाले सभी कहार तेज चलते थे। किंतु यह राह में धीरे धीरे इस प्रकार कदम रखता, कि कहीं कोई कीड़ामकोडा इसके पैर से कुचल कर मर न जाये। इस प्रकार, इसके धीरे चलने से राजा को पालकी के अंदर झटके लगने लगे। उसने जब इसका कारन पूछा, तब उसे पता चला की, इसमें जडभरत का ही दोष है, अन्य का नहीं।

रहूगण राजा से संवाद—राजा ने पालकी से झाँक कर इसको देखते ही कहा, 'तुम दिखते तो हृष्टपुष्ट हो, किंतु पालकी ले जाने में इतने सुस्त क्यों'? तब जड भरत ने उत्तर दिया, 'मजबूती शरीर की नहीं, आत्मा की होती है, तथा मेरी आत्मा अभी इतनी पुष्ट कहाँ? पश्चात्, इसे तत्त्वज्ञानी समझ कर, राजा पालकी से उतर लिया, एवं उसने इससे आत्मबोध के संबंध में उपदेश ग्रहण कर मुक्ति प्राप्त की। इसने राजा को अपने पूर्वजन्म की घटनाओं के साथ साथ उसे अन्य बातें भी बतायी थी। इस प्रकार उसे ज्ञान प्रदान कर यह बन को चला गया (भा. ५.११-१४; नारद १.४८-४९; विष्णु. २.१३-१६)।

भागवत के अनुसार, इसका इतना महान् चरित्र था, कि अनुकरण करना तो दूर रहा, किसी में इतना सामर्थ्य नहीं कि, वह इस प्रकार के त्यागमय जीवन को अपना ने की बात सोचे, तथा यदि वह सोचे भी, तो यह उसीके प्रकार की बात होगी कि, कोई नीच मक्खी गरुड़ की बराबरी के लिए प्रयत्नशील हो (भा. ५.१४.४२)।

परिवार—ऋषभपुत्र के जन्म में, इसे अपने पंचजनी नामक पत्नी से निम्नलिखित पाँच पुत्र हुए :— सुमति, राष्ट्रभृत्, सुदर्शन, आवरण, एवं धूम्रकेतु। पुलह ऋषि के आश्रम में जाने के पूर्व, इसने अपना संपूर्ण राज्य अपने पुत्रों में बाँट दिया था (भा. ५.७.१-१३)।

भरत 'दाशरथि'—(सू. इ.) अयोध्या के राजा दशरथ का पुत्र। इसकी माता का नाम कैकयी था। कुशध्वज जनक की कन्या मांडवी इसकी पत्नी थी।

जिस समय राम को राज्याभिषेक होनेवाला था, यह शत्रुघ्न के साथ अपने मामा के घर गया था। अयोध्या का राज्य इसे दिलाने के लिए इसकी माँ कैकेयी ने दशरथ से वरदान प्राप्त किया कि, राम को वनवास, तथा भरत को अयोध्या का राज्य दिया जाय। दशरथ कैकेयी के पूर्व वचन-बद्ध थे। वह जब चाहे वरदान प्राप्त कर सकती थी। इसी आधार पर उसने उक्त वरदान ऐसे विचित्र अवसर

पर माँगे कि, दशरथ ने अपनी प्रतिज्ञा तो पूरी की; किन्तु राम के वनगमनोपरांत पुत्रशोक में प्राण त्याग दिया। राम वन चले गये थे, दशरथ भी इस संसार में न रहे, अतएव राज्य की व्यवस्था संभालने के लिए सिद्धार्थ नामक मंत्री से भरत को बुला लाने के लिए भेजा गया।

इधर भरत अपने ननिहाल में नित्यप्रति अनिष्टकारी स्वप्नों को देखने के कारण, अत्यंत दुःखी व चिंतित था। सिद्धार्थ इसे लेने के लिए आया, और बिना कुछ बताये अयोध्या वापस बुला लाया। अयोध्या आकर इसे अपनी माँ के द्वारा सभी समाचार ज्ञात हुए।

कैकयी का षड्यंत्र—राज्यप्राप्ति के लिए, माँ केकैयी द्वारा रचे गये इस षड्यंत्र को देख कर भरत क्रोधाग्नि में पागल हो उठा, और अपनी माँ की कटु आलोचना करते हुए उसकी घोर निर्भर्त्सना की। भरत को अपनी माँ की इस राज्यलिप्सा तथा अधिकार प्राप्ति की भावना से इतना अधिक दुःख हुआ कि, यह वहाँ ठहर न सका, और सीधे कौसल्या से मिलने के लिए उसके महल की ओर चल पड़ा। कौसल्या भी इससे मिलने के लिए विह्वल थी, क्योंकि उसकी धारणा थी कि, शायद यह समस्त जाल भरत की सम्मति से ही बिछाया गया है। भरत के आते ही कौसल्या ने बुरा भला कहते हुए अपने व्यंग बाणों से इसके हृदय को विदीर्ण कर दिया। अन्त में शोक विह्वल भरत को हाथ जोड़ कर शपथ खाकर कहना पड़ा कि, इस जालफरेब से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है, उसका नाम व्यर्थ में जोड़ कर उसे पापी ठहराया गया है।

इसके आने के दूसरे दिन गुरु वसिष्ठ ने राजा दशरथ को क्रियाकर्म करने के लिए कहा। तब भरत ने भी गुरु की आज्ञा मान कर, तेल की कढ़ाई में रक्खे गये दशरथ के सुरक्षित शव को निकाल कर, विधिपूर्वक अग्निहोत्राग्नि देकर, पिता की अन्तिम क्रिया पूरी की (वा. रा. अयो. ७०-७७)।

चौदह दिनोपरांत, जब यह अपने मृत पिता के अंतिम संस्कारों से निवृत्त हुआ, तब राज्याधिकारियों एवं मंत्रियों ने इसे सिंहासन स्वीकार कर के राज्य संचालन की प्रार्थना की। इसने सब को समझाते हुए कहा, 'राज्य का अधिकारी मृत पिता का ज्येष्ठ पुत्र ही हो सकता है, मैं नहीं। राजा होने का अधिकार केवल राम को हीं है, कारण वह हमारे सभी भाइयों में ज्येष्ठ एवं योग्य हैं। हमें चाहिये कि, राम जहाँ कहीं हो हम अपने सम्पूर्ण साज-बाज के साथ वहाँ जाकर राज्यभार उन्हें सौंप कर उनका राज्याभिषेक करें'। भरत के इस आवेशपूर्ण उत्तर को सुनकर वसिष्ठ आदि लोगों ने बहुविध भावों से भरत को समझाया, किन्तु यह अपनी वाणी पर अटल रहा। यहीं नहीं, भरत ने यहाँ तक कह डाला, 'अगर राम वापस नहीं आयेंगे, तो मैने भी निश्चय कर रक्खा है कि, मै राज्य को स्वीकार न करके लक्ष्मण के समान स्वयं वनवासी हो कर, राम की सेवा करते हुए अपने धर्म का निर्वाह करूँगा'। यह कह कर भरत ने राज्याधिकारियों को आज्ञा दी कि, राजपथों को ठीक किया जाये, तथा शीघ्रातिशीघ्र जाने की सभी तैयारियाँ शुरू की जाये।

राम की खोज—राम से मिलने के लिए भरत अपने परिवार, प्रजा, गुरुजनों के साथ अयोध्या से यात्रा के लिए निकल पड़ा। सब से पहला विश्राम, भरत ने गंगा के किनारे श्रृंगवेरपुर के पास किया। वहाँ इसने गुह से भेंट की, तथा राम के संबंध में अनेकानेक सूचनाओं को प्राप्त कर, उसकी ही सहायता से अपने परिवार सहित गंगा को पार कर 'भरद्वाज आश्रम' की ओर चल पड़ा। मार्ग में संपूर्ण परिवार के साथ चैत्रमुहुर्त में यह प्रयाग वन पहुँचा। वहाँ कुछ देर विश्राम करने के उपरांत, कुछ चुने हुए व्यक्तियों को लेकर यह भरद्वाज आश्रम की ओर चल पड़ा, तथा शेष व्यक्तियों से वहीं ठहरने की आज्ञा दी।

भरत जब गुह से मिला था, तो उसे भी इसे देख कर पहले शंका हुयी थी। यही हाल भरद्वाज का भी हुआ। भरत को देखते ही उसके हृदय में यह बात दौड़ गयी कि, कहीं राम का कंटक हमेशा के लिए मार्ग से दूर करने के लिए भरत तो नहीं आया! भरत के मिलते ही भरद्वाज ने स्पष्ट शब्दों में अपनी धारणा प्रकट की। किन्तु भरत के बार बार कहने तथा वसिष्ठ द्वारा विश्वास दिलाये जाने पर, भरद्वाज मुनि को इस पर विश्वास हुआ। उन्होंने इसका तथा इसकी सेना का उत्कृष्ट भोजनादि दे कर आदर सत्कार करते हुए बताया, 'राम इस समय चित्रकूट में निवास कर रहे हैं, और तुम उनसे भेंट कर सकते हो'।

भरत ने भरद्वाज मुनि से कौसल्या तथा के कैकयी का जो परिचय दिया है, वह एक ओर करुणा से ओतप्रोत है तथा दूसरी ओर घृणा, क्रोध एवं आत्मग्लानि से परिपूर्ण है। कौसल्या का परिचय देते हुए भरत ने कहा, 'शोक तथा उपवास से कृश तथा दीनहीन बनी हुयी, मेरे पिता की पटरानी कौसल्या को आप देख रहे हैं। इसीने सिंह के समान पराक्रमी राम को जन्म दिया है'। अपनी माँ को घृणापूर्ण दृष्टि से देखते हुए भरत ने कहा, 'यह क्रोधी, अविचारिणी,

अभिमानिनी, स्वयं को भाग्यशालिनी समझनेवाली, ऐश्वर्यलुब्ध सज्जन के समान दिखनेवाली, परन्तु दुर्जन, दुष्ट, तथा दुर्बुद्धि, मेरी माता कैकेयी है'। भरत ने भरद्वाज आश्रम में एक दिन निवास किया। उसके उपरांत भरद्वाज ने राम की पर्णकुटी की ओर जानेवाले यमुना तट का मार्ग समझाकर आदरपूर्वक इसे बिदा किया (वा. रा. अयो. ९२)।

भरद्वाज के द्वारा निर्देशित मार्ग पर चल कर यह चित्रकूट पहुँचा। भरत के आने की सूचना मिलते ही लक्ष्मण आग बबूला हो उठा; उसे पूर्ण विश्वास हुआ कि भरत ससैन्य राम से युद्ध करने आ रहा है। किन्तु राम के अत्यधिक समझाने पर उसका वह संदेह दूर हुआ।

राम से भेंट—भरत आ कर, अतिविह्वलता के साथ राम से लिपट गया एवं अपने हृदय की समस्त आत्मग्लानि को प्रकट करते हुए बार बार उससे माफी माँगने लगा। इसने राम को घर की सारी परिस्थिति बतलाते हुए आग्रह किया कि, वह अयोध्या चल कर राज्यभार ग्रहण करे। इसके साथ जाबालि तथा वसिष्ठ आदि ने भी बार बार निवेदन किया। किन्तु राम न माने। राम ने पिता के वचनों को सत्य प्रमाणित करने के लिए कहा, 'मुझे पिता की आन प्यारी है। मेरा कर्तव्य है कि मैं पिता की आज्ञा को स्वीकार कर उनके पण की रक्षा करूं। इसलिए मैं न अयोध्या जाउँगा, और न राज्य सिंहासन ही स्वीकार करूँगा'।

राम की यह वाणी सुन कर इसने उनके आश्रम के सामने सत्याग्रह करने की योजना बनायी। किन्तु राम ने कहा कि, यह क्षत्रियों का मार्ग न होकर ब्राह्मणों का मार्ग है; यह तुम्हारे लिये अशोभनीय है। अन्त में भरत को समझाते हुए राम ने कहा—

"लक्ष्मीश्चन्द्रादपेयाद्वा हिमवान् वा हिमं त्यजेत्।
अतीयात् सागरो वेलां न प्रतिज्ञामहं पितुः॥
कामाद्वा तात लोभाद्वा मात्रा तुभ्यमिदं कृतम्।
न तन्मनसि कर्तव्यं वर्तितव्यं च मातृवत्॥"

(वा. रा. अयो. ११२.१८-१९)

अन्त में राम के अत्यधिक समझाये जाने पर इसने उनकी पादुकाओं को ले कर कहा, 'मैं इन पादुकाओं के नाम से चौदह वर्ष तक राज्य चलाऊँगा, तथा जिस प्रकार तुम वन में रह कर जटायें एवं वस्त्र धारण करते हो, उसी प्रकार मैं भी जीवन व्यतीत करूँगा, तथा फलफूलों को खा कर ही अपना जीवन निर्वाह करूँगा। यदि तुम चौदह वर्षों के उपरांत वापस न आये, तो मैं अग्नि में प्रवेश कर, अपना शरीर त्याग दूँगा'। इतना कहकर राम की पादुकाओं को लेकर यह वापस आया।

नन्दिग्राम में—अयोध्या आ कर पादुकाओं को लेकर, यह नन्दिग्राम में वनवासी की भाँति रह कर राज्य करने लगा। इस प्रकार राज्यसंचालन करते समय छत्र-चामर, उपहार सभी चीजें पादुकाओं को ही अर्पित की जाती थी, तथा यह निमित्तमात्र बन कर राम की अमानत समझ कर अयोध्या के राज्य का संचालन करता रहा।

राम के वनवास के चौदह वर्षों तक नन्दिग्राम में रह कर यह राजकाज देखता रहा। अन्त में राम ने हनुमान् के द्वारा अपने आने की सूचना भरत के पास भिजवायी।

जिस समय हनुमान् आया, उसने देखा कि वल्कल तथा कृष्णाजिन धारण करनेवाला, आश्रमवासी, कृश, दीन, जटाधारी, शरीर की पर्वाह न करनेवाला, फलफूल पर जीनेवाला तपस्वी भरत भावनिमग्न बैठा है।

इसे देखते ही हनुमान् ने सश्रद्ध भरत के पास आकर राम के आगमन की सूचना इसे दी। हनुमान् द्वारा रामागमन की सूचना सुनकर भरत अत्यंत प्रसन्न हुआ, एवं अनेकानेक पारितोषिक प्रदान कर इसने उसका आदरसत्कार किया। दिये गये पारितोषिकों में सोलह सुन्दर स्त्रियों के देने का भी उल्लेख प्राप्त है।

बाद में, भरत तथा शत्रुघ्न ने उत्तम प्रकार से नगर का शृंगार कर राम का स्वागत किया, तथा बड़े समारोह से, राम का राज्याभिषेक कर, अपने पास अमानत के रूप में रक्खे हुए अयोध्या के राज्य को राम को वापस दिया। राम ने राज्यभार की स्वीकार कर अपना युवराज लक्ष्मण को बनाने की इच्छा प्रकट की, क्यों कि, राम के उपरांत ज्येष्ठ होने के कारण उसका ही नाम आता है। लेकिन लक्ष्मण के स्वीकार न करने पर, भरत का यौवराज्याभिषेक किया गया (वा. रा. यु. १२५-१२८; पद्म. पा. १-२)।

युद्धप्रसंग—भरत के सम्पूर्ण जीवन में सम्भवतः एक बार ही युद्ध में भाग लेने का अवसर प्राप्त हुआ। राम के राज्यकाल में, भरत के कैकयाधिपति मामा के पास से राम को संदेश मिला, 'मैं गन्धर्वों से घिर गया हूँ तथा आपकी सहायता चाहता हूँ'। अतएव उसको गन्धर्वों से मुक्त करने के लिए राम ने इसके नेतृत्व में अपनी सेना भेजी थी। इस सेना में भरत के दो पुत्र तक्ष तथा पुष्कल भी थे।

भरत ने अपनी सेना के साथ जा कर सिन्धु के दोनों तटों पर स्थित उपजाउ प्रदेश में रहनेवाले गंधर्वों को

पराजित किया, तथा दो नगरो की स्थापना की। एक का नाम 'तक्षशिला' रख कर वहाँ का राज्याधिकारी तक्ष को नियुक्त किया, तथा दूसरी नगरी का नाम 'पुष्कलावत' रख कर वहाँ का राज्य पुष्कल को सौंपा। इस युद्ध को जीतने तथा राज्यादि की स्थापना में भरत को पाँच वर्ष लगे। बाद को यह अयोध्या वापस आया (वा. रा. उ. १०१)।

अन्त में इस महापुरुष ने, राम के उपरांत अयोध्या से डेढ कोस की दूरी पर स्थित 'गोप्रतारतीर्थ' में देहत्याग किया (वा. रा. १०९.११; ११०.२३)।

तुलसीरामायण में—रामचरित-मानस में तुलसीदास जी ने भरत का समस्त रूप—

पुलह गात हिय सिय रघुबीरू,
जीह नामु जप लोचन नीरू,

में प्रकट कर दिया है। 'मानस' में भरत का चरित्र सभी से उज्ज्वल कहा गया है।

'लखन राम सिय कानन बसहीं,
भरत भवन बसि तपि तनु कसहीं
कोउ दिसि समुझि करत सब लोगू,
सब विधि भरत सराहन जोगू'।

तुलसी ने अपनी भक्तिभावना भरत के रूप में ही प्रकट की है। भरत त्याग, तपस्या, कर्तव्य तथा प्रेम के साक्षात् स्वरूप हैं। इसकी चारित्रिक एकनिष्ठा एवं नैतिकता के साथ कवि इतना अधिक एकात्म्य स्थापित कर लेता है, कि स्वयं भरत की प्रेमनिष्ठा कवि की आत्मकथा बन जाती है।

भरत का यह साधु चरित 'पउम चरिउ' (स्वयंभुव) 'भरत-मिलाप' (ईश्वरदास), गीतावली (तुलसीदास), 'साकेत' (मैथिलीशरण गुप्त), एवं 'साकेत–सन्त' (बलदेवप्रसाद मिश्र) आदि प्रसिद्ध हिन्दी काव्यों में भी भारतीय संस्कृति के आदर्श प्रतीक के रूप में चित्रित किया गया है।

भरत दौःषन्ति—(सो. पूरु.) एक सुविख्यात पूरुवंशीय सम्राट, जो दुष्यन्त राजा का शकुन्तला से उत्पन्न पुत्र था (म. आ. ९०. ३३; ८९; १६; वायु. ४५ ८६)। महाभारत में निर्दिष्ट सोलह श्रेष्ठ राजाओं में इसका निर्देश प्राप्त है (म. शां. २९.४०–४५)। इससे भरत राजवंश की उत्पत्ति हुयी, एवं इसीसे शासित होने के कारण इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा (म. आ. २.९६*)।

बचपन में बड़े बड़े दानवों, राक्षसों तथा सिंहों का दमन करने के कारण, कण्वाश्रम के ऋषियों ने इसका नाम सर्वदमन रक्खा था (म. आ. ६८.८)। इसे 'दमन' नामांतर भी प्राप्त था। शतपथ ब्राह्मण में इसे 'सौद्युम्नि' कहा गया है (श. ब्रा. १३.५.४.१०)। कण्व ऋषि के आश्रम में शकुन्तला रहती थी, उस समय सुविख्यात पूरुवंशीय राजा दुष्यन्त ने उससे गान्धर्वविवाह किया था, एवं उसी विवाह से भरत का जन्म हुआ। जब भरत तीन साल का हो गया, तब इसके युवराजाभिषेक के लिए कण्व ऋषि ने शकुन्तला को पुत्र तथा अपने कुछ शिष्यों के साथ प्रतिष्ठान के लिए बिदा किया।

दुष्यन्त ने इसे तथा शकुन्तला को न पहचान कर इसका तिरस्कार किया, एवं शकुन्तला को पत्नीरूप में स्वीकार करने के लिए राजी न हुआ। शकुन्तला ने बहुत कुछ कहा, किन्तु कुछ फायदा न हुआ। ऐसी स्थिति देखकर आकाशवाणी हुयी, 'शकुन्तला तुम्हारी स्त्री एवं भरत तुम्हारा पुत्र है, इन्हें स्वीकार करो'। आकाशवाणी की आज्ञा के अनुसार, दुष्यन्त ने भरत को पुत्र रूप में स्वीकार कर, उसका युवराज्याभिषेक किया।

राज्यपद प्राप्त होने पर भरत ने दीर्घतमस् मामतेय ऋषि को अपना पुरोहित बनाकर गंगा नदी के तट पर चौदह, एवं यमुना नदी के तीर पर तीन सौ अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न कराये। इसी के साथ 'मष्णार' नामक यज्ञ कर्म कर सौ करोड सौ, कृष्णवर्णीय अलंकारो से विभूषित हाथियों को दान में दिया (म. शां. २९.४०–४५)। ऐतरेय ब्राह्मण में, सौ करोड सौ गायें इसके द्वारा दान देने का निर्देश है, एवं इसके अश्वमेधों की संख्या भी विभिन्न रूप में दी गयी है (ऐ. ब्रा. ८.२३)। महाभारत में, इसके द्वारा सरस्वती नदी के तट पर तीन सौ अश्वमेध यज्ञ करने का निर्देश प्राप्त है (म. द्रो. परि. १. क्र. ८. पंक्ति. १४४; शां. २९.४१)।

पश्चात् अपने रथ को तैतीस सौ अश्व जोतकर इसने दिग्विजयसत्र का प्रारंभ किया। दिग्विजय कर, शक, म्लेच्छों तथा दानवों आदि का नाश कर अनेकानेक देवस्त्रियों को कारागृह से मुक्ति दिलाई। इसने अपने राज्य का विस्तार उत्तर दिशा की ओर किया। सरस्वती नदी से लेकर गंगा नदी के बीच का प्रदेश इसने अपने अधिकार में कर लिया था। इसके पिता दुष्यन्त के समय इसके राज्य की राजधानी प्रतिष्ठान थी, किन्तु आगे चल कर इसके राज्य की राजधानी का गौरव हस्तिनापुर को दिया

गया, तथा प्रतिष्ठान नगरी वत्स राज्य में विलीन हो गयी। यही नही, हस्तिनापुर नगर इसके द्वारा बसाया भी गया। बाद को इसके वंश के पाँचवे पुरुष हस्तिन् ने उसे और उन्नतिशील बना कर उसे अपने नाम से प्रसिद्ध किया (वायु. ९९.१६५; मत्स्य. ४९.४२)।

शतपथ ब्राह्मण में श्रेष्ठ सम्राट भरत द्वारा सात्वत राजा का अश्वमेधीय अश्व पकड लेने का निर्देश है (श. ब्रा. ३.५.४.९; २१)। शतपथ ब्राह्मण के इस निर्देश में दुष्यन्तपुत्र भरत एवं दशरथपुत्र भरत के बीच में भ्रान्ति हो गयी है, क्योंकि, सात्वत राजा राम दाशरथि का समकालीन था।

परिवार—इसे कुल चार पत्नियाँ थीं, जिनमें काशिराज सर्वसेन की कन्या सुनन्दा पटरानी थी। इसकी शेष पत्नीयाँ विदर्भ देश की राजकन्याएँ थीं। शादी के उपरांत विदर्भ कुमारियों से भरत को एक एक पुत्र हुए। पर इन तीन रानियों के तीनों पुत्र, पिता की भाँति बल तथा योग्यता में ऐश्वर्यपूर्ण न थे, अतएव उनकी माताओं ने उन्हें मार डाला (ब्रह्म. १३.५८; ह. वं. १.३२; भा. ९. २०.३४)। आगे चल कर एक गहन समस्या आ पड़ी, की भरत का उत्तराधिकारी कोन हो ? ।

पुत्रप्राप्ति के लिए भरत ने अनेकानेक यज्ञ किए, अन्त में मरुतों को प्रसन्न करने के लिए 'मरुत्स्तोम' यज्ञ भी किया। मरुतों ने प्रसन्न होकर बृहस्पति के पुत्र भरद्वाज को इसे पुत्र के रूप मे प्रदान किया। संभव है, यहाँ मरुत् देवता का संकेत न होकर, वैशालिनरेश मरुत्त अभिप्रेत हो (मरुत्त देखिये)।

भरद्वाज पहले ब्राह्मण था, किन्तु इसके पुत्र होने के उपरांत क्षत्रिय कहलाया। दो पिताओं का पुत्र होने के कारण ही भरद्वाज को 'द्वयामुष्यायण' नाम प्राप्त हुआ (भरद्वाज देखिये)। भरत के मृत्योपरान्त भरद्वाज ने अपने पुत्र वितथ को राज्याधिकारी बना कर, वह स्वयं वन में चला गया (मत्स्य. ४९.२७-३४; भा. ९. २०; वायु. ९९.१५२-१५८)।

महाभारत में इसकी पत्नी सुनन्दा से इसे भूमन्यु नामक पुत्र होने का निर्देश प्राप्त है (म. आ. ९०. ३४)। पर वास्तव में भूमन्यु इसका पुत्र न होकर पौत्र (वितथ का पुत्र) था।

भविष्य के अनुसार, इसने पृथ्वी को नानाविध देश-विभागों में बाँट दिया, एवं इसीके कारण इस देश को 'भारतवर्ष' नाम प्राप्त हुआ (भवि. प्रति. १.३)।

भरतवंश—इसके वंश में उत्पन्न सारे पुरुष 'भरत' अथवा 'भारतवंशी' कहलाते है (ब्रह्म. १३.५७; वायु. ९९ १३४)। इसके वंश में पैदा हुए पाँचवे पुरुष हस्तिन् को अजमीढ एवं द्विमीढ नामक दो पुत्र थे। उनमें से अजमीढ ने हस्तिनापुर का पूरुवंश आगे चलाया, एवं द्विमीढ ने आधुनिक बरेली इलाके में अपने स्वतंत्र द्विमीढ वंश की स्थापना की।

अजमीढ की मृत्यु के बाद, उसका पुत्र ऋक्ष हस्तिनापुर का सम्राट बना एवं उसके बाकी दो पुत्र नील एवं बृहदिषु ने उत्तर पांचाल एवं दक्षिण पांचाल के स्वतंत्र राजवंशों की स्थापना की। इस तरह भरतवंश ने शाखाओं में फैलकर, उत्तर भारत के शासन की बागडोर अपने हाथों में ले ली।

भरद्वाज ब्राह्मण था। भरतपुत्र होकर वह क्षत्रिय हुआ, इस प्रकार भरतवंश की एक शाखा क्षत्रियब्राह्मण नाम से प्रसिद्ध हुयी। उस शाखा में उरुक्षय वंश के महर्षि एवं काप्य, सांकृति, शैन्य गार्ग्य आदि क्षत्रियब्राह्मण प्रमुख थे (भरद्वाज देखिये)।

भरती—भरत नामक अग्नि की कन्या।

भरद्वसु—एक ऋषि, जो वसिष्ठकुल का मंत्रकार था।

भरद्वाज—एक सुविख्यात वैदिक सूक्तद्रष्टा, जिसे ऋग्वेद के छठवे मण्डल के अनेक सूक्तों के प्रणयन का श्रेय दिया गया है (ऋ. ६. १५. ३;१६.५; १७.४; ३१ ४)। भरद्वाज तथा भरद्वाजों का स्तोतारूप में भी, उक्त मण्डल में निर्देश कई बार आया है। अथर्ववेद एवं ब्राह्मण ग्रन्थों में भी इसे वैदिक सूक्तद्रष्टा कहा गया है (अ. वे. २.१२.२; ४.२९.५; क. स. १६.९; मै. सं २.७.१९; वा. सं. १३.५५; ऐ. ब्रा. ६.१८.८.३; तै. ब्रा. ३.१०.११. १३. कौ. ब्रा. १५.१; २९.३)।

भरद्वाज ने अपने सूक्तों में बृबु, बृसय एवं पारावतों का निर्देश किया है (ऋ. ८.१०.८)। पायु, रजि, सुमिहूळ साय्य, पेरुक एवं पुरुणीथ शातवनेय इसके निकटवर्ती थे। पुरुपंथ राजा का भरद्वाज के आश्रयदाता के रूप में निर्देश प्राप्त है (ऋ. ९. ६७. १-३; १०.१३७. १; सर्वानुक्रमणी; बृहद्दे. ५.१०२)।

हिलेब्रान्ट के अनुसार, भरद्वाज लोग सृंजयो के साथ भी संबद्ध थे (वेदिशे माइथालोजी- १.१०४)। सांख्यायन श्रौतसूक्त के अनुसार, भरद्वाज ने प्रस्तोक साञ्जय से पारितोषिक प्राप्त किया था (सां. श्रौ. १६.११)। कई विद्वानों के अनुसार, ये सारे लोग मध्य एशिया में स्थित

अर्कोसिया एवं ड्रँजियाना में रहनेवाले थे। किंतु इसके बारे में प्रमाणित रूप से कहना कठिन है।

वेदों का अथांगत्व--तैत्तरीय ब्राह्मण में, भरद्वाज के वेदाध्ययन के बारे में एक कथा दी गयी है। एक बार भरद्वाज ऋषि ने समस्त वेदों का अध्ययन करना आरम्भ किया। किन्तु समय की न्यूनता के कारण यह कार्य पूरा न कर सका, अतएव इसने इन्द्र की तपस्या करना आरंभ किया। इन्द्र को प्रसन्न कर इसने यह वरदान प्राप्त किया कि, यह सौ सौ वर्ष के तीन जन्म प्राप्त करेगा, जिनमें वेदों का सम्पूर्ण ज्ञानग्रहण कर सके।

यह तीन जन्म ले कर वेदों का अध्ययन करता रहा, किन्तु सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त न कर सका। इससे दुःखी होकर यह रुग्णावस्था में चिन्तित पड़ा था कि, इन्द्र ने इसे दर्शन दिया। इसने इन्द्र से वेदों के ज्ञान की पूर्णता प्राप्त के लिए पुनः एक जन्म प्राप्त करने के लिए प्रार्थना की। इन्द्र ने इसे समझाने के लिए समस्त वेदों को तीन भागों में विभाजित कर दिये, जो पर्वताकार रूप में विशाल थे। फिर उनमें से एक ढेर से मुठ्ठी भर वेदज्ञान को उठा कर उसके एक कण को दिखाते हुए इंद्र ने इसे कहा, 'तीन जन्मों में तुमने इतना ज्ञान इतने परिश्रम से प्राप्त किया है, और क्या, तुम इन पर्वताकार रूपी वेदाध्ययन को एक जन्म में प्राप्त वर लोगे? यह असम्भव है। तुम अपनी इस हठ को छोड़कर मेरी शरण में आकर मेरा कहना मानो। सम्पूर्ण वेद ज्ञान प्राप्त करने के लिए तुम 'सावित्राग्निचयन' यज्ञ करो। इसीसे तुम्हारी जिज्ञासा पूर्ण होगी तथा तुम्हे स्वर्ग की प्राप्ति होगी।' इस प्रकार इन्द्र के आदेशानुसार इसने उक्त यज्ञ सम्पन्न करके यह स्वर्ग का अधिकारी बना (तै. ब्रा. ३.१०.९-११)। 'सावित्राग्निचयन' की यही विद्या आगे चलकर अहोरात्राभिमानी देवताओं ने विदेहपति जनक को दी थी।

२. अंगिरसवंशीय सुविख्यात ऋषि, जो बृहस्पति अंगिरस् ऋषि का पुत्र था। यह एवं इसके पिता बृहस्पति दोनों वैशाली देश के रहने वाले थे, जहाँ मरुत्त राजाओं का राज्य था। बृहस्पति का पुत्र होने के कारण इसे 'भरद्वज बार्हस्पत्य,' एवं उशिज का वंशज होने के कारण इसे 'भरद्वाज औशिज' भी कहा जाता है। यह त्रेतायुग के प्रारम्भ काल में हुआ था। बृहस्पति का एक भाई उचथ्य था, जिसकी पत्नी का नाम ममता था। ममता से बृहस्पति द्वारा उत्पन्न पुत्र ही भरद्वाज है।

भरद्वाज के नामकरण के सम्बन्ध में अनेकानेक कथाएँ पुराणों में प्राप्त है, इसका नाम भरद्वाज क्यों पडा? (वायु. ९९.१४०-१५०; मत्स्य ४९.१७-२५; विष्णु. ४.१९.५-७)। किन्तु वे बहुत सी कथाएँ कपोलकल्पित प्रतीत होती है। महाभारत के अनुसार, इसके जन्मोउपरांत बृहस्पति तथा ममता में यह विवाद हुआ कि, इसके संरक्षण का भार कौन ले। दोनों ने एक दूसरे से कहा, 'तुम इसे संभालों (भरद्वाजमिमम्)'। इसी कारण इसका नाम भरद्वाज पड़ा (म. अनु. १४२.३१ कुं.)।

इस प्रकार ममता तथा बृहस्पति का इसके संभालने के सम्बन्ध में विवाद चलता रहा। यह देखकर वैशाली-नरेश मरुत्त ने भरद्वाज का पालनपोषण किया। बृहद्देवता में कहा गया है कि, इसका पालन पोषण मरुत् देवता ने किया (बृहद्दे. ५.१०२-१०३)। किन्तु यह ठीक नही जान पडता। इसका पालनापोषण वैशाली नरेश मरुत्त ने ही किया होगा, क्योंकि बृहस्पति वैशाली देश का राजगुरु था। पुराणों में भी बृहद्देवता की बात दुहरायी गयी है कि, भरद्वाज के मातापिता ने जब इसको त्याग दिया, तब मरुत् देवता ने इसका पालन पोषण किया (भा. ९,२०, विष्णु. ४. १९; मत्स्य. ४९; वायु. ९९. १४०-१५७; ब्रह्मांड. २. ३८)।

वैशाली के पश्चिम में स्थित काशी देश का राजा सुदेवपुत्र दिवोदास था, आगे चल कर यह उसका पुरोहित बना। यह दिवोदास राजा वही है, जिसने वाराणसी नगरी की स्थापना की थी। एक बार हैहयराजा वीतहव्य ने काशी देश पर आक्रमण कर दिवोदास को ऐसा परास्त किया कि, उसे भगा कर भरद्वाज के घर में शरण लेनी पड़ी। बाद में भरद्वाज ने दिवोदास राजा के पुत्रप्राप्ति के लिए एक यज्ञ किया, जिससे प्रतर्दन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ (म. अनु. ३०.३०.)। महाभारत के अनुसार, केवल भरद्वाज ऋषि के ही कारण, आगेचल कर, प्रतर्दन राजा वीतहव्य तथा ऐलों को पराजित कर, अपने पिता की गद्दी को प्राप्त कर काशीनरेश हो सका (म. अनु. ३४.१७)। पंचविंश ब्राह्मण में भी इसी कथा का निर्देश प्राप्त है (पं. ब्रा. १५.३.७; क. सं. २१.१०)।

पुराणों के अनुसार, मरुत्त राजाओं ने भरद्वाज ऋषि को सुविख्यात पूरुवंशीय राजा भरत को पुत्र रूप में प्रदान किया था (वायु. ९९.१५१; मत्स्य. ४९.२६)। वायु एवं मत्स्य के इन कथनों को मान्यता देने के पूर्व हमें यह भी समझना चाहिए कि, यह राजा भरत के एक दो

पीढ़ी पूर्व था। अतएव यह सम्भव है कि, यह स्वयं उसका दत्तक पुत्र न हुआ हो। सम्भव है, इसका पुत्र या पौत्र भरद्वाज विदाथिन् राजा भरत को दत्तक रूप में दिया गया हो (भरद्वाज ३. देखिये)।

ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार, यह लम्बा, क्षीणशरीर एवं गेहुए रंग का था (ऐ. ब्रा. ३४९) यह अत्यंत दीर्घायु तपस्वी एवं विद्वान था (ऐ. आ. १.२.६)। इसका यांज्ञवल्क्य ऋषि से तत्त्वज्ञान के सम्बन्ध में संवाद हुआ था। 'जगत्सृष्टिप्रकार' के सम्बन्ध में इसका एवं भृगु ऋषि से संवाद हुआ था (म. शां. १७५)। इसने धन्वन्तरि को आयुर्वेद सिखाया था (ब्रह्मांड. ३.६७)

यह ब्रह्मा द्वारा किये गये पुष्करक्षेत्र के यज्ञ उपस्थित था (पद्म. सृ. ३४)। सर्पविष से मृत्यु हुए प्रमद्वरा को देख कर रोनेवाले स्थूलकेश ऋषि के परिवार में यह भी एक था (म. आ. ८.२१)।

३. एक सुविख्यात ऋषि, जो पूरुसम्राट भरत को पुत्र के रूप में प्रदान किया गया था। सम्भवतः यह बृहस्पति ऋषि के पुत्र भरद्वाज बार्हस्पत्य का पुत्र या पौत्र था (भरद्वाज २. देखिये)। इसका नाम विदथिन् था, जिसके कारण यह 'भरद्वाज विदथिन्' नाम से सुविख्यात हुआ।

पूरुवंशीय सम्राट भरत के कोई पुत्र न था, इस कारण मरुत्त राजा नें भरत को इसे पुत्र रूप में प्रदान किया। भरद्वाज स्वयं ब्राह्मण था, किन्तु भरत का पुत्र होने के कारण यह क्षत्रिय कहलाया। दो वंशों के पिताओं के पुत्र होने के कारण इसे 'द्व्यामुष्यायण' एवं इसके कुल में उत्पन्न लोगों को 'द्व्यामुष्यायणकौलीन' कहा जाता है। भरत के मृत्योपरांत भरद्वाज ने अपने पुत्र वितथ को राज्याधिकारी ना कर, यह स्वयं वन में चला गया (मत्स्य. ४९.२७-३४; वायु. ९९.१५२-१५८)।

क्योंकि इसका नाम विदाथिन् था, अतएव इसके पुत्र एवं वंश के लोग 'वैदथिन' नाम से सुविख्यात हुए। इसे निम्नलिखित पाँच पुत्र थेः- ऋजिश्वन्, सुहोत्र, शुनहोत्र, नर, गर्ग (सर्वानुक्रमणी ६.५२)। सम्भव है, यह इसके पुत्र न होकर वंशज हो।

४. अंगिराकुलोत्पन्न एक ऋषि, जो विश्वामित्र के पुत्र रैभ्य ऋषि का मित्र था। इसके पुत्र का नाम यवक्रीत था।

रैभ्य ऋषि ने एक कृत्या का निर्माण किया था, जिसने इसके पुत्र यवक्रीत को मार डाला। पुत्रशोक से विह्वल हो कर, यह आग में जल कर मृत होने के लिये तत्पर हुआ, तब रैभ्य ऋषि के पुत्र अर्वावसु ने यवक्रीत को पुनः जीवित किया (म. व. १३५-१३८)। पुत्र को पुनः प्राप्त कर यह प्रसन्न हुआ एवं स्वर्ग चला गया।

५. पूर्व मन्वंतर का एक ब्रह्मर्षि। यह किसी समय गंगाद्वार में रहकर कठोर व्रत का पालन कर रहा था। एक दिन इसे एक विशेष प्रकार के यज्ञ का अनुष्ठान करना था। अतएव अन्य महर्षियों के साथ यह गंगास्नान करने गया। वहाँ पहले से नहा कर वस्त्र बदलती हुयी घृताची अप्सरा को देखकर इसका वीर्य स्खलित हो गया, जिससे इसको श्रुतावती नामक कन्या हुयी (म. श. ४७)। श्रुतावती के लिए भांडारकर संहिता में 'स्रुचावती' पाठभेद भी प्राप्त है।

६. अंगिराकुलोत्पन्न एक ऋषि, जिसका आश्रम गंगाद्वार में था (म. आ. १२१)। उत्तर पांचाल का राजा पृषत इसका मित्र था। गंगाद्वार से चल कर हविर्धान होता हुआ, यह गंगास्नान को जा रहा था। उस समय स्नान कर के निकली हुयी घृताची नामक अप्सरा को उभरती हुई युवावस्था को देखकर इसका अमोघ वीर्य पर्वत की कंदरा में स्खलित हुआ। इसने उस वीर्य को दोनें (द्रोण) में सुरक्षित कर रखा, जिससे इसे द्रोण नामक पुत्र हुआ (म. आ. ५७.८९; १५४.६)।

इसके पुत्र द्रोण एवं पृषत राजा के पुत्र द्रुपद में बाल्यावस्था में बड़ी घनिष्ठता थी, किन्तु आगे चलकर उन दोनों में इतनी कटुता उत्पन्न हो गयी कि, पीढ़ियों तक आपस की दुश्मनी खत्म न हो सकी (द्रुपद एवं द्रोण देखिये)।

बृहस्पति ने इस ऋषि को आग्नेय अस्त्र प्रदान किया था, जो इसने अग्नि के पुत्र अग्निवेश को दिया था (म. आ. १२१.६; १५८.२७)।

७. वाल्मीकि ऋषि का शिष्य, जो प्रयाग में रहता था। जब क्रौंच पक्षियों के जोड़े को देखकर वाल्मिकि के मुख से करुण वाणी काव्य के रूप में प्रस्फुटित हुयी थी, तब यह उपस्थित था (वा. रा. बा. २.७-२१)। ब्रह्मपुराण के अनुसार ऐसा प्रतीत होता है कि, भरद्वाज की पत्नी का नाम सम्भवतः 'पैठिनसी' था। वाल्मीकि ने सर्वप्रथम इसे ही रामायण की कथा बतायी थी (यो. वा. १.२)।

दंडकारण्य जाते समय दाशरथि राम ने इसके दर्शन किये थे, और इसका आतिथ्य स्वीकार किया था। राम के द्वारा रहने के लिए स्थान माँगने पर इसने अपना

आश्रम ही ले लेने के लिए उससे कहा। किन्तु राम ने कहा, 'यहाँ से अयोध्या निकट है,अतएव अयोध्यावासियों से मुझे सदैव अडचने प्राप्त होती रहेंगी'। यह सुनकर, इसने राम के रहने के लिए दस मील दूर पर स्थित चित्रकूट में रहने के लिए व्यवस्था कर दी, तथा उसका मार्ग बता कर बिदा किया (वा. रा. अयो. ५४-५५)।

राम को वापस लाने के लिए जब भरत वन को गया था, तब वह अपने सेना को दूर रखकर, इसके आश्रम आया था। भरत को देखकर भरद्वाज के मन में शंका उठी थी कि, राम को अकेला समझ कर उन्हे मार कर भरत निष्कंटक राज्य तो नहीं करना चाहता। इस सम्बन्ध में इसमें भरत से प्रश्न भी किया था, जिसे सुन कर भरत की आँखों में आसू आ गये थे। भरत के द्वारा दिये गये विश्वास पर इसने उसका ससैन्य आदरसत्कार किया था। उसके खाने पीने तथा ठहरने की इसने सुन्दर व्यवस्था की थी। भरत एक रात इसके यहाँ ठहरा भी था, तथा बडे भावुक भावों में भर कर अपनी माताओं का परिचय इसे दिया था। भरत के द्वारा पूँछे जाने पर, इसने उसे राम के रहने का मार्ग बताते हुए कहा था कि, वह यहाँ से ढाई योजन दूर पर है (वा. रा. अयो ९०.९२)।

रावण का वध कर राम इसके आश्रम आया था, और उसने इससे मुलाकात की थी। इसने राम का स्वागत कर, उसका आदरसत्कार करते हुए वरप्रदान किया था, 'तुम जिस मार्ग से होकर जाओगे उस मार्ग के वृक्षफल वसंत ऋतु के समान होकर फलफूलमय हो जायेंगे' (वा. रा. यु. १२४)।

अश्वमेध यज्ञ के बाद राम पुनः भरद्वाज से मिलने के लिए गौतमी नदी के तट पर स्थित आश्रम में आया था। राम को सारे ऋषियों के साथ आश्रम में अतिथिरूप में आया हुआ देखकर, इसने उन सब का स्वागत कर भोजनादि के लिए प्रार्थना की थी। इसके आश्रम में शंभु ने राम के पूछने पर, श्राद्धनिर्णय, शिवपूजाविधि और भस्ममाहात्म्य की कथा बतायी थी (पद्म. पा. १०५)।

८. एक अग्नि, जो शंयु नामक अग्नि का ज्येष्ठ पुत्र था। धर्म की कन्या सत्या इसकी माता थी। इसकी पत्नी का नाम वीरा था, जिससे इसे वीर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था (म. व. २०९. ९)। यज्ञ में प्रथम आज्यभाग के द्वारा इस भरद्वाज नामक अग्नि की पूजा की जाती है।

सम्भवतः भरद्वाज वर्तमान मन्वंतर के सप्तर्षियों में से एक होगा। प्रतिवर्ष फाल्गुन माह में सूर्य के साथ भ्रमण करनेवाला नक्षत्र भी यही होगा।

९. एक ऋषि, जो शरशय्या पर पडे हुए भीष्म से मिलने गया था (भा. १.९.६)।

१०. एक ऋषि जो, बारहवें या उन्नीसवें युग का व्यास था।

११. एक धर्मशास्त्रकार, जिसके द्वारा श्रौतसूत्र और धर्मसूत्र की रचना की गयी है। इसके द्वारा लिखित श्रौतसूत्र की हस्तलिखित पाण्डुलिपि बम्बई विश्वविद्यालय के ग्रंथालय में उपलब्ध है, जिसमें कुल दस अध्याय (प्रश्न) है, एवं उसमे 'आलेखन' और 'आश्मरथ्य' धर्मशास्त्रकारों का उल्लेख कई बार आया है। इस ग्रंथ में इसका निर्देश 'भरद्वाज' एवं 'भारद्वाज' इन रूपों से आया है।

विश्वरूप एवं अन्य भाष्यकारों के भाष्यों में भरद्वाज के धर्मशास्त्र विषयक सूत्रग्रन्थ का उल्लेख आया है। याज्ञवल्क्य स्मृति पर विश्वरूपद्वारा लिखित भाष्य में भरद्वाज के मतों का उल्लेख किया गया है। उसमें लिखा है कि, गुरुओं को अपने शिष्यों को संध्यावंदन, यज्ञकर्म एवं शुद्ध भाषा सिखानी चाहिये, तथा उन्हें म्लेच्छ भाषा से दूर रहने की शिक्षा देनी चाहिए (याज्ञ. १.१५)। दूसरों को कष्ट देने की बात को सोचना भी पाप है, ऐसा इसका मत था, एवं इस पाप के लिए इसने प्रायश्चित्त भी बताया है (याज्ञ. १.३२)। श्राद्ध के समय किस अनाज का प्रयोग न करना चाहिए, तथा शूद्रस्पर्श के उपरांत स्नान द्वारा अपने को किस तरह शुद्ध करना चाहिए, इसके बारे में भी इसने अपना अभिमत दिया है (याज्ञ. १.१८५; २३६)। घर में जब गृह्याग्नि का संस्कार बन्द हो, तो क्या प्रायश्चित्त लेना चाहिए, इसके विषय में भरद्वाज के मत का उल्लेख अपरार्क ने किया है (अपरार्क. ११५५)।

श्रौतसूत्र एवं धर्मसूत्र के अतिरिक्त, इसके द्वारा लिखित एक स्मृति पद्य में लिखी हुई मानी गयी है, जिसके उद्धरण स्मृतिचंद्रिका एवं हरदत्त में प्राप्त है।

अर्थशास्त्रकार— एक अर्थशास्त्रकार के नाते भरद्वाज का निर्देश कौटिल्यअर्थशास्त्र में सात बार आया है। कौटिल्य अर्थशास्त्र में कणिंक भारद्वाज नामक आचार्य का उल्लेख प्राप्त है, जो सम्भवतः यही होगा (कौटिल्य. ५.५)। कौटिल्य ने इसके जिन मतों का उल्लेख किया है, वह निम्न प्रकार से हैं:-राजा को अपने सहपाठियों में से मंत्रियो का चुनाव करना चाहिए; राजा को राजनैतिक निर्णयों को अपने आप

एकान्त में सोचकर देना चाहिए; जो राजकुमार अपने पिता के प्रति प्रेम एवं मर्यादा का उल्लंघन करता हुआ अवहेलना करता हो, उसको भेदनीति के द्वारा दण्ड देना चाहिए; राजा जिस समय मरणासन्न स्थिति में हो, उस समय मंत्री को चाहिए कि राजकुमारों के बीच कोई न कोई कलह पैदा कर दे; राजसंकट के काल में राजा एवं मंत्रीं में सर्व लोगों ने राजा की सहायता करनी चाहिये, किन्तु व्यवहार में देखा जाता है कि, लोग बलवान का ही पक्ष लेते है। इसका यह अन्तिम अभिमत महाभारत में इन्ही शब्दों में वर्णित है (म. शां. ६७.११)।

महाभारत में इसके एवं राजा शत्रुंजय के बीच हुआ संवाद प्राप्त है, जिसमें साम, दाम, दण्ड, भेद आदि नीतियों में दण्डनीति को श्रेष्ठता दी गयी है (म. शां. १४०)। इसी पर्व में प्रात राज्यशास्त्रकारों की नामावली में इसका नाम भी सन्निहित है (म. शां. ५८.३)।

'यशस्तिलक' नामक राज्यशास्त्रविषयक ग्रन्थ में, भरद्वाज के राजनैतिक अभिमत से सम्बन्धित दो पद्य उद्धरण प्राप्त है, जिससे प्रतीत होता है कि, इसका राज्यविषयक ग्रन्थ पद्यरूप में १० वी शताब्दी में प्राप्त था।

भरद्वाज के व्यवहारविषयक मतों का उल्लेख कई ग्रन्थों में प्राप्त है। मुकदमे गवाही देने के पूर्व व्यक्तियों द्वारा लिए गये शपथ के इसने चार प्रकार बताये हैं (पराशर माधवीय २.२३१)। किन्ही दो व्यक्तियों के बीच हुए समझौता, विनिमय एवं बँटवारे को खारिज करना हो, तो उसकी अवधि नौ दिन की बताई गयी है, किन्तु यदि उसमें किसी प्रकार के कानूनी झगडे हो, तो उसकी अवधि नौ साल तक हो सकती है (सरस्वतीविलास. पृ. ३१४; ३२०)। इन उद्धरणों से यह सिद्ध है, कि इसका व्यवहारविषयक ग्रन्थ राजशास्त्रविषयक ग्रन्थ से अलग है।

अन्य ग्रंथ--१ **भरद्वाजसंहिता**--पंचरात्र सांप्रदाय के इस ग्रंथ में कुल चार अध्याय हैं; २. **भरद्वाजस्मृति**, जिसका निर्देश पद्म में प्राप्त है, एवं जिसके उद्धरण हेमाद्रि, विज्ञानेश्वर, बालंभट्ट आदि ग्रंथकारों के द्वारा लिये गये है; ३. **वास्तुतत्त्व**; ४. **वेदपादस्तोत्र** (C.C.)।

१२. (सू. इ. भविष्य.) एक राजा, जो वायु के अनुसार, अमित्रजित् राजा का पुत्र था।

भरद्वाजि--अंगिराकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

भरुक--(सू. इ.) एक इक्ष्वाकुवंशीय राजा, जो भागवत, विष्णु एवं वायु के अनुसार, विजय राजा का पुत्र था। इसके नाम के लिये 'रुचक' एवं 'रुरुक' पाठभेद प्राप्त हैं।

भर्ग--एक रुद्र, जो एकादश रुद्रों में से अंतिम था। यह शिव नामांतर भी है।

२. (सो. तुर्वसु.) एक राजा, जो भागवत के अनुसार, वह्नि राजा का पुत्र था। इसके पुत्र का नाम भानुमत् था।

३. (सो. काश्य.) काशी देश का एक राजा, जो भागवत के अनुसार, वीतिहोत्र राजा का पुत्र था। इसके नाम के लिये 'भार्ग' एवं 'गार्ग्य' पाठभेद प्राप्त हैं। इसके पुत्र का नाम भर्गभूमि था।

भर्ग प्रागाथ--एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. ८.६०-६१)।

भर्गभूमि--(सो. काश्य.) काशी देश का एक राजा, जो भागवत के अनुसार भर्ग राजा का पुत्र था।

भर्तृहरि--एक सुविख्यात संस्कृत व्याकरणकार, जो पतंजलि के 'व्याकरणमहाभाष्य' का सर्वाधिक प्राचीन एवं प्रामाणिक टीकाकार माना जाता है। महाभाष्य पर लिखी हुअी इसकी टीका का नाम 'महाभाष्यप्रदीप' है।

पुण्यराज के अनुसार, भर्तृहरि के गुरु का नाम वसुरात था। चिनी प्रवासी इत्सिंग के अनुसार, यह बौद्धधर्मीय था, एवं इसने सात बार प्रव्रज्या ग्रहण की थी (इत्सिंग पृ. २७४)। किंतु मीमांसकजी के अनुसार, यह वैदिकधर्मीय ही था (संस्कृत व्याकरण का इतिहास--पृ. २५७)।

वाक्यपदीय--संस्कृत भाषा में अंतर्गत शब्दों का संपूर्ण विवेचन पाणिनि एवं पतंजलि नें अपने व्याकरण ग्रंथो के द्वारा किया। किंतु उन्ही शब्दों को ब्रह्मस्वरूप मान कर, तत्वज्ञान की दृष्टि से व्याकरणशास्त्र का अध्ययन करने का महनीय कार्य भर्तृहरि ने अपने 'वाक्यपदीय' नामक ग्रंथ के द्वारा किया। इस ग्रंथ के निम्नलिखित तीन कांड है:--ब्रह्मकांड, वाक्यकांड, प्रकीर्णकांड।

मीमांसा, सांख्य, योग आदि दर्शनों का निर्माण होने के पश्चात्, व्याकरणशास्त्र एक अनुपयुक्त शास्त्र कहलाने लगे। किंतु शब्दों के अर्थ का ज्ञान प्राप्त होने पर, शब्दब्रह्म की प्राप्ति होती हैं, ऐसा नया सिद्धान्त भर्तृहरि ने प्रस्थापित किया, एवं इस प्रकार व्याकरणशास्त्र का पुनरुत्थान किया।

व्याडि का संग्रहग्रंथ नष्ट होने पर, पाणिनीय व्याकरणशास्त्र विनष्ट होने का संकट निर्माण हुआ; उसी संकट से

व्याकरणशास्त्र को बचाने के लिये 'वाक्यपदीय' ग्रंथ की रचना की गयी है, ऐसा निर्देश उस ग्रंथ के द्वितीय कांड में प्राप्त है।

ग्रंथ--१. महाभाष्यदीपिका; २. वाक्यपदीय; ३. वाक्यपदीय के पहले दो कांडो पर 'स्वोपज्ञटीका'; ४. वेदान्तसूत्रवृत्ति; ५. मीमांसासूत्रवृत्ति।

२. एक व्याकरणकार, जो संस्कृत व्याकरणशास्त्र को काव्य के रूप में प्रस्तुत करनेवाले 'भट्टिकाव्य' का रचयिता था। इसने 'भागवृत्ति' नामक अन्य एक ग्रंथ भी लिखा था।

३. एक राजा, जो शृंगार, नीति एवं वैराग्य नामक 'शतकत्रयी' ग्रंथ का रचयिता था।

भर्त्स्य--कश्यपकुलोत्पन्न गोत्रकार ऋषिगण।

भर्म्याश्व--(सो. नील.) पांचाल देश का सुविख्यात राजा, जो अर्क राजा का पुत्र था। इसे मुद्गल आदि पाँच अत्यंत पराक्रमी पुत्र थे, जिन्हे देखकर यह हमेशा कहा करता था, 'मेरे राज्य के संरक्षण के लिये मेरे पाँच पुत्र ही केवल काफी ('पंच अलम्') है।'

इस कारण इसके इन पुत्रों को 'पंचाल' सामुहिक नाम प्राप्त हुआ, जिससे आगे चलकर इसका देश ही 'पंचाल' नाम से प्रसिद्ध हुआ (पंचाल देखिये; भा. ९.२१. ३१-३२)।

भलंदक--(सू. दिष्ट.) भलंदन राजा के लिये उपलब्ध पाठभेद (भलंदन २. देखिये)।

भलंदन--अत्रिकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

२. (सू. दिष्ट.) एक राजा, जो जन्म से तो ब्राह्मण था, किंतु नीच वाणिज्यकर्म करने के कारण वैश्य बन गया था (मार्क. ११३. ३; ब्रह्म. ७.२६; विष्णु. ४.१.१५; भा. ९.२.२३)।

भागवत, विष्णु एवं वायु के अनुसार, यह नाभाग राजा का पुत्र था, एवं इसके पुत्र का नाम वत्सप्रीति था। मत्स्य में इसके नाम के लिये 'भलंदक' पाठभेद प्राप्त है। मत्स्य एवं ब्रह्मांड में, इसे वैश्य जाति का मंत्रद्रष्टा ऋषि कहा गया है (मत्स्य. १४५.११६; ब्रह्मांड. २. ३२. १२१); किंतु प्रतीत होता है कि, यह पुनः ब्राह्मण हुआ था (ब्रह्म. ७.४२)।

भलानस्--ऋग्वेद में निर्दिष्ट एक जातिसंघ, जो दाशराज्ञ युद्ध में सुदास के शत्रुपक्ष में शामिल था। पक्थ, अलिन, विषाणिन एवं शिव जातियों के समवेत इनका निर्देश ऋग्वेद में आता है (ऋ. ७. १८.७)।

त्सिमर के अनुसार, इनमें एवं आधुनिक बोलन दर्रे में काफी नामसादृश्य है, जिससे प्रतीत होता है कि, इनका मूल निवासस्थान पूर्वी बलुचिस्तान था (त्सिमर-अल्टिन्डिशे लेबेन, १२६)।

भल्लविन्--लांगली भीम नामक शिवावतार का शिष्य।

भल्लाट--(सो. पूरु.) एक पुरुवंशीय राजा, जो मत्स्य के अनुसार विश्वक्सेन का, एवं वायु के अनुसार, उदक्सेन राजा का पुत्र था। भागवत में इसके लिये 'भल्लाद' पाठभेद प्राप्त है।

भल्लि--बिल्वि नामक भृगुकुल के गोत्रकार के लिये उपलब्ध पाठभेद (बिल्वि देखिये)।

२. (सो. कुकुर.) यादव राजा नल का नामांतर (नल ४. देखिये)। यह विलोमन् राजा का पुत्र था, एवं इसके पुत्र का नाम अभिजित् था। इसे 'नंदनोदर-दुंदुभि' अथवा 'चंदनोदकदुंदुभि' नामांतर भी प्राप्त है

३. एक यादव, जो वसुदेव एवं रथराजी का पुत्र है।

४. रौच्य मनु के पुत्रों में से एक।

भव--कश्यप एवं सुरभि के पुत्रों में से एक। इसके नाम के लिये 'भल' पाठभेद प्राप्त है।

२. ग्यारह रुद्रों में से एक, जो ब्रह्मा का पौत्र एवं स्थाणु का पुत्र था (म. आ. ६०.१-३)।

३. एक सनातन विश्वेदेव (म. अनु. ९१.३५)।

भवत्रात शायस्थि--एक आचार्य, जो कुस्तुक शार्कराक्ष्य नामक आचार्य का शिष्य था। इसके शिष्य का नाम बृहस्पतिगुप्त शायस्थि था (वं. ब्रा. १)।

भवद्--(सो.) एक राजा, जो भविष्य के अनुसार, मनस्यु राजा का पुत्र था।

भवदा--स्कंद की अनुचरी एक मातृका (म. श. ४५.१३)।

भवनन्दि--कश्यपकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

भवन्मन्यु--(सो. पूरु.) एक पूरुवंशीय राजा, जो विष्णु के अनुसार, वितथ राजा का पुत्र था। इसके नाम के लिये 'मन्यु' पाठभेद भी प्राप्त है (भा. ९.२१.१)। इसे निम्नलिखित पाँच पुत्र थेः—बृहत्क्षत्र, नर, गर्ग, महावीर्य एवं जय (विष्णु. ४.१९.९)।

भव्य--रैवतमन्वतर का एक देवगण, जिसमें निम्न-लिखित आठ देव शामिल थे:—परिमति, प्रियनिश्चय, मति, मन, विचेतस्, विजय, सुजय एवं स्योद (ब्रह्मांड. २.३६.७१-७२)।

२. चाक्षुष मन्वंतर का एक देव।

३. (स्वा. उत्तान.) उत्तानपादवंशीय एक राजा, जो ध्रुव राजा का पुत्र था। इसकी माता का नाम भूमि था।

४. दक्षसावर्णि मन्वंतर के सप्तर्षियों में से एक।

भस्मासुर--एक असुर, जो शिव के विभूति में स्थित एक कंकड़ से उत्पन्न हुआ था। मराठी भाषा मे लिखित 'शिवलीलामृत' में केवल इसकी कथा प्राप्त है। संस्कृत पुराणों में कही भी इसकी कथा नही दी गयी है; किंतु उन पुराणों में प्राप्त कालपृष्ठ एवं वृक नामक असुरों के कथा से इसकी कथा काफी मिलती जुलती है (कालपृष्ठ, एवं वृक देखिये)।

यह शिव का परमभक्त था, जिस कारण उसने इसे वर दिया था कि, जिसके सर पर यह हाथ रखेंगा, वह तत्काल दग्ध हो कर भस्म हो जायेगा। शिव के इस वर के कारण, यह सारे लोगों को अत्यधिक त्रस्त करने लगा। फिर इसे विनष्ट करने के लिए, श्रीविष्णु ने मोहिनी का अवतार लिया। 'मुक्तनृत्य' की एक मुद्रा में, अपना हाथ अपने ही सर पर रखने के लिए इसे विवश कर, मोहिनी ने इसका वध किया (शिवलीला. १२)।

भागलि--एक गृह्यसूत्रकार, जिसके मतों के उद्धरण कौषीतकी गृह्यसूत्र में प्राप्त है। शान्त्युदक करते समय कौनसे मंत्र का उच्चारण करना चाहिये, इस विषय में इसके मत प्राप्त है (कौ. गृ. ९.१०)। इसका यह भी अभिमत था कि, मधुपर्क करते समय गाय का उपयोग नही करना चाहिये (कौ. गृ. १७.२७)।

भागवत--(शुंग. भविष्य.) एक शुंगवंशीय राजा, जो वायु के अनुसार विक्रमित्र राजा का, एवं अन्य पुराणों के अनुसार, वज्रमित्र का पुत्र था। मत्स्य में इसके नाम के लिए 'समाभाग' पाठभेद प्राप्त है।

भागवित्तायन--वसिष्ठकुलोत्पन्न गोत्रकार ऋषिगण। इसके नाम के लिए 'भागवित्रासन' पाठभेद प्राप्त है।

भागवित्ति--एक आचार्य, जो वायु के अनुसार, व्यास की सामशिष्यपरंपरा में से कुथुमि ऋषि का शिष्य था। ब्रह्मांड में इसके नाम के लिए 'नामवित्ति' पाठभेद प्राप्त है।

२. बृहदारण्यक उपनिषद में निर्दिष्ट 'चूड' अथवा 'चूल' नामक आचार्य का पैतृक नाम (बृ. उ. ६.३; १७.८. माध्यं; ६.३.९-१० काण्व.)।

३. भृगुकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

भागवित्रासन--भागवित्तायन नामक ऋषिगण के नाम के लिए उपलब्ध पाठभेद (भागवित्तायन देखिये)।

भागस्वरि--दशार्ण देश के राजा ऋतुपर्ण का नामांतर (भांगासुरि देखिये)।

भागान्य--एक क्षत्रिय, जो तप के फलस्वरूप ब्राह्मण एवं ऋषि बना था (वायु. ९१.११६)।

भागिल--भृगुकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

भागुरि--सुविख्यात व्याकरणकार, कोशकार, ज्योतिषशास्त्रज्ञ एवं स्मृतिकार। उन विभिन्न विषयों पर इसके नाम पर अनेकानेक ग्रंथ उपलब्ध हैं, किंतु इन सब ग्रंथो का प्रवक्ता एक ही भागुरि है या भिन्न भिन्न, यह अज्ञात है।

संभवतः 'भागुरि' इसका पैतृक नाम था, एवं इसके पिता का नाम 'भगुर' था। पतंजलि के व्याकरण महाभाष्य में, लोकायतशास्त्र पर व्याख्या लिखनेवाली भागुरी नामक किसी स्त्री का निर्देश प्राप्त है (महा. ७.३.४५)। संभव हैं, वह स्त्री आचार्य भागुरि की बहन हो। इसके गुरु का नाम बृहद्गर्ग था। मेरु पर्वत का आकार चतुष्कोनयुक्त है, ऐसा इसका मत वायु में उद्धृत किया गया हैं (वायु. ३४.६२)।

व्याकरणशास्त्रकार--यद्यपि पाणिनि के 'अष्टाध्यायी' में भागुरि का निर्देष अप्राप्य है, तथापि अन्य व्याकरण ग्रंथों में भागुरि के काफी उद्धरण लिये गये है। इन उद्धरणों से प्रतीत होता हैं कि, इसका व्याकरण भलीप्रकार परिष्कृत एवं श्लोकबद्ध था, एवं वह पाणिनीय व्याकरण से कुछ विस्तृत था।

भागुरि का यह अभिमत था कि, जिन शब्दों का प्रारंभ 'अपि' अथवा 'अव' उपसर्ग से होता हैं; वहाँ 'अ' का लोप होता हैं (जैसे कि, अवगाह = वगाह, अपिधान = पिधान)। इसका यह भी सिद्धान्त था कि, हलन्त शब्दों की प्रक्रिया में हलन्त का लोप हो कर 'आ' प्रत्यय लगाया जाता है (जैसे कि, वाक् = वाचा दिश् = दिशा)।

भागुरि के व्याकरणविषयक कुछ और उद्धरण जगदीश तर्कालंकार ने अपने 'शब्दशक्तिप्रकाशिका' में उद्धृत किये है।

कोशकार--पुरुषोत्तमदेव की 'भाषावृत्ति,' एवं सृष्टिधरकृत 'भाषावृत्ति टीका' से प्रतीत होता है कि, भागुरि के द्वारा 'त्रिकाण्डकोश' नामक एक शब्दकोश की रचना की गयी थी। इसका यह कोश आज भी उपलब्ध हैं

एवं क्षीरस्वामिन्, हलायुध, महेश्वर, हेमचंद्र, केशव, महीप, मेदिनीकार, राममुक्त एवं मल्लीनाथ आदि शब्द-कोशकारों नें इसके वचन उद्धृत किये है। 'माधवीयधातु वृत्ति,' एवं 'अमरकोश' की अनेकानेक टीकाग्रंथों में इसके मतों के उद्धरण प्राप्त हैं।

ज्योतिषशास्त्रकार—भागुरि के ज्योतिषशास्त्रविषयक मतों का निर्देश वराहमिहिर कृत 'बृहत्संहिता', भोज कृत 'राजमार्तंड', एवं 'गर्गसंहिता' आदि ग्रंथों में प्राप्त हैं (बृहत्सं. ४८.२)।

स्मृतिकार—भागुरि के स्मृतिविषयक मतों का निर्देश 'विवादरत्नाकर' नामक ग्रंथ में कमलाकर नामक एक स्मृतिकार ने किया प्राप्त है। इसकी स्मृति को 'वागुरि-स्मृति' नामांतर भी प्राप्त है।

साम एवं यजुःशाखाओं का आचार्य—'प्रपंचहृदय' 'जैमिनीय गृह्यसूत्र टीका' आदि ग्रंथों में भागुरि को सामशाखा का, एवं लौगाक्षिगृह्यसूत्र की टीका में इसे यजुःशाखा का आचार्य कहा गया है। इससे प्रतीत होता है कि, इन दोनों शाखाओं के संबंध में कुछ ग्रंथरचना इसने की थी।

अलंकारशास्त्रज्ञ—सोमेश्वर कवि के 'साहित्यकल्पद्रुम' में, एवं अभिनवगुप्त के 'ध्वन्यालोक' में भागुरि के द्वारा लिखित 'अलंकारशास्त्र' ग्रंथ के कुछ उद्धरण प्राप्त है।

सांख्यदर्शनकार—दयानंद सरस्वती कृत 'सत्यार्थ-प्रकाश' में, एवं 'संस्कारविधि' नामक ग्रंथ में, भागुरि के द्वारा विरचित 'सांख्यदर्शनभाष्य' का निर्देश प्राप्त है।

दैवतशास्त्रज्ञ—शौनक कृत 'बृहद्देवता' में भागुरि के देवताविषयक मतों के अनेक उद्धरण प्राप्त है, जिनसे प्रतीत होता है कि, इसने दैवतशास्त्रविषयक कोई 'अनुक्रमणिका' ग्रंथ अवश्य लिखा होगा।

२. एक ऋषि, जो युधिष्ठिर के अश्वमेध यज्ञ का सदस्य था (जै. अ. ६३; जै. गृ. १.१४)

भाङ्गास्वन—भङ्गस्वन नामक राजर्षि का नामांतर (भङ्गास्वन देखिये)।

भाङ्गसुरि—दशार्ण देश के ऋतुपर्ण राजा का नामांतर। इसके नाम के लिए 'भागस्वरि' पाठभेद भी प्राप्त है (म. स. ८))।

भाजिर—भौत्य मन्वंतर का एक देव। इसके नाम के लिए 'भ्राजिर' पाठभेद प्राप्त है।

भाडितायन—शाकदास नामक आचार्य का पैतृक नाम।

भाण्डायनि—एक ऋषि, जो इंद्र की सभा में उपस्थित हो कर इंद्र की उपासना करता था (म. स. ७.१०)। पाठभेद (भांडारकर संहिता)—'शाट्यायन'।

भात—(आंध्र. भविष्य.) एक आंध्रवंशीय राजा, जो वायु के अनुसार सिंधुक राजा का पुत्र था। संभवतः यह आंध्रवंशीय कृष्ण राजा के नाम के लिए पाठभेद रहा होगा (कृष्ण ६. देखिये)।

भानु—विवस्वत् अथवा सूर्यदेवता का नामांतर (म. आ. १.४०)।

२. एक देवगंधर्व, जो कश्यप एवं प्राधा (क्रोधा) का पुत्र था (म. आ. ५९.४६)।

३. श्रीकृष्ण को सत्यभामा से उत्पन्न एक महारथी पुत्र। मृत्यु के पश्चात्, यह विश्वेदेवो में प्रविष्ट हो गया (म. स्व. ५.१३)।

४. एक अग्नि, जो च्यवन आंगिरस ऋषि के अंश से उत्पन्न हुआ था। इसके पिता का नाम पांचजन्य था (म. व. २१०.९)। इसे 'मनु' एवं 'बृहद्भानु' नामांतर भी प्राप्त है (म. व. २११.८-९)।

इसे सोमकन्या बृहद्भासा एवं सुप्रजा नामक दो पत्नियाँ थी। इसे निम्नलिखित छः पुत्र थेः—**बृहद्भासापुत्र**-बल, मन्युमत् एवं विष्णु (धृतिमत्); **सुप्रजापुत्र**-आग्रयण, वैश्वदेव एवं स्तुभ (म. व. २११.८)।

५. एक राजा, जो कौरव एवं अर्जुन के दरम्यान हुए 'गोग्रहण युद्ध' देखने के लिए इंद्र के विमान में बैठ कर उपस्थित हुआ था (म. वि. ५१.१०)।

६. दक्ष की एक कन्या, जो धर्म से ब्याही गयी थी। इसके पुत्र का नाम देवऋषभ था।

७. एक यादव, जिसने प्रद्युम्न राजा से शस्त्रास्त्रविद्या प्राप्त की थी (म. व. १८०.२७)। इसकी कन्या का नाम भानुमती था, जिसका विवाह पांडु राजा के पुत्र सहदेव से हुआ था (म. स. २.परि. १.१३; ह. वं. २.२०.७६)।

८. (सू. इ. भविष्य.) एक राजा, जो भागवत के अनुसार, प्रतिव्योम राजा का पुत्र था। इसके पुत्र का नाम दिवाक अथवा दिवाकर था (भा. ९. १२)।

९. स्वारोचिष मनु के पुत्रों में से एक।

१०. उत्तम मन्वंतर का एक देवगण।

११. सुतप देवों में से एक।

भानुदत्त—शकुनि का भाई, जो सुबल राजा के पुत्रों में से एक था। भारतीय युद्ध में भीम ने इसका वध किया (म. द्रो. १३२.११३६*)।

भानुदेव—एक पांचाल योद्धा, जो भारतीय युद्ध में कर्ण के द्वारा मारा गया था (म. क. ३२.३७)।

भानुमत्--(सू. निमि.) एक राजा, जो भागवत के अनुसार, केशिध्वज राजा का, एवं वायु के अनुसार सीरध्वज का पुत्र था।

२. कलिंग देश का राजा, जो भारतीय युद्ध में कौरव पक्ष में शामिल था। भीम ने इसका वध किया (म. भी. ५०.३५)।

३. (सो. तुर्वसु.) एक तुर्वसुवंशीय राजा, जो भागवत के अनुसार भर्ग राजा का पुत्र था। इसके पुत्र का नाम त्रिभानु था।

४. कोसल देश का सुविख्यात राजा। इसकी कन्या का नाम कौसल्या था, जो सुविख्यात इक्ष्वाकुवंशीय सम्राट दशरथ को विवाह में दी गयी थी (वा. रा. बा. १३. २६)। दशरथ के द्वारा किये गये पुत्रकामेष्टि यज्ञ के समय इसे बड़े सम्मान के साथ निमंत्रित किया गया था।

५. कृष्ण को सत्यभामा से उत्पन्न पुत्रों में से एक।

६. (सू. इ. भविष्य.) एक इक्ष्वाकुवंशीय राजा, जो भागवत के अनुसार बृहदश्व राजा का पुत्र था। विष्णु एवं वायु में इसके नाम के लिये 'भानुरथ' पाठभेद प्राप्त है।

भानुमत् औपमन्यव--एक आचार्य, जो आनन्दज चान्धनायन नामक आचार्य का शिष्य था। संभवतः यह उपमन्यु का वंशज था, जिस कारण इसे 'औपमन्यव' पैतृक नाम प्राप्त हुआ था। इसके शिष्य का नाम ऊर्जयत् औपमन्यव था (वं. ब्रा. १)।

भानुमती--पूरुवंशीय राजा अहंयाति की पत्नी, जो कृतवीर्य राजा की कन्या थी। भांडारकर संहिता में इसके नाम के लिए 'अहंपाति' पाठभेद प्राप्त है। इसके पुत्र का नाम सार्वभौम था (म. आ. ९०.१५)।

२. अंगिरस् ऋषि की ज्येष्ठ कन्या, जो अत्यंत रूपवती थी (म. व. २०८.३)।

३. भानु यादव की कन्या, जो सहदेव 'पांडव' की पत्नी थी। निकुंभ नामक दानव ने इसका हरण किया था। पश्चात् अर्जुन, कृष्ण एवं प्रद्युम्न ने निकुंभ का वध कर, इसे विमुक्त किया (ह. वं. २.९०)।

४. बृहत्कल्प के धर्ममूर्ति राजा की पत्नी (धर्ममूर्ति देखिये)।

५. सगर राजा की पत्नी शैब्यकन्या केशिनी का नामान्तर (मा. ९.८.९)। इसके पुत्र का नाम असमंजस् था।

६. बृहस्पति आंगिरस् ऋषि की कन्या, जो उसे शुभा नामक पत्नी से उत्पन्न हुयी थी।

७. धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन राजा की एक पत्नी। स्कंद के अनुसार, इसने हाटकेश्वर नामक शिवलिंग की स्थापना की थी (स्कंद. ६.७३-७४)।

भानुरथ—इक्ष्वाकुवंशीय भानुमत् राजा का नामांतर (भानुमत् ६. देखिये)।

भानुविंद—एक यादव (भा. १०.६.१४)।

भानुश्चंद्र--(सू. इ.) एक इक्ष्वाकुवंशीय, राजा, जो मत्स्य के अनुसार चंद्रगिरि राजा का पुत्र था।

भानुसेन--अंगराज कर्ण का एक पुत्र, जो भारतीय युद्ध में भीम के द्वारा मारा गया था (म. क. ३२.४९)। पाठभेद (भांडारकर संहिता)-'सत्यसेन'।

भामिनी—वैशाली के अविक्षित राजा की पत्नी। इसके पुत्र का नाम मरुत्त था, जो आगे चल कर वैशाली का सुविख्यात सम्राट बना (मार्क. १२४)। एक बार यह नागलोक में गयी थी, जहाँ इसने सर्पों को अभय दिया कि, इसका होनेवाला पुत्र मरुत्त उनकी रक्षा करेंगा (मार्क. १२६)।

२. स्कंद की अनुचरी मातृका 'भाविनी' के लिए उपलब्ध पाठभेद (भाविनी देखिये)।

भायजात्य—निकोथक नामक आचार्य का पैतृक नाम (वं. ब्रा. ४.३७३)।

भारत--ऋग्वेद में निर्दिष्ट एक पैतृक नाम, जो भारत का पुत्र अथवा वंशज इस अर्थ से प्रयुक्त हुआ है। ऋग्वेद में निम्नलिखित सूक्तद्रष्टाओं का पैतृक नाम 'भारत' बताया गया है:—अश्वमेध (ऋ. ५.२७); देववात एवं देवश्रवस् (ऋ. ३.२३)।

भारद्वाज—उपनिषदों में निर्दिष्ट कई आचार्यों का सामुहिक नाम। बृहदारण्यक उपनिषद में इन्हे निम्नलिखित आचार्यों के शिष्य के रूप में निर्दिष्ट किया है:—भारद्वाज, पाराशर्य, बलाका कौशिक, ऐतरेय, असुरायण एवं बैजवापायन (बृ. उ. २.५.२१ माध्यं; २.६.२ काण्व; ४.५.२७ माध्यं.)।

२. ऋग्वेद में निर्दिष्ट एक पैतृक नाम, जो भरत का पुत्र अथवा वंशज इस अर्थ से प्रयुक्त हुआ है। ऋग्वेद निम्नलिखित सूक्तद्रष्टाओं का पैतृक नाम 'भारद्वाज' बताया गया है:—ऋजिश्वन् (ऋ. ६.४९); गर्ग (ऋ. ६.४७); गर्दभीविपीत, नर (ऋ. ६.३५); पायु (ऋ. ६.७५); वसु (ऋ. ९.८०); वाहेय; शास; शिरिंबिठ (ऋ. १०.

१५५); शुनहोत्र (ऋ. ६.३३); शूष वाह्नेय (वं. ब्रा. २); सत्यवाह; सप्रत; सुकेशिन् (प्र. उ. १.१); सुहोत्र (ऋ. ६.३१)।

३. एक सामवेदी श्रुतर्षि।

४. अंगिरस् गोत्र का एक मंत्रकार एवं गोत्रकार।

५. एक ऋषिक। वायु के अनुसार, 'ऋषिक' शब्द का अर्थ ऋषि का पुत्र, अथवा सत्यमार्ग से चलनेवाला आदर्श पुरुष, ऐसा दिया गया है (वायु. ५९.९२-९४)। मत्स्य एवं ब्रह्मांड में, इसके नाम के लिए 'भरद्वाज' पाठभेद प्राप्त है (मत्स्य. १४५.९५-९७; ब्रह्मांड. २. ३२.१०१-१०३)।

६. वैवस्वत मन्वन्तर के सप्तर्षियों में से एक।

७. एक श्रौतसूत्रकार, जिसके नाम पर निम्नलिखित ग्रंथ उपलब्ध हैः— १. भारद्वाज प्रयोग, २. भारद्वाज शिक्षा (कृष्णयजुर्वेद तैत्तिरीय शाखा); ३. भारद्वाज संहिता; ४. भारद्वाज श्रौतसूत्र (कृष्ण यजुर्वेद); ५. वृत्तिसार (C. C.)।

८. एक ऋषि, जिसने द्युमत्सेन राजा को आश्वासन दिया था, 'तुम्हारा पुत्र एवं सावित्री का पति सत्यवान् पुनः जीवित होगा' (म. व. २८२.१६)।

९. एक व्याकरणकार। सामवेद के 'ऋक्तंत्रप्रातिशाख्य' के अनुसार व्याकरणशास्त्र का निर्माण सर्वप्रथम ब्रह्मा ने किया एवं उस शास्त्र की शिक्षा ब्रह्मा ने बृहस्पति को, बृहस्पति ने इंद्र को, एवं इंद्र ने भारद्वाज को दी। आगे चल कर व्याकरण का यही ज्ञान भारद्वाज ने अपने शिष्यों को प्रदान किया।

पाणिनि ने आचार्य भारद्वाज के व्याकरणविषयक मतों का उल्लेख किया है (पा. सू. ७.२.६३)। पतञ्जलि ने भी 'भारद्वाजीय व्याकरण' से संबंधित कई वार्तिकों का निर्देश किया है (महा. १.७३; १३६; २०१)।

ऋक्प्रातिशाख्य एवं तैत्तिरीय प्रातिशाख्य में भी, भारद्वाज के व्याकरण विषयक मतों का उल्लेख प्राप्त है, जिससे प्रतीत होता है कि, आचार्य भारद्वाज ने 'ऐंद्र व्याकरण' की परंपरा को आगे चलाया। आगे चल कर, यही व्याकरण पाणिनीय व्याकरण में अंतर्भूत हुआ।

भारद्वाजायन--पंचविंश ब्राह्मण में निर्दिष्ट एक आचार्य। भरद्वाज का वंशज होने से इसे यह नाम प्राप्त हुआ होगा। एक बार इसने एक सत्र का प्रारंभ किया, जिसमें हर एक दिन के अनुष्ठान का फल इसे पूछा गया था (पं. ब्रा. १०.१२.१)।

भारद्वाजि--भारद्वाज ऋषि का पुत्र।

भारद्वाजी--रात्रि नामक एक वैदिक सूक्तद्रष्ट्री का पैतृक नाम (रात्रि देखिये)।

भारद्वाजीपुत्र--एक आचार्य, जो पाराशरीपुत्र नामक आचार्य का शिष्य था (बृ. उ. ६.५.१ माध्यं.) बृहदारण्यक उपनिषद में अन्यत्र इसे 'वात्सीमांडवीपुत्र' कहा गया है (ब्र. उ. ६.४.३० माध्यं; श. ब्रा. १४.९. ४.३०)।

२. एक आचार्य, जो पैङ्गीपुत्र नामक आचार्य का शिष्य था (श. ब्रा. १४.९.४.३०)। इसके शिष्य का नाम हारिकर्णीपुत्र था।

३. एक आचार्य, जो पाराशरीपुत्र नामक आचार्य का शिष्य था। इसके शिष्य का नाम वात्सीपुत्र था (श. ब्रा. १४.९.४.३१)।

भारुकच्छ—एक क्षत्रिय (म. स. ४७.८)। पाठभेद (भांडाकर संहिता)--'भरुकच्छ'।

भारुण्ड—उत्तर कुरुवर्ष में रहनेवाले महाबली पक्षियों का एक सामुहिक नाम। ये उत्तर कुरुवर्ष में मरे हुए लोगों की लाशों को उठा कर, कंदराओं में फेंक देते थे (म. भी. ८.२१)।

भार्ग—(सो. काश्य.) काशीदेश का एक राजा, जो विष्णु के अनुसार वैनहोत्र राजा का पुत्र था। इसके नाम के लिए 'भर्ग' पाठभेद भी प्राप्त है (भर्ग ३. देखिये)।

भार्गभू—(सो. काश्य.) काशीदेश का एक राजा, जो विष्णु के अनुसार भार्ग राजा का पुत्र था। भागवत, एवं वायु में इसके नाम के लिए 'भार्गभूमि' एवं 'गर्गभूमि' पाठभेद प्राप्त है।

भार्गभूमि—काशीदेश के 'भार्गभू' राजा के लिए उपलब्ध पाठभेद।

२. (सो. पूरु.) एक पूरुवंशीय राजा, जो विष्णु एवं वायु के अनुसार, अमावसु राजा का पुत्र था।

भार्गव—एक कुलनाम, जो प्रायः भृगु वारुणि ऋषि के कुल में उत्पन्न लोगों के लिए प्रयुक्त किया जाता है। इस कुल में उत्पन्न प्रमुख व्यक्तियों के नाम निम्नलिखित हैं:- च्यवन, उशीनस् शुक्र, गृत्समद, कवि, कृत्नु, जमदग्नि, परशुराम जामदग्न्य, नेम, प्रयोग, प्राचेतस, भृगु, वाल्मीकि, वेन, सोमाहुति एवं स्यूमरश्मि (भृगु वारुणि देखिये)।

परशुराम जामदग्न्य के द्वारा पृथ्वी निःक्षत्रिय किये जाने पर, उसे भार्गव कुल में उत्पन्न ब्राह्मणों ने 'अवभृथ

स्नान' का संकल्प बताया था। वर्तमान काल में इस कुल के ब्राह्मण प्रायः गुजराथ प्रदेश में भडोच में दिखाई देते है।

२. वैवस्वत मन्वन्तर का तीसरा एवं छब्बीसवाँ व्यास।

३. ऋषभ नामक शिवावतार का शिष्य।

४. भौत्य मनु का एक पुत्र, जो सप्तर्षियों में से एक था।

५. एक देवसमूह, जिसमें बारह देव समाविष्ट थे (मत्स्य. १९५.१२-१३)।

भार्गवत--अंगिराकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

भार्गायण--सुत्वन् नामक राजा का गोत्रनाम (सुत्वन् कैरिशीय भार्गायण देखिये)।

भार्गेय--भृगुकुल के 'मार्गेय' नामक गोत्रकार के नाम के लिए उपलब्ध पाठभेद (मार्गेय देखिये)।

भार्म्यश्व--मुद्गल नामक ऋषि का पैतृक नाम।

भालंदन--वत्सप्रि नामक ऋषि का पैतृक नाम।

भालुकि--एक ऋषि, जो पांडवों के साथ द्वैतवन में गया था (म. स. ४.१३; व. २७.२२)।

२. एक आचार्य, जो वायु के अनुसार व्यास की सामशिष्यपरंपरा में से लांगलि ऋषि का शिष्य था।

इसने योगशास्त्र पर एक ग्रंथ लिखा था, जिसका आधार 'हटप्रदीपिका' नामक ग्रंथ में लिया गया है (C.C.)।

भालुकीपुत्र--एक आचार्य, जो क्रौंचिकीपुत्र नामक ऋषि का शिष्य था। इसके शिष्य का नाम राथीतरीपुत्र था (बृ. उ. ६.५.२ काण्व.)।

२. एक आचार्य, जो प्राचीनयोगीपुत्र नामक ऋषि का शिष्य था। इसके शिष्य का नाम वैदभृतीपुत्र था (श. ब्रा. १४. ९.४.३२; बृ. उ. ६.४.३२ माध्यं.)।

भाल्ल प्रातृद--एक आचार्य (जै. उ. ब्रा. ३०.३१.४)।

भाल्लवि--एक आचार्य, जिसके द्वारा प्रणीत एक आचारविशेष का निर्देश पंचविंश ब्राह्मण में प्राप्त है (पं. ब्रा. २.२.४)। सायण के अनुसार, यह व्यक्तिवाचक नाम न हो कर किसी शाखा के नाम का द्योतक है।

भाल्लविन्--एक शाखाप्रवर्तक आचार्य, जिसके द्वारा निर्मित एक ब्राह्मण ग्रंथ प्राप्त है। इसके ग्रंथ का उद्धरण बौधायन धर्मसूत्र में उपलब्ध है (बौ. ध. १.२. ११)। कई ग्रंथों में इसका निर्देश बहुवचन में प्राप्त है, जिससे प्रतीत होता है कि, यह किसी एक व्यक्ति का नाम न हो कर, किसी गुरुपरंपरा का नाम होगा (जै. उ. ब्रा. २.४.७)।

भाल्लवेय--इंद्रद्युम्न नामक आचार्य का पैतृक नाम (श. ब्रा. १०.६.१.१; छां. उ. ५.११.१; १४.१)। 'भाल्लवि' का पुत्र होने से इसे यह नाम प्राप्त हुआ होगा।

शतपथ ब्राह्मण में एक अधिकारी आचार्य के रूप में इसका निर्देश कई बार प्राप्त है (श. ब्रा. १.७.३.१९; २.१.४.६; १३.४.२.३)।

भावन--उत्तम मन्वन्तर का एक देवगण।

२. भृगु वारुणि ऋषि को दिव्या नामक पत्नी से उत्पन्न बारह देवों में से एक।

भावयव्य--स्वनय नामक राजा का पैतृक नाम (स्वनय देखिये; सां. श्रौ. १५.११.५.)।

भावास्यायनि--अंगिराकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

भाविनि--स्कंद की अनुचरी एक मातृका (म. श. ४५.११)। इसके नाम के लिए 'भामिनि' पाठभेद प्राप्त है।

भाव्य--स्वनय नामक राजा का पैतृक नाम (ऋ. १. १२६. १; नि. ९. १०)।

भास--एक तपस्वी, जो सह्याद्रि में स्थित अत्रि ऋषि के आश्रम में रहनेवाले एक ऋषि का पुत्र था। यह विलास नामक राजा का परम मित्र था।

भासकर्ण--रावण का एक सेनापति, जो हनुमान् के द्वारा मारा गया (वा. रा. सुं. ४६.३७)।

भासा--पूरुवंशीय राजा अयुतायिन् की पत्नी, जो पृथुश्रवस् राजा की कन्या थी। इसके पुत्र का नाम अक्रोधन था।

भासी--कश्यप ऋषि की कन्या, जो उसे ताम्रा नामक पत्नी से उत्पन्न हुयी थी। आगे चल कर, इससे भास, उलूक आदि पक्षी उत्पन्न हुए।

२. एक अप्सरा, जो कश्यप एवं प्राधा (अरिष्टा) से उत्पन्न आठ कन्याओं में से एक थी।

भासुर--तुषित देवों में से एक।

भास्कर--एक आदित्य, जो कश्यप एवं अदिति से उत्पन्न बारह आदित्यों में से एक था।

२. स्कंद के भास्वर नामक पार्षद के नाम के लिए उपलब्ध पाठभेद (भास्वर देखिये)।

भास्करि--एक ऋषि, जो शरशय्या पर पडे हुए भीष्म से मिलने आया था (म. शां. ४७.६६*; पंक्ति. ११)।

भास्वर--सूर्य के द्वारा स्कंद को दिये गये दो पार्षदों में से एक। दूसरे पार्षद का नाम सुभ्राज था (म. श.

४४.२८)। इसके नाम के लिए 'भास्कर' पाठभेद प्राप्त है।

भिक्षु आंगिरस--एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. १०. ११७)।

भिक्षुवर्य--शंकर का एक अवतार, जिसने सत्यरथ नामक राजा को काफ़ी त्रस्त किया था (सत्यरथ देखिये)।

भिषज् आथर्वण--एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. १०. ९७)।

२. काठक संहिता में निर्दिष्ट एक प्राचीन चिकित्सक (का. सं. १६.३)।

भीम--(सो. कुरु.) कुरुवंशीय पांडु राजा को कुन्ती से उत्पन्न पाँच पुत्रों में से तीसरा पुत्र (भीमसेन पांडव देखिये)।

२. एक देवगंधर्व, जो कश्यप एवं मुनि का पुत्र था।

३. तीसरे मरुद्गणों में से एक।

४. विकुंठ देवों में से एक।

५. एकादश रुद्रों में से एक।

६. एक अग्नि, जो पांचजन्य अथवा तप नामक अग्नि का पुत्र था।

७. एक राक्षस, जो हिरण्याक्ष एवं देवताओं के बीच हुए युद्ध में अग्नि के हाथों मारा गया (पद्म. सृ. ७५)।

८. एक राक्षस, जो कश्यप एवं खशा के पुत्रों में से एक था।

९. (सो. अमा.) एक राजा, जो भागवत के अनुसार, विजय राजा का पुत्र था। विष्णु एवं वायु में, इसे अमावसु राजा का पुत्र कहा गया है।

१०. (सो. क्रोष्टु.) एक यादव राजा, जो हरिवंश एवं ब्रह्म के अनुसार, ज्यामघ राजा का पुत्र था। महाभारत में इसे 'निमि' कहा गया है। संभवतः यह क्रथ राजा का नामांतर रहा होगा।

११. (सो. क्रोष्टु.) एक यादव राजा, जो दाशार्ह (विदुरथ) राजा का पुत्र था (पद्म. सृ. १३)।

१२. (सो. क्रोष्टु.) आनर्त (गुजराथ देश) का एक यादव राजा, जो सत्वत राजा का पुत्र था। इसके पुत्र का नाम अंधक था। यह राम दाशराथी राजा का समकालीन था। शत्रुघ्न ने मधु दैत्य का वध कर मथुरा नगरी की स्थापना की, उस नगरी को इसने जीत लिया था।

१३. (सो. पूरु.) एक पूरुवंशीय राजा, जो इलिन एवं रथन्तरी का पुत्र था (म. आ. ८९.१५)। इसे निम्नलिखित चार भाई थे:--दुष्यंत, शूर, प्रवसु, एवं वसु।

१४. (सो. पूरु.) एक पूरुवंशीय राजा, जो वायु के अनुसार, महावीर्य राजा का पुत्र था।

१५. एक राक्षस, जो लंकानरेश रावण का मित्र था। लंका में आने के बाद, हनुमान सर्वप्रथम इसके घर के छपरे पर अवतीर्ण हुआ था (वा. रा. सुं. ६)।

१६. (सो. कुरु.) एक कुरुवंशीय राजा, जो मत्स्य के अनुसार, रुचिर राजा का पुत्र था।

१७. (सो. कुरु.) धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों में से एक। भीम ने इसका वध किया (म. भी. ६०.३१)।

१८. पाँच विनायकों में से एक। देवताओं के यज्ञ का विनाश करनेवाले पांचजन्य के द्वारा इन पाँच विनायकों का निर्माण हुआ था।

१९. अंश के द्वारा स्कंद को दिये गये पाँच पार्षदों में से एक। अन्य पार्षदों के नाम निम्नलिखित थे:--परिघ, वट, दहति, एवं दहन।

२०. यमसभा में रह कर यम की उपासना करनेवाले राजाओं का एक समूह, जिसमें कुल सौ राजा समाविष्ट थे। प्राचीन काल में ये राजा पृथ्वी के शासक थे; किन्तु काल से पीडित हो कर ये पृथ्वीलोक छोड़ कर यमसभा में उपस्थित हुए (म. शां. २२७.४९)।

२१. गौड देश में रहनेवाले दुर्व नामक ब्राह्मण का मित्र। गणेशपुराण में वर्णित बुध नामक दुराचारी ब्राह्मण की कथा में इसका निर्देश प्राप्त है (गणेश. १.७६; बुध. ८. देखिये)।

२२. द्वापर युग में उत्पन्न हुआ एक शूद्र। यह अत्यंत दुराचरणी एवं चौर्यकर्म में निपुण था। एक बार यह एक ब्राह्मण के घर चोरी के हेतु गया, एवं उसकी सेवा करने के बहाने वहीं रह गया।

पश्चात् ब्राह्मण के घर चोरी के हेतु आये हुए कई अन्य चोरों के हाथों यह मारा गया। मृत्यु के पश्चात्, किंचित्-काल तक की गयी ब्राह्मणसेवा के कारण इसका उद्धार हुआ (पद्म. ब्रह्म. १४)।

२३. एक खाटिक, जिसकी कथा गणेश पुराण में शमीवृक्ष का महात्म्य बताने के लिए कथन की गयी है।

२४. एक कुम्हार, जो तोण्डमान नामक राजा के राज्य में रहता था। यह रोज श्रीनिवास की पूजा करता था, जिस कारण इसका उद्धार हुआ (स्कंद. २.१.१०)

२५. विदर्भ देश के कौण्डिन्य नगरी का राजा, जो चित्रसेन राजा का पुत्र था। इसे कोई पुत्र न था, जिस कारण विरक्त हो कर, इसने अपना राज्य मनोरंजन एवं

सुमन्तु नामक प्रधानों के हाथों सौंप दिया, एवं यह वन में चला गया।

वन में इस विश्वामित्र ऋषि आ मिले, जिन्होंने इसे गणेश उपासना का व्रत करने के लिए कहा। यह व्रत करने पर इसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम रुक्मांगद था (गणेश. १.१९-२७)।

२६. विदर्भ देश का एक राजा, जो दमयंती का पिता था (भीम वैदर्भ देखिये)।

भीम वैदर्भ--विदर्भ देश का सुविख्यात राजा, जो निषधराज नल की पत्नी दमयंती का पिता था। यह एवं चेदि देश का राजा वीरबाहु समवर्ती थे।

दशार्ण नरेश सुदामन् की कन्या इसकी पत्नी थी (म. व. ६६.१२-१३)। काफ़ी वर्षों तक अनपत्य रहने के बाद, दमन ऋषि की कृपाप्रसाद से इसे तीन उत्तम पुत्र एवं एक कन्या प्राप्त हुयी। इसके पुत्रों के नाम दम, दान्त एवं दमन थे, एवं कन्या का नाम दमयंती था (म. व. ५०.९)।

इसके द्वारा किये गये दमयंती के स्वयंवर में निषध देश का राजा नल का दमयंती ने वरण किया (म. व. ५४.२५)। कलि के शाप से नल एवं दमयंती को अत्यधिक कष्ट सहने पडे; उस समय इसने उन दोनों को एवं उनके पुत्रों को काफ़ी सहाय्यता की थी (दमयंती एवं नल देखिये)।

२. विदर्भ देश का सुविख्यात राजर्षि, जिसका निर्देश ऐतरेय ब्राह्मण में निर्दिष्ट 'सोम परंपरा' में प्राप्त है। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार, शापर्ण नामक पुरोहितगण के द्वारा यज्ञवेदी की स्थापना की जाने पर, सोमविद्या की विशिष्ट परंपरा दैवावृध ने भीम राजा को सिखायी, एवं उसी परंपरा भीम ने वैदर्भ राजा को सिखायी (ऐ. ब्रा. ७.३४)। उस ग्रंथ में, भीम एवं वैदर्भ को अलग व्यक्ति माना गया है। किंतु सायणाचार्य के अनुसार, ये दोनों एक ही व्यक्ति थे।

इसकी कथा में नारद एवं पर्वत इन दो ऋषियों का संबंध निर्दिष्ट है, किंतु उसके बारे में निश्चित रूप से कहना असंभव है।

भीमक--विदर्भ देश के भीष्मक राजा का नामांतर (भीष्मक देखिये)।

भीमकाय--त्रिपुरासुर का एक सेवक। त्रिपुर ने इसे कुछ काल तक पृथ्वी का राज्य प्रदान किया था (गणेश. १.३९.१३)।

भीमकी--कृष्ण की पत्नी रुक्मिणी का नामांतर।

भीमकेश--एक राजा, जिसकी पत्नी का नाम केशिनी था। बृहद्ध्वज नामक राक्षस ने उसका हरण किया था (बृहद्ध्वज देखिये)।

भीमजानु--एक प्राचीन नरेश, जो यमसभा में उपस्थित था (म. स. ८.१९)।

भीमपायन--कश्यपकुल के भौजपायन नामक गोत्रकार के लिए उपलब्ध पाठभेद (भौजपायन देखिये)।

भीमबल--धृतराष्ट्र के शतपुत्रों में से एक। इसके नाम के लिए भूरिबल पाठभेद भी प्राप्त है (म. आ. परि. १.४१.१५)। भारतीय युद्ध में भीमसेन के द्वारा इसका वध हुआ।

२. एक देवता, जो पांचजन्य के द्वारा उत्पन्न पाँच विनायकों में से एक थी।

भीमरथ--(सो. कुरु.) धृतराष्ट्र के शतपुत्रों में से एक। भीमसेन ने इसका वध किया।

२. कौरवपक्षीय एक योद्धा, जो द्रोणनिर्मित गरुडव्यूह के हृदयस्थान में खड़ा हुआ था (म. द्रो. १९.३३)। पांडवपक्षीय म्लेंच्छराज शाल्व राजा का इसने वध किया था (म. द्रो. २४.२६)।

३. युधिष्ठिर की सभा एक राजा (म. स. ४.२२)।

४. (सो. क्रोष्टु.) एक राजा, जो भागवत, विष्णु एवं वायु के अनुसार विकृति राजा का पुत्र था। मत्स्य में इसे विमल राजा का पुत्र कहा गया है।

५. (सो. क्षत्र.) एक राजा, जो भागवत एवं वायु के अनुसार केतुमत् राजा का पुत्र था। विष्णु में इसके नाम के लिए 'अभिरथ' पाठभेद प्राप्त है। महाभारत में इसका निर्देश 'भीमसेन' नाम से किया गया है (भीमसेन ३. देखिये)।

भीमविक्रम--(सो. कुरु.) धृतराष्ट्र के शतपुत्रों में से एक।

भीमवेग--(सो. कुरु.) धृतराष्ट्र के शतपुत्रों में से एक।

२. अंगिराकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

भीमवेगरव--(सो. कुरु.) धृतराष्ट्र के शतपुत्रों में से एक।

भीमशंकर--एक शिवलिंग, जो सह्याद्रि में स्थित डाकिनी क्षेत्र में है। इसने भीम का वध कर कामरूपेश्वर सुदक्षिण राजा का रक्षण किया (शिव. शत. ४२)।

महाराष्ट्र में पूना जिले में स्थित भीमाशंकर नामक शिवस्थान यही है। इसके उपलिंग का नाम भीमेश्वर है (शिव. कोटि. १)।

भीमशर-धृतराष्ट्र के शतपुत्रों मे से एक।

भीमसेन—एक देवगंधर्व, जो कश्यप एवं मुनि का पुत्र था। यह अर्जुन के जन्मोत्सव में उपस्थित था।

२. (सो. ऋक्ष.) एक राजा, जो विष्णु एवं वायु के अनुसार, ऋक्ष राजा का पुत्र था। मत्स्य के अनुसार, यह दक्ष राजा का पुत्र था।

३. (सो. क्षत्र.) एक राजा, जिसका निर्देश पुराणों में 'भीमरथ' नाम से प्राप्त है (भीमरथ २. देखिये)।

इसके पुत्र दिवोदास को गालव ऋषि ने अपनी कन्या माधवी विवाह में दी थी। इसका पुत्र होने के कारण, दिवोदास को 'भैमसेनि' पैतृकनाम प्राप्त था (म. उ. ११७.१; क. सं. ७.२)।

भीमसेन 'पांडव'—(सो. कुरु.) पाण्डु राजा के पाँच 'क्षेत्रज' पुत्रों में से एक, जो वायु के द्वारा कुन्ती के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। इसके जन्मकाल में आकाशवाणी हुयी थी, 'यह बालक दुनिया के समस्त बलवानों में श्रेष्ठ बनेगा (म. आ. ११४.१०)।

पाण्डवों में भीम का स्थान सर्वोपरि न कहें, तो भी वह किसी से भी कुछ कम न था। बाल्यकाल से ही यह सबका अगुआ था। भीम के बारे में कहा जा सकता है कि, यह वज्र से भी कठोर, एवं कुसुम से भी कोमल था। एक ओर, यह अत्यंत शक्तिशाली, महान् क्रोधी तथा रणभूमि में शत्रुओं का संहार करनेवाला विजेता था। दूसरी ओर, यह परमप्रेमी, अत्यधिक कोमल स्वभाववाला दयालु धर्मात्मा भी था। न जाने कितनी बार, किन किन व्यक्तियों के लिए अपने प्राणों पर खेल कर, इसने उनकी रक्षा कर, अपने धर्म का निर्वाह किया। इस प्रकार इसका चरित्र दो दिशाओं की ओर विकसित हुआ है, तथा दोनों में कुछ शक्तियों पृष्ठभूमि के रूप में इसे प्रभावित करती रहीं। वे हैं, इसका अविवेकी, उद्दण्ड एवं भावुक स्वभाव।

भीम निश्चल प्रकृति का, भोलाभाला, सीधा साफ आदमी था; यह राजनीति के उल्टे सीधे दाँव-पेंच न जानता था। सबके साथ इसका सम्बन्ध एवं बर्ताव स्पष्ट था, चाहे वह मित्र हो, या शत्रु। यह स्पष्टवक्ता एवं निर्भीक प्राणी था।

परम शारीरिक शक्ति का प्रतीक मान कर, श्री व्यास के द्वारा, भीमसेन का चरित्रचित्रण किया गया है। पांडवों में से अर्जुन शस्त्रास्त्रविद्या का, भीम शारीरिक शक्ति का, एवं पांडवपत्नी द्रौपदी भारतीय नारीतेज का प्रतीक माने जा सकती हैं। ये तीनो अपने अपने क्षेत्र में सर्वोपरि थे, किंतु पांडवपरिवार के बीच हुए कौटुंबिक संघर्ष में, इन तीनो को उस युधिष्ठिर के सामने हार खानी पडती थी, जो स्वयं आत्मिक शक्ति का प्रतीक था। संभव है, इन चार ज्वलंत चरित्रचित्रणों के द्वारा श्रीव्यास को यही सूचित करना हो कि, दुनिया की सारी शक्तियों में से आत्मिक शक्ति सर्वश्रेष्ठ है।

स्वरुपवर्णन--भीम का स्वरूपवर्णन भागवत में प्राप्त है, जिससे प्रतीत होता है कि, यह अत्यंत भव्य शरीरवाला स्वर्ण कान्तियुक्त था। इसके ध्वज पर सिंह का राजचिन्ह था, एवं इसके अश्व रीछ के समान कृष्णवर्ण थे। इसके धनुष का नाम 'वायव्य', एवं शंख का नाम 'पौंड्र' था। इसका मुख्य अस्त्र गदा था।

कौरवों का, विशेष कर दुर्योधन तथा धृतराष्ट्र का, यह आजन्म विरोधी रहा। दुर्योधन इससे अत्यधिक विद्वेष रखता था, एवं धृतराष्ट्र इससे काफ़ी डरता था। भागवत के अनुसार, इसने दुर्योधन एवं दुशाःसन के सहित, सभी धृतराष्ट्रपुत्रों का वध किया था (भा. १.१५. १५)।

बाल्यकाल--जन्म से ही यह अत्यन्त बलवान् था। जन्म के दसवें दिन, यह माता की गोद से एक शिलाखण्ड पर गिर पड़ा। किंतु इसके शरीर पर जरा सी भी चोट न लगी, एवं चट्टान अवश्य चूर चूर हो गयी (म. आ. ११४.११-१३)। इसके जन्म लेने के उपरांत इसका नामकरण संस्कार शतश्रृंग ऋषियों के द्वारा किया गया। बाद को वसुदेव के पुरोहित काश्यप के द्वारा इसका उपनयन संस्कार भी हुआ।

भीम बाल्यकाल से ही अत्यंत उद्दंड था। कौरवपांडव बाल्यावस्था में जब एकसाथ खेला करते, तब किसी में इतनी ताकत न थी कि, इसके द्वारा की गयी शरारत का जवाब दे। दुर्योधन अपने को सब बालकों में श्रेष्ठ, एवं सर्वगुणसंपन्न राजकुमार समझता था। किन्तु इसकी ताकत एवं शैतानी के आगे उसको हमेशा मुँह की खानी पड़ती थी (म.आ.१२७.५-७)। भीम भी सदैव दुर्योधन की झूटी शान को चूर करने में चूकता न था। इस प्रकार शुरू से ही पाण्डवों का अगुआ बन कर, यह दुर्योधादि के नाके चने चबवाये रहता। इस प्रकार, इसके कारण आरम्भ से ही, पाण्डवों तथा कौरवों के बीच एक बडी खाई का निर्माण हो चुका था।

दुर्योधन के षड्‌यंत्र—दुर्योधन कौरवपुत्रों में बड़ा होशियार, चालबाज एवं धूर्त था। उसने इसे खत्म करने के अनेकानेक कई षड्‌यंत्र रचे। आजीवन वह भीम की जान के पीछे पड़ा ही रहा, कारण वह नहीं चाहता था कि, यह काँटा उसे जीवन भर चुभता रहे। एक बार जब यह सोया हुआ था, तब दुर्योधन ने इसे ऊपर से नीचे फेंकवा दिया, किन्तु इसका बाल बांका न हुआ। दूसरी बार उसने इसे सर्पों द्वारा कटवाया, तथा तीसरी बार भोजन में विष मिलवा कर भी इसे खिलवाया, पर भीम जैसा का तैसा ही बना रहा (म. आ. ११९)।

जब दुर्योधन के ये षड्‌यंत्र सफल न हुए, तब उसने इसका वध करने के लिए एक दूसरी युक्ति सोची। उसने गंगा नदी से जल काट कर, एक जलगृह का निर्माण किया, एवं उसमें जलक्रीड़ा करने के लिए पाण्डुपुत्रों को आमंत्रित किया। जब सब लोग जलक्रीड़ा कर रहे थे, तब सभी ने एक दूसरे को फल देकर जलविहार किया। दुर्योधन ने अपने हाथों से भीम को विषयुक्त फल खिलाये, जिसके कारण जलक्रीड़ा करता हुआ भीम थक कर नदी के किनारे आ कर लेट गया, तथा नींद में सो गया। यह सुअवसर देख कर, दुर्योधन ने इसे लता एवं पल्लवादि से बाँध कर बहती धारा में फेंकवा दिया (म. आ. ११९. परि. १. ७३)। इस प्रकार जल के प्रवाह में बहता हुआ भीम पाताल में स्थित नागलोक जा पहुँचा।

नागलोक में—नागलोग पहुँचते ही, इसके शरीरभार से अनेकानेक शिशुनाग कुचल कर मर गये, जिससे क्रोधित हो कर सर्पों ने इसके ऊपर हमला बोल दिया, एवं इसको खूब काटा, जिससे इसके शरीर का विष उतर गया, एवं मूर्च्छा जाती रही। जाग्रत अवस्था में आ कर, यह नागों को मारने लगा, जिससे घबरा कर वे सभी भागते हुए नागराज वासुकि के पास अपनी आपबीती सुनाने गये। वासुकि पहचान गया कि, सिवाय भीम के और कोई नहीं हो सकता।

वासुकि इसके पास तुरन्त आया, एवं इसे आदर-पूर्वक अपने घर ले जा कर इसकी बड़ी आवभगत की (आर्यक देखिये)। हज़ारो नागों के बल को देनेवाले अमृत कुंभ को दिखा कर उसने भीम से कहा कि, जितना चाहो मनमानी पी कर आराम करो। तब इसने आठ कुंभो को आठ घूँठ में ही पी डाला, एवं पी कर ऐसा सोया कि, आठ दिन बाद ही उठा। इन आठ कुंभों के दिव्य रसपान से इसे एक हज़ार हाथियों का बल प्राप्त हुआ। इसके जगने के उपरांत, नागों के द्वारा इसका मंगलाचरण गाया गया, एवं उनके द्वारा इसे दस हज़ार हाथियों के समान बलशाली होने का वरदान दिया गया। बाद को यह नागों के द्वारा नागलोक से पृथ्वी पर पहुँचा कर, सकुशल बिदा किया गया।

नागलोक से लौट कर यह खुशी खुशी हस्तिनापुर आ पहुँचा, एवं इसने अपनी सारी कथा माँ कुंती को प्रणाम कर कह सुनायी। कुंती ने सब कुछ सुन कर, इस कथा को किसीसे न कहने का आदेश दिया।

शिक्षा—इसने राजर्षि शुक से गदायुद्ध की शिक्षा प्राप्त की थी (म. आ. परि. १. क्र. ६७)। अन्य पाण्डवों की भाँति, इसे भी कृपाचार्य ने अस्त्रशस्त्रों की शिक्षा दी थी (म. आ. १२०.२१)। पश्चात् द्रोणाचार्य ने इसे एवं अन्य पाण्डवों को नानाप्रकार के मानव एवं दिव्य अस्त्र-शस्त्रों की शिक्षा दी थी।

गदायुद्ध की परीक्षा लेते समय, इसके तथा दुर्योधन के बीच लड़ाई छिड़नेवाली ही थी कि, गुरु द्रोण ने अपने पुत्र अश्वत्थामा के द्वारा उन्हे शांत कराया (म. आ. १२७)। युधिष्ठिर के युवराज्याभिषेक होने के उपरांत, बलराम ने इसे खड्ग, गदा एवं रथ के बारे में शिक्षा दे कर अत्यधिक पारंगत कर दिया (म. आ. परि. १ क्र. ८०. पंक्ति. १–८)।

भीम तथा अर्जुन की शिक्षा समाप्त होने के उपरांत, द्रोण ने गुरुदक्षिणा के रूप में इनसे कहा कि, ये ससैन्य राजा द्रुपद को परास्त करें। इस युद्ध में भीम ने अपने शौर्यबल से द्रुपद राजा की राजसेना को परास्त किया, एवं उसकी राजधानी कुचल कर ध्वस्त कर देनी चाही, किंतु अर्जुन ने इसे रोक कर, राज्य को विनष्ट होने से बचा लिया (म. आ. परि. १. क्र. ७८. पंक्ति. ५१–१५५)।

लाक्षागृहदाह—वारणावत में, धृतराष्ट्र के आदेशानुसार बनाये गये लाक्षागृह में अन्य पाण्डवों तथा कुन्ती के साथ, यह भी जल कर मरनेवाला था, किन्तु विदुर के सहयोग से सारे पाण्डव बच गये। लाक्षागृह से निकलने के उपरांत, इसने अपने हाथ से ही लाक्षागृह को जला दिया, जिसमें शराब पिये अपने पाँच पुत्रों के सहित ठहरी हुई एक औरत जल मरी। उसीमें शराब के नशें में चूर दुर्योधन का एक सेवक भी जल गया था (म. आ. १३२-१३६)।

लाक्षागृह से निकल कर, अपने भाइयों के साथ विदुर के सेवक की मदद से, इन्होंने गंगा नदी पार की। तदोपरांत शीघ्रातिशीघ्र दूर भाग चलने के हेतु से, अपने माँ को कन्धे पर, नकुल-सहदेव को कमर पर, तथा धर्मार्जुन को हाथ में लेकर दौड़ते हुए, भीम ने एक जंगल में आ कर शरण ली। कुन्ती तथा अन्य पांडव थक कर इतने प्यासे हो गये थे कि, उन्हे पेड़ की छाया में लिटा कर, यह पानी लाने गया। पानी ला कर इसने देखा कि, सब थक कर सो गये हैं। अतएव यह उनके रक्षार्थ जगता हुआ, उनके उठने की प्रतीक्षा में बैठा रहा।

हिडिंबाविवाह--इसी वन में, एक नरभक्षक राक्षस हिडिंब रहता था, जिसने मनुष्यसुगन्धि का अनुमान लगा कर, अपनी बहन हिडिंबा को इन्हें लाने के लिए कहा। हिडिंबा आई, तथा भीम को देखकर, इसके व्यक्तित्त्व पर मोहित होकर, इसे वरण में प्राप्त कर लेनेके लिए निवेदन करने लगी। किन्तु भीम ने हिडिंबा की इस प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया। उधर अधिक देर हो जाने पर, वस्तुस्थिति की जाँच करता हुआ हिडिंब राक्षस भी आ पहुँचा। पहले भीम एवं उसमें वादविवाद हुआ, फिर दोनों युद्ध में जूझने लगे।

इस द्वंन्द्वयुद्ध की आवाज़ से सभी पांडव जग पडे, एवं उन्हें सारी बातें भीम के द्वारा पता चलीं। पश्चात् भीम ने हिडिंब राक्षस का वध किया, एवं कुन्ती तथा अपने भाइयों के साथ इसने आगे चलने के लिए प्रस्थान किया।

किन्तु हिडिंबा ने इसका साथ न छोड़ा, वह इसका पीछा करती हुई साथ लगी ही रही। अन्त में कुन्ती ने इन दोनों में मध्यस्थता कर के भीम को आदेश दिया कि, वह हिडिंबा का वरण करे। भीम ने हिडिंबा के सामने एक शर्त रखी कि, उसके एक पुत्र होने तक ही यह उसके साथ भोगसम्बन्ध रक्खेगा। हिडिंबा ने इसे अपनी स्वीकृति दे दी, तथा दोनों का विवाह हो गया। विवाह के उपरांत भीम एवं हिडिंबा रम्य स्थानों में घूमते हुए वैवाहिक जीवन के आनंदो में निमग्न रहे। कालान्तर में, इसे हिडिंबा से घटोत्कच नामक पुत्र हुआ।

बकासुरवध--महर्षि व्यास के कथनानुसार, यह अन्य पाण्डवों एवं अपनी माँ के साथ एकचक्रा नगरी में गया, जहाँ अपनी माता के आदेश पर, इसने बकासुर का वध कर, एकचक्रानगरी को कष्टों से उबारा था (बक देखिये)।

द्रौपदीस्वयंवर--द्रुपद राजा की कन्या द्रौपद्री (कृष्णा), जब स्वयंवर में अर्जुन द्वारा जीती गयी, तब वहाँ पर हुए युद्ध में इसका एवं शल्य का भीषण युद्ध हुआ था। द्रौपदी को जीत कर, अर्जुन और भीम वापस लौटे, एवं माँ से विनोद में कहा कि, हम लोग भिक्षा लाये हैं। मज़ाक को न समझ सकने के कारण, माँ ने उस 'भिक्षा' को आपस में बाँट लेने को कहा। इस प्रकार द्रौपदी अर्जुन के साथ भीमादि की भी पत्नी हुयी (म. आ. १८०-१८१)।

जरासंधवध--धर्मराज ने राजसूय यज्ञ किया, जिसमें कृष्ण की सलाह से युधिष्ठिर ने अर्जुन तथा भीम को जरासंध पर आक्रमण करने को कहा। वहाँ भीम एवं जरासंध में दस दिन युद्ध चलता रहा, और जब जरासंध लड़ते लड़ते थक सा गया, तब कृष्ण के संकेत पर, इसने उसे खड़ा चीर कर फेंक दिया। किन्तु वह फिर जुड़ गया। तब कृष्ण के द्वारा पुनः संकेत पा कर, इसने उसे फिर चीर डाला, तथा दाहिने भाग को अपनी दाहिनी ओर, तथा बायें भाग को अपने बायों ओर फेंक दिया, जिससे दोनों शरीर के भाग जुड़ न सकें (म. स. १८)।

पूर्वदिग्विजय--फिर भीम को धर्मराज ने पूर्व दिशा की ओर विजय प्राप्त करने के लिए भेजा, जिसमें राजा भद्रक इसके साथ था (भा. १०.७२.४४)। इसने क्रमशः पांचाल, विदेह गण्डक, दशार्ण तथा अश्वमेध इत्यादि पूर्ववर्ती देशों को जीत कर, दक्षिण के पुलिन्द नगर पर धावा बोल दिया। वहाँ के राजा को जीत कर, यह चेदिराज शिशुपाल के पास गया, तथा वहाँ एक माह रह कर, इसने कुमार देश का श्रेणिमन्त राजा को जीता। फिर 'गोपालकच्छदेश', उत्तरकोसल, मल्लाधिप, हिमालय के समीपवर्ती जलोद्भव देश, भल्लाट, शुक्तिमान्पर्वत, काशिराज सुबाहु, सुपार्श्व, राजपति क्रथ, मत्स्यदेश, मलद, अभयदेश, पशुभूमि, मदधार पर्वत तथा सोमधेयों को जीत कर, यह उत्तर की ओर मुड़ा। बाद में भीम ने वत्सभूमि, भर्गाधिप, निषादाधिपति, मणिमत् आदि प्रमुख राजाओं के साथ साथ, दक्षिणमल्ल, भोगवान्पर्वत, शर्मक, वर्मक, वैदेहक जनक आदि को सुलभता के साथ जीत लिया।

शक तथा बर्बरों को जीतने के लिये, इसने उन्हें कूटनीति से जीता। इनके अतिरिक्त इंद्रपर्वत के समीप के किराताधिपति, सुह्म, प्रसुह्म, मागध, राजा दण्ड, राजा दण्डधार, तथा जरासंध के गिरिव्रज नगर आदि को अपने पौरुष के बल जीत लिया। फिर इन्ही लोगों की सहायता ले कर, कर्ण तथा पर्वतवासी राजाओं को जीत कर, मोदागिरी के राजा का वध कर, इसने पुंड्राधिप वासुदेव पर आक्रमण बोल दिया। पश्चात् कौशिकी कच्छ

के महौजस राजा को जीत कर, इसने वंगराज पर आक्रमण कर दिया।

इसकी विजय यही समाप्त न हुयी। इसके उपरांत समुद्रसेन, चन्द्रसेन, ताम्रलिप्त, कर्वटाधिपति, सुह्माधिपति सागरवासी म्लेच्छों, लोहित्यों आदि को जीत कर, यह इंद्रप्रस्थ को वापस आया (म. स. २६-२७)।

राजसूययज्ञ—चारों भाई जब चारों दिशाओं से दिग्विजय कर के, अतुल धनाराशि के साथ वापस लौटे, तब धर्मराज ने राजसूययज्ञ आरंभ किया। इस यज्ञ में हर भाई को भिन्न भिन्न कार्य सौंपे गये, जिसमें भीम को पाकशाला का अधिपति बनाया गया (भा. १०.७५. ४)।

यह राजसूययज्ञ मयसभा में हुआ, जिसकी रचना बड़ी चतुरता के साथ की गयी थी। जो कोई उसे देखता, वह उसकी विचित्रता देख कर चकित रहा जाता। इस सभा में पाण्डवों ने अपने बलऐश्वर्य की ऐसी झाँकी प्रस्तुत की, कि दुर्योधन ईर्ष्या से जला जा रहा था। इसके सिवाय उसे कई जगह मूर्ख बनना पड़ा, तथा जहाँ कहीं दुर्योधन को नीचा देखना पड़ता, वहीं भीम अट्टाहास करता हुआ उसकी हँसी उड़ाता। इसका यह परिणाम हुआ कि, दुर्योधन ने पाण्डवों के समस्त ऐश्वर्य को कुचल कर मिटा देने के लिए, एक योजना बनाई।

द्रौपदीवस्त्रहरण—दुर्योधन ने धर्मराज को द्यूतक्रीड़ा के लिए बुलाया। दुर्योधन ने अपने स्थान पर शकुनि को आसन दे कर, कपटतापूर्ण ढंग से धर्मराज की समस्त धनसंपत्ति का ही हरण न किया, बल्कि द्रौपदी को भी जीत कर, उसे भरी सभा में बुला कर, उसका अपमान किया। दुःशासन उसका वस्त्र खींचने लगा, एवं दुर्योधन अपने बायें अंग को नग्न कर के द्रौपदी के सामने खड़ा हो गया। दुःशासन की इस धृष्टता को देख कर, भीम उबल पड़ा, एवं इसने उसकी बाँयी जाँघ तोड देने की, एवं उसकी छाती फाड कर उसका रक्त पीने की भीषण प्रतिज्ञा की (म. स. ५३.६३)।

अपने भाई युधिष्ठिर के ही कारण, द्यूतक्रीडा का भयानक संकट आ गया, यह सोचकर भीम युधिष्ठिर से अत्यधिक क्रोधित हुआ। इसने उससे कहा, 'जो कुछ हुआ है, उसके जिम्मेदार तुम ही हो। तुम्हारे ही हाथों का दोष है, जिन्होंने द्यूत खेल कर धनलक्ष्मी, ऐश्वर्य सब कुछ मिट्टी में मिला दिया'। इतना कहा कर इसने अपने भाई सहदेव से कहाः—

"अस्याः कृते मन्युरयं त्वयि राजन्निपात्यते।
बाहू ते संप्रधक्ष्यामि, सहदेवाग्निमानय॥"

(म. स. ६१.६)

(तुम मुझे अग्नि ला कर दो, मेरी इच्छा है कि, युधिष्ठिर के द्यूत खेलनेवाले हाथों को जला दूँ)।

दुःशासन के द्वारा किये गये उपहास पर क्रोधित होकर, इसने प्रण किया कि, यह दुर्योधन के साथ धृतराष्ट्र के सभी पुत्रों का वध करेगा (म. स. ६८.२०-२२)।

वनवास—वनवासगमन का निश्चय हो जाने के उपरांत, भीम समस्त भाईयों के साथ बन की ओर चल पडा। वहाँ बक के भाई किर्मीर के साथ युधिष्ठिर की ऐसी बातें हुई कि, स्थिति युद्ध तक आ पहुँची। तब भीम ने उसे परास्त कर उसका वध किया (म. व. १२.२२-६७)।

वनवासकाल में जब द्रौपदी ने युधिष्ठिर से सन्यास-वृत्ति को त्याग कर, राज्यप्राप्ति के लिए प्रयत्न करने को कहा, तब भीम ने भी धर्मराज के पुरुषार्थ की प्रशंसा करते हुए, उसे युद्ध के लिए उत्साहित किया था।

इसने युधिष्ठिर से कहा, 'तुम्हे धर्माचरण ही करना हो तो तुम संन्यास ले कर तपस्या करने वन में चले जाना' (म. व. ३४)। किन्तु धर्मराज के युक्तिपूर्ण वचनों के आगे यह चुप हो गया (म. व. ३४-३६)।

गर्वहरण—एक बार, जब यह द्रौपदी से प्रेमालाप करता हुआ बातों में विभोर था, तब हवा में उड़ता हुआ एक हज़ार पंखुडियोंवाला (सहस्रदल) कमल इनके सामने आ गिरा। तब द्रौपदी ने उस प्रकार के कई कमल इससे लाने को कहे। अपनी प्रियतमा की इच्छा पूर्ण करने के लिए भीम वैसे ही पुष्प लाने के लिए गंधमादन पर्वत पर आ पहुँचा (म. व. १४६.१९)। इसके चलते समय होनेवाली गर्जना से हनुमान् ने इसे पहचान लिया, तथा आगे जाने पर कोई इसे शाप न दे, इस भय से वह मार्ग में अपनी पूँछ फैला कर बैठ गया।

वहाँ आ कर इसने हनुमान को मार्ग से हटने लिए कहा, तथा उसके न हटने पर, इसने उसकी पूँछ पकड कर फेंक देने का प्रयत्न किया। किन्तु जब यह पूँछ तक न उठा सका, तब यह उसकी शरण में गया। हनुमान ने इस प्रकार इसके अभिमान को नीचा दिखा कर, इसे सदुपदेश दिए। समुद्रोल्लंघन काल में धारण किये गये अपने विराटरूप को दिखा कर, हनुमान् ने भीम को आशीष दे कर वर दिया, 'जिस समय तुम रण में सिंहनाद करोगे, उस समय मै अपनी आवाज़ से तुम्हारी आवाज़

दीर्घकाल तक निनादित करूँगा, तथा अर्जुन के रथ पर बैठ कर तुम्हारी रक्षा करूँगा' (म. व. १५०.१३-१५)। इतना कह कर परिस्थिति समझाते हुए हनुमान् ने इसे आगे जाने के लिए कहा। उसने इसे सौगंधिक सरोवर का मार्ग बता कर कमलों के प्राप्त करने की विधि भी बताई (म. व. १४६-१५०)।

कुबेर से विरोध--यह सरोवरों से कमल प्राप्त करने के लिए सौगन्धिकवन पहुँचा। वहीं कैलास की तलहटी में स्थित कुबेर का सौगन्धिक सरोवर था, जिसकी रक्षा के लिए उसने क्रोधवश नामक राक्षस रख छोडे थे। इसका क्रोधवश नामक राक्षसों के साथ युद्ध हुआ, तथा इसने उन्हे परास्त कर भगा दिया, तथा कमल तोड़ने लगा (म. व. १५२.१६-२३)। राक्षस भग कर कुबेर के पास गए, तथा कुबेर ने इसे यथेच्छा विहार करने, एवं कमलों के तोड़ने की अनुमति प्रदान की (म. व. १५२.२४)।

उधर धर्मराज को कुछ अपशकुन दृष्टिगोचर होने लगे, जिससे शंकित होकर घटोत्कच के साथ वह भीम के पास आ पहुँचा। कुबेर ने उसका स्वागत किया, तथा धर्मराज एवं भीम को अतिथि के रूप में ठहरा कर उनका खूब आदरसत्कार किया। इस प्रकार भीम एवं कुबेर में मित्रता स्थापित हो गयी।

एक बार द्रौपदी ने भीम से क्रोधवश राक्षसों को मारकर सम्पूर्ण प्रदेश को भयरहित करने के लिए प्रार्थना की। भीम तत्काल राक्षसों के उत्पात को दमन करने के लिए निकला पड़ा, एवं अनेकानेक क्रोधवश राक्षसों को मार कर यमपुरी पहुँचा दिया। उनमें कुबेर का मित्र मणिमान् भी मारा गया (म. व. १५८)। जो बचे, वे फरियाद लेकर कुबेर के पास जा पहुँचे। पहले तो कुबेर क्रोध से लाल हो उठा, किन्तु बाद को उसे स्मरण हो आया कि, 'यह भीम की गल्ती नहीं, बल्कि अगस्त्य मुनि के द्वारा दिये गये शाप का परिणाम है, जीसे मुझे भुगतना पड़ रहा है'। ऐसा समझकर वह भीम के पास आया, तथा इससे सन्धि कर, कुछ दिनों तक अपने यहाँ रखकर, खूब आदरसत्कार किया (म. व. १५७-१५८)। पश्चात् धर्म के साथ इसने मेरु पर्वत के दर्शन किए, तथा पूर्ववत् गंधमादन पर्वत पर रहकर वनवास की अवधि पूरी करने लगा।

नहुषमुक्ति--एक बार अरण्य में प्रवेश करते समय अजगररूपधारी राजा नहुष ने भीम को निगल लिया। पश्चात् उसके द्वारा पूँछे गये प्रश्नों के उचित उत्तर देकर युधिष्ठिर ने भीम के उसके चंगुल से बचाया, तथा नहुष राजा भी अजगरयोनि से मुक्त हुआ (म. व. १७३; १७८; नहुष २. देखिये)।

दुर्योधन-चित्रसेन युद्ध—एक बार पाण्डवों को अपने वैभव का प्रदर्शन करने के लिए, कौरव अपनी पत्नियों को लेकर द्वैतवन में आ पहुँचे। वहाँ इन्द्र की आज्ञा से, चित्रसेन गन्धर्व ने उनको बन्दी बनाकर इन्द्र के पास ले जाने लगा। तब युधिष्ठर ने भीम से कहा कि, यह अपने भाइयों को कष्ट से मुक्त कराये। भीम ने दुर्योधन के पकड़े जाने पर प्रसन्नता प्रकट करते हुए, उसकी कटु आलोचना की। किन्तु युधिष्ठिर के समझाये जाने पर यह कौरवों को चित्रसेन से मुक्त करा कर वापस लाया, एवं युधिष्ठिर के सामने पेश किया। युधिष्ठिर ने सब को मुक्त किया (म. व. २३४-२३५)।

जयद्रथ से युद्ध—एक बार पाण्डव मृगया को गये थे, इसी बीच अवसर को देखकर, राजा जयद्रथ ने द्रौपदी एवं कुलोपाध्याय धौम्य ऋषि का हरण किया। परिस्थिति का ज्ञान होते ही, पाण्डवों ने जयद्रथ पर धावा बोल दिया। भीम ने बड़ी वीरता के साथ जयद्रथ से युद्ध किया, एवं उसे नीचे गिराकर अपने पैरों के ठोकर से उसके मस्तक को चूर कर, उसके बाल को काट कर, घसीटता हुआ युधिष्ठिर के सामने हाजिर किया। किन्तु धर्मराज ने उसे छोड़ दिया (म. व. २५४-२५५)।

यक्षप्रश्न—एक बार धर्मादि के लिए पानी लाने के लिए नकुल गया। वहाँ पर यक्षरूप यमधर्म ने उसे पानी लेने के पूर्व अपने प्रश्नों के उत्तर माँगे, किन्तु वह न माना, तथा पानी पिया, जिस कारण वह मृत हो कर गिर पड़ा। धर्म की आज्ञानुसार गये हुए सहदेव, अर्जुन, तथा भीम की यही स्थिति हुयी। अन्त में युधिष्ठिर ने यक्ष के प्रश्नों का तर्कपूर्ण उचित उत्तर देकर वर प्राप्त कर, सभी भाइयों को पुनः जीवित कराया (म. व. २९७; युधिष्ठिर देखिये)।

अज्ञातवास--वनवास की अवधि समाप्त होने के बाद, अज्ञातवास का समय आ पहुँचा। द्रौपदी के साथ सारे पाण्डवों ने अपने वेश बदल कर, विराट राजा के यहाँ गुप्तरूप से रहने का निश्चय किया। उस समय भीम ने वहाँ पर बल्लव नाम धारण कर, रसोइये एवं पहलवान की जिम्मेदारी सँभाली। महाभारत की कई प्रतियों मे, इसका नाम 'पौरोगव बल्लव' दिया गया है

(बल्लव देखिये)। पाण्डवों के बीच इसका सांकेतिक नाम 'जयेश' था (म. वि. ५.३०; २२.१२)।

बल्लव का रूप धारण कर यह, विराट के दरबार में प्रविष्ट हुआ, एवं इसने यह सूचित किया कि, यह इससे पूर्व युधिष्ठिर के यहाँ का रसोइया था। जिस कारण विराट ने इसे अपनी पाकशाला का अधिपति बनाया (म. वि. ७)।

एकबार विराट की सभा में शंकरोत्सव में मल्लयुद्ध का आयोजन किया गया, उसमें जीमूत नामक मल्ल के द्वारा दी गयी चुनौती किसीने स्वीकार न की। यह डरता था कि कहीं लोग इसे पहचान न लें, फिर भी इसे मल्लयुद्ध में उतरना ही पड़ा, जिसमें भीम ने जीमूत को कुश्ती में हरा कर उसका वध किया (म. व. १२)।

कीचकवध—राजा विराट का साला कीचक, द्रौपदी पर मोहित होकर उस पर बलात्कार का प्रयत्न करने लगा। द्रौपदी ने उसी रात को पाकशाला में जा कर भीम को जगाया, तथा कीचक के वध की प्रार्थना की। भीम के द्वारा बताये हुए तरीके के अनुसार, द्रौपदी ने कीचक को नृत्यागार में बुलाया। वहाँ उसका एवं भीम का भयंकर युद्ध हुआ, जिससें इसने उसका वध किया (म. वि. २१.६२)।

सुबह कीचक के अनेकानेक बन्धुओं ने आ कर सैरन्ध्री (द्रौपदी) पर यह आरोप लगा या कि, उसके कारण ही यह सब कुछ हुआ। अतएव उसे पकड़ कर मृत कीचक के साथ जलाने की नियोजना की। वे उसे जलाने ही जा रहे थे, कि भीम विरूप वेशभूषा धारण कर, एक वृक्ष उखाड़ कर उनको मारने की ओर दौड़ा। उपकीचकों ने इसे इसप्रकार अपनी ओर आता हुआ देखकर समझ गये कि, यह सैरन्ध्री का गंधर्वपति आ टपका, अतएव वे अपनी जान छोड़ कर भागने लगे। किन्तु भीम से भग कर कहाँ जाते? इसने एक सौ पाँच उपकीचकों का वध कर द्रौपदी को बन्धनमुक्त किया। पश्चात् यह एवं द्रौपदी भिन्नभिन्न मार्गों से नगर में वापस आये (म. वि. २२-२७)।

भीम-कृष्ण संवाद—भारतीय युद्ध के पूर्व, पाण्डवों की ओर से कृष्ण कौरवों के दरबार में गया था, एवं निवेदन किया था कि, पांडवों की उचित माँगों को ध्यान में रखकर उनके प्रति न्याय किया जाये। जाते समय भीम ने कृष्ण से कहा था, सामनीति के द्वारा यदि आपसी सम्बन्ध न टूटे, तो अच्छा है।

इस पर कृष्ण ने इससे कहा था, 'यह स्वभाव के विरुद्ध तुम क्या कह रहे हो'? तब इसने कृष्ण को तर्कपूर्ण उत्तर देते हुए कहा था, 'आपने मुझे सही नहीं पहचाना। मै पराक्रमी एवं बलशाली जरूर हूँ; किन्तु मैनें यही देखा है कि, युद्धलिप्सा से राजकुल नष्ट हो जाते है। इतिहास साक्षी है कि, अभी तक भारत में अठारह कुलघातक (कुलपांसक) राजा ऐसे हुए, है जिन्होंने अपनी युद्धलिप्सा के कारण, अपने समस्त कुलों को जड़मूल से समाप्त कर दिया। इसी कारण मैं यही चाहता हूँ कि, जहाँ तक हो युद्ध से अलग रहकर कुरुकुल को नष्ट होने से बचायें' ('मा स्य नो भरता नशन्') भीम के चरित्र की यह उदात्त प्रवृत्ति, एवं समझदारी को देख कर कृष्ण चकित हो गया (म. उ. ७२-७४)।

भारतीय युद्ध—जिस युद्ध को टालने के लिए लाखों प्रयत्न किये गये वह भारतीय युद्ध शुरू हुआ, जिसमें कौरवों एवं पाण्डवों के साथ अनेकानेक वीर योद्धाओं ने भाग लिया।

प्रथम दिन—प्रथम दिन के युद्धारम्भ में दुर्योधन के साथ इसका द्वन्द्वयुद्ध हुआ (म. भी. ४३.१७-१८)। युद्ध प्रारम्भ होते ही, कलिंग देश के राजा भानुमान्, निषध देश के राजा केतुमान् तथा श्रुतायु ने भीम पर आक्रमण बोल दिया। भीम ने भी चेदि, मत्स्य तथा करुष को साथ ले कर उनपर आक्रमण किया। किन्तु उन सब के विरुद्ध कोई ठहर न सका, केवल भीम ही मैदान में डटा रहा। इसने कलिंगों के साथ युद्ध करते हुए भानुकुल के शक्रदेव का वध किया (म. भी. ५०.२१-२२)। पश्चात् इसने कलिंग राजा भानुमान् एवं उसके बाद चक्ररक्षक सत्य एवं सत्यदेव का वध किया। इसके बाद इसने निषध देश के राजा केतुमान् का भी वध किया। कलिंग देश की गजसेना को ध्वस्त कर के खून की नदियों बहा दी (म. भी. ५०.७७-८३)।

इतने कुचले जाने पर भी कलिंग ने पुनः तैयारी कर के, इस पर फिर चढाई कर दी। उस समय शिखंडी, धृष्टद्युम्न तथा सात्यकि इसकी सहायता के लिए आगे आये। ऐसी स्थिति देख कर, भीष्म ने कौरवसेना को व्यवस्थित कर के भीम पर धावा बोल दिया। उस समय भीम की ओर से सात्यकि ने भीष्म के सारथि को मार डाला, जिस कारण भीष्म के रथ के अश्व इधरउधर भगने लगे (म. भी. ५०; ५१.१)।

चौथा दिन--भारतीय युद्ध के चौथें दिन, शल्य एवं धृष्टद्युम्न का घमासान युद्ध हुआ, जिसमें उन दोनों की सहायता करने के लिए उनके दस दस सहायक थे। उन सहायकों में शल्य के पक्ष में दुर्योधन, एवं द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न के पक्ष में भीम प्रमुख था। युद्ध के प्रारम्भ होते ही, भीम ने दुर्योधन पर आक्रमण किया, एवं दुर्योधन की समस्त गजसेना का संहार किया।

दुर्योधन की आज्ञा से उसकी सारी सेना ने पुनः भीम पर धावा बोल दिया, किन्तु भीम ने उस सारी सेना का संहार किया। कौरवसेना की यह दुरवस्था देखकर उनके सेनापति भीष्म ने स्वयं भीम पर आक्रमण किया (म. भी. ५९.२१)। उसी समय सात्यकि ने भीष्म पर हमला किया, एवं यह सुअवसर देखकर भीम पुनः एक बार दुर्योधन से भिड़ गया। इस युद्ध में दुर्योधन ने एक बाण भीम की छाती में मारकर इसे घायल कर दिया। मूर्च्छा से उठते ही, भीम ने अद्भुत पराक्रम दिखाकर निम्नलिखित धृतराष्ट्रपुत्रों का वध किया:-- सेनापति, जलसंध, सुषेण, उग्र, वीरबाहु, भीम, भीमरथ एवं सुलोचन (म. भी. ५८-६०)।

छठवा दिन—भारतीय युद्ध के छठवे दिन, भीम ने अत्यधिक पराक्रम दिखा कर शत्रुओं का अपने गदा से इस प्रकार विनाश किया, जैसे कोई हँसिये से घास काटता है, अथवा कोई डंडे से मिट्टी के ढेले फोड़ता है। किन्तु इस युद्ध में यह असंख्य बाणों से घायल होकर इतना बिंध गया, कि द्रुपदपुत्र ने इसे अपने रथ में उठाकर शिबिर में वापस लाया (म. भी. ७३.३६-३७)।

आठवा दिन--युद्ध के आठवे दिन, भीष्म अत्यधिक संतप्त हो कर युद्धभूमि में आया, किन्तु रणांगण में प्रवेश करते ही भीम ने उसके सारथी को मार डाला, जिस कारण भीष्म का रथ इधर उधर भागने लगा।

पश्चात्, धृतराष्ट्रपुत्र सुनाभ का भीष्म ने वध किया, जिस कारण संतप्त होकर धृतराष्ट्र के सात पुत्रों ने भीम पर आक्रमण किया, जिनके नाम इस प्रकार थे:—आदित्य-केतु, बह्वाशी, कुंडधार, महोदर, अपराजित्, पंडितक, एवं विशालाक्ष। किंतु भीम ने इन धृतराष्ट्रपुत्रों का वध किया (म. भी. ८४.१४-२८)।

इसी दिन संध्या के समय भीम ने निम्नलिखित धृतराष्ट्र-पुत्रों का वध किया:— अनाधृष्टि, कुंडभेदिन्, वैराट, कुंडलिन्, दीर्घलोचन, विराज, दीप्तलोचन, दीर्घबाहु, सुबाहु, एवं कनकध्वज (मकरध्वज) (म. भी. ९२.२६)।

नौवाँ दिन--युद्ध के नौवें दिन कौरवपक्षीय भगदत्त एवं श्रुतायु राजा ने अपने गजदल की सहायता से भीम को घेर कर वध करने का प्रयत्न किया। किन्तु भीम ने सारे गजदल के साथ उन्हें परास्त किया (म. भी. ९८)।

दसवाँ दिन--युद्ध के दसवें दिन, भीम को एक साथ ही दस राजाओं के साथ युद्ध करना पड़ा, जिनके नाम इस प्रकार थे:--भगदत्त, कृप, शल्य, कृतवर्मा, आवंत्य बंधु, जयद्रथ, चित्रसेन, विकर्ण एवं दुर्मर्षण। किन्तु यह इस युद्ध में अजेय रहा।

उसी समय शिखण्डी को आगे कर, अर्जुन भीष्म पर आक्रमण कर रहा था कि, यह दूसरी ओर से हट कर अर्जुन की सहायता के लिए आ पहुँचा। दोनो ने मिल कर भीष्म पर जोर-शोर के साथ युद्ध करना आरम्भ किया। इस युद्ध में अर्जुन ने अपने भीषण बाणों से भीष्म के सारे शरीर को बिंधा दिया (म. भी. १०९.७)।

ग्यारहवाँ दिन--युद्ध के ग्यारहवें दिन, अभिमन्यु ने शल्य के सारथि का वध किया, जिससे क्रोधित हो कर शल्य ने उसे गदायुद्ध के लिए चुनौती दी। किन्तु अभिमन्यु को हटा कर भीम स्वयं उससे गदायुद्ध करने लगा। इस युद्ध में भीम ने शल्य को युद्ध में मूर्च्छित किया (म. द्रो. १३)।

चौदहवाँ दिन—युद्ध के चौदहवें दिन, अर्जुन जयद्रथ का वध करने के लिए गया। किन्तु उसे काफ़ी समय लगा जाने के कारण, युधिष्ठिर ने अर्जुन की रक्षा के लिए भीम को भेजा। अर्जुन की सहायता के लिए जब यह आगे बढ़ा, तब इसे सत्रह राजाओं ने उस तक पहुँचने में बाधा डाली। इसने उन सभी को परास्त किया, जिनके नाम निम्नलिखित थे:—दुःशल, चित्रसेन, कुंडभेदिन्, विविंशति, दुर्मुख, दुःसह, विकर्ण, शल, विंद, अनुविंद, सुमुख, दीर्घबाहु, सुदर्शन, वृंदारक, सुहस्त, सुषेण, दीर्घलोचन, अभय, रौद्रकर्मन्, सुवर्मन् एवं दुर्विमोचन।

आगे चल कर, कौरवसेनापति द्रोण स्वयं इसके मार्ग में बाधक बन कर उपस्थित हुआ। इसका एवं द्रोण का उग्र वादविवाद हुआ, एवं बाद को द्रोण से चिढ़ कर इसने उनका रथ भग्न किया। आगे चल कर, इसने दुःशासन को पराजित किया, एवं कुंडभेदी, अभय एवं रौद्रकर्मन्

आदि राजाओं कों पुनः एक बार परास्त कर, यह आगे बढ़ा।

पश्चात्, द्रोण फिर एक बार इसके मार्ग का बाधक हुआ। फिर भीम ने उसके एक के पीछे एक कर के आठ रथों को ध्वस्त कर, द्रोण को युद्ध में परास्त किया। इस प्रकार, यह अर्जुन तक पहुँच गया, एवं शंखनाद के द्वारा अर्जुन तक कुशलपूर्वक पहुँचने की सूचना इसने युधिष्ठिर को दी।

कर्ण से युद्ध—इसे अर्जुन के समीप आता हुआ देख कर, कर्ण ने इस पर आक्रमण किया। फिर भीम ने कर्ण के रथ के अश्वों को मार कर, उसे रथविहीन कर दिया, जिस कारण कर्ण वृषसेन के रथ में बैठ कर वापस चला गया। इसी युद्ध में भीम ने दुःशल का वध किया (म. द्रो. १०४)।

अपने नये रथ में बैठ कर कर्ण युद्धभूमि में प्रविष्ट हुआ, एवं भीम को पुनः युद्ध के लिए आवाहन किया। भीम ने आवाहन स्वीकार कर, उसे दो बार मूर्च्छित एवं रथविहीन कर के, युद्धभूमि से भग जाने के लिए विवश किया। इस युद्ध में भीम ने दुर्मुख का वध किया (म. द्रो. १०९. २०)।

कर्ण को परास्त होता देख कर, दुर्मर्षण, दुःसह, दुर्मद, दुर्धर तथा जय नामक योद्धाओं ने भीम पर आक्रमण किया। किन्तु भीम ने उन सबका वध किया। फिर दुर्योधन ने अपने भाइयों में से शत्रुंजय, शत्रुसह, चित्र, चित्रायुध, दृष्ट, चित्रसेन एवं विकर्ण को कर्ण की सहायता के लिए भेजा। किन्तु भीम के द्वारा ये सभी लोग मारे गये। इन सभी दुर्योधन के भाइयों में भीम विकर्ण को अत्यधिक चाहता था। इसलिए उसकी मृत्यु पर भीम को काफ़ी दुःख हुआ। इसी युद्ध में भीम ने चित्रवर्मा, चित्राक्ष एवं शरासन का भी वध किया (म. द्रो. ११०-११२)।

इसके उपरांत भीम एवं कर्ण का पुनः एकबार युद्ध हुआ, जिसमें कर्ण को फिर एकबार हारना पड़ा। इस प्रकार कई बार भीम से हार खाने के उपरांत, कर्ण ने भीम से युद्ध करने का हठ छोड़ दिया (म. द्रो. ११४)। इसी युद्ध में कर्ण ने एक बार इसे, 'अत्यधिक भोजन भक्षण करनेवाला रसोइया' कह कर चिढ़ाया, जिससे चिढ़ कर इसने अर्जुन से अनुरोध किया कि, कर्ण को शीघ्रातिशीघ्र मार कर वह कर्णवध की अपनी प्रतिज्ञा पूरी करें (म. द्रो. ११४)।

रौद्र पराक्रम—उसी दिन हुए रात्रि युद्ध के समय, अपने पिता की मौत का बदला लेने के लिए, भानुमान् कलिंग के पुत्र ने भीम पर आक्रमण किया, जिसका इसने एक घूँसे का प्रहार मार कर वध किया। बाद को इसने कौरवपक्षीय ध्रुव राजा एवं जयरात के रथों पर कूद कर, उन्हें अपने घूँसे एवं थप्पड़ों से मार कर, काम तमाम किया। इसी प्रकार दुष्कर्ण को भी रौंद कर उसका वध किया (म. द्रो. १३०)।

पश्चात् इसका बाह्लीक राजा से युद्ध हुआ, जिस में इसने उसके पुत्र को मूर्च्छित किया। बाह्लीक ने स्वयं भीम को भी मूर्च्छित किया। मूर्च्छा हटते ही, इसने फिर कौरवसेना का संहार शुरू कर दिया, तथा दृढरथ, नागदत्त, विरजा एवं सुहस्त नामक योद्धाओं का वध किया (म. द्रो. १३२)। इसी संहार में इसने दुर्योधन एवं कर्ण को पुनः एक बार पराजित किया, जिसमें कर्ण के रथ, धनुषादि को कुचल दिया। कर्ण ने भी इसका रथ भग्न कर दिया, जिसके कारण इसे नकुल के रथ का सहारा लेना पड़ा (म. द्रो. १६१)।

इसी दिन कौरव सेनापति द्रोण ने द्रुपद एवं विराट राजा का वध किया, जिसका बदला लेने के लिए द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न को साथ ले कर भीम ने द्रोण पर हमला कर दिया। किन्तु उसका कुछ फायदा न हुआ। द्रोण के द्वारा दिखाई गई वीरता, एवं उसके परिणाम से सभी पाण्डवों के पक्ष के लोग भयभीत एवं त्रस्त हो उठे।

पंद्रहवाँ दिन—पंद्रहवें दिन, कृष्ण ने पाण्डवों के बीच बैठ कर, द्रोणाचार्य के मारने की योजना को समझाते हुए कहा, 'द्रोणाचार्य को खुले मैदान में जीतना असम्भव है, उसे किसी चालाकी के साथ ही जीता जा सकता है। मेरा यह प्रस्ताव है कि, उसे विश्वास दिला दिया जाये कि, उसका पुत्र अश्वत्थामा मर गया है। इसका परिणाम यह होगा कि, वह पुत्रशोक में विह्वल हो कर अस्त्र नीचे रख देगा। फिर उसे मारना कठिन नहीं।' कृष्ण की सलाह के अनुसार, भीम ने अपनी सेना में से किसी इंद्रवर्मा नामक योद्धा के अश्वत्थामा नामक हाथी को गदाप्रहार से मार दिया। पश्चात् यह द्रोण के रथ के पास जा कर चिल्लाने लगा, 'अश्वत्थामा मर गया'।

द्रोणवध—यह बात सुनते ही, पुत्रशोक से विह्वल द्रोण ने अपने शस्त्रादि नीचे रख दिये, एवं इस प्रकार असहाय स्थित में द्रोण को देख कर, द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न ने क्रूरता के साथ उसका वध किया (म. द्रो. १६४)। अपने गुरु की इस

प्रकार घृणित हत्या को देख कर, अर्जुन शोकाकुल हो उठा, एवं उसे युद्ध के प्रति ऐसी विरक्ति उत्पन्न हो गयी, जैसे उसे युद्ध के प्रारम्भ में हुयी थी। अर्जुन ने कहा, 'जिस युद्ध में इस प्रकार की अधार्मिक कार्यप्रणालियों का प्रयोग करना पड़ता है, वह युद्ध मैं नहीं करूँगा'। इस पर भीम ने अर्जुन की बड़ी कटु आलोचना करते हुए कहा, 'गुरु द्रोणाचार्य ब्राह्मण थे, और फिर भी क्षत्रियों की भाँति युद्धभूमि में उतरे। इससे बड़ा अधर्म क्या हो सकता है? रही बात कि, तुम युद्धभूमि को छोड़ कर जा रहे हो, तो जा सकते हो। तुम्हे घमण्ड है अपने शस्त्रशक्ति की, पर तुम नहीं जानते कि, अकेला भीम कौरवसेना के संहार करने में समर्थ है' (म. द्रो. १६८)।

अपने पिता के शोक में संतप्त अश्वत्थामा ने क्रोधाग्नि में उबल कर भीम के ऊपर 'नारायण अस्त्र' का प्रयोग किया, जिससे त्रस्त हो कर भीम तथा इसकी सेना शस्त्रादि छोड़ कर हतबुद्धि हो कर भगने लगी। अश्वत्थामा के नारायण अस्त्र को समेट लेने के लिए, अर्जुन ने वारुणि अस्त्र का प्रयोग कर, अश्वत्थामा को रथ के नीचे खींच कर उसे शस्त्रविहीन कर दिया। नारायण अस्त्र के शमन के उपरांत, भीम पुनः ससैन्य आया। किन्तु अश्वत्थामा के द्वारा इसका सारथी घायल हुआ, जिससे इसे युद्धभूमि से हटना पड़ा (म. द्रो. १७०-१७१)।

सोलहवाँ दिन—युद्ध के सोलहवें दिन कर्णार्जुनों के द्वारा व्यूहरचना होने के उपरांत भीम तथा क्षेमधूर्ति का हाथी पर से युद्ध हुआ। भीम ने क्षेमधूर्ति को पराजित कर, हाथी मार कर उसे नीचे उतरने के लिए मजबूर किया, एवं बाद में उसका वध किया (म. क. ८)। कुछ देर के उपरांत, अश्वत्थामा एवं भीम के बीच में घोर संग्राम हुआ, जिसमें दोनों एक दूसरे के शरों से घायल हो कर मूर्च्छित हुए, तथा अपने अपने सारथियों के द्वारा युद्धभूमि से हटाये गये (म. क. ११)।

सत्रहवाँ दिन—सत्रहवें दिन दुर्योधन ने जब देखा कि, उसकी समस्त सेना बुरी तरह ध्वस्त होती जा रही है, तब उसने अपना सेना का सुसंगठन कर के, भीम को समाप्त करने के लिए, स्वयं युद्धभूमि में उतर कर उस पर धावा बोल दिया। किन्तु भीम ने उसको पराजित कर उसकी समस्त गजसेना को पराजित किया (म. क. परि. १. क्र. १४-१५)।

कर्ण से युद्ध—कुछ देर के बाद कर्ण तथा भीम का युद्ध हुआ। कर्ण भीम से लड़ाई में परास्त हो कर युद्धभूमि से विमुख हो कर भाग जाने ही वाला था, कि दुर्योधन ने अपने भाइयों को युद्ध के लिए उत्तेजित करते हुए, भीम के विरुद्ध लड़ने के लिए प्रोत्साहित किया। उन सब के साथ भीम का घोर युद्ध हुआ, जिसमें इसने विवित्सु, विकट, सह, क्रोथ, नंद तथा उपनंद आदि धृतराष्ट्रपुत्रों का वध कर, श्रुतर्वा, दुर्धर, सम निषंगी, कवची, पाशी, दुष्प्र, धर्ष, सुबाहु, वातवेग, सुवर्चस्, धनुर्ग्रह, तथा शल आदि को युद्ध में परास्त किया।

तब तक कर्ण पुनः तैयार हो कर युद्धभूमि में आ पहुँचा। लेकिन भीम ने उसे एक ही बार में वेध दिया। इससे कर्ण क्रोध में पागल हो उठा, और उसने भीम का ध्वज अपने बाण से उखाड़ कर, इसके सारथी को काट कर इसे रथविहीन कर दिया (म. क. ३५)। कर्ण के बाणों से बिंध कर युधिष्ठिर बिल्कुल त्रस्त हो गया। भीम को, जैसे ही यह पता चला, वैसे ही इसने अर्जुन को उसके समाचार जानने के लिए भेज दिया (म. क. ४५)।

कुछ समय के उपरांत, भीम दत्तचित्त हो कर दुर्योधन की सेना के संहार करने में जुट गया। दुर्योधन की आज्ञा से शकुनि ने भीम पर आक्रमण किया, किन्तु इसने उसे भूमि पर गिरा दिया, और वह बाद में दुर्योधन के रथ के द्वारा बाहर लाया गया (म. क. ४५)।

दुःशासनवध—शकुनि को परास्त हुआ देख कर दुःशासन आगे आया, एवं भीम पर आक्रमण बोल दिया। उसे देखते ही भीम ने उसके सारथी एवं घोड़े मार डाले, एवं उसे जमीन पर गिरा कर, स्वयं रथ से उतर कर, उसके हाथ को तोड़ डाला। पश्चात् उसकी छाती फोड़ कर, इसने उसके रक्त का प्राशन किया, तथा उसके रक्त के सने हाथों से द्रौपदी की वह वेणी गूँथी, जो दुःशासन द्वारा मुक्त की गयी थी (पद्म. उ. १४९)। इस प्रकार भीम ने दुःशासन को मार कर अपना प्रण पूरा किया। इसी समय इसने अलंबु, कवची, खड्गिन्, दण्डधार, निषंगी, वातवेग, सुवर्चस् पाशी, धनुर्ग्रह अलोलुप, शल, संघ (सत्यसंघ) आदि धृतराष्ट्रपुत्रों का वध किया (म. क. ६१-६२)।

अठारहवाँ दिन—अठारहवें दिन के युद्ध में कृतवर्मा ने भीम के घोड़े को मार डाला, तथा भीम द्वारा नये घोड़ों के प्रयोग किये जाने पर, अश्वत्थामा ने उन्हें भी मार डाला। भीम ने यह देख कर कृतवर्मा का रथ विध्वंस कर, शल्य से युद्ध कर, उसके सारथी को मार डाला। यह देखकर,

वह इससे गदायुद्ध करने लगा, जिसमें इसने उसे मूर्च्छित कर पराजित किया (म. श. १२)।

इसने इक्कीस हज़ार पैदल सेना एवं न जाने कितना गजसेना का विनाश किया। इससे लड़ने के लिए निम्नलिखित धृतराष्ट्रपुत्र आये। किन्तु इसने सब का वध किया:- दुर्मर्षण, श्रुतान्त (चित्राङ्ग) जैत्र, भूरिबल (भीमबल), रवि, जयत्सेन, सुजात, दुर्विषह (दुर्विषाह), दुर्विमोचन, दुष्प्रधर्ष (दुष्प्रधर्षण), श्रुतर्वान् (म. श. २५.४-१९)। इसके बाद धृतराष्ट्रपुत्र सुदर्शन का भी इसने वध किया (म. श. २६)।

दुर्योधनवध--दुर्योधन को 'जलस्तंभन विद्या' आती थी, अतएव वह जलाशय के अन्दर, पानी में छिपकर बैठ गया। पाण्डवों को इसका पता चला, एवं वे जलाशय के निकट आकर उसे युद्ध के लिए आह्वान करने लगे। युधिष्ठिर ने सहजभाव से कहा, 'हम सब से एक साथ तुम युद्ध न करो। हम पाँचो में जिससे चाहो युद्ध कर सकते हो, और उस युद्ध यें यदि तुम उसे हरा दोगे, तो हम पूरा राज्य तुम्हे दे देंगे'। यह सुन कर कृष्ण आगे आया, और भीम को आगे करते हुए कहा, 'किसी और को नहीं, भीम को ही जीत लो। समस्त राज्य तुम्हारा है'। इस प्रकार दुर्योधन को भीम से भिड़ा दिया गया। कारण, कृष्ण जानता था कि, दुर्योधन गदायुद्ध में प्रवीण है; उसका जवाब केवल भीम ही है, और कोई नहीं।

इस प्रकार दुर्योधन एवं भीम की लढ़ाई टक्कर के साथ होने लगी। अर्जुन ने कृष्ण की सलाह से अपनी बायी जाँघ ठोंक कर भीम को संकेत दिया कि, इसने क्या पण किया था। अपनी प्रतिज्ञा का ध्यान आते ही, भीम ने भीषण गदाप्रहार से दुर्योधनकी जाँघ तोड़ दी एवं उसे नीचे गिरा दिया। इसने दुर्योधन का तिरस्कार करते हुए एक लात कस कर उसके मस्तक पर ऐसी मारी कि, तत्काल उसकी मृत्यु हो गयी (म. श. ५८.१२)। बलराम क्रोधित हो कर भीम पर आक्रमण करने के लिए दौड़ा, तथा कहा 'यह अधर्म युद्ध है'। किन्तु, कृष्ण ने उसे तत्काल समझा कर रोक लिया (म. श. ५९.२०-२१)।

अश्वत्थामावध--द्रौपदी शोक में संतप्त युधिष्ठिर से कहने लगी कि, वह अश्वत्थामा की मृत्यु का समाचार सुनाना चाहती हैं, जिसने उसके पुत्रों का वध किया है। युधिष्ठिर उसको समझाने लगा। तब वह भीम के पास आयी तथा कहा 'अश्वत्थामा को मार कर उसका मणि ले आओ, तभी मुझे शांति मिलेगी'। यह अश्वत्थामा से युद्ध करने के लिए चल पड़ा, तथा साथ में अर्जुन भी इसकी रक्षार्थ गया। भीम ने अश्वत्थामा के साथ घोर युद्ध किया, जिसमें वह इसकी शरण में आया तथा अपनी मणि निकाल कर दे दी (म. सौ. ११-१६)।

धृतराष्ट्रविद्वेष--भारतीय युद्ध के उपरांत, सभी लोग हस्तिनापुर पहुँचे। वहाँ आपस के वैमनस्य को भूल कर एकता के साथ रहने की बात धृतराष्ट्र ने रक्खी, तथा पाण्डवों के साथ आलिंगन कर गले मिलने की अभिलाषा प्रकट की। युधिष्ठिर से गले मिलने के बाद, जैसे उसने भीम को बुलाया, वैसे ही उसकी मुखमुद्रा भाप कर, कृष्ण ने भीम को हटा कर अन्धे धृतराष्ट्र के आगे भीम के कद की लौहप्रतिमाला खड़ी की। धृतराष्ट्र भीम का नाम सुनते ही खौल उठता था। अतएव उस लौहप्रतिमा को भीम समझ कर इतनी जोर से आलिंगन किया कि, मुर्ति चूर चूर होकर ध्वस्त हो गयी। बाद को जब उसे पता चला कि, वह मूर्ति थी, तो मन में बड़ा लज्जित हुआ। यह देख कर कृष्ण ने धृतराष्ट्र को बहुत बुराभला कहा (म. स्त्री १२-१३)।

भीम गांधारी से भी मिलने गया, एवं उसे अपनी सफ़ाई देते हुए क्षमा माँगी, जिससे सुन कर गांधारी शान्त हुई (म. स्त्री. १४)।

युवराजपद--धर्मराज युधिष्ठिर को संबोधित करते हुए भीम ने संन्यास का विरोध किया, एवं कर्तव्यपालन पर ज़ोर देते हुए कहा कि, वह दुःखों की स्मृति एवं मोह को त्याग कर, मन को काबू में रख कर राज्यशासन करे, एवं पाप के नाश के लिए अश्वमेध यज्ञ कर धर्म की स्थापना करे। धर्मराज ने भीम की सलाह मान कर इसे युवराज के रूप में अभिषेक किया (म. शां. ४१.८)।

बाद में सारे पाण्डवो धृतराष्ट्र से प्रेम व्यवहार रखने लगे, किन्तु भीम धृतराष्ट्र को फूटी आँखो न देख सकता था। जब धृतराष्ट्र ने वन जाने के लिए इच्छा प्रकट की, एवं राजकोष से धन की माँग की, तब भीम ने उसका विरोध किया। तब युधिष्ठिर तथा अर्जुनादि ने अपने कोषों से उसे द्रव्य दिया (म. आश्र. १७)।

भीमजलाकी एकादशी--एक बार व्यास ने इसे निर्जला एकादशी के माहात्म्य को बताया। उसे करने को यह तैयार तो हुआ, किन्तु भोजनभक्त होने के कारण, यह सोच में पड़ा गया कि, मुझे इस व्रत को हर माह पड़ेगा। किन्तु जब इसे

पता चला कि, बिना किसी भोजन तथा जलग्रहण किये हुए केवल एक बार इस व्रत को कर लेने से, सब एकादशियों का फल प्राप्त होता है, तो यह तत्काल तैयार हो गया। तब से ज्येष्ठ माह की शुद्ध एकादशी व्रत को 'भीमजलाकी एकादशी', एवं उसके दुसरे दिन को 'पाण्डव द्वादशी' कहते हैं (पद्म. उ. ५१)।

गर्वपरिहार—स्कंदपुराण में भीम के अहंकारनाश की एक कथा दी गई है। एकबार युद्ध समाप्ति के उपरांत, सभी पाण्डवों के साथ कृष्ण उपस्थित था। बातचीत के बीच सब ने युद्धविजय का श्रेय कृष्ण को देना आरम्भ किया, जिसे सुनकर भीम अहंकार के साथ कहने लगा, 'यह मैं हूँ, जिसने अपने बल से कौरवों का नाश किया है। श्रेय का अधिकारी मै हूँ'।

तब गरूड़ पर बैठकर कृष्ण भीम को अपने साथ लेकर आकाशमार्ग से दक्षिण दिशा की ओर उड़ा। समुद्र तथा सुवेल पर्वत लँघ कर लंका के पास बारह योजन व्यास के सरोवर को दिखा कर, कृष्ण ने भीम से कहा कि, यह उसके तल का पता लगा कर आये। चार कोस जाने पर भी भीम को उसके तल का पता न चला। वहाँ के तमाम योद्धाओं उसके ऊपर आक्रमण करने लगे। तब यह हाँफता हुआ ऊपर आया, एवं अपनी असमर्थता बताते हुए सारा वृत्तांत कह सुनाया। कृष्ण ने अपने अँगूठे के झटके से उस सरोवर को फेंक दिया, एवं इससे कहा, 'यह राम द्वारा मारे गये कुंभकर्ण की खोपडी है, तथा तुम पर आक्रमण करने वाले योद्धा, सरोगेय नामक असुर हैं'। यह चमत्कार देखकर भीम का अहंकार शमित हुआ, एवं लज्जित होकर इसने कृष्ण से माफी माँगी (स्कंद. १.२.६६)।

मृत्यु—काफी वर्षों तक राज्यभोग करने के उपरांत, अग्नि के कथनानुसार, पाण्डवों ने शस्त्रसंन्यास एवं राज्यसंन्यास लिया, एवं वे उत्तर दिशा की ओर मेरु पर्वत पर की ओर अग्रसर हुए। मेरु पर्वत पर जाते समय युधिष्ठिर को छोड़ कर द्रौपद्री सहित सारे पाण्डव इस क्रम से गल गये:– द्रौपद्री, सहदेव, नकुल अर्जुन एवं भीम। स्वर्गारोहण के पूर्व ही अपना पतन देखते हुए, इसने युधिष्ठिर से उसका कारण पूछाँ। युधिष्ठिर ने कारण बताते हुए कहा, 'तुम अपने को बलशाली तथा दूसरे के तुच्छ मानते थे, तथा अत्यधिक भोजनप्रिय थे। इसी लिए तुम्हारा पतन हो रहा है' (म. महा. २)।

मृत्यु के समय इसकी आयु एक सौ सात साल की थी (युधिष्ठिर देखिये)।

परिवार—भीम की कुल तीन पत्नियाँ थी:—हिडिंबा, द्रौपदी एवं काशिराज की कन्या बलधरा। उनमें से द्रौपदी से इसे सुतसोम नामक पुत्र हुआ (म. आ. ५७.९१)। हिडिंबा से इसे घटोत्कच नामक पुत्र हुआ। भागवत में द्रौपदी से उत्पन्न इसके पुत्र का नाम श्रुतसेन दिया गया है।

काशिराज कन्या बलधरा को स्वयंवर में जीत कर प्राप्त किया था। उससे इसे शर्वत्रात नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था (म. आ. ९०.८४)। भागवत में इसकी तीसरी पत्नी का नाम 'काली' दिया गया है, एवं उससे उत्पन्न पुत्र का नाम 'सर्वगत' बताया गया है (काली देखिये; भा. ९.२२.२७–३१)। महाभारत के अनुसार, इसकी पत्नी काली चेदि देश के सुविख्यात राजा शिशुपाल की बहन थी, जो भीम का कट्टर शत्रु था (म. आश्र. ३२.११)।

भीमसेन पारिक्षित—सुविख्यात पूरुवंशीय सम्राट परिक्षित् का पुत्र, जो जनमेजय पारिक्षित का बन्धु था (श. ब्रा. १३.५.४.३)। शौनक नामक आचार्य ने इससे एक यज्ञ करवाया था (सां. श्रौ. १६.९.३; विष्णु. ४.२०.१; म. आ. ३.१)। कुरुक्षेत्र में किये यज्ञ में इसने देवताओं की कुत्तियाँ सरमा के बेटे को पीटा था।

२. (सो. पूरु.) एक पूरुवंशीय राजा, जो अरुग्वत् पुत्र परिक्षित् (द्वितीय) का पुत्र था। इसकी माता का नाम सुयशा था। इसकी पत्नी का नाम सुकुमारी था, जो केकय देश की राजकुमारी थी। सुकुमारी से इसे पर्यश्रवस् नामक पुत्र उत्पन्न हुआ (म. आ. ९०-४५)।

भीरु—मणिभद्र नामक दक्ष के पुत्रों में से एक। इसकी माता का नाम पुण्यजनी था।

भीषण—एकचक्रा नगरी में रहनेवाले बक नामक असुर का पुत्र। इसके पिता का वध भीससेन के द्वारा हुआ (बक देखिये)। अपने पितृवध के कारण, यह मन ही मन जलता रहा, जिसके कारण आगे चल कर, इसने पांडवों का अश्वमेधीय अश्व एकचक्रा नगरी के समीप पकड़ लिया। पश्चात् अर्जुन ने इसके साथ घोर युद्ध कर इसका वध किया (जै. अ. २२)।

२. एक असुर, जिसे हनुमान् ने परास्त किया था (पद्म. उ. २०६)।

३. (सो. विदूरथ.) एक राजा, जो मत्स्य के अनुसार हृदिक राजा का पुत्र था।

भीष्म—(सो. कुरु.) सुविख्यात राजनीति एवं रणनीति शास्त्रज्ञ जो कुरु राजा शन्तनु के द्वारा गंगा नदी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। अष्टवसुओं में से आठवें वसु के अंश से यह उत्पन्न हुआ था (म. आ. ९०.५०)। इसका मूल नाम 'देवव्रत' था। गंगा का पुत्र होने के कारण, इसे 'गांगेय' 'जाह्नवीपुत्र,' 'भागीरथीपुत्र' आदि नामांतर भी प्राप्त थे। 'भीष्म' का शाब्दिक अर्थ 'भयंकर' है। इसने अपने पिता शन्तनु के सुख के लिए आजन्म अविवाहित रहने एवं राज्यत्याग करने की भयंकर प्रतिज्ञा की थी। इसीसे इसे 'भीष्म' कहा गया।

ध्येयवादी व्यक्तित्व—एक अत्यधिक पराक्रमी एवं ध्येयनिष्ठ राजर्षि के रूप में भीष्म का चरित्रचित्रण श्री व्यास के द्वारा महाभारत में किया गया है। परशुराम जामदग्न्य के समान युद्धविशारदों को युद्ध में परास्त करनेवाला भीष्म महाभारतकालीन सर्वश्रेष्ठ पराक्रमी क्षत्रिय माना जा सकता है।

अपने इस पराक्रम के बल पर कुरुकुल का संरक्षण करना, एवं उस कुल की प्रतिष्ठा को बढाना, यही ध्येय भीष्म के सामने आमरण रहा। कुरुवंशीय राजा शंतनु से ले कर चित्रांगद, विचित्रवीर्य, पाण्डु, धृतराष्ट्र तथा दुर्योधन तक कौरववंश की 'संरक्षक देवता' के रूप में यह प्रयत्नशील रहा।

अपने इस ध्येय की पूर्ति के लिये, अपनी तरुणाई में सभी विलासादि से यह दूर रहा, एवं वृद्धावस्था में मोक्षप्राप्ति के प्रति कभी उत्सुक न रहा। यह चाहता था केवल कुरुवंश का कल्याण एवं प्रतिष्ठा, जिसके लिए यह सदैव प्रयत्नशील रहा।

भीष्म का दैवदुर्विलास यही था कि, जिस कुरुवंश की महत्ता के लिए यह आमरण तरसता रहा, उसी कुरुकुल का संपूर्ण विनाश इसके आँखों के सामने हुआ, एवं इसके सारे प्रयत्न विफल साबित हुए। चित्रांगद, विचित्रवीर्य, पाण्डु, धृतराष्ट्र जैसे अल्पायु, कमजोर एवं शारिरीक व्याधीउपाधियों से पीडित राजाओं के राज्य को अपने मजबूत कंधों पर सँभलनेवाला भीष्म, भारतीययुद्ध के काल में कुरुवंश को आपसी दुही से न बचाया सका।

इसी कारण, भारतीय युद्ध के दसवें दिन, इसने अत्यंत शोकाकुल हो कर अर्जुन से कहा, 'मुझे युद्ध में परास्त कर मेरा पराजय करने की ताकद दुनिया में किसी को भी नही है। किंतु मेरा दुर्भाग्य यही है कि, पराजित हो कर ही मुझे मृत्यु प्राप्त करनी है। अतएव, मुझे युद्ध में हरा कर, तुम विजय प्राप्त करो'।

योग्यता—भीष्म सर्वशास्त्रवेत्ता, परम ज्ञानी एवं तत्त्वज्ञान का महापंडित था। यह किसी की समस्याओं की तत्काल सुलझा देनेवाला, संशय का शमन करनेवाला, तथा जिज्ञासुओं की शंकासमाधान करनेवाला सात्विक विचारधारा का उदार महापुरुष था। यह रणविद्या, राजनीति, अर्थशास्त्र, एवं अध्यात्मज्ञान के साथ धर्म, नीति, एवं दर्शन का परमवेत्ता था।

गंगा ने वसिष्ठद्वारा, इसे समस्त वेदों में पारंगत कराया था। बृहस्पति तथा शुक्राचार्य के द्वारा इसने अस्त्रशस्त्र का ज्ञान प्राप्त किया था। परशुराम से अन्य आस्त्र शास्त्रो के साथ धनुर्वेद, राजधर्म तथा अर्थशास्त्र भी सीखा था (म. आ. ९४.३१-३६)। इसके अतिरिक्त च्यवन भार्गव से साङ्गवेद, वसिष्ठ से महाबुद्धि, पितामहसुत से अध्यात्म, एवं मार्कण्डेय से यतिधर्म का ज्ञान प्राप्त किया था। शुक्र तथा बृहस्पति का तो यह साक्षात् शिष्य ही था। यह किसी के मारने से न मरनेवाला 'इच्छामरणी' था, अर्थात जब यह चाहे तभी इसकी मृत्यु सम्भव थी (म. शां. ३८.५-१६; ४६.१५-२३)।

जन्म—ब्रह्मा के शाप के कारण, गंगा नदी को पूरुवंशीय राजा शंतनु की पत्नी बनना पड़ा। वसिष्ठ के शाप तथा इंद्र की आज्ञा से अष्टवसुओं ने गंगा के उदर में जन्म लिया। उनमें से सात पुत्रों को गंगा ने नदी में डुबो दिया। आठवाँ पुत्र 'द्यु' नामक वसु का अंश था, जिसको डुबाते समय शंतनु ने गंगा से विरोध किया। यही पुत्र भीष्म है, जिसे साथ ले कर गंगा अन्तर्धान हो गयी। इस आठवें पुत्र को वसुओं द्वारा यह शाप दिया गया था कि, यह निःसंतान ही होगा।

अपने पुत्र भीष्म को गंगा को दे देने के उपरांत, करीब छत्तीस वर्षों के उपरांत शंतनु मृगया खेलने गया। हिरन के पीछे दौड़ता हुआ गंगा नदी के पास आ कर उसने देखा कि, यकायक उसका पानी कम हो गया। शंतनु को आश्चर्य की सीमा न रही। जब उन्होंने देखा कि, एक सुन्दर बालक ने अपने अचूक शरसंधान के द्वारा गंगा का प्रवाह रोक रक्खा है। इस प्रकार बालक की अस्त्रविद्या को देख कर, वह चकित हो गया (म. आ. ९४.२२-२५)।

यह बालक और न हो कर, शंतनुपुत्र भीष्म ही था। किन्तु इतने दिनों के बाद देखने के कारण, वह उसे पहचान न सका। जैसे ही शंतनु ने इसे देखा, वह तत्काल ही दृष्टि से ओझिल हो गया। उसके मन में शंका हुयी, कहीं यह मेरा तो पुत्र नहीं? यह बात मन में आते ही उसने गंगा को सम्बोधित कर पुत्र को पुनः दिखाने के लिए आग्रह किया। तब स्त्रीरूपधारणी गंगा शुभ्र परिधानों तथा बहुमूल्य अलंकारों को धारण किए हुए उपस्थित हुयीं। अन्त में गंगा ने सपूर्ण पूर्वकथन कहते हुए, अपने पुत्र भीष्म को अपनी गोद से उतार कर, राजा शंतनु को दिया (म. आ. ९४.३१)।

जिस समय गंगा ने भीष्म को दिया, उस समय उसका मातृहृदय शोक से विह्वल था, क्योंकि, जिस पुत्र का पालन पोषण किया, शिक्षादि दी, वही पुत्र आज उससे दूर जा रहा था। अंत में गंगा उस पुत्र को दे कर अंतर्धान हो गयीं।

हस्तिनापुर में—शंतनु ने गांगेय (भीष्म) को अपनी राजधानी हस्तिनापुर लाया, तथा शुभ मुहूर्त पर उसका युवराज्याभिषेक किया (म. आ. ९४.३८)। इस प्रकार राज्यसूत्र को अपने हाथों में ले कर, यह अपने पिता की राज्यव्यवस्था की देखरेख करने लगा। इसकी योग्यता एवं व्यवहार से समस्त प्रजा एवं अन्यजन प्रसन्न थे।

भीष्मप्रतिज्ञा—गंगा के विरह में पीड़ित शंतनु को कुछ भी न सूझता था। एक दिन जब वह मृगया के लिए गया था, तो उसे पास ही कहीं किसी सुगन्ध का ज्ञान हुआ। उस सुगन्ध को ढूंढ़ते ढूंढ़ते, वह एक धीवरकन्या सत्यवती के पास आ खड़ा हुआ, जिसके शरीर से वह मादक सुगन्ध चारों ओर फैल कर, वातावरण को भर रही थी। शंतनु उसकी उठती युवावस्था एवं कौमार्य को देख कर लुब्ध हो उठा, एवं धीवर से उसे प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की। किन्तु धीवर ने सत्यवती को देने से इन्कार करते हुए कहा, 'भीष्म के रहते हुए, सत्यवती का भावी पुत्र राज्य नहीं प्राप्त कर सकता। आप उसके भावी पुत्र को अपने उपरांत राज्याधिकारी घोषित करें, तो मैं आप को सत्यवती को इसी क्षण दे सकता हूँ।' धीवर की यह बात सुनते ही शंतनु खिन्न हो उठा, एवं निराश हृदय वापस लौट आया, क्योंकि वह नहीं चाहता था कि, भीष्म सा योग्य नेता राज्याधिकार से पदच्युत किया जाय।

सत्यवती की मोहकता ने शंतनु के हृदय में इतना घर कर लिया कि, वह दिन पर दिन चिन्ता में जलने लगा। भीष्म ने पिता की उदासीनता का कारण कई बार पूँछा, किन्तु उसने इसे लज्जावश न बताया। आखिर एक दिन भीष्म को पता चल ही गया। पितृसुख के लिए स्वार्थत्याग करने का निश्चय कर, यह उस धीवर के पास जा पहुँचा। वहाँ इसने धीवर से अपने पिता के लिए सत्यवती को माँगा, किंतु उसने अबकी बार भी वही शर्त सामने रखी। तब भीष्म ने आजन्म ब्रह्मचारी रह कर राज्यलोभ छोड़ कर, सदैव सत्यवती के पुत्रों की रक्षा करते हुए, उसके द्वारा हुए ज्येष्ठ पुत्र को ही राज्याधिकारी बनाने की प्रतिज्ञा की (म.आ. ९४.७९)। इसकी इस भयंकर प्रतिज्ञा सुन कर देवताओ ने पुष्पवर्षा करना आरम्भ किया, एवं इसे 'भीष्म' नाम दिया (म. आ. ९४.९३)।

शंतनु की मृत्यु—भीष्म सत्यवती को ले आया, जिसे देखते ही पिता ने इसे आनंदित हो कर आशीर्वाद दिया, 'तुम 'इच्छामरणी' होगे' (म. आ. ९४.९४)। बाद में सत्यवती के चित्रांगद तथा विचित्रवीर्य नाम के दो पुत्र हुए। उनमें से चित्रांगद को गद्दी पर बैठा कर भीष्म स्वयं राज्यभार ले कर राजकाज चलाता रहा।

उग्रायुधवध—शन्तनु की मृत्यु के उपरांत, उसकी नवयौवना पत्नी सत्यवती को प्राप्त करने के लिए पड़ोस के राजा उग्रायुध ने भीष्म के पास सन्देश भेजा कि, यह अपनी सौतीली माँ सत्यवती को उसके यहाँ भेज दे। किन्तु अपने पिता के शोक में विह्वल भीष्म ने इसका कोई उत्तर न दिया। इस पर क्रोधित होकर उग्रायुध ने भीष्म पर चढ़ाई करने के लिए सेनापति को आज्ञा दी। लोगों ने समझाया भी कि, भीष्म इस समय अशौच में है। अतएव इस समय उसे छेड़ना उचित नहीं। किन्तु उग्रायुध ने भीष्म पर हमला कर दिया। युद्ध तीन दिन तक चलता रहा, तथा उसके उपरांत, भीष्म ने उग्रायुध का वध किया (ह. वं.१.२०.४९–७१; म. शां. २७.१)।

विचित्रवीर्य का राज्यारोहण—एक बार गंधर्वों से युद्ध करता हुआ चित्रांगद उनके द्वारा मारा गया, तब सत्यवती की अनुमति से इसने विचित्रवीर्य को गद्दी पर बैठाया। किन्तु विचित्रवीर्य अभी छोटा ही था, अतएव राज्य की पूरी देखदेख भीष्म ही करता था। विवाहयोग्य आयु होने के उपरांत, भीष्म ने उसके विवाह का निश्चय किया। इतने में इसे पता चला कि, काशिराज की तीन कन्याओं अंबा, अंबिका एवं अंबालिका की शादी के लिए

स्वयंवर होने वाला है। अतएव यह वहाँ गया, एवं वहाँ एकत्र हुए सभी राजाओं को चुनौती देकर, उसकी तीनों कन्याओं का हरण कर आया। विचित्रवीर्य का उन कन्याओं से विवाह करने लिए इसने मुहुर्तादि भी ठीक कराई। किन्तु बड़ी बहन अंबा को छोड़कर अन्य दो बहनों से ही विचित्रवीर्य का विवाह हुआ, जिनका नाम अंबिका एवं अंबालिका था।

अंबाविरोध—काशिराज की बड़ी कन्या अंबा ने कहा कि, 'मैं विचित्रवीर्य से शादी न करूँगी, कारण कि मने मन में शाल्व का वरण किया है'। भीष्म इस पर राजी हो गया। अंबा शाल्व के पास गयी, लेकिन वह अंबा को वरण करने को राजी न हुआ। तब उसने आकर भीष्म से कहा, 'मै शाल्व से विवाह करना चाहती थी, तथा तुम उसमें बाधक बन कर आये। तुमने मेरा हरण किया है, अतएव शास्त्रोक्त के अनुसार, तुम्हें मुझसे शादी करनी चाहिए। मैं कदापि विचित्रविर्य से विवाह न करूगी, मेरा उससे सम्बन्ध ही क्या?' किन्तु भीष्म तैयार न हुआ। इस कारण अंबा भीष्म से अत्यधिक क्रुद्ध हुयी, एवं इसके प्राप्ति के लिए तप करने लगी।

तपस्याकाल में, एक दिन अंबा की भेंट अपने नाना होत्रवाहन सृंजय से हुयी। उससे अंबा ने अपना सारा रोना कह सुनाया कि, किस तरह वह शाल्य का वरण करना चाहती थी, तथा किसी प्रकार शाल्व एवं भीष्म उसका वरणरूप में स्वीकार करने लिए राजी नहीं है। यह कह कर, अंबा ने सृंजय से कुछ मदद चाही। लेकिन उसने कहा, 'यदि तुम मदद ही चाहती हो, तो परशुराम के पास जाओ। वह तुम्हारी मदद करेंगे।'

परशुराम से युद्ध—फिर अंबा परशुराम के पास गयी, एवं उससे प्रार्थना की कि, वह भीष्म का वध करे, जिसने उसका हरण कर उसका जीवन बर्बाद किया है, तथा वरण करने के लिए भी तैयार नहीं है। परशुराम ने कहा 'मैंने किसी ब्राह्मण के कार्य हेतु ही अस्त्रग्रहण करने की, प्रतिज्ञा की है, अतएव मैं असमर्थ हूँ'। अन्त में अंबा द्वारा बार बार प्रार्थना किये जाने पर, परशुराम ने भीष्म को समझा कर मामले को सुलझाने की बात सोची।

आगे चल कर परशुराम ने गुरु के नाते भीष्म को बहुविध उपदेश दिया, एवं इस बात पर जोर दिया कि, यह अंबा को स्वीकार करे। किन्तु भीष्म अपनी बात पर अटल रहे। इससे क्रोधित होकर परशुराम ने भीष्म को द्वन्द्वयुद्ध के लिए चुनौती दी। दोनों युद्ध के लिए तत्पर ही थे कि, पुत्रचिन्ता से युक्त गंगा ने आकर भीष्म से कहा, 'परशुराम तुम्हारे गुरु हैं, तुम्हें उनसे युद्ध करना शोभा नहीं देता'। भीष्म ने कहा, 'युद्ध मै नहीं कर रहा, किन्तु अपने सत्य की रक्षा हमें करनी ही है। इस प्रकार यदि तुम्हें समझाना ही है, तो परशुराम से कहो कि वह अपने हठ को छोड़कर मेरी स्थिति पर ध्यान दें'। अपने पुत्र भीष्म को परशुराम के क्रोध से उबारने के लिए, गंगा परशुराम के पास गयी, तथा उसे बहुविध समझाने का प्रयत्न किया। किन्तु परशुराम अपने हठ पर अटल रहे।

परशुराम एवं भीष्म में चार दिन तक घोर युद्ध हुआ (म. उ. १७६-१८६)। अंत में अपने 'प्रस्वाप अस्त्र' के बल से भीष्म ने परशुराम को युद्ध में परास्त किया (म. उ. १८७.४)।

शिखंडिजन्म—भीष्म को समूल नष्ट करने के लिए अंबा पीछे पड़ गयी। पहले उसने घोर तप किया, फिर परशुराम के द्वारा इसे नष्ट करना चाहा। इसे देख कर गंगा नदी ने अंबा को शाप दिया कि, वह टेढी मेड़ी क्षुद्र नदी बनेगी। अंबा अपने अपमान का बदला लेने के लिए जी जान से जुटी ही रही। उसने शिव की उपासना कर के उससे वरदान प्राप्त किया, 'इस जन्म में न सही, अगले जन्म में शिखण्डी बन कर, तुम भीष्म के मृत्यु का कारण बन कर, उससे अपना बदला ले सकोगी'। शिवप्रसाद के बल से अगले जन्म में शिखण्डी का जन्म ले कर, अंबा ने भीष्म का वध कराया (म. उ. १७०-१९३)।

विचित्रवीर्य की मृत्यु—सात वर्षों तक राज्यभोग के साथ-साथ अत्यधिक भोगविलास में निमग्न हुआ विचित्रवीर्य राजा राजयक्ष्मा से पीड़ित मृत्यु को प्राप्त हुआ। अपनी पत्नी अंबिका एवं अंबालिका से उसे कोई संतान न थी। अतएव सत्यवती ने भीष्म को आज्ञा दी कि, वह विचित्रवीर्य की पत्नियों से संभोग कर के नियोग द्वारा पुत्र उत्पन्न करे। किंतु इसने अपनी सौतेली माता की आज्ञा की अवहेलना कर, अपने ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा पर यह दृढ़ रहा। हार कर सत्यवती ने व्यास के द्वारा संतान उत्पन्न करा कर, विचित्रवीर्य के राज्य के उत्तराधिकारी के रूप में दो पुत्र रत्न प्राप्त किये।

धृतराष्ट्र एवं पाण्डु का जन्म—विचित्रवीर्य के पुत्रों में से प्रथम पुत्र धृतराष्ट्र जन्मान्ध था, अतएव भीष्म ने विचित्रवीर्य

के उपरांत पाण्डु को राजगद्दी पर बैठाया। किन्तु पाण्डु की शीघ्र ही मृत्यु हो गयी, अतएव राज्य की सारी व्यवस्था धृतराष्ट्र ही देखने लगा। धृतराष्ट्र का व्यवहार अपने तथा पाण्डु के पुत्रों में भिन्न था, जिसका परिणाम यह हुआ कि, कौरवों एवं पाण्डु के पुत्रो (पाण्डवों) के बीच एक खाई पैदा हो गयी, जो कालांतर में चौडी ही होती गयी। अपने पिता शंतनु एवं उसके बाद विचित्रवीर्य के काल से लेकर, उसकी मृत्यु तक भीष्म हस्तिनापुर राज्य के सर्वांगीण विकासपथ की ओर ले जाने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहा। यह राज्य का सब से बड़ा कर्ताधर्ता सलाहकार एवं हर प्रकार की व्यवस्था का निर्देशक था।

धृतराष्ट्र के व्यवहार में पक्षपात देखकर, द्रुपद राजा के पुरोहित ने आकर भीष्म से शिकायत की, कि धृतराष्ट्र अपने पुत्रों की ओर सजग, एवं पाण्डवों की ओर उपेक्षित व्यवहार करता है। भीष्म ने पुरोहित का योग्य स्वागत कर पाण्डवों की ओर पूरी तरह से ध्यान देने का उन्हे वचन दिया (म. उ. २१)।

युधिष्ठिर द्वारा किये गये राजसूययज्ञ में पाण्डवों ने चतुर्दिशाओं में दिग्विजय प्राप्त कर यशःकीर्ति प्राप्त किया। पाण्डवों के इस दिग्विजय को देखकर भीष्म ने कर्ण से कहा, 'अर्जुन तुमसे अधिक पराक्रमी है जिसका उदाहरण सम्मुख है। पाण्डवों के ये दिग्विजय का कारण अर्जुन ही है।' भीष्म की इस कठोर वाणी को सुनकर कर्ण तिलमिला गया, तथा कहने लगा कि, वह अर्जुन से कहीं अधिक श्रेष्ठ है। इतना कहकर वह दिग्विजय के लिए निकल पड़ा (म. व. परि १. क्र. २४)।

भारतीय युद्ध--पाण्डवों से बन्धुत्व भाव रखने के लिए भीष्म ने अनेक बार दुर्योधन को समझाया, किन्तु उसका कुछ भी फायदा न हुआ। आखिर बात युद्ध तक आ गयी, एवं इसे दुर्योधन की मनमानी के बीच अपनी विचारधारा की हत्या करनी पडी। इसे कौरवपक्ष के सेनापतित्व का भार भी ग्रहण करना पड़ा। इस भार वहन करने के पूर्व उसने दुर्योधन से दो शर्तें रखी थी। पहली शर्त यह थी कि, यह पाण्डवो से युद्ध कर उन्हें पराजित अवश्य करेगा, किन्तु युद्ध में किसी पाण्डव की हत्या अपने हाथों न करेगा। दूसरी शर्त थी कि, जिस समय यह युद्ध करेगा उस समय कर्ण इसके साथ युद्ध न करेगा, उसे इसके पीछे रहना पडेगा (म. उ. १५३.२१-२४)।

कौरवसेना का अधिपत्य स्वीकारते समय भीष्म ने दुर्योधन से विश्वास दिलाया, 'मैं सेनाकर्म, व्यूहरचना, भृत एवं अभृत लोगों से कार्य चलाना, सैन्यसंचलन एवं आक्रमण कर्मों में प्रवीण हूँ। युद्धशास्त्र में मेरा ज्ञान देवगुरु बृहस्पति के समान है। मैं तुम्हे विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि, मैं तुम्हारा सैनापत्य का कार्य अच्छी तरह से निभाऊंगा, एवं एक महिने से पहले पांडवसेना को ध्वस्त कर दूंगा' (म. उ. १९४)।

कौरव एवं पांडव सेना का बलाबल--भारतीय युद्ध आरम्भ होने के पूर्व सेनापति भीष्म ने कौरव एवं पांडवों के चतुरंगिणी सेना की विस्तृत जानकारी एवं बलाबल दुर्योधन को बताया था (म. उ. १६४)। महाभारत के 'रथसंख्यान' पर्व (१६१-१६९) में प्राप्त इस जानकारी से प्रतीत होता है कि, जिस प्रकार पदाति-दल, अश्व-दल आदि में सैनिकों की विभिन्न श्रेणियाँ थी, उसी प्रकार कुशलता की मात्रा से रथसेना में भी अनेक पद थे।

भीष्म के द्वारा बतायी गयी श्रेणियाँ इस प्रकार थी:- रथयूथपयूथप, महारथ, अतिरथ, अर्धरथ एवं रथोदार। उनमें से रथयूथपयूथप सबसे बड़ा पद था, एवं रथीदार सबसे छोटा पद था। भीष्म के द्वारा निर्देश किये गये कौरवसेना के विभिन्न रथयोद्धा निम्न प्रकार थे:--

कौरवपक्ष

(१) **अतिरथ**-भीष्म, कृतवर्मन् भोज, बाह्लीक, शल्य।

(२) **अर्धरथ**--कर्ण।

(३) **एकरथ**--शकुनि, सुदक्षिण कांबोज, दंडधार।

(४) **महारथ**--अश्वत्थामन्, जो रथ योद्धाओं में अतुल्य माना जाता था, और पौरव।

(५) **रथ**--अचल, वृषक गांधार।

(६) **रथयूथपयूथप**--उग्रायुध, कृप शारद्वत, द्रोण, भूरिश्रवस्।

(७) **रथवर**--जलसंध मागध।

(८) **रथसत्तम**--बृहद्बल कौसल्य, वृषसेन, दुर्योधनपुत्र लक्ष्मण, विंद एवं अनुविंद, शल्य, जयद्रथ, अलायुध।

(९) **रथोदार**--दुर्योधन, सुशर्मन्, एवं उसके चार भाई।

पांडवपक्ष

(१) **अतिरथ**--धृष्टद्युम्न (सेनापति), कुंतिभोज पुरुजित्, वसुदान, श्रेणिमत्, सत्यजित् (द्रुपदपुत्र)।

(२) **अर्धरथ**--क्षत्रधर्मन् (धृष्टद्युम्नपुत्र)।

(३) **महारथ**--अज, अमितौजस् चेकितान, जयन्त, द्रुपद, द्रौपदेय, धृष्टकेतु (शिशुपालसुत), भोज, रोचमान, विराट, शंख, श्वेत, सत्यजित्, सत्यधृति।

(४) **रथ**—अर्जुन, उत्तमौजस् उत्तर वैराटि, काश्य (अष्टरथ), भीम (अष्टरथ), वार्धक्षेमि।

(५) **रथमुख्य**—शिखंडिन्।

(६) **रथयूथपयूथप**—अभिमन्यु, घटोत्कच, माधव, सात्यकि।

(७) **रथसत्तम**—क्रोधहन्तृ, चित्रायुध, सेनाबिन्दु।

(८) **रथिन्**—नकुल, सहदेव।

(९) **रथोत्तम**—क्षत्रदेव, पांड्यराज।

(१०) **रथोदार**—काशिक, केकयबन्धु (पंचक), चंद्रसेन, नील, मदिराश्व, युधामन्यु, युधिष्ठिर, व्याघ्रदत्त, शंख, सुकुमार, सूर्यदत्त।

कर्ण-भीष्म विरोध—भीष्म के द्वारा किये गये उपर्युक्त रथि महारथियों के वर्णन में कर्ण को रथी अथवा महारथी न कहकर केवल अर्धरथों में उसकी गणना की। द्रोणाचार्य ने भी उसे अपनी संमति दी। यह अपना अपमान समझकर कर्ण क्रोध से उछल पडा। उसने दुर्योधन से कहा, 'बुढ़ापे के कारण, भीष्म मतिभ्रष्ट हो चुका है। ऐसे मतिभ्रष्ट लोगों की सलाह लेना मुझे सरासर मूर्खता प्रतीत होती है। दुष्टबुद्धि भीष्म कौरवों में फूट पाडना चाहता है। मेरी राय यही है कि, इस मतिभ्रष्ट एवं दुष्टबुद्धि बूढे का पल्ला तुम छोड दो। जबतक यह भीष्म कौरवसेना का सेनापति है तबतक मैं युद्ध में भाग नही लूँगा' (म. उ. १६५.१०-२७)।

इस पर भीष्म ने भी अत्यंत क्रुद्ध हो कर दुर्योधन से कहा, 'कवचकुंडल आदि के त्याग से निर्बल, एवं परशुराम तथा ब्राह्मणों के शाप से इंद्रियदुर्बल हुए पापी कर्ण के लिए, अर्धरथ यह नीच श्रेणि ही योग्य है'। आगे चल कर इसने कर्ण से कहा, 'मुझे बूढ़ा कहने की हिंमत तू ने की है। किन्तु मै चुनौति देता हूँ कि, युद्ध में तुम्हारा पराजय करने की ताकद आज भी मेरे जर्जर बाहुओं में है। परशुराम जामदग्न्य आदि यों को मैने रणभूमि में पराजित किया है। फिर तेरे जैसे पापी मनुष्य का पराजय करना मेरे बाये हाथ का खेल है'।

अपने गुरु भीष्म एवं परममित्र कर्ण के दरम्यान हुए इस वाक्युद्ध के कारण, दुर्योधन अत्यधिक कष्टी हुआ, एवं उसने इन दोनों को शान्त होने के लिए प्रार्थना की (म. उ. १६६.१-१०)।

सेनापत्य—भारतीय युद्ध में प्रथम दस दिन यह कौरव सेना का सेनापति रहा। इसके रथ की पताका पर ताड़वृक्ष का चिह्न था (म. वि. १४८.५)। इन दस दिनों में अत्यधिक वीरता के साथ लड़कर, एवं सैन्यसंचालन कर, इसने पांडवों की सेना को ध्वस्त कर जर्जर ही नहीं बनाया; बल्कि उनकी जीत की आशा को भी मिट्टी में मिला दिया। इसकी युद्धवीरता का प्रमाण इससे अधिक क्या हो सकता है कि, युद्धभूमि में कभी अस्त्रग्रहण न करने की प्रतिज्ञा करनेवाले भगवान कृष्ण को भी अस्त्रग्रहण करना पड़ा। भारतीय युद्ध के तीसरे एवं नवें दिन अर्जुन की रक्षा के लिए कृष्ण को हाथ में सुदर्शन चक्र ले कर युद्धभूमि में उतरना पड़ा (म. भी. ५५; १०२)।

भारतीययुद्ध के तीसरे दिन इसका तथा अर्जुन का घनघोर युद्ध हुआ, जिसमें अर्जुन आहत हो कर मूर्च्छित हो गया। यह देख कर कृष्ण अत्यधिक क्रुद्ध हुआ, एवं अर्जुन की रक्षा के लिए हाथ में सुदर्शन चक्र ले कर स्वयं युद्धभूमि में प्रविष्ट हुआ। कृष्ण का यह रौद्ररूप देख कर भीष्म ने अपने अस्त्र-शस्त्र नीचे रख दिये, एवं श्रद्धावनत हो कर कृष्ण से कहा, 'स्वयं कृष्ण भगवान् से मेरी हत्या हो रही है, यह मेरा सौभाग्य है'। ऐसा कह कर इसने कृष्ण का स्तवन किया। इतने गें अर्जुन ने होश में आकर कृष्ण से प्रार्थना की, 'युद्धभूमि में आप न उत्तरे, अभी मै युद्ध के लिए काफी हूँ'।

दुर्योधनआक्षेप—भारतीययुद्ध के दसवें दिन, दुर्योधन ने भीष्म पर आक्षेप लगाते हुए कहा, 'आप का मन तो पाण्डवों के पक्ष की ओर है। अतएव युद्ध में हमारी जीत संभव कहाँ?' भीष्म ने चिन्तित हो कर गंभीरतापूर्वक कहा, 'मैं बूढ़ा हूँ, फिर भी जो होता है करता हूँ, तथा किसी प्रकार कर्तव्य से च्युत नहीं। पाण्डव बल पौरुष में श्रेष्ठ तथा रणभूमि में अजेय हैं। फिर यदि तुम मेरे रणकौशल को ही देखना चाहते हो तो कल देख सकते हो। देखना, या तो कल पाण्डवों की हार होगी, या मेरी मृत्यु' (म. भी. १०५.२६)।

पाण्डवविहीन पृथ्वी को बनाने की भीष्मप्रतिज्ञा को सुन कर सभी पाण्डव भयभीत हो उठे। क्यों कि, वे समस्त कौरवसेना में भीष्म की ही शक्ति का सिक्का मानते थे। कृष्ण ने पाण्डवों के बचाने के लिए अर्जुनादि के सामने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा, 'तुम लोग यदि अपना जीवन चाहते हो, तो भीष्म की मृत्यु का उपाय करो, अन्यथा तुम को पराजित हो कर, अपने प्राणों की आहुति देनी पड़ेगी'।

कृष्ण से भेंट—नवें दिन की रात्रि को कृष्ण धर्मादि पाण्डवों को साथ ले कर भीष्म से मिलने उसके शिविर गया। कृष्ण ने भीष्म से कहा, 'आपकी प्रतिज्ञा सुन कर सभी पाण्डव आतंकित हो उठे हैं। अब आपकी मृत्यु किस प्रकार सम्भव हो कि, जिससे पाण्डव की रक्षा की जा सके?।' भीष्म ने कृष्ण के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा, 'जिसके रथ का ध्वज अभद्र हो, जो हीन जाति का हो, अथवा जो स्त्री हो उससे मैं युद्ध कदापि न करूँगा।' द्रुपद राजा का पुत्र शिखण्डी पूर्वकाल में स्त्री था, बाद में पुरुष बना। अतएव उसे सामने कर के, यदि अर्जुन युद्ध करेगा, तो मै कुछ न कर सकूँगा, तथा मुझे अर्जुन सहज ही युद्ध में जीत सकेगा। इस प्रकार पाण्डव सुलभता के साथ रणभूमि में कौरव को जीतकर राज्य प्राप्त कर सकते हैं' (म. भी. १०३)।

दूसरे दिन भीष्म के बताये हुए मार्ग को अपना कर शिखण्डी को सामने रखकर अर्जुन ने भीष्म को पराजित किया (म. भी. ११३-११४)। भीष्म पतन का यह दिन पौष के कृष्णपक्ष की सप्तमी थी, एवं उससमय फल्गुनी नक्षत्र था (भारतसावित्री)।

शरशय्या—इसके वध के समय सर्वांग बाणों से बिद्ध था। रथ से गिरकर बाणों पर ही टिका हुआ भूमि पर यह इस प्रकार आ गिरा, मानों शरशय्या में लेटा हो। इसका सर केवल बाणों से बचा था, जो शरशय्या से लटक रहा था। उसे देखकर अर्जुन ने तीन बाणों को मार कर, इसके सर के लिए तकिया बना दिया। शरशय्या में पड़ा हुआ यह अधिक प्यासा हो उठा था, जिसे देखकर अर्जुन ने अपने एक बाण द्वारा गंगा नदी के प्रवाह को अपनी ओर खींचकर, उस धारा के द्वारा भीष्म की तृषा का हरण किया। अर्जुन की इस सेवा से भीष्म अत्यधिक प्रसन्न हुआ (म. भी. ११५)।

जिस समय भीष्म पितामह शरशय्या में आहत था, उस समय अनेकानेक ऋषि, मुनि, देवी देवतादि इसके दर्शन करने आये थे। इन सारे ऋषिमुनियों को एवं अपने कौरवपांडव बांधवो को इसने नानाविध रूप से उपदेश दिया। इसने दुर्योधन से कहा, 'मेरी मृत्यु कौरव पाण्डवों के बीच हुए वैरभाव की अन्तिम आहुति हो, तो अच्छा है। इससे तुम सभी विनष्ट होने से बच जाओगे'।

यह आजीवन कर्ण को हेय दृष्टि से देखता रहा, कारण कि वह जन्म से हीन था। कर्ण भी हृदय से इसका आदर न करता था। किन्तु अन्तिम समय, जब कर्ण इससे मिलने आया, तब सारे भेदभावों को भूल कर इसने उसका दृढ़ आलिंगन करते हुए सदुपदेश दिया, 'या तो तुम कौरव पाण्डवों के बीच मित्रता स्थापित कराओ, अथवा कौरवों के पक्ष को छोड़कर पाण्डवों के पक्ष में सम्मिलित हो जाओ'। दुर्योधन को तनमनधन से मित्रता का व्रत लेने वाले कर्ण ने भीष्म से कहा, 'दुर्योधन मेरा मित्र है, अतः आप मुझे यह अनुज्ञा दें कि, उसी के पक्ष में लड़ता हुआ मैं पाण्डवों का पराभव करूँ'। भीष्म ने उसके व्रत को सुनकर उसे अनुज्ञा प्रदान की (म. भी. ११६-११७)।

भारतीय युद्ध में अपने कुरुवंशी बन्धुओं का क्षय देख कर युधिष्ठिर अत्यधिक शोकमग्न हुआ था। उसे इस प्रकार उदास देखकर, अपने धर्मोपदेश के द्वारा भीष्म ने उसे शान्ति प्रदान की। युधिष्ठिर को धर्मोपदेश देते समय भीष्म इतना शक्तिहीन हो चला था कि, कृष्ण ने उसे शक्ति प्रदान कर, उपदेश देने के योग्य बनाया (म. शां. ५२; भा. १.९; ९.२२.१९)। पितामह भीष्म एवं युधिष्ठिर के बीच हुयी ज्ञानचर्चा महाभारत के 'शान्ति' एवं 'अनुशासन' पर्व में प्राप्त है, जो आज भी अपनी अपार ज्ञानराशि के कारण, जीवन के परम सत्य की ओर पथनिर्देश कराने में सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है।

प्राणत्याग--अर्जुन के द्वारा आहत होकर जब यह शरशय्या पर पड़ा हुआ था, उस समय सूर्य दक्षिणायन था। अतएव इच्छाबल पर इसने अपने प्राणों को रोक रखा था। जैसे ही सूर्य उत्तरायण आया, इसने अपने प्राण विसर्जित किये (म. अनु. १६८.७)। यह दिन माघ सुदी अष्टमी थी (निर्णयसिंधु पृ. १६३)। जिस समय यह अपने प्राणों को त्याग कर निजधाम जाने की तैयारी में था, उस समय अनेकानेक शत्रुमित्र पक्ष के लोगों के अतिरिक्त, न जाने कितने ऋषिमुनि आदि इसके दर्शन कर, उपदेश ग्रहण करने की लालसा से आये थे। इसकी मृत्यु विनशन क्षेत्र में हुयी (भा. १.९.१)।

मृत्यु के समय इसकी आयु सम्भवतः १८६ वर्षों की थी। यह उम्र में करीब अपनी सौतेली माँ सत्यवती का समवयस्क था, तथा सत्यवती का पुत्र व्यास, जो उसे कौमार्य अवस्था में हुआ था, वह तो इससे कहीं अधिक छोटा था।

भीष्मचरित्र का एक कलंकित क्षण--भीष्म कौरव-वंश का वह प्रकाशस्तम्भ था, जिसने आजीवन लोगों को अपने चरित्र, कार्य, एवं रीतिनीति से आलोकित कर, उसे सन्मार्ग दिखाया। फिर भी इसके जीवन में एक

अवसर यह भी आता है कि, कौरव पाण्डवों की भरी सभा में निर्वस्त्र की जानेवाली द्रौपदी विलाप कर के भीष्म से न्याय की माँग करती है, तथा भीष्म उसकी दीनहीन दशा न देखकर, उसे पत्नीधर्म का पाठ पढ़ाते हैं।

द्यूत खेलते समय धर्म ने अपने को, समस्त पाण्डवों को तथा अन्त में द्रौपदी को भी हार लिया। कौरव द्रौपदी की लोकलज्जा का हरण कर, उसका उपहास करने लगे, तथा सभी बडे बूढों के साथ भीष्म भी चूपचाप बैठ गया। द्रौपदी ने इसी से न्याय की माँग की, क्यों कि, यह पाण्डवों तथा कौरव दोनों का हितैषी था, यही नहीं, यह परम धर्मात्मा, न्यायी एवं उचित अनुचित का समझने वाला, सभी से उम्र में बड़ा, तथा कौरववंश का कर्ताधर्ता प्रमुख व्यक्ति था। द्रौपदी ने इससे प्रश्न किया, 'धर्मराज जब कौरवों द्वारा स्वयं अपने को हार गये हैं, तब क्या उन्हें अधिकार है कि, मुझे वह दाँव पर लगायें'? भीष्म ने उत्तर दिया, 'वस्तुतः अधिकार तो नहीं, क्योंकि तुम्हें दाँव पर लगाना अनुचित है। अतएव तुम्हें कोई जीत नहीं सकता। लेकिन तुम्हें न भूलना चाहिए कि, स्त्री सदैव पति के आधीन रही है, तथा उसे अपनी पत्नी पर सदैव अधिकार रहा है। आज तुम्हारा पति युधिष्ठिर कौरवों का दास है, अतएव आर्यपत्नी होने के कारण, तुम दास की दासी हो (म. स. ६०.४०-४२)।

भीष्म के द्वारा दिये गये इस उपदेश ने द्रौपदी के हृदय को सन्तोष एवं शान्ति तो प्रदान न किया, किन्तु उसके मन को अधिक उद्विग्न बना दिया। द्रौपदी चाहती थी कि, भीष्म उस आर्तनाद करने वाली कुलवधू की लुटती हुयी लज्जा को देखकर, दुर्योधन के द्वारा दिये गये आदेशों का खण्डन करते हुए उसकी नारीत्व की रक्षा करेगा। किन्तु भीष्म तो पति की आज्ञाओं का अन्धा पालन करने पर प्रवचन दे कर ही, अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ बैठे (म. वि. परि. १.६०.२५-४५)।

कुछ धूमिल स्थल—भीष्म के चरित्र में यदाकदा कुछ धूमिल स्थल और दीख पड़ते हैं। कौरवों ने द्यूत में पाण्डवों को बुलाकर कपटपूर्ण व्यवहार के द्वारा उन्हें जीतने की योजना बनाई, जिसकी पूर्ण सूचना इसे प्राप्त थी। फिर भी इसने एक बार भी दुर्योधनादि को रोकने का प्रयत्न न किया। दुर्योधन को एक बार नहीं, हज़ार बार इसने कहा की, उसका पक्ष न्याय का नहीं, वह अन्यायी है। फिर भी भारतीय युद्ध के समय, इसने अपने आदर्शों के विरुद्ध दुर्योधन को अपना राजा मानकर, पग पग पर उसका साथ दिया। दूसरी ओर युद्धनीति के विरुद्ध, इसने अपने मरने का रहस्य कृष्ण एवं युधिष्ठिर को बताया, जो इसके विपक्षी थे। महाभारत के कई पाण्डुलिपियों में प्राप्त श्लोकों से पता चलता है कि, इन कमज़ोरियों को दृष्टि में रखकर कृष्ण ने भी इसकी कटु आलोचना की थी।

'अर्थस्य पुरुषो दास':—कौरवों का पक्ष अन्यायी हो कर भी इसने उनका साथ क्यों दिया, इसका स्पष्टीकरण भीष्म ने महाभारत में निम्न प्रकार किया है—

'अर्थस्य पुरुषो दासः' दासस्त्वर्थो न कस्यचित्।
इति सत्यं महाराज, बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः॥

(पुरुष अर्थ का दास है, पर अर्थ किसी का दास नही है। हे महाराज, यह सत्य है, कौरवों ने मुझे अर्थ से बाँध लिया हैं)।

उपर्युक्त भीष्म के कथन से साधारण रूप में यही अर्थ निकलता है कि, यह अर्थ (धन, संपत्ति) को प्रधानता देता है। यदि हम इसे इस प्रकार ले, तो भीष्म के ये शब्द इसके आदर्शात्मक जीवन का धब्बा प्रतीत होता है जो उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को ढक देता है।

किन्तु कई अभ्यासकों के अनुसार, 'अर्थस्य पुरुषो दासः' शब्दों से भीष्म के द्वारा प्रकट की गयी विवशता सिर्फ़ संपत्ति के विषय में न हो कर अधिक तर राजनैतिक ढंग की थी। 'कौटिलीय अर्थशास्त्र' में अर्थ की व्याख्या 'राजनैतिक कर्तव्य' इस अर्थ से की गयी हैं। इस प्रकार, राजनैतिक कर्तव्यों से बँधा हुआ भीष्म यदि अपने व्रत के अनुसार, आजीवन कौरव पक्ष के दुःखसुखों में सदैव एक क्रियाशील कर्ताधर्ता रहा तो, इसमें कुछ भी अनौचित्य प्रतीत नही होता।

भीष्म की तरह द्रोण, कृप एवं शल्य आदि ने भी 'अर्थेन बद्ध;' कह कर दुर्योधन के पक्ष का स्वीकार किया था। उन में से द्रोण दक्षिणपांचाल देश का राजा था, एवं शल्य युधिष्ठिर का मातुल एवं मद्र का राजा था। इन सारें राजा महाराजाओं के 'अर्थेन बद्ध;' कथन से यही तात्पर्य प्रतीत होता है कि, वे सारे दुर्योधन से वचनबद्ध थे, एवं उसी के कारण, दुर्योधन के पक्ष में शामिल हो गये थे (म. भी. ४१.३६-३७; ५१-५२; ६६-६७; ७७-७८)।

अन्य धूमिल स्थल—आधुनिक दृष्टि से हम देखे तो हमें कुछ उचित नहीं लगता कि, अपने पिता की भोगपिपासा

की तृप्ति के लिए भीष्म इतना बड़ा ब्रह्मचर्य का व्रत लेकर आगे बढ़े। उस व्रत के कारण, आगे आनेवाली कर्तव्य-शृंखलाओं को भी इसे बार बार उपेक्षा करनी पड़ी। लेकिन यह लकीर का फकीर बना, एवं अपनी पुरानी प्रतिज्ञा पर जमा रहा। इसने आजन्म ब्रह्मचर्य का व्रत न लिया होता, तो कुरुवंश दो भागों में विभक्त होकर, आपस में टकरा कर खत्म न हो जाता। चित्रांगद तथा विचित्रवीर्य ऐसी सन्तानें न होती, जो अल्पायु में ही मर गयी। पांडु तथा धृतराष्ट्र ऐसे पुत्र न होते कि, एक क्षय से मरा, तो दूसरा जन्मान्ध पैदा हुआ। इसका कारण था कि यह सभी नियोग द्वारा जन्मे थे किसी में तेज, बल तथा शक्ति न थी जिस भीष्म में वह थी, वह कर्मपथ से हठ कर निष्क्रिय धर्मपथ अपना बैठा था।

भीष्मक—एक भोजवंशीय नरेश, जो विदर्भ देश का अधिपति था। महाभारत के अनुसार, यह पृथ्वी के चौथाई भाग का स्वामी, इन्द्रसखा एवं अत्यंत बलवान राजा था। इसे हिरण्यरोमन् एवं भीमक नामान्तर भी प्राप्त थे (म. उ. १५५.१)। भांडारकर संहिता में इसके नाम के लिए 'हिरण्यलोमन्' पाठभेद प्राप्त है। इसकी राजधानी कुंडिनपुर नगरी में थी।

अपनी अस्त्रविद्या के बल से इसने पांडय, ऋथ, कैशिक जैसे दाक्षिणात्य देशों पर विजय पायी थी (म. उ. १५५. १–२)।

इसके भाई का नाम आकृति था, जो परशुराम जामदग्न्य के समान शौर्यसंपन्न था। इसे रुक्मिणीनामक एक कन्या, एवं निम्नलिखित पाँच पुत्र थे:— रुक्मिन, रुक्मरथ, रुक्मबाहु, रुक्मकेश एवं रुक्ममालिन् (भा. ३.३.३; १०.५२.२२)। यह शुरु से ही मगध देश का राजा जरासंध के प्रति भक्ति रखता था, एवं भगवान् कृष्ण के विपक्ष में था (म. स. १३.२१)। इसी कारण कृष्ण ने इसकी कन्या रुक्मिणी का हरण कर, उससे 'राक्षसविधि' से विवाह किया।

पांडवों के राजसूय यज्ञ के समय, दक्षिण दिग्विजय करता हुआ सहदेव विदर्भ देश में आ पहुँचा। उस समय भोजकट नगरी में भीष्मक एवं रुक्मिन् का उससे दो दिनों तक घनघोर संग्राम हुआ, जिसमें इन्हे हार माननी पडी। अन्त में इसने सहदेव के शासन का स्वीकार किया। महाभारत में रुक्मिन् का निर्देश 'महामात्र भीष्मक' नाम से किया गया है (म.स. २८. ४१)। भीष्मक के राज्यकाल में विदर्भ की राजधानी कुंडिनपुर में थी। भीष्मक के पुत्र रुक्मिन् ने भोजकट नगरी में अपनी नयी राजधानी बसा ली।

भुजकेतु—एक राजा, जो भारतीय युद्ध में दुर्योधन के पक्ष में शामिल था।

भुजंगम—एक नाग, जो कश्यप एवं कद्रू के पुत्रों में से एक था।

भुजातपूर—कश्यपकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

भुज्यु तौग्र्य—एक राजा, जो अश्वियों का आश्रित था। तुग्र राजा का पुत्र होने के कारण, इसे 'तौग्र्य' 'तुग्र्य' उपाधियाँ प्राप्त थी।

एकबार इसका पिता तुग्र इसपर क्रुद्ध हुआ, जिस कारण उसने इसे परद्वीपस्थ शत्रु पर आक्रमण करने के लिए भेज दिया (ऋ. १.११६.३–५; ११७.१४–१५; ११९.४)। समुद्र में प्रवास करते समय, इसकी नौका अचानक टूट पडी, जिस कारण यह बड़े संकट में फँस गया। उस समय सौ पतवार वाले नाव में प्रविष्ट हो कर अश्वियों ने इसका रक्षण किया, एवं इसे सुरक्षित रूप में किनारे पहूँचा दिया।

अश्वियों के पराक्रम का वर्णन करने के लिए उपर्युक्त कथा का निर्देश ऋग्वेद में अनेक बार प्राप्त है (ऋ. १. ११२.६; ६.६२.६–७; ६८.७; १०.४०.७; ६५.१२; १४३.५)।

भुज्यु लाह्यायनि—एक आचार्य, जो याज्ञवल्क्य ऋषि का समकालीन था। 'लह्यायन' का वंशज होने के कारण, इसे 'लाह्यायन' पैतृक नाम प्राप्त हुआ था।

पतंचल काप्य नामक आचार्य के कन्या के शरीर में प्रविष्ट होनेवाले सुधन्वन् आंगिरस नामक ऋषि से इसे विशेष ज्ञान की प्राप्त हो गयी थी। उसी ज्ञान के बल से इसने याज्ञवल्क्य ऋषि को वादविवाद में परास्त करना चाहा। किन्तु अन्त में उस वादविवाद में इसका ही पराजय हुआ (बृ. उ. ३.३.१)।

भुमन्यु—(सो. कुरु.) एक कुरुवंशीय राजा, जो जनमेजय (प्रथम) का पौत्र, एवं धृतराष्ट्र राजा का पुत्र था (म. आ. ८९.५१)। पाठभेद (भांडारकर संहिता)— 'सुमन्यु'।

२. (सो. पूरु.) एक महर्षि, जो दुष्यंत राजा का पौत्र, एवं भरत दौष्यान्ति राजा का पुत्र था। भरद्वाज ऋषि के कृपाप्रसाद से यह उत्पन्न हुआ था। इसकी माता का नाम सुनंदा था, जो काशीनरेश सर्वसेन की कन्या थी (म. आ. ९०.३४)।

इसके पिता भरत ने इसे यौवराज्याभिषेक किया। किन्तु आरम्भ से ही विरक्त प्रकृति का होने के कारण, इसने राज्यपद का स्वीकार न किया, एवं भरत के पश्चात् इसका पुत्र सुहोत्र राजगद्दी पर बिठाया गया।

इसे ऋचीककन्या पुष्करिणी एवं दशार्हकन्या विजया नामक दो पत्नियाँ थी। पुष्करिणी से इसे निम्नलिखित छः पुत्र उत्पन्न हुएः—वितथ, सुहोतृ, सुहोत्र, सुहवि, सुयजु एवं ऋचीक (म. आ. ८९.१८-२१)।

३. एक देवगंधर्व, जो अर्जुन के जन्मोत्सव में उपस्थित था (म. आ. ११२.५८)।

भुव—(स्वा. नाभि.) एक राजा, जो विष्णु के अनुसार, प्रतिहर्त्य राजा का पुत्र था।

भुवत—मगध देश के सुव्रत राजा के नाम के लिए उपलब्ध पाठभेद (सुव्रत ४. देखिये)।

भुवन—एक देव, जो कश्यप एवं सुरभि का पुत्र था।

२. एक महर्षि, जो शरशय्यापर सोये हुए भीष्म से मिलने आया था (म. अनु. २६.८)।

३. एक सनातन विश्वेदेव (म. अनु. ९१.३५)।

४. एक देव, जो भृगु एवं पौलोमि का पुत्र था।

भुवन आप्त्य—एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. १०. १५०)।

भुवना—बृहस्पति की भगिनी, जो अष्टवसुओं में से प्रभास नामक वसु की पत्नी थी। इसके पुत्र का नाम विश्वकर्मन् था (ब्रह्मांड. ३.३.२१-२९)।

भुवन्मन्यु (भुवमन्यु)—(सो. पूरु.) पूरुवंशीय भवन्मन्यु राजा के लिए उपलब्ध पाठभेद।

भूत—एक प्राचीन भारतीय मानवजाति का सामूहिक नाम। पुराणों में मानवजाति समूह के चार प्रकार कहे गये हैं, जो निम्न हैं- (१) धर्मप्रजा, जो धर्मऋषि से उत्पन्न हुयी थी। (२) ईश्वरप्रजा, जो ईश्वर से उत्पन्न हुयी थी। (३) काश्यपीयप्रजा, जो कश्यप ऋषि से हुयी थी। (४) पुलहप्रजा, जो पुलह ऋषि से उत्पन्न हुयी थी। उनमें से भूतयोनि के लोग पुलह प्रजा में से माने जाते हैं (ब्रह्माण्ड. १.३२.८८-९८;२.३.२-३४; २.७)।

जन्म—ब्रह्माण्ड के अनुसार, इन लोगों की उत्पत्ति भूत-तत्त्व से हुयी थी, एवं ये कपिशवर्णीय थे। इनका खाद्यपदार्थ 'पिशित' था (ब्रह्माण्ड २.८.३९-४०)। इनके जन्म की कथा ब्रह्माण्ड में निम्न प्रकार दी गयी है। ब्रह्मा ने नीललोहित रुद्र को प्रजा उत्पन्न करने के लिए कहा, तब उसने सती के उदर से अपने ही समान पिंगल, सनिषंग, कपर्दी तथा नीललोहित वर्णवाले लाखों भूत उत्पन्न किये, जो पिशित खानेवाले तथा आज्य तथा सोम प्राशन करनेवाले थे (ब्रह्माण्ड. २.९.६८-७८)।

स्वरूपवर्णन—ये छोटे अवयववाले (कृशाक्ष), लम्बे कानवाले (लंबकर्ण), बड़े तथा लटकते हुए ओठवाले (लम्भस्फिक, प्रलंबोष्ठ), लम्बे दाँतवाले (दंष्ट्रिन), लम्बे नखवाले (नखिन्), स्थूल शरीरवाले (स्थूलपिंडक), लम्बी भौंहोंवाले (बभ्रुव), घुँघराले खुरदरे केशवाले (हरिकेश, मुञ्जकेश), नीललोहित एवं पिंगल वर्णवाले, एवं ठिगने शरीरवाले होते थे। ये सबल, संगीतविरोधी, सर्प का यज्ञोपवीत धारण करनेवाले, तथा विभिन्न रंगबिरंगे लेपों से अपने शरीर को रंगानेवाले होते थे। ये शिव की सभा में उपस्थित रहनेवाले, हाथों में खोपड़ी धारण करनेवाले लोग थे, जो केशों को मुकुट की भाँति बना कर बाँधते थे। ये नग्नावस्था में रहते थे, तथा कभी कभी विचित्र प्रकार के वस्त्रों के साथ हाथी के चर्म को भी धारण करते थे। इनके हथियार शूल, धनु, निषंग, वरुथ तथा असि थे।

ये 'उर्ध्वरेतस्' अर्थात ब्रह्मचर्यपालन करनेवाले थे। इनमें विवाह पद्धति न होने के कारण, इनकी पत्नियाँ न होती थी। इनके सर्वसाधारण गुणों से ही इनके कुछ गण हुए थे, जिनके नाम इस प्रकार थे—शूलधर, कृत्तिवास, कपिर्दिन्, कपर्दिन्, कपालिन्, मुंजकेश, नीललोहित आदि।

ये पूर्वकाल में अत्यंत जंगली थे, किन्तु असुर एवं देवों के साथ सम्बन्ध आने पर, ये पूर्व से काफ़ी सुधर गये। असुरों के सम्पर्क में आ कर, इन्होंने युद्धकला एवं राजनीति सीखी, तथा अपने प्रकार की एक समाजव्यवस्था स्थापित की।

पुराण के निर्देशों से प्रतीत होता है कि, स्वायंभुव मन्वन्तर के पूर्वकालीन युग में ये भारतवर्ष में निवास करते थे। उस समय इनका निवासस्थान हिमालय पर्वत के उत्तर भाग में तथा उसके निकटवर्ती प्रदेशों में था। ये भारत के सर्व प्राचीन आदिवासी माने जाते हैं।

असुरों एवं भूत गणों के बीच काफी लड़ाई चलती रही। अन्त में ये उनके हमलों से अपने को बचाने के लिए, विन्ध्यपर्वत की ढ़ालों तथा घाटियों में रहने आये।

भूतनायक—पुराणों में रुद्र को भूतों का राजा माना है। उस रूप में रुद्र को 'भूतनायक' एवं 'गणनायक,' तथा भूतों को 'रुद्रानुचर' एवं 'भवपरिषद्' कहा गया

है। किन्तु रुद्र एक व्यक्ति न हो कर, इनके राजा का सामान्य नाम था। कई जगह, इनके राजा को 'गणपति' कहा गया है। इन लोगों में जो व्यक्ति सबसे अधिक बलवान् होता था, उसे राजा बना कर ये लोग उसे 'रुद्र' नाम से विभूषित करते थे। पुराणों में, इस प्रकार के दो रुद्रों का निर्देश मिलता है। उनमें से वीरभद्र नामक रुद्र 'सिंहमुख' नामक भूतगणों का प्रमुख था (वामन. ४.१७)। दूसरा नंदिकेश्वर नामक रुद्र शैलादि नामक भूत गणों का मुखिया था (मत्स्य. १८१.२)।

वामन के अनुसार, भूतगणों की कुल संख्या ग्यारह करोड़ मानी जाती है। इन भूतगणों में स्कंद, शाख एवं भैरव आदि प्रमुख व्यक्ति थे, तथा इनके अधिकार में अनेकानेक गण थे। वामन में भूतों के रूप एवं अस्त्रों की विस्तृत जानकारी दी गयी है। वहाँ पर इनके मुख की आकृति का वर्णन 'वानरास्य' एवं 'मृगेन्द्रवदन' नाम से किया गया है। भस्म, खट्वांग आदि इनके प्रमुख आयुध थे (वामन. ६७.१-२३)। इनके ध्वज पर प्रायः किसी पशु अथवा पक्षी का चिन्ह रहता था, एवं उसी पशु अथवा पक्षी के नाम से 'मयूरध्वज' अथवा 'मयूर-वाहन' ऐसे नाम गणनायक को प्राप्त होते थे।

असुरों से युद्ध--भगवान् शंकर एवं अंधकासुर के बीच हुए युद्ध में, भूतगण शंकर के पक्ष में शामिल था। इस युद्ध में, सर्वप्रथम 'विनायक' नामक भूतों के गणपति ने अंधक पर आक्रमण किया, जिस में अंधक के द्वारा वह परास्त हुआ। तत्पश्चात् नंदी नामक अन्य एक गणपति ने अंधक पर आक्रमण किया, एवं विनायक की सहाय्यता से अंधक से घमासान युद्ध कर उसे परास्त किया। अंधक शंकर की शरण में आने पर, उसे भी शिव ने अपने एक भूतगण का गणपति बनाया, एवं वह भृंगी नाम से प्रसिद्ध हुआ।

भगवान् शंकर ने महिषासुर एवं शुंभ निशुंभ के साथ किये युद्ध में, उसके भूतगणों का अधिपति रुद्र न हो कर 'रुद्राणी' नामक कई भूतस्त्रियाँ थी। इन दोनों युद्ध में भूतगणों का विजय हुआ। पुराणों में इन सारे युद्धों का निर्देश देवीमहात्म्य बताने के लिए किया गया है। यही कारण है कि, इन युद्धों का निर्देश वामन तथा मार्कंडेय पुराणों में एवं 'देवीमहात्म्य' में ही केवल उपलब्ध है।

भूतगणों के बहुत सारे युद्ध असुरगणों से ही हुए थे। किन्तु दक्षयज्ञ के समय, इन्हे देवपक्ष से संग्राम करना पडा। उस युद्ध में भी भूतगणों का विजय हुआ, एवं देव-पक्ष को बहुत बूरी तरह से हार खानी पडी (वायु. १. ३०.८९-१०१)।

देव एवं असुरों के साथ किये युद्ध में यद्यपि भूतगणों का विजय हुआ, फिर भी अन्त में इन्हे उत्तरी भारत का प्रदेश छोड़ कर, दक्षिण भारत में स्थलांतर करना पड़ा। भूतगणों का यह स्थलांतर वैवस्वत मन्वन्तर के काल तक पूर्ण हो कर उस समय ये लोग संपूर्णतः दक्षिण भारत के रहिवासी बन चुके थे।

२. एक हैहयवंशीय राजा। स्कंद के अनुसार, इसके पुत्र का नाम शंख था (शंख ४. देखिये)।

३. (सो. यदु. वसु.) एक यादव राजा, जो भागवत के अनुसार वसुदेव एवं पौरवी का पुत्र था।

४. एक ब्रह्मर्षि, जो भृगु ऋषि का पुत्र था।

भूतकर्मन्—कौरव पक्ष का एक योद्धा, जो नकुल-पुत्र शतानीक के द्वारा मारा गया (म. द्रो. २४. २३)।

भूतकेतु—एक राजा, जो दक्षसावर्णि मनु के पुत्रों में से एक था।

भूतज्योति--(सू. नृग.) एक राजा, जो सुमति राजा का पुत्र था। इसके पुत्र का नाम वसु था।

भूतधामन्--एक इंद्र, जिसे ऋतुधामन् नामान्तर भी प्राप्त है। जिन इंद्रों के अंश से पांडवों की उत्पत्ति हुओी थी, उन में से दूसरा इंद्र यह था (म. आ. १८९. १९१६* पाठ.)।

भूतनंद--(किलकिला. भविष्य.) एक किलकिला-वंशीय राजा, जिसने पचास वर्षों तक राज्य किया।

भूतनय--रैवत मन्वन्तर का एक देव।

भूतमथन—स्कंद का एक सैनिक। इसके नाम के लिए 'भूतलोन्मथन' पाठभेद प्राप्त है (म. श. ४४. ६४)।

भूतरजस्--रैवत मन्वन्तर का एक देवगण। इसके नाम के लिए 'भूतरय' एवं 'भूतरज' पाठभेद प्राप्त हैं।

भूतवर्मन्--दुर्योधन पक्ष के 'भूतशर्मन्' नामक राजा के नाम के लिए उपलब्ध पाठभेद।

भूतवीर--पुरोहितों के परिवार का एक सामुहिक नाम। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार, जनमेजय पारिक्षित राजा ने अपने कुलपरंपरागत कश्यप नामक पुरोहितों की उपेक्षा कर, इन्हे अपने पुरोहित बनाये, एवं इन्हीं के हाथों एक यज्ञसमारोह का आयोजन किया। किन्तु कश्यपों में से

असितमृग नामक आचार्य ने इन्हे यज्ञमंडप से बाहर निकाल दिया, एवं स्वयं पौरोहित्यपद धारण किया।

आगे चल कर विश्वंतर नामक राजा ने अपने श्यापर्ण नामक पुरोहितगण की इसी तरह उपेक्षा की। उस समय श्यापर्ण पुरोहितों ने अपने अनुगामियों को असितमृग कश्यप की उपर्युक्त कथा निवेदित की, एवं विश्वंतर राजा से जबरदस्ती से पौरोहित्य प्राप्त करने की सूचना दी। उसपर राम भार्गवेय नामक ऋषि ने विश्वंतर से पौरोहित्य प्राप्त किया (ऐ. ब्रा. ७.२७)।

भूतशर्मन्--कौरव पक्ष का एक राजा, जो द्रोणाचार्य के द्वारा निर्मित गरुडव्यूह के ग्रीवास्थान में खड़ा था (म. द्रो. १९.६)। इसके नाम के लिए 'भूतवर्मन्' पाठभेद प्राप्त है।

भूतसंतापन--एक राक्षस, जो हिरण्याक्ष के पुत्रों में से एक था (भा. ७.२.१८)।

भूता--पुलह ऋषि की पत्नी, जो कश्यप एवं क्रोधा की कन्याओं में से एक थी।

भूतांश काश्यप--एक वैदिक सूक्तद्रष्टा, जो कश्यप ऋषि का वंशज था (ऋ. १०.१०६)।

इसे पुत्र न होने के कारण, इसने अश्वियों की स्तुति करनेवाले एक सूक्त की रचना की। इसके द्वारा रचित यह सूक्त अत्यंत दुर्बोध है, एवं उसका अर्थ अत्यंत धूमिल है (बृहद्दे. ८.१८.२१)।

भूति--विश्वामित्र का एक पुत्र।

२. अंगिरस् ऋषि का एक शिष्य, जो अत्यंत क्रूर एवं क्रोधी था (मार्क. ९६.२)।

३. (सो. वृष्णि.) एक यादव राजा, जो वायु के अनुसार सात्यकि के पुत्रों में से एक था।

४. मार्कंडेय पुराण में निर्दिष्ट पितरों का एक गण (मार्क. ९२.९२)।

भूतिकृत एवं **भूतिद**--मार्कंडेय पुराण में निर्दिष्ट, पितरों का एक गण (मार्क. ९२.९२)।

भूतितीर्था--स्कंद की अनुचरी एक मातृका (म. श. ४५.२७)।

भूतिनंद--(नाग. भविष्य.) एक राजा, जो ब्रह्मांड एवं वायु के अनुसार, मथुरा देश का राजा था।

भूतिमित्र--(कण्व. भविष्य.) एक राजा, जो वायु के अनुसार वसुदेव राजा का पुत्र था। ब्रह्मांड एवं मत्स्य में, इसके नाम के लिए 'भूमिमित्र,' एवं भागवत एवं विष्णु में 'भूमित्र' पाठभेद प्राप्त है।

भूपति--एक सनातन विश्वेदेव (म. अनु. ९१. ३२)।

भूमन--(स्वा. प्रिय.) एक राजा, जो प्रतिहर्तृ एवं स्तुति का पुत्र था। इसे ऋषिकुल्या एवं देवकुल्या नामक दो पत्नियाँ थी, जिनसे इसे क्रमशः उद्गीथ एवं प्रस्ताव नामक पुत्र उत्पन्न हुए थे (भा. ५.१५.१५)।

भूमि--एक भूदेवी, जो ब्रह्मा की पुत्री, एवं भगवान् नारायण की पत्नी थी।

भगवान् नारायण के वाराह अवतार में उससे इसे एक पुत्र हुआ, जिसका नाम भौम अथवा नरकासुर था। भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा भौमासुर का वध होने पर, इसने स्वयं प्रकट हो कर, अदिति के दोनो कुंडल लौटा दिये, एवं भौमासुर के संतान की रक्षा के लिए श्रीकृष्ण से प्रार्थना की (भा. १०.५९.३१)।

एकबार दैत्यों के कारण यह अत्यंत त्रस्त हुयी। फिर अपना भार उतारने के लिए इसने भगवान् विष्णु से प्रार्थना की, जो वाराह अवतार ले कर विष्णु ने पूर्ण की (म. व. १४२. परि. १. क्र. १६. पंक्ति. ८२-१०८)।

परशुराम के द्वारा क्षत्रिय-संहार हो जाने के बाद, इसने कश्यप ऋषि से सर्वसमर्थ 'भूपाल' निर्माण करने के लिए प्रार्थना की, एवं परशुराम के हत्याकांड से बचे हुए क्षत्रिय राजकुमारों का पता भी उसे बताया था (म. शां. ४९.६३-७९)।

सुविख्यात सम्राट् पृथु वैन्य ने इसका दोहन किया था, जिस समय इसने उसे अपनी कन्या मानने के लिए प्रार्थना की थी (म. द्रो. परि. १. क्र. ८. पंक्ति ७९१*)।

महाभारत के अनुसार, अंग राजा से स्पर्धा करने के कारण, यह अदृश्य हो गयी थी। पश्चात् कश्यप ऋषि ने इसे पुनः स्थिर किया, जिस कारण, इसे कश्यप ऋषि की कन्या इस अर्थ से 'काश्यपी' नाम प्राप्त हुआ (म. अनु. १५३.२)।

श्रीकृष्ण को इसने ऋषि, पितर, देव एवं अतिथियों के सत्कार का महत्व कथन किया था (म. अनु. ९७. ५-२३)। इसका महिमा संजय ने धृतराष्ट्र से कथन किया था।

२. भूमिपति नामक प्राचीन नरेश की पत्नी (म. उ. ११५.१४)। संभव है, यह व्यक्तिवाचक नाम न हो कर, एक उपाधि के रूप में इसका प्रयोग किया गया होगा।

भूमिंजय--विराटपुत्र उत्तर का नामान्तर (म. वि. ३३.९)।

२. एक कौरवपक्षीय योद्धा, जो द्रोणाचार्य के द्वारा निर्मित गरुडव्यूह के हृदयस्थान पर खड़ा था (म. द्रो. १९.१३-१४)।

भूमित्र--कण्ववंशीय भूतिमित्र राजा के नाम के लिए उपलब्ध पाठभेद (भूतिमित्र देखिये)।

भूमिनी--पूरुवंशीय अजमीढ राजा की पत्नी।

भूमिपति--एक प्राचीन राजा (म. उ. ११५.१४)। संभव है, यह किसी व्यक्ति का नाम न होकर, उपाधि के रूप में प्रयुक्त किया होगा।

भूमिपाल--एक प्राचीन नरेश, जो क्रोधवश नामक दैत्य के अंश से उत्पन्न हुआ था (म. आ.६१.५६-६१)। भारतीय युद्ध में यह पांडवों के पक्ष में शामिल था (म. उ. ४.२१)।

भूमिशय--एक प्राचीन नरेश, जिसे अमूर्तरयस् राजा से खड्ग की प्राप्ति हुओ थी। आगे चल कर, उस खड्ग को इसने भरत दौष्यंति राजा को प्रदान किया था (म. शां. १६०.७३)।

भूयसि--अंगिराकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

भूयोमेधस्--सुमेधस् देवों में से एक।

भूरि--(सो. कुरु.) एक कुरुवंशीय सम्राट, जो सोमदत्त राजा का पुत्र था। इसे भूरिश्रवस् एवं शल नामक दो भाई थे।

भारतीय युद्ध के समय, यह कौरव पक्ष में शामिल था। उस युद्ध में हुए रात्रियुद्ध में, यह सात्यकि के द्वारा मारा गया (भा. ९.२२.१८; म. द्रो. १४१.१२)। अपनी मृत्यु के पश्चात्, यह एवं इसके भाई विश्वेदेवों में सम्मिलित हो गये (म. स्व. ५.१४)।

२. (सो. कुरु. भविष्य.) एक कुरुवंशीय राजा, जो मत्स्य के अनुसार विविक्षु राजा का पुत्र था। विष्णु एवं वायु में इसे 'उष्ण', तथा भागवत में इसे 'उक्त' कहा गया है

भूरिकीर्ति--एक राजा, जो कुश एवं लव का श्वशुर था। इसे चंपिका एवं सुमति नामक दो नातनें थी जो क्रमशः कुश एवं लव को विवाह में दी गयी थी, (आ. रा. विवाह. १)।

भूरितेजस्--एक प्राचीन नरेश, जो क्रोधवश नामक दैत्य के अंश से उत्पन्न हुआ था (म. आ. ६१. ५८-६१)। भारतीय युद्ध में यह पांडवों के पक्ष में शामिल था (म. उ. ४. २३)।

भूरिद्युम्न--एक प्राचीन राजा, जो यमसभा में उपस्थित था (म. स. ८.१८; २०; २५; शां. १२६. १४)। इसके पिता का नाम वीरद्युम्न था।

यह दुर्भाग्य के कारण विनष्ट हुआ था। किन्तु कृशतनु नामक ऋषि ने अपने तपोबल से इसे पुनः जीवित किया (कृशतनु देखिये)। गोदान करने के कारण, इसे स्वर्गप्राप्ति हो कर यह यमसभा में उपस्थित हुआ (म. अनु. ७६.२५)।

२. कृष्णभक्त एक ऋषि, जिसने शान्तिदूत बन कर हस्तिनापुर जाते समय मार्ग में श्रीकृष्ण की दक्षिणावर्त परिक्रमा की थी (म. उ. ८१. २७)।

३. दक्षसावर्णि मनु के पुत्रों में से एक।

४. ब्रह्मसावर्णि मनु के पुत्रों में से एक।

भूरिबल--(सो. कुरु.) धृतराष्ट्र के शतपुत्रों में से एक। यह भीम के द्वारा मारा गया (म. श. २५.१२)। इसके नाम के लिए भीमबल पाठभेद प्राप्त है।

भूरियशस्--पांचालदेशीय एक राजा, जिसके पुत्र का नाम पुरुयशस् था (पुरुयशस् देखिये)।

भूरिश्रवस्--एक कुरुवंशीय राजा, जो सोमदत्त राजा का पुत्र था (म. आ. १७७.१४)। इसे यूपकेतु एवं यूपध्वज नामान्तर भी प्राप्त थे (म. द्रो. २४.५३; स्त्री. २४.५)।

इसे भूरि एवं शल नामक और दो बंधु थे। अपने पिता एवं बन्धुओं के साथ, यह द्रौपदीस्वयंवर में उपस्थित था (म. स. ३१.८)। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भी यह उपस्थित था।

भारतीय युद्ध में यह कौरवपक्ष में शामिल था। अपनी एक अक्षौहिणी सेना के सहित, यह दुर्योधन की सहाय्यता के लिए युद्ध में प्रविष्ट हुआ (म. उ. १९. १२)। यह रथयुद्ध में अत्यंत प्रवीण था, एवं इसकी श्रेणि 'रथयूथपयूथप' थी (म. उ. १६५. २९)।

भारतीय युद्ध में शंख, धृष्टकेतु, भीम, शिखण्डिन् आदि के साथ इसका युद्ध हुआ था। मणिमत् नामक राजा का इसने वध किया था (म. द्रो. २४. ५१)।

भूरिश्रवस्-सात्यकि-युद्ध--भारतीय युद्ध में यादव राजा सात्यकि के साथ इसका अत्यंत रौद्र युद्ध हुआ।

कुरुवंशीय भूरिश्रवस् एवं यादववंशीय सात्यकि का शत्रुत्व वंशपरंपरागत था। भूरिश्रवस् के पिता सोमदत्त एवं सात्यकि के पिता शिनि दोनो देवकी के स्वयंवर में उपस्थित थे, एवं उस समय से इन दो कुलों में वैर का अग्नि सुलग

रह था। उस स्वयंवर में देवकी ने शिनि का वरण किया। उससे क्रुद्ध हो कर सोमदत्त ने शिनि से युद्ध प्रारंभ किया, जिसमें शिनि ने सोमदत्त को जमीन पर घसीट दिया, एवं उसके केश पकड़ कर उसे लत्ताप्रहार किया (शिनि एवं सोमदत्त देखिये)।

भूरिश्रवस् ने भी इस वैर की परंपरा अखंडित रखी थी। भारतीय युद्ध के प्रारंभ में ही इसने सात्यकि के दस पुत्रों का वध किया था (म. भी. ७०.२५)।

भूरिश्रवस् एवं सात्यकि के दरम्यान हुए युद्ध में, यह सात्यकि का वध करनेवाला ही था, कि इतने में सात्यकि को बचाने के लिए अर्जुन ने पीछे से आ कर इसका दाहिना हाथ तोड़ दिया (म. द्रो. ११७.६२)। क्षत्रिय के लिए अशोभनीय इस कृत्य से यह अत्यधिक क्रुद्ध हुआ, एवं अपना टूटा हुआ दाहिना हाथ अर्जुन के सम्मुख फेक कर, इसने उसकी काफी निर्भर्त्सना की (म. द्रो. ११८)। पश्चात् इस कृत्य का निषेध करने के लिए इसने आमरण अनशन शुरु किया। उसी निःशस्त्र अवस्था में सात्यकि ने इसका सर काट कर इसका वध किया (म. द्रो. ११८. ३५-३६)।

इस क्रूरकर्म के कारण, अर्जुन एवं सात्यकि की सभी लोगों ने काफी निर्भर्त्सना की। किन्तु अर्जुन ने अपने आत्मसमर्थन करते हुए कहा, 'संकुल युद्ध में शत्रु का पीछे से हाथ तोड़ने में कोई भी दोष नही है'। सात्यकि ने भी कौरवों के द्वारा निःशस्त्र अभिमन्यु का किया गया वध का दृष्टान्त दे कर, अपने कृत्य का समर्थन किया (म. द्रो. ११८.४२-४५; ४७)।

मृत्यु के पश्चात् यह विश्वेदेवों में सम्मिलित हुआ (म. स्व.)।

२. एक ऋषि, जो शुक तथा पीवरी के पुत्रों में से एक था।

३. एक राजा, जो मेरुसावर्णि मनु के पुत्रों में एक था।

४. एक आचार्य, जो मध्यमाध्वर्युओं में से एक था।

भूरिश्रुत—शुकपुत्र भूरिश्रवस् नामक आचार्य का नामांतर।

भूरिषेण—एक राजा, जो ब्रह्मसावर्णि मनु के पुत्रों में से एक था।

२. (सु. शर्याति.) एक राजा, जो भागवत के अनुसार शर्याति राजा को पुत्रों में से एक था।

भूरिहन—एक राक्षस, जो प्राचीन काल में पृथ्वी का शासक था (म. शां. २२०.५०; ५४-५५)।

भृगवाण—एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. १.१२०. ५)। ऋग्वेद में एक स्थान पर यह उस व्यक्ति का नाम है, जिसे 'शोभ' कहा गया है। किन्तु लुड्विग के अनुसार, इसका सही नाम 'घोष' था। कक्षिवत् नामक आचार्य से यह संबंधित था, किन्तु उस संबंध का स्वरूप अत्यंत संदिग्ध है।

ऋग्वेद में अन्यत्र यह शब्द अग्नि की उपाधि के रूप में आता है, जिससे भृगुओं के द्वारा की जानेवाली अग्निपूजा का आशय प्रतीत है (ऋ. १.७१.४; ४. ७.४)।

भृगु—एक वैदिक पुरोहित गण। ऋग्वेद में इसका निर्देश अग्निपूजकों के रूप में कई बार किया गया है (ऋ. १.५८.६; १२७.७)। इन्हे सर्व प्रथम अग्नि की प्राप्ति हुयी, जिसकी कथा ऋग्वेद में अनेक बार दी गयी है (ऋ. २.४.२; १०.४६.२; तै. सं. ४.६.५.२)। मातरिश्वन् के द्वारा इनकी अग्नि लाने की कथा ऋग्वेद में प्राप्त है (ऋ. ३.५.१०)।

दाशराज्ञ युद्ध के समय भृगुगण के पुरोहित लोगों का निर्देश द्रुह्युओं के साथ अनेक बार आता है (ऋ. ८.३. ९; ६.१८; १०२.४)। द्रुह्यु तथा तुर्वश के साथ साथ भृगुओं का भी राजा सुदास के शत्रुओं के रूप में उल्लेख प्राप्त है (ऋ. ७.१८)।

यह एक प्राचीन जाति के लोग थे, क्यों कि, स्तोतागण अंगिरसों तथा अथर्वनों के साथ साथ इनकी अपने सोमप्रेमी पितरों के रूप में चर्चा करते हैं। समस्त तैंतीस देवों, मरुतों, जलों, अश्विनों, उषस् तथा सूर्य के साथ भृगुओं का भी सोमपान करने के लिए आवाहन किया गया है (ऋ. १०.१४; ८.३)। इनकी सूर्य से तुलना की गई है, तथा यह कहा है कि, इनकी सभी कामनाएँ तृप्त हो गयीं थीं (ऋ. ८.३)।

अग्नि को समर्पित सूक्तों में बार बार भृगुओं को प्रमुखतः मनुष्यों के पास अग्नि पहुँचाने के कार्य से संबंध दर्शित किया गया है। अग्नि को भृगुओं का उपहार कहा गया है (ऋ. ३.२)। मंथन करते हुये इन लोगों ने स्तुति के द्वारा अग्नि का आवाहन किया था (ऋ. १.१२७)। अपने प्रशस्तिगीतों से इन लोगों ने अग्नि को लकड़ी में प्रकाशित किया था (ऋ. १०.१२२)। ये लोग अग्नि को पृथ्वी की नाभि तक लाये (ऋ. १.१४३)।

जहाँ अथर्वन् ने संस्कारों तथा यज्ञों की स्थापना की, वहीं भृगुओं ने अपनी योग्यता से अपने को देवों के रूप

में प्रकट किया (ऋ. १०.९२)। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि, इनकी योग्यता प्रमुखतः अग्नि उत्पन्न करने वाले व्यक्तियों के रूप में व्यक्त की गयी है। अग्नि के अवतरण तथा मनुष्यों तक उसके पहुँचाने की पुराकथा प्रमुखतः मातरिश्वन् तथा भृगुओं से संबंधित हैं। किंतु जहाँ मातरिश्वन् उसे विद्युत् के रूप में आकाश से लाते हैं, वहीं भृगु उसे लाते नहीं, बल्कि केवल यही माना गया है कि यह लोग पृथ्वी पर यज्ञ की प्रतिष्ठा तथा संपादन के लिए उसे प्रदीप्त करते हैं।

व्युत्पत्ति की दृष्टि से भी 'भृगु' शब्द का अर्थ 'प्रकाशमान' है, जैसा कि भ्राज (प्रकाशित होना) धातु से निष्पन्न होता है। बर्गेन के विचार इस बात पर कदाचित ही सन्देह किया जा सकते है कि, मूलतः 'भृगु' अग्नि का ही मूल नाम था; जब कि कुन तथा बार्थ इस मत पर सहमत है कि, अग्नि के जिस रूप का यह प्रतिनिधित्व करता है, वह विद्युत् है। कुन तथा वेबर ने अग्नि पुरोहितों के रूप में भृगुओं को यूनानी देवों के साथ समीकृत किया है।

बाद के साहित्य में भृग-गण एक वास्तविक परिवार है तथा कौषीतकि ब्राह्मण के अनुसार, ऐतशायन भी इनके एक अंग है। पुरोहितों के रूप में भृगओं का 'अग्नि-स्थापन' तथा 'दशपेयक्रतु' जैसे अनेक संस्कारों के सम्बन्ध में उल्लेख है। अनेक स्थलों पर ये लोग अंगिरसों के साथ भी संयुक्त है (तै. सं. १.१.७.२; मै. सं. १.१.८; तै. ब्रा. १.१.४.८; ३.२.७.६; श. ब्रा. १.२.१.१३)। इन दो परिवारों का घनिष्ठ सम्बन्ध इस तथ्य से प्रकट होता है कि, शतपथ ब्राह्मण में 'च्यवन' को 'भार्गव' या 'आंगिरस' दोनो ही कहा गया है (श. ब्रा. ४.१.५.१)। अथर्ववेद में, ब्राह्मणों को त्रस्त करनेवाले लोगों पर पड़नेवाली विपत्तियों का दृष्टान्त देने के लिए 'भृगु' नाम का उपयोग किया गया है।

ऋग्वेद में एक स्थान पर, भृगुगण का निर्देश एक योद्धाओं के समूह के रूप भी किया हुआ प्रतीत होता है (ऋ. ७.१८.६)।

२. कश्यपकुल का गोत्रकार ऋषिगण।

भृगु प्रजापति--पुराणों में निर्दिष्ट प्रजापतियों में से एक, जो स्वायंभुव तथा चाक्षुष मन्वन्तर के सप्तर्षियों में से एक था। स्वायंभुव मन्वन्तर में इसकी उत्पत्ति ब्रह्मा के हृदय से हुयी। यह स्वायंभुव मनु का दामाद एवं शंकर का साढू था।

दक्षयज्ञ—शंकर का अपमान कर के जिस समय दक्ष ने यज्ञ किया था, उस समय यह उपस्थित था, एवं दक्ष के द्वारा की गई शंकर की निन्दा में इसने भी भागा लिया था। शंकर को जब यह ज्ञात हुआ तब उसने सबसे पहले नंदी को यज्ञविध्वंस करने के लिए भेजा, किंतु भृगु ने उसे शाप दे कर भगा दिया। तब शिव ने अपने पार्षद वीरभद्र को भेजा। वीरभद्र ने दक्षयज्ञ का विध्वंस किया, तथा यज्ञ में भाग लेनेवाले सभी ऋषियों को विद्रूप बना डाला। उसने क्रोध में आकर इसकी दाढ़ी भी जला डाली। यह विध्वंसकारी लीला से भयातुर हो कर, सभी ऋषियों एवं देवों ने शंकर की स्तुति की, जिससे प्रसन्न हो कर शंकर ने इसे बकरे के दाढ़ी प्रदान की (भा. ४.५.१७-१९)। ब्रह्मांड के अनुसार, दक्ष द्वारा अपमानित होने के कारण शिव ने इसे जला डाला था (ब्रह्मांड. २.११.१-१०)।

देवदैत्य संग्राम—देवों तथा असुरों के बीच होनेवाले युद्ध में दैत्यो को पराजय का मुख देखना पड़ा। यह देख कर, असुरों के गुरु शुक्र 'संजीवनी' मंत्र लाने के लिए गया। दूसरी ओर भृगु, जो असुरों का बड़ा पक्षपाती था, वह भी तपस्या के लिये चला गया। तब इसकी पत्नी देवों से संग्राम करती रही। विष्णु ने उसे युद्धभूमि में डट कर देवों को मारते हुए देखा। पहले तो वह शान्त रहे, फिर बिना विचार किये हुए कि वह स्त्री है, उन्होंने अपने सुदर्शन चक्रद्वारा उसका वध किया।

भृगु को जैसे ही यह पता चला, इसने संजीवनीमंत्र से अपनी पत्नी को जिला लिया, तथा विष्णु को शाप दिया, 'तुम्हे गर्भ में रह कर उसकी पीड़ा को सहन कर, पृथ्वी पर अवतार लेना पड़ेगा' (दे. भा. ४.११-१२)। स्त्रीवध उचित है अथवा अनुचित इसके बारे में यह निर्देश रामायण में प्राप्त है। 'ताडकावध' के समय विश्वामित्र ने राम को समझाते हुए कहा था कि, विशेष प्रसंग में 'स्त्रीवध' अनुचित नहीं, उचित है (वा. रा. बा. २५.२१)।

विष्णु को भृगु से शाप मिलने की एक दूसरी कथा पद्मपुराण में प्राप्त है। विष्णु ने पहले भृगु को यह वचन दिया था कि, वह इसके यज्ञ की रक्षा करेगा। किन्तु यज्ञ के समय वह इन्द्र के निमंत्रण पर उसके यहाँ चला गया। यज्ञ के समय विष्णु को न देख कर दैत्यों ने इसके यज्ञ का नाश किया। इससे क्रोधित हो कर भृगु ने विष्णु को मृत्युलोक में दस बार जन्म लेने का शाप दिया (पद्म. भू. १२१)।

देवों की परीक्षा--एक बार स्वायंभुव मनु ने एक यज्ञ किया, जिसमें यह विवाद खड़ा हुआ कि, ब्रह्मा विष्णु तथा महेश में कौन श्रेष्ठ है ? भृगु उस में था, अतएव इस बात का पता लगाने का काम इसे सौंपा गया। भृगु सर्वप्रथम कैलाश पर्वत पर शंकरजी के यहाँ गया। वहाँ पर नंदी ने इसे अन्दर जाने के लिए रोका, कारण कि वहाँ शंकर-पार्वती क्रीड़ा में निमग्न थे। इसप्रकार के अपमान एवं उपेक्षा को यह सहन न कर सका, और क्रोधावेश में शंकर को शाप दिया, 'तुम्हारे शरीर का आकार लिंग रूप में माना जायेगा, तथा तुम्हारे उपर चढ़ाये हुये जल को ले कर कोई भी व्यक्ति तीर्थ रूप में पान न करेगा'।

इसके उपरांत यह ब्रह्मा के पास गया, वहाँ ब्रह्मा ने न इसको नमस्कार ही किया, और न इसका उचित सम्मान कर उत्थापन ही दिया। इससे क्रोधित होकर इसने शाप दिया, 'तुम्हारा पूजन कोई न करेगा'।

अंत में यह विष्णु के पास गया। विष्णु उस समय सो रहे थे। यह दो देवताओं से रुष्ट ही था। क्रोध में आकर भृगु ने विष्णु के सीने पर कस कर एक लात मारी। विष्णु की नींद टूटी तथा उन्होंने इसे नमस्कार कर पूछा, 'आप के पैरों को तो चोट नहीं लगी ?'। विष्णु की यह शालीनता देखकर भृगु प्रसन्न हुआ, तथा इसने विष्णु को सर्वश्रेष्ठ देवता की पदवी प्रदान की (पद्म. उ. २५५)। भृगु के द्वारा किये गये लात के प्रहार को श्रीविष्णु ने 'श्रीवत्स' चिह्न मानकर धारण किया (भा. १०.८९.१--१२)।

परिवार—ब्रह्माण्ड के अनुसार, इसकी पत्नी दक्षकन्या ख्याति थी, जिससे इसे लक्ष्मी, धातृ तथा विधातृ नामक सन्ताने हुयीं। लक्ष्मी ने नारायण का वरण किया, तथा उससे बल तथा उन्माद नामक पुत्र हुए। कालान्तर में बल को तेज, तथा उन्माद को संशय नामक पुत्र हुए। भृगु ने मन से कई पुत्र उत्पन्न किये, जो आकाशगामी होकर देवों के विमानों के चालक बने।

ख्यातिपुत्र धातृ की पत्नी का नाम नियति, तथा विधातृ की पत्नी का नाम आयति था। नियति को मृकंड, एवं आयति को प्राण नामक पुत्र हुए। मृकंड को मनरिवनी से मार्कंडेय हुआ। मार्कंडेय को धूम्रा से वेदशिरस् हुआ। वेदशिरस् को पीवरी से मार्कंडेय नाम से प्रसिद्ध ऋषि हुए। प्राण को पुंडरिका से द्युतिमान् नामक पुत्र हुआ, जिसे उन्नत तथा स्वनवत् नामक पुत्र हुए। ये सभी लोग भार्गव के नाम से प्रसिद्ध हुए (ब्रह्मांड. २.११.१-१०; १३.६२)।

भागवत, विष्णुपुराण तथा महाभारत में भी इसके परिवार के बारे में सूचना प्राप्त होती है (भा. ४.१. ४५; विष्णु. १.१०.१-५; म. आ. ६०.४८; कवि तथा उशनस् देखिये)

भृगु 'वारुणि'—ब्रह्मा के आठ मानस पुत्रों में से एक, जिससे आगे चल कर ब्राह्मण कुलों का निर्माण हुआ। ब्रह्मा के आठ मानस पुत्र इस प्रकार हैं:—भृगु, अंगिरस्, मरीचि, अत्रि, वसिष्ठ, पुलस्त्य, पुलह एवं क्रतु (वायु. ९.६८-६९)। 'पितामह' ब्रह्मा से उत्पन्न होने के कारण, इन सभी ऋषियों को 'पैतामहर्षि' सामुहिक नाम प्राप्त हैं। यह अग्नि की ज्वाला से उत्पन्न हुआ, अतः इसका नाम 'भृगु' पड़ा (म. अनु. ८५.१०६)।

जन्म—महाभारत एवं पुराणों के अनुसार, ब्रह्मा के द्वारा किये गये यज्ञ से भृगु सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ, एवं शिव ने वरुण का रूप धारण कर इसे पुत्र रूप में धारण किया। इसलिए इसे 'वारुणि' उपाधि प्राप्त हुयी (म. आ. ५. २१६*; अनु. १३२.३६; ब्रह्मांड. ३.२.३८)। कई पुराणों के अनुसार, ब्रह्ममानस पुत्रों में से कवि नामक एक और पुत्र का निर्देश प्राप्त है, उसे भी वरुणरूपधारी शिव ने पुत्र रूप में स्वीकार किया, जिसके कारण कवि को भी भृगु का भाई कहा जाता है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में भी इसे 'वारुणि भृगु' कहा गया है। किन्तु वहाँ इसे प्रजापति का पुत्र कहा गया है, एवं इसकी जन्मकथा कुछ अलग ढंग से दी गयी है। इन ग्रन्थों के अनुसार, प्रजापति ने एक बार अपना वीर्य स्खलित किया, जिसके तीन भाग हो गये, एवं इन भागों से आदित्य, भृगु एवं अंगिरस् की उत्पत्ति हुयी (ऐ. ब्रा. ३.३४)। पंचविंश ब्राह्मण में इसे वरुण के वीर्यस्खलन से उत्पन्न हुआ कहा गया है (पं. ब्रा. १८.९.१)। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार, यह वरुण द्वारा उत्पन्न किया गया, एवं उसी के द्वारा इसे ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति हुयी, जिस कारण इसे 'भृगु वारुणि' नाम प्राप्त हुआ (श. ब्रा. ११.६.१.१; तै. आ. ९.१; तै. उ. १.३.१.१)।

गोपथ ब्राह्मण के अनुसार, सृष्टि की उत्पत्ति के लिए जिस समय ब्रह्म- तपस्या में लीन था, उस समय उसके शरीर से स्वेदकण पृथ्वी पर गिरे। उन स्वेदकणों में अपनी परछाईं देखने के कारण ही, ब्रह्मा का वीर्य स्खलन हुआ। उस वीर्य के दो भाग हुए—उनमें से जो भाग शान्त, पेय एवं स्वादिष्ट था, उससे भृगु की उत्पत्ति हुयी; एवं जो भाग खारा, अपेय एवं अस्वादिष्ट था, उससे अंगिरस् ऋषि की

उत्पत्ति हुयी। जन्म लेते ही इसने अपने मुँह से जो नाद निसृत किया, उसी कारण इसका नाम 'अथर्वन्' हुआ। आगे चलकर अथर्वन् एवं अंगिरस् से दस दस, मिलकर बीस ऋषि उत्पन्न हुए, जिन्हे 'अथर्वन् आंगिरस' नाम प्राप्त हुआ।

वेदोत्पत्ति—अथर्वन् ऋषि के द्वारा ब्रह्मा को जो वेदमंत्र दृष्टिगत हुए, उन्हीं के द्वारा 'अथर्ववेद' की रचना हुयी, एवं अंगिरस ऋषि के द्वारा दृष्टिगत हुए मंत्रों से 'आंगिरस-वेद' का निर्माण हुआ।

ब्रह्मा के द्वारा पुष्कर क्षेत्र में किये गये यज्ञ में यह 'होता' था, एवं देवों के द्वारा तुंगक आरण्य में किये गये यज्ञ में यह आचार्य था। इन्हीं दोनों यज्ञों के समय, इसने 'भीष्मपंचकव्रत' किया था (पद्म. सृ. ३४; स्व. ३९; उ. १२४)। इसे संजीवनी विद्या अवगत थी, जिसके बल से इसने जमदग्नि को पुनः जीवित किया था (ब्रह्मांड. १.३०)।

नहुष को शाप—नहुष के अविवेकी व्यवहारों से देवतागण एवं सारी प्रजा त्रस्त थी। उसे देख कर अगस्त्य ऋषि भृगु ऋषि से मंत्रणा लेने के लिए आया। इसने उसे राय दी कि, तुम सभी सप्तऋषि नहुष के रथ के वाहन बनो। इस प्रकार सभी सप्तऋषियों ने नहुष के रथ को खींचा। रथ धीमा चल रहा था, अतएव नहुष ने क्रोध में आकर तेज चलने के लिए 'सर्प-सर्प' कहा, तथा एक लात अगस्त्य के मारी। इस समय अगस्त्य की जटाओं में भृगु विराजमान था, अतएव लात इसे लगी, तथा इसने नहुष को सर्प (नाग) बन जाने के लिए शाप दिया, तथा उसे इन्द्रपद से च्युत किया (म. अनु. ९९; नहुष देखिये)।

एक बार हिमालय तथा विंध्य पर्वतों में अकाल पड़ा। उस समय यह हिमालय पर गया। वहाँ पर इसने एक विद्याधर दम्पति को देखा, जिसमें पति का मुख किसी शाप के कारण व्याघ्र का था। उस दम्पति के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर, इसने उस पुरुष को पौष शुद्ध एकादशी का व्रत करने के लिए कहा, जिसके द्वारा वह शाप से मुक्त हो सका (पद्म. उ. १२५)।

संवाद—महाभारत एवं पुराणों में, इसके अन्य राजाओं एवं ऋषियों के बीच तत्त्वज्ञान सम्बधी जो वार्ताएँ हुई, उनका स्थान स्थान पर निर्देश मिलता है। इसका एवं भरद्वाज का जगत की उत्पत्ति तथा विभिन्न तत्त्वों के वर्णन के संबन्ध में संवाद हुआ था (म. शां. १७५.४८३*)। इसने वीतहव्य को शरण देकर उसे ब्राह्मणत्व प्रदान कर उपदेश दिया था (म. अनु. ३०.५७-५८)। इसी प्रकार निम्नलिखित विषयों पर इसके द्वारा व्यक्त किए गये विचारों में इसका दार्शनिक पक्ष देखने योग्य है:—शरीर के भीतर जठरानल तथा प्राण, अपान आदि वायुओं की स्थिति (म. शां. १७८), सत्य की महिमा, असत्य के दोष तथा लोग परलोक के दुःखसुख का विवेचन (म. शां. १८३), परलोक तथा वानप्रस्थ एवं संन्यास धर्मों का वर्णन आदि (म. शां. १८५)। इसने सोमकान्त राजा को गणेश पुराण भी बताया था (गणेश. १.९)।

आश्रम—भृगुतुंग नामक पर्वत पर भृगु ऋषि का आश्रम था, जहाँ इसने तपस्या की थी। इसी के ही कारण, इस पर्वत को 'भृगुतुंग' नाम प्राप्त हुआ था।

तत्वज्ञान—तैत्तिरीय उपनिषद में एक तत्वज्ञ के नाते भृगु वारुणि का निर्देश प्राप्त है। इसके द्वारा पंचकोशात्मक ब्रह्म का कथन प्राप्त है, जिसके अनुसार अन्न, प्राण, मन, विज्ञान एवं आनंद इस क्रम से ब्रह्म का वर्णन किया गया है (तै. उ. ३.१.१-६)। किन्तु ब्रह्म की प्राप्ति केवल विचार से ही हो सकती है, ऐसा इसका अन्तिम सिद्धान्त था।

परिवार—भृगु को दिव्या तथा पुलोमा नामक दो पत्नियाँ थी। उन में से दिव्या हिरण्याकशिपु नामक असुर की कन्या थी (ब्रह्मांड. ३.१.७४; वायु. ६५.७३)। महाभारत में पुलोमा को भी हिरण्यकशिपु की कन्या कहा गया है।

पुलोमा से इसे कुल उन्नीस पुत्र हुए, जिनमें से बारह देवयोनि के एवं बाकी सात ऋषि थे। इससे उत्पन्न बारह देव निम्नलिखित थे:—भुवन, भावन, अंत्य, अंत्यायन, क्रतु, शुचि, स्वमूर्धन्, व्याज वसुद, प्रभव, अव्यय एवं अधिपति।

पुलोमा से उत्पन्न सात ऋषि निम्नलिखित थे:—च्यवन, उशनस् शुक्र, वज्रशीर्ष, शुचि, और्व, वरेण्य एवं सवन।

ब्रह्मांड में उपर्युक्त सारे देव एवं ऋषि दिव्या के पुत्र कहे गये है, एवं केवल च्यवन को पुलोमा का पुत्र बताया गया है (ब्रह्मांड. ३.१.८९-९०,९२)।

इसके पुत्रों में उशनस् शुक्र एवं च्यवन ये दो पुत्र अत्यधिक महत्वपूर्ण थे, क्यों कि, उन्हीसे आगे चल कर भृगु (भार्गव) वंश का विस्तार हुआ। इनमें से शुक्र का वंश दैत्यपक्ष में शामिल हो कर विनष्ट हो गया। इस तरह च्यवन ऋषि के परिवार से ही आगे चल कर

सुविख्यात भार्गव वंश निर्माण हुआ। भृगुवंश के इन दो प्रमुख वंशकार ऋषियों का वंशविस्तार निम्नलिखित है :--

(१) **शुक्र का परिवार**—शुक्र को अपनी गो नामक पत्नी से वरुत्रिन्, त्वष्टु, शंड एवं मर्क ऐसे चार पुत्र हुए। उनमें से वरुत्रिन् को रजत्, पृथुरश्मि एवं बृहदंगिरस् नामक तीन ब्रह्मिष्ठ एवं असुरयाजक पुत्र उत्पन्न हुए (वायु. ६५.७८)। वरुत्रिन् के ये तीनो पुत्र दैत्यों के धर्मगुरु थे, एवं वे देवासुर संग्राम में अन्य दैत्यों के साथ नष्ट हो गये। त्वष्टु को त्रिशिरस् विश्वरूप एवं विश्वकर्मन् नामक दो पुत्र थे।

शुक्र के अन्य दो पुत्र शंड एवं मर्क शुरु में दैत्यों के धर्मगुरु थे। किन्तु पश्चात् वे देवों के पक्ष में शामिल हो गये, जिस कारण शुक्र ने उन्हे विनष्ट होने का शाप दिया। इनमें मर्क से मार्कंडेय नामक वंश की उत्पत्ति हुयी।

भौगोलिक दृष्टि से शुक्र एवं उसका परिवार उत्तरी भारत के मध्यप्रदेश से संबंधित प्रतीत होता है (शुक्र देखिये)।

(२) **च्यवन का परिवार**—च्यवन ऋषि को शर्याति राजा की कन्या सुकन्या से आप्नवान् एवं दधीच नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें से आप्नवान् के वंश में ऋचीक, जमदग्नि एवं परशुराम जामदग्न्य इस क्रम से एक से एक अधिक पराक्रमी एवं विद्यासंपन्न पुत्र उत्पन्न हुए। आप्नवान् के इन पराक्रमी वंशजों ने हैहयवंशीय राजाओं के साथ किया शत्रुत्व सुविख्यात है (परशुराम जामदग्न्य देखिये)। भार्गव वंश के इस शाखा का विस्तार पश्चिम हिंदुस्थान में आनर्त प्रदेश में हुआ था।

दधीच ऋषि को सरस्वती नामक पत्नी से सारस्वत नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। किन्तु भार्गव वंश के इस शाखा के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं है।

भार्गवगण—ब्रह्मांड के अनुसार, भार्गव वंश में उपर्युक्त भृगुवंशीयों के अतिरिक्त निम्नलिखित सात गण प्रमुख थेः—१. वत्स, २. विद, ३. आर्ष्टिषेण, ४. यस्क ५. वैन्य, ६. शौनक, ७. मित्रेयु (ब्रह्मांड. ३.१. ७४-१००)।

क्षत्रियब्राह्मण—च्यवन ऋषि के परिवार ने ब्राह्मण हो कर भी क्षत्रियकर्म स्वीकार लिया, जिस कारण, भार्गव वंशियों को 'क्षत्रियब्राह्मण' उपाधि प्राप्त हुअी। भृगु के इस क्षत्रियब्राह्मण वंश में, निम्नलिखित ऋषि भी समाविष्ट थेः--मत्स्य, मौद्गलायन, सांकृत्य, गार्ग्यायन, गार्गिय, कपि, मैत्रेय, वध्र्यश्व एवं दिवोदास (मत्स्य. १९५.२२-२३)। ब्रह्मांड में भार्गव वंश के उन्नीस सूक्तकारों का निर्देश प्राप्त है (ब्रह्मांड. २.३२. १०४-१०६)। वहाँ इन भार्गव वंश के बहुत सारे क्षत्रिय ब्राह्मण ऋषियों का अंतरभाव किया है।

भृगु-आंगिरस परिवार--भृगु वारुणि, उसका भाई कवि एवं अंगिरस् आग्नेय, ये तीनो प्राचीन ब्राह्मण कुलों के आद्य निर्माता ऋषि माने जाते है। प्रारंभ में ये तीनों ब्राह्मण वंश स्वतंत्र थे। किन्तु आगे चल कर भृगु, कवि एवं अंगिरस् ये तीनो वंश एकत्रित हुए, जिन्हे 'भृगु-आंगिरस' अथवा 'आंगिरस' नाम प्राप्त हुआ (म.अनु. ८५.१९-३८)। इस भृगु-आंगिरस वंश में भृगु के सात पुत्र, एवं अंगिरस् तथा कवि के प्रत्येकी आठ पुत्रों के के वंशज सम्मिलित थे। इस वंश में सम्मिलित हुए अंगिरस् एवं कवि के पुत्रों के नाम निम्नलिखित थेः--

(१) **अंगिरस्पुत्र**--बृहस्पति, उतथ्य, पयस्य, शांति, घोर, विरूप, सुधन्वन् एवं संवर्त।

(२) **कविपुत्र**—कवि, काव्य, धृष्णु, बुद्धिमत्, उशनस् भृगु, विरज, काशिन् एवं उग्र।

भृगु एवं आंगिरस वंश एक होने के बाद उनके ग्रंथ ही 'भृग्वंगिरस्' अथवा 'अथर्वांगिरस्' नाम से एकत्र हो गये। आधुनिक काल में उपलब्ध अथर्वसंहिता भृगु एवं आंगिरस ग्रंथों के सम्मीलन से ही बनी हुयी है।

विवाहसंबंध—आधुनिक काल में, विवाह करते समय जिन दो गोत्रों के प्रवर एक है, उन में विवाह तय नहीं किया जाता। भृगु एवं अंगिरस् ये दो गोत्र ही केवल ऐसे है कि, जहाँ प्रवर एक होने पर भी विवाह तय करने में बाधा नहीं आती है। संभव है, ये दोनों मूल गोत्रकार अलग वंश के होने के कारण, यह धार्मिक परंपरा प्रस्थापित की गयी हो।

भृगु गोत्रियों में भृगु, जामदग्न्य भृगु ऐसे अनेक भेद हैं। आंगिरस वंशियों में भी भरद्वाज-आंगिरस, गौतम आंगिरस ऐसे अनेक भेद प्राप्त हैं। इन सारे गोत्रों में काफ़ी नामसादृश्य दिखाई देता हैं। किन्तु इन सारे गोत्रों के मूल गोत्रकार विभिन्न वंशों में उत्पन्न हुये थे। यही कारण है कि, इन गोत्रों के प्रवर एक हो कर भी उन में विवाह होता है।

वैदिक वाङ्मय में भृगु प्रजापति एवं भृगु वारुणि स्वतंत्र

व्यक्ति दिये गये है। किन्तु पौराणिक वाङ्मय में उन्हे बहुत बूरी तरह संमिश्रित किया गया है। अंगिरसों के संबंध में भी यही स्थिति प्रतीत होती है (अंगिरस् देखिये)।

ग्रंथ—भृगुस्मृति; २. भृगुगीता, जिसमें वेदान्त विषयक प्रश्नों की चर्चा की गयी है; ३. भृगुसंहिता, जिसमें ज्योतिषशास्त्रविषयक प्रश्नों की चर्चा की गयी है; ४. भृगुसिद्धान्त; ५. भृगुसूत्र (C.C.)।

मत्स्य के अनुसार, इसने वास्तुशास्त्र विषयक एक ग्रंथ की रचना भी की थी।

मनुस्मृति से प्रतीत होता है, कि धर्मशास्त्र से संबंधित विषयों पर भी इसके द्वारा कई ग्रंथों की रचना हुयी थी (मनु देखिये)।

भृगुकुल के गोत्रकार—भृगुकुलोत्पन्न गोत्रकारों में पंचप्रवरात्मक (पाँच प्रवरोंवाले), चतुःप्रवरात्मक (चार प्रवरोंवाले), त्रिप्रवरात्मक (तीन प्रवरोंवाले), एवं द्विप्रवरात्मक (दो प्रवरोंवाले) ऐसे चार प्रमुख प्रकार है।

(१) पंचप्रवरात्मक गोत्रकार—भृगुकुल के निम्नलिखित गोत्रकार पंचप्रवरात्मक है, जिनके आप्नवान्, और्व, च्यवन, जमदग्नि, एवं भृगु, ये पाँच प्रवर होते है:—अनंतभागिन्, अनुमति, आप्नवान, आलुकि (जलामित), आवेद (आंबाज), उपरिमंडल, ऐलिक, और्व, कार्षणि (पार्वणि), कुत्स, कौचहास्तिक, कोटिल, कौत्स, कौसि, क्षुम्य, गायन, गार्ग्यायण, गार्हायण, गोष्ठायन, चल्कुंडल, चातकि, चांद्रमसि, च्यवन, जमदग्नि, जविन् (ग), जालधि, जिह्वक (जिह्वक, नदाकि), दंडिन् (दर्मि), देवपति, नडायन (नवप्रभ), नाकुलि, नीतिन् (ग), नील, नेतिष्य, नैकजिह्व पांडुरोचि, पूर्णिमागतिक (पौर्णिमागतिक), पैंगलायनि, पैल, पौर, फेनप, बालाकि, भृगु, भ्राष्टकायणि, मंड (मुंड), मांकायन (कार्मायन), मार्कंड, मार्गेय (भागेय), मांडव्य, मांडूक, माल्यनि मृग (भृत), मौद्गलायन, यज्ञपिंडायन, (यद्रामिलायन एवं याज्ञ), योज्ञेयि, रौहित्यायनि, लालाटि (ल्लाटि), लिंबुकि, लुब्ध, लोलाक्षि, लौक्षिण्य, लौहवैरिण, वांगायनि, वात्स्य (वत्स्य), वाह्यन (महाभाग), विरूपाक्ष विष्णु, वीतिहव्य वैकर्णिनि (वैकर्णेय), वैगायन, वैशंपायन, वैश्वानरि, वैहीनरि, व्याधाज्य, शारद्वतिक, शार्कराक्षि, शाङ्गरव, शिखावर्ण, शौनक, शौनकायन-जीवन्ति (शौनकायन जीवंतिक), सकौवाक्षि (सकौगाक्षि), सगाल्व, सांकृत्य, सात्यायनि, सार्पि, सावर्णिक, सोक्रि, सौचाक, सौधिक, सौह, स्तनित एवं स्थलपिंड।

भृगुकुल के निम्नलिखित गोत्रकार भी पंचप्रवरात्मक ही है; किंतु उनके आप्नवान्, आर्ष्टिषेण, च्यवन, भृगु एवं रूपि ये पाँच प्रवर होते हैं:—आपस्तंबि, आर्ष्टिषेण, अश्वायनि, कटायनि, कपि, कार्दमायनि, गार्दभि, ग्राम्यायणि, नैकशि, विल्वि (भल्ली), भृगुदास, मार्गपथ एवं रूपि।

(२) चतुःप्रवरात्मक गोत्रकार—भृगुकुल के निम्नलिखित गोत्रकार चतुःप्रवरात्मक है, जिनके भृगु, रैवस, वीतिहव्य एवं वैवस ये चार प्रवर होते हैं:—काश्यपि, कौशापि गार्गीय, चलि, जाबालि, जैवन्त्यायनि, तिथि, दम (मोदम, सदमोदम), पिलि, पौष्णायन, बालपि, भागवित्ति, भागिल, मथित (माधव), मौज, यस्क, रामोद, वीतिहव्य, श्रमदागेपि और सौर।

(३) त्रिप्रवरात्मक गोत्रकार—भृगुकुल के निम्नलिखित गोत्रकार त्रिप्रवरात्मक हैं, जिनके आप्नवान्, च्यवन, एवं भृगु ये तीन प्रवर होते हैं:—उभयजात, और्वेय (ग), कायनि, जमदग्नि, पौलस्त्य, बिद, बैजभृत, मारुत (ग), और शाकटायन।

भृगुकुल के निम्नलिखित गोत्रकार भी त्रिप्रवरात्मक है, किन्तु उनके दिवोदास, भृगु एवं वध्र्यश्व ये तीन प्रवर होते हैं:—अपिकायनि, अपिशि (अपिशली), खांडव, द्रौणायन, मैत्रेय, रौक्मायणि (रौक्मायण), शाकटाक्ष, शालायनि, और हंसजिह्व।

(४) द्विप्रवरात्मक गोत्रकार—भृगुकुल के निम्नलिखित गोत्रकार द्विप्रवरात्मक हैं, जिनके गृत्समद एवं भृगु ये दो प्रवर होते हैं:—एकायन, कार्दमायनि, गृत्समद, चौक्षि, प्रत्यह (प्रत्यूह), मत्स्यगंध, यज्ञपति, शाकायन, सनक और सौरि (मत्स्य. १९५)।

भृगुकुल के मंत्रकार:—भृगुकुल के मंत्रकारों की नामावलि मत्स्य, वायु, एवं ब्रह्मांड में प्राप्त है (मत्स्य. १४५.९८-१००; वायु. ५९.९५-९७; ब्रह्मांड. २.३२. १०४-१०६)। उनमें से ब्रह्मांड में प्राप्त नामावलि निम्नलिखित है, जिसमें वायु एवं ब्रह्मांड में उपलब्ध पाठ कोष्ठक में क्रमशः दिये गये है:—आत्मवत्, आर्ष्टिषेण (अद्विषेण), ऊर्व (और्व), गृत्स (गृत्समत्), च्यवन, जमदग्नि, दधीच (ऋचीक), दिवोदास, प्रचेतस्, ब्रह्मवत् (वाध्र्यश्व) भृगु, युधाजित्, वीतहव्य, वेद (विद), वैन्य (पृथु) शौनक, सारस्वत, सुवेधस् (सुवर्चस्, सुमेधस्)।

इनके अतिरिक्त, अपर, नम, प्रश्वार नामक मंत्रकारों का निर्देश केवल वायु में; कवि नामक मंत्रकार का निर्देश

वायु एवं ब्रह्मांड में; एवं च्यवन और युधिजित् का निर्देश केवल मत्स्य में प्राप्त है।

भृगुदास—भृगुकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

भृग्वंगिरस्—अथर्ववेद जाननेवाले ऋषिसमुदाय के लिए प्रयुक्त सामूहिक नाम (गो. ब्रा. १.३.१; श. ब्रा. १.२.१.१३)। यह ऋषिसमुदाय प्रायः भृगु एवं अंगिरस्वंशीय ऋषियों से बना हुआ था। ऋग्वेद में कई स्थानों पर इनका निर्देश अथर्वन् लोगों के साथ किया गया है (ऋ. ८.३५.३; १०.१४.६)। किंतु भृगु, अथर्वन् एवं अंगिरस् ये विभिन्न वंश के लोग थे, ऐसा भी निर्देश ऋग्वेद में प्राप्त है (ऋ. १.१३.६)।

गोपथ ब्राह्मण के अनुसार, अथर्वन् एवं अंगिरस् ये भृगु के नेत्र माने गये है। यही कारण है कि, भृग्वंगिरस् अथर्ववेद का ही नामांतर माना जाता है (गो. ब्रा. १.२. २२)। अथर्वन् सांस्कारिक ग्रंथों में भी 'भृग्वंगिरसः' यह शब्द अथर्ववेद के लिए प्रयुक्त हुआ है (ब्लूमफिल्ड-अथर्ववेद ९.१०.१०७)। याज्ञवल्क्य स्मृति में भृग्वंगिरस् एवं अथर्वांगिरस् ये शब्द 'अथर्ववेद' अर्थ से प्रयुक्त हुये है, एवं हरएक राजपुरोहित इस वेदविद्या में प्रवीण होना चाहिए, ऐसा कहा गया है। मनु के अनुसार, अथर्ववेद में मंत्रविद्या को अधिकतर प्राधान्य दिये जाने के कारण, उस वेद को एवं उसे जाननेवाले लोगों को समाज गिरी हुयी नजर से देखा करता था (मनु. ११. ३३)।

शतपथ ब्राह्मण में वसिष्ठ को 'अथर्वनिधि' कहा गया है, एवं अथर्ववेद का निर्देश 'क्षत्र' नाम से किया गया है (श. ब्रा. १४.८.१४.४)।

भृंग—त्रिधामन् नामक शिवावतार का शिष्य।

भृंगिन्—शिवगणों में से एक।

भृंगीरीटी—एक शिवगण। अंधकासुर को शिवगणत्व प्राप्त होने के बाद उसने यह नाम स्वीकार लिया था (अंधक देखिये)।

भृत—भृगुकुल के मृग नामक गोत्रकार के लिए उपलब्ध पाठभेद (मृग देखिये)।

भृतकील—कुशिककुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

भृम्यश्व—(सो. नील.) एक राजा, जो मुद्गल नामक राजा का पिता था (नि. ९.२४)। इसके नाम के लिए निम्नलिखित पाठभेद प्राप्त हैं:—बाह्याश्व (ह. वं. १.३२; ब्रह्म. १३.९५-९६); भर्म्याश्व (भा. ९.२१.३२-३३); हर्यश्व (विष्णु. ४. १९.१५); भद्राश्व (मत्स्य. ५०.४)।

इसे निम्नलिखित पाँच पुत्र थे :— मुद्गल, संजय (सृंजय), बृहदिशु, यवीनर, कांपिल्य (कपिल अथवा कृमिलाश्व)। पंच्छाल्ल २. और भर्म्याश्व देखिये।

भृशाश्व—एक ऋषि, जिसके पुत्र का नाम देवप्रहरण था।

भृशुंडिन--एक मछुआ, जो दंडकारण्य में चौर्यकर्म कर अपनी जीविका चलाता था।

एक बार मुद्गल ऋषि दंडकारण्य में से जा रहे थे, जब इसने उनकी राह रोंक दी। किन्तु मुद्गल ऋषि के ब्राह्मतेज के सामने यह निष्प्रभ हुआ। पश्चात् मुद्गल ने इसे उपदेश दिया, एवं श्रीगणेश की उपासना करने के लिए कहा।

मुद्गल के उपदेश के अनुसार, इसने एकाग्रचित्त कर श्रीगणेश की उपासना की। इस उपासना के कारण, इसके दो भृकुटियों के बीच एक शुंड उत्पन्न हुयी, एवं यह स्वयं श्रीगणेश जैसा दिखाई देने लगा (गणेश. १. ५७)। इसे गणेश स्वरूप मान कर स्वयं इंद्र इसके दर्शन के लिए उपस्थित हुआ था (गणेश. १.६७)।

भेडी--स्कंद की अनुचरी एक मातृका (म. श. ४५.१३)।

भेतृ--विकुंठ देवों में से एक।

भेद—एक राजा, जो सुदास एवं तृत्सुभरतों के दस शत्रुओं में से एक था। यमुना के तट पर हुए दाशराज्ञ युद्ध में, सुदास के द्वारा यह पराजित हुआ था (ऋ. ७. १८.१८; ३३.३)। संभव है, यह अज, शिग्रु एवं यक्षु आदि लोगों का राजा था, जिनका भी दाशराज्ञ युद्ध में पराभव हुआ था। रौथ के अनुसार, भेद एक जाति का नाम था, जिसके राजा का नाम भी भेद था। किन्तु ऋग्वेद में भेद शब्द सदैव एकवचन में ही प्रयुक्त हुआ है।

अथर्ववेद के अनुसार, इन्द्र ने भेद राजा से एक गाय (वशा) माँगी थी, जिसे देने में इसने इन्कार कर दिया था। इस पाप के कारण, इसका नाश हुआ (अ. वे. १३.७.४९-५०)। संभव है, ऋग्वेद में निर्दिष्ट अज एवं शिग्रु जातियाँ अनार्य रही हो, एवं उनका नेतृत्व करनेवाला यह राजा भी अनार्य हो। इसी कारण, इसे एक दुष्ट मान कर इसके दुःखद अंत का वर्णन वैदिक ग्रंथों में किया गया हो।

भेरीस्वना--स्कंद की अनुचरी एक मातृका (म. श. ४५.२५)।

भेरुंड—एक पक्षी, जो जटायु का पुत्र था।

भेल—एक सुविख्यात आयुर्वेदाचार्य, जो पुनर्वसु आत्रेय का शिष्य था। यह अग्निवेश का समकालीन था। इसके द्वारा 'भेल संहिता' नामक सुविख्यात ग्रंथ की रचना की गयी थी।

भैमसेन—मैत्रायणी संहिता में निर्दिष्ट एक व्यक्तिनाम (मै. सं. ४.६.६)।

भैमसेनि--दिवोदास राजा का पैतृक नाम (क. सं. ७.८)।

२. घटोत्कच राक्षस का पैतृक नाम (म. भी. ७९.३२)।

भैरव--एक रुद्रगण, जो वाराणसी नगरी का क्षेत्रपाल माना जाता है।

एकबार विष्णु एवं ब्रह्मा अत्यंत गर्वोद्धत हो गये, एवं भगवान् शंकर का अपमान करने लगे। इस अपमान के कारण शंकर अत्यधिक क्रुद्ध हुआ, जिससे एक अतिभयानक शिवगण की उत्पत्ति हुई। वही भैरव है। इसे निम्नलिखित नामान्तर प्राप्त थे :—कालभैरव, आमर्दक, पापभक्षण एवं कालराज। लिंग के अनुसार, वीरभद्र नामक शिवपार्षद को भैरव का ही अन्य रूप माना गया है (लिंग. १.९६; वीरभद्र देखिये)।

ब्रह्महत्त्या—उत्पन्न होते ही, इसने अपने बाये हात की उँगली के नख से ब्रह्मा का पाँचवा सिर तोड़ डाला, क्यों कि, ब्रह्मा के उस मुख से शिव की निंदा की गयी थी। ब्रह्मा के पाँचवे मुख का इस प्रकार नाश करने के कारण, इसे ब्रह्महत्या का पातक लगा। उस पाप से छुटकारा पाने के लिए, शंकर ने ब्रह्मा के कपाल को हाथ में ले कर इसे भिक्षा माँगने के लिए कहा। उसी समय शिव ने ब्रह्महत्या नामक एक स्त्री का निर्माण किया, एवं उसे इसके पिछे जाने के लिए कहा।

यह अनेक तीर्थस्थानों में घूमता रहा, किन्तु इसका ब्रह्महत्या का दोष नष्ट न हुआ। अन्त में शिव ने इसे वाराणसी क्षेत्र में जाने के लिए कहा। शिव के आदेशानुसार, यह वाराणसी क्षेत्र में गया, जिस में प्रवेश करते ही इसका ब्रह्महत्या का पातक धुल गया। पश्चात् इसके हाथ में स्थित ब्रह्मा का कपाल भी नीचे गिर पडा, एवं उसे भी मुक्ति प्राप्त हुयी। जिस स्थान पर ब्रह्मा के कपाल को मुक्ति मिली, उस स्थान पर 'कपालमोचनतीर्थ' नामक सुविख्यात तीर्थ का निर्माण हुआ (शिव. शत. ८-९; स्कंद. ३.१.२४)।

वंश—कालिका पुराण में, भैरवस्तोस्त्र नामक मंत्र की विस्तृत जानकारी उपलब्ध है। वहाँ इसका वंश ही विस्तृत रूप में दिया गया है। उस पुराण के अनुसार, वाराणसी का सुविख्यात राजा विजय इसीके वंश में उत्पन्न हुआ था। उस राजा ने खाण्डवी नगर को उध्वस्त कर खाण्डववन का निर्माण किया था (कालिका. ९२)।

कालिका पुराण के अनुसार, भैरव एवं वेताल ये शिवपार्षद अपने पूर्वजन्म में महाकाल एवं भृंगी नामक शिवदूत थे। पार्वती के शाप के कारण, उन्हे अगले जन्म में मनुष्ययोनि प्राप्त हुई (कालिका. ५३; वेताल देखिये)।

पुराणों में अष्टभैरवों की नामावली प्राप्त है, जिसमें निम्नलिखित भैरव निर्दिष्ट हैः– असितांग, रुरु, चण्ड, क्रोध, उन्मत्त, कुपति (कपालिन्), भीषण एवं संहार।

२. धृतराष्ट्र वंश का एक नाग, जो जनमेजय के सर्पसत्र में दग्ध हुआ था (म. आ. ५२. १५)।

भोगवती—निबंधन नामक ऋषि की माता (निबंधन देखिये)।

भोगिन्--(भविष्य.) एक राजा, जो वायु तथा ब्रह्मांड के अनुसार, मथुरा के शेष नामक राजा का पुत्र था।

भोज--ऐतरेय ब्राह्मण में प्रयुक्त नृपों की उपाधि (ऐ. ब्रा. ८.१२; १४.१७)। इन्हें 'भौज्य' नामांतर भी प्राप्त है (ऐ. ब्रा. ७.३२; ८.६; १२; १४; १६)।

ऋग्वेद में भोज शब्द का प्रयोग दाता अर्थ में भी किया गया है (ऋ. १०. १०७.८-९)।

२. एक लोकसमूह, जो सुदास राजा का अनुचर था। ऋग्वेद के अनुसार, इन लोगों ने विश्वामित्र ऋषि के अश्वमेध यज्ञ में उसकी सहायता की थी (ऋ. ३. ५३.७)।

३. पुराणों में निर्दिष्ट महाभोज राजा के वंशजों के लिये प्रयुक्त सामूहिक नाम। इन लोगों की एक शाखा मृत्तिकावत् नगर में रहती थी, जो बभ्रु दैवावृध नाम राजा से उत्पन्न थी हुई (ब्रह्म. १५.४५)।

४. एक राजवंश, जो सुविख्यात यादवकुल में अंतर्गत था (म. आ. २१०.१८)। इन्हे वृष्णि, अंधक, आदि नामांतर भी प्राप्त थे। इस वंश में उत्पन्न एक

राजा को उशीनर से एक खड्ग की प्राप्ति हुई थी (म. शां. १६६.८९)।

संभव है, इस वंश में निम्नलिखित राजा समाविष्ट थे :—

(१) विदर्भाधिपति भीष्म--इसे महाभारत में भोज कहा गया है (म. उ. १५५.२)।

(२) कुकुरवंशीय आहुक--इसे हरिवंश में भोज कहा गया है (ह. वं. १.३७.२२)।

(३) विदर्भाधिपति रुक्मिन्--इसने 'भोजकट' (भोजों का नगर) नामक नयी राजधानी की स्थापना की थी (रुक्मिन् देखिये)।

(४) महाभोज—यह यादववंशीय सात्वत राजा का पुत्र था। भागवत के अनुसार इसके वंशज भोज कहलाते थे (भा. ९.२४.७–११)।

५. मार्तिकावत् (मृत्तिकावती) नगरी का एक राजा, जो द्रौपदी के स्वयंवर में उपस्थित था (म. आ. १७७. ६)। कलिंगराज चित्रांगद राजा की कन्या के स्वयंवर में भी यह उपस्थित था (म. शां. ४.७)। महाभारत में कई जगह, इसे 'मार्तिवतक भोज' कहा गया है, एवं युधिष्ठिर की राजसभा का एक राजर्षि नाम से इसका वर्णन किया गया है।

भारतीय युद्ध में यह कौरव पक्ष में शामील था, एवं अभिमन्यु के द्वारा इसकी मृत्यु हो गयी थी (म. द्रो. ४७.८)।

६. एक राजवंश, जो हैहयवंशीय तालजंघ राजवंश में समाविष्ट था।

७. (सो. विदू.) एक राजा, जो मत्स्य के अनुसार, प्रतिक्षत्र राजा का पुत्र था। अन्य पुराणों में इसका 'स्वयंभोज' नामांतर दिया गया है, एवं इसे क्रोष्टुवंशीय कहा गया है।

८. कश्यपकुलोत्पन्न गोत्रकार ऋषिगण।

९. कान्यकुब्ज देश का एक राजा। एक बार इसे एक सुंदर स्त्री का दर्शन हुआ, जिसका सारा शरीर मनुष्याकृति होने पर भी केवल मुख हिरणी का था।

इस विचित्र देहाकृति स्त्री को देखने पर इसे अत्यधिक आश्चर्य हुआ, एवं इसने उसकी पूर्वकहानी पूछी। फिर इसे पता चला की, वह स्त्री पूर्वजन्म में हिरनी थी। उस हिरनी के शरीर का जो भाग तीर्थ में गिरा, उसे मनुष्याकृति प्राप्त हुई, एवं केवल मुख तीर्थस्पर्श न होने से हिरणी का ही रह गया।

पश्चात् इसने इस स्त्री के मुख का खोज किया, एवं उसे तीर्थ में डुबों दिया, जिस कारण उस स्त्री को सुंदर मनुष्याकृति मुख की प्राप्ति हो गई। पश्चात् इस राजा ने उस स्त्री के साथ विवाह किया (स्कंद ७.२.२)।

भोजक—एक सूर्यपूजक राजा (भवि. ब्राह्म. १. ११७)।

भोजपायन—कश्यपकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

भोज्या--सौवीरराज की सर्वांगसुंदर कन्या, जिसका सात्यकि ने अपनी रानी बनाने के लिये हरण किया था (म. द्रो. ९.२९)। पाठभेद (भांडारकर संहिता)- 'भोजा'।

२. वीरव्रत नामक राजा की पत्नी (वीरव्रत देखिये)।

३. आर्यक नामक नाग की कन्या, जिसे मारिषा नामान्तर भी प्राप्त है। इसका विवाह शूर राजा से हुआ था, जिससे इसे वसुदेवादि पुत्र उत्पन्न हुयें।

४. भोज देश की राजकन्या, जिसका यादववंशीय ज्यामघ राजा ने रानी बनाने के लिये हरण किया था। किंतु पश्चात् ज्यामघ ने अपने पुत्र विदर्भ से इसका विवाह संपन्न कराया (ज्यामघ देखिये)।

भौजपायन--कश्यपकुलोत्पन्न गोत्रकार ऋषिगण। इसके नाम के लिये 'भीमपायन' पाठभेद प्राप्त है।

भौत्य--एक राजा, जो चौदहवा मनु माना जाता है। इसे 'इंद्रसावर्णि' एवं 'चंद्रसावर्णि' नामांतर भी प्राप्त थे (मनु देखिये)।

यह भूति नामक ऋषि का पुत्र था, जिस कारण इसे भौत्य नाम प्राप्त हुआ था। भूति ऋषि को बहुत दिनों तक पुत्र न था। पश्चात् उसके शान्ति नामक शिष्य ने अपने गुरु को पुत्र प्राप्ति हों, इस हेतु से अग्नि की उपासना की, जिस कारण अग्नि के प्रसाद से इसकी उत्पत्ति हो गयी।

भौम--नरकासुर का नामांतर (नरकासुर देखिये)।

२. शिवपुत्र मंगल का नामान्तर (मंगल २. देखिये)।

३. एक राक्षस, जो विप्रचित्ति एवं सिंहिका पुत्र था। इसे 'नल' एवं 'नभ' नामान्तर भी प्राप्त है (विप्रचित्ति २. देखिये)। परशुराम ने इसका वध किया (ब्रह्मांड. ३.६.१८--२२)।

भौमतापायन—गौरपराशरकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

भौमाश्वी शैब्या औशीनरी—उशीनर देश की राजकन्या, जिसे द्रौपदी के सदृश पाँच पति थे। नितंतु राजा के पाँच पुत्रों से इसका एकसाथ विवाह हुआ था,

जिनके नाम निम्नलिखित थेः--साल्वेय, शूरसेन, श्रुतसेन, तिन्दुसार, एवं अतिसार।

इसके पति बडे धार्मिक एवं आपस में मिलजुल कर रहनेवाले थे। इसी कारण इसने स्वयंवर में उनका वरण किया था। इन पाँच पतियों से इसे पाँच पुत्र उत्पन्न हुए, जिन्होने आगे चल कर मत्स्य देश में पाँच स्वतंत्र राजवंशों की स्थापना की (म. आ. परि. १०१)।

भौरिक--एक दैत्य, जो अग्नि के द्वारा दग्ध किया गया था। हिरण्याक्ष एवं देवों के दरम्यान हुए युद्ध में, अग्नि के द्वारा हिरण्याक्ष के पक्ष के सात असुर दग्ध हुये। उनमें से यह एक था (पद्म. सृ. ७५)।

भौवन--वैदिक राजा विश्वकर्मन् का पैतृक नाम (श. ब्रा. १३.७.१.१५; ऐ. ब्रा. ८.२१.८.१०; नि. १०.२६; विश्वकर्मन् देखिये)।

२. (स्वा. प्रिय.) एक राजा, जो मंथु एवं सत्त्या का पुत्र था।

३. एक भृगुवंशीय गोत्रकार, जो भृगु एवं पौलोमी का पुत्र था।

४. एक राजा, जो गौतमी नदी के दक्षिणतट पर स्थित भौवन नामक नगरी का राजा था (ब्रह्म. १७०.१-२)।

भौवायन--कपिवन नामक आचार्य का पैतृक नाम (पं. ब्रा. २०.१३.४)। यजुर्वेद संहिताओं में कपिवन का निर्देश प्रायः 'भौवायन' नाम से ही प्राप्त है (का. सं. ३२. २; मै. सं. १.४; वा. सं. १३.५४)। इसने 'अतिरात्र' नामक यज्ञ किया था, जिसके कारण इसे विपुल धन प्राप्त हुआ था।

भ्रमर--सौवीर देश का एक राजकुमार, जो सौवीर नरेश जयद्रथ का भाई था। यह जयद्रथ के रथ के पीछे हाथ में ध्वज ले कर चलता था। जयद्रथ के द्वारा किये गये द्रौपदीहरण के समय यह उपस्थित था। उसी समय हुए युद्ध में अर्जुन ने इसका वध किया (म. व. २५५. २७)।

भ्रमि--उत्तानपादपुत्र ध्रुव राजा की पत्नी, जो शिशुमार प्रजापति की कन्या थी (भा. ४.१०.१)।

भ्राजिष्ठ--(स्वा. प्रिय.) एक राजा, जो धृतपृष्ठ राजा का पुत्र था।

भ्रामरि--एक राक्षसी, जो जंमासुर की अनुगामिनी थी। उस राक्षस के कथनानुसार, यह अदिति का रूप धारण कर, श्रीगणेश का वध करने के लिए कश्यपगृह में अवतीर्ण हुयी। इसने श्रीगणेश को विषमिश्रित मोदक खिलाकर उसका वध करना चाहा। किन्तु श्रीगणेश ने उन मोदकों को हजम कर अपने मुष्टिप्रहार से इसका वध किया (गणेश. २.२१)।

भ्राष्टकायणि--भृगुकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

भ्राष्ट्रकृत्--अंगिराकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

म

मकरकेतु--श्रीकृष्णपुत्र प्रद्युम्न राजा का नामान्तर।

मकरध्वज--हनुमान् का पुत्र, जो उसके स्वेदबिन्दु से उत्पन्न हुआ था। एकबार हनुमान् का एक स्वेदबिन्दु दक्षिणसागर में रहनेवाली एक मगर पर गिर पड़ा, जिससे इसकी उत्पत्ति हुयी (आ. रा. सार. ११)। अहिरावण महिरावण युद्ध के समय, इसकी एवं हनुमान् की भेंट हुयी थी (अहिरावण-महिरावण देखिये)।

२. (सो. कुरु.) धृतराष्ट्र के शतपुत्रों में से एक। भीम ने इसका वध किया था (म. भी. ९२.२६)। पाठभेद (भांडारकर संहिता)-'कनकध्वज' (कनकांगद)।

३. केरल देशाधिपति चंद्रहास राजा का पुत्र। इसके नाम के लिए 'मकराक्ष' पाठभेद भी प्राप्त है।

मकराक्ष--एक राक्षस, जो जनस्थान में रहनेवाले खर नामक राक्षस का पुत्र था। राम ने इसका वध किया।

मक्षु--एक महर्षि, जो माक्षव्य नामक सुविख्यात आचार्य का पिता था (माक्षव्य देखिये)।

मखोपेत--एक दैत्य, जो कार्तिक माह के विष्णु नामक सूर्य के साथ भ्रमण करता है (भा. १२.११.४४)।

मग--शाकद्वीप में रहनेवाले वेदवेत्ता ब्राह्मणों का एक समूह। महाभारत में इनके नाम के लिए 'मङ्ग' पाठभेद प्राप्त है (म. भी. १२.३४)।

कृष्णपुत्र सांब ने अपनी उत्तर आयु में सूर्य की कठोर तपस्या की, जिस कारण प्रसन्न हो कर भगवान् सूर्य-नारायण ने अपनी तेजोमयी प्रतिमा उसे पूजा के लिए प्रदान की। उस मूर्ति की प्रतिष्ठापना के लिए, सांब ने चन्द्रभागा नदी के तट पर एक अत्यधिक सुंदर मंदिर बनवाया।

भगवान् सूर्यनारायण के पूजापाठ के लिए सांब ने शाकद्वीप में रहनेवाले मग नामक ब्राह्मणों को बडे ही सम्मान के साथ बुलाया। सांब के इस आमंत्रण के कारण, मग ब्राह्मणों के अठारह कुल चंद्रभागा नदी के तट पर उपस्थित हुये, एवं वहीं रहने लगे (भवि. ब्राह्म. ११७; सांब. २६)।

भविष्य में इनके नाम के लिए 'भग' पाठभेद प्राप्त है। किन्तु वह सुयोग्य प्रतीत नही होता है।

'मग' जाति के ब्राह्मण भारत में आज भी विद्यमान है।

मगध--मगध देश में रहने वाले लोगों के लिए प्रयुक्त सामुहिक नाम। किसी समय बृहद्रथ राजा एवं उसका बार्हद्रथ वंश इन लोगों का राजा था।

इन लोगों के राजाओं में निम्नलिखित प्रमुख थेः-- जयत्सेन, जरासंध, बृहद्रथ, दीर्घ, एवं सहदेव।

पाण्डु राजा ने इन लोगों के दीर्घ नामक राजा का वध किया था (म. आ. १०५.१०)। महाभारत काल मे इन लोगों का राजा जरासंध था, जिसका भीम ने वध किया था। जरासंध के पश्चात् सहदेव इन लोगों का राजा बना। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के समय, सहदेव उपस्थित था (म. स. ४८.१५)। भारतीय युद्ध में मगध देश के लोग पाण्डवों के पक्ष में शामिल थे (म. उ. ५२.२; सहदेव देखिये)।

वैदिक निर्देश--यद्यपि यह नाम ऋग्वेद में अप्राप्य है, अथर्व वेद में इनका निर्देश प्राप्त है। वहाँ ज्वर-व्याधि को पूर्व में अंग एवं मगध लोगों पर स्थानांतरित होने की प्रार्थना की गई है (अ. वे. ५.२२.१४)। यजुर्वेद में प्राप्त पुरुषमेध के बलिप्राणियों की नामावली में 'मागध' लोगों का निर्देश प्राप्त है (वा. सं ३०.५.२२; तै. ब्रा. ३.४.१.१)। अथर्ववेद के व्रात्यसूक्त में व्रात्य लोगों के साथ इनका निर्देश आता है (अ. वे. १५.२.१-४)। संभव है, ये एवं कीकट दोनों एक ही थे।

कौषीतकि आरण्यक में मध्यम प्रातिबोधीपुत्र आदि सुविख्यात आचार्यों को 'मगधवासिन्' कहा गया है। इससे प्रतीत होता है कि, कभी कभी मगध में प्रतिष्ठित ब्राह्मण भी निवास करते थे। किंतु ओल्डेनबर्ग इसे अपवादात्मक घटना मानते है (७.१४)।

बौधायन तथा अन्य सूत्रों में मगधगणों का निर्देश एक जाति के रूप में प्राप्त है (बौ. ध. १.२.१३; आ. श्रौ. २२.६.१८)। उत्तरकालीन साहित्य में, मगध देश को भ्रमणशील चारण लोगों का मूलस्थान माना गया है।

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार, इन लोगों में ब्राह्मणधर्म का प्रसार अत्यधिक कम था, एवं इनमें अनार्य लोगों की संख्या अत्यधिक थी। संभव यही है, कि भारत के पूर्व कोने में रहनेवाले इन लोगों पर आर्यगण अपना प्रभाव नहीं प्रस्थापित कर सके थे।

मघवत्--एक दानव, जो कश्यप एवं दनु के पुत्रों में से एक था।

२. इन्द्र का नामांतर (पद्म. भू. ६)।

मघा--सोम की पत्नी, जो दक्ष प्रजापति की सत्ताईस कन्याओं में से एक थी।

मङ्कण--एक दरिद्री ब्राह्मण, जो आकथ नामक शिवभक्त का पिता था (आकथ देखिये)।

मंकणक--एक प्राचीन ऋषि, जो मातरिश्वन् तथा सुकन्या का पुत्र था। कश्यप के मानसपुत्र के रूप में इसका वर्णन प्राप्त है (वामन. ३८.२)।

बालब्रह्मचारी की अवस्था में सरस्वती नदी के किनारे 'सप्त सारस्वत तीर्थ' में जाकर, यह हजारों वर्ष स्वाध्याय करते हुए तपस्या में लीन रहा। एकबार इसके हाथ में कुश गड जाने से घाव हो गया, जिससे शाकरस बहने लगा। उसे देखकर हर्ष के मारे यह नृत्य करने लगा। इसके साथ समस्त संसार नृत्य में निमग्न हो गया। ऐसा देखकर देवों ने शंकर से प्रार्थना की, कि इसे नृत्य करने से रोकें; अन्यथा इसके नृत्य के प्रभाव से सभी विश्व रसातल को चला जायेगा।

यह सुनकर ब्राह्मण रूप धारण कर शंकर ने इससे नृत्य करने का कारण पूछा। तब इसने कहा, 'मेरे हाथ से जो रस बह रहा है, इससे यह प्रकट है कि, मुझे सिद्धि प्राप्त हो गयी है। यही कारण है कि, आज मै आनंद में पागल हो खुशी से नाच रहा हूँ'। यह सुनकर ब्राह्मण

वेषधारी शंकर ने अपने अँगूठे में एक चोट मारकर उससे बर्फ की तरह श्वेत झरती हुयी भस्म निकाली, जिसे देखकर यह चकित हो उठा। यह तत्काल समझ गया कि, वह कोई अवतारी महापुरुष है। इसके नमस्कार करते ही शंकर ने अपने दर्शन दिये, तथा प्रसन्न होकर वर माँगने के लिए कहा। मंकणक ने शंकरजी के पैरों में गिरकर स्तुति की, तथा वर माँगा कि, वह इसे इस अपार प्रसन्नता से मुक्त करें, जिसके प्रसन्नता के उन्माद में यह अपनी तपस्या से भी विलग हो गया था। शंकर ने कहा, 'ऐसा ही होगा, मेरे प्रसाद से तुम्हारा तप सहस्र गुना अधिक हो जायेगा' (म. व. ८१.९८-११४; श.३७. २९-४८; पद्म. सृ. १८; स्व. २७; स्कन्द. ७.१–३६; २७०)।

एक बार तपस्याकाल में यह स्नान हेतु सरस्वती नदी में उतरा। वहाँ समीप ही स्नान करनेवाली एक सुन्दरी को देखकर इसका वीर्य स्खलित हुआ। यह देख कर इसने उस वीर्य को कमण्डलु में एकत्र कर उसके सात भाग किये, जिससे निम्नलिखित सात पुत्र उत्पन्न हुएः—वायुवेग, वायुबल, वायुहा, वायुमण्डल, वायुज्वाल, वायुरेतम् और वायुचक्र (म. श. ३७.२९–३२; मरुत् देखिये) महाभारत में इन सातों पुत्रों को सप्तर्षि कहा गया हैं। यही सात पुत्र मरुतों के जनक हैं।

मंकन—वाराणसी में निवास करनेवाला एक नाभी, जो श्रीगणेशजी का परम भक्त था। दिवोदास (द्वितीय) के राज्यकाल में, शिवजी ने काशी नगर को निर्जन बनाना चाहा। इस काम के लिये, उसने अपने पुत्र श्रीगणेश (निकुंभ) को नियुक्त किया।

तदोपरांत, श्रीगणेश ने मंकन को दृष्टांत दे कर काशी नगरी के सीमापर अपना एक मंदिर बँधवाने के लिए कहा, जिस आज्ञा का इसने तुरंत पालन किया। काशी का यह 'निकुंभ मंदिर' अत्यधिक सुविख्यात हुआ, एवं अपना ईप्सित प्राप्त करने के लिये देश देश के लोग उसके दर्शन के लिये आने लगे। निकुंभ ने अपने सारे भक्तों की कामनाएँ पूरी की, किंतु दिवोदास राजा की पुत्रप्राप्ति की इच्छा अपूर्ण ही रख दी, जिस कारण क्रुद्ध हो कर उसने निकुंभ मंदिर को उद्ध्वस्त किया। इस पाप के कारण, निकुंभ ने समस्त काशी नगर निर्जन होने का शाप दिवोदास राजा को दे दिया, एवं इस तरह काशी नगर को विरान बनाने की शिवाजी की कामना पूरी हो गई (वायु. ९२.३८; ब्रह्मांड ३. ६७.४३)।

मंकि—एक प्राचीन आचार्य, जिसकी कथा भीष्म ने युधिष्ठिर से कही थी। इस कथा का यही सार था कि, जो भाग्य में होगा उसे कोई टाल नहीं सकता। 'चाहे जितना बल पौरुष का प्रयोग करो, किन्तु यदि भाग्य में बदा नहीं है, तो कुछ भी न होगा। संसार में हर एक व्यक्ति की सामान्य कामनाएँ भी अपूर्ण रहती है। इसी कारण कामना का त्याग करना ही सुखप्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ मार्ग है', यही महान् तत्त्व मंकि के जीवनकथा से दर्शाया गया है।

मंकि नामक एक लोभी किसान था, जो हर क्षण धन प्राप्त की लिप्सा में सदैव अन्धा रहता था। एक बार इसने दो बैल लिए, तथा उन्हे जुएँ में जोत कर यह खेत पर काम कर रहा था। जिस समय बैल तेजी के साथ चल रहे थे, उसी समय उनके मार्ग में एक ऊँट बैठा था। इसने ऊँट न देखा, और बैलों के साथ उसकी पीठ पर जा पहुँचा। इसका परिणाम यह हुआ कि, दौड़ते हुए दोनों बैलों को अपनी पीठ पर तराजू की भाँति ल्टका कर ऊँट भी इतनी जोर से भगा कि, दोनों बैल तत्काल ही मर गये।

यह देख कर मंकि को बड़ा दुःख हुआ, एवं इस अवसर पर इसने भाग्य के सम्बन्ध में बड़े उच्च कोटि के विचार प्रकट किये, जिसमें तृष्णा तथा कामना की गहरी आलोचना प्रस्तुत की गयी है। इसके यह सभी विचार 'मंकि गीता' में संग्रहित हैं। उक्त घटना से इसे वैराग्य उत्पन्न हुआ, एवं अन्त में यह धनलिप्सा से विरक्त हो कर परमानंद स्वरूप परब्रह्म को प्राप्त हुआ (म. शां. १७१.१–५६)।

तत्त्वज्ञान—'मंकि गीता' का सार भीष्म के द्वारा इस प्रकार वर्णित हैः—

सर्वसाम्यम् अनायासः, सत्यवाक्यं च भारत।
निर्वेदश्चाविवित्सा च, यस्य स्यात्स सुखी नरः॥
(म. शां १७१.२)।

मंकि का यह तत्त्वज्ञान बौद्धपूर्वकालीन आजीवक सम्प्रदाय के आचार्य मंखलि गोसाल के तत्त्वज्ञान से काफी साम्य रखता है। यह दैववाद की विचारधारा को मान्यता देनेवाला आचार्य था। केवल दैव ही बलवान् है, कितना ही परिश्रम एवं पुरुषार्थ करो, किन्तु सिद्धि प्राप्त नहीं होती, यही 'मंकि गीता' का उपदेश है, तथा ऐसा ही प्रतिपादन मंखलि गोसाल का था।

सम्भव है, मंकी तथा मंखलि गोसाल दोनों एक ही व्यक्ति हों। आजीवक सम्प्रदाय भोग-प्रधान दैववाद का

अनुसरण करनेवाला था। सम्राट अशोक के समय आजीवक संप्रदाय का काफी प्रचार था, एवं समाज उसका काफी आदर करता था। अशोक के शिलालेखों में आजीवक लोगों का बडे सम्मान के साथ निर्देशन किया गया है। नागार्जुन पहाडियों में उपलब्ध शिलालेखों में आजीवकों को गुहा प्रदान करने का निर्देश प्राप्त है।

आगे चलकर बौद्ध एवं जैन धर्म के प्रचार के कारण आजीतकों की लोकप्रियता धीरे धीरे विनष्ट हो गयी, तथा आजीवकों के द्वारा प्रतिष्ठापित भोगप्रधान दैववाद के स्थान पर तप के द्वारा ब्रह्मप्राप्ति की प्रधानता का बोलबाला हुआ।

२. त्रेतायुग का ऋषि, जो कौषीतक नामक ब्राह्मण का पुत्र था। यह वैदिकधर्म का पालन करनेवाला, अग्निहोत्र करनेवाला, एवं वैष्णवधर्म पर विश्वास करनेवाला परम सदाचारी ब्राह्मण था।

इसे स्वरूपा एवं विश्वरूपा नामक दो पत्नियाँ थी, किन्तु कोई पुत्र न था। इसी कारण इसने अपने गुरु की आज्ञा से साबरमती नदी के तट पर चार वर्षों तक तपस्या की, जिससे इसे अनेक पुत्र उत्पन्न हुये।

साबरमती के तट पर जिस स्थान पर इसने तप किया उसे 'मंकितीर्थ' नाम प्राप्त हुआ। इस तीर्थ को 'सप्तसारस्वत' नामांतर भी प्राप्त था।

द्वापर युग में पाण्डव इस तीर्थ के दर्शनों के लिए आये थे। उस समय उन्होंने इस तीर्थ को 'सप्तधार' नाम प्रदान किया था (पद्म. उ. १३६)।

मंगल--बौधायन श्रौतसूत्र में निर्दिष्ट एक आचार्य (बौ. श्रौ. २६.२)।

२. एक शिवपुत्र, जो शिव के घर्मबिन्दु से पैदा हुआ था। दक्षयज्ञ में सती की मृत्यु हो जाने के कारण, उसके विरहताप से पीड़ित हो कर, शंकर उसकी प्राप्ति के लिये तप करने लगा। तप करते समय शंकर के मस्तक से एक घर्मबिंदु पृथ्वी पर गिरा। उससे एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसे मंगल नाम प्राप्त हुआ। आगे चल कर शंकर ने नवग्रहों में उसकी स्थापना की। यह समस्त पृथ्वी का पालनकर्ता माना जाता है। ज्योतिषशास्त्र की दृष्टि से, मंगल भूमि एवं भार्या का संरक्षणकर्ता माना जाता है। इसीसे इसे 'भौम' भी कहते है (शिव. रुद्र. २.१०; स्कन्द. ४.१.१७)। अग्नि के संपर्क से उत्पन्न होने के कारण, इसे 'अंगारक' नाम भी प्राप्त हुआ था (विष्णुधर्म. १.१.६; पद्म. सृ. ८१)।

स्कन्द के अनुसार, शिव के अश्रुबिंदुओं से इसकी उत्पत्ति हुयी थी (स्कन्द. ७.१.४५)। स्कंद में इसके उत्पत्ति की कथा इस प्रकार दी गयी है:-- शंकर ने हिरण्याक्ष की विकेशी नामक कन्या से विवाह किया था। एक दिन शंकर विकेशी से संभोग करने ही वाला था कि, वहाँ अग्नि आ पहुँचा। उसे देख कर शंकर क्रोध से लाल हो उठा, तथा उसकी आँखों से अश्रुबिंदु टपकने लगे। उन अश्रुबिंदुओं में से एक तेजोमय अश्रु विकेशी के मुख में जा गिरा, जिससे वह गर्भवती हो गयी। किंतु आगे चल कर शंकर के तेजोमय गर्भ को वह सहन न कर सकी, तथा उसने उसे बाहर गल दिया। बाद को उस गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसे पृथ्वी ने स्तनपान करा कर बड़ा किया। यही पुत्र मंगल कहलाया।

भविष्यपुराण में मंगल की उत्पत्ति कुछ दूसरे प्रकार से दी गयी है। उसमें इसकी उत्पत्ति शिव के रक्तबिन्दु से कही गयी है (भवि. ब्राह्म. ३१)। गणेशपुराण में इसे भारद्वाज का पुत्र कहा गया है, एवं गणेश की कृपा के द्वारा किस प्रकार यह ग्रह बना, उसकी भी कथा दी गयी है।

३. एक देव, जो स्वायंभुव मन्वंतर के जित देवों में से एक था।

मंगला--एक देवी, जिसने त्रिपुरवध के समय भगवान् शंकर को वरप्रदान किया था (ब्रह्मवै. ३.४४)।

मचक्नुक--एक यक्ष, जो समन्तपंचक एवं कुरुक्षेत्र के सीमा पर स्थित 'मचक्नुक तीर्थ' में रहता था। उस स्थान में यह द्वारपाल के रूप में निवास करता था। इसको प्रणाम करने पर सहस्र गोदान का पुण्य प्राप्त होता था (म. व. ८९.१७१)। इसके नाम के लिए 'मचक्रुक' पाठभेद भी प्राप्त है। पाठभेद (भांडारकर संहिता)- 'अरन्तुक'।

माच्छिल्ल--(सो. ऋक्ष.) एक राजा, जो सम्राट उपरिचर वसु का चतुर्थ पुत्र था। इसकी माता का नाम गिरिका था (म. आ. ५७.२९)। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के समय यह उपस्थित था (म. स. ३१.१३)।

महाभारत (बम्बई संस्करण) एवं विष्णु में इसे 'मावेल्ल', एवं वायु में इसे 'माथैल्य' कहा गया है।

मज्जान--स्कंद का एक सैनिक (म. श. ४४.६५)।

मंजुघोषा--एक अप्सरा, जिसे मेधाविन् ऋषि ने पिशाच बनने का शाप दिया था (मेधाविन् ४. देखिये)।

मणि—एक नाग, जो कश्यप एवं कद्रु का पुत्र था। गिरिव्रज नगरी के निकट इसका निवासस्थान था (म. आ. ३१.६)। इसने शिव की तपस्या कर गरुड से अभयदान का वर प्राप्त किया था (ब्रह्म. ९०)।

२. ब्रह्मा की सभा का एक ऋषि (म. स. ११.१२५*; पंक्ति. ६)।

३. स्कंद का एक पार्षद, जो उसे चंद्रमा के द्वारा दिये गये दो पार्षदों में से एक था। दूसरे पार्षद का नाम सुमालिन् था (म. श. ४५.२९)।

मणिकंधर—कुबेर का एक सेनापति।

मणिकार्मुकधर—कुबेर का एक सेनापति।

मणिकुंडल—एक राजा, जिसकी कथा ब्रह्म में गोदावरी नदी के तट पर स्थित 'चक्षुस्तीर्थ' (मृतसंजीवन तीर्थ) का माहात्म्य वर्णन करने के लिए कथन की गयी है।

एक बार यह एवं इसका मित्र वृद्धगौतम व्यापार के लिए विदेश चले गये। वहाँ इन्होने आपसमें होड़ लगायी, जिस कारण वृद्धगौतम ने इसका सब कुछ जीत लिया, एवं इसे अंधा एवं लूला बना कर छोड़ दिया। पश्चात् चक्षुस्तीर्थ में स्नान करने के कारण, इसकी सारी शारीरिक व्याधियाँ नष्ट हो गयी, एवं इसका राज्य इसे पुनः प्राप्त हुआ (ब्रह्म. १७०)।

मणिकुंडला--स्कंद की अनुचरी एक मातृका (म. श. ४५. २०)। इसके नाम के लिए 'मणिकुट्टिका' पाठभेद प्राप्त है।

मणिग्रीव--एक यक्ष, जो कुबेर का पुत्र था। इसके छोटे भाई का नाम नलकुबर था (नलकुबर देखिये)।

मणिधर--एक यक्ष, जो लोहित पर्वत पर रहता था।

मणिभद्र--कुबेर सभा का एक यक्ष (म. स. १०.१४)। यह यात्रियों एवं व्यापारियों का उपास्य देव माना जाता है। मरुत्त का धन लाने के लिए जाते समय, युधिष्ठिर ने इसकी पूजा की थी (म. आ. ६४.६)।

इसके पिता का नाम रजतनाभ एवं माता का नाम मणिवरा था। क्रतुस्थ की कन्या पुण्यजनी इसकी पत्नी थी, जिससे इसे निम्नलिखित पुत्र उत्पन्न हुए थेः-असोम, ऋतुमत्, रुद्रप्रथ, दर्शनीय, दुरसोम, द्युतिमत्, नंदन, पद्म, पिंगाक्ष, भीरु, मणिमत्, मंडक, महाद्युति, मेघवर्ण, रुचक,-वसु, शंख, सर्वानुभूत, सिद्धार्थ, सुदर्शन, सुभद्र, सुमक एवं सूर्यतेजस् (ब्रह्मांड. ३.७.१२२-१२५)।

२. कुबेर का एक सेनापति। रावण के सेनापति प्रहस्त ने कैलास पर्वत पर इसे परास्त किया था (वा. रा. यु. १९.११)

३. शिवगणों में से एक (पद्म. उ. १७)।

मणिभूष—कुबेर का एक सेनापति।

मणिमत्—एक यक्ष, जो मणिभद्र एवं पुण्यजनी के पुत्रों में से एक।

२. वरुणसभा का एक नाग (म. स. ९.९)।

३. एक यक्ष, जो कुबेर का सेनापति एवं सखा था। एकबार यह विमान में बैठकर आकाशमार्ग से जा रहा था। उस समय यमुना नदी के तटपर तपस्या करनेवाले अगस्त्य ऋषि का इसने अपमान किया, जिस कारण उसने इसे शाप दिया, 'शीघ्र ही मनुष्य के द्वारा तुम्हारा वध होगा'।

पाण्डवों के वनवासकाल में वे घूमते-घूमते हिमवान् पर्वत पर स्थित कुबेरवन में आये। उस समय कुबेरवन के कुछ कमल लाने के लिए भीम ने उस वन में प्रवेश किया, कि मणिमत् के साथ उसका युद्ध हुआ। उसी युद्ध में भीम ने इसका वध किया (म. व. १५७.४९-५७)।

४. एक राजा, जो दनायुपुत्र वृत्रासुर नामक असुर के अंश से उत्पन्न हुआ था (म. आ. ६१.४२)। यह द्रौपदी के स्वयंवर में उपस्थित था (म. आ. १७७.७)। भीमसेन ने अपने पूर्वदिग्विजय में इसे जीता था (म. स. २७.१०)।

भारतीय युद्ध में भूरिश्रवस् (सौमदत्ति यूपकेतु) राजा ने इसका वध किया (म. द्रो. २४. ५१)।

मणिमंत्र—एक यक्ष, मणिवर एव देवजनी के 'गुह्यक' पुत्रों में से एक।

मणिवक्र--एक वसु, जो आप नामक वसु के पुत्रों में से एक था।

मणिवर—एक यक्ष, जो रजतनाथ एवं मणिवरा के दो पुत्रों में से एक था। क्रतुस्थलाकन्या देवजनी इसकी पत्नी थी, जिससे उत्पन्न इसके पुत्र 'गुह्यक' सामुहिक नाम से सुविख्यात थे।

'गुह्यक' पुत्र--मणिवर को देवजनी से उत्पन्न गुह्यक पुत्रों के नाम निम्नलिखित थे :—अहित, कुमुदाक्ष, कुसु, कृत, चर, जयावह, पक्ष, पद्मनाथ, पद्मवर्ण, पिंगांग, पुष्पदन्त, पूर्णभद्र, पूर्णमास, बलक, मणिमंत्र, महामुद, मानस, वर्धमान, विजय, विमल, विवर्धन, श्वेत, सवीर,

सारण, सुक्रमल, सुगंध, सुचंद्र, स्थूलकर्ण, हिरण्याक्ष एवं हैमवंत (ब्रह्मांड. ३.७.१२७-१३१)।

मणिवरा--रजतनाभ नामक यक्ष की पत्नी।

मणिवाहन--(सो. ऋक्ष.) एक राजा, जो महाभारत के अनुसार कुशांब का, एवं वायु के अनुसार कुश राजा का नामान्तर था। मत्स्य में इसे 'हरिवाहन' कहा गया है, एवं इसे कुश राजा से अलग व्यक्ति माना गया है।

मणिस्थक--एक नाग, जो कश्यप एवं कद्रु के पुत्रों में से एक था।

मणिस्कंध--धृतराष्ट्र कुलोत्पन्न एक नाग, जो जनमेजय के सर्पसत्र में दग्ध हुआ था (म. आ. ५२.१७)।

मणिस्त्रग्विन्--एक यक्ष, जो कुबेर का सेनापति था।

मंड--भृगुकुलोत्पन्न एक गोत्रकार। इसके नाम के लिए 'मुण्ड' पाठभेद प्राप्त है।

मंडक--एक यक्ष, जो मणिभद्र एवं पुण्यजनी के पुत्रों में से एक था।

मंडलक--तक्षक कुल का एक नाग, जो जनमेजय के सर्पसत्र में दग्ध हुआ (म. आ. ५०.६०)।

मंडूक--एक आचार्य, जिसने अथर्ववेद की 'शिक्षा' लिखी थी। उस शिक्षाग्रंथ में कुल १८९ श्लोक हैं।

२. एक जनसंघ, जिनके राजा का नाम आयु था। आयु राजा की सुशोभना नामक कन्या थी, जिसका विवाह इक्ष्वाकुवंशीय परिक्षित् राजा से हुआ था। सुशोभना को परिक्षित् राजा से शल, दल एवं बल नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे (म. व. १९०; शल देखिये)।

३. एक महर्षि, जो मांडुकेय नामक सुविख्यात आचार्य का पुत्र था।

मतंग--एक प्राचीन राजा, जो शाप के कारण व्याध बना। व्याध होने के कारण ही इसे 'मतंग' नाम प्राप्त हुआ।

जिस समय यह व्याध की अवस्था में जीवन यापन करता था, उस समय इसने महर्षि, विश्वामित्र की पत्नी का दुर्भिक्ष काल में भरणपोषण किया था (म. आ. ६५.३१)।

आगे चलकर यह पुनः राजा हुआ, और इसने एक यज्ञ किया, जिसमें इसके उपकार का बदला चुकाने के लिये स्वयं महर्षि विश्वामित्र पुरोहित बना। इस यज्ञ में इन्द्र भी सोमपान के लिए उपस्थित हुआ था (म. आ. ६५.३३)।

२. एक महर्षि, जिसके मतंगाश्रम का निर्देश महाभारत में प्राप्त है (म. व. ८२.४२३ पंक्ति ३)। सम्भव है, मतंगकेदार नामक तीर्थस्थान का नामकरण इसीके नाम पर किया गया हो (म. व. ८३.१७)।

३. एक तपस्वी, जिसकी व्यभिचारिणी ब्राह्मणी माँ ने एक नाई के साथ संभोग करके इसे जन्म दिया था। अपने इस दूषित जन्म के कलंक को धोने के लिए, इसने आजीवन तपस्या की, किन्तु यह इस दोष से मुक्त न हो सका। 'वंशानुक्रम से प्राप्त कलंक किसी प्रकार मिटाया नहीं जा सकता,' इसी सत्य को प्रमाणित करने के लिए महाभारत में इसकी निम्न कथा दी गयी है (म. अनु. २७-२९)।

गर्दभी से संवाद--एक बार इसके ब्राह्मण पिता ने इसे यज्ञ करने के लिए जंगल से समिधा तथा दर्भ लाने को कहा। पिता की आज्ञा को मानकर, गाडी में एक गर्दभी एवं उसके बच्चे को जोतकर यह जंगल की ओर चल पड़ा। राह में गर्दभी का बच्चा छोटा होने के कारण माँ के बराबर न चल पा रहा था, जिससे क्रोधित हो कर इसने उस बच्चे के नाक पर लगातार चाबुक से कई चोटें की। गर्दभी का बच्चा चोटों से जख्मी हो गया, एवं दर्दपीड़ा में विह्वल होकर माँ की ओर देखने लगा। तब गर्दभी ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा, 'ब्राह्मण दयालु होते है, तथा चाण्डाल क्रूर। यह अपना जाति के अनुसार, तुमसे व्यवहार कर रहा है, इस लिए तुम्हें सहना ही पड़ेगा'।

गर्दभी की इस बात को सुनकर इसने तत्काल पूछा, 'मैं ब्राह्मण हूँ, मेरे माता-पिता ब्राह्मण है, तब मै चाण्डाल कैसे हुआ? मैने किस प्रकार अपना ब्राह्मणत्व नष्ट कर दिया है, और मैं आज चांण्डाल हूँ?'। तब गर्दभी ने बताया, तुम्हें 'जन्म देनेवाला पिता एक नाई था, जो तुम्हारा माता का पति न था। अतएव तुम ब्राह्मण कहा से हुए, और तुममें ब्राह्मणत्व कहाँ?।

तपस्या--इस कथा को सुन कर यह तत्काल घर आया, और अपने पिता को अपने जन्म की कहानी बताकर, ब्राह्मणत्वप्राप्त करने के लिए तपस्या के लिए चल पडा। इसकी तपस्या से प्रसन्न होकर इन्द्र ने इसे दर्शन दिया, किन्तु इसके द्वारा ब्राह्मणत्व माँगे जाने पर इन्द्र ने कहा, 'चांडालयोनि में उत्पन्न व्यक्ति को ब्राह्मणत्व मिलना असम्भव है'। तब इसने एक पैर पर खड़े होकर

सौ वर्षों तक और तपस्या की। किन्तु इन्द्र ने फिर प्रकट होकर यही कहा, 'अप्राप्य वस्तु की कामना करना व्यर्थ है। ब्राह्मणत्व सरलता से नहीं प्राप्त होता, उसके प्राप्त करने के लिए अनेक जन्म लेने पडते है'। किन्तु यह इन्द्र के उत्तर से सन्तुष्ट न हुआ, और गया में जा कर अंगूठे के बल खडे होकर, इसने पुनः सौ वर्षों तक ऐसी तपस्या की, कि केवल अस्थिपंजर ही शेष बचा।

अन्त में इन्द्र ने इसे पुन दर्शन दिया और कहा, 'ब्राह्मणत्व छोडकर तुम कुछ भी माँग सकते हो'। तब इसने इन्द्र से निम्नलिखित वर प्राप्त किये:—मनचाही जगहों पर विहार करना, जो चाहे वह रूप लेना, आकाशगामी होना, ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों के लिए पूज्य होना, एवं अक्षय कीर्ति की प्राप्ति करना। इन्द्र ने इसे यह भी वर दिया, 'स्त्रियाँ ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए तुम्हारी पूजा करेंगी, एवं छन्दोदेव नाम से तुम उन्हे पूज्य होगे।'

आगे चलकर मतंग ने देहत्याग किया, एवं इन्द्र से प्राप्त वरों के बल पर, यह समस्त मानवजाति के लिए पूज्य बना।

४. एक आचार्य, जो दाशरथि राम को फल देनेवाले शबरी का गुरु था (वा. रा. अर. ७४)।

५. इक्ष्वाकुवंशीय राजा त्रिशंकु का नामांतर (म. आ. ६५. ३१-३४)। वसिष्ठ ऋषि के पुत्रों के शाप के कारण, त्रिशंकु को मतंग-अवस्था प्राप्त हुयी, जिस कारण उसे यह नाम प्राप्त हुआ (त्रिशंकु देखिये)।

मति—दक्ष प्रजापति की एक कन्या, जो धर्म की पत्नी थी (म. आ. ६०.१४)।

२. एक देव, जो स्वायंभुव मन्वन्तर के जित नामक देवों में से एक था।

३. आभूतरजस् देवों में एक।

४. भव्य देवों में से एक।

मतिनार--(सो. पूरु.) पूरुवंशीय 'अंतिनार' राजा का नामान्तर। इसे 'रंतिनार' एवं 'रंतिभार' नामान्तर भी प्राप्त थे (म. आ. ८९.१०-१२)।

महाभारत में इसे पूरु राजा के पौत्र अनाधृष्टि (रुचेयु) का पुत्र कहा गया है, एवं इसके तंसु, महान्, अतिरथ द्रुह्यु नामक चार पुत्र दिये गये है।

मत्कुणिका—स्कंद की अनुचरी एक मातृका (म. श. ४५.१९)। भांडारकर संहिता में 'मन्थनिका' पाठ प्राप्त है।

मत्त—रावण का भाई एवं लंका का एक बलाढ्य राक्षस, जिसका ऋषभ नामक वानर ने वध किया।

२. रावण के महापार्श्व नामक अमात्य का नामान्तर।

मत्तमयूर--एक क्षत्रियसमुदाय, जिसे नकुल ने अपने पश्चिमदिग्विजय के समय जीता था (म. स. २९.५)।

मत्स्य--विष्णु के दशावतारों में से प्रथम। भगवान् विष्णु ने अखिल मानवजाति के कल्याण के लिए एवं वेदों का उद्धार करने के लिए जो दस अवतार पृथ्वी पर लिए, उनमें से यह प्रथम है। पद्म के अनुसार, शंखासुर द्वारा वेदों के हरण किये जाने पर उनकी रक्षा के लिए विष्णु ने यह अवतार लिया (पद्म. उ. ९०-९१; स्क. १)। भागवत के अनुसार, विष्णु का यह दशम अवतार चाक्षुष मन्वन्तर काल में उत्पन्न हुआ (मा. १.३.१५)।

मत्स्यावतार—पृथ्वी पर मत्स्यावतार किस प्रकार हुआ, इसकी सब से प्राचीनतम प्रमाणित कथा शतपथ ब्राह्मण में प्राप्त है। एक बार, आदिपुरुष वैवस्वत मनु प्रातःकाल के समय तर्पण कर रहा था, कि अर्घ्य देते समय उसकी अंजलि में एक 'मत्स्य' आ गया। 'मत्स्य' ने राजा मनु से सृष्टिसंहार के आगमन की सूचना से अवगत कराते हुए आश्वासन दिया कि, आपत्ति के पूर्व ही यह मनु को सुरक्षित रूप से उत्तरगिरि पर्वत पर पहुँचा देगा, जहाँ प्रलय के प्रभाव की कोई सम्भावना नहीं। इसके साथ ही इसने यह भी प्रार्थना की कि, जबतक यह बड़ा न हो तब तक मनु इसकी रक्षा करें।

यह 'मत्स्य' जब बड़ा हुआ, तब मनु ने उसे महासागर में छोड़ दिया। पृथ्वी पर जलप्रलय होने पर समस्त प्राणिमात्र बह गये। एकाएक मनु के द्वारा बचाया हुआ मत्स्य प्रकट हुआ, एवं इसने मनु को नौका में बैठाकर उसे हिमालय पर्वत की उत्तरगिरि शिखर पर सुरक्षित पहुँचा दिया। आगे चलकर मनु ने अपनी पत्नी इड़ा के द्वारा नयी मानव जाति का निर्माण किया (श. ब्रा. १.८.१.१; मनु वैवस्वत देखिये)

पुराणों में—पद्म में मत्स्यावतार की यह कथा कुछ अलग ढंग से दी गयी है। कश्यप ऋषि को दिति नामक पत्नी से उत्पन्न मकर नामक दैत्य ने ब्रह्मा को धोखा देकर वेदों का हरण किया, एवं इन वेदों को लेकर वह पाताल में भाग गया। वेदों के हरण हो जाने के कारण, सारे विश्व में अनाचार फैलने लगा, जिससे पीड़ित होकर ब्रह्मा ने विष्णु

की शरण में आकर उसे वेदों की रक्षा की प्रार्थना की। तब विष्णु ने मत्स्य का अवतार लेकर मकरासुर का वध किया एवं उससे वेद लेकर ब्रह्मा को दिये।

आगे चलकर एक बार फिर मकर दैत्य ने वेदों का हरण किया, जिससे विष्णु को मत्स्य का अवतार लेकर पुनः वेदों का संरक्षण करना पड़ा (पद्म. उ. २३०)।

मत्स्यपुराण में मत्स्यावतार की कथा निम्न प्रकार से दी गयी है :— पच्चीसवें कल्प के अन्त में ब्रह्मदेव की रात्रि का आरम्भ हुआ। जिस समय वह नींद में था, उसी समय प्रलय हुआ, जिससे स्वर्ग, पृथ्वी आदि लोग डूब गये। निद्रावस्था में ब्रह्मदेव के मुख से वेद नीचे गिरे, तथा हयग्रीव नामक दैत्य ने उनका हरण किया। इसीसे हयग्रीव नामक दैत्य का नाश करने के लिए भगवान् विष्णु ने सूक्ष्म मत्स्य का रूप धारण किया, तथा वह कृतमाला नदी में उचित समय की प्रतीक्षा करने लगा।

इसी नदी के किनारे वैवस्वत मनु तप कर रहा था। एक दिन तर्पण करते समय उसकी अंजलि में एक छोटासा मत्स्य आया। वह इसे पानी मे छोड़ने लगा कि, मत्स्य ने उससे अपनी रक्षा के लिए प्रार्थना की। तब दयालु मनु ने इसे कलश में रक्खा। यह मत्स्य उत्तरोत्तर बढ़ता रहा, अन्त में मनु ने इसे सरोवर में छोड़ दिया। तथापि इसका बढ़ना बन्द न हुआ। त्रस्त होकर मनु इसे समुद्र में छोड़ने लगा, तब इसने उससे प्रार्थना की, 'मुझे वहाँ अन्य जलचर प्राणी खा डालेंगे, अतएव तुम मुझे वहाँ न छोड़ कर मेरी रक्षा करो'। तब मनु ने आश्चर्यचकित होकर इससे कहा, 'तुम्हारे समान सामर्थ्यवान् जलचर मैंने आजतक न देखा है, तथा न सुना है। तुम एक दिन में सौ योजन लंबेचौड़े हो गये हो, अवश्य ही तुम कोई अपूर्व प्राणी हो। तुम परमेश्वर हो, तथा तुमने जनकल्याण हेतु ही जन्म लिया होगा'।

यह सुनकर मत्स्य ने कहा, 'आज से सातवें दिन सर्वत्र प्रलय होगी, तथा सारा संसार जलमग्न हो जायेगा। इसलिए नौका में सप्तर्षि, दवाइयाँ, बीज इत्यादि लेकर बैठ जाओ। अगर नौका हिलने लगे तो वासुकि की रस्सी बनाकर मेरे सींग में बाँध दो'।

प्रलय आने पर मनु ने वैसा ही किया, एवं मत्स्य की सहायता के द्वारा वह प्रलय से बचाया गया (मत्स्य. १-२; २९०)।

भागवत में मत्स्यद्वारा बचाये गये राजा का नाम वैवस्वत मनु न देकर दक्षिण देशाधिपति सत्यव्रत दिया गया है। उस ग्रन्थ के अनुसार, प्रलय के पश्चात् मत्स्यावतारी विष्णु ने सत्यव्रत राजा को मन्वन्तराधिपति प्रजापति बनने का आशीर्वाद दिया, एवं उसे मत्स्यपुराण संहिता का उपदेश भी दिया (भा. १.३.१५; ८.२४; मत्स्य. १. ३३–३४)। उस आशीर्वाद के अनुसार, सत्यव्रत राजा वैवस्वत मन्वंतर में से कृतयुग का मनु बन गया।

विष्णुधर्म के अनुसार, प्रलय के पश्चात् केवल सप्तर्षि जीवित रहे, जिन्हे मत्स्यरूपधारी विष्णु ने शृंगी बनकर हिमालय के शिखर पर पहुँचा दिया, एवं उनकी जान बचायी (विष्णुधर्म. १.७७; म. व. १८५)।

मत्स्यकथा का अन्वयार्थ—मनु का निवासस्थान समुद्र के किनारे था। आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि से, समुद्र में बाढ़ आने के पूर्व समुद्र की सारी मछलियों तट की ओर भाग कर किनारे आ लगती है, क्योंकि बाढ़ के समय उन्हे गन्दे जल में स्वच्छ प्राणवायु नहीं प्राप्त हो पाती। सम्भव यही है कि, पृथ्वी में जलप्लावन के पूर्व समुद्र से सारी मछलियाँ तट की ओर भगने लगी हों, तथा उनमें से एक मछली मनु के सन्ध्या करते समय अंजलि में आ गयी हो। इससे ही मनु ने समझ लिया होगा कि, बहुत बड़ी बाढ़ आनेवाली है, क्यों कि सारी मछलियाँ किनारे आ लगी है। इस संकेत से ही पूर्वतैयारी करके उसने अपने को जलप्लावन से बचाया हो। इसी कारण प्रलयोपरांत मनु को वह मछली साक्षात् विष्णु प्रतीत हुयी हो। बहुत सम्भव है कि, मत्स्यावतार की कल्पना इसी से की गयी हो।

२. मत्स्यदेश में रहनेवाले लोगों के लिये प्रयुक्त सामुहिक नाम। ऋग्वेद में इनका निर्देश सुदास राजा के शत्रुओं के रूप में किया गया है (ऋ. ७.१८.६)। शतपथ ब्राह्मण में ध्वसन् द्वैतवन राजा को मत्स्य लोगों का राजा (मात्स्य) कहा गया है (श. ब्रा. १३.५.४.९)। ब्राह्मण ग्रंथों में वश एवं शाल्व लोगों के साथ इनका निर्देश प्राप्त है (कौ. ब्रा. ४.१; श. ब्रा. १.२.९)। मनु के अनुसार, मत्स्य, कुरुक्षेत्र, पंचाल, शूरसेनक आदि देशों को 'ब्रह्मर्षि देश' सामुहिक नाम प्राप्त था (मनु. २.१९; ७.१९३)।

महाभारत में इन लोगों का एवं इनके देश का निर्देश अनेक बार आता है, जहाँ इन्हे धर्मशील एवं सत्यवादी कहा गया है (म. क. ५.१८)। पाण्डवों के वनवासकाल में, वारणावत से एकचक्रा नगरी को जाते समय पाण्डव इस देश में कुछ काल तक ठहरे थे (म. आ. १४४.२)।

इस देश के निवासी जरासंध के भय से अपना देश छोड़ कर दक्षिण भारत की ओर गये थे (म. स. १३.२७)। भीमसेन ने अपनी पूर्वदिग्विजय के समय इन लोगों को जीता था (म. स. २७.८)। सहदेव ने भी अपनी दक्षिण दिग्विजय के समय मत्स्य एवं अपरमत्स्य लोगों को जीता था (म. स. २८.२-४)

अपने अज्ञातवास के समय पाण्डवों ने इस देश में निवास किया था। उस समय इनलोगों का राजा विराट था (म. वि. १.१३-१६)।

भारतीय युद्ध में एक अक्षौहिणी सेना लेकर मत्स्यराज विराट युधिष्ठिर की सहाय्यता के लिए आया था (म. उ. १९.१२)। इन लोगों के अनेक वीरों का भीष्म एवं द्रोण ने वध कीया था (म. भी. ४५.५४; द्रो. १६४.८५)। बचे हुए वीरों का संहार अश्वत्थामा ने भारतीय युद्ध के अंतिम दिन किया था (म. सौ. ८. १५०)।

भौगोलिक मर्यादा—संभव है कि, आधुनिक भरतपूर अल्वार, धौलपूर, एवं करौली प्रदेश मिल्कर प्राचीन मत्स्य देश बना होगा। १९४८ इ. स. में भारत सरकार ने 'मत्स्ययुनियन' नामक संघराज्य की स्थापना की थी, जिसमें यही प्रदेश शामिल थे। आगे चलकर मत्स्य युनियन का सारा प्रदेश राजस्थान में शामिल किया गया।

मत्स्य देश की राजधानी विराटनगरी में थी, जो जयपूर के पास बैराट नाम से आज भी प्रसिद्ध है।

३. (सो. ऋक्ष.) एक राजा, जो उपरिचर वसु को एक मत्स्यी के द्वारा उत्पन्न जुड़वे संतानों में से एक था। इसे मत्स्यगंधा नामक जुड़वी बहन भी थी (म. आ. ५७.५१)।

४. एक आचार्य, जो वायु के अनुसार व्यास की ऋक्शिष्यपरंपरा में से देवमित्र नामक आचार्य का शिष्य था। इसके नाम के लिए 'वास्य' पाठभेद प्राप्त है।

मत्स्यकाल--(सो. ऋक्ष.) एक राजा, जो वायु के अनुसार, उपरिचर वसु (इंद्रसख) राजा का पुत्र था। संभव यही है, कि इसका सही नाम मत्स्य था, एवं यह एवं इसकी काली (मत्स्यगंधा) नामक जुड़वी बहन, इन दोनो के नाम के लिए 'मत्स्यकाल' नाम प्रयुक्त किया गया हो (मत्स्य ३. देखिये)।

मत्स्यगंध—भृगुकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

मत्स्यगंधा--कुरुवंशीय शंतनु राजा की पत्नी, जो उपरिचर वसु राजा को एक मत्स्यी से उत्पन्न पुत्री थी। इसे सत्यवती नामान्तर भी प्राप्त था (सत्यवती देखिये)। पूर्वजन्म में यह पितरों की कन्या अच्छोदा थी। इसके पुत्र का नाम कृष्ण द्वैपायन था।

मत्स्यदग्ध—अंगिराकुलोत्पन्न एक प्रवर।

मत्स्याच्छाद्य--अंगिराकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

मथन—तारकासुर के पक्ष का एक असुर, जो विष्णु के द्वारा मारा गया था (मत्स्य. १५१)।

मथित--भृगुकुलोत्पन्न एक गोत्रकार। इसके नाम के लिए 'माधव' पाठभेद प्राप्त है।

मथित यामायन--एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. १०. १९)।

मद--एक दानव, जो कश्यप एवं दनु का पुत्र था।

२. ब्रह्मा का एक मानसपुत्र, जो उसके अहंकार से उत्पन्न हुआ था (मत्स्य. ३.११)।

३. रुद्र गणों में से एक।

४. राम दाशरथि राजा के सुज्ञ नामक मंत्री का पुत्र।

५. एक राक्षस, जो च्यवन ऋषि के द्वारा उत्पन्न हुआ था। इसके उत्पत्ति की कथा महाभारत में इस प्रकार दी गयी है। एक बार सोमपान करनेवाले देवतागणों ने अश्वियों को सोमपान करने से इन्कार किया। फिर अश्वियो ने च्यवन ऋषि की मदद माँगी। च्यवन ऋषि ने अपने मंत्रों के बल से देवतागणों का पराभव किया। पश्चात् इंद्र ने क्रुद्ध हो कर च्यवन ऋषि पर आक्रमण करना चाहा, जिसका प्रतिकार करने के लिए च्यवन ने अग्नि में से एक महाभयंकर राक्षस का निर्माण किया। उसी का ही नाम मद था।

उत्पन्न होते ही मद ने अपना प्रचंड मुख खोल दिया, जिसमें समस्त देवतागण समा गये एवं इसकी जिव्हा पर तैरने लगे। फिर समस्त देवताओं के साथ, इंद्र च्यवन ऋषि की शरण में गया, एवं उसने अश्वियों को सोमपान में सहभागी करना स्वीकार कर दिया (म. व. १२४.१८-१९; अनु. १५७.२७-३२)।

मद्गल--एक ऋग्वेदी ब्रह्मचारी।

मदन--ब्रह्मा के पुत्र कामदेव का नामान्तर (कामदेव देखिये)।

२. केरल देश के धृष्टबुद्धि नामक राजमंत्री का पुत्र।

मदनमंजरी—नीलध्वजपुत्र प्रवीर राजा की पत्नी।

मदनसुंदरी—एक गोपी, जो कृष्ण को अत्यधिक प्रिय थी।

मदनिका—एक अप्सरा, जो मेनका की कन्या थी। इसका विवाह विद्युद्रूप नामक राक्षस से हुआ था। पक्षिराज

गरुड के वंशज कंधर ने विद्युद्रूप राक्षस का वध किया। तदोपरान्त यह कंधर की पत्नी बनी, जिससे इसे तार्क्षी नामक कन्या उत्पन्न हुई (मार्क. २)।

मदयन्ती—मित्रसह कल्माषपाद राजा की पत्नी। इसे वसिष्ठ ऋषि से अश्मक नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था (म. आ. १६८.२५; १७३.२२; शां. २२६.३०)।

उत्तंक नामक सुविख्यात ऋषि अपने गुरु वेद ऋषि की आज्ञा के अनुसार, इसके कुण्डल माँगने के लिए इसके यहाँ आये थे। इसने उन्हे कुण्डल दे कर संतुष्ट किया था (म. आश्व. ५७.५८; उत्तंक देखिये)।

२. कृष्ण की एक सखी (पद्म. पा. ७४)।

मदालसा--काशी देश के ऋतुध्वज राजा की पत्नी, जिसके पुत्र का नाम अलर्क था। यह अत्यंत ब्रह्मनिष्ठ थी। एक बार पातालकेतु नामक राक्षस ने इसका हरण किया। पश्चात् ऋतुध्वज राजा ने पातालकेतु को परास्त कर इसकी मुक्तता की।

मदिरा—एक स्त्री, जो देवदैत्यों ने किये समुद्रमंथन से निकले हुए चौदह रत्नों में से एक थी। इसे 'सुरा' नामान्तर भी प्राप्त था।

२. श्रीकृष्णपिता वसुदेव की अनेक पत्नियों में से एक। वसुदेव की मृत्यु के पश्चात् देवकी, भद्रा एवं रोहिणी नामक अन्य वसुदेवपत्नियों के साथ यह सती हो गयी (म. मौ. ८.१८)।

मदिराश्व--(सू. इ.) एक इक्ष्वाकुवंशीय राजा, जो दशाश्व राजा का पुत्र था। यह परमधर्मात्मा, सत्यवादी, तपस्वी, दानी एवं वेद तथा धनुर्वेद में पारंगत था (म. अनु. २.७-८)।

इसे द्युतिमत् नामक पुत्र, तथा सुमध्यमा नामक कन्या थी (म. अनु. २.८)। अपनी कन्या को हिरण्यहस्त नामक ऋषि को विवाह में प्रदान कर, यह स्वर्गलोक चला गया (म. शां. २२६.३४; अनु. १३७.२४)।

२. मत्स्यनरेश विराट का भाई। इसके नाम के लिए 'मदिराक्ष' पाठभेद भी प्राप्त है (म. उ. १६८.१४)।

त्रिगर्तो के द्वारा गोहरण के समय इसने कवचधारण कर उनसे युद्ध किया था।

भारतीय युद्ध में राजा विराट के चक्ररक्षक के रूप में यह पाण्डवों के पक्ष में शामिल था (म. वि. ३२. ३०)। यह एक उदाररथी, सम्पूर्ण अस्त्रों का ज्ञाता, एवं मनस्वी वीर था (म. उ. १६८.१५)। भारतीय युद्ध में द्रोण ने इसका वध किया।

मदोत्कट—एक शिवगण।

मद्र--मद्र देश में रहनेवाले लोगों के लिए प्रयुक्त सामुहिक नाम। बृहदारण्यक उपनिषद में इन लोगों का निर्देश प्राप्त है (बृ. उ. ३.३.१; ७.१)। उपनिषदों में वर्णित मद्रगण कुरुओं भाँति मध्यदेश के कुरुक्षेत्र नामक स्थान में बसे हुए थे। उस समय पतंचल काप्य नामक आचार्य इन्हीके बीच रहता था।

ऐतरेय ब्राह्मण में उत्तर मद्र लोगों का निर्देश प्राप्त है, जिन्हे हिमालय पर्वत के उस पार ('परेण हिमवन्तम्') उत्तर कुरुओं के पड़ोस के रहिवासी बताया गया है (ऐ. ब्रा. ८.१४.३)। त्सिमर के अनुसार, ये लोग काश्मीर के रावी एवं चिनाब के मध्यवर्ति भूभाग में रहते थे (आल्टिन्डिशे. लेबेन. १०२)।

महाभारतकाल में इन लोगों का राजा शल्य था, जिसकी बहन माद्री कुरुवंशीय राजा पाण्डु को विवाह में दी गयी थी। उस समय भीष्म अपने मंत्री, ब्राह्मण, एवं सेना को साथ ले कर इस देश में आये थे, एवं उसने पाण्डु के लिए माद्री का वरण किया (म. आ. १०५. ४-५)।

युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के समय, पाण्डुपुत्र नकुल ने इन लोगों पर प्रेम से विजय प्राप्त किया था, एवं ये लोग युधिष्ठिर के लिए भेंट ले कर आये थे (म. स. २९. १३; ४८.१३)।

महाभारत के पूर्वकाल में, सती सावित्री का पिता अश्वपति मद्र देश का नरेश था (म. व. २९३.१३)। कर्ण ने मद्र एवं वाहीक देशों को आचारभ्रष्ट बता कर उनकी निंदा की थी (म. क. ३०.९; ५५; ६२; ६८-७१)।

२. अनुवंशीय 'मद्रक' राजा के लिए उपलब्ध पाठभेद।

३. स्वारोचिष मन्वन्तर का एक देव।

मद्रक--(सो. अनु.) एक राजा, जो विष्णु एवं वायु के अनुसार शिबि राजा का पुत्र था। इसके नाम के लिए 'मद्र' पाठभेद प्राप्त है।

२. एक मद्रदेशीय योद्धा, जो भारतीय युद्ध में कौरव पक्ष में शामिल था (म. भी. ७.७)।

३. एक राजा, जो क्रोधवश नामक दैत्य के अंश से उत्पन्न हुआ था। इसके नाम के लिए 'नंदिक' पाठभेद प्राप्त है (म. आ. ६१.५५)।

मद्रगार शौङ्गायनि--एक आचार्य, जो साति औष्ट्राक्षि नामक ऋषि का शिष्य था। इसके शिष्य का नाम काम्बोज औपमन्यव था (व. ब्रा. १)।

शुङ्ग का वंशज होने से इसे 'शौङ्गायनि' उपाधि प्राप्त हुई। त्सिमर के अनुसार, इन नामों से 'कम्बोजों' एवं 'मद्रों' के सबंध का संकेत मिलता है (आल्टिन्डिशे लेवेन १०२)

मद्रा—अत्रि ऋषि की दस स्त्रियों में से एक। इसके पुत्र का नाम सोम था (ब्रह्मांड. ३.८.८४-८७)।

मधु—उत्तम मनु के पुत्रों में से एक।

२. चाक्षुष मन्वन्तर के सप्तर्षियों में से एक।

३. एक राक्षस, जो कश्यप एवं खशा के पुत्रों में से एक था।

४. मधुकैटभ नामक सुविख्यात असुरद्वयों में से एक (मधुकैटभ देखिये)।

५. (स्वा. प्रिय.) एक राजा, जो भागवत के अनुसार बिन्दुमत् एवं सरघा का पुत्र था। इसके पुत्र का नाम वीरजन था।

६. (सो. क्रोष्टु.) एक यादव राजा, जो भागवत एवं भविष्य के अनुसार देवक्षत्र का, विष्णु के अनुसार क्षत्र का, मत्स्य के अनुसार दैवक्षत्र का, एवं वायु के अनुसार देवन राजा का पुत्र था।

७. (सो. यदु. सह.) एक यादव राजा, जो विष्णु के अनुसार वृष का, एवं भागवत के अनुसार सहस्रार्जुन का पुत्र था।

८. एक यादव राजा, जिसकी माता का नाम लोला था। यह अत्यंत सदाचरणी एवं शिव का परमभक्त था। इसके तप एवं सदाचरण से प्रसन्न हो कर शिव ने इसे एक त्रिशूल प्रदान किया था। यह त्रिशूल जब तक इसके पास रहेगा, तब तक यह युद्ध में अवध्य एवं अजेय रहेगा, ऐसा इसे शिव का वर था (लोला देखिये)।

इसकी पत्नी का नाम कुम्भीनसी था, जिससे इसे लवण नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। लवण अत्यंत दुराचारी था, इसलिए शत्रुघ्न ने उसका वध किया था। रामायण के अनुसार, शत्रुघ्न ने उसका बाण से, एवं हरिवंश के अनुसार खड्ग से उसका शिरच्छेद किया (वा. रा. उ. ६९.३६; ह. वं. १.५४.५३)।

मधु स्वयं यादवों का राजा था, किन्तु रामायण में इसे दैत्य भी कहा गया है। इसका पुत्र लवण निपुत्रिक अवस्था में मृत होने के पश्चात् इसकी राजधानी मधुपुरी भीम नामक यादव राजा ने जीत ली, एवं वह वहाँ का राजा बना (ह. वं २.३८)।

९. कृष्ण के पौत्रों में से एक।

मधुक पैंग्य--एक आचार्य, जो याज्ञवल्क्य ऋषि का शिष्य था (श. ब्रा. ११.७.२.८; सां. ब्रा. १६.९)। इसके शिष्य का नाम चूड भागवित्ति था (बृ. उ. ६.३. ८-९ काण्व.)। पिंग का वंशज होने से इसे 'पैंग्य' उपाधि प्राप्त हुयी होगी।

मधुकुंभा—स्कंद की अनुचरी एक मातृक (म. श. ४५.१८)।

मधुकैटभ—एक सुविख्यात असुरद्वय। ये मधु तथा कैटभ नामक दो असुर ब्रह्मदेव के स्वेद से उत्पन्न हुए थे (विष्णुधर्म. १. १५)।

जन्म—पद्म के अनुसार इनकी उत्पत्ति ब्रह्मा के तमोगुण से हुयी थी (पद्म. सृ. ४०)। देवी भागवत में कहा गया है कि, इनकी उत्पत्ति विष्णु के कान के मैल से हुयी थी (दे. भा. १.४)।

महाभारत के अनुसार, इन दोनों की उत्पत्ति भगवान् विष्णु के कान के मैल से हुयी थी। भगवान् ने मिट्टी से इनकी आकृति बनायी थी। इनकी मूर्ति में वायु के प्रविष्ट हो जाने से ये सप्राण हो गये थे। इन दोनों में मधु की त्वचा कोमल थी, अतएव इसे 'मधु' नाम प्राप्त हुआ था। मधु सहित कैटभ की उत्पत्ति का वर्णन महाभारत में प्राप्त है। भगवान् विष्णु के नाभिकमल पर भगवत्प्रेरणा से जल की दो बूँदें पड़ी थीं, जो रजोगुण तथा तमोगुण की प्रतीक थी। भगवान् ने उन दोनों बूँदों की ओर देखा, तथा उनमें से एक बूँद मधु तथा दूसरी कैटभ हो गयी (म. शां. ३५५.२२-२३)।

मृत्यु—इन्होंने तप कर के अजेयत्व प्राप्त किया था। बाद में अपने स्वभाव के अनुसार, जब ये सब लोगों को त्रस्त करने लगे, तब विष्णु ने इनका वध किया (दे. भा. १.४)।

ये पैदा होने के उपरांत ही ब्राह्मणों का वध करने लगे थे, तथा ब्रह्मा को भी मारने के लिए उद्यत हुए थे (म. व. १३.५०*)। ब्रह्मदेव ने विष्णु की स्तुति की, तब विष्णु ने इनसे पचास हज़ार वर्षों तक युद्ध किया। लेकिन यह मरते ही न थे। अन्त में इन्हे मोहित कर विष्णु ने इनसे इनकी मृत्यु का वर माँगा, तथा बाद में गोद में लेकर इनका वध किया (पद्म. क्रि. २; मार्क. ७८; ह. वं. ३.१३)। इनकी मेद से पृथ्वी बनने के ही कारण पृथ्वी को 'मेदिनी' नाम

प्राप्त हुआ (म. स. परि. १. क्र. २१. पंक्ति १३३-१३५; शां. ३३५)। भगवान् विष्णु ने इन्हे ब्रह्मा के कहने पर मारा था, अत एव उसे 'मधुसूदन' नाम प्राप्त हुआ (म. शां. २००.१४-१६)। पद्म के अनुसार, देवासुर संग्राम में ये हिरण्याक्ष के पक्ष में शामिल थे, एवं देवों से मायायुद्ध करते थे। इसी कारण विष्णु ने इनका वध किया (पद्म. सृ. ७०)।

ये असुरों के पूर्वज माने जाते हैं, जो तमोगुणी प्रवृत्ति के उग्र स्वभाववाले थे, तथा सदा भयानक कार्य किया करते थे।

मधुच्छन्दस् वैश्वामित्र--एक ऋषि, जो ऋग्वेद के प्रथम मंडल में से पहले दस सूक्तों का रचयिता माना जाता है (कौ. ब्रा. २८.२)। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार, यह विश्वामित्र का इक्यावनवाँ पुत्र था (ऐ. ब्रा. ७.१८)। शतपथ ब्राह्मण में सुविख्यात् 'प्रउग' (प्रातःकालिन स्तुति-स्तोत्र) सूक्त का कर्ता इसे कहा गया है (श. ब्रा. १३.५. १.८)। यह सूक्त प्रायः प्रातःकाल के समय गाया जाता है। इसके द्वारा रचित यह सूक्त गायत्री छंद में है (ऐ. आ. १.१.३)।

विश्वामित्र के कुल सौ पुत्र थे। उनमें से शुनःशेप नामक पुत्र का ज्येष्ठ भ्रातृत्व विश्वामित्र के पहले पचास पुत्रों ने मान्य न किया। किंतु अगले पचास पुत्रों ने उसे मान्यता दी, जिसमें मधुच्छंदस् प्रमुख था। इस कारण विश्वामित्र इस पर अत्यंत प्रसन्न हुआ, एवं उसने इसे शुभाशीर्वाद दिये।

वैवस्वत मनु का पुत्र शर्यात राजा का यह पुरोहित था (शर्यात देखिये)। यह विश्वामित्र गोत्र का गोत्रकार एवं प्रवर तथा कुशिक गोत्र का मंत्रकार था (म. अनु. ४. ४९-५०)। महाभारत में एक वानप्रस्थी ऋषि के नाते से इसका निर्देश प्राप्त है।

२. प्रमतिपुत्र सुमति राजा का पुरोहित, जो योगमार्ग से मुक्त हुआ था (पद्म. सृ. १५)।

मधुप--स्वायंभुव मन्वन्तर के अजित देवों में से एक।

२. एक राजा, जो कृष्णांश राजा का शत्रु था। इसके पुत्र का नाम वीरसेन था (भवि. प्रति. ३.२२)।

मधुपर्क--गरुड की प्रमुख संतानों में से एक (म. उ. ९९.१४)।

मधुपिंग--लांगली भीम नामक शिवावतार का शिष्य।

मधुर--एक असुर, जो वृत्रासुर का पुत्र था।

२. स्कंद का एक सैनिक (म. श. ४४.६६)।

३. (स्वा. प्रिय.) एक राजा, जो बिन्दुमत् राजा का पुत्र था।

मधुरस्वरा--स्वर्गलोक की एक अप्सरा, जो अर्जुन के जन्मोत्सव में उपस्थित थी (म. आ. ४४.३०)।

मधुरावह--अंगिराकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

मधुरुह--(स्वा. प्रिय.) एक राजा, जो घृतपृष्ठ राजा का पुत्र था।

मधुष्पंद--विश्वामित्र के पुत्रों में से एक।

मधुलिका--स्कंद की अनुचरी एक मातृका (म. श. ४६.१८)। इसके नाम के लिए 'मधुरिका' पाठभेद प्राप्त है।

मधुवर्ण--स्कंद का एक सैनिक (म. श. ४४.६७)।

मध्य--कश्यप एवं अरिष्टा के पुत्रों में से एक।

मध्यंदिन--(स्वा. उत्तान.) एक राजा, जो भागवत के अनुसार पुष्पार्ण एवं प्रभा का पुत्र था।

मध्यम प्रातीबोधीपुत्र माण्डुकेय--एक आचार्य (सां. आ. ७.१३)। प्रतीबोध के किसी स्त्रीवंशज का पुत्र होने से इसे 'प्रातीबोधीपुत्र' नाम प्राप्त हुआ होगा।

मन--भव्य, तुषित एवं साध्य देवों में से एक।

मनस्--सायण के अनुसार, एक ऋषि (ऋ. ५. ४४.१०)।

मनसा--एक देवी, जिसमें विषबाधा दूर करने का अलौकिक सामर्थ्य था। यह सामर्थ्य इसे शिवकृपा से प्राप्त हुआ था।

इन्द्र एवं सर्पादि विषैलि जातियाँ इसकी उपासना करती थी, एवं वासुकि जैसे सर्प इसके उपासकों में थे। पृथ्वी पर के समस्त सर्पों पर इसका वरदहस्त था।

यह सर्पों के विष को लीलया उतार देती थी, जिसे साक्षात् धन्वन्तरि भी नहीं उतार सकते थे। अतः इसे धन्वंतरि से भी बढ़कर मानते है, एवं सर्पविद्यासंपन्न लोग इसे अपनी देवता मानते है। ग्रामों में आज भी इसकी पूजा की जाती है (ब्रह्मवै. ३.५१)।

जनमेजय ने किये सर्पसत्र से इन्द्र तक्षक आदि नाग बचे थे, उन्होंने इस देवी की पूजा की थी (दे. भा. ९.४८)।

यह कश्यप ऋषि की कन्या, एवं वासुकि सर्प की भगिनी मानी जाती है। इसका विवाह जरत्कारु नामक ऋषि से हुआ था, जिससे इसे आस्तिक नामक पुत्र उत्पन्न हुआ

था। इसके इस सारे परिवार का निर्देश इसके संबंधित निम्नलिखित मंत्र में प्राप्त है :—

आस्तिकस्य मुनेर्माता, भगिनी वासुकेस्तथा।
जरत्कारुमुनेः पत्नी, मनसा देवी नमोस्तु ते ॥

२. सिंधु दैत्य की कन्या।

मनस्यु—(सो. पूरु.) एक पूरुवंशीय सम्राट, जो पूरु राजा का पौत्र एवं प्रवीर राजा का पुत्र था। वायु में इसे अविद्ध का, एवं मत्स्य में इसे प्राचीन्वत् राजा का पुत्र कहा गया है। इसकी माता का नाम शौरसेनी था, जो शूरसेन राजा की कन्या थी (म. आ. ८९.६-७)।

इसकी पत्नी का नाम सौवीरी था, जिससे इसे शक्त, संहनन एवं वाग्मिन् नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे।

२. (स्वा. नाभि.) एक राजा, जो महत् राजा का पुत्र था। विष्णु में इसके नाम के लिये 'नमस्यु' पाठभेद प्राप्त है।

मनास्विनी—दक्षप्रजापति की कन्या, जो धर्म की पत्नी थी। धर्म से इसे चंद्रमा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था।

२. पूरुवंशीय सम्राट अन्तिनार राजा की पत्नी (मत्स्य. ४९.७)।

३. उत्तानपाद राजा की सुनृता नामक पत्नी से उत्पन्न कन्या।

मनावी—'मनु की पत्नी' इस अर्थ से प्रयुक्त शब्द (क. सं. ३०.१; श. ब्रा. १.१.४.१६)।

मनु—मानवसृष्टि का आदि पुरुष (मनु 'आदिपुरुष' दखिये)।

२. एक राजा, जिसके राज्यकाल में जलप्रलय हो कर, श्रीविष्णु ने मत्स्यावतार लिया था (मनु वैवस्वत देखिये)।

३. 'मनुस्मृति' नाम सुविख्यात धर्मशास्त्रविषयक ग्रंथ का कर्ता (मनु स्वायंभुव देखिये)।

४. एक अर्थशास्त्रकार (मनु प्राचेतस देखिये)।

५. एक अग्निविशेष, जो तप नाम धारण करनेवाले पांचजन्य नामक अग्नि का पुत्र था। इसकी सुप्रजा, भृहत्भासा एवं निशा नामक तीन पत्नियाँ थी। उनमें से प्रथम दो से इसे छः पुत्र एवं तीसरी से इसे एक कन्या तथा सात पुत्र उत्पन्न हुए थे। इसके पुत्रों में निम्नलिखित चार पुत्र प्रमुख थे :—वैश्वानर, विश्वपति, स्विष्टकृत् एवं कर्मन (म. व. २२३)।

६. एक अप्सरा, जो कश्यप एवं प्राधा की कन्या थी (म. आ. ५९.४४)।

७. एक ऋषि, जो कृशाश्व ऋषि का पुत्र था। इसकी माता का नाम धिषणा था (भा. ६.६.२०)।

८. (सो. क्रोष्टु.) एक यादव राजा, जो वायु के अनुसार मधु राजा का पुत्र था। इसके पुत्र का नाम मनुवश था।

९. (सो. क्रोष्टु.) एक यादव राजा, जो मत्स्य के अनुसार, लोमपाद राजा का पुत्र था। इसके पुत्र का नाम ज्ञाति था।

१० (सू. इ.) एक इक्ष्वाकुवंशीय राजा, जो शीघ्र राजा का पुत्र था। इसके पुत्र का नाम प्रसुश्रुत था।

११. धर्मसावर्णि मनु के पुत्रों में से एक।

१२. अंगिराकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

मनु 'आदिपुरुष'—मानवसृष्टि का प्रवर्तक आदि-पुरुष, जो समस्त मानवजाति का पिता माना जाता है (ऋ. १.८०.१६; ११४.२; २.३३.१३; ८.६३.१; अ. वे. १४.२.४१; तै. सं. २.१.५.६)।

कई अभ्यासकों के अनुसार, मनु वैवस्वत तथा यह दोनों एक ही व्यक्ति थे (मनु वैवस्वत देखिये)।

ऋग्वेद में प्रायः बीस बार मनु का निर्देश व्यक्तिवाचक नाम से किया गया है। वहाँ सर्वत्र इसे 'आदिपुरुष' एवं मानव-जाति का पिता, तथा यज्ञ एवं तत्संबंधित विषयों का मार्गदर्शक माना गया है। मनु के द्वारा बताये गये मार्ग से ले जाने की प्रार्थना वेदों में प्राप्त है (ऋ. ८.३०.१)।

मानवजाति का पिता—ऋग्वेद में पांच बार इसे पिता एवं दो बार निश्चित रूप से 'हमारे पिता' कहा गया है (ऋ. २.३३)। तैत्तिरीय संहिता में मानवजाति को 'मनु की प्रजा' (मानव्यः प्रजाः) कहा गया है (१.५.१.३)। वैदिक साहित्य में मनु को विवस्वत् का पुत्र माना गया है, एवं इसे 'वैवस्वत' पैतृक नाम दिया गया है (अ. वे. ८.१०; श. ब्रा. १३.४.३)। यास्क के अनुसार, विवस्वत् का अर्थ सूर्य होता है, इस प्रकार यह आदिपुरुष सूर्य का पुत्र था (नि. १२.१०)। यास्क इसे सामान्य व्यक्ति न मानकर दिव्यक्षेत्र का दिव्य प्राणी मानते है (नि. १२.३४)।

वैदिक साहित्य में यम को भी विवस्वत् का पुत्र माना गया है, एवं कई स्थानों पर उसे भी मरणशील मनुष्यों में प्रथम माना गया है। इससे प्रतीत होता है कि, वैदिक काल के प्रारम्भ में मनु एवं यम का अस्तित्त्व अभिन्न था, किन्तु उत्तरकालीन वैदिक साहित्य में मनु को

जीवित मनुष्यों का एवं यम को दूसरे लोक में मृत मनुष्यों का आदिपुरुष माना गया। इसीलिए शतपथ ब्राह्मण में मनु वैवस्वत को मनुष्यों के शासक के रूप में, तथा यम वैवस्वत को मृत पितरों के शासक के रूप में वर्णन किया गया है (ऋ. ८.५२.१; श. ब्रा. १३.४.३) यह मनु सम्भवतः केवल आर्यों के ही पूर्वज के रूप में माना गया है, क्योंकि अनेक स्थलों पर इसका अनार्यों के पूर्वज द्यौः से विभेद किया है।

यज्ञसंस्था का आरंभकर्ता—मनु ही यज्ञप्रथा का आरंभकर्ता था, इसीसे इसे विश्व का प्रथम यज्ञकर्ता माना जाता है (ऋ. १०.६३.७; तै. सं. १.५.१.३; २.५.९.१; ६.७.१; ३.३.२.१; ५.४.१०.५; ६.६.६.१; ७.५.१५.३)। ऋग्वेद के अनुसार, विश्व में अग्नि प्रज्वलित करने के बाद सात पुरोहितों के साथ इसने ही सर्वप्रथम देवों को हवि समर्पित की थी (ऋ. १०.६३)।

यज्ञ से ऐश्वर्यप्राप्ति--तैत्तिरीय संहिता में मनु के द्वारा किये गये यज्ञ के उपरांत उसके ऐश्वर्य के प्राप्त होने की कथा प्राप्त है। देव-दैत्यों के बीच चल रहे युद्ध की विभीषिका से अपने धन की सुरक्षा करने के लिए देवों ने उसे अग्नि को दे दिया। बाद को अग्नि के हृदय में लोभ उत्पन्न हुआ, एवं वह देवों के समस्त धनसम्पत्ति को लेकर भागने लगा। देवों ने उसका पीछा किया, एवं उसे कष्ट देकर विवश किया कि, वह उनकी अमानत को वापस करे। देवों द्वारा मिले हुए कष्टों से पीड़ित होकर अग्नि रुदन करने लगा, इसी से उसे 'रुद्र' नाम प्राप्त हुआ। उस समय उसके नेत्रों से जो आँसू गिरे उसीसे चाँदी निर्माण हुयी, इसी लिए चाँदी दानकर्म में वर्जित है। अन्त में अग्नि ने देखा कि, देव अपनी धन-सम्पत्ति को वापस लिए जा रहे हैं, तब उसने उनसे कुछ भाग देने की प्रार्थना की। तब देवों ने अग्नि को 'पुनराधान' (यज्ञकर्मों में स्थान) दिया। आगे चलकर मनु, पूषन्, त्वष्टृ एव धातृ इत्यादि ने यज्ञकर्म कर के ऐश्वर्य प्राप्त किया (तै. सं. १.५.१)।

मनु ने सभी लोगों के प्रकाशहेतु अग्नि की स्थापना की थी (ऋ. १.३६)। मनु का यज्ञ वर्तमान यज्ञ का ही प्रारंभक है, क्यों कि, इसके बाद जो भी यज्ञ किये गये, उन में इसके द्वारा दिये गये विधानों को ही आधार मान कर देवों को हवि समर्पित की गयी (ऋ. १.७६.)। इस प्रकार की तुलनाओं को अक्सर क्रियाविशेषण शब्द 'मनुष्वत्' (मनुओं की भाँति) द्वारा व्यक्त किया गया है। यज्ञकर्ता भी अग्नि को उसी प्रकार यज्ञ का साधन बनाते हैं, जिस प्रकार मनुओं ने बनाया था (ऋ. १.४४) वे मनुओं की ही भाँति अग्नि को प्रज्वलित करते हैं, तथा उसीकी भाँति सोम अर्पित करते हैं (ऋ. ७.२; ४.३७)। सोम से उसी प्रकार प्रवाहित होने की स्तुति की गयी है, जैसे वह किसी समय मनु के लिए प्रवाहित होता था (ऋ. ९.९६)।

समकालीन ऋषि--मनु का अनेक प्राचीन यज्ञ-कर्ताओं के साथ उल्लेख मिलता है, जिनमें निम्नलिखित प्रमुख हैः--अंगिरस् और ययाति (ऋ. १.३१), भृगु और अंगिरस (ऋ. ८.४३), अथर्वन् और दध्यञ्च (ऋ. १.८०), दध्यञ्च, अंगिरस्, अत्रि और कण्व (ऋ. १.१३९)। ऐसा कहा गया है कि, कुछ व्यक्तियों ने समय समय पर मनु को अग्नि प्रदान कर उसे यज्ञ के लिए प्रतिष्ठित किया था, जिनके नाम इस प्रकार है--देव (ऋ. १.३६), मातरिश्वन् (ऋ. १.१२८), मातरिश्वन् और देव (ऋ. १९.४६), काव्य उशना (ऋ. ८.२३)।

ऋग्वेद के अनुसार, मनु विवस्वत् ने इन्द्र के साथ बैठ कर सोमपान किया था (वाल. ३)। तैत्तिरीय संहिता और शतपथ ब्राह्मण में मनु का अक्सर धार्मिक संस्कारादि करनेवाले के रूप में भी निर्देश किया गया है।

मन्वंतरों का निर्माण--आदिपुरुष मनु के पश्चात्, पृथ्वी पर मनु नामक अनेक राजा निर्माण हुए, जिन्होने अपने नाम से नये-नये मन्वंतरों का निर्माण किया।

ब्रह्मा के एक दिन तथा रात को कल्प कहते हैं। इनमें से ब्रह्मा के एक दिन के चौदह भाग माने गये हैं, जिनमें से हर एक को मन्वन्तर कहते हैं। पुराणों के अनुसार, इनमें से हर एक मन्वन्तर के काल में सृष्टि का नियंत्रण करनेवाला मनु अलग होता है, एवं उसीके नाम से उस मन्वन्तर का नामकरण किया गया है। इस प्रकार जब तक वह मनु उस सृष्टि का अधिकारी रहता है, तब तक वह काल उसके नाम से विख्यात रहता है।

चौदह मन्वंतर—इस तरह पुराणों में चौदह मन्वन्तर माने गये हैं, जो निम्नलिखित चौदह मनुओं के नाम से सुविख्यात हैं:--१. स्वायंभुव, २. स्वारोचिष, ३. उत्तम (औत्तम,), ४. तामस, ५. रैवत, ६. चाक्षुष, ७. वैवस्वत, ८. सावर्णि (अर्कसावर्णि) ९. दक्षसावर्णि, १०. ब्रह्मसावर्णि ११. धर्मसावर्णि १२. रुद्रसावर्णि, १३. रौच्य, १४. भौत्य। इनमें से स्वायंभुव से चाक्षुष

तक के मन्वंतर हो चुके है, एवं वैवस्वत मन्वंतर सांप्रत चालू है। बाकी मन्वंतर भविष्यकाल में होनेवाले हैं।

पाठभेद—चौदह मन्वन्तर के अधिपतियों मनु के नाम विभिन्न पुराणों में प्राप्त है। इनमें से स्वायंभुव से ले कर सावर्णि तक के पहले आठ मनु के नाम के बारे में सभी पुराणों में प्रायः एकवाक्यता है, किंतु नौ से चौदह तक के मनु के नाम के बारे में विभिन्न पाठभेद प्राप्त है, जो निम्नलिखित तालिका में दिये गये हैं:—

	वायु	पद्म	मार्क.	ब्रह्मवैवर्त एवं भागवत	मत्स्य	ब्रह्म	विष्णु
९.	सावर्णि	रौच्य	सूर्यसावर्णि	दक्षसावर्णि	रौच्य	रौच्य	दक्षसावर्णि
१०.	सावर्णि	भौत्य	ब्रह्मसावर्णि	ब्रह्मसावर्णि	मेरुसावर्णि	रौच्य	ब्रह्मसावर्णि
११.	सावर्णि	मेरुसावर्णि	धर्मसावर्णि	धर्मसावर्णि	ब्रह्मसावर्णि	मेरुसावर्णि	धर्मसावर्णि
१२.	सावर्णि	ऋभु	रुद्रसावर्णि	रुद्रसावर्णि	ऋतसावर्णि	—	रुद्रसावर्णि
१३.	रौच्य	ऋतुधामन्	रौच्य	देवसावर्णि	ऋतधामन्	—	रौच्य
१४.	भौत्य	विष्वक्सेन	भौत्य	इंद्रसावर्णि (चंद्रसावर्णि)	विश्वक्सेन	भौत्य	भौत्य

उपर्युक्त हर एक मन्वन्तर की कालमर्यादा चतुर्युगों की इकत्तर भ्रमण माने गये हैं। चतुर्युगों की कालमर्यादा तेतालीस लाख वीस हज़ार मानुषी वर्ष माने गये हैं। इस प्रकार हर एक मन्वन्तर की कालमर्यादा तेतालीस लाख वीस हजार × इकत्तर होती है।

हर एक मन्वन्तर का राजा मनु होता है, एवं उसकी सहायता के लिए सप्तर्षि, देवतागण, इन्द्र, अवतार एवं मनुपुत्र रहते हैं। इनमें सप्तर्षियों का कार्य प्रजा उत्पन्न करना रहता है, एवं इन प्रजाओं का पालन मनु एवं उसके पुत्र भूपाल बन कर करते हैं। इन भूपालों को देवतागण सलाह देने का कार्य करते हैं, एवं भूपालों को प्राप्त होनेवाली अड़चनों का निवारण इन्द्र करता है। जिस समय इन्द्र हतबल होता है, उस समय स्वयं विष्णु अवतार लेकर भूपालों का कष्ट निवारण करता है।

मनु एवं उसके उपर्युक्त सारे सहायकगण विष्णु के अंशरूप माने गये हैं, तथा मन्वंन्तर के अन्त में वे सारे विष्णु में ही विलीन हो जाते हैं। किसी भी मन्वन्तर के आरम्भ में वे विष्णु के ही अंश से उत्पन्न होते हैं (विष्णु. १.३)।

स्वायंभुव मन्वन्तर

१. मनु—स्वायंभुव।

२. सप्तर्षि—अंगिरस् (भृगु), अत्रि, क्रतु, पुलस्त्य, पुलह, मरीचि, वसिष्ठ।

३. देवगण—याम या शुक्र के जित, अजित् व जिताजित् ये तीन भेद थे। प्रत्येक गण में बारह देव थे (वायु. ३१.३-९)। उन गणों में निम्न देव थे—ऋचीक, गृणान, जनिमत्, जर, जविष्ठ, दुह, बृहच्छुक्र, मितवत्, विभाव, विभु, विश्वदेव, श्रुति, सोमपायिन् (ब्रह्माण्ड. २. १३)। इन देवों में तुषित नामक बारह देवों का एक और गण था (भा. ४.१.८)।

४. इन्द्र—विश्वभुज् (भागवत मतानुसार यज्ञ)। इन्द्राणी 'दक्षिणा' थी (भा. ८.१.६)।

५. अवतार—यज्ञ तथा कपिल (विष्णु एवं भागवत मतानुसार)।

६. पुत्र—अग्निबाहु (अग्निमित्र, अतिबाहु), अग्नीध्र (आग्नीध्र), ज्योतिष्मत्, द्युतिमत्, पुत्र (वपुष्मत्, सत्र, सह), मेधस् (मेध, मेध्य), मेधातिथि, वसु (बाहु), सवन (सवल), हव्य (भव्य)।

मार्कंडेय के अनुसार, इसके पुत्रों में से पहले सात भूपाल थे। भागवत तथा वायु के अनुसार, इसे प्रियव्रत एवं उत्तानपाद नामक दो पुत्र थे। प्रियव्रत के दस पुत्र थे।

स्वारोचिष मन्वंतर

१. मनु—स्वारोचिष। कई ग्रन्थों में इस मन्वन्तर के मनु का नाम 'द्युतिमत्' एवं 'स्वारोचिस्' बताया गया है।

२. सप्तर्षि—अर्ववीर (उर्वरीवान्, ऊर्ज, और्व), ऋषभ (कश्यप, काश्यप), दत्त (अत्रि), निश्च्यवन (निश्चर, ल), प्राण, बृहस्पति (अग्नि, अलि), स्तम्ब

(ऊर्जस्तंब, ऊर्जस्वल)। ब्रह्माण्ड में स्वारोचिष मन्वन्तर के कई ऋषियों के कुलनाम देकर उन्हें सप्तर्षियों का पूर्वज कहा गया है।

३. देवगण--तुषित, इडस्पति, इध्म, कवि, तोष, प्रतोष, भद्र, रोचन, विभु, शांति, सुदेव (स्वह्न), पारावत।

४. इन्द्र--विपश्चित्। भागवत के अनुसार, यज्ञपुत्र रोचन।

५. अवतार--तुषितपुत्र अजित (विभु)।

६. पुत्र--अयस्मय अपोमूर्ति (आपमूर्ति), ऊर्ज, किंपुरुष, कृतान्त, चैत्र, ज्योति (रोचिष्मत्, रवि), नभ, (नव, नभस्य), प्रतीत (प्रथित, प्रसृति, बृहदुक्थ), भानु, विभृत, श्रुत, सुकृति (सुषेण), सेतु, हविध्र (हविध्र)। इसके पुत्रों के ऐसे कुछ नाम मिलते हैं, किन्तु उनमें से कुल नौ या दस की संख्या प्राप्त है। मत्स्य के अनुसार, इस मन्वन्तर में ऋषियों की सहायता के लिए वसिष्ठपुत्र सात प्रजापति बने थे। किन्तु उन सब के नाम मनु पुत्रों के नामों से मिलते हैं, जैसे--आप, ज्योति, मूर्ति, रय, सुकृत, स्मय तथा हस्तीन्द्र।

उत्तम मन्वन्तर

१. मनु--उत्तम।

२. सप्तर्षि--अनघ, ऊर्ध्वबाहु, गात्र, रज, शुक्र (शुक्ल), सवन, सुतपस्। ये सब वसिष्ठपुत्र थे, एवं वासिष्ठ इनका सामान्य नाम था। पूर्वजन्म में ये सभी हिरण्यगर्भ के ऊर्ज नामक पुत्र थे।

३. देवगण--प्रतर्दन (भद्र, भानु, भावन, मानव), वशवर्तिन् (वेदश्रुति), शिव, सत्य, सुधामन्। इन सबके बारह बारह के गण थे।

४. इन्द्र--सुशांति (सुकीर्ति, सत्यजित्)।

५. अवतार--सत्या का पुत्र सत्य, अथवा धर्म तथा सुनृता का पुत्र सत्यसेन।

६. पुत्र--अज, अप्रतिम, (इष, ईष), ऊर्ज, तनूज (तनूर्ज, तर्ज), दिव्य (दिव्यौषधि, देवांबुज), नभ (नय), नभस्य (पवन, परशु, परशुचि), मधु, माधव, शुक्र, शुचि (शुति, सुकेतु)।

तामस मन्वन्तर

१. मनु--तामस।

२. सप्तर्षि--अकपि (अकपीवत्), अग्नि, कपि (कपीवत्), काव्य (कवि, चरक), चैत्र (जन्यु, जह्नु, जल्प), ज्योतिर्धर्मन् (ज्योतिर्धामन्, धनद), धातृ (धीमत्, पीवर), पृथु।

३. देवगण--वीर, वैधृति, सत्य (सत्यक, साध्य), सुधी, सुरूप, हरि। मार्कण्डेय के अनुसार, इनकी कुल संख्या सत्ताइस है। अन्य ग्रंथों में उल्लेख आता है कि, ये पुत्र एक एक न होकर सत्ताइस सत्ताइस देवों के गण थे।

४. इन्द्र--शिखि (त्रिशिख, शिबि)।

५. अवतार--हरि, जो हरिमेध तथा हरिणी का पुत्र था। इसे एक स्थान हर्या का पुत्र कहा गया है।

६. पुत्र--अकल्मष (अकल्माष), कृतबंधु, कृशाश्व, केतु, क्षांति, खाति (ख्याति), जानुजंघ, तन्वीन्, तपस्य, तपोद्युति (द्युति), तपोधन, तपोभागिन्, तपोमूल, तपोयोगिन्, तपोरति, दृढेषुधि, दान्त, धन्विन्, नर, परंतप, परीक्षित, पृथु, प्रस्थल, प्रियभृत्य, शतहय, शांत (शांति), शुभ, सनातन, सुतपस्।

७. योगवर्धन--कौकुरुण्डि, दाल्भ्य, प्रवहण, शङ्ख, शिव, सस्मित, सित। ये योगवर्धन केवल इसी मन्वंतर में मिलते हैं।

रैवत मन्वन्तर

१. मनु--रैवत।

२. सप्तर्षि--ऊर्ध्वबाहु (सोमप), देवबाहु (वेदबाहु), पर्जन्य, महामुनि (मुनि, वसिष्ठ, सत्यनेत्र), यदुध्र, वेदशिरस् (वेदश्री, सप्ताश्व, सुधामन्, सुबाहु, स्वधामन्), हिरण्यरोमन् (हिरण्यलोमन्)।

३. देवगण--आभूतरजस् (भूतनय, भूतरजय)। इसके रैभ्य तथा पारिप्लव (वारिप्लव) ये दो भेद हैं। इसके अतिरिक्त अमिताभ, प्रकृति, वैकुंठ, शुभ आदि देवगणों में प्रत्येक में १४ व्यक्ति हैं।

४. इन्द्र--विभु

५. अवतार--विष्णु के अनुसार संभूतिपुत्र मानस, तथा भागवत के अनुसार शुभ्र तथा विकुंठा का पुत्र 'वैकुंठ'।

६. पुत्र--अव्यय (हव्यप), अरण्य (आरण्य), अरुण, अर्जुन, कवि (कपि), कंबु, कृतिन्, तत्त्वदर्शिन् धृतिकृत्, धृतिमत्, निरामित्र, निरुत्सुक, निर्मोह, प्रकाश (प्रकाशक), बलबंधु, बाल, महावीर्य, युक्त, वित्तवत्, विंध्य, शुचि, शृंग, सत्यक, सत्यवाच्, सुयष्टव्य (सुसंभाव्य), हरहन्।

चाक्षुष मन्वन्तर

१. मनु--चाक्षुष।

२. सप्तर्षि--अतिनामन्, उत्तम (उन्नत, भृगु), नभ (नाभ, मधु), विरजस् (वीरक), विवस्वत् (हविष्मत्), सहिष्णु, सुधामन्, सुमेधस्।

३. देवगण--आद्य (आप्य), ऋभ, ऋभु, पृथग्भाव (प्रथुक-ग, यूथग), प्रसूत, भव्य (भाव्य), वारि (वारिमूल), लेख।

४. इन्द्र--भवानुभव या मनोजव अथवा मंत्रद्रुम।

५. अवतार--विष्णु मतानुसार विकुंठापुत्र वैकुंठ, तथा भागवत मतानुसार वैराज तथा संभूति का पुत्र अजित्।

६. पुत्र--अग्निष्टुत, अतिरात्र, अभिमन्यु, ऊरु (रुरु) कृति, तपस्विन्, पुरु (पुरुष, पूरु), शतद्युम्न, सत्यवाच्, सुद्युम्न।

वैवस्वत मन्वन्तर

१. मनु--वैवस्वत।

२. सप्तर्षि--अत्रि, कश्यप (काश्यप, वत्सर), गौतम (शरद्वत्), जमदग्नि, भरद्वाज (भारद्वाज), वसिष्ठ (वसुमत्), विश्वामित्र।

३. देवगण--आंगिरस (दस), अश्विनी (दो), आदित्य (बारह), भृगुदेव (दस), मरुत् (उन्चास), रुद्र (ग्यारह), वसु (आठ), विश्वेदेव (दस), साध्य (बारह)।

४. इन्द्र--ऊर्जस्विन् या पुरंदर या महाबल।

५. अवतार--वामन।

६. पुत्र--अरिष्ट (दिष्ट, नाभागारिष्ट, नामानेदिष्ट, रिष्ट, नेदिष्ट, उद्दिष्ट), इक्ष्वाकु, इल (सुद्युम्न), करुष, कुशनाभ, धृष्ट (धृष्णु), नभ (नभग, नाभ, नाभाग), नृग, पृषध्र, प्रांशु, वसुमत्, शर्याति।

सावर्णि मन्वंतर

१. मनु--सावर्णि।

२. सप्तर्षि--अश्वत्थामन् (द्रौणि), और्व (काश्यप, रुरु, शृंग), कृप (शरद्वत्, शारद्वत्), गालव (कौशिक), दीप्तिमत्, राम (परशुराम जामदग्न्य), व्यास (शतानंद, पाराशर्य)।

३. देवगण--अमिताभ (अमृतप्रभ), मुख्य (सुख, विरज), सुतप (सुतपस्, तप)।

४. इन्द्र--बलि (वैरोचन)। बलि वैरोचन की आसक्ति इन्द्रपद पर नहीं रहती है। अतएव कालान्तर में इन्द्रपद छोड़कर वह सिद्धगति को प्राप्त करेगा।

५. अवतार--देवगुह्य तथा सरस्वती का पुत्र सार्वभौम अवतार होगा, तथा बलि के बाद वह सब व्यवस्था देखेगा।

६. पुत्र--अधृष्ट (अधृष्णु), अध्वरीवत् (अवरीयस्, अर्ववीर, उर्वरीयस्, (वीरवत्), अग्नि, अरिष्ट (चरिष्णु, विष्णु), आज्य, ईड्य, कृति, (धृति, धृतिमत्), निर्मोह, यवसस्, वसु, वरीयस्, वाच् (वाजवाजिन्, विरज, विरजस्क), वैरिशमन, शुक्र, सत्यवाच्, सुमति।

दक्षसावर्णि मन्वन्तर

१. मनु--दक्षसावर्णि।

२. सप्तर्षि--ज्योतिष्मत्, द्युतिमत्, मेधातिथि (मेधामृति, माधातिथि), वसु, सत्य (सुतपस्, पौलह), सबल (सवन, वसित, वसिन), हव्यवाहन (हव्य, भव्य)।

३. देव--दक्षपुत्र हरित के पुत्र निर्मोह, पार (पर, संभूत), मरिचिगर्भ, सुधर्म, सुधर्मन्, सुशर्माण। इनमें से हर एक के साथ बारह व्यक्ति हैं।

४. इन्द्र--कार्तिकेय ही आगे चलकर अद्‌भुत नाम से इन्द्र होगा।

५. अवतार--आयुष्मत् एवं अंबुधारा का पुत्र ऋषभ अवतार होगा।

६. पुत्र--अनीक (ऋचीक, अर्चिष्मत्, नाक), खड्गहस्त (पंचहस्त, पंचहोत्र, शापहस्त), गय, दीप्तिकेतु (दासकेतु, बर्हकेतु), धृष्टकेतु (धृतिकेतु, भूतकेतु), निराकृति (निरामय), पृथुश्रवस् (पृथश्रवस्), बृहत् (बृहद्रथ, बृहद्यश,), भूरिद्युम्न।

ब्रह्मसावर्णि मन्वन्तर

१. मनु--ब्रह्मसावर्णि।

२. सप्तर्षि--आपांमूर्ति (आपोमूर्ति), अप्रतिम (अप्रतिमौजस, प्रतिम, प्रामति), अभिमन्यु (नभस, सप्तकेतु), अष्टम (वसिष्ठ, वशिष्ठ, सत्य, सद्य), नभोग (नाभाग), सुकृति (सुकीर्ति), हविष्मति।

देव--अर्चि (सुखामन, सुखासीन, सुधाम, सुधामान, सुवासन, धूम, निरुद्ध, विरुद्ध)।

४. इन्द्र--शान्ति नामक इन्द्र होगा।

५. अवतार--विश्वसृष्टय के गृह में विषूचि के गर्भ से विष्वक्सेन नामक अवतार होगा।

६. पुत्र--अनमित्र (निरामित्र), उत्तमौजस, जयद्रथ, निकुंभज, भूरिद्युम्न, भूरिषेण, भूरिसेन, वीरवत् (वीर्यवत्), वृषभ, वृषसेन, शतानीक, सुक्षेत्र, सुपर्वन्, सुवर्चस्, हरिषेण।

धर्मसावर्णि मन्वन्तर

१. **मनु**--धर्मसावर्णि।

२. **सप्तर्षि**--अग्नितेजस्, अनघ (तनय, नग, भग), अरुण (आरुणि, तरुण, वारुणि), उदधिष्णन् (उरुधिष्ण्य, पुष्टि, विष्टि, विष्णु), निश्चर, वपुष्मत् (ऋष्टि), हविष्मत्।

३. **देव**--तीस कामग (काम-गम, कामज), तीस निर्माणरत (निर्वाणरति, निर्वाणरुचि), तीस मनोजव (विहंगम)।

४. **इन्द्र**--वृष (वृषन्, वैधृत) इन्द्र होगा।

५. **अवतार**--इस मन्वन्तर के अवतार का नाम धर्मसेतु है, जो धर्म (आर्यक) एवं वैधृति के पुत्र के रूम में जन्म लेनेवाला है।

६. **पुत्र**--आदर्श, क्षेमधन्वन् (क्षेमधर्मन्, हेमधन्वन्), गृहेषु (दृढायु), देवानीक, पुरुद्वह (पुरोवह) पौण्ड्रक (पंडक), मत (मनु, मरु), संवर्तक (सर्वग, सर्वत्रग, सर्ववेग, सत्यधर्म), सर्वधर्मन् (सुधर्मन्, सुशर्मन्)।

रुद्रसावर्णि मन्वन्तर

१. **मनु**--रुद्रसावर्णि।

२. **सप्तर्षि**--तपस्विन्, तपोधन, (तपोनिधि, तमोशन, तपोधृति, तपोमति), तपोमूर्ति, तपोरति (तपोरवि), द्युति (अग्निध्रक, कृति), सुतपस्।

३. **देव**--रोहित (लोहित), सुकर्मन् (सुवर्ण), सुतार (तार, सुधर्मन्, सुपार), सुमनस्।

४. **इन्द्र**--ऋतधामन् नामक इन्द्र होनेवाला है।

५. **अवतार**--सत्यसहस् तथा सूनृता का पुत्र स्वधामन् अवतार होगा।

६. **पुत्र**--उपदेव (अहूर), देववत् (देववायु), देवश्रेष्ठ, मित्रकृत् (अमित्रहा, मित्रहा), मित्रदेव (चित्रसेन, मित्रबिंदु, मित्रविंद), मित्रबाहु, मित्रवत्, विदूरथ, सुवर्चस्।

रौच्य मन्वन्तर

१. **मनु**--रौच्य।

२. **सप्तर्षि**--अव्यय (पथ्यवत्, हव्याप), तत्वदर्शिन्, धृतिमत्, निरुत्सुक, निर्मोक, निष्कंप, निष्प्रकंप, सुतपस्।

३. **देव**--सुकर्मन्, सुत्रामन् (सूशर्मन्), सूधर्मन्। प्रत्येक देवगण तीस देवों का होगा।

४. **इन्द्र**--दिवस्पति (दिवस्वामिन्)।

५. **अवतार**--देवहोत्र तथा बृहती का पुत्र अवतार होगा।

६. **पुत्र**--अनेक क्षत्रवद्ध (क्षत्रविद्ध, क्षत्रविद्धि, क्षत्रवृद्धि), चित्रसेन, तप (नय, नियति), धर्मभृत, (धर्मभृत, सुव्रत), धृत (भव), निर्भय, पृथ (दृढ), विचित्र, सुतपस् (सुरस), सुनेत्र।

भौत्य मन्वन्तर

१. **मनु**--भौत्य।

२. **सप्तर्षि**--अग्निबाहु (अतिबाहु), अग्निध्र (आग्नीध्र), अजित, भार्गव (मागध, माधव, स्वाजित), मुक्त (युक्त), शुक्र, शुचि।

३. **देव**--कनिष्ठ, चाक्षुष, पवित्र, भाजित (भाजिर, भ्राजिर), वाचावृद्ध (धारावृक)। प्रत्येक के साथ पाँच पाँच देव होंगे।

४. **इन्द्र**--शुचि ही इस समय इन्द्र होगा।

५. **अवतार**--सत्रायण एवं विताना का पुत्र बृहद्भानु अवतार होगा।

६. **पुत्र**--अभिमानिन् (श्रीमानिन्), उग्र (ऊरु, अनुग्रह), कृतिन् (जिष्णु, विष्णु), गभीर (तरंगभीरू), गुरु, तरस्वान् (बुद्ध, बुद्धि, ब्रध्न), तेजस्विन् (ऊर्जस्विन् ओजस्विन्), प्रतीर (प्रवीण), शुचि, शुद्ध, सबल, सुबल)।

इसके उपरांत प्रलय होगा तथा ब्रह्मा विष्णु के नाभिकमल में योगनिद्रित होंगे (ह. वं. १.७; मार्क. ५०; ९७; विष्णु. ३.१-२; ब्रह्मवै. २.५४; ५७-६५; स्कन्द. ७. १.१०५; भवि. ब्राह्म. २; मध्य. २; मत्स्य. ९; भा. ८.१; ५;१३; वायु. ३१-३३; १००.९-११८; ब्रह्मांड. २.३६; ३.१; ब्रह्म. ५; पद्म. सृ. ७)।

मनु आप्स्व--एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. ९.१०१ १०-१२)।

मनु चाक्षुष--चाक्षुष नामक मन्वन्तर का अधिपति मनु, जिसके पुत्र का नाम वरिष्ठ था (म. अनु. १८.२०; चाक्षुष ६. एवं मनु 'आदिपुरुष' देखिये)।

मनु प्राचेतस--एक राजनीतिशास्त्रज्ञ, जो प्राचेतस नामक मन्वन्तर का अधिपति मनु था। महाभारत के अनुसार, इसने राजधर्म एवं राजशास्त्र पर एक ग्रंथ की रचना की थी (म. शां. ५७.४३; ५८.२)। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में, एवं राजशेखर के ग्रंथों में इसके राजनीति-

विषयक मतों का निर्देश प्राप्त हैं (मनु स्वायंभुव देखिये)।

मनु वैवस्वत—वैवस्वत नामक पाँचवे मन्वन्तर का अधिपति मनु, जो विवस्वत् नामक राजा का पुत्र था। इसके नाभागारिष्ठ नामक पुत्र का निर्देश वैदिक ग्रंथों में प्राप्त है (तै. सं. ३.१.९.४)।

इसे निम्नलिखित दस पुत्र थेः--प्रांशु, धृष्ट, नरिष्यन्त, नाभाग, इक्ष्वाकु, करूष, शर्याति, इल, पृषध्र, एवं नाभानेदिष्ट। इसे इला नामक एक कन्या थी, जिसे पुरूरवस् नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था (म. अनु. १४७. २७)।

त्रेतायुग के आरंभ में सूर्य ने मनु को, एवं इसने अपने पुत्र को सात्वत धर्म का उपदेश किया था।

सृष्टिप्रलय--सृष्टि प्रलय के समय एक मत्स्य द्वारा मनु वैवस्वत के बचाने की कथा सम्पूर्ण वैदिक एवं उत्तर वैदिक ग्रन्थों में किसी न किसी रूप में प्राप्त है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार, जब सारी सृष्टि जलप्रवाह से बह जाती थी, तब मनु एक नाव में बैठा कर एक मत्स्य के द्वारा बचा गया था (श. ब्रा. १.८.१)। प्रलय के उपरांत अपनी उस इला नामक पुत्री के माध्यम से ही मनु मानव जाति की प्रथम सन्तान के जनक हुए, जो उन्हींके हवि से उत्पन्न हुयी थी। यह कथा अथर्ववेद तक के समय में भी ज्ञात थी, ऐसा इसी संहिता के एक स्थल द्वारा व्यक्त होता है (अ. वे. १९.३९.८)।

महाभारत में पृथ्वी के जलप्रलय की एवं मत्स्यावतार की कथा प्राप्त है (म. व. १८५)। उस कथा के अनुसार प्रलयकाल में इसकी नौका नौबंधन नामक हिमालय के शिखर पर आकर रुकी थी। कई ग्रंन्थों में हिमालय के इस शिखर का नाम नावप्रभ्रंशन दिया गया है।

मत्स्यपुराण के अनुसार, इसकी नौका हिमालय पर्वत पर नहीं, बल्कि मलय पर्वत पर रुकी थी। भागवत में मनु को द्रविड देश का राजा कहा गया हैं, एवं इसका नाम सत्यव्रत बताया गया है (भा. १.३.१५)।

विभिन्न साहित्यों में प्राप्त जलप्लावन-कथा--जलप्लावन की यह कथा संसार के विभिन्न साहित्यिक, धार्मिक ग्रन्थों एवं लोककथाओं आदि में प्राप्त है।

यूनानी-साहित्य में डयूकलियन तथा उसकी पत्नी पीरिया की कथा में मनु जैसा ही वर्णन मिलता है (मिथ आफ् ऐनशियन्ट ग्रीस एण्ड रोम, पृष्ठ. २२-२३)। यूनान के अतिरिक्त बेबीलोनिया के साहित्य में भी जलप्लावन सम्बन्धी कथाएँ मिलती हैं। 'अत्रहसिस' महाकाव्य में वर्णित एक कथा के अनुसार, अर्डेटस के पुत्र ज़िसथ्रस जलप्लावन के उपरांत देवों को बलि देकर बेबीलोनिया नगर का पुनः निर्माण करता है (दि फ्लड लिजेन्ड इन संस्कृत लिटरेचर पृ. १४८-१४९)। बेबीलोनिया में गिलगमेश महाकाव्य में इसी प्रकार के जलप्लावन की एक कथा प्राप्त है। ईसाई धर्मग्रन्थ बाइबिल में यह कथा विस्तार से दी गयी है, जिसमें नूह का वर्णन मनु की भाँति किया गया है। कुरानशरीफ़ में यह कथा बाइबिल से मिलती जुलती है। अन्तर केवल इतना है कि, बाईबिल में हज़रत नूह की नाव अएएट पर्वत पर आकर रुकती है, जब कि कुरान में उस पर्वत का नाम जूदी दिया गया है (दि होली कुरान पृष्ठ ११.३.२५-४९)। इसके अतिरिक्त चैल्डिया के साहित्य में भी हासीसद्रा परमेश्वर 'ई' के आदेशानुसार अपने को जलप्लावन से बचाता है।

इसके अतिरिक्त पारसी धार्मिक ग्रन्थ वेंदीदाद तथा पहल्वी, सुमेरिन, आइसलैण्ड, वेल्स, लिथुआनिया एवं असीरिया के साहित्य में यह जलप्लावन की कथा मिलती है। इसके साथ ही चीन, ब्रह्मा, इंडोचीन, मलाया, आस्ट्रेलिया, न्यूगिनी, मैलेवेशिया, पालीमेशिया, उत्तर दक्षिणी अमरीका आदि देशों में जलप्लावन सम्बन्धी कथायें प्राप्त हैं।

संसार की समस्त जलप्लावन सम्बन्धी कथाओं की तुलना करने पर यही ज्ञात होता है कि, दक्षिण एशिया की समस्त कथायें समान हैं, क्योंकि उनमें सर्वत्र सम्पूर्ण पृथ्वी के डूबने एवं अधिकांश पदार्थों के नष्ट होने का विवरण प्राप्त है। उत्तरी एशिया की कथाओं में से चीन जापान की कथाओं में पूर्ण विनाश का वर्णन हैं। योरप में ऐसे विनाश के वर्णन कम हैं, तथा अफ्रीका की कथाओं में जलप्लावन का वर्णन बिल्कुल नहीं है।

प्रलयोत्तर मानवी समाज का आदिपुरुष--मनु वैवस्वत प्रलयोत्तरकालीन मानवी समाज का आदिपुरुष माना जाता है, एवं पुराणों में निर्दिष्ट सारे राजवंश उसीसे ही प्रारंभ होते है। राज्यशासन के नानाविध यमनियम के प्रणयनों का श्रेय इसको ही दिया जाता है। खेती में से जो उत्पादन होता है, उसमें से छटवाँ भाग राज्यशासन का खर्चा निभाने के लिए राजा को मिलना चाहिए, इस सिद्धान्त के प्रणयन का श्रेय भी इसको दिया जाता है।

कालनिर्णय--पुराणों में प्राप्त वंशावलियों के अनुसार, मनु वैवस्वत का राज्यकाल भारतीययुद्ध से पहले ९५ पिढ़ियाँ माना गया है। भारतीययुद्ध का काल ईसा. पू. १४०० माना जाये, तो मनु वैवस्वत का काल ईसा. पू. ३११० साबित होता है। ज्योतिर्गणितीय हिसाब से भी ३१०२ यह वर्ष कलियुग के प्रारंभ का वर्ष माना जाता हैं। हिब्रु एवं बाबिलोन साहित्य में निर्दिष्ट मेसापोटेमिया के जलप्रलय का काल भी ईसा. पू. ३१०० माना जाता है। इससे प्रतीत होता है कि, शतपथ ब्राह्मण में निर्दिष्ट मनु वैवस्वत का जलप्रलय भी इसी समय हुआ था।

परिवार--मनु के कुल दस पुत्र थे, जिसमें से इला का निर्देश पुराणों में इल नामक पुरुष, एवं इला नामक स्त्री ऐसे द्विरूप पद्धति से प्राप्त है।

इसके नौ पुत्रों की एवं उनके द्वारा स्थापित राजवंशों की जानकारी निम्न प्रकार है :--

१. इक्ष्वाकु--इसका राज्य अयोध्या में था, एवं इसके पुत्र विकुक्षि ने सुविख्यात ऐक्ष्वाक राजवंश की स्थापना की।

२. शर्याति--इसने आनर्त-देश में राज्य करनेवाले सुविख्यात 'शार्यात' राजवंश की स्थापना की। इसके पुत्र का नाम आनर्त था, जिससे प्राचीन गुजरात को आनर्त नाम प्राप्त हुआ था।

३. नाभानेदिष्ट—इसने उत्तर बिहार प्रदेश में सुविख्यात वैशाल राजवंश की स्थापना की। इसके राज्य की राजधानी वैशाली नगर में थी, जो आधुनिक मुजफ़रपुर जिले में स्थित बसाढ गाँव माना जाता हैं।

४. नाभाग—इसके द्वारा स्थापित नाभाग राजवंश का राज्य गंगा नदी के दुआब में स्थित मध्यदेश में था। इस राजवंश में रथीतर लोग भी समाविष्ट थे, जो क्षत्रिय ब्राह्मण कहलाते थे।

५. धृष्ट--इससे 'धार्ष्टक' क्षत्रिय नामक जाति का निर्माण हुआ, जो पंजाब के वाहीक प्रदेश में राज्य करते थे। इन लोगों का निर्देश क्षत्रिय, ब्राह्मण एवं वैश्य इन तीनों तरहं से किया हुआ प्राप्त है।

६. नरिष्यंत—कई अभ्यासकों के अनुसार, शक लोग इसी राजा के वंशज थे।

७. करूष—इसके वंशज करूष लोग थे, जो आधुनिक रेवा प्रदेश में स्थित करूष देश में रहते थे, एवं कुशल योद्धा माने जाते थे।

८. पृषध्र—इसने अपने गुरु के गाय का वध किया, जिस कारण इसे राज्य का हिस्सा नही मिला।

९. प्रांशु—इसके वंशजों के बारे में कोई जानकारी नही है।

इलापुत्र--इला का विवाह बुध से हुआ, जिससे उसे पुरूरवस् नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। पुरूरवस् ने सुविख्यात ऐल (चंद्र) राजवंश की स्थापना की जिससे आगे चल कर कान्यकुब्ज, यादव (हैहय, अन्धक, वृष्णि), तुर्वसु द्रुह्यु, आनव, पंचाल, बार्हद्रथ, चेदि आदि राजवंशों का निर्माण हुआ।

इला के पुरुष अंश का रुपान्तर आगे चलकर सुद्युम्न नामक किंपुरुष में हुआ, जिससे सौद्युम्न नामक राजवंश का निर्माण हुआ। इस राजवंश की उत्कल, गया एवं विनताश्व नामक तीन शाखाएँ थी, जो क्रमशः उत्कल, गया एवं उत्तरकुरु प्रदेश पर राज्य करती थी। आगे चल कर आनव एवं कान्यकुब्ज राजाओं ने सौद्युम्न राज्यों को जीत लिया।

करुष, नाभाग, धृष्ट, नरिष्यंत, प्रांशु एवं पृषध्र लोगों के राज्य ऐलवंशीय पुरूरवस्, नहुष एवं ययाति ने जीत लिया, जिस कारण ये सारे राजवंश शीघ्र ही विनष्ट हो गये।

इसके वंश में उत्पन्न उत्तरकालीन राजाओं का काल संभवतः निम्नलिखित माना जाता है :--

ययाति--ई. पू. ३०१०।

मांधातृ—ई. पू. २७४०।

अर्जुन कार्तवीर्य—ई पू. २५५०।

सगर, दुष्यन्त एवं भरत—ई. पू. २३५०-२३००।

राम दाशरथि--ई. पू. १९५० (हिस्टरी ॲन्ड कल्चर ऑफ इंडियन पीपल-१.२७०)।

हिंन्दी साहित्य में—आधुनिक हिन्दी साहित्य में मनु के जीवन से सम्बन्धित जयशंकर 'प्रसाद' द्वारा लिखित 'कामायनी' हिन्दी काव्याकाश का गौरव ग्रन्थ है। इसके कथानक का आधार प्राचीन ग्रन्थ ही है, जिसमें मानव मन, बुद्धि तथा हृदय के उचित सन्तुलन को स्थापित कर चिरदग्ध दुःखी वसुधा को आशा बँधाती हुयी समन्वयवाद, समरसता एवं आनंदवाद के द्वारा मंगलमय महान संदेश देने का प्रयत्न किया गया है।

कामायनी पन्द्रह सर्गों में विभक्त है, तथा हर एक सर्ग का नामकरण वर्ण्य विषय के आधार पर हुआ है।

इसमें 'आनन्द' की चरम सिद्धि तथा अन्तिम ढाई सर्गों में शान्ति की बहती मन्दाकिनी देखने योग्य है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में मनु का चरित्र एक मानवीय चरित्र के रूप में ही प्रकट हुआ है। 'प्रसाद' जी ने मनु का चरित्र अस्वाभाविक तथा दैवी नहीं, बल्कि इसी जगत के मानवीय रूप का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। मनु एक सच्चे मानव की भाँति गिरे भी हैं, तथा उठे भी हैं। मनु का यह पतन एवं उत्थान विश्वमानव के लिए एक आशाप्रद संदेश देता है, तथा प्रवृत्ति-निवृत्ति का समन्वय कर के एक संतुलित जीवन व्यतीत करने की शिक्षा देता है।

कामायनी के प्रधान चरित्र नायक मनु का कई रूपों में चित्रण प्राप्त है। उनका पहला रूप नीतिव्यवस्थापक का है, जो 'इला,' 'स्वप्न' तथा 'संघर्ष' आदि सर्गों में हुआ है। इसका सीधा सम्बध 'इला' से है। दूसरा, वैदिक कर्मकाण्डी ऋषि के रूप में हुआ है, जिसके दो पहलू हैं—पहला तपस्वी मनु का, जो 'किलाताकुली' के आने के पूर्व में मिलता है, दूसरा 'हिंसक यजमान' मनु का, जो असुर पुरोहितों के आगमन के पश्चात् पाया जाता है। इनका तीसरा रूप 'मनु-इला युग' के अन्त में देखा जा सकता है, जब वे आनंद पथ में चल कर शिवत्व प्राप्त करने में सफल होते हैं। इस प्रकार 'कामायनी' में मनु पात्र का विकास देवता मनु, ऋषि मनु, प्रजापति मनु तथा आनंद के अधिकारी मनु के रूप में हुआ है।

मनु सावर्णि—सावर्णि नामक आठवे मन्वन्तर का अधिपति मनु। एक वैदिक सूक्तद्रष्टा के नाम से इसका निर्देश वैदिक ग्रंथों में प्राप्त है (अ. वे. ८.१०.२४; श. ब्रा. १३.४.३.३; आ. श्रौ. १०.७; नि. १२.१०)। 'सवर्णा' का वंशज होने से इसे यह नाम प्राप्त हुआ होगा।

ऋग्वेद में इसका निर्देश मनु 'सांवरणि' नाम से किया गया है (ऋ. ८.५१.१)। संभव है, 'संवरण' का वंशज होने से इसे यह नाम प्राप्त हुआ होगा। लुड्विग के अनुसार, यह तुर्वशों का राजा था (लुड्विग-ऋग्वेद अनुवाद. ३.१६६)।

महाभारत में इसे मनु सौवर्ण कहा गया है, एवं बताया गया है कि, इसके मन्वन्तर में वेदव्यास सप्तर्षि पद पर प्रतिष्ठित होंगे (म. अनु. १८.४३)।

मनु स्वायंभुव—एक धर्मशास्त्रकार, जो स्वायंभुव नामक पहले मन्वन्तर का मनु माना जाता है।

यह ब्रह्मा के मानसपुत्रों में से एक था। वायु में इसे आनंद नामक ब्रह्मा से उत्पन्न हुआ कहा गया है। आनंद ने पृथ्वी पर वर्णव्यवस्था स्थापित की, एवं विवाहसंस्था का भी निर्माण किया। किन्तु आगे चलकर यह व्यवस्था मृतवत् हो गयी, जिसका पुरुद्धार स्वायंभुव मनु ने किया (वायु. २१.२८; ८०१४६-१६६; २१.२८)।

इसकी राजधानी सरस्वती नदी के तट पर स्थित थी। अपने सभी शत्रु को पराजित कर यह पृथ्वी का पहला राजा बना था।

ब्रह्मा के शरीर के दाये भाग से उत्पन्न शतरूपा नामक स्त्री इसकी पत्नी थी, जिससे इसे प्रियव्रत एवं उत्तानपाद नामक दो पुत्र, एवं तीन कन्याएँ उत्पन्न हुयी। उत्तानपाद राजा के वंश में हीं ध्रुव, मनु चाक्षुष, पृथु वैन्य, दक्ष, एवं मनु वैवस्वत नामक सुविख्यात राजा उत्पन्न हुए।

मनु स्वायंभुव का ज्येष्ठ पुत्र प्रियव्रत पृथ्वी का पहला क्षत्रिय माना जाता है। उसे उत्तम, तामस एवं रैवत नामक तीन पुत्र थे, जो बचपन में ही राज्यत्याग कर तपस्या के लिए वन में चले गये। आगे चल कर प्रियव्रत के ये तीन पुत्र क्रमशः तीसरे, चौथे, एवं पाँचवें मन्वन्तर के अधिपति बने थे।

मनु स्वायंभुव की एक कन्या का नाम आकूति था, जिससे आगे चलकर मनु स्वारोचिष नामक दूसरे मनु का जन्म हुआ।

भविष्य पुराण में मनु के द्वारा प्रणीत धर्मशास्त्र का निर्देश 'स्वायंभुवशास्त्र' नाम से किया गया है। बाद को इस शास्त्र का चतुर्विध संस्करण भृगु, नारद, बृहस्पति एवं अंगिरस् द्वारा किया गया था (संस्कारमयूख पृष्ठ. २)। विश्वरूप के ग्रन्थ में भी मनु का निर्देश 'स्वायंभुव' नाम से किया गया है, एवं इसके काफी उद्धरण भी लिये गये हैं (याज्ञ. २.७३-७४; ८३;८५)। किन्तु विश्वरूप द्वारा दिये गये मनु एवं भृगु के श्लोक 'मनुस्मृति' में आजकल अप्राप्य है (याज्ञ १.१८७-२५२)। अपरार्क ने भृगुस्मृति का एक श्लोक दिया है, जो मनु का कहा गया है (याज्ञ. २.९६)। किन्तु वह श्लोक भी मनुस्मृति में अप्राप्य है।

स्मृतिकार—निरुक्त में जहाँ पुत्र एवं पुत्री के अधिकारों का वर्णन किया गया है, वहीं स्वायंभुव मनु का स्मृतिकार के रूप में उल्लेख किया गया है। निरुक्त से यह पता चलता है कि, इसका मत था कि, पुत्र एवं पुत्री को पिता की संपत्ति में समान अधिकार है। उन्हीं श्लोकों को मनु की स्मृति कहा गया है (नि. ३.४)। इससे स्पष्ट है

कि, स्वायंभुव मनु की स्मृति यास्क के पूर्व में वर्तमान थी। गौतम तथा वसिष्ठ आदि स्मृतिकारों ने मनु के मतों को दिया है। आपस्तंब ने भी लिखा है कि, मनु श्राद्धकर्म का प्रणेता था (आप. ध. २.७.१६.१)।

धर्मशास्त्र की निर्मिति--महाभारत के अनुसार, ब्रह्मा ने मनु के द्वारा धर्मविषयक एक लाख श्लोकों की रचना करवायी। आगे चलकर, उन्हीं श्लोकों का आधार लेकर उशनस् एवं बृहस्पति ने धर्मशास्त्रों का निर्माण किया (म. शां. ३३२.३६)।

नारद गद्यस्मृति के अनुसार, मनु ने एक लाख श्लोकों के धर्मशास्त्र की रचना कर नारद को प्रदान किया, जिसमें एक हज़ार अस्सी अध्याय, एवं चौबीस प्रकरण थे। उसी धर्मशास्त्र ग्रन्थ को नारद ने बारह हज़ार श्लोकों में संक्षिप्त कर के मार्कंडेय ऋषि को दिया। उसी ग्रन्थ को आठ हज़ार श्लोकों में संक्षिप्त कर मार्कंडेय ने सुमति भार्गव को प्रदान किया, जिसने आगे चलकर इसी ग्रन्थ को चार हज़ार श्लोकों में संक्षिप्त किया। मेधातिथि ने नारद स्मृति के इस उद्धरण को दुहराया है।

मनुस्मृति का प्रणयन—मनुस्मृति का जो संस्करण आज उपलब्ध है, उस ग्रन्थ के अनुसार, ब्रह्मा से विराज नामक ऋषि की उत्पत्ति हुयी, जिससे आगे चल कर मनु उत्पन्न हुआ। पश्चात् मनु से भृगु, नारद आदि दस ऋषि पैदा हुए। धर्मशास्त्र का शिक्षण सर्वप्रथम ब्रह्मा ने मनु को प्रदान किया, जिसे आगे चलकर इसने अपने इन पुत्रों को दिया (मनु. १.५८)। मनुस्मृति के प्रणयन की कथा इस प्रकार है:-एक बार कई ऋषिगण चारो वर्णों से सम्बन्धित धर्मशास्त्रविषयक जानकारी प्राप्त करने के लिए आचार्य मनु के पास आये। मनु ने कहा, 'यह सारी जानकारी तुम लोगों को हमारे शिष्य भृगु द्वारा प्राप्त होगी' (मनु. १. ५९-६०)। पश्चात्, भृगु ने मनु की धर्मविषयक सारी विचारधारा उन सबके सामने रख्खी। वही मनुस्मृति है। उस ग्रन्थ में मनु को 'सर्वज्ञ' कहा गया है (मनु. २.७)।

मानवधर्मशास्त्र का पुनर्संस्करण--मैक्समूलर के अनुसार, प्राचीनकाल के मानवधर्मसूत्र का पुनः संस्करण कर के मनुस्मृति का निर्माण किया गया है (सैक्रिड बुक्स आफ ईस्ट, खण्ड. २५ पृष्ठ. १८)। आधुनिक काल में प्राप्त 'मनुस्मृति' मनु के द्वारा लिखित है, अथवा मनु के नाम को जोड़कर किसी अन्य द्वारा लिखी गयी है, कहा नहीं जा सकता। महाभारत के अनुसार, स्वायंभुव मनु धर्मशास्त्र का, एवं प्राचेतस मनु अर्थशास्त्र के आचार्य माने गये हैं (म. शां ११.१२;५७.४३)। इस प्रकार प्राचीन-काल में धर्मशास्त्र एवं अर्थशास्त्र पर लिखे हुए दो स्वतंत्र ग्रन्थ उपलब्ध थे, जो उक्त मनुओं द्वारा लिखित थे। इस प्रकार सम्भव है कि, किसी अज्ञात व्यक्ति ने इन दोनों ग्रन्थों की सामग्री के साथ साथ प्राचीन धर्मशास्त्रमर्मज्ञों की विचारधारा को और जोड़कर, आधुनिक मनुस्मृति के स्वरूप का निर्माण किया हो।

उपलब्ध मनुस्मृति महाभारत से उत्तरकालीन मानी जाती है। सम्भव है, इस ग्रन्थ की रचना के पूर्व 'बृहद्-मनुस्मृति' एवं 'वृद्धमनुस्मृति' नामक दो बड़े स्मृति-ग्रन्थ उपलब्ध थे। इन्हीं ग्रन्थों को संक्षिप्त कर दो हजार सात सौ श्लोकोंवाली मनुस्मृति की रचना भृगु ने की हो।

मनुस्मृति ग्रंथ में इस रचना का जनक स्वायंभुव मनु कहा गया है, एवं उसके साथ अन्य छः मनुओं के नाम दिये गये हैं (मनु १.६२)।

मनुस्मृति में बारह अध्याय हैं, एवं दो हजार छः सौ चौरान्नवे श्लोक हैं। उस ग्रन्थ में प्राप्त अनेक श्लोक वसिष्ठ एवं विष्णु धर्मसूत्रों से मिलते जुलते हैं। इस ग्रन्थ में प्राप्त धर्मविषयक विचार गौतम, बौधायन एवं आपस्तंब से मिलते जुलते हैं। उक्त ग्रंथ की शैली अत्यधिक सरल है, जिसमें पाणिनि के व्याकरण का अनुगमन किया गया है। इस ग्रंथ का तत्त्वज्ञान एवं शब्दप्रयोग कौटिल्य अर्थशास्त्र की शैली से काफी साम्य रखता है।

विषायनु क्रमणिका—मनु-मृति में कुल बारह अध्याय हैं, जिनमें निम्नलिखित प्रमुख विषयों पर विचारविवेचन किया गया है :—

अ. १.—धर्मशास्त्र की निर्मिति, एवं मनुस्मृति की परम्परा।

अ. २.--धर्म क्या है?-धर्म की उत्पत्ति किससे हुयी है?-धर्मशास्त्र का अधिकार किन किन को प्राप्त है-संस्कारों की आवश्यकता क्या है?

अ. ३.--ब्रह्मचर्यव्रत का पालन कैसे किया जाये? ब्राह्मण किस वर्ण की कन्या से शादी करे?- विवाहों के आठ प्रकार-पतिपत्नी के कर्तव्य।

अ. ४.—गृहस्थधर्मियों का कर्तव्य।

अ. ५.--घर में किसी की मृत्यु अथवा जन्म के समय अशौच का कालनिर्णय।

अ. ६.--वानप्रस्थधर्म का पालन।

अ. ७.—राजधर्म का पालन–राजा के लिए आवश्यक चार विद्याएँ–राजा में उत्पन्न होनेवाले कामजनित दस, एवं क्रोधजनित आठ दोषों का विवरण।

अ. ८.—न्यायपालन से संबंधित राजा के कर्तव्य–मनुप्रणीत अठराह विधियों का विवरण।

अ. ९.—पतिपत्नी के वैधानिक कर्तव्य–नारियों के दोषों का वर्णन।

अ. १०.—चारों वर्णों के कर्तव्य।

अ. ११.—दानों के विविध प्रकार एवं उनका महत्त्व–पाँच महापातक एवं उनके लिए प्रायश्चित।

अ. १२.—कर्मों के विविध प्रकार एवं ब्रह्म की प्राप्ति–मानवशास्त्र के अध्यापन से होनेवाले लाभ।

'मनुस्मृति' में निर्दिष्ट ग्रंथ—मनुस्मृति में प्राप्त विभिन्न ग्रन्थों के निर्देश से पता चलता है कि, इस ग्रन्थ के रचयिता मनु को कितने पूर्वलिखित ग्रन्थों की सूचना प्राप्त थी। मनुस्मृति में ऋक्, यजु एवं सामवेदों का निर्देश प्राप्त हैं, एवं अथर्ववेद का निर्देश 'अथर्वांगिरस्' श्रुति नाम से किया गया है (मनु. ११.३३)। उसके ग्रन्थ में आरण्यकों का भी निर्देश प्राप्त है (मनु. ४.१२३)। इसे छः वेदांग ज्ञात थे (मनु. २.१४१; ३.१८५; ४.९८)। इसे अनेक धर्मशास्त्र के ग्रन्थ ज्ञात थे, एवं इसने धर्मशास्त्र के विद्वानों को 'धर्मपाठक' कहा है (मनु. ३.२३२; १२. १११)। इसके ग्रन्थ में निम्नलिखित धर्मशास्त्रकारों का निर्देश प्राप्त है:—अत्रि, गौतम, भृगु, शौनक, वसिष्ठ एवं वैखानस (मनु. ३.१६; ६.२१; ८.१४०)।

प्राचीन साहित्य में से आख्यान, इतिहास, पुराण एवं खिल आदि का निर्देश मनुस्मृति में प्राप्त है (मनु. ३.२३२)। वेदान्त में निर्दिष्ट ब्रह्म के स्वरूप का विवेचन मनु द्वारा किया गया है, जिससे प्रतीत होता है कि, मनु को उपनिषदों का भी काफ़ी ज्ञान था (मनु. ६.८३; ९४)। इसके ग्रन्थ में कई 'वेदबाह्य स्मृतियों' का भी निर्देश प्राप्त है। इसे बौद्ध जैन आदि इतर धर्मों का भी ज्ञान था (मनु. १२.९५)। इसने अपने ग्रन्थ में वेदनिन्दक तथा पाखण्डियों का भी वर्णन किया है (मनु. ४.३०; ६१; १६३)।

इसने अस्पृश्य एवं शूद्र लोगों की कटु आलोचना की है, एवं उन्हें कड़े नियमों में बाँधने का प्रयत्न किया है (मनु. १०.५०–५६; १२९)। इसका कारण यह हो सकता है कि, इन दलित जातियों ने वैदिक धर्म से इतर धर्मों की स्थापना करने के प्रयत्नों में, जैन तथा बौद्ध धर्म को आगे बढ़ने में योगदान देना प्रारम्भ किया हो।

'मनुस्मृति' के भाष्य—मनुस्मृति के भाष्यों में से सब से प्राचीन भाष्य मेधातिथी का माना जाता है, जिसकी रचना ९०० ई० में हुयी थी। विश्वरूप ने अपने यजुर्वेद के भाष्य में मनुस्मृति के दो सौ श्लोकों का उद्धरण किया है। इन दोनों ग्रन्थकारों के सामने जो मनुस्मृति प्राप्त थी, वह आज की मनुस्मृति से पूर्ण साम्य रखती है।

शंकराचार्य के वेदान्त सूत्रभाष्य में भी मनुस्मृति के काफी उद्धरण प्राप्त है (वे. सू. १.३.२८; २.१.११; ४.२.६; ३.१.१४; ३.४.३८)। शंकराचार्य के द्वारा निर्देशित इन उद्धरणों से पता चलता है कि, वे इन सूत्रों को गौतम धर्मसूत्रों से अधिक प्रमाणित मानते थे।

'मनुस्मृति' का रचनाकाल—मनु का मत था कि, ब्राह्मण यदि अपराधी है, तो उसे फाँसी न देनी चाहिए, बल्कि उसे देश से निकाल देना चाहिए (मनु. ८. ३८०)। इसके इस मत का निर्देश 'मृच्छकटिक' में मिलता है। वलभी के राजा धरसेन के ५७१ ई. के शिलालेख में उस राजा को मनु के धर्मनियमों का पालनकर्ता कहा गया है। जैमिनि सूत्रों के सुविख्यात भाष्यकार शबरस्वमिन् द्वारा ५०० ई० में रचित भाष्य में मनु के मतों का निर्देश प्राप्त है।

इन सारे निर्देशों से प्रतीत होता है कि, दूसरी शताब्दी के उपरांत मनुस्मृति को प्रमाणित धार्मिक ग्रन्थ माना जाने लगा था। किन्तु कालान्तर में इसकी लोकप्रियता को देखकर लोगों ने अपनी विचारधारा को भी इस ग्रन्थ में संनिविष्ट कर दिया, जिससे इसमें प्रक्षिप्त अंश जुड़ गये। उन तमाम विचार एक दूसरे से मेल न खाकर कहीं कहीं एक दूसरे से विरोधी जान पड़ते है (मनु. ३. १२–१३; २३–२६; ९. ५९–६३; ६४–६९)। बृहस्पति के निर्देशों से पता चलता है कि, मनुस्मृति में ये प्रक्षिप्त अंश तीसरी शताब्दी में जोड़े गये।

मनुस्मृति याज्ञवल्क्यस्मृति से पूर्वकालीन मानी जाती है। उपलब्ध मनुस्मृति में यवन, कांबोज, शक, पह्लव, चीन, ओड्र, द्रविड, मेद, आंध्र आदि देशों का उल्लेख प्राप्त है। इन सभी प्राप्त सूचनाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि, उपलब्ध मनुस्मृति की रचना तीसरी शताब्दी के पूर्व हुयी थी। सभवतः इसकी रचना २०० ई० पूर्व से लेकर २०० ई० के बीच में किसी समय हुयी थी।

अन्य ग्रन्थ—मनु के नाम से 'मनुसंहिता' नामक एक तन्त्रविषयक ग्रन्थ भी प्राप्त है (C.C.)।

मनु स्वारोचिष--स्वारोचिष नामक द्वितीय मन्वंतर का अधिपति मनु। इसकी माता का नाम आकूति था, जो मनु स्वायंभुव की कन्या थी। इसे ब्रह्मा ने सात्वत धर्म का उपदेश दिया था, जो कालान्तर में इसने अपने पुत्र शंखपद को प्रदान किया था (म. शां. ३३६.३४-३५; स्वारोचिष देखिये)।

मनुज--दस विश्वेदेवों में से एक।

मनुवश--(सो. क्रोष्टु.) एक यादव राजा, जो वायु के अनुसार मनु राजा का पुत्र था।

मनुष्यधर्मन्--कुवेर का नामान्तर।

मनुष्यराजन्--एक सन्मान्य उपाधि, जो राजसूय यज्ञ करनेवाले मनुष्य राजाओं के लिए प्रयुक्त की जाती थी। राजसूय यज्ञ करनेवाले देवों के लिए 'देवराजन्' उपाधि प्रयुक्त की जाती थी (देवराजन् देखिये)।

मनुसुत--ब्रह्मसावर्णि मनु के पुत्रों में से एक।

मनोजव--अनिल नामक वसु का ज्येष्ठ पुत्र। इसकी माता का नाम शिवा था (म. आ. ६०.२४)। पाठभेद (भांडारकर संहिता)-' पुरोजव '।

२. (स्वा. प्रिय.) एक राजा, जो मेधातिथि राजा का पुत्र था।

३. चाक्षुष मन्वन्तर का इन्द्र।

४. लेख देवों में से एक।

५. धर्मसावर्णि मन्वन्तर का एक देव।

६. सोमवंशीय एक राजा, जिसका मंगलतीर्थ नामक तीर्थस्थान में स्नान करने के कारण उद्धार हुआ था (स्कंद. ३.१.१२)।

मनोजवा--स्कंद की अनुचरी एक मातृका (म. श. ४५.१६)।

मनोभद्र--एक राजा, जिसका गंगामाहात्म्य श्रवण करने के कारण उद्धार हुआ (पद्म. क्रि. ३)।

मनोभवा----एक अप्सरा, जो कश्यप एवं मुनि की कन्याओं में से एक थी।

मनोभुव--चाक्षुष मन्वन्तर का एक इन्द्र।

मनोरमा--एक अप्सरा, जो कश्यप एवं प्राधा की कन्याओं में से एक थी। अर्जुन के जन्मोत्सव में यह उपस्थित थी।

२. ध्रुवसंधि राजा की पत्नी, जिसके पुत्र का नाम सुदर्शन था।

३. विद्याधराधिप इंदीवराक्ष नामक गंधर्व की कन्या (इंदीवराक्ष देखिये)।

मनोहरा--सोम नामक वसु की पत्नी, जिसे निम्नलिखित चार पुत्र थे :--वर्च, शिशिर, प्राण एवं रमण (म. आ. ६०.२१)।

२. अलकापुरी की एक अप्सरा, जिसने अष्टावक्र के स्वागत के लिए इन्द्रसभा में नृत्य किया था (म. अनु. १९.४५)।

मंथरा--कैकयी की एक कुबडी दासी, जो दुन्दुभी नामक गंधर्वी के अंश से उत्पन्न हुयी थी (म. व. २६०. १०)। महाभारत में रामोपाख्यान में, जब राम की सहायता करने के लिए देवताओं द्वारा ऋक्षों तथा वानरों की स्त्रियों से पुत्र उत्पन्न करने का उल्लेख किया गया है, तब गंधर्वी दुन्दुभी को मंथरा के रूप में प्रकट होने की चर्चा मिलती है (म. व. २६०.१०)। इसी मंथरा कैकयी के मन में भेद उत्पन्न कर राम के वनगमन का कारण बनी थी।

वाल्मीकि रामायण की मंथरा कैकयी की चिरकाल से पतिता दासी है, जो राम का राज्याभिषेक सुनकर क्रोध से प्रज्वलित हो उठती है। यह कैकयी को भावी अरिष्टों की ओर ध्यान दिलाकर अपने वश में ऐसा कर लेती है कि, वह इसकी प्रशंसा करने लगती है (वा. रा. अयो.९. ४१-५०)। कैकेयी इसके द्वारा ही समझाने जानेपर राम को वन में भेजने के लिए प्रवृत्त हुयी। कैकेयी राम के राज्यभिषेक से अत्यधिक प्रसन्न थी, किन्तु इसके द्वारा दी गयी दलीलों को सुनकर वह हतबुद्ध हो गयी, और दशरथ से वर माँग कर राम को वन भेजा (वा. रा. अयो. ७.९) शत्रुघ्न इसके इस दुष्कार्य से इतने क्रुद्ध हो उठते है कि, वह मंथरा को पीटते भी है (वा. रा. अयो.७८)। अग्नि में, मंथरा के इस उत्पीडन को राम के वनवास का कारण बताया है (अग्नि. ५.८)।

आनन्द रामायण में लिखा है कि, मंथरा कृष्णावतार के समय जन्म लेगी, तथा पूतना के रूप में कृष्ण के द्वारा मारी जायेगी (आ. रा. ९.५.३५)। अन्य स्थल पर कंस के यहाँ कुब्जा के रूप में अवतार लेने की बात भी कही गयी है (आ. रा. १.२.३)।

इसी प्रकार पद्मपुराण के पाताल खण्ड के गौडीय पाठ (अध्याय १५), आनन्द रामायण (आ. रा. १.२.२) कृत्तिवास रामायण (२.४) में इसकी कथा प्राप्त है। बाद के अनेक वृत्तान्तों में मंथरा को मोहित करने के लिए सरस्वती के भेजे जाने का भी वर्णन मिलता है (अ. रा.

२.२.४४; आ. रा. १.६.४१)। तोरवो रामायण में मंथरा को विष्णु की माया का अवतार माना गया है।

'रामचरित मानस' में--इस प्रकार प्राचीन एवं अर्वाचीन राम साहित्य में इसका नाम सर्वत्र प्राप्त है। तुलसीदास के द्वारा रचित 'रामचरित मानस' में कवि ने अधिदैविक तत्व का योग कर इसे निर्दोष सावित किया है। तुलसी मंथरा का कटु चित्रण करने के पूर्व कह देते है--'गई गिरा मति फेरि'। राम के अवतार कारण का लक्ष्य देवों की दुःखनिवृत्ति बतलाया गया है, अतएव देवताओं को रामवनवास की प्रेरणा सरस्वती के द्वारा देना संगतपूर्ण जान पड़ता है। तुलसीद्वारा चित्रित मंथरा बड़ी वाक्पटु, अनुभवी, कुशल दूती की भाँति है, जो बड़े मनोवैज्ञानिक ढ़ंग से केकैयी के हृदय के भावों को परिवर्तित कर, राम को वन भेजने के लिए उसे विवश कर देती है।

२. विरोचन दैत्य की कन्या। यह दैत्यकन्या सम्पूर्ण पृथ्वी को विनाश करने के लिए तत्पर हुयी, तब इन्द्र ने इसका वध किया।

इसकी कथा रामायण में राम के द्वारा तारकावध के समय कही गयी है। इसी की कथा बता कर राम ने लक्ष्मण से कहा था कि, स्त्री का वध करना अवश्य उचित नहीं है, किन्तु जब आवश्यकता ही आ पड़े, तो स्त्रीवध किसी प्रकार हेय कार्य नहीं है (वा. रा. बा. २५.२०)।

मंथिनी--स्कंद की अनुचरी एक मातृका (म. श. ४८.२५)। इसके नाम के लिए 'स्थेरिका' पाठभेद प्राप्त है।

मंथु--(स्वा. प्रिय.) एक राजा, जो वीरव्रत राजा का पुत्र था।

मंद--रावण के पक्ष का एक राक्षस।

मन्दपाल--एक विद्वान् महर्षि, जिसे मृत्यु के बाद पितृऋण को न उतारने के कारण स्वर्ग की प्राप्ति न हुयी थी।

पितृऋण--मन्दपाल धर्मज्ञों में श्रेष्ठ तथा कठोरव्रत का पालन करनेवाला था। यह ऊर्ध्वरेता मुनियों के मार्ग का आश्रय लेकर सदा वेदों के स्वाध्याय, धर्मपालन तथा तपस्या में संलग्न रहता था। अपनी तपस्या पूर्ण कर देहत्याग कर, जब यह पितृलोक पहुँचा, तब इसे सत्कर्मों के फलानुसार स्वर्ग की प्राप्ति न हुयी। तब इसने देवताओं से इसका कारण पूछा। देवताओं ने बताया, 'आपके उपर पितृऋण है। जब तक वह पितृऋण तुम्हारे द्वारा न उतारा जायेगा, तब तक स्वर्ग की प्राप्ति असम्भव है। इस ऋण को उतारने के लिए तुम्हें सन्तान उत्पन्न करके अपनी वंशपरम्परा को अविच्छन्न बनाने का प्रयत्न करना चाहिए'।

यह सुनकर शीघ्र संतान उत्पन्न करने के लिए, इसने शार्ङ्गक पक्षी होकर जरितृ नामवाली शार्ङ्गिका से संबंध स्थापित किया। उसके गर्भ से चार ब्रह्मवादी पुत्रों को जन्म देकर, यह लपिता नामवाली यक्षिणी के पास चला गया। बच्चे अपनी माँ के साथ ही खाण्डव-वन में रहे। जब अग्निदेव ने उस वन को जलाना आरम्भ किया, उस समय इसने अग्नि की स्तुति की, तथा अपने पुत्रों की जीवनरक्षा के लिए वर माँगा। तब अग्निदेव ने 'तथास्तु' कह कर इसकी प्रार्थना स्वीकार की (म. आ. २२०)।

इसने अपने बच्चों की रक्षा करने की बात अपनी दूसरी पत्नी लपिता से कहीं, किन्तु उसने इससे ईर्ष्यायुक्त वचन कहे, एवं इसे अपने पुत्रों के पास जाने से रोक लिया। तब इसने स्त्रियों के सौतिया डाह रूपी दोष का वर्णन करते हुए बताया कि, वह चाहे जितना सत्य कहे, यह उस पर विश्वास नहीं कर सकता।

पश्चात् यह अपनी पूर्वपत्नी जरितृ, तथा पुत्रों के पास गया। किन्तु वे इसे पहचान न सके। बाद को इसने जरितृ तथा अपने पुत्रों के साथ देशान्तर में प्रस्थान किया (म. आ. २२२; जरितृ देखिये)।

मंदर--एक दुराचारी ब्राह्मण, जो पिंगला नामक वेश्या पर आसक्त था। आगे चलकर इसने ऋषभ नामक योगी की सेवा की। इस पुण्यकर्म के कारण अगले जन्म में यह भद्रायु नामक राजकुमार हुआ (भद्रायु देखिये)।

मंदाकिनी--पुलस्त्यपुत्र विश्रवस् नामक ऋषि की दो पत्नियों में से एक। भगवान् शंकर के प्रसाद से इसे कुबेर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ (पद्म. पा. ६)।

मंदाकिन्य--कश्यपकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

मंदार--एक असुर, जो हिरण्यकशिपु का ज्येष्ठ पुत्र था। भगवान् शंकर ने इसे एक वर प्रदान किया था, जिसके बल से यह एक अर्बुद वर्षों तक इन्द्र से युद्ध करता रहा। युद्ध में यह अजेय था, जिस कारण भगवान् विष्णु का सुदर्शन चक्र, एवं इन्द्र का वज्र इसके शरीर पर टकरा कर तिनके के समान जीर्ण-शीर्ण हो गये (म. अनु. १४.७४-८२)।

२. धौम्य ऋषि का पुत्र, जिसका विवाह मालव देश में रहनेवाले औैर्व नामक ब्राह्मण की शमिका नामक

कन्या से हुआ था (गणेश. २.३४.१३; और्व ३. देखिये)।

मंदीर--कात्यायन श्रौतसूत्र में निर्दिष्ट एक व्यक्ति, जिसके पशुओं ने गंगा नदी के जल का पान करना अस्वीकार कर दिया था (का. श्रौ. १३.३.२१)।

मंदुलक--(आंध्र. भविष्य.) एक आंध्रवंशीय राजा, जो मत्स्य के अनुसार हाल राजा का पुत्र था।

मंदोदरी--रावण की धर्मपरायण पत्नी, जो मयासुर की कन्या थी। यह हेमा अथवा रम्भा नामक अप्सरा से उत्पन्न हुयी थी (वा. रा. उ. १२.१९, स्कंद. ५.३.३५; ब्रह्मांड. ३.६.२८-३०)।

अध्यात्मरामायण के अनुसार, राम दाशरथि की पत्नी सीता इसकी ही कन्या थी (सीता देखिये)।

२. सिंहलद्वीप के चंद्रसेन राजा की कन्या, जिसकी माता का नाम गुणवती था।

यह विवाहयोग्य होने पर, चंद्रसेन राजा ने इसके विवाह की तैयारी की, एवं इंद्र देश के सुधन्वन् नामक राजा से इसका विवाह निश्चित किया। किन्तु इसने इस विवाह से इन्कार कर दिया, एवं पिता से कहा, 'पुरुष दगाबाज होते है, इसलिये मैं विवाह करना नही चाहती हूँ'। इसके कहने पर चंद्रसेन राजा ने इसका विवाह स्थगित किया।

आगे चलकर मंदोदरी के कनिष्ठ बहन के विवाह की तैयारी हुयी। उस महोत्सव में उपस्थित हुए चारुदेष्ण नामक राजपुत्र पर मोहित हो कर, इसने उसका वरण किया। किन्तु पश्चात् चारुदेष्ण ने इसे धोखा दिया, जिस कारण पुरुषजाति के संबंध में इसकी प्रकट हुयी आशंका सच साबित हुयी।

३. स्कंद की अनुचरी एक मातृका (म. श. ४५.१७)।

मन्मथकर--स्कंद का एक सैनिक (म. श. ४४.६७)।

मंधातृ--एक राजा, जिसपर आश्विनों ने कृपा की थी (ऋ. १.११२.१३)।

२. एक ऋषि, जो अंगिरस् ऋषि के समान महान् तपस्वी था (ऋ. ८.४०.१२)।

मंधातृ यौवनाश्व--एक सम्राट, जिसे कबंध आथर्वण के पुत्र विचारिन् ने शिक्षित किया था (गो. ब्रा. १.२. १०)। युवनाश्व का वंशज होने के कारण, इसे यौवनाश्व पैतृक नाम प्राप्त हुआ होगा (मांधातृ देखिये)।

मन्यु--एक वैदिक देवता, जिसे क्रोध की मूर्तिमन्त प्रतीक रूप देवता माना जाता है। ऋग्वेद के दो सूक्तों में इस देवता का आवाहन किया गया है (ऋ. १०.८३-८४)।

यह युद्ध में अजेय, एवं अग्नि के भाँति जाज्वल्यमान् देवता है। मरुतों के साथ यह अपने भक्तों को विजय तथा संपत्ति प्रदान करता है। तपस् नामक अन्य देवता के साथ यह अपने भक्तों की रक्षा करता है, एवं उनके शत्रुओं को परास्त करता है।

ब्रह्म में इस देवता के उत्पत्ति की कथा इस प्रकार दी गयी है। एकबार देवदानव युद्ध में देवताओं की हार हो रही थी। उस समय विजयप्रति के लिए उन्होनें गौतमी नदी के तट पर तपस्या की। इस तपस्या से संतुष्ट हो कर, भगवान् शंकर ने देवों को अभयदान दिया, एवं दैत्यों के संहार के लिए अपने तृतीय नेत्र से मन्यु नामक देवता का निर्माण किया। आगे चल कर इसने दैत्यों को पराजित किया (ब्रह्म. १६२)।

२. (सो. पूरु.) एक पूरुवंशीय राजा, जो भरद्वाज का पुत्र था। इसे बृहत्क्षत्र आदि पाँच पुत्र थे (भा. ९. २१.१)। भविष्य में इसके नाम के लिए 'मन्युमत्' पाठभेद प्राप्त है।

मन्यु तापस--एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. १०. ८३-८४)।

मन्यु वासिष्ठ्य--एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. ९.९७. १०-१२)।

मन्युमत्--भानु नामक अग्नि का द्वितीय पुत्र (म. व. २११.११)।

ममता--उचथ्य आंगिरस नामक ऋषि की पत्नी एवं दीर्घतमस् मामतेय नाम-ऋषि की माता (ऋ. १.१४७.३; उचथ्य, दीर्घतमस् मामतेय, बृहस्पति आंगिरस एवं भरद्वाज देखिये)।

ऋग्वेद में अन्यत्र प्राप्त भरद्वाज के एक सूक्त में भरद्वाज ऋषि का निर्देश 'ममतेव' नाम से किया गया है (ऋ. ६.५०.१५)। भरद्वाज के द्वारा रचित इस सूक्त में ममता के द्वारा रचित स्तोत्रों का निर्देश किया गया है, जिससे प्रतीत होता है कि, ममता भरद्वाज के लिए अत्यंत आदरणीय व्यक्ति थी।

मय--एक दानव, जो दानवों में सर्वश्रेष्ठ शिल्पी एवं दानव नरेश नमुचि का भाई था (म. आ. २१८.३९)। कश्यप ऋषि को दनु नामक पत्नी से उत्पन्न पुत्रों में यह एवं नमुचि प्रमुख थे। रामायण में इसे दिति का पुत्र कहा

गया है (वा. रा. उ. १२.३)। किन्तु रामायण का कथन ऐतिहासिक प्रतीत नहीं होता।

पुराणों में नमुचि नाम के दो व्यक्तियों का वर्णन मिलता है। उनमें से एक दानव था, एवं दुसरा तेरह सैंहिकेयों में से एक था। मय दानव नमुचि का भाई था। हिरण्याक्ष एवं हिरण्यकशिपु के समय जो दैत्य तथा दानवों का संग्राम हुआ था, उसमें यह दैत्यों के पक्ष में शामिल था (म. स. ५१.७)।

दक्षिण समुद्र के निकट सह्य, मलय और दर्दुर नामक पर्वतों के आसपास एक विशाल गुफा के भीतर बने हुए भवन में त्रेतायुग में यह निवास करता था। वहाँ प्रभावती नामवाली एक तपस्विनी तपस्या करती थी, जिसने हनुमान् आदि वानरों को नाना प्रकार के भोज्य पदार्थ और भाँति भाँति के पीने योग्य रस दिये थे (म. व. २६६.४०-४३)।

शिल्पशास्त्रज्ञ—दैत्यराज वृषपर्वन् द्वारा किये गये होम के समय इसने एक अति चमत्कृतिपूर्ण सभा का निर्माण किया था। यह सभा कैलास पर्वत के उत्तर में मैनाक नामक पर्वत में स्थित बिन्दुसरोवर के पास निर्मित की गयी थी। वृषपर्वन् राजा ने इस सभा में यज्ञ पूरा किया, एवं उसके उपरांत सभा की सारी सामग्री अपने कोषागार में रख दी (म. स. १;३)।

इसके मित्रों में ताराक्ष, कमलाक्ष एवं विद्युन्माली नामक तीन असुर प्रमुख थे। उनके कथनानुसार ही इसने दैत्यों के संरक्षण के लिए त्रिपुर नामक तीन नगरों का निर्माण किया, जो आकाश में बादलों की भाँति घूमा करते थे। उनमें से एक स्वर्ण का, दूसरा चाँदी का तथा तीसरा लोहे का बना था (म. क. २४.१४; लिंग. १७१)।

आगे चल कर दैत्यों को विनाश करने के लिए भगवान् शंकर ने इन त्रिपुरों को जला दिया, एवं सारे दैत्यों का संहार किया। तब मय ने अमृत कुण्ड का निर्माण कर दैत्यों को पुनः जीवित किया। यह देख कर, विष्णु एवं ब्रह्मा ने गो एवं गोवत्स का रूप धारण कर, उस कुण्ड के समस्त अमृत को पी डाला, जिससे सभी असुर पुनः मर गये (भा. ७.१०)।

खांडववन में—कृष्ण एवं अर्जुन ने जब अग्नि को खाण्डववन भक्षण करने को दिया, उस समय मय इसी वन में नागराज तक्षक के घर में निवास करता था। जब वन को अग्नि ने जलाना आरम्भ किया, तब इसे कृष्ण ने तक्षक के घर से भागते देखा। भगते हुए मय को देखकर अग्नि ने मूर्तिमान होकर गर्जन किया, एवं इसे अपनी लपटों में समेटना चाहा। यह देखकर श्रीकृष्ण ने इसे मारने के लिए सुदर्शन उठाया। यह भाग कर तत्काल अर्जुन की शरण में आया, और अर्जुन ने इसे अभयदान देकर अग्नि एवं कृष्ण से बचाया (म. आ. २१९.३९)।

अर्जुन के इस उपकार का बदला चुकाने के लिए मय ने उसकी कुछ सेवा करने की इच्छा प्रकट की, किन्तु अर्जुन ने इसकी सेवा स्वीकार न की। फिर इसने अपने को दानवों का विश्वकर्मा बताते हुए अर्जुन के लिए किसी वस्तु का निर्माण करने की इच्छा प्रकट की (म. स. १.६-९)। पश्चात् श्रीकृष्ण ने इसे युधिष्ठिर के लिए एक दिव्य सभाभवन निर्मान करने को कहा।

मयसभा—कृष्ण के कहने पर इसने वृषपर्वन् के कोषागार से समस्त सामग्री ला कर मयसभा नामक दिव्य सभागृह का निर्माण किया (म. स. १.१२)। युधिष्ठिर ने अपने राजसूय यज्ञ का समारोह इसी मयसभा में आयोजित किया था। उक्त सभा के वैभवविलास को देख कर दुर्योधन ईर्ष्या से पागल हो उठा था। इस सभा की यह विचित्रता थी कि, स्थलभाग जल की भाँति, एवं जल के स्थान स्थल की भाँति प्रतीत होते थे। दुर्योधन इस विचित्र रचना से अनभिज्ञ था, अतएव उसे कई बार भ्रम में पड़ कर भीम की हँसी का कारण बनना पड़ा। इस प्रकार सभा का यह अत्यधिक वैभव दुर्योधन के लिए चिन्ता का कारण बन गया, तथा यहींसे उसके हृदय में ईर्ष्या की भावना दुश्मनी में बदल गयी, जिसने आगे चल कर भारतीय युद्ध को जन्म दिया।

राजसूय यज्ञ के समय इसने भीम को एक गदा एवं अर्जुन को देवदत्त नामक शंख प्रदान किया था। इसमें से गदा को यह वृषपर्वन् से, तथा 'देवदत्त' शंख वरुण से लाया था (म. स. ३.७)। इसी यज्ञ के समय इसने अर्जुन को एक मायामय ध्वज भी दिया था।

इसके ज्येष्ठ बन्धु नमुचि का इन्द्र ने वध किया, जिसके कारण क्रोधित हो कर, देवों को नाश करने के लिए इसने घोर तपस्या प्रारम्भ की, तथा विभिन्न प्रकार की माया-विद्याओं को प्राप्त किया। इससे अत्यधिक भयातुर होकर इन्द्र ने ब्राह्मण वेष धारण कर इससे वर माँगने आया। ब्राह्मणवेषधारी इन्द्र को बिना माँगे ही मय ने कहा, 'तुम जो चाहते हो वह तुम्हे मिलेगा'। यह सुनकर इन्द्र ने कहा कि, वह मैत्री चाहता है। तब इसने उससे कहा, 'मेरी तुमसे कोई शत्रुता नहीं, तब मैत्री माँगने की क्या आवश्यकता? हम तुम दोनों मित्र ही है'। यह

सुनकर इन्द्र अपने असली रूप में प्रकट हुआ, तथा कहा, 'मै तुम्हारे भाई नमुचि का वध करनेवाला इन्द्र हूँ, जो अपनी त्रुटी स्वीकार करते हुए तुमसे मित्रता करना चाहता हूँ'। यह सुन कर मय ने इन्द्र की शत्रुता को भुला कर उससे मित्रता की, एवं दोनों ने एक दूसरे को मायावी विद्याओं का ज्ञान कराया (ब्रह्म. १२४)।

मत्स्य के अनुसार, इसने वास्तुशास्त्र से संबधित एक ग्रन्थ की रचना की थी (मत्स्य. २५२)। इसके नाम पर शिल्प एवं ज्योतिषशास्त्र विषयक कई ग्रन्थ भी प्राप्त हैं (C.C.)।

परिवार—इसे कुल दो पत्नियाँ थी। उनमें से पहली पत्नी का नाम हेमा था, जो इसे देवताओं ने अर्पण की थी। हेमा से इसे मायाविन् एवं दुंदुभि नामक पुत्र एवं मंदोदरी नामक कन्या उत्पन्न हुअी थी (वा. रा. उ. १२ १९)।

ब्रह्मांड के अनुसार, इसकी दूसरी पत्नी का नाम रम्भा था, जिससे इसे निम्नलिखित पुत्र प्राप्त हुए थेः— अजकर्ण, कालिक, दुंदुभि, महिष एवं मायाविन्। उस ग्रंथ में मंदोदरी को रम्भा की कन्या कहा गया है (ब्रह्मांड. ३.६.२८–३०)।

मत्स्य में इसकी मन्दोदरी, कुहू एवं उपदानवी नामक तीन कन्याएँ दी गयी है। किन्तु वे किससे उत्पन्न हुअी यह उपलब्ध नही हैं। उनमें से कुहू धाता की पत्नी थी (भा. ६.१८.३)। भागवत में उपदानवी को वैश्वनर नामक दानव की कन्या कहा गया है (भा. ६.६.३३)।

२. एक असुर, जो त्वष्टा का पुत्र था। इसकी माता का नाम प्रह्लादी-विरोचना था (वायु. ८४.२०)।

ज्ञातिनाम—त्वष्टृ एवं मय ये पहले तो व्यक्तिनाम थे। किन्तु आगे चलकर ये शिल्पियों का ज्ञातिवाचक एवं गुणवाचक नाम बने। ये लोग स्वयं को मय ज्ञाति के, एवं मयवंशीय कहलाने लगे। पश्चात् शिल्पशास्त्र पर जिन ग्रंथों का निर्माण हुआ, उन्हे भी 'मयसंहिता' आदि नाम प्राप्त हुये।

यही कारण है कि, प्राचीन भारतीय इतिहास के विभिन्न कालों में विभिन्न त्वष्टृ एवं मय व्यक्तियों का निर्देश प्राप्त है। इस वंश के मूल पुरुष त्वष्टृ एवं मय, असुर अथवा दानव प्रतीत होते है। क्यों कि, उनका जो वर्णन महाभारत एवं पुराणो में प्राप्त है, वह आर्य लोगों से विभिन्न प्रतीत होता है (प्रभावती १ तथा ५. देखिये)।

मयूर—एक सुविख्यात असुर, जो इस पृथ्वी में विश्व नामक राजा के रूप में उत्पन्न हुआ था (म. आ. ६१.३३)।

मयूरध्वज—रत्ननगर का एक राजा। इसने सात अश्वमेध यज्ञ करने के उपरांत, नर्मदा तट पर अपना अठवाँ अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ किया। इसके अश्वमेधीय अश्व के संरक्षण का भार इसके पुत्र सुचित्र 'अथवा ताम्रध्वज पर था, जो अपने बहुलध्वज नामक प्रधान के साथ दिग्विजय के लिए निकला था। लौटते समय सुचित्र को युधिष्ठिर द्वारा किये गये अश्वमेध का अश्व मिला, जो मणिपुर नगर से होता हुआ इसके नगर आया था। सुचित्र ने उसे पकड़ कर कृष्णार्जुन से युद्ध किया, तथा युद्ध में उन्हे मूर्च्छित कर के अश्व के साथ नगर में प्रवेश किया।

उधर मूर्च्छा से सावधान होने के उपरांत, कृष्ण ने ब्राह्मण का तथा अर्जुन ने ब्राह्मणबालक का रूप धारण कर मयूरध्वज की राजधानी रत्नपुर में प्रवेश किया। इसके पास आकर ब्राह्मण वेषधारी कृष्ण ने कहा, 'अपने पुत्र का विवाह कराने के लिए तुम्हारे पुरोहित कृष्णशर्म के पास धर्मपुर नामक स्थान से हम आ रहे थे कि, आते समय जंगल में मेरे बेटे को एक सिंह ने पकड़ लिया। मैने तत्काल नृसिंह भगवान् का स्मरण किया, किन्तु वह प्रकट न हुए। फिर मुझे देख कर उस सिंह ने कहा कि, तुम अगर मयूरध्वज राजा का आधा शरीर मुझे लाकर दोगे, तो मै तुम्हारे पुत्र को वैसे ही वापस कर दूँगा।'

ब्राह्मण द्वारा यह माँग की जाने पर, 'मयूरध्वज राजा बढ़ई के द्वारा अपना शरीर कटवाने के लिए तैयार हो गया। वैसे ही इसकी पत्नी कुमुद्वती ने आकर कहा, 'राजा का वामांग मैं हूँ, इसलिए आप मुझे ले सकते हैं।' ब्राह्मण ने कहा, 'सिंह ने दाहिना अंग लाने के लिए कहा है।

इसका शरीर जब आरे द्वारा काटा जाने लगा, तब इसकी बायीं आँख से पानी टपका। इसे देखकर ब्राह्मण ने तत्काल कहा कि, दुःखपूर्व दिया गया दान मै नहीं चाहता। तब मयूरध्वज ने कहा, 'आँख के अश्रु शारीरिक कष्ट के कारण नहीं निकल रहे, इसका कारण कोई दूसरा है। बाईं आँख इसलिए रोती है कि, काश दाहिने अंग की भाँति वामांग भी सार्थक हो गया होता, तो कितना अच्छा था'।

इतना सुनते ही ब्राह्मणवेषधारी कृष्ण ने अपने साक्षात् दर्शन देकर इसके शरीर को पूर्ववत् किया, एवं दृढ आलिंगन कर आशीष दिया। बाद में अपना यज्ञ

में अग्निमय विद्युत्, तथा सर पर स्वर्ण शिरस्त्राण बतलाया गया है (ऋ. ५.५४)। इनके हाथ में धनुष्बाण तथा भाले रहते हैं। वज्र तथा एक सोने की कुल्हाडी से भी ये युक्त हैं (ऋ. ५.५२.१३; ८.८.३२)।

रथ--इनके स्वर्णिम रथ विद्युत् के समान प्रतीत होते हैं, जिनके चक्रधार एवं पहिये स्वर्ण के बने हैं (ऋ. १. ६४.८८)। जो जवाश्व इनके रथों को खींचते हैं, वे चितकबरे हैं (ऋ. ५.५३.१)। सभी प्राणी इनसे भयभीत रहते हैं। इनके चलने से आकाश भय से गर्जन करने लगता है। इनके रथों से पृथ्वी तथा चट्टाने विदीर्ण हो जाती है (ऋ. १. ६४; ५.५२)। इस लिए इन्हें प्रचण्ड वायु के समान वेगवान् कहा गया है (ऋ. १०.७८)।

कार्य—मरुतों का प्रमुख कार्य वर्षा कराना है। ये समुद्र से उठते हैं, एवं वर्षा करते हैं (ऋ. १.३८)। ये जल लाते हैं, एवं वर्षा को प्रेरित करते हैं (ऋ. ५. ५८)। जब ये वर्षा करते हैं, तब मेघों से अंधकार उत्पन्न कर देते हैं (ऋ. १.३८)। ये आकाशीय पात्र एवं पर्वतों से जलधारायें गिराते हैं, जिस कारण पृथ्वी की एक नदी को 'मरुद्वृद्धा' (मरुतों द्वारा वृद्धि की हुयीं) कहा गया है (ऋ. १०.७५)।

गायन—वायु के द्वारा निसृत ध्वनि ही मरुतों का गायन है, जिसके कारण इन्हें कई स्थानों पर गायक कहा गया है (ऋ. ५.५२.६०; ७.३५)। झंझावात के साथ समीकृत करके इन्हे स्वभावतः कई स्थानों पर इन्द्र की साथी एवं मित्र कहा गया है। ये लोग अपनी स्तुतियों तथा गीतों से इन्द्र की शक्ति एवं सामर्थ्य को बढ़ाते है (ऋ. १.१६५)। ये लोग इन्द्र के पुत्रों के समान है, जिन्हें इन्द्र का भ्राता भी कहा गया है (ऋ. १.१००; १.१७०)।

झंझावात की देवता—विद्युत्, आकाशीय गर्जन, वायु एवं वर्षा के साथ इनका जो विवरण प्राप्त है, इससे स्पष्ट है कि मरुत्गण झंझावात का देवता है। वैदिकोत्तर ग्रन्थों में इन्हें 'वायु' मात्र कहा गया है। किन्तु वैदिक साहित्य में ये कदाचित् ही वायुओं का प्रतिनिधित्व करते हैं, क्योंकि इनके गुण मेघों एवं विद्युत् से गृहीत हैं।

व्युत्पत्ति—मरुत् शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार करने से पता चलता है कि मरुत् 'मर' धातु से निसृत हैं, जिसके अर्थ 'मरना,' 'कुचलना' अथवा 'प्रकाशित होता' तथा 'शब्द' होते हैं। इसमें से 'प्रकाशित' तथा 'शब्द' मरुत् के व्यक्तित्व एवं वर्णन से मेल खाते हैं एवं इसके अन्य अर्थ लेना अनुचित सा प्रतीत होता हैं। वेदार्थदीपिका में इनके नाम की व्युत्पत्ति कुछ अलग ढंग से जरूर दी गयी है। उसमें कहा गया है कि, जन्म लेते ही इन्हें ज्ञात हुआ कि इन्हे मृत्युयोग है, जिस कारण ये रोने लगे। इन्हें रोता देखकर इनके पिता रुद्र ने इन्हें 'मा रोदीः' (रुदन मत करो) कहा। इस कारण इन्हें मरुत् नाम प्राप्त हुआ (वेदार्थदीपिका २.३३)।

ऋग्वेद में इन्हें सम्बोधित करके लिखे गये सूक्त में एक संवाद प्राप्त है, जिसमें इन्हें कुशल तत्त्वज्ञानी कहा गया है, जो तत्त्वज्ञान के सम्बन्ध में अगस्त्य एवं इन्द्र से विचार-विमर्श करते हैं (ऋ. १.१६५)।

दिति के पुत्र--महाभारत तथा पुराणों में इन्हें दिति एवं कश्यप के पुत्र कहा गया है, एवं इनकी कुल संख्या उन्चास बतायी गयी है। वहाँ इनकी जन्मकथा निम्न प्रकार से दी गयी है--दिति के कश्यप ऋषि से सारे उत्पन्न पुत्र विष्णु द्वारा मारें गये। तत्पश्चात् दिति ने कश्यप से वर माँगा, 'इन्द्र को मारनेवाला एक अमर पुत्र मुझे प्राप्त हो'। दिति द्वारा माँगा हुआ वरदान कश्यप ने प्रदान किया, एवं उसे गर्भकाल में व्रतावस्था में रहने के लिए कहा।

कश्यप के कथनानुसार, दिति व्रतानुष्ठान करते हुए रहने लगी। इन्द्र को जब यह पता चला कि, दिति अपने गर्भ में उसका शत्रु उत्पन्न कर रही है, तब वह तत्काल उसके पास आकर उस पुत्र को समाप्त करने के इरादे से साधुवेष में रहने लगा। एकबार दिति से अपने व्रत में कुछ गल्ती हुयी कि, इंद्रने योगबल से उसके गर्भ में प्रवेश कर उसके गर्भ के सात टुकड़े कर दिये। किन्तु जब वे न मरे तब उसने उन सातों टुकडो के पुनः सात टुकडे कर के उन्हें उन्पचास भागों में काट डाला। इसके द्वारा काटे गये टुकडे रोने लगे, तब इन्द्र ने 'मा रोदीः' कहकर उन्हें शान्त किया, जिसके कारण इन्हे मरुत् नाम प्राप्त हुआ।

इन्हे टुकड़े टुकड़े कर दिया गया, एवं फिर भी जब ये न मरे, तब इन्द्र समझ गया कि ये अवश्य देवता के अंश हैं। गर्भ के अंशों ने भी इंद्र स्तुति की कि, उन्हे मारा न जाये। तब इन्द्र ने कहा, 'आज से तुम सब हमारे भाई हो, तथा तुम सब को हम स्वर्ग ले जायेंगे।'

कालान्तर में दिति के उन्पचास पुत्र हुए, जिन्हे देखकर वह आश्चर्यचकित हो गयी एवं साधुवेषधारी इन्द्र से उसका कारण पूछने लगी। तब इन्द्र ने एक के स्थान पर कई पुत्र होने के रहस्य का उद्घाटन करते हुए सारी कथा बता कर कहा, 'ये सारे पुत्र तुम्हारे तपःसामर्थ्य पर ही

जीवित बचे हैं, जिन्हे मैं स्वर्ग में ले जाकर यज्ञ के हविर्भाग का अधिकारी बनाकर भाई की भाँति रक्खुँगा (म. आ. १३२. ५३; शां. २०७.२; भा. ६.१८; मत्स्य. ७. १४६)।

इंद्र-दिति संवाद--रामायण में यही कथा कुछ अलग ढंग से दी गयी है। दिति की गर्भावस्था में साधुवेषधारी इंद्र उसकी सेवा में रहा। इन्द्र की सेवा से संतुष्ट रहकर दिति ने उससे कहा, 'जिस गर्भ को तुम्हें मारने के लिए पाल रही हूँ वह तुम्हें न मारकर सदैव तुम्हारी सहायता करे यही मेरी इच्छा है'। किन्तु इन्द्र को सन्तोष न हुआ, एवं उसने दिति के गर्भ में प्रवेश कर के गर्भ को नाश करने के लिए उसके सात टुकड़े किये। इस पापकर्म करने के उपरांत इन्द्र बाहर आया, एवं सारी कथा बता कर दिति से क्षमा माँगने लगा। फिर दिति ने उससे कहा, 'तुम्हें मारने की तामसी इच्छा मैने की, अतः यह सर्वप्रथम मेरी ही गल्ती है। अब मेरी यही इच्छा है कि, तुम्हारे द्वारा किये गये गर्भ के वे सात टुकड़े वायु के सप्तप्रवाह में प्रविष्ट होकर देवस्थान प्राप्त करें। इन्द्र ने दिति को वर प्रदान किया, जिस कारण मरुत्गणों के साथ दिति ने स्वर्ग प्राप्त किया (वा रा. बा. ४७)।

इन्द्र ने दिति के साथ इतना पापकर्म किया, फिर भी वह सत्य से अलग न रहा, एवं दिति से सदैव सत्य भाषण ही किया। इसपर सन्तुष्ट होकर दिति ने इन्द्र को वर दिया 'मेरे होनेवाले पुत्र हमेशा तुम्हारे मित्र एवं सहयोगी रहेंगे (स्कन्द ६. २४; विष्णु १.२१; ३.४०; पद्म सृ. ७; भू. २६)।

सात मरुद्गण--ब्रह्मांड में मरुतों के सात गणों की नामावली प्राप्त है, जिनमें से हरेक गण में प्रत्येकी सात मरुत् अंतर्भूत हैं। ब्रह्मांड में प्राप्त मरुद्गणों की नामावली इस प्रकार है:--

प्रथम गण--१. चित्रज्योतिस्, २. चैत्य, ३. ज्योतिष्मत्, ४. शक्रज्योति, ५. सत्य, ६. सत्यज्योतिस्, ७. सुतपस्।

द्वितीय गण--१. अमित्र, २. ऋतजित, ३. सत्यजित, ४. सुतमित्र, ५. सुरमित्र, ६. सुषेण, ७. सेनजित्।

तृतीय गण--१. उग्र, २. धनद, ३. धातु, ४. भीम, ५. वरुण

चतुर्थ गण--१. अभियुक्ताक्षिक, २. साहूय

पंचम गण--१. अन्यदृश, २. ईदृशु, ३. द्रुम, ४. मित, ५. वृध, ६. समित् ७. सरित्।

षष्ठ गण--१. ईदृश्, २. नान्यादृश् ३. पुरुष, ४. प्रतिहर्तृ, ५. समचेतन, ६. समवृत्ति, ७. संमित।

सप्तम गण--इस गणों के मरुतों का नाम अप्राप्य है। किन्तु ब्रह्मांड के अनुसार, देव दैत्य एवं मनुष्ययोनियों से मिलकर इस गण के मरुत् बने हुए थे।

उपरनिर्दिष्ट मरुद्गणों में से प्रत्येक गण में वास्तव में सात सात मरुत होने चाहिये, किन्तु कई मरुतों के नाम अप्राप्य होने के कारण, यह नामावली अपूर्ण सी प्रतीत होती है। महाभारत में मंकणकपुत्रों को मरुद्गण के उत्पादक कहा गया है (म. श. ३७.३२)।

मरुद्गणों के स्थान--उपर्युक्त मरुद्गणों के निवास के बारे में विस्तृत जानकारी ब्रह्मांड एवं वायु में प्राप्त है, जो निम्न प्रकार है:--

अनुक्रम	निवासस्थान	भ्रमण कक्षा
प्रथम गण	पृथ्वी	पृथ्वी से मेघ तक
द्वितीय गण	सूर्य	सूर्य से मेघ तक
तृतीय गण	सोम	सोम से सूर्य तक
चतुर्थ गण	ज्योतिर्गण	ज्योतिर्गणों से सोम तक
पंचम गण	ग्रह	ग्रहोंसे नक्षत्रों तक
षष्ठ गण	सप्तर्षि मंडल	सप्तर्षि मंडल से ग्रहों तक
सप्तम गण	ध्रुव	ध्रुव से साप्तर्षियों तक (ब्रह्मांड. ३.५.७९-८८; वायु. ६७.८८-१३५)।

२. एक पौराणिक मानवजातिसंघ, जो वैशालि नगरी के उत्तरीपूर्व प्रदेश में स्थित पर्वतों में निवास करता था। ये लोग प्रायः पर्वतीय प्रदेश में निवास करते थे, एवं अन्य मानवजातियों से इनका विवाहसंबंध भी होता था।

सम्भव है, राम दाशरथि का परम भक्त हनुमान इस मरुत् जाति में उत्पन्न हुआ था। इस जाति का और एक सुविख्यात सम्राट मरुत्त आविक्षित था, जो इक्ष्वाकुवंशीय दिष्ट कुल का राजा था। मरुत्त आविक्षित भी वैशालि देश काही राजा था। वैदिक पूजाविधि में अंतर्गत 'मंत्रपुष्प' के मंत्रों से प्रतीत होता है कि, मरुत्त आविक्षित राजा के यज्ञों में मरुत् लोगों ने 'परिवेष्टृ' का काम किया था।

इन जाति के लोग पहले तो मानव थे, किन्तु कालोपरान्त इन्हे देवत्व प्राप्त हुआ। यही कारण है कि, पहले

इन्हे यज्ञ का हविर्भाग नही मिलता था, जो कालोपरान्त इन्हे मिलने लगा।

मरुत—एक महर्षि, जिसने शान्तिदूत बनकर हस्तिनापुर जानेवाले श्रीकृष्ण की परिक्रमा की थी (म. उ.८१.२७)।

मरुत्त—(सू. दिष्ट.) वैशालि देश का सुविख्यात सम्राट, जो अविक्षित राजा का पुत्र था (मरुत्त आविक्षित कामप्रि देखिये)।

२. (सो. तुर्वसु.) एक तुर्वसुवंशीय राजा, जो करंधम राजा का पुत्र था। यह निःसंतान होने के कारण, इसने रैभ्यपुत्र दुष्यन्त को अपना पुत्र मान लिया था (भा. ९. २३.१७)। दुष्यन्त स्वयं पूरुवंशीय था। उसे मरुत्त के द्वारा गोद में लिये जाने के कारण, आगे चलकर, तुर्वसु वंश का स्वतंत्र अस्तित्व नष्ट हुआ, एवं वह पूरुवंश में शामिल हुआ। मत्स्य के अनुसार, इसे ‘ भरत ’ नामान्तर भी प्राप्त था।

३. (सो. क्रोष्टु.) एक यादव राजा, जो मत्स्य के अनुसार तितिक्षु राजा का, एवं वायु के अनुसार उशनस् राजा का पुत्र था।

मरुत्त आविक्षित कामप्रि—(सू. दिष्ट.) वैशालि देश का एक सुविख्यात सम्राट, जो अविक्षित राजा का पुत्र, एवं करन्धम राजा का पौत्र था। महाभारत में इसे चक्रवर्ति एवं पाँच श्रेष्ठ सम्राटों में से एक कहा गया है। इसकी माता का नाम भामिनी था (मार्क. १२७.१०)।

ऐतरेय ब्राह्मण में इसे कामप्र का वंशज, एवं बृहस्पति आंगिरस का भाई बताया गया है। संवर्त के द्वारा इसके राज्याभिषेक किये जाने की कथा भी वहाँ दी गयी है (ऐ. ब्रा. ८.२१.१२; मार्क. १२६.११-१२)। शतपथ ब्राह्मण में इसे ‘ अयोगव ’ जाति में उत्पन्न कहा गया है (श. ब्रा. १३.५.४.६)।

इंद्र-मरुत्त विरोध—बृहस्पति आंगिरस ऋषि इसका पुरोहित था, एवं संवर्त आंगिरस इसका ऋत्विज था। बृहस्पति एवं संवर्त दोनों भाई तो अवश्य थे, किन्तु दोनों में बड़ा वैमनस्य था।

सम्राट मरुत्त एवं इन्द्र में सदैव युद्ध चलता ही रहता था, किन्तु इन्द्र इसे कभी भी पराजित न कर पाया। अन्त में इन्द्र को एक तरकीब सूझी, जिसके द्वारा मरुत्त को तंग करके उसे नीचा दिखाया जा सके। इन्द्र बृहस्पति के यहाँ गया, एवं बातों ही बातों में उसे राजी कर लिया कि, वह भविष्य में मरुत्त के यज्ञकार्य में पुरोहित का कार्य न करेगा।

कालान्तर में मरुत्त ने यज्ञ करना चाहा, तथा उसके लिए बृहस्पति के पास जाकर इसने उनसे प्रार्थना की कि, वह पुरोहित का पद सँभालें। किन्तु इन्द्र के द्वारा दिये गये मंत्र के अनुसार, बृहस्पति ने इसे कोरा जवाब दे दिया। बृहस्पति से निराश होकर यह वापस लौटा रहा था कि, इसे रास्ते में नारद मिला, जिसने इससे कहा, ‘ इसमें घबराने की बात क्या है? बृहस्पति न सही, उसके भाई संवर्त को वाराणसी से लाकर अपना यज्ञकार्य पूर्ण कर सकते हो ’। मरुत्त को यह बात जँच गयी, तथा यह वाराणसी जाकर संवर्त को बड़े आग्रह के साथ यज्ञ में ऋत्विज बनाने के लिए ले आया।

जब इन्द्र ने देखा कि बिना बृहस्पति के भी मरुत्त का यज्ञ आरम्भ हो रहा है, तथा संवर्त उसका ऋत्विज बनाया गया है, तब उसने इस यज्ञ में विभिन्न प्रकार से कई बाधाएँ डालने का प्रयत्न किया। इन्द्र ने पहले अग्नि के साथ मरुत्त के पास यह संदेश भेजा कि, बृहस्पति यज्ञकार्य करने के लिए तैयार है, अतएव संवर्त की कोई आवश्यकता नहीं है। अग्नि मरुत्त के पास आया, किन्तु वह संवर्त को वहाँ देखकर इतना डर गया कि, कहीं वह उसे शाप न दे दे। इसलिए वह मरुत्त से इन्द्र के संदेश को कहे बिना ही वापस लौट आया।

इसके बाद इंद्र ने धृतराष्ट्र नामक गंधर्व से मरुत्त को संदेश भेजा, ‘ यदि तुम यज्ञ करोगे, तो मैं तुम्हे वज्र से मार डालूँगा ’। किन्तु संवर्त के द्वारा आश्वासन दिलाये जाने पर, मरुत्त अपने निश्चय पर कायम रहा। यज्ञ का प्रारंभ करते ही, इसे इन्द्र के वज्र का शब्द सुनायी पड़ा। यह वज्रशब्द को सुन कर भयभीत हो उठा, परन्तु संवर्त ने इसे धैर्य बँधाया।

मरुत्त का यज्ञ—इस प्रकार संवर्त की सहायता से मरुत्त ने अपना यज्ञ यमुना नदी के तट पर ‘ प्लक्षावरण तीर्थ ’ में प्रारंभ किया (म. व. १२९.१६)। वाल्मीकि रामायण के अनुसार, यह यज्ञ ‘ उशीरबीज ’ नामक देश में हुआ था (वा. रा. उ. १८)।

मरुत्त की इच्छा थी कि, इन्द्र, बृहस्पति एवं समस्त देवता इस यज्ञ में भाग ले कर हवन किये गये सोम को स्वीकार करें एवं उसे सफल बनायें। अतएव अपने मंत्रप्रभाव से संवर्त इन सभी देवताओं को बाँध कर यज्ञस्थान पर ले आया। मरुत्त ने सभी देवताओं का सन्मान किया, एवं उनकी विधिवत् पूजा की।

उस यज्ञ में भगवान शंकर ने प्रचुर धनराशि के रूप में इसे हिमालय का एक स्वर्णमय शिखर प्रदान किया था। प्रतिदिन यज्ञकार्य के अन्त में, इसकी यज्ञसभा में इन्द्र आदि देवता, तथा बृहस्पति आदि प्रजापतिगण सभासद के रुप में बैठा करते थे। इसके यज्ञमण्डप की सारी सामग्रियाँ सोने की बनी हुयी थी। इसके घर में मरुद्गण रसोई परोसने का कार्य किया करते थे। विश्वेदेव इसकी यज्ञसभा के सभासद थे। इसने यज्ञवेदी पर बैठ कर, मंत्रपुरस्सरं हविर्द्रव्य का हवन कर, देवताओं, ऋषियों, तथा पितरों को संतुष्ट किया था। ब्राह्मणों को शय्या, आसन, सवारी, तथा स्वर्णराशि प्रदान की थी। इस प्रकार इसके व्यवहार से इन्द्र बड़ा प्रसन्न हुआ, एवं दोंनों में मित्रता स्थापित हो गयी। बाद को मरुत्गणों द्वारा यथेष्ट सोमपान कर के सभी लोग यज्ञ से संतुष्ट होकर वापस लौटे।

रावण से विरोध--बाद में मरुत्त के इस यज्ञ में विघ्न डालने के हेतु से रावण आया। रावण को देख कर यह उससे युद्ध करने के लिए तत्पर हुआ। किन्तु इसने यज्ञ-दीक्षा ली थी, अतएव यज्ञ से उठना इसके लिए असम्भव था। रावण ने इसके यज्ञ के वैभव को देखा, तथा बिना किसी प्रकार की हानि पहुँचाये वापस लौट गया (वा. रा. उ. ८)।

राज्यवैभव—यज्ञ के उपरांत यह अपनी राजधानी वापस आया, एवं समुद्र से घिरी हुयी पृथ्वी पर राज्य करना प्रारम्भ किया। इस प्रकार प्रजा, मन्त्री, धर्मपत्नी, पुत्र तथा भाइयों के साथ, इसने एक हज़ार वर्षों तक राज्य किया था।

मार्कंडेय के अनुसार, एक बार यह पृथ्वी के समस्त सर्पों का विनाश करने को उद्यत हुआ था, किन्तु अपनी माता भामिनी के द्वारा अनुरोध करने पर, इसने सर्पों के मारने का इरादा छोड़ दिया (मार्क. १२६.३-१५; १२७.१०)।

महाभारत में—महाभारत के अनुसार, यह पराक्रमी एवं धर्मनिष्ठ राजा था, जिसने सौ यज्ञ किये थे (म. द्रो. परि. १. क्र. ८ पंक्ति ३३६-३५०; शां. २९.१६-२१; आश्व. ४. १०; भा. ९. २)। महाराज मुचुकुन्द से इसे एक खड्ग प्राप्त हुआ था, जिसे इसने रैवत राजा को प्रदान किया था (म. शां. १६०.७६)।

परिवार—मरुत्त की निम्नलिखित कुल सात पत्नियाँ थीः—१. विदर्भकन्या प्रभावती; २. सुवीरकन्या सौवीरी; ३. मगधनरेश केतुवीर्य की कन्या सुकेशी; ४. मद्रराज सिंधुवीर्य की कन्या केकयी; ५. केकयनरेश की कन्या सैरंध्री; ६. सिन्धुराज की कन्या वपुष्मती; ७. चेदिराज की कन्या सुशोभना।

मरुत्त को इन पत्नीयों से कुल अठारह पुत्र हुए, जिनमें से नरिष्यंत ज्येष्ठ था (मार्क. १२८.४५-४८)। महाभारत के अनुसार, इसे दम नामक एकलौता पुत्र, एवं एक कन्या थी। इसकी मृत्यु के उपरांत दम इसके राज्य का अधिकारी हुआ। इसकी कन्या का विवाह अंगिरस् ऋषि से हुआ था (म. शां. २२६.२८; अनु. १३७.१६)।

मरुत्वत्—प्राचेतस दक्ष की कन्या मरुत्वती का ज्येष्ठ पुत्र।

मरुत्वती—प्राचेतस दक्ष की एक कन्या, जो धर्मऋषि की पत्नी थी। इसे मरुत्वत् एवं जयन्त नामक दो पुत्र थे (भा. ६.६.४-८; पद्म. सृ. ४०)।

मरुदेव—(सू. इ. भविष्य.) एक इक्ष्वाकुवंशीय राजा, जो भविष्य के अनुसार सुप्रतीक राजा का, एवं मत्स्य के अनुसार सुप्रतीप का पुत्र था। इसके पुत्र का नाम सुनक्षत्र था।

मरुद्गण—देवताओं का एक गण (म. श. ४४.६)।

२. एक दैत्य, जो कश्यप एवं दिति का पुत्र था (भवि. प्रति. ४.१७)।

मर्क—असुरों के सुविख्यात पुरोहितद्वय शंडामर्क (शंड एवं मर्क) में से एक (शंडामर्क देखिये)। कई ग्रंथों में मर्क का स्वतंत्र निर्देश भी प्राप्त है (वा. सं. ७.१३;१७)। हिलेब्रान्ट के अनुसार, शंड एवं मर्क दोनों ही ईरानी नाम हैं, एवं ऋग्वेद में अन्यत्र निर्दिष्ट 'गृध्र' नाम मर्क का ही प्रतिरूप है (वेदिशे माइथौलोजी. ३.४४२)।

मर्कटय--अंगिराकुलोत्पन्न एक गोत्रकार। इसके नाम के लिए 'कटक' पाठभेद प्राप्त है।

मर्यादा--एक विदर्भराजकुमारी, जो पुरुवंशीय राजा अपराचिन की पत्नी थी। इसके पुत्र का नाम अरिह था (म. आ. ९०.१८)।

२. विदेहराज की कन्या, जो पूरुवंशीय राजा देवातिथि की पत्नी थी। इसके पुत्र का नाम ऋच था।

मलद-- पूर्व भारत में रहनेवाला एक लोकसमूह, जिसे भीमसेन नें जीता था (म. स. २७.८)। भारतीय युद्ध में ये लोग कौरवपक्ष में शामिल थे (म. द्रो. ६.६)।

मलदा—अत्रि ऋषि की पत्नी (ब्रह्मांड. ३.८.७४-८७)।

मलय--एक राजा, जो प्रियव्रतवंशीय ऋषभदेव राजा का पुत्र था। वृषभदेव ने अपने अजनाभवर्ष के राज्य के नौ विभाग कर, उनमें से एक भाग इसे प्रदान किया था (भा. ५.४.१०; ऋषभदेव १०. देखिये)।

२. गरुड का एक पुत्र (म. स. ९९.१४)। इसके नाम के लिए 'माल्य' पाठभेद प्राप्त है।

मलयध्वज--मणलूर नगरी के चित्रवाहन नामक पाण्ड्य राजा का नामान्तर (चित्रवाहन देखिये)।

२. एक पाण्ड्य राजा, जिसे वैदर्भी नामक पत्नी से कृष्णेक्षणा (लोपामुद्रा) नामक कन्या उत्पन्न हुयी थी (भा. ४.२८.३० लोपामुद्रा देखिये)।

मलिन--एक पुरुवंशीय राजा, जो वायु के अनुसार वसु राजा का पुत्र था। इसे 'इलिल' नामान्तर भी प्राप्त था (इलिल देखिये)।

मल्ल--राम दाशरथि राजा के सुज्ञ नामक मंत्रि का पुत्र।

२. धर्म के सात पुत्रों में से एक। 'मल्लारि माहात्म्य' के अनुसार, मार्तंड नामक भैरव ने इसका वध किया।

३. मल्ल देश में रहनेवाले लोगों के लिए प्रयुक्त सामूहिक नाम। महाभारतकाल में, इन लोगों के राजा का नाम पार्थिव था, जिसे भीमसेन ने परास्त किया था (म. स. २७.३)। इन लोगों में गणतंत्रपद्धति का राज्य था, एवं इनकी राजधानी कुशीनगर (कुशीनारा) नगर में थी।

मल्लिकार्जुन (ज्योतिर्लिंग)--एक शिवावतार, जो श्रीशैल पर निवास करता था। इसके एक भक्त ने अपने पुत्र के दर्शन के लिए इसकी प्रार्थना की थी, जिसकी पूर्तता करने के लिए यह स्वर्गिरि पर निवास करने के लिए गया (शिव. शत. ४२)। इसके उपलिंग का नाम 'रुद्रेश्वर' था (शिव. कोटि. १)।

मशक गार्ग्य--एक आचार्य, जो स्थिरक गार्ग्य नामक ऋषि का पुत्र एवं शिष्य था। सामवेदान्तर्गत 'मशक कल्पसूत्र' अथवा 'आर्षेय कल्पसूत्र' नामक ग्रंथ का यह रचयिता था (ला. श्रौ. ७.९.१४; अनुपदसूत्र. ९९)। इसके शिष्य का नाम अतिधन्वन् था (वं. ब्रा. २)।

मशर्शार--ऋग्वेद में निर्दिष्ट नहुष लोगों का एक राजा (ऋ. २.१२२.१५)। इसे कुल चार पुत्र थे, जिन्होंने दीर्घतमस् पुत्र कक्षीवत् को काफ़ी त्रस्त किया था।

मषपाल--एक राजा, जो भविष्य के अनुसार सुनीथ राजा का पुत्र था।

मसृण--कश्यपकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

महत्--कश्यपकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

२. (स्वा. नाभि.) एक राजा, जो विष्णु के अनुसार विराट राजा का पुत्र था।

३. अमिताभ देवों में से एक।

४. पितरों में से एक।

५. (सो. पूरु.) एक पूरुवंशीय राजा, जो अन्तिनार राजा का पुत्र था (म. आ. ८९.११)।

६. एक अग्नि, जो प्रजापति भरत नामक अग्नि का पुत्र था (म. व. २०९.८)।

महत्तर--एक अग्नि, जो 'पांचजन्य' नामक अग्नि के पाँच पुत्रों में से एक था (म. व. २१०.९)।

महत्पौरव--(सो. द्विमीढ.) एक राजा, जो वायु के अनुसार सार्वभौम राजा का पुत्र था। मत्स्य में इसके नाम के लिए 'महापौरव' पाठभेद प्राप्त है।

महस्वत्--(सू. इ.) एक इक्ष्वाकुवंशीय राजा, जो भागवत के अनुसार अमर्षण राजा का, एवं विष्णु के अनुसार अमर्ष राजा का पुत्र था। वायु में इसके नाम के लिए 'सहस्वत्' पाठभेद प्राप्त है।

महाकपाल--दूषण राक्षस का अमात्य (वा. रा. अर. २३.३३)।

महाकपि--अंगिराकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

महाकर्ण--एक नाग, जो कश्यप एवं कद्रू के पुत्रों में से एक था।

२. वसिष्ठकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

महाकर्णि--मगधराज अंबुवीच का दुष्ट मंत्री (म. आ. १९६.१९)।

महाकर्णी--स्कंद की अनुचरी एक मातृका (म. श. ४५.२५)।

महाकाय--एकादश रुद्रों में से एक।

२. रावण के पक्ष का एक राक्षस।

महाकाया--स्कंद की अनुचरी एक मातृका (म. श. ४५.२३)।

महाकाल (ज्योतिर्लिंग)--एक शिवावतार, जो उज्जयिनी में क्षिप्रा नदी के तट पर स्थित महाकाल नामक तीर्थस्थान में निवास करता है। यह द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से एक माना जाता है (ज्योतिर्लिंग देखिये)। इसके उपलिंग का नाम 'दुग्धेश' था (शिव. कोटि. १)।

इसने केवळ अपनी हुंकार से ही दूषण नामक असुर को भस्मसात् किया था (शिव. शत. ४२)। इसने ब्रह्माजी का पाँचवाँ सिर नष्ट किया था (स्कंद. ५.१.३)।

२. बाणासुर का नामान्तर।

महाकाली—एक देवी, जो महादेव की आदिशक्ति मानी जाती है (दे. भा. ६.६)।

महागिरि—एक दानव, जो कश्यप एवं दनु का पुत्र था।

महाचक्रि—कश्यपकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

महाचूडा—स्कंद की अनुचरी एक मातृका (म. श. ४५.५)।

महाजय--नागराज वासुकि के द्वारा स्कंद को दिये गये दो पार्षदों में से एक। दूसरे पार्षद का नाम जय था (म. श. ४४.४८)।

महाजवा--स्कंद की अनुचरी एक मातृका (म. श. ४५.२१)।

महाजानु--कश्यपकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

२. एक श्रेष्ठ द्विज, जो प्रमद्वरा के सर्पदंशन के समय उसे देखने के लिए आया था (म. आ. ८.२०)।

महाजिह्वा—ब्रह्मधना नामक राक्षसी की कन्या।

२. एक राक्षसी, जिसका बर्बरिक ने वध किया था (बर्बरिक देखिये)।

महातपस्—एक ऋषि, जिसने सुप्रभ राजा को विष्णु की उपासना करने का उपदेश दिया था (वराह. १७)।

महातेजस्--एकादश रुद्रों में से एक।

२. अंगिराकुलोत्पन्न एक गोत्रकार ऋषिगण।

३. एक राजा, जो जनमेजय पारिक्षित (प्रथम) का पुत्र था (म. आ. ८९.५०)।

४. स्कंद का एक सैनिक (म. श. ४४.२०)।

महात्मन्--(सो. अनु.) एक राजा, जो मत्स्य के अनुसार महद्भानु का पुत्र था।

महादंष्ट्र—रावण के पक्ष का एक राक्षस।

महादेव—भविष्यपुराण नामक ग्रंथ का कर्ता।

महादेवा—यादव राजा देवक की कन्या।

महाद्युति--एक प्राचीन नरेश (म. आ. १.१७२ पाठ.)।

२. ग्यारह रुद्रों में से एक।

३. एक यक्ष, जो मणिभद्र एवं पुण्यजनी के पुत्रों में से एक था।

महाधृति--(सू. निमि.) एक निमिवंशीय राजा, जो भागवत के अनुसार विसृत का, एवं विष्णु तथा वायु के अनुसार विबुध का पुत्र था।

महानंद--मद्रदेश का एक राजा, जिसका नरिष्यन्त पुत्र दम ने सुमना के स्वयंवर के समय वध किया था (मार्क. १३०.५२)। इसके नाम के लिए 'महानाद' पाठभेद भी प्राप्त है।

महानंदा--एक वेश्या, जो परम शिवभक्त थी। इसके पास एक बन्दर तथा एक मुर्गा था, जिन्हें यह रुद्राक्षों से सजाये रहती थी। जब यह शिव की भक्तिभावना में भजन करती हुयी उसीमें तल्लीन रहती, तब बंदर तथा मुर्गा इसके साथ नृत्य किया करते थे।

शिव से भेंट--एक बार भगवान् शंकर एक वैश्य का रूप धारण कर, इसकी परीक्षा लेने के लिए स्वयं आये। वैश्यरूपधारी शंकर के पास एक रत्नकंकण था, जिसे देख कर महानंदा की इच्छा उसे प्राप्त करने की हुयी। वैश्य ने इससे कहा कि, वह रत्नकंकण तो दे सकता हैं, पर उसकी मूल्य यह क्या देगी? तब महानंदा ने कहा, 'इस कंकण को प्राप्त करने के लिए, मैं आपके पास तीन दिन पत्नीरूप में रह सकती हूँ'।

वैश्यने कंकण और रत्नमय लिंग इसको रखने को दिया, और उसके बदले इसे तीन दिन तक पत्नीरूप में स्वीकार किया। एक रात को आग लगने के कारण, वह रत्नमय लिंग जल गया, जिससे दुखित होकर वैश्य प्राण देने को उद्यत हुआ। महानंदा ने जब देखा कि, वह देहत्याग के लिए उद्यत है, तो यह भी उसके साथ सती होने को तैयार हुई। क्योंकि, इन तीन दिनों में, शर्त के अनुसार यह उसकी पत्नी थी, तथा पत्नीं होने के कारण इसे पत्नीधर्म निबाहना जरुरी था।

महानंदा की कर्तव्यभावना देखकर शंकर प्रसन्न हुए, एवं दर्शन दे कर इसके समस्त पापों का हरण किया (शिव. शत. २६)। महानंदा के सम्मुख प्रगट हुए शिव के इस अवतार को 'वैश्येश्वर' कहते हैं।

महानंदिन्—(शिशु. भविष्य.) एक राजा, जो भागवत, विष्णु एवं वायु के अनुसार नंदिवर्धन का पुत्र था। शिशुनाग वंश का यह अंतीम राजा था, जिसके पश्चात् शूद्र वंश में उत्पन्न महापद्म नंद राजा मगध देश का राजा बन गया। यह नंद राजा इसीका ही एक शूद्रा से उत्पन्न पुत्र था (महापद्म देखिये)। मत्स्य, वायु एवं ब्रह्मांड के अनुसार इसने ४३ वर्षों तक राज्य किया।

२. एक धर्मनिष्ठ राजा, जो पूर्वजन्म में भीमवर्मन् नामक दुराचारी क्षत्रिय था।

महानाद—रावण के मामा प्रहस्त नामक राक्षस का अमात्य (वा. रा. यु. ५८.१९)।

२. शिशुनागवंशीय महानंदिन् राजा का नामांतर।

महानाभ—एक दानव, जो कश्यप एवं दनु के पुत्रों में से एक था।

२. एक राक्षस, जो हिरण्याक्ष एवं रुषाभानु के पुत्रों में से एक था।

महानील—एक नाग, जो कश्यप एवं कद्रू के पुत्रों में से एक था।

महानुभाव—चाक्षुष मन्वन्तर के देवों में से एक।

महापद्म—(नंद. भविष्य.) नंदवंश का प्रथम राजा, जो वायु, एवं मत्स्य के अनुसार शिशुनाग वंश के अंतिम राजा महानंदिन् का पुत्र था। यह उसे एक शूद्र स्त्री से उत्पन्न हुआ था। इसने अपने पिता का वध कर, अपने स्वतंत्र नंदवंश की स्थापना की। इसे नंद नामांतर भी प्राप्त था।

मत्स्य एवं ब्रह्मांड के अनुसार इसने ८८ वर्षों तक, एवं वायु के अनुसार २८ वर्षों तक राज्य किया था।

२. एक दिग्गज, जो भारतीययुद्ध में घटोत्कच के गजसेना में शामिल था (म. भी. ६०.५१)।

महापद्म—एक नाग, जो कश्यप एवं कद्रू के पुत्रों में से एक था।

महापरिषदेश्वर—स्कंद का एक सैनिक (म. श. ४४.६१)।

महापार्श्व—एक राक्षस, जो रावण का अमात्य था। इसे 'मत्त' नामांतर भी प्राप्त था। विश्रवस् ऋषि को पुष्पोत्कटा नामक पत्नी से उत्पन्न पुत्रों में से यह एक था। राम-रावण युद्ध में यह अंगद के हाथों इसका वध हुआ (वा. रा. यु. ९८.२२)।

महापुरुवश—(सो. क्रोष्टु.) एक यादव राजा, जो वायु के अनुसार नंदन राजा का पुत्र था।

महापौरव—(सो. द्विमीढ.) एक राजा, जो मत्स्य के अनुसार सार्वभौम राजा का पुत्र था। वायु एवं हरिवंश में इसे क्रमशः 'महत्पौरव' एवं 'महत्' कहा गया है।

महाबल—एक दानव, जो कश्यप एवं दनु के पुत्रों में से एक था।

२. (सो. पूरु.) एक पूरुवंशीय राजा, जो वायु के अनुसार बृहद्दिष्णु राजा का पुत्र था।

३. विष्णु का एक पार्षद।

४. शिव का एक पार्षद।

५. स्कंद का एक सैनिक (म. श. ४४.१०६)।

६. वैवस्वत मन्वन्तर का इंद्र।

७. गुहावासिन् नामक शिवावतार का शिष्य।

८. पितरों में से एक।

महाबला—स्कंद की अनुचरी मातृकाद्वय (म. श. ४४.१०६)।

महाबाहु—एक दानव, जो कश्यप एवं दनु के पुत्रों में से एक था। पाठभेद (भांडारकर संहिता)—'वीरबाहु'

२. (सो. कुरु.) धृतराष्ट्र के शतपुत्रों में से एक। भीम ने इसका वध किया (म. द्रो. १३२.११३५*, पंक्ति. १)।

३. (सो. मगध. भविष्य.) मगध देश का एक राजा, जो वायु के अनुसार श्रुतंजय राजा का पुत्र था। भागवत एवं विष्णु के अनुसार इसे 'विप्र', मत्स्य के अनुसार इसे 'विभ', एवं ब्रह्मांड के अनुसार 'रिपुञ्जय' नामांतर प्राप्त थे। इसने पैंतीस वर्षों तक राज्य किया।

महाभय—एक राक्षस, जो अधर्म एवं निर्ऋति का पुत्र था। निर्ऋति का पुत्र होने से, इसे एवं इसके भय एवं मृत्यु नामक दो भाईयों को 'नैर्ऋत' राक्षस कहते थे।

महाभाग—भृगुकुलोत्पन्न गोत्रकार 'वाह्ययन' के नाम के लिए उपलब्ध पाठभेद।

महाभागा—एक अप्सरा, जो कश्यप एवं खषा की कन्याओं में से एक थी।

महाभिष—(सू. इ.) इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न एक प्राचीन राजा, जो सत्यवादी तथा पराक्रमी था। कुंभकोणम् प्रति में 'महाभिष' के स्थान पर 'महाभिषज' नाम प्राप्त है।

पूर्वजन्म में इसने एक सहस्र अश्वमेध, एवं सौ राजसूय यज्ञों के द्वारा इन्द्र को संतुष्ट कर के स्वर्गलोक प्राप्त किया था (म. आ. ९१.१-२)।

ब्रह्मा से शाप—एक बार जब यह ब्रह्मलोक गया, तब वहाँ इसने अन्य देवताओं ऋषियों तथा समस्त नदियों के साथ महानदी गंगा को भी देखा। जब इसने उसे देखा, तब गंगा के शरीर का वस्त्र हवा में उड़ रहा था, जिसे देख कर सब ने अपनी नज़रें शीघ्र झुका ली। किन्तु महाभिष एकटक उसे देखता ही रहा। गंगा ने भी इसे प्रेमभरी दृष्टि से देखा, तथा दोनों एक दूसरे से स्नेह-बन्धन में एकाएक बँध गये। दोनों के इस प्रेमभरे खिंचाव

को देख कर, ब्रह्मा ने दोनों को मृत्युलोक में जन्म लेने के लिए शाप दिया।

यह सुन कर दोनों ने ब्रह्मदेव की क्षमा माँगते हुए अत्यधिक अनुनय विनय किया। तब ब्रह्मा ने कहा, 'तुम लोग स्वर्गलोक वापस आओगे, किन्तु इसके लिए तुम दोनों को न जाने कितना पुण्य करना पड़ेगा'।

इस शाप के अनुसार, महाभिष सोमवंश में उत्पन्न होकर शंतनु नाम से प्रसिद्ध हुआ, तथा गंगा इसकी पत्नी बनी (म. आ. ९१.१; दे. भा. २.३; भा. ९.२२; शंतनु देखिये)।

महाभोज--(सो. क्रोष्टु.) एक यादव राजा, जो सात्वत राजा का पुत्र था। आगे चल कर, इसके नाम से इसके वंशज 'भोजवंशीय' कहलाने लगे (भा. ९.२४.७-११)।

महाभौम--(सो. पूरु.) एक पूरुवंशीय राजा, जो अरिह राजा का पुत्र था। इसकी माता का नाम आंगी था। इसकी पत्नी का नाम सुयज्ञा था, जिससे इसे अयुतानायिन् नामक पुत्र उत्पन्न हुआ (म. आ. ९०. ८९९*; ९०.१९)।

महामख--एक आदित्य, जो सवितृ नामक आदित्य का पुत्र था। इसकी माता का नाम पृश्णि था (भा. ६. १८.१)।

महामणि--(सो. अनु.) एक अनुवंशीय राजा, जो विष्णु के अनुसार जनमेजय राजा का पुत्र था। इसके पुत्र का नाम महामनस् था।

महामती--अंगिरस् ऋषि की सात कन्याओं में से एक (म. व.२०८.७)।

महामनस्--(सो. अनु.) एक चक्रवर्ती राजा, जो मत्स्य एवं वायु के अनुसार महाशाल नामक राजा का पुत्र था (वायु. ९९.१७)। विष्णु में इसे महामणि राजा का पुत्र कहा गया है। इसे उशीनर एवं तितिक्षु नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे।

महामर--एक राजा, जो प्रमर नामक राजा का पुत्र था। इसने तीन वर्षों तक राज्य किया था (भवि. प्रति. ४.१)।

महामान--पारावत देवों में से एक।

महामालिन्--एक राक्षस, जो खर राक्षस का अमात्य था (वा. रा. अर. २३.३२)।

२. रावण के पक्ष का एक असुर।

महामुख--जयद्रथ की सेना का एक योद्धा, जो द्रौपदीहरण के समय हुए युद्ध में, नकुल के द्वारा मारा गया (म. व. २५५.१६-१७)।

महामुद्--एक यक्ष, जो मणिवर एवं देवजनी के पुत्रों में से एक था।

महामुनि--रैवत मन्वन्तर के सप्तर्षियों में से एक।

महामूर्ति--विभीषण की पत्नी। राम दाशरथि के अश्वमेध यज्ञ के समय, इसने अपने पति विभीषण के साथ सरयु नदी के तट पर जा कर, उस नदी का पवित्र जल अश्वमेधीय अश्व के स्नान के लिये लाया। आगे चल कर, उसी जल से राम ने अपने अश्वमेधीय अश्व को स्नान कराया (पद्म. पा. ६७)।

महायशस्--(सो. पूरु.) एक पूरुवंशीय राजा, जो मत्स्य के अनुसार संकृति राजा का पुत्र था।

२. प्रसूतदेवों में से एक।

३. लेखदेवों में से एक।

महायशा--स्कंद की अनुचरी एक मातृका (म. श. ४५.२७)।

महायोग--गुहवासिन् नामक शिवावतार का एक शिष्य।

महारथ--विश्वामित्र के पुत्रों में से एक।

२. (सो. ऋक्ष.) उपरिचर वसु राजा के बृहद्रथ नामक पुत्र का नामान्तर।

महारव--एक यादव राजा, जो रैवतक पर्वत पर हुए उत्सव में शामिल था (म. आ. २११.११)। इसके नाम के लिए 'सहाचर' पाठभेद प्राप्त है।

महाराज--एक इक्ष्वाकुवंशीय राजा, जो भागवत के अनुसार अज राजा का पुत्र था।

२. ब्रह्म में निर्दिष्ट एक राजा, जिसकी कन्या का विवाह मणिकुण्डल नामक राजा से हुआ था (मणिकुण्डल देखिये)।

महारोमन्--(सू. निमि.) विदेह देश का राजा, जो कृतिरात जनक का पुत्र था। इसके पुत्र का नाम स्वर्णरोमन् था।

महारौद्र--एक राक्षस, जो घटोत्कच का साथी था। भारतीययुद्ध में यह दुर्योधन के द्वारा मारा गया (म. भी. ९१.२०-२१)।

महालक्ष्मी--देवी लक्ष्मी का एक नामान्तर (देवी एवं लक्ष्मी देखिये)।

महावशिन्--(सू. निमि.) विदेह देश का राजा, जो भागवत के अनुसार कृति राजा का पुत्र था।

महावीर--एक राजा, जो क्रोधवशसंज्ञक दैत्य के अंश से उत्पन्न हुआ था (म. आ. ६१.५५)।

२. एक आचार्य, जो स्वायंभुव मनु के सुविख्यात पुत्र प्रियव्रत राजा के तीन विरक्त पुत्रों में से एक था। इसकी माता का नाम बार्हिष्मती था। इसे 'वृतोद' नामान्तर भी प्राप्त था। अपने बाल्यकाल में ही तपस्या के लिए यह वन में चला गया, एवं पश्चात् इसने संन्यासआश्रम का स्वीकार किया। यह श्रीकृष्ण का परमभक्त था, जिस कारण ज्ञानसंपन्न हो कर, इसने ब्रह्मत्व प्राप्त किया (भा. ५.१)।

३. एक पराक्रमी राजा, जो राम के अश्वमेधीय अश्व की रक्षा करने के लिए शत्रुघ्न के साथ उपस्थित था (पद्म पा. ११)।

महावीर्य--(सू. निमि.) विदेह देश का राजा, जो दैवराति बृहद्रथ राजा का पुत्र था। इसके पुत्र का नाम सुधृति था।

२. (सो. पूरु.) एक पूरुवंशीय राजा, जो भागवत के अनुसार मन्यु राजा का पुत्र था। मत्स्य में इसे कृमि राजा का पुत्र कहा गया है। इसके पुत्र का नाम दुरितक्षय था।

३. वसिष्ठकुलोत्पन्न एक गोत्रकार ऋषिगण।

महावेगा--स्कंद की अनुचरी एक मातृका (म. श. ४५.१५)।

महाव्रत--विश्वामित्र के ब्रह्मवादी पुत्रों में से एक।

महाश--श्रीकृष्ण एवं मित्रविंदा के दस पुत्रों में से एक।

महाशक्ति--श्रीकृष्ण एवं लक्ष्मणा के दस पुत्रों में से एक।

महाशंख--एक नाग, जो कश्यप एवं कद्रू के पुत्रों में से एक था (मत्स्य. ६)। भागवत के अनुसार, यह पाताल में रहता था (भा. ५.२४.३१)। यह मार्गशीर्ष माह के सूर्य के साथ भ्रमण करनेवाले प्राणियों में से एक था (भा. १२.११.४१)।

महाशाल--(सो. अनु.) एक अनुवंशीय राजा, जो मत्स्य एवं वायु के अनुसार जनमेजय राजा का पुत्र था।

२. एक ब्राह्मणसमूह, जिसने अश्वपति कैकेय राजा से शिक्षा प्राप्त की थी (श. ब्रा. १०.६.१.१)। संभव है, इन ब्राह्मणों का महत्व बढ़ाने के लिए इनका इस प्रकार वर्णन किया गया है।

महाशाल जाबाल--शतपथ ब्राह्मण में निर्दिष्ट एक आचार्य। इसने धीर शातपर्णेय को शिक्षा प्रदान की थी (श. ब्रा. १०.३.१.१)। शतपथ ब्राह्मण में अन्यत्र इसे अश्वपति राजा से शिक्षा प्राप्त करनेवाले ब्राह्मणों में से एक कहा गया है (श. ब्रा. १०.६.१.१)। छांदोग्य उपनिषद में इसके नाम का निर्देश 'प्राचीलशाल औपमन्यव' नाम से किया गया है, एवं 'महाशाल' शब्द 'एक महान् गृहवाला' इस अर्थ से एक विशेषण के रूप में प्रयुक्त किया गया है (छां. उ. ५.११.१; ३; ६.४.५)। मुण्डक उपनिषद में भी 'महाशाल' शब्द एक उपाधि के रूप में शौनक के लिए प्रयुक्त किया गया है (मुं. उ. १. १.३; ब्रह्म. उ. १)।

महाशिरस्--युधिष्ठिर के सभा का एक ब्रह्मर्षि (म. स. ४.८)।

२. एक नाग, जो वरुण की सभा में उपस्थित था (म. स. ९.१४)।

३. एक दानव, जो कश्यप एवं दनु के पुत्रों में से एक था।

महाश्व--एक राजा, जो यमसभा में उपस्थित था (म. स. ८.१८)।

महासत्त्व--(सो. कुरु.) एक कुरुवंशीय राजा, जो वायु के अनुसार आराधिन् राजा का पुत्र था।

महासुर--एक दानव, जो कश्यप एवं दनु के पुत्रों में से एक था।

महासेन--स्कंद का नामान्तर (म. व. २१४.२६; स्कंद देखिये)।

महास्वना--स्कंद की अनुचरी एक मातृका (म. श. ४५.२५)।

महाहनु--(सो. वसु.) एक राजा, जो मत्स्य के अनुसार वसुदेव एवं रोहिणी के पुत्रों में से एक था।

२. तक्षक कुलोत्पन्न एक नाग, जो जनमेजय के सर्पसत्र में दग्ध हुआ था (म. आ. ५२.१६)।

महाहय--(सो. क्रोष्टु.) एक यादव राजा, जो शतजित् राजा का पुत्र था।

महित--पितरों में से एक।

महिदास ऐतरेय--एक आचार्य, जो 'ऐतरेय ब्राह्मण' एवं 'ऐतरेय आरण्यक' नामक ग्रंथों का रचियता माना जाता है। इसीके ही नाम से उन ग्रंथों को 'ऐतरेय' उपाधि प्रदान की गयी होगी। संभव है, यह स्वयं 'इतर' अथवा 'इतरा' नामक किसी स्त्री का वंशज होगा,

जिस कारण इसे 'ऐतरेय' मातृक नाम प्राप्त हुआ होगा।

ऐतरेय आरण्यक में इसका अनेक बार निर्देश प्राप्त है। किंतु वहाँ कहीं भी इसे उस ग्रंथ का रचयिता नही कहा गया है (ऐ. आ. २.१.८; ३.७)।

छांदोग्य उपनिषद एवं जैमिनीय उपनिषद ब्राह्मण में के अनुसार, यह एक सौ सोलह वर्षों तक जीवित रहा। इसे रोग ने अनेक तरह के कष्ट दिये। किंतु इसने रोग को चुनौति दी, 'तुम मुझे चाहे कितने भी सताओं, मैं तुम्हारे कष्टों से नहीं मरूँगा' (छां. उ. ३.१६.७; जै. उ. ब्रा. ४.२.११)।

महिनेत्र—(सो. मगध.) एक राजा, जो मत्स्य के अनुसार द्युमत्सेन राजा का पुत्र था।

महिमत्—एक आदित्य, जो भग एवं सिद्धि का पुत्र था (भा. ६.१८.२)।

महिमावत्—पितरों में से एक।

महिष—ब्रह्मांड के अनुसार, महिषासुर का नामांतर (ब्रह्मांड. ३.६.२८-३३)।

महिषदा—स्कंद की अनुचरी एक मातृका (म. श. ४५.२७)। इसके नाम के लिए 'गोमहिषदा' पाठभेद प्राप्त है।

महिषानना—स्कंद की अनुचरी एक मातृका (म. श. ४५.२५)।

महिषासुर—एक असुर, जो मयासुर एवं रंभा का पुत्र था।

जन्म—इसका पिता रंभासुर बड़ा शंकरभक्त था, जिसने अपनी तपस्या से उसे प्रसन्न कर वरदान माँगा, 'हे प्रभो, मैं निःसंतान हूँ, मुझे एक भी पुत्र नहीं है। अतएव मेरी इच्छा है कि, तुम मेरे पुत्र बनों'। शंकर ने 'तथास्तु' कहा। एक दिन मार्ग से जाते समय, रंभासुर को चित्रवर्ण की एक सुन्दर महिषी दिखी। तब उसने उसमें अपना वीर्य स्थापित किया, जिससे कालांतर में शंकरांश का बल लेकर महिषासुर उत्पन्न हुआ। महिषासुर ने देवी की आराधना कर के उसके भक्तों में शाश्वत स्थान किया। प्राप्त

वध—इसने तप से ब्रह्मदेव को प्रसन्न किया, तथा वरदान प्राप्त किया कि, यह मनुष्य के हाथों से न मारा जाये। बाद को ब्रह्मदेव के वरदान की प्राप्त कर इसने तीनें लोकों का कष्ट देना आरंभ किया। तब देवी ने अष्टदश-भुज रूप धारण कर इसका वध किया (दे. भा. ५,१६; मार्क ८०; पार्वती देखिये)।

एक बार शिकार करते-करते यह अरुणाचल पर्वत पर गया, जहाँ पार्वती तपस्या कर रही थी। वहाँ उसकी सौन्दर्यसुषमा को देखकर यह उस पर मोहित हो गया, तथा एक वृद्ध अतिथि का रूप धारण कर, उससे तपस्या करने का कारण पूछाँ। तब पार्वती ने कहा, 'मै परम बलवान् भगवान् शंकर का वरण करना चाहती हूँ, इसीसे तपस्या कर रही हूँ'। तब इसने कहा,'मैं भी बलवान् हूँ, एवं चाहता हूँ कि तुम मेरा वरण करो'। तब पार्वती ने इसे युद्ध के लिए ललकारते हुए अपना बल प्रदर्शन करने के लिए कहा। महिषासुर ने पार्वती के साथ घोर युद्ध किया, किन्तु अन्त में उसके द्वारा यह मारा गया (स्कन्द. १.३; १०. ११; शिव. उ. ४६)।

जिस स्थान पर देवी ने इसका वध किया था, वही स्थान सम्भवतः 'देवीपुर तीर्थ' है (स्कन्द. ३.१.६-७)।

महाभारत में, इसे महेश्वर द्वारा वर प्राप्त होने की चर्चा है (म. अनु. १४.२१४)। एक बार इसने देवताओं को परास्त कर के रुद्र के रथ पर भी आक्रमण किया था (म. व. २२१.५७)। महाभारत के अनुसार, स्कन्द ने इसका वध किया था (म. व. २२१.६६)।

महिष्मत—(सो. सह.) एक राजा, जो भागवत के अनुसार सोहंजी राजा का, एवं विष्णु के अनुसार साहंजि का पुत्र था। मत्स्य एवं वायु में इसके पिता का नाम क्रमशः 'संहत' एवं 'संज्ञेय' दिया गया है।

इसके पुत्र का नाम रुद्रश्रेण्य था। हरिवंश के अनुसार, इसने माहिष्मती नगरी बसायी थी (ह. वं. १. ३३.५)।

महिष्मती—महर्षि अंगिरस् की छठी कन्या। इसे 'अनुमती' नामांतर भी प्राप्त था (म. व. २०८.६)। भांडारकर संहिता में इसके नाम का 'हविष्मती' पाठ स्वीकार लिया है।

२. बृहस्पति की कन्याओं में से एक। इसकी माता का नाम शुभा था।

मही—एक दुराचारी ब्राह्मण स्त्री, जो धृतव्रत नामक ब्राह्मण की पत्नी थी। इसके पुत्र का नाम सनाज्जात था।

अपने पति के मृत्यु के पश्चात् यह निराधार हो गयी, जिस कारण इसे वेश्यावृत्ति का स्वीकार करना पड़ा। आगे चल कर, इसका इतना अधःपात हुआ कि, इसने अपना पुत्र सनाजात से भी समागम किया। किंतु इतनी

दुराचारी होने पर भी, गंगा स्नान के कारण इसका उद्धार हुआ (ब्रह्म. ९२)।

महीजित्--माहिष्मती नगरी का एक राजा, जो द्वापर युग में उत्पन्न हुआ था। इसने पुत्रप्राप्ति के लिए, श्रावण शुक्ल एकादशी के दिन 'पुत्रदा एकादशी' का व्रत किया, जिस कारण इसे एक सुपुत्र की प्राप्ति हुई (पद्म. उ. ५५)।

महीरथ--एक राजा, जिसने वैशाख माह में स्नान का व्रत कर, अपना एवं अपने परिवार के लोगों का उद्धार किया (पद्म. पा. ९९-१०१; स्कंद. २.७.४)।

महीषक--एक ज्ञातिसमूह, जो पहले क्षत्रिय था, किंतु आगे चल कर, अपने दुराचरण के कारण शूद्र बन गया (म. अनु. ३३.२२-२३)। इनके नाम के लिए 'महिषक' एवं 'माहिषक' पाठभेद भी प्राप्त है। संभवतः आधुनिक मैसूर प्रदेश में ये लोग रहते होंगे।

अर्जुन ने अपने दक्षिण दिग्विजय के समय इन्हे जीता था (म. आश्व. ८४.४१)। महाभारत के अनुसार, ये लोग आचार विचार से अत्यधिक दूषित थे (म. क. ३७. ४५)।

महेंद्र--अगस्त्यकुलोत्पन्न एक ऋषि।

महेश--एक शिवावतार। एक बार शिव के वेताल नामक द्वारपाल ने पृथ्वी पर जन्म लिया जिस समय उसकी रक्षा के लिए शिव एवं पार्वती ने क्रमशः महेश एवं शारदा के नाम से पृथ्वी पर अवतार लिये थे (शिव. शत. १४; वेताल देखिये)।

महैतरेय--एक आचार्य, जिसका ऋग्वेदी ब्रह्मयज्ञांग-तर्पण में निर्देश प्राप्त है।

महोदक--एक नाग, जो कश्यप एवं कद्रू के पुत्रों में से एक था।

महोदय--वसिष्ठ ऋषि के पुत्रों में से एक। अयोध्या के राजा सत्यव्रत त्रिशंकु ने विश्वामित्र ऋषि को ऋत्विज बना कर, एक यज्ञसमारोह का आयोजन किया। उस समय इसके पिता वसिष्ठ के साथ इसे भी त्रिशंकु राजा ने बड़े सम्मान के साथ निमंत्रित किया था। उस निमंत्रण को इसने अस्वीकार कर दिया, एवं संदेश भेजा, 'चाण्डाल त्रिशंकु जहाँ यजमान है एवं चाण्डाल विश्वामित्र जहाँ ऋत्विज है, ऐसे यज्ञ में मैं नहीं आ सकता'। इसका यह अपमानजनक संदेश सुन कर, विश्वामित्र अत्यधिक क्रुद्ध हुआ, एवं उसने इसे निषाद बनने का शाप दिया (वा. रा. बा. ५९.२०-२१)।

महोदर--एक नाग, जो कश्यप एवं कद्रू के पुत्रों में से एक था।

२. धृतराष्ट्र के शतपुत्रों में से एक। भीमसेन ने नाराच नामक बाण इसकी छाती में मार कर इसका वध किया (म. भी. ८४.२६)।

३. एक राक्षस, जो घटोत्कच का मित्र था। कामकटंकटा को जीतने के लिए घटोत्कच जब प्राग्ज्योतिषपुर जाने निकला, उस समय यह उसका एक अनुचर था (स्कंद. १. २.५९-६०)।

४. एक ऋषि। श्रीराम के द्वारा मारे गये एक राक्षस का मस्तक इसकी जाँघ में आ कर चिपक गया था। पश्चात् सरस्वती नदी के तट पर स्थित 'औषनस' नामक तीर्थ में स्नान करने के कारण, वह चिपका हुआ सिर छुट गया। इसी कारण, औषनस तीर्थ को 'कपालमोचन' नाम प्राप्त हुआ (म. श. ३८.१०-२३)।

५. रावण के पुत्रों में से एक। राम-रावण युद्ध में इसने सर्व प्रथम अंगद से, एवं तत्पश्चात् नील नामक वानर से युद्ध किया, जिसने इसका वध किया (वा. रा. यु. ७०. ३१)।

६. रावण का एक दुष्टबुद्धि प्रधान (वा. रा. उ. १४.१)। रावण सीता को वश में लाने के लिए चाहता था। उस समय इसने रावण को सलाह दी थी कि, राम-वध की झूटी वार्ता फैलाने से ही सीता वश में आ सकती है। इसने रावण से कहा, 'मैं स्वयं द्विजिह्व, कुंभकर्ण, संह्रादिन् तथा वितर्दन नामक राक्षसों को साथ ले कर, राम से युद्ध करने के लिए जाता हूँ। उस युद्ध से लौट आते समय, हम 'राम मर गया' इस प्रकार चिल्लाते हुए अशोकवन में प्रवेश करेंगे। इस वृत्त को सुनते ही भयभीत हो कर सीता तुम्हारे वंश में आयेगी' (वा. रा. यु. ६४.२२-३३)।

महोदर प्रधान की यह सलाह रावण एवं कुंभकर्ण ने अस्वीकार कर दी, एवं रावण ने अकेले कुंभकर्ण को ही रणभूमि में भेज दिया। पश्चात् इसका सुग्रीव के साथ युद्ध हो कर, यह उसीके हाथों मारा गया (वा. रा. यु. ९७.३६)।

७. रावण के मातामह सुमालि नामक राक्षस का सचिव। राम रावण युद्ध के समय, रावण की सहाय्यता के लिए यह सुमालि राक्षस के साथ बाहर आया था (वा. रा. उ. ११.२)।

८. रावण का एक भाई, जो विश्रवस् एवं पुष्पोत्कटा के पुत्रों में से एक था (वा. रा. यु. ७०.६६)। हनुमत् ने इसका वध किया था।

९. एक प्रातःस्मरणीय नृप (म. अनु. १६५.५२)।

महौजस्—एक राजा, जो कालेय (पाँचवाँ) के अंश से उत्पन्न हुआ था। भारतीय युद्ध में यह पाण्डवों के पक्ष में शामिल था (म. उ. ४.१९)।

२. एक राजा, जो भारतीय युद्ध में कौरवों के पक्ष में शामिल था (म. आ. ६१.५०)।

३. एक क्षत्रिय कुल, जिसमें 'वरयु' (वरप्र) नामक कुलांगार राजा उत्पन्न हुआ था (म. उ. ७२.१५)।

४. वसुदेव एवं भद्रा के पुत्रों में से एक।

५. तुषित देवों में से एक।

महौदवाहि—एक आचार्य, जिसका ऋग्वेदी ब्रह्मयज्ञांग तर्पण में निर्देश प्राप्त है (आश्व. गृ. ३.४.४)।

माक्षति—वसिष्ठकुलोत्पन्न एक गोत्रकार ऋषिगण।

माक्षव्य—एक आचार्य, जो मक्षु नामक महर्षि का पुत्र था। इसने संहिता शब्द का तात्विक अर्थ लगाने का प्रयत्न किया है, जिसके अनुसार द्यौ एवं पृथ्वी स्वयं एक आचार्य है, जिन्होने आकाश नामक एक संहिता का निर्माण किया है (ऐ. आ. ३.१.१)।

मागध—एक राजा, जो भारतीय युद्ध में कौरवों के पक्ष में शामिल था। महाभारत में इसे 'मगध देशाधिपति' कहा गया है। अभिमन्यु नें इसका वध किया था (म. भी. ५८.४४)।

२. मगधराज जरासंध का नामान्तर (भा. ३.३.१०)।

३. भौत्य मन्वन्तर का एक देवतागण।

४. भौत्य मन्वन्तर के सप्तर्षियों में से एक।

मांकायन—भृगुकुलोत्पन्न एक गोत्रकार। इसके नाम के लिए 'कार्मायन' पाठभेद प्राप्त है।

मांगलिन—एक आचार्य, जो भागवत के अनुसार, व्यास की सामशिष्य परंपरा में से पौष्यंजिन ऋषि का शिष्य था (व्यास देखिये)।

माचाकीय—तैत्तिरीय प्रातिशाख्य में निर्दिष्ट एक व्याकरणाचार्य। 'य'कार तथा 'व'कार का लोप कहाँ होता है, इसके बारे में इसका अभिमत प्राप्त है (तै. प्रा. १०.२२)।

माचेल्ल—पाण्डवों के पक्ष का एक महारथि, जो युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भेंट ले कर उपस्थित हुआ था (म. स. ३१.१३)। इसके नाम के लिए 'माचेल्लक' पाठभेद भी प्राप्त है।

माचेल्लक—माचेल्लक देश के रहिवासी लोगों के लिए प्रयुक्त सामुहिक नाम। भारतीय युद्ध में ये लोक कौरवों के पक्ष में शामिल थे। इनके नाम के लिए 'मावेल्लक' पाठभेद भी प्राप्त है।

इन्होंने एवं त्रिगर्तराज सुशर्मन् ने अर्जुन को युद्ध में विनष्ट करने की प्रतिज्ञा की थी (म. द्रो. १६.२०)। किंतु उस समय हुए युद्ध में अर्जुन ने इनका संहार किया (म. द्रो. १८.१६)।

द्रोणाचार्य कौरवसेना का सेनापति होने पर, उसे आगे कर के इन्होने फिर एक बार अर्जुन पर आक्रमण किया (म. द्रो. ६६.३८)। किंतु अर्जुन ने पुनः एक बार इनका संहार किया (म. क. ४.४७-४९)।

माठर—सूर्य की एक पार्श्ववर्ती देवता, जो हमेशा सूर्य के दक्षिण में रहता है। सूर्य की सेवा करने के लिए इसकी नियुक्ति इन्द्र के द्वारा की गयी थी (भवि. ब्राह्म. २३)।

महाभारत के अनुसार, दक्षिण भारत में 'माठरवन' नामक एक तीर्थस्थान था, जहाँ इसका विजयस्तंभ सुशोभित होता था (म. व. ८६.७)।

२. अष्टादश विनायकों में से एक (साम्ब. १६)।

३. एक आचार्य, जो 'सांख्यकारिकावृत्ति' नामक ग्रंथ का रचयिता माना जाता है। 'अष्टकाकर्म' में तंत्र करना चाहिए ऐसा इसका अभिमत था, जो कौषितकी ब्राह्मण में उद्धृत किया गया है (कौ. ब्रा. १३८. १६)।

४. कश्यप एवं भृगुकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

माठरीपुत्र—काश्यपि बालाक्य नामक आचार्य का नाम (बृ. उ. ६.४.३१ माध्यं; श. ब्रा. १४.९.४.३१-३२)। संभव है, किसी 'मठर' का स्त्रीवंशज होने के कारण, इसे यह नाम प्राप्त हुआ होगा।

माणिचर—एक यक्ष, जो कुबेर का अत्यंत प्रिय सचिव था। इसके नाम के लिए 'माणिचार' (वा. रा. उ. १५), एवं 'माणिभद्र' (म. आ. ५७.५०७* पंक्ति. १; स. १०.१६) पाठभेद प्राप्त हैं। संभव है, यह एवं मणिभद्र दोनों एक ही थे (मणिभद्र. २. देखिये)।

यह मंदार पर्वत के शिखर पर रहता था (म. व. १४०.४)। रावण एवं कुबेर के दरम्यान हुए युद्ध में, इसने रावणपक्षीय धूम्राक्ष नामक राक्षस को गदा-

प्रहार से मूर्च्छित किया था। यह देख कर रावण अत्यधिक क्रुद्ध हुआ, एवं उसने इसपर आक्रमण कर इसे पराजित कर दिया (वा. रा. उ. १५)।

मांटि—एक आचार्य, जो गौतम ऋषि का शिष्य था। इसके शिष्य का नाम आत्रेय था (बृ. उ. २.६.३; ४.६.३ काण्व.)।

२. एक शिवभक्त, जो कालभीति नामक सुविख्यात शिवपार्षद का पिता था (कालभीति देखिये)।

मांडकर्णि—दण्डकारण्य में रहनेवाला एक ऋषि, जिसकी कथा धर्मभृत् ऋषि ने श्रीराम को सुनाई थी (वा. रा. अर. ११.८–२०)। यह अत्यन्त धर्मनिष्ठ ऋषि था, जिसने जलाशय में खड़े रहकर, एवं केवल वायुभक्षण कर दस हजार वर्षों तक कठोर तपस्या की थी। इसकी इस तपस्या से अग्नि आदि सारे देव घबरा गये, एवं इसकी तपस्या में बाधा डालने के लिए, उन्होंनें पाँच अप्सराएँ इसके पास भेज़ दी।

उन अप्सराओं को देख कर यह मोहित हुआ, एवं इसने अपनी तपस्या का त्याग किया। पश्चात् इसने अपने तपःसामर्थ्य से पंचाप्सर नामक सरोवर में एक विलासगृह का निर्माण किया, जहाँ यह उन अप्सराओं के साथ क्रीडा करने लगा। इसकी इस क्रीडा के कारण, उस सरोवर से गायनवादन की आवाज दिनरात आती रहती थी। उसी आवाज को सुनकर, उसका रहस्य श्रीराम ने धर्मभृत ऋषि को पूछा था।

मांडवी—विदेह देश के कुशध्वज राजा की कन्या, जो अयोध्या के दशरथ राजा के पुत्र भरत की पत्नी थी (वा. रा. बा. ७३.३१–३२)।

२. एक स्त्री, जो सम्भवतः वात्सी मांडवीपुत्र नामक आचार्य की माता थी (बृ. उ. ६.४.३० माध्यं.)। सम्भवतः मण्डु का स्त्री वंशज होने से इसे यह नाम प्राप्त हुआ होगा।

मांडव्य—एक आचार्य, जो कौत्स ऋषि का शिष्य था (श. ब्रा. १०.६.५.९; सां. आ. ७.२; बृ. उ. ६.५.४ काण्व.)। इसके शिष्य का नाम मांडूकायनि था।

ऐतरेय आरण्यक के अनुसार, इसने ऋग्वेद संहिता का तात्विक अर्थ प्रतिपादन किया था (ऐ. आ. ३.१.१; ऋ. प्रा. प्रस्तावना)। इसने शुक्ल यजुर्वेद की शिक्षा की रचना की थी, जिसका निर्देश 'पाराशरी संहिता' में प्राप्त है (पा. सं. श्लो. ७७–७८)। ब्रह्मयज्ञांतर्गत पितृतर्पण में इसका निर्देश प्राप्त है (आश्व. गृ. ३.४.४; सां. गृ. ४.१०; ६.१)।

२. एक आचार्य, जो विदेह देश के जनक राजा का मित्र था (वेबर, इंडिशे स्टूडियेन. १.४८२)।

३. एक प्रसिद्ध ब्रह्मर्षि, जो धैर्यवान्, सब धर्मों का ज्ञाता, सत्यनिष्ठ और तपस्वी था।

इसके नाम के लिये 'अणिमांडव्य' एवं 'आणिमांडव्य' पाठभेद भी प्राप्त है।

चोरी का इल्ज़ाम—चोरी के कारण इसको सजा मिलने की विभिन्न कथाएँ अनेक ग्रन्थों में प्राप्त है। मार्कंडेय तथा गरुडपुराण में दिया गया है कि, राजा ने इस पर चोरी का इल्जाम लगाया; एवं चोरी के संशय पर ही इसे सूली पर चढ़ाया (गरुड़. १.१४२)। पद्म के अनुसार, सुलक्षण राजा एक बार मृगयाके हेतु अरण्य में गया, तथा अपना घोड़ा एक पेड़ में बाँध दिया। जब वह लौट आया, तब वहाँ घोड़ा न था। अतएव राजा ने वहाँ पर तपस्या करते हुए मांडव्य से अपने घोड़े के बारे में पूछा, किन्तु यह मौन रहा। तब राजाज्ञा से राजदूतों ने समाधिस्थ मांडव्य को बन्दी बनाकर इसे सूली पर चढ़ा दिया। आगे चल कर असली चोर पकड़ा गया, तब राजा ने इसे छोड़ दिया। किन्तु इसके शरीर में किंचित शूलाग्र रह गया, जिसके कारण इसे 'आणिमांडव्य' नाम प्राप्त हुआ (पद्म. उ. १४१)। इसी पुराण में अन्यत्र यह भी लिखा है कि, राजा की कुछ चीजे चोरी चली गयी थी, और उसीके शक में इसे सजा मिली थी (पद्म. उ. ५१)।

प्रमोदिनी से विवाह—स्कंद के अनुसार, देवपन्न राजा की कन्या कामप्रमोदिनी का हरण कर, शंबर ने उसके गहने मांडव्याश्रम के पास डाल दिये। प्रमोदिनी को पता लगानेवाले दूतों को इसके आश्रम के पास गहने मिले। इससे राजा को यह शक हुआ कि, इसने ही उसकी कन्या का हरण किया है। अतः उसने इसे सूली पर चढ़ाने की आज्ञा प्रदान की। किन्तु अन्त में जब उसे अपनी कन्या शंबरासुर से पुनः प्राप्त हुयी, तब राजा ने प्रमोदिनी का विवाह मांडव्य से कर दिया (स्कन्द. ५.३.१६९–१७२)।

स्कंद में अन्यत्र कहा गया है कि, यात्रा करते करते मांडव्य ऋषि 'विश्वामित्र तीर्थ' के पास आया। वहाँ इसने देखा कि, कुछ राजद्रव्य पड़ा हुआ है, जिसे छोड़कर चोर लोग भाग गये थे। राजद्रव्य के पास खड़े हुए

मांडव्य को देख कर, दूतों ने इसे चोर समझकर पकड़ा, तथा राजाज्ञा से सूली पर चढ़ा दिया (स्कंद. ६. १३७)।

यम से संवाद—महाभारत के अनुसार, निरपराध होने पर भी इसको सूली पर चढ़ाया गया था (म. आ. ५७.७७–७९)। इसने शूल के अग्रभाग पर तपस्या की थी। इसकी दयनीय दशा से संतप्त, एवं तपस्या से प्रभावित हो कर, पक्षीरूपधारी महर्षिगण इसके पास आये थे।

पश्चात् यह लिंगदेह धारण कर यमधर्म के पास गया था, एवं उससे प्रश्न किया, 'मैने शुद्धभाव से सदैव तपस्या की, किंतु मुझे भयंकर सजा क्यों दी गयी'? तब यमधर्म ने कहा, 'तुम बचपन में पतिंगो के पुच्छभाग में सींक घुसेड़ते रहे हो, इसी कारण तुम्हें सूली पर चढ़ाये जाने का दण्ड मिला है (मं. आ. १०१)। यह सुनते ही मांडव्य ने नियम बनाया कि, बारह तथा चौदह-वर्षीय बालकों द्वारा नादानी में किये गये अशुभ कर्मों का पाप उन्हे न भुगतना पड़ेगा।

इसके साथ ही इसने यम को शाप दिया कि, वह शूद्रकुल में जन्म लेगा। मांडव्य के शाप के ही कारण, यमधर्म को अगले जन्म में विदुर का जन्म लेना पड़ा (म. आ. १०१.२५–२७)।

यमधर्म की उपर्युक्त कथा में मांडव्य के द्वारा पीड़ित किटाणु का नाम पतिंगा कहा गया है (म. आ. १०१.२४)। किंतु अन्य स्थानों में उसके नाम बगुला (स्कंद. ६.१३६), टिड्डी (पद्म. उ. १४१) एवं भौंरा (पद्म. सृ. ५२) इत्यादि दिया गया है।

ब्राह्मण का शाप—जब यह सूली पर था, तब एक दिन आधी रात के समय कौशिक के कुल में उत्पन्न हुआ एक सर्वांगकुष्टी ब्राह्मण अपनी पत्नी के कंधे पर बैठा वेश्या के घर जा रहा था। अंधकार में जाते समय गलती से उसका पैर इसे लग गया, तब इसने क्रोध में आकर तत्काल शाप दिया, 'सूर्योदय होते ही तुम मर जाओगे' (स्कंद. ६.१३५)। ऐसा सुनकर ब्राह्मण की उस पतिव्रता पत्नी ने अपने पातिव्रत्य के बल पर सूर्योदय ही रोक दिया। बाद में अनुसूया द्वारा समझाये जाने पर उसने सूर्योदय होने दिया, तथा देवों की कृपा से मृत पति को जीवित अवस्था में प्राप्त किया, जिसका शरीर कामदेव के समान सुंदर था (गरुड. १.१४२; मार्कं. १६; स्कंद. ५.३.१६९–१७२; ६.१३५; पद्म. सृ. ५१; कौशिक १४. देखिये)।

संवाद—महाभारत के अनुसार, यह बड़ा ज्ञानी था, तथा इसने विदेहराज जनक से तृष्णा का त्याग करने के विषय में प्रश्न किया था (म. शां. २६८)। इसने शिव-महिमा के विषय में युधिष्ठिर को अपना अनुभव बताया था (म. अनु. १८.४६–५२)। जब श्रीकृष्ण हस्तिनापुर जा रहे थे, तब उनसे अनेक ऋषिगण मिलने आये थे, जिसमें यह भी एक था (म. उ. ८१.३८८)।

इसके सम्बन्ध में यह भी प्राप्त है कि, यह भृगु-कुलोत्पन्न गोत्रकार था, एवं ज्योतिषशास्त्र का पंडित था। इसके नाम पर 'मांडव्यसंहिता' नामक ग्रन्थ भी उपलब्ध है (C. C.)।

मांडूक—भृगुकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

मांडूकायनि—एक आचार्य, जो मांडव्य नामक ऋषि का शिष्य था। इसके शिष्य का नाम सांजीवीपुत्र था (श. ब्रा. १०.६.५.९; बृ. उ. ६.५.४ काण्व.)

मांडूकायनीपुत्र—एक आचार्य, जो मांडूकीपुत्र नामक ऋषि का पुत्र था। इसके शिष्य का नाम जायन्तीपुत्र था (बृ. उ. ६.५.२ काण्व.)। सम्भव है, मांडूक के किसी स्त्रीवंशज का पुत्र होने से इसे यह नाम प्राप्त हुआ होगा।

मांडूकि—एक ऋग्वेदी श्रुतर्षि।

मांडूकीपुत्र—एक आचार्य, जो शांडिलीपुत्र नामक आचार्य का शिष्य था। इसके शिष्य का नाम मांडूकायनी-पुत्र था (बृ. उ. ६.५.२ काण्व.)। सम्भव है, मंडूक के किसी स्त्रीवंशज का पुत्र होने से इसे यह नाम प्राप्त हुआ होगा।

मांडूकेय—एक आचार्यसमूह, जो ऋग्वेदपाठ के एक विशेष शाखा का प्रणयिता माना जाता है। ऐतरेय आरण्यक के 'मांडूकेयीय' नामक अध्याय की रचना इन्हीके द्वारा की गयी है (ऐ. आ. ३.२.६; सां. आ. ८.११)।

ऐतरेय आरण्यक में इस समूह के आचार्यों के अनेक मत प्राप्त हैं, जिनमें संहिता की व्याख्या दी गयी है। उस व्याख्या के अनुसार, पृथ्वी को पूर्वरूप संहिता, द्यौ को उत्तररूप संहिता, एवं वायु को द्यौ एवं पृथ्वी का संम्मीलन करनेवाली संहिता कहा गया है (ऐ. आ. ३.१. १; ऋ. प्रा. १.२)।

ऋग्वेद के आरण्यकों में निम्नलिखित आचार्यों का पैतृक नाम मांडूकेय दिया गया है:—शूरवीर, ह्रस्व, दीर्घ, मध्यमप्रातिबोधीपुत्र (ऐ. आ. ३.१.१; सां. आ. ७.१२; ७.२; ७.१३)।

२. एक आचार्य, जो मंडूक नामक महर्षि का पुत्र था। ब्रह्मयज्ञांगतर्पण में इसका निर्देश प्राप्त है (आश्व. गृ. ३.४.४)। ऋक्प्रातिशाख्य के अनुसार, स्वरों के बारे में इसने अनेक महत्त्वपूर्ण मत प्रतिपादन किये थे (ऋ. प्रा. २००)।

विष्णु, ब्रह्मांड एवं भागवत में, इसे व्यास की ऋक्शिष्य परंपरा में से इंद्रप्रमति ऋषि का शिष्य कहा गया है। इसके पुत्र का नाम सत्यश्रवस् था, जो इसका शिष्य भी था।

मातंग—एक मुनि, जिसके राजनीति विषयक अनेक मत महाभारत में दुर्योधन के द्वारा उद्धृत किये गये हैं। इसके ये मत निम्नप्रकार थे, 'वीर पुरुष को चाहिये कि, वह सदा उद्योग ही करे। किसीके सामने नतमस्तक न हो; क्यों कि, उद्योग करना ही पुरुष का कर्तव्य एवं पुरुषार्थ है। वीर पुरुष असमय में नष्ट भले ही हो जाये, परंतु कभी शत्रु के सामने सिर न झुकाये' (म.उ. १२५. १९-२०)।

२. एक राक्षस, जो कश्यप एवं खशा का एक पुत्र था।

मातंगिन्—कश्यपकुलोत्पन्न एक गोत्रकार ऋषिगण।

मातंगी—कश्यप एवं क्रोधवशा की नौ कन्याओं में से एक। इसने हाथियों को जन्म दिया था (म. आ. ६०.६४)।

मातरिश्वन्—ऋग्वेद में निर्दिष्ट एक देवता, जो प्रायः अग्नि तथा अग्नि को उत्पन्न करनेवाले देवता से समीकृत की गयी है।

इस देवता का निर्देश ऋग्वेद के तृतीय मंडल में पाँच बार, एवं षष्ठ मंडल में एक बार प्राप्त है। उनमें से तीन स्थलों पर इसे अग्नि का ही नामांतर बताया गया है (ऋ. ३. ५.९; २६.२)। ऋग्वेद में अन्यत्र तनूनपात्, नराशंस, यम एवं मातरिश्वन् को अग्नि के ही नामांतर बताये गये हैं (ऋ. १.१६४; ३.२९)।

अग्नि का दिव्यरूप—ऋग्वेद के प्रथम मंडल के अनुसार, मातरिश्वन् अग्नि के एक दिव्य रूप का मूर्तीकरण प्रतीत होता है। वहाँ इसे आकाश से पृथ्वीपर आनेवाला विवस्वत् का दूत बताया गया है, एवं इसके द्वारा गुप्त अग्नि को पृथ्वी पर लाने का संकेत भी किया गया है (ऋ. १.२८.२; ३.५.९; ६.८.४)। मातरिश्वन् को विद्युत् से समीकृत किया गया प्रतीत होता है। ऋग्वेद के विवाहसूक्त में दो प्रेमियों के हृदय को संयुक्त करने के लिए मातरिश्वन् का आवाहन किया गया है (ऋ. १०.८५.४७)।

अथर्ववेद, ब्राह्मण ग्रंथ एवं उनके उत्तरकालीन साहित्य में मातरिश्वन् नाम वायु की उपाधि के रूप में प्रयुक्त किया गया है। इसे वायु के समान वेगवान्, एवं सर्प की भाँति फूँफकार मारता हुआ बताया गया है (ऋ. १.६.६०; ३. २९.११; जै. उ. ब्रा. ४.२०.८)।

व्युत्पत्ति—भाषाशास्त्रीय दृष्टि से मातरिश्वन् शब्द का अर्थ, 'जिसका अपनी माता में निर्माण हुआ हो' किया जाता है। यहाँ माता शब्द से गर्जन करनेवाले मेघ का आशय हो सकता है, क्यों कि, मातरिश्वन् आकाश से आ सकते है। यास्क के अनुसार, मातरिश्वन् की व्युत्पत्ति, 'जो अंतरिक्ष में (मातरि) साँस लेता है (श्वन्)' ऐसी की गयी है। वहाँ इसे वायु में साँस लेनेवाला पवन माना गया है (नि. ७.२६)।

२. एक सुविख्यात यज्ञकर्ता, जिसका निर्देश ऋग्वेद के वालखिल्य सूक्त में मेध्य एवं पृषध्र नामक आचार्यों के साथ प्राप्त है (ऋ. ८.५२.२)। सांख्यायन श्रौतसूत्र में इसका निर्देश पृषध्र, मेध्य मातरिश्वन्, एवं मातरिश्व नाम से किया गया है (सां. श्रौ. १६.११.२६)। किन्तु वे दोनों पाठ योग्य नहीं प्रतीत होते हैं, क्यों कि, पृषध्र एवं मेध्य ये दोनो मातरिश्वन् से अलग व्यक्ति थे। ऋग्वेद में अन्यस्थान पर दध्यङ्‍ को मातरिश्वपुत्र कहा गया है (ऋ. १०.४८.२)।

३. गरुड की प्रमुख सन्तानों में से एक (म. उ. ९९. १४)।

मातलि—इंद्र का सारथि। इसकी पत्नी का नाम सुधर्मा था, जिससे इसे गोमुख नामक पुत्र, एवं गुणकेशी नामक कन्या उत्पन्न हुयी थी (म. उ. ९५.१९-२०)।

अपनी कन्या गुणकेशी के लिए सुयोग्य वर खोजने के लिए, यह नारद को साथ लेकर पाताल लोक गया था (म. उ. ९६.८)। वहाँ नागकुमार सुमुख के साथ इसने अपनी कन्या का विवाह तय किया, एवं नागराज आर्यक को अपने साथ ले कर, यह स्वर्गलोक में इंद्र के पास गया। वहाँ इंद्र के संमति से गुणकेशी एवं सुमुख का विवाह हुआ (गुणकेशी एवं सुमुख देखिये)।

रामरावण युद्ध के समय, इन्द्र का रथ ले कर यह श्रीराम की सेवा में उपस्थित हुआ था। इसीके रथ में बैठ कर श्रीराम ने रावण वध किया था (म. व. २७४. १३-२७)।

पाण्डवों के वनवास के समय, यह इंद्र की आज्ञा से अर्जुन को स्वर्ग में ले जाने के लिए उपस्थित हुआ था (म. व. ४३)।

मातृका—देवी के सुविख्यात अवतारों में से एक। महाभारत में इनका स्वरूपवर्णन प्राप्त है, जिनमें इन्हे दीर्घनखी, दीर्घदन्त, दीर्घतुण्ड, निर्मांसगात्री, कृष्णमेघनिभ, दीर्घकेश, लंबकर्ण, लंबपयोधर एवं पिंगाक्ष कहा गया है। ये जी चाहे रुप धारण करनेवाली (कामरूपधर), जी चाहे वहाँ भ्रमण करनेवाली (कामरूपचारी), एवं वायु के समान वेगवान् (वायुसमजव) थी। इनका निवासस्थान वृक्ष, चत्वर, गुफा, स्मशान, शैल एवं प्रस्रवण में रहता था (म. श. ४५.३०-४०)।

जन्मकथा—मत्स्य में मातृकाओं के जन्म की कथा विस्तृत रुप में दी गयी है। हिरण्याक्ष राक्षस का पुत्र अंधक शिव का परमभक्त था। शिव ने उसे वर प्रदान किया था, 'रणभूमि में तुम्हारे लहू के हर एक बूँद से नया अंधकासुर उत्पन्न होगा, जिस कारण तुम युद्ध में अजेय होंगे'। शिव के इस आशीर्वाद के कारण, सारी पृथ्वी अंधकासुरों से त्रस्त हुयी। फिर इन अंधकासुरों का लहू चुसने के लिए शिव ने ब्राह्मी, माहेश्वरी आदि सात मातृकाओं का निर्माण किया। इन्होने अंधकासुर का सारा लहू चूस लिया, एवं तत्पश्चात् शिव ने अंधकासुर का वध किया।

अंधकासुर का वध होने के पश्चात्, शिव के द्वारा उत्पन्न सात मातृका पृथ्वी पर के समस्त प्राणिजात का लहू चूसने लगी। फिर उनका नियंत्रण करने के लिए, शिव ने नृसिंह का निर्माण किया, जिसने अपने जिह्वादि अवयवों से घंटाकर्णी, त्रैलोक्यमोहिनी, आदि बैतीस मातृकाओं का निर्माण किया। अपना नियुक्त कार्य समाप्त करने पर, शिव ने उन पर लोकसंरक्षण का काम सौंपा, एवं इस तरह रुद्र के साथ मातृका पृथ्वी पर चिरकाल तक रहने लगी (मत्स्य. १७९)।

मातृकाओं की संख्या—महाभारत एवं पुराणों में मातृकाओं की कई नामावलियाँ प्राप्त है, जिनमें इनकी संख्या सात, अठारह, एवं बैतीस बतायी है। महाभारत के शल्यपर्व में कार्तिकेय (स्कंद) की अनुचरी मातृकाओं की नामावली प्राप्त है, जहाँ इनकी संख्या बैतीस बतायी गयी है, एवं उसमें प्रभावती, विशालाक्षी आदि नाम के निर्देश प्राप्त है।

पुराणों एवं महाभारत में प्राप्त मातृकाओं की नामावलियाँ इस प्रकार है:—

(१) **सप्तमातृका**—ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वाराही नारसिंही, वैष्णवी, ऐन्द्री (मार्क. ८८.११-२०; ३८)।

(२) **अष्टमातृका**—ब्राह्मी, माहेश्वरी, चंडी, वाराही, वैष्णवी, कौमारी, चामुण्डा एवं चर्चिका।

(३) **शिशुमातृका**—काकी, हलिमा, रुद्रा, बृहली, आर्या, पलाला एवं मित्रा (म. व. २१७.९)।

(४) **अष्टादश मातृका**—विनता, पूतना, कष्टा, पिशाची, अदिति (रेवती), मुखमण्डिका, दिति, सुरभि, शकुनि, सरमा, कद्रू, विलीनगर्भा, करंजनीलया, धात्री, लोहितायनि, आर्या (म. आर. २१९.२६-४१)। महाभारत के इस नामावली में बाकी दो नाम अप्राप्य है।

(५) **चौदह मातृका**—गौरी, पद्मा, शची, मेधा, सावित्री, विजया, जया, देवसेना, स्वधा, स्वाहा, धृति, पुष्टि, तुष्टि एवं 'कुलदेवता', जो हरेक व्यक्ति के लिए अलग-अलग होती है (गोभिल. स्मृ. १.११-१२)।

मातृकाओं की प्राचीनता—वैदिक ग्रंथों में एवं गृह्यसूत्रों में मातृकाओं का निर्देश अप्राप्य है। ऋग्वेद में सप्तमाताओं का निर्देश प्राप्त है, किन्तु वहाँ सात नदियों एवं सात स्वरों को माता कहा गया है (ऋ. ९.१०२.४)। ईसा की पहली शताब्दि से मातृकापूजन का स्पष्ट निर्देश प्राप्त होता है। वराहमिहिर के बृहत्संहिता में, एवं शूद्रक के मृच्छकटिक में मातृकापूजन का स्पष्ट निर्देश प्राप्त है (बृहत्सं. ५८.५६)। स्कंदगुप्त के बिहार स्तंभलेख में मातृकापूजन का निर्देश प्राप्त है (गुप्त शिलालेख. पृ. ४७; ४९)। चालुक्य एवं कदंब राजवंश मातृकाओं के उपासक थे (इन्डि, ॲन्टि. ६.७३; ६.२५)। मालवा के विश्वकर्मन् राजा के अमात्य मयूराक्ष ने ४२३ ई. में मातृकाओं का एक मंदिर बनवाया था (गुप्त शिलालेख. पृ. ७४)।

पश्चिमी एशिया के 'द्रो' नामक प्राचीन संस्कृति में, तथा मोहेंजोदडो एवं हड़प्पा में स्थित सिन्धु संस्कृति में मातृकाओं की पूजा की जाती थी। उस संस्कृति के जो सिक्के प्राप्त हुए हैं, वहाँ मातृका के सामने नर अथवा पशुबलि के दृश्य चित्रित किये गये है।

इससे प्रतीत होता है कि, मातृकाओं की उपासना वैदिकेतर संस्कृति में प्राचीनतम काल से अस्तित्व में थी। आगे चल कर, वैदिक संस्कृति के उपासकों ने इस देवता

को अपनाया, एवं उसे दुर्गा अथवा देवीपूजा में संमीलित कराया।

मातृकाओं की प्रतिमा--मातृका के प्रतिमाओं की पूजा सारे भारतभर की जाती है, जहाँ इनका रूप अर्धनग्न, एवं शिरोभूषण, कण्ठहार, तथा मेखलायुक्त दिखाई देता है। जनश्रुति के अनुसार, मातृकाओं की सर्वाधिक पीड़ा दो वर्षों तक के बालकों को होती है। इसी कारण, बालक का जन्म होते ही पहले दस दिन मे मातृकाओं की पूजा की जाती है।

२. अर्यमा नामक आदित्य की पत्नी (भा. ६.६. ४२)।

मातेय—वसिष्ठकुलोत्पन्न एक गोत्रकार ऋषिगण।

मात्स्य—एक ऋषि, जो यज्ञ में अत्यधिक प्रवीण था (अ. वे. १९.३९.९)। तैत्तिरीय ब्राह्मण में इसका निर्देश मत्स्य नाम से किया गया है (तै. ब्रा. १.५.२.१)। वहाँ इसे यज्ञेषु एवं शतद्युम्न राजा का पुरोहित कहा गया है। कौनसा भी यज्ञसमारोह शुरू करना हो, तो वह सुअवसर या शुभमूहूर्त देख कर करना चाहिए, ऐसी प्रथा इसने शुरू की।

२. सरस्वती नदी के तट पर यज्ञ करनेवाला एक ब्राह्मणसमूह, जिसका अध्वर्यु ध्वसन् द्वैतवन था (श. ब्रा. १३.५.४.९; ध्वसन् द्वैतवन देखिये)।

माथव—विदेघ नामक राजा का पैतृकनाम (विदेघ देखिये)।

माथैल्य—(सो. ऋक्ष.) एक राजा, जो वायु के अनुसार उपरिचर वसु राजा का पुत्र था। महाभारत में इसके नाम के लिए 'मत्सिल्ल' पाठभेद प्राप्त है (मत्सिल्ल देखिये)।

मादी—अंगिराकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

माद्रवती—अभिमन्युपुत्र परिक्षित् राजा की कन्या, जो जनमेजय द्वितीय की माता थी। इसके नाम के लिए 'मद्रवती', 'भद्रा' एवं 'भद्रावती' पाठभेद प्राप्त है (म. आ. ९०.९२)।

२. पाण्डु राजा की द्वितीय पत्नी माद्री का नामांतर (म. आश्व. ५२.५४; माद्री देखिये)।

माद्री—मद्रदेश के राजा ऋतायन की पुत्री, जो पाण्डु की द्वितीय पत्नी, तथा नकुल-सहदेव की माता थी। मद्रराज शल्य इसका भाई था। यह 'धृति' नामक देवी के अंश से उत्पन्न हुई थी (म. आ. ६१.९८)।

प्राचीन काल में रावी तथा व्यास नदी के बीच के दोआब का भाग 'मद्र' कहलाता था, जो आजकल पंजाब प्रान्त में स्थित है। उन दिनों शाकल मद्रदेश की राजधानी थी, तथा इस देश की राजकन्याओं को सामान्यतः 'माद्री' कहते थे (म. स. २९.१३)।

विवाह—यह परम रूपवती थी, कारण एक तो यह देवी से उत्पन्न हुयी थी, दूसरे पंजाब प्रान्त के लोग सुन्दर होते ही है। अतएव इसकी सुन्दरता की प्रशंसा सुन कर, भीष्म ने शल्य के यहाँ जा कर इसे पाण्डु के लिए माँगा था। शल्य के यहाँ यह नियम था कि, वरपक्ष से अत्यधिक धनसम्पति लेकर लड़की दी जाति थी, अतएव भीष्म को उनकी प्रथा के अनुसार, कन्या के शुल्क के रूप में बहुतसा धन देना पड़ा था। तब उस देश की रीतिरिवाज के अनुसार, शल्य ने भी आभूषणों आदि से अलंकृत कर के माद्री को भीष्म के हाथों सौंप दिया। बाद में भीष्म ने हस्तिनापुर में आ कर शुभ दिन तथा शुभ मुहुर्त में पाण्डु से इसका विवाह किया (म. आ. १०५.५-६)।

पुत्रप्राप्ति—किंदम मुनि के द्वारा पाण्डु को शाप दिया जाने पर, पाण्डु के साथ माद्री भी वन मे रहने के लिए गयी थी (म. आ. ११०)। वहाँ ऋषियों के कथनानुसार, पाण्डु ने कुन्ती को पुत्र उत्पन्न करने की आज्ञा दी। उसने दुर्वासस् के 'आकर्षण मंत्र' के प्रभाव से तीन पुत्र उत्पन्न किये। बाद में कुंती ने अधिक पुत्र उत्पन्न करने के लिए मनाही कर दी। तब माद्री की प्रार्थनानुसार, पाण्डु ने वह मंत्र कुंती से इसे दिलाया। उस मंत्र के स्मरण से, इसे अश्विनीकुमार जैसे सुन्दर नकुल तथा सहदेव नामक पुत्र हुए (भा. ९.२२.२८; म. आ. ११५.२१)।

पाण्डु की मृत्यु--एक दिन यह मृगया खेलनेवाले पाण्डु के साथ वन में अकेली ही थी। उस समय वसंत ऋतु था, तथा मौसम भी बड़ा सुहावना एवं चित्ताकर्षक था। इसके द्वारा पहने हुए बारीक वस्त्र इसकी सुंदरता में और चार चाँद लगा रहे थे। ऐसे सुंदर मौसम में, इसे इस तरह सुंदर देख कर पाण्डु के मन में कामेच्छा उत्पन्न हुयी, तथा इसके हज़ार बार मना करने पर भी, पाण्डु ने इसे बाहुपाश में भर लिया। पाण्डु का ऐसा करना ही था कि, शाप के अनुसार, उसकी मृत्यु हो गयी। अपने पति पाण्डु के निधन पर, इसने न जाने कितना पश्चात्ताप किया, एवं खूब रोयी (म. आ. ११६.२५-३०)।

पाण्डु के साथ सती होने के लिए, इसने कुन्ती से बार बार प्रार्थना की। किन्तु शतशृङ्गनिवासी ऋषियों ने इसे आश्वासन देते हुए सती न होने के लिए बारबार अनुरोध किया। अन्त में कुन्ती की आज्ञा लेकर, इसने पाण्डु की मृतदेह के साथ चितारोहण किया (म. आ. ११६)।

सती होने के पूर्व इसने जो पाण्डवों को शिक्षा दी थी, वह भ्रातृत्व एवं एकता के लिए एक आदर्श शिक्षा है।

इसकी मृत्यु के उपरान्त, धृतराष्ट्र की आज्ञा से, विदुर आदि द्वारा पाण्डु तथा माद्री की अन्त्येष्टिकर्म राजोचित ढंग से किया गया, एवं भाई-बन्धुओं द्वारा इन दोनों को जलांजलि दी गयी।

मृत्योपरांत माद्री ने अपने पति के साथ महेन्द्रभवन में निवास किया (म. स्व. ४.१६; ५.१२)।

२. मद्र कन्या एवं श्रीकृष्णपत्नी लक्ष्मणा का नामान्तर (लक्ष्मणा २. देखिये)।

३. सोमवंश के क्रोष्टु राजा की पत्नी, जिसे निम्नलिखित चार पुत्र थे:—युधाजित्, देवमीढुष, वृष्णि एवं अंधक (ब्रह्म. १४.१.३)

४. यादवराजा सात्वतपुत्र वृष्णि की पत्नी।

माधव—उत्तम मन्वन्तर के मनु का पुत्र।

२. भौत्य मनु का एक पुत्र।

३. भृगुकुल का एक गोत्रकार, जिसके लिए 'मथित' पाठभेद प्राप्त है।

४. एक राजा, जो तालध्वज नगर के विक्रम राजा का पुत्र था। इसकी चमत्कृतिपूर्ण जीवनकथा पद्म में प्राप्त है।

यह चन्द्रकला नामक क्षत्रिय स्त्री को अत्यधिक चाहता था, किंतु वह इससे विवाह न करना चाहती थी। अतएव उसने माधव से कहा, 'सुलोचना नामक एक सुंदर राजकन्या की जानकारी मै तुम्हे बताती हूँ, जो मुझसे कही अधिक सुंदर, तथा तुम्हारी जीवनसंगिनी बनने योग्य है।

प्लक्षद्वीप में—चंद्रकला के कथनानुसार, माधव अपने दिव्य अश्व की सहायता से समुद्र को लाँघ कर प्लक्षद्वीप गया, जहाँ सुलोचना रहती था। वहाँ जाकर इसे पता चला कि, उसकी शादी एक 'विद्याधर' से होने वाली है। अतएव इसने तुरन्त ही सुलोचना को एक प्रेमपत्र भेजा, एवं अपनी जानकारी बताते हुए उससे शादी की इच्छा व्यक्त की। सुलोचना ने पत्रोत्तर देकर इसे आश्वासन दिया कि, विवाह मण्डप में विद्याधर का वरण न कर के, वह इसका ही वरण करेगी।

दूसरे दिन पाणिग्रहण के समय विवाहमण्डप में इसे नींद आ गयी। यह देखकर इसके प्रचेष्ट नामक सेवक ने सुलोचना का हरण किया, तथा यह सोता ही रहा। सुलोचना ने माधव से शादी करने का प्रण किया था। अतएव वह प्रचेष्ट के यहाँ से भाग कर, सुषेण नामक राजा के यहाँ वीरवर नामक पुरुष का वेष धारण कर के नौकरी करने लगी। एक दिन वहाँ उसने एक गेंडा मारा, जो पूर्वजन्म में धर्मबुद्धि नामक राजा था (धर्मबुद्धि देखिये)।

सुलोचना से विवाह—सुलोचना के वियोग में पीड़ित होकर, एक दिन विद्याधर एवं प्रचेष्ट गंगा में प्राण देने के लिए जा रहे थे। किंतु वे दोनो सुलोचना के द्वारा बचा लिये गये। बाद में सुलोचना को ढूँढते ढूँढते एकाएक वहाँ माधव भी आ पहुँचा, जो सुलोचना से निराश होकर गंगा के तट पर आत्महत्या के लिए आया था। सुलोचना को देखकर, इसने अपनी सारी कथा उसे कह सुनायी, एवं उसके साथ विवाह किया। आगे चल कर यही माधव प्रख्यात विष्णु-भक्त बना (पद्म. क्रि. ५.६)।

५. (सो. यदु.) एक यादव राजा, जो यदु राजा का पुत्र था। धूम्रवर्ण नामक नाग की कन्या इसकी माता थी।

इसके पुत्र का नाम सत्वत, एवं पौत्र का नाम भीम था। उनमें से भीम राजा राम दाशरथि राजा का समकालीन था।

सुविख्यात यादव वंश की स्थापना यदु एवं उसका पुत्र माधव राजा ने की थी। यादव-वंश का वंशक्रम निम्न-प्रकार है:—

माधव–सत्वत–भीम–कुश–लव–भीम–अंधक–रैवत–ऋक्ष–रैवत–विश्वगर्भ–वसु–बभ्रु–सुषेण–सभाक्ष–(ह. वं. २.३८)।

इनमें से सात्वतराज भीम राजा के राज्यकाल में मधुवन में स्थित लवणाक्ष का वध शत्रुघ्न ने किया, एवं मधुवन में मथुरा नगरी की स्थापना भीमराजा के द्वारा की गयी।

६. एक धार्मिक ब्राह्मण। एक दिन होम में बलि देने के लिए यह एक बकरा लाया। यह उसका वध करने जा रहा था कि, उस बकरे ने मानव-वाणी में अपने पूर्वजन्म की कथा बतायी, एवं इससे प्रार्थना की कि, यदि यह उसे गीता के नौवें अध्याय को सुना कर उसका वध करे, तो वह भी अपने दुःख से मुक्त हो जाये। माधव ने बकरे की प्रार्थना को मान कर उसे गीता के नौवें

अध्याय को सुनाया, जिससे उसका उद्धार हुआ (पद्म. उ. १८३)।

माधवी—नहुषकुलोत्पन्न राजा ययाति की कन्या (म. उ. ११३.४५५*)। यह अल्पायु थी। एक ब्रह्मनिष्ठ ने इसे वरदान दिया था कि, यह चाहे जितनी बार पुत्र उत्पन्न करे, लेकिन इसका यौवन सदैव एक सा रहेगा, एवं पुत्र उत्पन्न कर के भी यह चिरकुमारी रहेगी।

गालव ऋषि को दान—एक बार गुरुदक्षिणा में सहायता प्राप्त करने के लिए गालव ऋषि ययाति के पास आया। उस समय गालव ऋषि का सारा पैसा पुण्यकार्य में खर्च हो गया था, किंतु उसे अपने गुरु विश्वामित्र को दक्षिणा कहीं न कहीं से देनी ही थी। ययाति के पास धन की कमी न थी, किंतु गालव ऋषि को देने के लिए उसके पास वैसे आठ सौ अश्व न थे, जैसे कि गालव ऋषि ने विश्वामित्र के लिये ययाति से माँगे थे। अतएव उसने अपनी पुत्री गालव को दे कर कहा, 'तुम मेरी पुत्री को ले सकते हो, दूसरे राजा को इसे दे कर तुम उससे धन ही नहीं, बल्कि राज्य भी प्राप्त कर सकते हो (म. उ. ११४)।

हर्यश्व से विवाह—यह कन्या अत्यन्त सुंदर तथा सुलक्षणी थी, अतएव इसे ले कर गालव ऋषि इक्ष्वाकुकुलोत्पन्न राजा हर्यश्व के पास गया। हर्यश्व ने पुत्र प्राप्ति के लिए अनेकानेक प्रयत्न किये थे, फिर भी वह निःसंतान था। वह माधवी को देखते ही उस पर मोहित हो गया, किंतु गालव ऋषि की माँग के अनुसार, उसके पास आठ सौ अश्व न थे, जो एक कान से कृष्ण तथा चन्द्रप्रभायुक्त हों। इसलिए उसने गालव ऋषि के सामने शर्त रक्खी, 'इस समय मुझसे केवल दो सौ अश्व ले ले, जो मेरे पास है, तथा मुझे माधवी दे दो। जब मुझे माधवी से पुत्र प्राप्त हो जायेगा, तो मैं उसे तुम्हे वापस कर दूँगा'। ऐसा कह कर, गालव ऋषि की आज्ञा से राजा हर्यश्व ने माधवी को अपने पास रख लिया।

गालव ऋषि का कार्य पूर्ण करने के उद्देश्य से माधवी ने हर्यश्व से सारी वस्तुस्थिति बताकर कहा, 'मुझे अभी चार राजाओं को और दिया जायेगा'। कालान्तर में इसने अपने गर्भ से वसुमत् (वसुमनस्) नामक पुत्र को जन्म दिया, जो आगे चलकर अयोध्या का राजा हुआ (म. उ. ११४.१७)।

काल अवधि समाप्त होते ही, गालव ऋषि इसे राजा हर्यश्व से ले गया, एवं यह भी राजवैभव के मोह से ऊब कर सहर्ष उसके साथ चलने को तैयार हो गयी। प्राप्त हुए वर के अनुसार, यह पुनः कुमारी बन गयी।

दिवोदास से विवाह—बाद में गालव माधवी को लेकर काशिराज दिवोदास राजा के पास गया। दिवोदास ने गालव को उसी प्रकार के दो सौ अश्व दिये, तथा हर्यश्व राजा के समान करार कर के, पुत्रोत्पन्न करने के लिए माधवी को अपने पास रख दिया। कालान्तर में माधवी से दिवोदास को 'प्रतर्दन' नामक पुत्र हुआ (म. उ. ११५.१५)। करार की अवधि समाप्त होते ही, गालव ऋषि दिवोदास के पास आया, तथा माधवी को वापस ले गया।

उशीनर से विवाह—अन्त में गुरुदक्षिणा की पूर्ति के लिए, गालव इसे भोज नगरी के उशीनर राजा के पास ले गया। उपरलिखित प्रकार से करार कर के, गालव ने उशीनर से भी दो सौ अश्व प्राप्त किये, एवं पुत्र होने की अवधि तक के लिए माधवी को राजा के पास छोड़ दिया। कालान्तर में उशीनर राजा को माधवी से 'शिबि' नामक पुत्र हुआ (म. उ. ११६.२०)।

करार की अवधि समाप्त होने के बाद, जब गालव माधवी को उशीनर से ले कर जा रहा था, तब मार्ग में उसे गरुड़ मिला। उसने इसे बताया, 'इसके बाद आपको और ऐसे अश्व मिलना असम्भव है। इसलिए जो छः सौ अश्व मिले है, उन्हें लेकर आप अपने गुरु विश्वामित्र को दे दें, तथा शेष दो सौ अश्वों के स्थान पर, माधवी को ही उसे प्रदान करें'।

विश्वामित्र से विवाह—गालव को यह चीज़ पसन्द आयी, और उन्होंने ऐसा ही किया। विश्वामित्र ने भी गालव की यह प्रार्थना मान ली। कालान्तर में विश्वामित्र को माधवी से अष्टक नामक पुत्र हुआ (म. उ. ११७.१८)। अष्टक के जन्मोपरान्त, माधवी को गालव के हाथ सौंप कर विश्वामित्र तप के लिए चले गया।

विश्वामित्र को गुरुदक्षिणा देने में गालव सफल रहा, अतएव वह बड़ा प्रसन्न था। जिस कन्या के कारण, उसका यह संकट दूर हुआ, उस माधवी को ययाति राजा के यहाँ पहुँचाकर, गालव भी तपश्चर्या के लिए वन में चला गया।

स्वयंवर—राजा ययाति ने माधवी का स्वयंवर निश्चित करके, इसे रथ पर बैठा कर सारे देश में घुमाया। किन्तु

इसने किसी राजपुत्र को पसन्द न करके, वन में रहकर तपस्या करना ही स्वीकार किया।

पुत्र —इस तरह माधवी को कुल चार पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके नाम निम्नप्रकार थेः- १. **वसुमनस्** (वसुमत), जो इसे हर्यश्व राजा से उत्पन्न हुआ था (म. उ. ११४. १७); २. **प्रतर्दन**, जो इसे दिवोदास राजा से उत्पन्न हुआ था (म. उ. ११५. १५); ३. **शिबि**, जो इसे उशीनर राजा से उत्पन्न हुआ था (म. उ. ११६.२०); ४. **अष्टक**, जो इसे विश्वामित्र ऋषि से उत्पन्न हुआ था। (म. उ. ११७. १८)।

ययाति का उद्धार—आगे चल कर, इसका पिता ययाति अपने इहलोक के पुण्यकर्मों के कारण स्वर्ग को प्राप्त हुआ। किन्तु वहाँ ययाति ने देव, ऋषि एवं ब्राह्मणों का अवमान किया, जिस पाप के कारण, देवों ने उसे स्वर्ग से भ्रष्ट कराया। फिर उसने देवों की प्रार्थना की, 'मेरे पापनाशनार्थ मुझे सुजनसंगति का लाभ मिले, जिस कारण मैं स्वर्ग को पुनः प्राप्त कर सकूं'।

देवों ने ययाति की इस प्रार्थना सुन ली, एवं उसके पौत्र एवं माधवी के पुत्र वसुमनस्, प्रतर्दन, शिबि एवं अष्टक जहाँ यज्ञ कर रहे थे, उसी नैमिषारण्य में उन्हों ने ययाति को ढकेल दिया। माधवी के चारो पुत्रों ने स्वर्ग से भ्रष्ट हुए अपने मातामह का अत्यंत आदरभाव से स्वागत किया, एवं अपने यज्ञों का एवं धर्माचरण का सारा पुण्य स्वीकारने की प्रार्थना उसे की।

ययाति को पुण्यदान—इतने में मांधवी वहाँ प्रविष्ट हुयी, एवं पुत्र एवं पौत्रों के पुण्य का स्वीकार करने का सर्वप्रथम अधिकार पिता एवं पितामह को ही है, ऐसी धर्माज्ञा इसने ययाति के बतायी। फिर अपने चारों पुत्रों के यज्ञकर्म का पुण्य स्वीकारने की, एवं उसके बल से स्वर्ग में पुनः प्रविष्ट होने की इसने उसे प्रार्थना की।

इस प्रकार माधवी ने गालव ऋषि को संकटमुक्त कराया, एवं अपने पुत्रों के पुण्य का दान स्वर्ग से च्युत अपने पिता को कर उसे स्वर्गप्राप्ति कराया (म. आ. ८७; म. उ. १०४-११८)।

अपनी कन्या के द्वारा ययाति का उद्धार होने की कथा मत्स्य में भी प्राप्त है। वहाँ वसुमनस्, प्रतर्दन, शिबि एवं अष्टक इन चारों का मातामह ययाति था, ऐसा निर्देश भी प्राप्त है। किन्तु मत्स्य में ययाति राजा के कथा में माधवी का निर्देश प्राप्त नहीं है (मत्स्य. ३५-४२)।

कालविपर्यास—उत्तम कन्या अपने कुल का, एवं पितरों का उद्धार करनेवाली होती है, इस तत्व का प्रतिपादन करने के लिए माधवी की कथा महाभारत में दी गयी है। इस कथा का प्रमुख उद्देश्य तत्त्वप्रतिपादन होने के कारण, उस में ऐतिहासिक दृष्टि से कालविपर्यास के अनेक दोष आये हैं। उस कथा में हर्यश्व, दिवोदास, उशीनर एवं विश्वामित्र समकालिन बताये गये है, जो ऐतिहासिक दृष्टि से वास्तव नही है।

२. रथध्वज राजा के पुत्र धर्मध्वज की पत्नी, जिसकी कन्या का नाम तुलसी था।

३. पूरुपुत्र जनमेजय 'प्रथम' की पत्नी।

४. स्कंद की अनुचरी एक मातृका (म. श. ४५.७)।

माधुकि—एक आचार्य का पैतृक नाम, जिसे मान्यता नही प्रदान की गयी थी (श. ब्रा. २.१.४.२७)।

माधुच्छंदस—विश्वामित्रकुलोत्पन्न एक गोत्रकार। अघमर्षण एवं जेतृ नामक आचार्यों का पैतृक नाम 'माधुच्छंदस' बताया गया है।

माध्यंदिन--वसिष्ठकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

२. एक शाखाप्रवर्तक आचार्य, जो वायु के अनुसार व्यास की यजुःशिष्य परंपरा में से याज्ञवल्क्य के पंद्रह शिष्यों में से एक था। शुक्लयजुर्वेदसंहिता एवं शतपथ ब्राह्मण के काण्व एवं माध्यंदिन शाखाओं के स्वतंत्र ग्रंथ उपलब्ध है। उनमें से माध्यंदिन शाखा का, एवं उस शाखा के ग्रंथों का यह प्रवर्तक आचार्य था।

शुक्लयजुर्वेद की एक शिक्षा की रचना भी इसने की थी, जिसमें कुल चालीस श्लोक हैं। शुक्लयजुर्वेद की 'लघुमाध्यंदिन' नामक एक अन्य शिक्षा भी इसने लिखी थी, जिसमें कुल अठ्ठाईस श्लोक हैं।

माध्यंदिनायन—एक आचार्य, जो सौकरायण नामक ऋषि का शिष्य था। माध्यंदिन का वंशज होने के कारण, इसे यह नाम प्राप्त हुआ था। इसके शिष्य का नाम जाबालायन था (बृ. उ. ४.६.२ काण्व.)।

माध्यम—वैदिक ऋषिसमुदाय का एक सांकेतिक नाम, जो ऋग्वेद के दूसरे मण्डल से ले कर सातवे मण्डल तक के रचयिता ऋषियों के लिए प्रयुक्त किया जाता है (कौ. ब्रा. १२.३; ऐ. आ. २.२.२)। 'ऋग्वेद के मध्य से संबधित' अर्थ से इन्हे 'माध्यम' नाम प्राप्त हुआ होगा। आश्वलायन गृह्यसूत्र के ब्रह्मयज्ञांगतर्पण में इनका निर्देश प्राप्त है (आश्व. गृ. ३.४.२)।

मान—अगस्त्य ऋषि का नामान्तर (ऋ. ७.३३.१३)। इसके वंशजों का निर्देश ऋग्वेद में 'मानाः' नाम से किया है, जो ऋग्वेद के सुविख्यात सूक्तद्रष्टे माने जाते हैं (ऋ. १.१६९.८)। ऋग्वेद में मान्य नामक एक ऋषि का भी निर्देश प्राप्त है, जो संभवतः इसका ही पुत्र होगा। 'मान' 'मान्य', एवं 'मानाः, इन सारे ऋषियों का पैतृक नाम ऋग्वेद में 'मैत्रावरुणि' बताया गया है।

मानदन्तव्य—एक आचार्य (खा. गृ. २.१.५; गो. गृ. १.६.१)। संभवतः यह एवं 'मानुतन्तव्य' दोनो एक ही रहे होंगे।

मानव—नाभानेदिष्ठ एवं शार्यात नामक आचार्यों का पैतृक नाम (ऐ. ब्रा. ५.१४.२; ४.३१.७; श. ब्रा. ४.१.५.२)। मनु का वंशज इस अर्थ से यह नाम प्रयुक्त हुआ होगा। ऋग्वेद में चक्षुस् एवं नाहुष नामक सूक्तद्रष्टाओं का पैतृक नाम 'मानव' बताया गया हैं (ऋ. ९.१०६.४–६; ९.१०१.७–९)।

२. एक पुराणवेत्ता एवं धर्मशास्त्रकार, जिसके नाम पर निम्नलिखित ग्रंथ प्राप्त है:—मानव उपपुराण (दे. भा. ३.३); मानव श्रौतसूत्र (मैत्रायणी शाखा); मानव वास्तुलक्षण।

३. अंगिराकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

४. उत्तम मन्वंतर का एक देवविशेष।

मानवी—परशु एवं इडा नामक वैदिक वाङ्मय में निर्दिष्ट स्त्रियों का पैतृक नाम (श. ब्रा. १.८.१.२६; तै. सं. २.६.७.३; ऋ. १०.८६.२३)। मनु का स्त्रीवंशज इस अर्थ से यह नाम प्रयुक्त हुआ होगा।

मानस—ज्योतिर्भास नामक लोक में रहनेवाले पितरों का सामुहिक नाम।

२. एक यक्ष, जो मणिवर एवं देवजनी के पुत्रों में से एक था।

३. वशवर्तिन् देवों में से एक।

४. वासुकीकुलोत्पन्न एक नाग, जो जनमेजय के सर्पसत्र में दग्ध हुआ था (म. आ. ५२.५)।

५. धृतराष्ट्रकुलोत्पन्न एक नाग, जो जनमेजय के सर्पसत्र में दग्ध हुआ था (म. आ. ५२.१५)। इसके नाम के लिए 'मानव' पाठभेद प्राप्त है।

मानारि—अंगिराकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

मानिनी—विदूरथ राजा की कन्या, जो सूर्यवंशीय राजा की पत्नी थी (राज्यवर्धन् देखिये)।

मानुतंतव्य—ऐकादशाक्ष नामक राजा का पैतृक नाम (ऐ. ब्रा. ५.३०)। मनुतंतु का वंशज होने से इसे यह नाम प्राप्त हुआ होगा। शतपथ ब्राह्मण में सौमाप नामक दो आचार्यों का पैतृक नाम 'मानुतंतव्य' बताया गया है (श. ब्रा. १३.५.३.२)।

मान्दार्य मान्य—एक ऋषि का नाम, जो संभवतः अगस्त्य ऋषि का ही नामांतर है। मान का वंशज होने से इसे यह नाम प्राप्त हुआ होगा। ऋग्वेद के अगस्त्य ऋषि के द्वारा रचित सारे सूक्तों के अंत में सूक्तकार के लिए यह उपाधि प्रयुक्त की गयी है (ऋ. १.१६५.१५; १६६.१५; १६७.११; १६८.१०)।

मान्धातृ यौवनाश्व—(सू. इ.) ऋग्वेद में निर्दिष्ट अयोध्या का एक सुविख्यात राजा, जो अश्विनों का आश्रित था (ऋ. १. ११२. १३) ऋग्वेद में इसका निर्देश अनेक बार प्राप्त है, किंतु वहाँ प्रायः सर्वत्र इसे 'मंधातृ' कहा गया है। 'मान्धातृ' का शब्दशः अर्थ 'पवित्र व्यक्ति' है, जिस आशय में इसका निर्देश ऋग्वेद में प्राप्त है (ऋ. १.११२.१३; ८.३९.८; १०.२.२)। अन्य एक स्थान पर इसे अंगिरस् की भाँति पवित्र कहा गया है (ऋ. ८. ४०.१२)। लुडविग के अनुसार, यह एक राजर्षि था, एवं यह एवं नामाक दोनों एक ही व्यक्ति थे (ऋ. ८. ३९–४२; लुडविग-ऋग्वेद अनुवाद ३. १०७)।

यह इक्ष्वाकुवंशीय युवनाश्व (द्वितीय) अथवा सौद्युम्नि राजा का पुत्र था, एवं इसकी माता का का नाम गौरी था, जो पौरव राजा मतिनार राजा की कन्या थी। इसी कारण इसे 'यौवनाश्व' पैतृकनाम, एवं 'गौरिक' मातृक नाम प्राप्त हुआ था (वायु. ८८. ६६–६७)। पुराणों में इसे विष्णु का पाँचवाँ अवतार, 'चक्रवर्तिन्' 'सम्राट' 'दानशूर धर्मात्मा' एवं सौ अश्वमेध एवं राजसूय करनेवाला बताया गया है। यह मनु वैवस्वत के वंश में बीसवी पिढ़ी में उत्पन्न हुआ था, जिस कारण इसका राज्यकाल २७४० ई. पू. माना जाता है (मनु वैवस्वत देखिये)। यह यादव राजा शशबिन्दु का समकालीन था, जिससे इसका आजन्म शत्रुत्व रहा था। इसने इन्द्र का आधा सिंहासन जीत लिया था।

इसने अपने राज्य के सीमावर्ती पौरव एवं कान्यकुब्ज राज्यों को जीता था, एवं उत्तरीपश्चिम में स्थित द्रुह्यु एवं आनव राजाओं को परास्त किया था। यादव राजा इसके रिश्तेदार थे, जिस कारण इसने उनपर आक्रमण नही

किया था। किन्तु पश्चिमी भारत में स्थित हैहय राजाओं को इसने जीता था।

जन्म—इसके पिता युवनाश्व राजा को सौ पत्नियाँ थी, परन्तु उनमें से किसी को भी कोई संतान न थी। अतएव वह हमेशा दुःखी रहता था। एक बार वह जंगल में घूमते घूमते एक आश्रम में आ पहुँचा। वहाँ के ऋषियों ने उसके द्वारा पुत्रप्राप्ति के लिए एक यज्ञ करवाया। यज्ञ समाप्त होने के बाद, जब सारे लोग भोजन कर रात्रि को सो रहे थे, तब युवनाश्व राजा की नींद टूटी, तथा वह अत्यधिक प्यासा हुआ। प्यास बुझाने के लिए यज्ञमंडप में रक्खे हुए हविर्भागयुक्त पेय पदार्थ (पृषदाज्य) उसने भूल से प्राशन किया, जो ऋषियों ने उसकी राजपत्नियों को गर्भवती होने के लिए रक्खा था। कालान्तर में उसके द्वारा पिया गया 'पृषदाज्य जल' इसके उदर में गर्भ का रूप धारण कर बढ़ने लगा, तब ऋषियों ने युवनाश्व राजा की कुक्षि का भेद कर उसके उदर से बालक को बाहर निकाला। यही मांधातृ है।

संगोपन एवं नामकरण—अब यह समस्या थी कि, इसका पालनपोषण कौन करे। उसी समय भगवान् इन्द्र प्रत्यक्ष प्रकट हुए, तथा उन्होंने कहा, 'यह मुझे पान करेगा (मां धाता), अर्थात इसका पोषण मैं करूँगा'। ऐसा कह कर इंद्र ने अपनी अमृतपूर्ण करांगुली इसे पीने के लिए दे दी। इसीलिए इस बालक का नाम 'मांधातृ' (मुझे चूसनेवाला) रक्खा गया (म. व. १२६; द्रो. परि. १. क्र. ८ पंक्ति. ५२८-५४१; शां. २९.७४-८६; दे. भा. ७.९-१०)।

पराक्रम—इन्द्रहस्त के पान करने के कारण, यह अत्यन्त बलवान् हुआ, एवं शीघ्रता के साथ बढ़ने लगा। बारह दिन की ही आयु में यह बारह वर्ष के लड़के के समान दिखाई देने लगा। शीघ्र ही यह सब विद्याओं का परमपंडित हो कर तप करने में तत्पर हुआ। अपने तप के सामर्थ्य पर ही इसने 'अजगव' नामक धनुष, तथा अन्य दिव्यास्त्रों को प्राप्त किया। यह बड़ा वीर एवं पराक्रमी राजा था, जिसने अंगार, मरुत्त, गय तथा बृहद्रथ आदि को युद्ध में परास्त किया था। द्रुह्यु राजवंश के बभ्रु राजा के पुत्र रिपु के साथ इसका चौदह माह तक घोर संग्राम चलता रहा। किन्तु अन्त में इसने उसे पराजित कर उसका वध किया (वायु. ९९. ८)। यही नहीं, इसने अपने बलपौरुष से रावण को भी पराजित किया था (भा. ९.६.२६-३८)।

यह इतना बहादुर था कि, एक दिन में ही इसने सारी पृथ्वी जीत ली थी (म. शां. १२४.१६), तथा जयसूचक सौ राजसूय तथा अश्वमेध यज्ञ किये थे। इसके पराक्रम का वर्णन विष्णु पुराण में निम्नलिखित रूप से किया गया है--

यावत्सूर्य उदेति स्म, यावच्च प्रतितिष्ठति।
सर्वं तद्यौवनाश्वस्य, मांधातुः क्षेत्रमुच्यते॥
(विष्णु. ४.२.१९)

शूरवीर होने के साथ साथ यह दानवीर भी था। इसने बृहस्पति से गोदान के विषय में प्रश्न किया था (म. अनु. ७६.४)। यही नही, यह सदा लाखों गोदान भी करता था (म. अनु. ८१.५-६)। दस्युओं से इसने अपने प्रजा की रक्षा की थी, जिससे इसे 'त्रसदस्यु' नाम प्राप्त हुआ था। इसने एक बार दानस्वरूप अपना रक्तदान भी दिया था।

व्रतवैकल्य--प्रजापालन के प्रति इसकी कर्तव्यभावना तथा दयालुता का परिचय पद्मपुराण से मिलता है। एक बार इसके राज्य में वर्षा न हुयी, जिसके कारण सारे देश में अकाल पड़ गया। सारे देश में हाहाकार मच गया, लोग अपने नित्यकर्मों को भूल गये। वेदों का पठनपाठन बन्द हो गया। प्रजा की इस दशा को देखकर यह बड़ा दुःखी हुआ, एवं इसका कारण जानने के लिए इसने आंगिरस ऋषि से पृच्छा की। तब उसने बताया, 'तुम्हारे राज्य में एक वृषल तप कर रहा है, इसीलिए यह अकाल फैला है। जब तक उसका वध न किया जायेगा, तब तक जलवर्षा न होगी'। किन्तु इसने तपस्वी का वध करना उचित न समझा, तथा दुर्भिक्ष को समाप्त करने के लिए, पद्मा नामक एकादशी का व्रत करना प्रारंभ किया। उस व्रत के कारण, सारे राज्य में खूब वर्षा हुयी, एवं लोगों को भी अकाल से छुटकारा मिला (पद्म. उ. ५७)। पद्मपुराण में अन्यत्र कहा है कि, इसने 'वरुथिनी एकादशी' का व्रत भी किया था (पद्म. उ. ४८)।

संवाद—इसका विभिन्न ऋषिमुनियों के अतिरिक्त अन्य देवीदेवताओं के साथ भी संबंध था। इंद्र इसका परम मित्र था। सृञ्जय को समझाते हुए नारदजी ने इसकी महत्ता का वर्णन किया था (म. द्रो. ५९)। श्रीकृष्ण ने स्वयं अपने मुख से इसके गुणों का गान करते हुए, इसके यज्ञों के प्रभाव का वर्णन किया था (म. शां. २९.७४-८६)।

राजधर्म के विषय में इंद्र-रूपधारी विष्णु के साथ इसका संवाद हुआ था (म. शां. ६४-६५)। अंगिरापुत्र उतथ्य ने इसे राजधर्म के विषय में उपदेश दिया था, जो 'उतथ्य गीता' नाम से सुविख्यात है (म. शां. ९१-९२)। इसके राज्य में मांसभक्षण का निषेध था (म. अनु. ११५.६१)।

इसने वसुहोम (वसुदम) से दंडनीति के विषय में जानकारी पूछी थी (म. शां. १२२)।

मृत्यु--बाद में दैवयोग से इसके मन में अपने पराक्रम के प्रति गर्व की भावना उत्पन्न हो गयी, एवं इंद्र के आधे राज्य को प्राप्त करने की इच्छा से, इसने उसे युद्ध के लिए चुनौती दी। इंद्र ने स्वयं युद्ध न कर के इसे लवणासुर से युद्ध करने के लिए कहा। पश्चात् लवण ने इसे युद्ध में परास्त कर इसका वध किया (वा. रा. उ. ६७.२१)। आगे चल कर, यही लवण दशरथ के पुत्र शत्रुघ्न के द्वारा मारा गया था।

परिवार--मांधातृ क्षत्रिय था, किंतु अपनी तपस्या के बल पर ब्राह्मण बन गया था (वायु. ९१.११४)।

मांधातृ का विवाह यादव राजा शशबिन्दु की कन्या बिन्दुमती से हुआ था, जिसकी माता का नाम चैत्ररथी था। उससे इसे मुचुकुंद, अम्बरीष तथा पुरुकुत्स नामक पुत्र हुए थे (वायु. ८८.७०-७२)। पद्मपुराण में इसके पुरुकुत्स, धर्मसेतु, मुचुकुंद, शक्रमित्र नामक चार पुत्र दिये गये हैं (पद्म. सृ. ८)। इसे पचास कन्याएँ भी थीं, जिनका विवाह सौभरि ऋषि के साथ हुआ था। इसे कावेरी नामक एक बहन भी थी, जिसका विवाह कान्यकुब्ज देश का राजा जह्नु से हुआ था। कई ग्रंथों में कावेरी को इसकी कन्या अथवा पौत्री कहा गया है।

इसके पश्चात् इसका ज्येष्ठ पुत्र पुरुकुत्स अयोध्या देश का राजा बन गया, जिसने अपने पिता का राज्य और भी विस्तृत किया। उसने नर्मदा नदी के तट पर रहनेवाले नाग लोगों की कन्या नर्मदा से विवाह कर, मौनेय गंधर्व नामक उनके शत्रुओं को परास्त किया था। इन सारे निर्देशों से प्रतीत होता है कि, पुरुकुत्स के राज्य का विस्तार नर्मदा नदी के किनारे तक हुआ था (पुरुकुत्स देखिये)।

मांधातृ का तृतीय पुत्र मुचुकुंद एक पराक्रमी राजा था, जिसने नर्मदा नदी के तट पर ऋक्ष एवं पारियात्र पर्वतों के बीच एक नगरी की स्थापना की थी। वही नगरी आगे चल कर 'माहिष्मती' नाम से सुविख्यात हुयी (मुचुकुंद एवं महिष्मत् देखिये)।

मान्य—अगस्त्य ऋषि का नामान्तर (मान्दार्य मान्य देखिये)। मान का वंशज होने के कारण, अगस्त्य ऋषि को यह पैतृक नाम प्राप्त हुआ होगा।

मान्य मित्रावरुण—एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. ८. ६७)।

मान्यमान—देवक नामक राजा का पैतृक नाम (ऋ. ८.१८.२०)। मन्यमान का पुत्र होने के कारण, देवक को यह पैतृक नाम प्राप्त हुआ होगा। मान्यमान का शब्दशः अर्थ 'अभिमानी व्यक्ति' होता है।

मान्यवती—करंधमपुत्र अविक्षित् राजा की पत्नी, जो भीम राजा की कन्या थी। इसके स्वयंवर के समय, अविक्षित् राजा ने इसका हरण किया था (मार्क. ११९. १७)।

मामतेय--दीर्घतमस् ऋषि का मातृक नाम (ऋ. १. १४७.३; ऐ. ब्रा. ८. २३. १)। ममता का वंशज होने के कारण, इसे यह मातृक नाक प्राप्त हुआ होगा।

मांबुधि--कुशिककुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

मायव--ऋग्वेद में निर्दिष्ट एक राजा (ऋ. १०. ९३. १५)। लुडविग के अनुसार, यह राम का पैतृक नाम था (लुडविग, ऋग्वेद अनुवाद. ३.१६६)। मयु अथवा मायु का वंशज होने से, उसे यह पैतृक नाम प्राप्त हुआ होगा।

माया—अधर्म नामक धर्मविरोधी पुरुष की कन्या, जिसकी माता का नाम मृषा था। ब्रह्म नामक अपने भाई से इसे लोभ एवं निकृति नामक पुत्र उत्पन्न हुए थे (अधर्म देखिये)।

सृष्टि का निर्माण करते समय, ब्रह्मा ने इसकी मदद ली थी। उस समय निम्न सात वस्तुओं का निर्माण इसके द्वारा किया गया था :-

(१) **गायत्री**--जिससे आगे चल कर समस्त वेदों का निर्माण हुआ। तदोपरान्त वेदों से समस्त संसार का निर्माण हुआ।

(२) **सत्यवती**—जिससे आगेचल कर समस्त ओषधी एवं जीवपोषक वनस्पतियों का निर्माण हुआ।

(३) **ज्ञानविद्या**--जिससे आगेचल कर सारे शास्त्रों का निर्माण हुआ।

(४) **लक्ष्मी**--जिससे आगे चल कर वस्त्र एवं आभूषण उत्पन्न हुये।

(५) उमा--जिसने शिव की सहाय्यता ले कर समस्त शास्त्रों का भूलोक में प्रसार किया। इसी कारण उमा को ज्ञानमाता नाम प्राप्त हुआ।

(६) वर्णिका--जिसने समस्त सृष्टि के संरक्षण का भार अपने कंधे पर लिया, एवं दुष्टों का संहार किया। इसीने ही आगे चलकर मधु, कैटभ एवं रुरु नामक दैत्यों का वध किया था।

(७) धर्मद्रवा--एक नदी, जो आगे चल कर गंगा नाम से प्रसिद्ध हुयी (पद्म. सृ. ६२)।

मायामोह--विष्णु का अवतार, जो उसने दैत्यों की वंचना करने के लिए धारण किया था।

मायावती--मदन की पत्नी रति का नामांतर, जो उसने शंबरासुर के घर रहते समय धारण किया था।

शिव के द्वारा मदन का दाह होने पर, रति शंबरासुर के यहाँ रहने के लिए गयी। आगे चल कर, मदन ने श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न के रूप में पुनः जन्म लिया। उस समय इसने प्रद्युम्न के द्वारा शंबरासुर का वध किया, एवं प्रद्युम्न के साथ विवाह किया (भा. १०.५५.१६; विष्णु. ५.२७; प्रद्युम्न देखिये)।

मायाविन्--एक असुर, जो मयासुर का पुत्र था। इसकी माता का हेमा था। ब्रह्मांड में इसकी माता का नाम 'रंभा' दिया गया है (ब्रह्मांड. ३.६.२८-३०)। वालि ने इसका वध किया।

मायु--एक आचार्य, जिसका निर्देश तान्व एवं पार्थ नामक ऋषियों के साथ प्राप्त है।

मारिषा--दस प्रचेताओं की पत्नी, जो प्राचेतस दक्ष की माता थी (म. आ. ७०.५)।

इसके पिता का नाम कण्डु ऋषि था, जिसे प्रम्लोचा नामक अप्सरा से यह उत्पन्न हुयी थी (विष्णु. १.१५; भा. ४.३०)। इसका जन्म होते ही, प्रम्लोचा अप्सरा ने इसे एक पेड़ के नीचे रख दिया, एवं वह स्वयं स्वर्ग चली गयी। इस समय यह भूख के मारे रोने लगी, तब सोम ने अपनी तर्जनी से अमृत पिला कर इसे पालपोस कर बड़ा किया (विष्णु. १.१५; ब्रह्म. १७८; ह. वं. १.२)। जिस वृक्ष के नीचे यह थी, उसी वृक्ष के सहारे यह बड़ी हुयी। इसलिए इसे 'वार्क्षी' नामांतर प्राप्त हुआ (भा. ४.३०.४७; म. आ. १८८.१०*)।

मारीच--एक राक्षस, जो रावण का आश्रित था। यह सुंद राक्षस का पुत्र था, एवं इसकी माता का नाम ताटका था (वा. रा. बा. २५)। ब्रह्मांड में इसे ह्राद राक्षस का पुत्र, एवं हिरण्यकशिपु का नाती बताया गया है (ब्रह्मांड. ३.५.३६)। ब्रह्मा के वर के कारण, इसे देवताओं से भी अजेयत्व प्राप्त हुआ था (वा. रा. अर. ३८)।

पूर्वजन्म--पूर्वजन्म में यह एक यक्ष था, जिसके पिता का अगस्त्य ऋषि ने वध किया था। बड़ा होने पर, इसे अगस्त्य ऋषि के इस कृत्य का ज्ञान हुआ, जिस कारण इसने उस पर आक्रमण किया। पश्चात् अगस्त्य ऋषि ने इसे अगले जन्म में राक्षस प्राप्त होने का शाप दिया (वा. रा. बा. २५)।

राम से युद्ध--इसमें दस हज़ार हाथियों का बल था। यह सुमालि राक्षस के चार अमात्यों में से एक था। अपनी माता के साथ यह मलद तथा करुष देशों में रहता था, तथा पास ही होनेवाले विश्वामित्र के यज्ञ का विध्वंस करता था। इसलिये विश्वामित्र अपने यज्ञ के संरक्षण के लिए, राम को दशरथ से ले आये। राम के बाण से इसके भाई सुबाहु का वध हुआ, एवं उसी बाण के पुच्छभाग से आहत हो कर, यह समुद्र में जा गिरा (म. स. परि. १. क्र. २१. पंक्ति ५०१)। बाद में यह लंका में रावण का आश्रित बना कर रहने लगा।

जिस समय राम, लक्ष्मण तथा सीता पंचवटी में आ कर रहे थे, तब यह दो राक्षसों के साथ हिरन का रूप धारण कर, राम से अपनी शत्रुता का बदला लेने के लिए वहाँ गया। इन्हे देख कर राम ने बाण छोड़े, जिसमें इनके दोनों साथियों का वध हुआ, एवं यह वहाँ से भाग निकला (वा. रा. अर. ३८.३९)।

वध--बाद में जब रावण ने सीताहरण का विचार किया, तब उसने इसकी सहायता माँगी। परन्तु यह राम से इतना अत्यधिक घबराता था कि, 'र' शब्द से आरम्भ होनेवाले राजीव, रत्न तथा रमणी शब्द सुनकर ही धैर्य खो बैठता। इसने रावण से बारबार अनुनय विनय किया, किन्तु उसके डरवाने धमकाने में आ कर, इसे मजबूरन उसका साथ देना पड़ा (वा. रा. अर. ४०-४१)।

पंचवटी में आने के उपरांत, यह सुंदर मृग का रूप धारण कर घूमने लगा। इसे देखकर सीता ने राम से इसे मारने के लिये कहा, जिससे वह इसके मृगचर्म की सुंदर कंचुकी बना सके। सीता की इच्छा पूर्ण करने के हेतु, राम ने इसका पीछा किया, एवं इसका वध किया (वा. रा. अर. ४३-४५; म. व. २६२.१७-२१)। मरते समय इसने राम की भाँति पुकारा, 'लक्ष्मण दौडो'। इसे

सुन कर, सीता ने राम को आपत्ति में जान कर, तुरन्त लक्ष्मण को उसकी सहायतार्थ भेजा। इधर रावण ने सीता का हरण किया।

२. कश्यपकुलोत्पन्न एक गोत्रकार ऋषिगण।

मारीचि--एक दानव, जो कश्यप एवं दनु के पुत्रों में से एक था।

मारुत--भृगुकुलोत्पन्न एक गोत्रकार ऋषिगण।

२. अंगिराकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

३. नितान एवं द्युतान नामक वैदिक सूक्तद्रष्टाओं का सामूहिक नाम।

मारुततंव्य—विश्वामित्र ऋषि के पुत्रों में से एक (म. अनु. ४.५४)।

मारुताशन--स्कंद का एक सैनिक (म. श. ४४. ५७)।

मारुताश्व--विदथ नामक राजा का पैतृक नाम (ऋ. ५.३३.९)। मरुताश्व का वंशज होने के कारण, उसे यह नाम प्राप्त हुआ होगा।

मार्कट--मार्कंड नामक अंगिराकुलोत्पन्न गोत्रकार के लिए उपलब्ध पाठभेद (मार्कंड. २. देखिये)।

मार्कटि—अंगिराकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

मार्कंड--भृगुकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

२. अंगिराकुलोत्पन्न एक गोत्रकार। इसके नाम के लिए 'मार्कट' पाठभेद प्राप्त है।

मार्कंडेय—भृगुवंश में उत्पन्न एक महामुनि, जो मृकंड अथवा मृकंडु ऋषि का पुत्र था (अग्नि. २०.१०; विष्णु. १.१०.३; नारद. १.४; भा. ४.१-४५)। मृकंड का पुत्र होने से इसे 'मार्कंडेय' अथवा 'मार्कंड' पैतृक नाम प्राप्त हुआ था (मत्स्य. १०३.१३-१५)।

जन्म—पार्गिटर के अनुसार, उषनस् शुक्र का पुत्र मर्क इसका पिता था। उषनस् शुक्र के सारे वंशज दानव एवं अनार्य लोगों के साथ संबंध प्रस्थापित करने के कारण विनष्ट हुए। उनमें से केवल मर्क एवं शंड इन दो पुत्रों ने आर्य लोगों से संबंध प्रस्थापित किया, जिस कारण उनकी परंपरा अबाधित रही। मर्क का पुत्र मार्कंडेय तो भृगुकुल का सुविख्यात गोत्रकार बना (मत्स्य. १९५. २०)।

अमरत्व--दीर्घायु प्राप्त करनेवाले ऋषि के रूप में मार्कंडेय का निर्देश अनेक ग्रंथों में प्राप्त है (म. व. ८६. ५;१८०.३९)। कहीं कहीं इसके अमर होने का उल्लेख भी मिलता है (म. व. १८०.४)। संभव यही है कि, अपने मार्कंडेय नामक वंशजों के कारण इसकी परंपरा अबाधित रही हो, एवं उसीका संकेत इसे अमर कह कर किया गया हो।

मार्कंडेय दसवें त्रेतायुग में उत्पन्न हुआ था। इसकी पत्नी का नाम धूमोर्णा था (म. अनु. १४६.४)। प्रारम्भ में इसकी आयु कम थी, किन्तु बाद में यह दीर्घायु हुआ। पहले इसे केवल छः महीने की आयु प्राप्त हुयी थी। किन्तु पाँच महीने तथा चौबीस दिन बीतने के बाद, सप्तर्षियों ने इसे दर्शन देकर दीर्घायु प्राप्त करने का आशीर्वाद दिया। ब्रह्मा ने इसे ऋषिश्रेष्ठत्व तथा कल्पांत तक आयु प्रदान की, तथा पुराणों के रचने का वर प्रदान किया।

पाँचवे वर्ष में इसका उपनयन संस्कार हुआ था। सप्तर्षियों ने इसे दण्ड तथा यज्ञोपवीत दिया था (पद्म. सृ. ३३)। इसने अपना एक आश्रम स्थापित किया था, जिसकी पूर्ण जानकारी पुलस्त्य ने राम को बतायी थी (नारद. १.५)।

तपस्या—मार्कंडेय ऋषि ने अत्यधिक घोर तप किया था। यह तप छः मन्वन्तरों तक चलता रहा। इसकी तपस्या से घबरा कर, पुरंदर नामक इन्द्र ने इसकी तपस्या में विघ्न उत्पन्न करने के लिए अनेकानेक प्रयत्न किये। पुरंदर ने सर्वप्रथम वसंत का निर्माण किया; बाद में अप्सराओं एवं गंधर्वों आदि के साथ कामदेव को इसकी तपस्या भंग करने के लिए भेजा, किंतु यह अपनी तपस्या में निमग्न रहा। इसकी तपस्या से प्रसन्न हो कर नर-नारायण, बालमुकुंदरूपी ब्रह्म, तथा स्वयं शंकर भगवान् ने इसे दर्शन दिया। शंकर ने इसे वर प्रदान करते हुए कहा, 'तुम्हारी सारी इच्छायें पूर्ण होंगी। तुम्हें अविच्छिन्न यश प्राप्त होगा। तुम त्रिकालदर्शी होगे, तुम्हें आत्मनात्मविचार का सम्यक ज्ञान होगा, तथा तुम श्रेष्ठ पुराण के कर्ता हो कर, कल्पसमाप्ति तक अजर एवं अमर होंगे (भा. १२.८-१०)। इस प्रकार शंकर ने इसे चौदह कल्पों तक की आयु प्रदान की (भा. ४.१.४५; म. व. १३०.३२)।

श्रेष्ठता—यह ब्रह्माजी की सभा में रह कर उसकी उपासना करता था (म. स. ११.१२)। ब्रह्माजी के पुष्कर क्षेत्र में हुए यज्ञ में भी यह उपस्थित था (पद्म. सृ. ३३)। इसने हजार हज़ार युगों के अंत में होनेवाले अनेक महाप्रलय के दृश्य देखे थे। ब्रह्मा को छोड़ कर संसार में इससे बड़ी आयुवाला कोई दूसरा व्यक्ति नहीं था। प्रलयकाल में जब सारी सृष्टि विनष्ट हो जाती है,

तब यह ब्रह्माजी के पास रह कर उनकी आराधना में निमग्न रहता है। प्रलयकाल के उपरांत, पुनः रची गयी सारी सृष्टि को सब से पहले यही देखता है। इसने अपनी चित्तवृत्तियों का निरोध कर, लोकगुरु ब्रह्मा की कृपा से मरीचि आदि प्रजापतियों को भी जीत लिया था।

यह भगवान् नारायण के समीप रहनेवाले भक्तों में सर्वश्रेष्ठ था। इसने सर्वव्यापक परब्रह्म की उपलब्धि के लिए, स्थानभूत हृदयकमल की कर्णिका का यौगिक-कला से उद्घाटन किया था, एवं वैराग्य तथा अभ्यास से प्राप्त हुयी दिव्यदृष्टि के द्वारा विश्वरचयिता भगवान् का अनेक बार दर्शन किया था। इसलिए सब को मारनेवाली मृत्यु, तथा शरीर को जर्जर बना देनेवाली जरा इसका स्पर्श नहीं कर सकती थी (म. व. १८६.२-११)।

इसने कल्पांत में वटवृक्ष तथा प्रलय का भी दर्शन किया था (ब्रह्म. ५२.५३)। इसने बालमुकुन्द के उदर में प्रवेश कर वहाँ ब्रह्माण्ड का दर्शन किया था। (म. व. १८८.८८-१२५)। उदर से बाहर निकलने पर, इसने बालमुकुन्द का स्तवन कर उससे वार्तालाप किया था (ब्रह्म. ५४.५६; म. व. १८६.८१-१२९)।

मयसभा में जब पाण्डवों ने प्रवेश किया था, तब यह वहाँ उपस्थित था (म. स. ४.१३)। ब्रह्मसभा में भी जब पाण्डव गये थे, तब यह वहाँ उपस्थित था (म. स. ११. १२५* पंक्ति. १)। युधिष्ठिर जब मार्कंडेय के आश्रम में गया था, तब लोमश ऋषि ने उसे मार्कंडेय का चरित्र सुनाया था (म. व.१३०)। युधिष्ठिर के वनवास के समय जब यह उससे मिलने गय था, तब वहाँ श्रीकृष्ण भी उपस्थित थे।

उपदेश—इसने पाण्डवों को धर्म का आदेश दिया था। युधिष्ठिर के द्वारा प्रश्न किये जाने पर, इसने उससे महर्षियों तथा राजर्षियों के जीवनसम्बन्धी विविध उपदेशपूर्ण कथायें सुनायी थीं। इसने युधिष्ठिर को विस्तार से बहुविधरूप से धर्मोपदेश दिया था, एवं प्रयागक्षेत्र का माहात्म्य बताया था (म. व. १७९-२२१; मत्स्य. १०३-११२)। इसने युधिष्ठिर आदि को श्रीराम का उपाख्यान, तथा सती सावित्री का चरित्र सुनाया था (म. व. २५७-२८३)। इसने भद्रतनु नामक ब्राह्मण को दान्त से उपदेश प्राप्त करने के लिए कहा था, एवं हेममाली को शाप से विमुक्त किया था (पद्म. क्रि. १७; पा. ५२)।

इसने धृतराष्ट्र को त्रिपुरवध की कथा सुनायी थी (म. क. २४)। शरशय्या पर पडे हुए भीष्म को देखने के लिए अन्य ऋषियों के साथ यह भी गया था (म. शां. ४७.६६*)। यह भीष्म के प्रयाणकाल के समय भी उपस्थित था (म. अनु. २६.६)।

इसने नारद से विभिन्न प्रकार के प्रश्न किये थे (म. अनु. २२.७)। नारद ने इसे चार युग तथा भार्याधर्म के बारे में बताया था (म. अनु. ५४; ५७)। युधिष्ठिर ने महाप्रस्थान से पूर्व अन्य ऋषियों के साथ इसका भी पूजन किया था (म. महा. १.३*)।

मार्कंडेय-युधिष्ठिर संवाद—महाभारत वनपर्व में 'मार्कंडेयसमस्यापर्व' नामक एक उपपर्व है, जिसमें मार्कंडेय एवं युधिष्ठिर के बीच में हुए तत्त्वज्ञानसम्बन्धी अनेकानेक संवादों का वृत्तान्त प्राप्त है (म. व. १७९-२२१)। उस पर्व में निम्नलिखित विषयों पर मार्कंडेय ने अपने विचार एवं कथासूत्रों का विवेचन किया है:—ब्राह्मणमहात्म्य एवं हैहयवृत्तान्तकथन; पृथु वैन्य के यज्ञ में हुआ अत्रि-गौतम संवाद; स्वाध्याय दानवृत्तिमहात्म्य, (१८४); वैवस्वत मनु का चरित्र एवं मत्स्योपाख्यान (१८५); प्रलयकालीन भगवत्महात्म्य (१८६-१८७); वायुप्रोक्त कलिभविष्यकथन (१८८-१८९); द्वितीय बार ब्राह्मणमहात्म्य (१९०); वृद्धतम इन्द्रद्युम्न कथा (१९१); धुंधमारआख्यान (१९२-१९५); पतिव्रताख्यान (१९६-१९७); ब्राह्मणव्याधसंवाद (१९८-२०६); आंगिरसोत्पत्ति (२०७-२२१)।

इन सारे संवादों से प्रतीत होता है कि, महाभारतकाल में इसका अत्यधिक सम्मान था, एवं इसके तत्त्वज्ञानसम्बन्धी विचारधारा से युधिष्ठिर आदि ज्ञानी भी प्रभावित थे।

ग्रन्थ—इसके नाम पर निम्नलिखित ग्रंथ प्राप्त है:- १. मार्कंडेयस्मृति, २. मार्कंडेयसंहिता। उसी प्रकार इसने 'मार्कंडेयस्तोत्र' नामक शिव का स्तोत्र भी किया था (C. C.)। इसने तामस पुराणों में से 'मार्कंडेय' तथा 'वाराह' नामक पुराणों की रचना की थी (भवि. प्रति. ३.२८.१३)।

परिवार—इसकी धर्मपत्नी का नाम धूमोर्णा था (म. अनु. १४६.४)। इसके पुत्र का नाम वेदशिरस् था (विष्णु १.१०.४)।

आश्रम—मार्कंडेय ऋषि का आश्रम हिमालय के उत्तर भाग में पुष्पभद्रा नदी के तट पर चित्रा नामक शिला के पास था। वहाँ इसने अत्यंत उग्र तपस्या की, जिससे भयभीत हो कर इंद्र ने इसकी तपस्या में बाधा डालने का

प्रयत्न किया। किंतु इसकी तपस्या अटूट रही। अंत में नरनारायणों ने प्रसन्न हो कर, इस पर अनुग्रह किया।

२. एक ऋषि, जो अयोध्या के दशरथ राजा के उपऋत्विजों में से एक था (वा. रा. बा. ७.५)। राम दाशरथि राजा के आठ धर्मशास्त्रियों में से यह एक था (वा. रा. उ. ७४.४)। सीतास्वयंवर के समय यह राम के साथ मिथिला गया था (वा. रा. बा. ६९.४)। पद्म के अनुसार, इसने राम को 'अवियोगद कूप' नामक पवित्र कुआँ दिखाया था (पद्म. सृ. ३३)।

वाल्मीकि रामायण में प्रायः सर्वत्र इसका निर्देश 'दीर्घायु' नाम से प्राप्त है, जिससे प्रतीत होता है कि, मार्कंडेय इसका पैतृक नाम था, एवं मृकंड का पुत्र होने से इसे यह नाम प्राप्त हुआ था।

३. एक आचार्य, जो वायु के अनुसार व्यास की ऋक्शिष्यपरंपरा में से इंद्रप्रमति ऋषि का शिष्य था। अन्य पुराणों में इसके नाम के लिए 'मांडुकेय' पाठभेद प्राप्त है (व्यास देखिये)।

मार्गणप्रिया—कश्यप एवं प्राधा की कन्याओं में से एक।

मार्गपथ—भृगुकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

मार्गवेय--मृगवुपुत्र राम नामक आचार्य का मातृक नाम (राम मार्गवेय देखिये)।

मार्गेय--भृगुकुलोत्पन्न एक गोत्रकार। इसके नाम के लिए 'भार्गेय' पाठभेद प्राप्त है।

मार्जार--एक राजा, जो प्रजापतिपुत्र जांबवत् का पुत्र था। ब्रह्मांड के अनुसार, आगे चल कर, इसीसे मार्जार जाति उत्पन्न हुयी (ब्रह्मांड ३.७.३०६)।

मार्जारास्या--केसरी वानर की पत्नी। आनंद रामायण के अनुसार, इसे निर्ऋति घर्घरस्वन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ (आ. रा. सार. १३)।

मार्जारि--(सो. मगध. भविष्य.) मगध देश का एक राजा, जो भागवत के अनुसार जरासंध का पौत्र, एवं सहदेव राजा का पुत्र था। अन्य पुराणों के अनुसार, इसे 'सोमाधि' अथवा 'सोमापि' नामांतर भी प्राप्त थे। इसके पुत्र का नाम श्रुतश्रवस् था।

मार्तांड--एक आदित्य, जो द्वादशादित्यों में से आठवाँ माना जाता है (म. आ. ७०.१०; भा. ५.२०. ४४; ब्रह्मांड. ३.७.२७८-३८८)। महाभारत में इसे कामधेनु का पति कहा गया है (म. अनु. ११७.११)।

'मार्तांड' का शब्दशः अर्थ मृत होता है। कई अभ्यासकों के अनुसार, पृथ्वी के जिस स्थान पर सूर्य सात महिनों तक क्षितिज में रहता है, एवं आठवें माह में अस्तंगत होता है, उसीं स्थान में इस आदित्य का निवास होता है।

मार्तिकावत—एक लोकसमूह, जो समुद्र के किनारे अबु पहाडी के प्रदेश में निवास करता था। परशुराम ने इस देश के क्षत्रियों का संहार किया था (म. द्रो. परि. १.८.८४७)। इस देश का सुविख्यात राजा शाल्व था, जिसका श्रीकृष्ण ने वध किया था (म. व. १५-१६; शाल्व देखिये)। भारतीय युद्ध के समय, इस देश का राजा भोज मार्तिकावत था। भोज मार्तिकावत के साथ अभिमन्यु का युद्ध हुआ था (म. द्रो. ४७.८)।

मार्तिकावतक—मार्तिकावत के राजा शाल्व का नामान्तर (म. द्रो. ४७.८)।

२. चित्ररथ गंधर्व का नामान्तर।

मार्दमर्षि—विश्वामित्र ऋषि के ब्रह्मवादी पुत्रों में से एक (म. अनु. ४.५७)।

मार्ष्टिपिंगलि--अंगिराकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

मार्ष्टि--(सो. वसु.) एक राजा, जो विष्णु के अनुसार सारण राजा का पुत्र था।

मार्ष्टिमत्—(सो. वसु.) एक राजा, जो विष्णु के अनुसार सारण राजा का पुत्र था।

मालतिका—स्कंद की अनुचरी एक मातृका (म. श. ४५.४)।

मालती—इक्ष्वाकुवंशीय शत्रुघातिन् राजा की पत्नी।

२. मद्र देश के अश्वपति राजा की पत्नी। इसके नाम के लिए 'मालवी' पाठभेद प्राप्त है (मालवी देखिये)। सत्यवान् राजा की पत्नी सावित्री इसीकी ही कन्या थी (सावित्री देखिये)।

मालय—गरुड की प्रमुख सन्तानों में से एक (म. उ. ९९.१४)। पाठभेद-'मलय'।

मालयनि--भृगुकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

मालव—पश्चिम भारत में रहनेवाला एक लोकसमूह। नकुल ने अपने पश्चिम दिग्विजय में इनका पराजय किया था (म. स. २९.६)। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के समय ये लोग उपस्थित थे, एवं इन्होने विपुल धनराशि युधिष्ठिर को अर्पण की थी (म. स. ३१.११; ५२.१४)।

भारतीय युद्ध में ये लोग कौरव पक्ष में शामिल थे। भीष्म की आज्ञा के अनुसार, इन लोगों ने अर्जुन से मुकाबिला किया था (म. भी. ५५.७४)। किंतु अन्त में

अर्जुन ने मालव योद्धाओं को गहरी चोट लगायी थी (म. द्रो. १८.१६)। युधिष्ठिर ने भी इन लोगों का संहार किया था (म. द्रो. १३२.२३-२५)। परशुराम ने इस देश के क्षत्रियों का संहार किया था (म. द्रो. परि. १.८. ८४५)।

सिकंदर के समय ये लोग पंजाब में रहते थे। इन्होंने एवं क्षुद्रक लोगों ने सिकंदर का काफ़ी प्रतिकार किया। किंतु अन्त में इन्हे हार खानी पडी, एवं पंजाब देश को छोड़ कर, एवं सिंधु नदी को पार कर, ये लोग राजस्थान के मार्ग से उज्जयिनि के पास आ कर रहने लगे। इन्हीके कारण, उस प्रदेश को 'मालव' नाम प्राप्त हुआ।

२. सौ क्षत्रियपुत्रों का एक समूह, जो मद्रदेश के अश्वपति राजा को मालवी नामक पत्नी से उत्पन्न हुआ था (मालवी देखिये)।

३. विदर्भ नगरी में रहनेवाला एक विष्णुभक्त ब्राह्मण (पद्म. उ. २१८)।

मालवी--नरेश अश्वपति राजा की बड़ी रानी, एवं सावित्री की माता। इसे मालव नामक सौ पुत्र उत्पन्न होने का वरदान प्राप्त हुआ था (म. व. २८१.५८)। इसके नाम के लिए 'मालती' पाठभेद भी प्राप्त है।

२. केकय राजा की पत्नी सुदेष्णा का नामांतर (म. वि. १.१९-३२)।

मालाधर--सिद्धेश्वर नामक राजा का पुत्र, जिसकी पत्नी का नाम श्यामबाला था (पद्म. ब्र. ११)।

मालावती--कुशध्वज जनक राजा की पत्नी, जिसकी कन्या का नाम वेदवती था (वेदवती देखिये)।

मालि--एक राक्षस, जो सुकेश नामक राक्षस एवं देववती का पुत्र था। वसुदा नामक गंधर्वी इसकी पत्नी थी, जिससे इसे अनल, अनिल, हर एवं संपाति नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए थे। उन पुत्रों को 'मालेय' सामूहिक नाम प्राप्त था।

इसने अनेक वर्षों तक तप कर अमरत्व एवं अजेयत्व प्राप्त किया था। विश्वकर्मा ने इसे रहने के लिए लंका नगरी प्रदान की थी। अन्त में श्रीविष्णु के द्वारा इसका वध हुआ (वा. रा. उ. ५)।

मालिनी--सप्त शिशुमातृकाओं में से एक (म. व. २१७.९)। पाठभेद (भांडारकर संहिता)-'बृहली'।

२. एक राक्षसकन्या, जो कुबेर की आज्ञा से विश्रवस् ऋषि के परिचर्या के लिए रही थी। विश्रवस् ऋषि से इसे विभीषण नामक पुत्र उत्पन्न हुआ (म. व. २५९.१-८)।

३. अज्ञातवास के समय द्रौपदी से धारण किया गया नाम (म. वि. ८.१९)।

४. एक अप्सरा, जो पुष्कर एवं प्रम्लोचा नामक अप्सरा की कन्या थी (म. वि. ८.१४)। इसका विवाह रुचि राजा से हुआ था, जिससे इसे रौच्य नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। रौच्य नामक मन्वन्तर का अधिपति रौच्य वही है (मार्क. ९५.५)।

५. एक दुर्वर्तनी ब्राह्मण स्त्री। अपने दुर्वर्तन के कारण, अगले जन्म में इसे श्वानयोनि प्राप्त हुयी। आगे चल कर, वैशाख शुक्ल द्वादशी के दिन द्वादशी व्रत करने के कारण, इसे मुक्ति प्राप्त हो गयी, एवं अगले जन्म में यह उर्वशी नामक अप्सरा हुयी (स्कंद. २.७.२४)।

मालेय--चार राक्षसों का एक समूह, जो विभीषण के अमात्य का काम करता था। इनके नाम इस प्रकार थे:- अनल, अनिल, हर एवं संपाति (वा. रा. उ. ५.४३)।

माल्य--आर्य नामक आचार्य का पैतृक नाम (पं. ब्रा. १३.१०.८)।

माल्यपिंडक--एक सर्प, जो नारद ने मालती को वर के रूप में प्रदान किया था (म. उ. १०१.१३)।

माल्यवत्--एक राक्षस, जो सुकेश राक्षस का ज्येष्ठ पुत्र था। इसकी माता का नाम देववती था। इसके दो छोटे भाईयों के नाम सुमालि एवं मालि थे। यह रावण का मातामह था।

आगे चलकर सुकेश के तीनों पुत्रों की शादियाँ नर्मदा नामक गंधर्वी की तीन कन्याओं से हुयीं। उनमें से सुन्दरी नामक कन्या की शादी माल्यवत् से हुयी थी।

तपस्या--अपने पिता के तपःसामर्थ्य एवं ऐश्वर्य को प्राप्त कर, यह अपने भाइयों के साथ घोर तपस्या करने लगा। शीघ्र ही इसने अपनी तपस्या से ब्रह्मदेव को प्रसन्न कर उससे वर प्राप्त किया, एवं त्रिकूट पर्वत के शिखर पर, सौ योजन लम्बी एवं वीस योजन चौड़ी सुवर्णमंडित लंका नामक नगरी प्राप्त की। पश्चात् यह सपरिवार वहाँ जा कर रहने लगा।

विष्णु से युद्ध--कालोपरांत यह तथा इसके भाई गर्व में उन्मत्त हो कर देवादि को विभिन्न प्रकार से कष्ट देने लगे। उन कष्टों से ऊब कर सारे देव शंकर के निर्देश पर विष्णु के पास गये। तब इन राक्षसों के वध की प्रतिज्ञा कर के विष्णु ने देवों को भय से मुक्त किया। जैसे ही माल्यवत् को विष्णु की यह प्रतिज्ञा ज्ञात हुयी, यह बहुत घबराया, एवं विष्णु के द्वारा की गयी प्रतिज्ञा इसने अपने भाइयों से कह

सुनायी। भाइयों ने इसको धीरज धराया, एवं देवों से युद्ध करने का निश्चय किया। इस युद्ध में, विष्णु ने अन्य देवों के साथ इससे घोर संग्राम करते हुए, इसके भाई मालि का वध किया। तब विष्णु के पराक्रम से डर कर, यह अपने भाई सुमाली के साथ पाताल लोक में जाकर रहने लगा।

लंकाप्रवेश—इधर लंका में वैश्रवण नामक कुवेर निवास करता रहा। कुछ समयोपरांत एक दिन यह अपने पाताल-पुरी से निकल कर मृत्युलोक जा रहा था कि, इसने वैश्रवण एवं उसके पिता विश्रवस् को पुष्पक विमान में बैठ कर जाते हुए देखा। उसके वैभव को देख कर यह आश्चर्यचकित हो उठा, एवं उस प्रकार के ऐश्वर्य के भोगलालसा की कामना से इसने अपनी कन्या कैकसी वैश्रवण को दी। कालोपरांत इसी कैकसी से रावण इत्यादि पुत्र हुए (सुमालि देखिये)। बाद में जब रावण लंका का राजा हुआ, तब माल्यवत् अपने भाई सुमालि तथा अपने परिवार के अन्य राक्षसों के साथ, लंकापुरी में आ कर रहने लगा (वा. रा. उ. ११)।

बाद में रावण के द्वारा सीता का हरण किया जाने पर, इसने उसे सीता को तुरन्त राम के पास लौटा देने के लिए कहा था (वा. रा. यु. ३५.९-१०)। उस समय इसने व्याकुलता से परिपूरित हो कर भावनापूर्ण उपदेश रावण को दिया था।

परिवार--इसे अपनी पत्नी सुन्दरी से वज्रमुष्टि, विरूपाक्ष, दुर्मुख, सुप्तघ्न, यज्ञकोप, मत्त, तथा उन्मत्त नामक पुत्र, तथा अनला नामक पुत्री उत्पन्न हुयी थी (वा. रा. उ. ५. ३५-३६)।

२. पुष्पदंत नामक गंधर्व का पुत्र। एक बार इन्द्रसभा में जब अनेक गंधर्व नृत्यगायन के लिए एकत्र हुए थे, तब उनमें माल्यवत् तथा चित्रसेन की नातिन पुष्पदंती उपस्थित थी। ये दोनों अत्यंत सुंदर थे, अतएव आपसी प्रेमभावना में अनुरक्त हो गये। इससे ये तालस्वर से अलग गाने लगे। इन्द्र ने इन्हें बेसुरा गाते हुए देख कर, राक्षस होने का शाप दिया। फिर ये दोनों पिशाच हो गये।

काफ़ी समय बीत जाने के उपरांत, एक बार माघ माह की दशमी के दिन इनका आपस में झगड़ा हो गया, तथा पिशाचयोनि प्राप्त होने के कारण, ये दोनों आपस में एक दूसरे को सताने लगे। बाद को इन्होंने निश्चय किया कि, इस योनि से मुक्ति प्राप्त करने के लिए, कोई भी पापाचरण से ये दूर रहेंगे।

दूसरे दिन उपवास कर के, इन लोगों ने एक पीपल के वृक्ष के नीचे बैठ कर 'रात्रिजागरण' किया, जिसके फलस्वरूप इन्हे 'जया एकादशी' का पुण्य प्राप्त हुआ। इस पुण्य के बल पर ही ये शाप से मुक्त हो सके। बाद में इन्द्र की आज्ञा से, ये दोनों पतिपत्नी बन कर सुख से रहने लगे (पद्म. उ. ४३)।

मावेल्ल--उपरिचर वसु राजा के 'मच्छिल्ल' नाम पुत्र के लिए उपलब्ध पाठभेद (मच्छिल्ल देखिये)।

मावेल्लक--एक लोकसमूह, जो त्रिगर्तराज सुशर्मन् के साथ अर्जुन से लड़ने के लिए उपस्थित हुआ था। संभवतः 'मच्छिल्ल' लोगों का यह नामान्तर होगा।

माषशरावय—वसिष्ठकुलोत्पन्न एक गोत्रकार ऋषिगण। संभवतः 'माषशरावीय ब्राह्मण' नामक ग्रंथ की रचना इन्हींके द्वारा की गयी होंगी। वह ब्राह्मण ग्रंथ के उद्धरण मात्र आज उपलब्ध है, मूल ग्रंथ नष्ट हो चुका है।

मासकृत—सुतप देवों में से एक।

माहकि--वंश ब्राह्मण में निर्दिष्ट एक गुरु का पैतृक नाम (वं. ब्रा. २)। महक का वंशज होने के कारण, उसे यह पैतृक नाम प्राप्त हुआ होगा।

माहाचमस्य-एक गुरु, जिसे 'भूर्, भुवस्, स्वर्' की त्रयी में 'महस्' संयुक्त कराने का श्रेय दिया गया है (तै. आ. १.५.१)। महाचमस् का वंशज होने से इसे यह नाम प्राप्त हुआ होगा।

माहित्थि--एक आचार्य, जो वामकक्षायण नामक ऋषि का शिष्य था। इसके शिष्य का नाम कौत्स था (बृ. उ. ६.५.४ काण्व.; श. ब्रा. १०.६.५.९)। यज्ञकर्म संबंधित विधियों में यह अत्यधिक तज्ज्ञ था, जिस कारण इसके तत्संबंधि मतों का उद्धरण शतपथ ब्राह्मण में प्राप्त है (श. ब्रा. ६.२.२.१०; ८.६.१.१६; ९.५.१.५७)।

माहिष्मत--चंपावती नगरी का एक राजा, जिसे कुल पाँच पुत्र थे। उनमें से ज्येष्ठ पुत्र अत्यंत दुराचारी था, जिस कारण उसे 'लुंपक' नाम प्राप्त हुआ था। आगे चल कर, इसने उस पुत्र को नगर से बाहर निकाल दिया (पद्म. उ. ४)।

माहेश्वरावतार--शिव का एक अवतार (शिव देखिये)।

मिचकृत--रुद्रसावर्णि मनु के पुत्रों में से एक।

मिंजिका एवं **मिंजिक**—रुद्र के दो अपत्य, जो श्वेत पर्वत पर उत्पन्न हुए थे (म. व. २२०.१०-१६)। अपनी संतानों के आरोग्य चाहनेवाले मातापिता इनकी उपासना करते है।

मित--(सो. पूरु.) एक राजा, जो जय राजा का पुत्र था।

२. एक मरुत् देव, जो मरुतों के पाँचवे गण में सम्मिलित था।

मितध्वज--(सू. निमि.) विदेह देश का एक राजा, जो भागवत के अनुसार धर्मध्वज जनक का पुत्र था। इसके पुत्र का नाम खांडिक्य जनक था।

मिति--उत्तम मन्वन्तर के सप्तर्षियों में से एक।

मित्र--एक वैदिक देवता, जिसका निर्देश ऋग्वेद में प्रायः सभी जगह वरुण के साथ प्राप्त है। ऋग्वेद में इस देवता को महान् आदित्य कहा गया है, एवं इसके द्वारा मनुष्यों में एकता लाने का निर्देश प्राप्त है (ऋ. ५.८२)। इससे प्रतीत होता है कि, मित्र एक सूर्यदेवता, एवं विशेषतः सूर्य से संबंधित प्रकाश की देवता है। वैदिक ग्रंथों में सभी स्थानों पर मित्र को दिन के साथ, एवं वरुण को रात्रि के साथ संबंधित किया है।

अथर्ववेद के अनुसार, मित्र प्रातःकाल के समय उन सभी वस्तुओं को अनावृत कर देता है, जिन्हे वरुण ने अच्छादित किया था (अ. वे. ९.३)। यज्ञवेदी पर मित्र को एक श्वेत, तथा वरुण को एक कृष्ण-वर्णीय प्राणि बलि अर्पित करने का निर्देश तैत्तिरीय संहिता में प्राप्त है (तै. सं. २.१.७.९.; मै. सं. २.५)।

वैदिक ग्रंथों के समान अवेस्ता में भी मित्र को सौर देवता माना गया है, जहाँ इसका निर्देश 'मिथ्र' नाम से किया गया है। वैदिक ग्रंथों के भाँति अवेस्ता में भी, इसे समस्त प्राणिजाति का मित्र, एवं प्रकृति की एक हितकर शक्ति माना गया है।

२. बारह आदित्यों में से एक। इसकी माता का नाम आदिति, एवं पिता का नाम कश्यप था (म. आ. ५९. १५)। अन्य आदित्यों के साथ यह अर्जुन के जन्मोत्सव में उपस्थित था। खाण्डववनदाह के समय हुए युद्ध में, इसने इन्द्र की ओर से हाथ में चक्र लेकर, अर्जुन एवं श्रीकृष्ण पर आक्रमण किया था। इसने स्कंद को सुव्रत एवं सत्यसन्ध नामक दो पार्षद प्रदान किये थे (म. श. ४४.३७)।

इसकी पत्नी का नाम रेवती था, जिससे इसे उत्सर्ग, अरिष्ट एवं पिप्पल नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे (भा. ६. १८.६)।

भविष्य के अनुसार, मार्गशीर्ष माह में प्रकाशित होनेवाले सूर्य को मित्र कहते है, एवं इसके ग्यारहसौ किरण रहते है (भवि. ब्राह्म. ७८.५७)। भागवत के अनुसार यह ज्येष्ठ माह में प्रकाशित होता हैं (भा. १२. ११.३५; वरुण देखिये)।

३. लकुलिन् नामक शिवावतार का शिष्य।

४. वसिष्ठ तथा ऊर्जा के पुत्रों में से एक।

मित्रघ्न--रावणपक्षीय एक असुर, जो राम के द्वारा मारा गया (वा. रा. यु. ४३.२७)।

मित्रजित्--(सू. इ. भविष्य.) एक राजा, जो विष्णु के अनुसार सुवर्ण राजा का पुत्र था। भागवत, वायु एवं ब्रह्मांड में इसे 'अमित्रजित्,' तथा मत्स्य में इसे 'सुमित्र' कहा गया है।

मित्रज्ञ--पांचजन्य नामक अग्नि का पुत्र, जो पाँच देव, विनायकों में से माना जाता है (म. व. २१०.१२)।

मित्रदेव--त्रिगर्तराज सुशर्मन् राजा का भाई, जो भारतीय युद्ध में अर्जुन के द्वारा मारा गया (म. क. १८.८)।

२. रुद्रसावर्णि मनु का एक पुत्र।

मित्रधर्मन्--पांचजन्य अग्नि का एक पुत्र, जो पाँच देव विनायकों में से एक माना जाता है।

मित्रबाहु--रुद्रसावर्णि मनु का एक पुत्र।

मित्रभू काश्यप--एक आचार्य, जो विभांडक काश्यप नामक आचार्य का शिष्य था। इसके शिष्य का नाम इंद्रभू काश्यप था (वं. ब्रा. २)।

मित्रभूति लौहित्य--एक आचार्य, जो कृष्णदत्त लौहित्य नामक आचार्य का शिष्य था (जै. उ. ब्रा. ३. ४२.१)।

२. एक आचार्य, जो विष्णु, वायु एवं ब्रह्मांड के अनुसार, व्यास की पुराणशिष्यपरंपरा मे से रोमहर्षण ऋषि का शिष्य था।

मित्रयु--(सो. नील.) एक नीलवंशीय राजा, जो दिवोदास राजा का पुत्र था। मत्स्य एवं वायु में इसे 'मित्रायु,' एवं भागवत एवं विष्णु में से इसे 'मित्रेयु' कहा गया है।

इसके पुत्र का नाम च्यवन था (गरुड. १.१४.२२)। किन्तु वायु एवं मत्स्य में इसके पुत्र का नाम 'मैत्रेय' कहा गया है। हरिवंश के अनुसार, यह एक शाखा-प्रवर्तक आचार्य था, जिससे 'मैत्रेय ब्राह्मण' एवं 'मैत्रायणी शाखा' उत्पन्न हुयी (ह. वं. १.३२)।

२. भृगुकुलोत्पन्न एक ऋषि, जिसकी कन्या का नाम मैत्रेयी था।

मित्रवत्—एक तपस्वी, जो सौपुर नामक नगर में रहता था। एक बार इसने शिव के मंदिर में गीता के दूसरे अध्याय का पाठ किया, जिस कारण इसके मन को पूर्णशान्ति प्राप्त हुयी।

आगे चल कर, देवशर्मा नामक एक ब्राह्मण को मनः शान्ति की इच्छा उत्पन्न हुयी। फिर मुक्तकर्मा नामक तपस्वी के कहने पर वह इसके पास आया। पश्चात् इसने देवशर्मा को भी गीता के दूसरे अध्याय का पठन करने के लिए कहा (पद्म. उ. १७६)।

२. पांचजन्य अग्नि का एक पुत्र, जो पाँच देव विनायकों में से एक माना जाता है (म. व. २१०.११)।

३. रुद्रसावर्णि मनु के पुत्रों में से एक।

मित्रवर्चस् स्थैरकायण—एक आचार्य, जो सुप्रतीत औलुण्डय नामक आचार्य का शिष्य था। इसके शिष्य का नाम ब्रह्मवृद्धि छांदोग्यमाहकि था (वं. ब्रा. १)।

'स्थिरक' का वंशज होने के कारण, इसे 'स्थैरकायण' पैतृक नाम प्राप्त हुआ होगा।

मित्रवर्धन—पांचजन्य अग्नि का पुत्र, जो पाँच देव विनायकों में से एक माना जाता है (म. व. २१०.११)।

मित्रवर्मन्—त्रिगर्तराज सुशर्मन् का भाई, जो भारतीय युद्ध में अर्जुन के द्वारा मारा गया (म. क. १९.९)।

मित्रविंद—रुद्रसावर्णि मनु का एक पुत्र।

२. एक देवता। रथन्तर नामक अग्नि को दी हुयी हवि इसे प्राप्त होती है (म. व. २१०.१९)।

मित्रविंद काश्यप—एक आचार्य, जो सुनीथ कापटव नामक आचार्य का शिष्य था। इसके शिष्य का नाम केतु वाज्य था (वं. ब्रा. १)।

मित्रविंदा—अवंतीनरेश जयसेन राजा की कन्या, जो श्रीकृष्ण की आठ पटरानियों में से एक थी। इसकी माता का नाम राजाधिदेवी था, जो श्रीकृष्ण की फूफा थी। इसे विन्द एवं अनुविंद नामक दो भाई थे।

इसके स्वयंवर के समय, श्रीकृष्ण ने इसका हरण किया। श्रीकृष्ण से इसे निम्नलिखित दस पुत्र उत्पन्न हुये थे:-वृक, हर्ष, अनिल, गृध्र, वर्धन, उन्नाद, महाश, पावन, वह्नि एवं क्षुधि (भा. १०.५८. ३०-३१; ६१.१६)।

द्वारका में इसका महल वैदूर्य मणि के समान कान्तिमान्, एवं हरे रंग का था। देवगण भी उसकी सराहना करते थे (म. स. परि. १.२१.१२६०)।

मित्रसह—इक्ष्वाकुवंशीय कल्माषपाद राजा का नामांतर।

मित्रसेन—दुर्योधन के पक्ष का एक राजा, जो अर्जुन के द्वारा मारा गया (म. क. १९.२०)। पाठभेद (भांडारकर संहिता)-'मित्रदेव'।

२. रुद्रसावर्णि मनु का एक पुत्र।

मित्रहन्—रुद्रसावर्णि मनु का एक पुत्र।

मित्रा—मैत्रेय कौषारव नामक आचार्य की माता (मैत्रेय कौषारव देखिये)।

२. देवी उमा की अनुगामिनी सखी (म. व. २२१. २०)।

मित्रातिथि—एक राजा, जो कुरुश्रवण राजा का पिता, एवं उमश्रवस् राजा का पितामह था (ऋ. १०.३३. ७)। इसकी मृत्यु के पश्चात्, कवष ऐलूष नामक ऋषि ने इसके पौत्र उमश्रवस् की सांत्वना की थी।

मित्रावरुण—'मित्र एवं वरुण' देवताओं के लिए प्रयुक्त संयुक्त नामांतर (म. श. ५३.१२; मित्र एवं वरुण देखिये)। इनका आश्रम 'कारपवनतीर्थ' के समीप था।

२. वसिष्ठकुलोत्पन्न एक प्रवर, जिनके पुत्रों का नाम अगस्त्य एवं वसिष्ठ था (भा. ६.१८.५)।

मित्रेयु—नीलवंशीय राजा मित्रयु के लिए उपलब्ध पाठभेद (मित्रयु १. देखिये)।

मिथि—(सू. निमि.) विदेह देश का एक राजा, जो निमिराजा के मृत देह का मंथन करने पर उत्पन्न हुआ था। मंथन से उत्पन्न होने के कारण, इसे 'मिथि' अथवा 'मिथिल' नाम प्राप्त हुआ था (भा. ९.१३. १३)।

विदेह देश की राजधानी मिथिला की स्थापना इसीने की थी। इसके पुत्र का नाम उदावसु था (वायु. ८९. ४-६; ब्रह्मांड. ३.६४.१-६)।

मिथिल—(सो. अज.) एक राजा, जो भरत का वंशज था। इसके पुत्र का नाम जह्नु था (म. अनु. ७. २)। महाभारत के बम्बई संस्करण में प्राप्त वंशावली में, इसके स्थान पर अजमीढ़ राजा का नाम प्राप्त है।

२. (सू. निमि.) निमिपुत्र मिथि राजा का नामान्तर।

मिथु—एक शूर दानव। एक समय सरस्वती नदी के किनारे, आर्ष्टिषेणपुत्र भर राजा अपने उपमन्यु नामक पुरोहित के साथ अश्वमेध यज्ञसमारोह कर रहा था। इसने भर एवं उपमन्यु इन दोनों को उठा कर पाताल में भगाया। पश्चात् उपमन्यु के देवापि नामक पुत्र ने शिव की उपासना कर उन दोनो की मुक्तता की (ब्रह्म. १२७. ५६-५७)।

मिश्रकेशी--एक अप्सरा, जो कश्यप एवं प्राधा की कन्या थी (म. आ. ५९.४८)। पूरु राजा के पुत्र रौद्राश्व के साथ इसका विवाह हुआ था, जिससे इसे निम्नलिखित दस महाधनुर्धर पुत्र उत्पन्न हुए थेः--अन्वग्भानु, रुचेयु, कक्षेयु (कृकणेयु), स्थंडिलेयु, वनेयु, स्थलेयु, तेजेयु, सत्येयु, धर्मेयु (धर्मेयु), एवं संतनेयु (संततेयु) (म. आ. ८९.८७३*; ८९.९-१० पाठ.)।

२. वसुदेव के भाई वत्सक राजा की पत्नी, जिससे इसे वृक आदि पुत्र उत्पन्न हुए थे (भा. ९.२४.४३; म. आ. ५९.४८)।

मिश्री--एक नाग, जो बलराम के स्वर्गारोहण के समय, उसके स्वागतार्थ प्रभासक्षेत्र में उपस्थित था।

मीढुष--शक्र नामक आदित्य का एक पुत्र। इसकी माता का नाम पौलोमी था (पौलोमी १. देखिये)।

मीढ्वस्--(सू. नरि.) एक राजा, जो भागवत के अनुसार दक्ष राजा का पुत्र था। इसके पुत्र का नाम कूर्च था।

मीनरथ--(सू. निमि.) विदेह देश का एक राजा, जो अनेनस् राजा का पुत्र था। भागवत में इसके नाम के लिए 'समरथ' पाठभेद प्राप्त है।

मुकुट--एक क्षत्रिय वंश, जिसमें 'विगाहन' नामक कुलांगार राजा उत्पन्न हुआ था।

मुकुटा--स्कंद की अनुचरी एक मातृका (म. श. ४५.२३)।

मुकुंद--एक राजा, जिसकी अस्थियाँ सहजवश यमुना नदी में गिरने के कारण यह मुक्त हुआ था। (पद्म. उ. २०९-२१०)।

मुक्त--भौत्य मन्वन्तर के सप्तर्षियों में से एक।

मुक्तकर्मन्--एक मुमुक्षु साधक, जो गीता के दूसरे अध्याय के पठन से मुक्त हुआ था (मित्रवत् देखिये)।

मुखकर्णी--स्कंद की अनुचरी एक मातृका (म. श. ४५.२८)। इसके नाम के लिए 'सुकर्णी' पाठभेद प्राप्त है।

मुखमंडिका--शिशुग्रहस्वरूपा दिति का नामान्तर (म. व. २१९.२९)।

मुखर--एक कश्यपवंशीय नाग (म. उ. १०१.१६)।

मुखसेचक--धृतराष्ट्रकुल में उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजय के सर्पसत्र में दग्ध हुआ था (म. आ. ५२.१४)। इसके नाम के लिए 'मुखमेचक' पाठभेद प्राप्त है।

मुख्य--सावर्णि मन्वन्तर का एक देवविशेष।

मुचि--एक राक्षस, जो नमुचि का छोटा भाई था। इन्द्र ने नमुचि का वध करने पर, इसने क्रुद्ध हो कर इंद्र पर आक्रमण किया। पश्चात् इंद्र ने इसका भी वध किया (पद्म. सृ. ६८)।

मुचुकुंद--(सू. इ.) एक सुविख्यात इक्ष्वाकुवंशीय राजा, जो मांधातृ राजा का तृतीय पुत्र था। राम दाशरथि के पूर्वजों में से यह इकतालिसवाँ पुरुष था। इसके नाम के लिए 'मुचकुंद' पाठभेद भी प्राप्त है (म. शां. ७५.४)।

इसकी माता का नाम बिन्दुमती था (ब्रह्मांड. ३.६३.७२; मत्स्य. १२.३५; ब्रह्म. ७.९५)। इसने नर्मदा नदी के तट पर पारिपात्र एवं ऋक्ष.पर्वतों के बीच में अपनी एक नयी राजधानी स्थापन की थी। आगे चल कर, हैहय राजा महिष्मंत ने उस नगरी को जीत लिया, एवं उसे 'माहिष्मती' नाम प्रदान किया। इससे प्रतीत होता है कि, मुचुकुंद राजा की उत्तर आयु में इक्ष्वाकु वंश की राजसत्ता काफ़ी कम हो चुकी थी। इसने 'पुरिका' नामक और एक नगरी की भी स्थापना की थी, जो विंध्य एवं ऋक्ष पर्वतों के बीच में बसी हुयी थी (ह. वं. २.३८.२; १४-२३)।

मुचुकुंद-वैश्रवण संवाद--मुचुकुंद ने अपने बाहुबल से पृथ्वी को अपने अधिकार में ला कर, उस पर राज्य स्थापित किया था। इसकी जीवनकथा एवं वैश्रवण नामक इंद्र के साथ हुआ इसके संवाद का निर्देश महाभारत में प्राप्त है, जो कुन्ती ने युधिष्ठिर को बताया था (म. उ. १३०.८-१०; शां. ७५)।

एक बार स्वबल की परीक्षा देखने के लिए इसने कुबेर पर आक्रमण कर दिया। तब कुबेर ने राक्षसों का निर्माण कर, इसकी समस्त सेना का विनाश किया। अपनी बुरी स्थिति देख कर, इसने अपना सारा दोष पुरोहितों के सर पर लादना शुरू किया। तब धर्मज्ञ वसिष्ठ ने उग्र तपश्चर्या कर राक्षसों का वध किया। उस समय कुबेर ने इससे कहा, 'तुम अपने शौर्य से मुझे युद्ध में परास्त करो। तुम ब्राह्मणों की सहायता क्यों लेते हो?' तब इसने कुबेर को तर्कपूर्ण उत्तर देते हुए कहा, 'तप तथा मंत्र का बल ब्राह्मणों के पास होता है, तथा शस्त्रविद्या क्षत्रियों के पास होती है। इस प्रकार राजा का कर्तव्य है कि, इन दोनों शक्तियों का उपयोग कर राष्ट्र का कल्याण करे'। इसके इस विवेकपूर्ण वचनों को सुन कर कुबेर ने इसे पृथ्वी का

राज्य देना चाहा, किन्तु इसने कहा, 'मैं अपने बाहुबल से पृथ्वी को जीत कर, उस पर राज्य करूंगा'।

कालयवन का वध—कालयवन नामक राक्षस एवं श्रीकृष्ण से संबंधित मुचुकुंद राजा की एक कथा पद्म, ब्रह्म, विष्णु, वायु आदि पुराणों में, एवं हरिवंश में प्राप्त है। उस कथा में इसके द्वारा कालयवन राक्षस का वध करने का निर्देश प्राप्त है। किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से यह कथा कालविपर्यस्त प्रतीत होती है?

एक बार देवासुर संग्राम में, दैत्यों के विरुद्ध लड़ने के लिए देवों ने मुचुकुंद की सहाय्यता ली थी। उस युद्ध में देवों की ओर से लड़ कर इसने दैत्यों को पराजित किया, एवं इस तरह देवों की रक्षा की।

इसकी वीरता से प्रसन्न हो कर, देवों ने इसे वर माँगने के लिए कहा। किन्तु उस समय अत्यधिक थका होने के कारण, यह निद्रित अवस्था में था। अतएव इसने वरदान माँगा, 'मैं सुख की नींद सोऊ, तथा यदि कोई मुझे उस नींद मे जगा दे, तो वह मेरी दृष्टि से जल कर खाक हो जाये'। इसके सिवाय, इसने श्रीविष्णु के दर्शन की भी इच्छा प्रकट की।

इस प्रकार पर्वत की गुफा में यह काफ़ी वर्षों तक निद्रा का सुख लेता रहा। इसी बीच एक घटना घटी। कालयवन ने कृष्ण को मारने के लिए उसका पीछा किया। कृष्ण भागता हुआ उसी गुफा में आया, जहाँ पर यह सोया हुआ था। इसके ऊपर अपना उत्तरीय डाल कर, कृष्ण स्वयं छिप गया। पीछा करता हुआ कालयवन गुफा में आया, तथा इसे कृष्ण समझ कर, लात के प्रहार से उसने इसे जगाया। मुचुकुंद बड़े क्रोध से उठा, तथा जैसे ही इसने कालयवन को देखा, वह जलकर वहीं भस्म हो गया।

कृष्णदर्शन--बाद में कृष्ण ने इसे दर्शन दे कर, राज्य की ओर जाने को कहा, तथा वर प्रदान किया, 'तुम समस्त प्राणियों के मित्र, तथा श्रेष्ठ ब्राह्मण बनोगे, तथा उसके उपरांत मुक्ति प्राप्त कर मेरी शरण मे आओगे'। श्रीकृष्ण के द्वारा पाये अशीर्वचनों से तुष्ट हो कर, यह अपनी नगरी आया। वहाँ इसने देखा कि, इसके राज्य को किसी दूसरे ने ले लिया है, एवं सभी मानव निम्न विचारधारा एवं प्रवृत्ति के हो गये है। यह देखते ही यह समझ गया कि, कलियुग का प्रारंभ हो गया है।

यह अपने नगर को छोड़ कर हिमालय के बदरिकाश्रम में जा कर तप करने लगा। वहाँ कुछ दिनों तक तपश्चर्या करने के उपरांत, राजर्षि मुचुकुंद को विष्णुपद की प्राप्ति हुयी (भा. १०.५१; विष्णु. ५.२३; ब्रह्म. १९६; ह. वं. १.१२.९; २.५७)।

संवाद—यह उन राजाओं में था, जो सायंप्रातः-स्मरणीय हैं (म. अनु. १६५.५४)। इसने परशुराम से शरणागत की रक्षा के विषय में प्रश्न किया था, और उन्होंने इसे उचित उत्तर दे कर, कपोत की कथा बता कर, इसकी जिज्ञासा शान्त की थी (म. शां. १४१-१४५)। राजा काम्बोज से इसे खड्ग की प्राप्ति हुयी थी, जिसे बाद को इसने मरुत्त को प्रदान किया (म. शां १६०.७५) गोदानमहिमा के विषय में इसका निर्देश आदरपूर्वक आता है (म. अनु. ७६.२५)। यही नहीं, अपने जीवनकाल में इसने मांस भक्षण का भी निषेध कर रक्खा था।

परिवार--इसके पुरुकुत्स और अंबरीष नामक दो भाई थे (भा. ९.६.३८; वायु. ८८.७२; विष्णु .४.२.२०)। इसकी बहनों की संख्या ५० थीं, जिनका वरण सौभरि ऋषि ने किया था (गरुड. १.१३८.२५)।

२. एक राजा, जिसकी कन्या का नाम चन्द्रभागा, तथा दामाद का नाम शोभन था (पद्म. उ. ६०)।

मुंज--एक ऋषि, जो द्वैतवन में पाण्डवों के साथ उपस्थित था।

मुंज सामश्रवस—एक राजा, जो समश्रवस् का वंशज था (जै. उ. ब्रा. ३.५.२; ष. ब्रा. ४.१)।

मुंजकेतु--युधिष्ठिर की सभा का एक राजा (म. स. ४.१८)।

मुंजकेश—एक आचार्य, जो वायु के अनुसार, व्यास की अथर्वन् शिष्यपरंपरा में से सैंधवायन नामक ऋषि का शिष्य था। अन्य पुराणों में इसे 'बभ्रु' का ही नामांतर बताया गया है। इसके नाम पर पाँच ग्रंथ उपलब्ध हैं।

२. एक क्षत्रिय राजा, जो निचंद्र नामक असुर के अंश से उत्पन्न हुआ था (म. आ. ६१.२६)। भारतीय युद्ध में पाण्डवों की ओर से इसे रणनिमंत्रण भेजा गया था (म. उ. ४.१४)।

मुंड--एक असुर, जो शुंभ एवं निशुंभ का सेनापति था। इसका निर्देश चण्ड नामक असुर के साथ प्रायः सर्वत्र प्राप्त हैं (चंडमुंड देखिये)।

२. भृगुकुलोत्पन्न गोत्रकार 'मंड' के नाम के लिए उपलब्ध पाठभेद।

३. कौरव दल का एक मुंडदेशीय योद्धा (म. भी. ५२.९ पाठ.)।

मुंडवेदांग--धृतराष्ट्रकुलोत्पन्न एक नाग, जो जनमेजय के सर्पसत्र में दग्ध हुआ था (म. आ. ५२. १५)।

मुंडी—स्कंद की अनुचरी एक मातृका (म. श. ४५. १७)। इसके नाम के लिए 'मंडोदरी' पाठभेद प्राप्त है।

मुंडिभ औदन्य (औदन्यव)-एक आचार्य (श. ब्रा. १३.३.५.४)। उदन्य का पुत्र अथवा वंशज होने से इसे 'औदन्य' पैतृक नाम प्राप्त हुआ था (तै. ब्रा. ३.९.१५. ३)। सेंट पीटर्सबर्ग कोश के अनुसार, ओदन का पुत्र होने से इसे यह नाम प्राप्त हुआ था।

अश्वमेध यज्ञ के समय, यज्ञकर्ता पुरुष के हाथों भ्रूणहत्या आदि के जो पातक होते है, उनसे मुक्तता मिलने के लिए इसने प्रायश्चित्तविधि बताया है, जो अवभृत स्नान के पहले किया जाता है।

मुद--एक ऋषि, जो स्वायंभुव मन्वन्तर के धर्म ऋषि का पुत्र था। इसकी माता का नाम तुष्टि था।

मुदावती—विदूरथ राजा की कन्या, जिसका हरण कुजृंभ नामक राक्षस ने किया था। भलंदन राजा के पुत्र वत्सप्रि ने कुजृंभ का वध किया, एवं इसे छुड़ा कर इससे विवाह किया। इसे 'सुनंदा' नामान्तर भी प्राप्त था (मार्क. ११३.६४)।

मुदावर्त--हैहयवंश का एक कुलांगार राजा (म. उ. ७२.१३)।

मुदित--राम की सेना का एक वानर।

मुदिता—सह नामक अग्नि की भार्या (म. व. २१२. १)।

मुद्गर--तक्षककुलोत्पन्न एक नाग, जो जनमेजय के सर्पसत्र में दग्ध हुआ था (म. आ. ५२.९)।

मुद्गरपर्णक--एक कश्यपवंशीय नाग, जिसका विवाह मातलि की कन्या गुणकेशी के साथ करने का प्रस्ताव नारद ने किया था (म. उ. १०१.१३)।

मुद्गरपिंडक—एक नाग, जो कश्यप एवं कद्रू का पुत्र था।

मुद्गल—एक वैदिक राजा, जिसकी पत्नी का नाम मुद्गलानी था (ऋ. १०.१०२)। ऋग्वेद में अन्यत्र इसकी पत्नी का नाम इंद्रसेना दिया गया है।

चोरों का पीछा—यह एवं इसकी पत्नी के संबंध में जो सूक्त ऋग्वेद में प्राप्त है, उसका अर्थ अत्यंत अस्पष्ट है। षड्गुरुशिष्य के अनुसार, एक समय चोरों ने इसकी सारी गायें एवं बैल चुरा लिए, केवल एक बूढ़ा बैल बच गया। पश्चात् उसे ही केवल गाडी को जोत कर इसने चोरों का पीछा किया, एवं एक लकड़ी का 'मुद्गल' (द्रुघण) को फेंक कर, भागनेवाले चोरों को पकड़ लिया (ऋग्वेद सर्वानुक्रमणी पृष्ठ १५८)। यास्क के अनुसार, इसने दो बैलों की अपेक्षा बैल एवं द्रुघण गाडी को जोत, कर, चोरों का पीछा किया था (नि. ९.२३-२४)।

पिशेल के अनुसार, रथ की एक दौड़ में अपनी पत्नी की सहायता से मुद्गल विजयी हुआ था, जिसका निर्देश ऋग्वेद के इस सूक्त किया गया है (वेदिशे स्टूडियेन १. १२४)।

२. (सो. अज.) एक राजा, जो भर्म्याश्व या भद्राश्व राजा का पुत्र था। यह एवं इसके वंशज पहले क्षत्रिय थे, किन्तु बाद को ब्राह्मण बन गये थे। इसका वंश इसी के नाम से 'मुद्गल वंश' कहलाया जाता है, एवं इसके वंश में उत्पन्न क्षत्रिय ब्राह्मण 'मुद्गल' अथवा 'मौद्गल' ब्राह्मण कहलाते है (भा. ९.२१; वायु. ९९.१९८; ब्रह्मवै. ३.४३.९७; मत्स्य. ५०.३-६; ह. वं. १.३२. ६८; मैत्रेय सोम देखिये)।

३. एक आचार्य, जिसका निर्देश वैदिक ग्रंथों में प्राप्त है (अ. वे. ४.२९,६; आश्व. श्रौ. १२.१२; बृहद्दे. ६. ४६)। इसीके वंश में निम्नलिखित आचार्य उत्पन्न हुये, जो 'मौद्गल्य' कहलाते है :—नाक, शतबलाक्ष, एवं लांगलायन।

४. वेदविद्या में पारंगत एक आचार्य, जो जनमेजय के सर्पसत्र में सदस्य था। इसे 'मौद्गल्य' नामांतर भी प्राप्त था (म. व. २४६.२७)।

यह कुरुक्षेत्र में शिलोञ्छवृत्ति से जीवन-निर्वाह करता था। एक समय दुर्वास ऋषि इसके आश्रम में आये, एवं उसने इसकी सत्वपरीक्षा लेनी चाही। किन्तु यह अपने सत्व से अटल रहा, जिस कारण प्रसन्न हो कर, दुर्वास ने इसे स्वर्गप्राप्ति का आशीर्वचन दिया। किन्तु स्वर्ग अशाश्वत होने के कारण, इसने स्वर्ग में जाने से इन्कार कर दिया (म. व. २४६-२४७)।

शतद्युम्न नामक राजा ने इसे एक सुवर्णमय भवन प्रदान किया था (म. शां. २२६.३२; अनु. १३७. २१)।

५. अत्रिकुलोत्पन्न एक गोत्रकार, जो दत्त आत्रेय का पुत्र था।

६. अंगिराकुलोत्पन्न एक गोत्रकार, मंत्रकार एवं प्रवर।

७. एक आचार्य, जो व्यास की ऋक्शिष्यपरंपरा में से देवमित्र ऋषि का शिष्य था। इसके नाम के लिए 'मौद्गल' पाठभेद प्राप्त है।

मुक्तिकोपनिषद् में इसका निर्देश उपलब्ध है (मु. उ. १.३५)। इसके नाम पर एक स्मृति भी प्राप्त है (C. C.)।

८. चोल देश के राजा का पुरोहित, जिसने अपने राजा के लिए विष्णुयाग नामक यज्ञ किया था। इसके द्वारा किया गया यह याग निष्फल शापित हुआ, जिस कारण चोल राजा ने आत्महत्या की, एवं इसने अपनी शिखा उखाड डाली। तब से मुद्गल वंश के ब्राह्मण शिखा नही रखते है (पद्म. उ. १११; स्कंद. २.४.२७)।

इसकी स्त्री का नाम भागिरथी था, जिससे इसे मौद्गल्य नामक पुत्र उत्पन्न हुआ (मौद्गल्य २. देखिये)।

पद्म में 'द्वादशीव्रत महात्म्य' कथन करने के लिए, मुद्गल नामक एक ब्राह्मण की कथा दी गयी है (पद्म. उ. ६६)। स्कंद में क्षीरकुंड का माहात्म्य कथन करने के लिए, मुद्गल की एक कथा दी गयी है (स्कंद. १.३.३७)। संभवतः इन सारी कथाओं में निर्दिष्ट मुद्गल एक ही व्यक्ति होगा।

९. एक गणेशभक्त ब्राह्मण, जिसने संभवतः गणेश-जीवन पर आधारित 'मुद्गल पुराण' की रचना की थी।

मुद्गला--एक ब्रह्मवादिनी स्त्री।

मुद्गलानी--मुद्गल नामक राजा की पत्नी, जिसे इंद्रसेना नालायनी नामान्तर भी प्राप्त था (म. व. ११४. २४; मुद्गल देखिये)। भांडारकर संहिता में इसके नाम के लिए 'नाडायनी' पाठभेद प्राप्त है।

मुद्गलायन--भृगुकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

मुनि--कश्यप ऋषि की पत्नी, जो प्राचेतस दक्ष प्रजापति की कन्या थी। इसकी माता का नाम असिक्री था। इसे कश्यप ऋषि से भीमसेन आदि सोलह देवगंधर्व पुत्र उत्पन्न हुए थे (म. आ. ५९.४१-४३; कश्यप देखिये)।

२. अहन् नामक वसु का एक पुत्र (म. आ. ६७. २३)।

३. (सो. पूरु.) कुरु राजा के पाँच पुत्रों में से एक, जिसकी माता का नाम वाहिनी था। इसे निम्नलिखित चार भाई थे:—अश्ववान्, अभिष्यन्त, चैत्ररथ एवं जनमेजय (म. आ. ८८.५०)।

४. रैवत मन्वन्तर के सप्तर्षियों में से एक।

५. दस विश्वेदेवों में से एक।

६. वैवस्वत मन्वन्तर के सप्तर्षियों में से एक।

७. प्रसूत देवों में से एक।

८. अमिताभ देवों में से एक।

९. (सू. निमि.) विदेह देश का एक राजा, जो वायु के अनुसार प्रद्युम्न राजा का पुत्र था। विष्णु एवं भागवत में इसे 'शुचि' कहा गया है।

१०. एक राजा, जो द्युतिमत् राजा के सात पुत्रों में से एक था। इसका देश (वर्ष) इसी के नाम से सुविख्यात था (मार्क. ५.२४)।

११. एक ऋषिविशेष। महाभारत एवं पुराणों में ऋषि एवं मुनियों का निर्देश अनेक बार आता है, उनमें से 'मुनि' शब्द की व्याख्या महाभारत में इसप्रकार दी गयी है:—

मौनाद्धि स मुनिर्भवति, नारण्यवसनान्मुनिः।

(म. उ. ४३.३५)।

(कोई भी साधक मौनव्रत का पालन करने से मुनि बनता है, केवल वन में रहने से नही)।

उपनिषदों के अनुसार, अध्ययन, यज्ञ, व्रत एवं श्रद्धा से जो ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करता है, उसे मुनि कहा गया है (बृ. उ. ३.४.१; ४.४.२५; तै. आ. २. २०)।

सन्तान एवं दक्षिणा की प्राप्ति आदि पार्थिव विचारों का आचरण करनेवाले व्यक्तियों को प्राचीन ग्रंथों में पुरोहित कहा गया है।

मुनिवीर्य—एक सनातन विश्वेदेव (म. अनु. ९१. ३१)।

मुनिशर्मन्--एक विष्णुभक्त ब्राह्मण। इसने पिशाच-योनि में प्रविष्ट हुए निम्नलिखित व्यक्तियों का उद्धार किया था:—वारिवाहन, चन्द्रशर्मा, वेदशर्मा, विदुर, एवं नंद (पद्म. पा.९४)।

मुमुचु--दक्षिण दिशा में रहनेवाला एक ऋषि (म. अनु.१६५.३९)।

मुर—एक दैत्य, जो ब्रह्मा के अंश से उत्पन्न हुए तालजंघ नामक दैत्य का पुत्र था। इसकी राजधानी चंद्रवती नगरी में थी। इसके नाम के लिए 'मुरु' पाठभेद प्राप्त है।

वध—ब्रह्मा के अंश से उत्पन्न होने के कारण, इसने समस्त देवों का ही नही, बल्कि साक्षात् श्रीविष्णु का भी पराजय किया। इससे घबरा कर, श्रीविष्णु ने रणभूमि से पलायन किया, एवं वह बद्रिकाश्रम की सिंहावती नामक गुँफा में योगमाया का आश्रय ले कर सो गया। किन्तु मुर

उसका पीछा करता हुआ वहाँ भी पहुँच गया। पश्चात् श्रीविष्णु ने अपनी योगमाया से एक देवी का निर्माण किया, जिसके द्वारा मुर का वध हुआ।

मुर का वध करनेवाले देवी पर श्रीविष्णु अत्यधिक प्रसन्न हुए, एवं उन्होंने उसे वर प्रदान किया, 'आज से तुम्हारा नाम 'एकादशी' रहेगा, एवं समस्त पापों का नाश करने का सामर्थ्य तुम्हे प्राप्त होगा' (पद्म. उ. ३६. ५०-८०)।

२. एक पंचमुखी राक्षस, जो नरकासुर का सेनापति था। इसे निम्नलिखित सात पुत्र थे :--ताम्र, अन्तरिक्ष, श्रवण, विभावसु, वसु, नभस्वत् एवं अरुण (भा. १०.५९.३-१०)।

इसने नरकासुर के प्राग्ज्योतिषपुर के राज्य के सीमा पर छः हजार पाश लगाये थे, जिनके किनारों पर छूरे लगाये थे। उन पाशों को इसके नाम से 'मौरव' पाश कहते थे। श्रीकृष्ण ने उन पाशों को अपने सुदर्शन चक्र से तोड़ कर, इसका एवं इसके सात पुत्रों का वध किया (म. स. परि. १.२१.१००६))

३. एक यवन राजा, जो जरासंध का मांडलिक था (म. स. १३.१३)। इसकी कन्या का नाम मौर्वी कामकटंकटा था, जो घटोत्कच को विवाह में दी गयी थी (घटोत्कच देखिये)।

४. एक राक्षस, जो कश्यप एवं दनु के पुत्रों में से एक था। शिव की तपस्या कर, इसने उससे वर प्राप्त किया था कि, अपना हाथ यह जिसके हृदय पर रखेगा वह तत्काल मृत होगा।

श्वेतद्वीप में इसका एवं श्रीकृष्ण का युद्ध हुआ, जिसमें इसका हाथ इसीके हृदय पर रखने के लिए कृष्ण ने इसे विवश किया, एवं इसका वध किया (वामन. ६०-६१)। इसका वध करने के कारण, कृष्णरूपधारी श्रीविष्णु को 'मुरारि' नाम प्राप्त हुआ।

मुरु--मुर राक्षस के नाम के लिए उपलब्ध पाठभेद (मुर. १.२. ३. देखिये)।

मुष्कवत्--इंद्र नामक वैदिक सूक्तद्रष्टा का विशेषण।

मुष्टिक--वसिष्ठपुत्र 'महोदय' का नामांतर। विश्वामित्र के शाप के कारण, महोदय को एवं उसके भाईयों को निषाद बनना पड़ा, जिस समय उन्हे यह नाम प्राप्त हुआ था (वा. रा. बा. ५९.२०-२१; ६०.१)।

२. कंससभा का एक मल्ल, जो बलराम के द्वारा मारा गया था (भा. १०.४४.२४)।

मुसल--विश्वामित्र के ब्रह्मवादी पुत्रों में से एक (म. अनु. ४.५३)।

मुहूर्त--एक देवसमूह, जो धर्मऋषि एवं मुहूर्ता के पुत्र थे।

मुहूर्ता--धर्मऋषि की पत्नी, जो प्राचेतस दक्ष की कन्याओं में से एक थी। मुहूर्त नामक देवसमूह इसी के ही पुत्र थे (भा. ६.६.४-९)।

मूक--हिरण्यकशिपु के वंश का एक राक्षस, जो सुंद एवं ताटका का पुत्र था।

२. तक्षक वंश का एक नाग, जो जनमेजय के सर्पसत्र में दग्ध हुआ था (म. आ. ५२.८)।

३. एक चाण्डाल, जो अत्यंत मातृभक्त एवं पितृभक्त था। नरोत्तम नामक एक ब्राह्मण इसके पास उपदेशप्राप्ति के लिए आया था (पद्म. सृ. ५०; नरोत्तम देखिये)।

४. एक दानव, जो इंद्रकील पर्वत पर रहता था। उस पर्वत पर तपस्या करने के लिए आये अर्जुन को, इसने वराहरूप धारण कर काफ़ी त्रस्त किया था, जिस कारण अर्जुन ने इसका वध किया था (म. व. ४०.७-३३)।

शिवपुराण के अनुसार, इसीके ही कारण किरातरूपधारी शंकर एवं अर्जुन का युद्ध हुआ था। एक समय, यह वराह रूप धारण कर घुमता था, जब किरात एवं अर्जुन दोनों ने ही इसे बाण मार कर विद्ध किया। तदोपरान्त इस वराह का वध किसने किया, इस संबंध में किरात एवं अर्जुन के बीच वाद-विवाद हुआ, जिस कारण सुविख्यात 'किरातार्जुननीय' युद्ध हुआ (शिव. शत. ४१)।

मूचीप (मूवीप)--एक बर्बर जाति, जो संभवतः 'मूतिब' का पाठभेद है (सां. श्रौ. १२.२६-६)।

मूजवंत--एक जाति, जिसका निर्देश महावृष, गंधार एवं बह्लिक लोगों के साथ प्राप्त है (अ. वे. ५.२२. ५)। संभवतः ये सारी जातियाँ समाज से बहिष्कृत थी, जिस कारण ज्वर को इन लोगों के प्रदेश मे जाने की प्रार्थना की गयी है। एक दूरस्थ लोगों के रूप में इनका निर्देश यजुर्वेद संहिताओं में भी प्राप्त है (तै. सं. १.८; का. सं. ९.७)।

काश्मीर की दक्षिणपश्चिमी निचली पहडीयों को मूजवंत पर्वत कहा जाता था। संभव है, उसी पर्वत के नाम से इन लोगों को 'मूजवंत' नाम प्राप्त हुआ होगा। बाद के महाकाव्य में मूजवंत पर्वत को हिमालय के अंतर्गत एक पर्वत बताया गया है।

ऋग्वेद में सोम को 'मौजवंत' (मूजवंत पर्वत से प्राप्त) कहा गया है (ऋ. १०.३४.१)।

मूढ--एक राक्षस, जिसका ऋषिका नामक उपासिका के लिए शिव नें वध किया था (शिव. कोटि. ७)।

मूतिव--एक बर्बर जाति, जो विश्वमित्र की जाति-बहिष्कृत संतानों में से एक थी (ऐ. ब्रा. ७.१८.२)। इनके नाम के लिए 'मूचीप' अथवा 'मूवीप' पाठभेद भी प्राप्त है (सां. श्रौ. १५.२६.६)।

मूर्तरय--(सो. अमा.) कान्यकुब्ज देश का एक राजा, जो कुश राजा का पुत्र था (भा. ९.१५.४)। ब्रह्म में इसे 'मूर्तिमत्', एवं विष्णु में इसे 'अमूर्तरयस्' कहा गया है (ब्रह्म. १०.३३; अमूर्तरयस् देखिये)। इसने धर्मारण्य नामक नगर बसाया था (वा. रा. बा. ३२. २)।

मूर्ति--प्राचेतस दक्ष की सोलह कन्याओं में से एक, जो धर्मऋषि की पत्नी थी। यह नर एवं नारायण की माता थी (भा. ४.१.५२)।

२. स्वारोचिष मन्वन्तर का एक प्रजापति, जो वसिष्ठ ऋषि के पुत्रों में से एक था।

३. स्वारोचिष मनु के पुत्रों में से एक।

४. ब्रह्मसावर्णि मन्वन्तर के सप्तर्षियों में से एक।

मूर्तिमत्--मूर्तरय नामक राजा के नाम के लिए उपलब्ध पाठभेद (मूर्तरय देखिये)।

२. (सो. पूरु.) एक पूरुवंशीय राजा, जो मत्स्य के अनुसार अन्तिनार राजा का पुत्र था।

मूर्धन्--एक देव, जो भृगु एवं पौलोमी के पुत्रों में से एक था।

मूर्धन्वत् आंगिरस (वामदेव्य)--एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. १०.८८)।

मूल--सोम की पत्नियों में से एक।

मूलक--(सू. इ.) एक इक्ष्वाकुवंशीय राजा, जो नारीकवच नाम से सुविख्यात था। भागवत, विष्णु एवं वायु के अनुसार, यह अश्मक राजा का पुत्र था। परशुराम के डर से, यह स्त्रियों में छिपा रहने के लिए विवश हुआ। इस कारण इसे 'नारीकवच' नाम प्राप्त हुआ।

ऐतिहासिक दृष्टि से, अश्मक एवं मूलक राजाओं से परशुराम काफ़ी पूर्वकालीन माना जाता है। इक्ष्वाकुवंशीय कल्माषपाद राजा के पश्चात् अयोध्या का राज्य काफ़ी कमजोर हुआ। इसी के कारण, मूलक राजा का संवर्धन काफ़ी गुप्तता से किया गया होगा, जिसका संकेत इसके 'नारीकवच' नाम के जनश्रुति में प्राप्त है।

इसके पुत्र का नाम दशरथ था, जिससे आगे चल कर इक्ष्वाकुवंश का विस्तार हुआ!

२. एक राक्षस, जो कुंभकर्ण का पुत्र था। इसका जन्म मूल नक्षत्र में होने के कारण, कुंभकर्ण ने इसे अशुभ मान कर फेंक दिया था। किन्तु मधुमक्खियों ने इसे शहद पिला कर बड़ा किया।

बड़ा होने पर यह अत्यंत बलवान् हुआ, एवं समस्त पृथ्वी को त्रस्त करने लगा। इसी कारण सीता ने राम के द्वारा इसका वध करवाया (आ. रा. राज्य. ५-६)।

मूलचारिन्--एक आचार्य, जो वायु के अनुसार व्यास की सामशिष्यपरंपरा में से लौगाक्षि नामक ऋषि का शिष्य था।

मूलमित्र गोभिल--एक आचार्य, जो वत्समित्र गोभिल का शिष्य था। इसके शिष्य का नाम वरुणमित्र गोभिल था (वं. ब्रा. ३)।

मूलहर--अंगिराकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

मूषकाद (मूषिकाद)--एक नाग, जो कश्यप एवं कद्रू के पुत्रों में से एक था। इंद्रसारथी मातलि को नारद ने इसका परिचय कराया था (म. उ. १०१.१४)।

मृकंड (मृकंडु)--स्वायंभुव मन्वन्तर का एक ऋषि, जो धाता ऋषि का पुत्र था। इसकी माता का नाम आयति था। इसकी पत्नी का नाम मनस्विनी था, जिससे इसे मार्कंडेय नामक सुविख्यात पुत्र उत्पन्न हुआ (भा. ४.१.४३-४४; ब्रह्मांड. २.१-६; मार्क. ४९.२०)।

विष्णु, नारद, वायु एवं मार्कंडेय में इसके नाम के लिए 'मृकंडु' पाठभेद प्राप्त है (विष्णु. १.१०; वायु. २८.५; नारद. १.४)। इसने एक 'अयुत युग' तक शालिग्रामतीर्थ पर तपस्या की थी।

मृक्तवाह द्वित आत्रेय--एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. ५.१८; द्वित देखिये)।

मृग--सोम की पत्नियों में से एक।

२. भृगुकुलोत्पन्न एक गोत्रकार। इसके नाम के लिए 'भृत' पाठभेद प्राप्त है।

मृगकेतु--कश्यपकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

मृगमंदा--पुलह ऋषि की पत्नी, जो कश्यप एवं क्रोधा की कन्याओं में से एक थी। इससे रीछ आदि प्राणी उत्पन्न हुए (म. आ. ६०.६०)।

मृगय—एक दानव, जिसे इंद्र ने श्रुतर्वन् आर्क्ष राजा की रक्षा के लिए परास्त किया था (ऋ. १०.४९.५)।

२. कश्यपकुलोत्पन्न एक गोत्रकार ऋषिगण।

मृगवती—कृतवर्मा राजा की कन्या, जो पूर्वजन्म में अलंबुसा नामक देवस्त्री थी (अलंबुसा देखिये)।

मृगव्याध—ग्यारह रुद्रों में से एक, जो ब्रह्माजी के आत्मज स्थाणु का पुत्र था। यह आकाश में मृग नामक नक्षत्र के रूप में दिखाई देता है (ऐ. ब्रा. ३.३३)।

मृगी—पुलह ऋषि की एक पत्नी, जो कश्यप एवं क्रोधा की कन्याओं में से एक थी। संसार के समस्त मृग इसीके ही संतान माने जाते हैं।

मृगेंद्रस्वातिकर्ण—(आंध्र. भविष्य.) एक आंध्रवंशीय राजा, जो मत्स्य के अनुसार स्कंदस्वाति राजा का पुत्र था। इसने तीन वर्षों तक राज्य किया था।

मृतपस्—दानवों के सुविख्यात दस कुलों में से एक (म. आ. ५९.२८)।

मृत्यु—एक स्त्रीदेवता, जो ब्रह्मा के द्वारा जगत्-संहार के लिए उत्पन्न की गयी थी। ऋग्वेद एवं महाभारतादि ग्रंथों में निर्दिष्ट यमदेवता से इसका काफी साम्य है। ऋग्वेद में कई स्थानों पर इसे यम से समीकृत किया गया है (ऋ. १.१६५)। अथर्ववेद में मृत्यु को यम का दूत कहा गया है (अ. वे. ५.३०)। उसी ग्रंथ में अन्यत्र मृत्यु को मनुष्यों का, एवं यम को पितरों का अधिपति कहा गया है (अ. वे. ५.२४)। यम के भाँति, इसे भी समस्त प्राणियों का नाशक माना गया है (यम देखिये)।

ब्रह्मा से संवाद—इसकी उत्पत्ति के पश्चात् ब्रह्मा ने इसे जगत्क्षय करने के लिए कहा। ब्रह्मा के इस आज्ञा को सुन कर, यह रोदन करने लगी, एवं इसने उसकी प्रार्थना की, 'मृत्यु से प्राणिमात्र को अत्यंत दुःख होता है। अतः यह कार्य मैं करना नही चाहती हूँ'। उस पर ब्रह्मा ने इसे कहा, 'जगत्संहार का प्रत्यक्ष काम रोग करेंगे। उस संहार का तुम्हे केवल निमित्त बनना है। उत्पत्ति की तरह मृत्यु भी हर एक प्राणिमात्र के लिए आवश्यक है, एवं वही कार्य तुम्हे करना है' (म. द्रो. परि. १. क्र. ८. पंक्ति ६७–२१५; शां. २४९–२५०)।

सनत्सुजातआख्यान—महाभारत के 'सनत्सुजातीय' नामक आख्यान में, मृत्यु के संबंध में तात्विक विवेचन प्राप्त है। उस आख्यान में धृतराष्ट्र सनत्सुजात नामक ऋषि से प्रश्न करता है, 'देव एवं असुर ब्रह्मचर्य से मृत्यु पर विजय पा सकते है, इस प्रकार तुम्हारा कहना है। फिर भी मृत्यु समस्त प्राणिजातियों के लिए अटल दिखाई देता है। इस मृत्यु पर विजय पानी हो, तो क्या करना चाहिये'? इस प्रश्न पर सनत्सुजात जवाब देते है:—

'धीरास्तु धैर्येण तरन्ति मृत्युम्।

(धैर्यशील लोग अपने धैर्य से मृत्यु पर विजय पाते है) (म. उ. ४२.१२)।

मृत्यु से बचने एवं दीर्घायु प्राप्त करने के लिए, अथर्ववेद में अनेक प्रकार के अभिचार दिये गये है (अ. वे. ६२)।

महाभारत में, मृत्यु एवं इक्ष्वाकु के बीच हुआ संवाद प्राप्त है (म. शां. १९२)। उसी ग्रंथ में अन्यत्र इसे कर्माधीन एवं परतंत्र कहा गया है (म. अनु. १.७४)।

२. समस्त प्राणियोंका नाश करनेवाला एक पुरुषदेवता, जो अधर्म एवं निर्ऋति के तीन पुत्रों में से एक था। यह समस्त लोगों का अंतक है, इसी कारण इसे कोई पत्नी, या पुत्र न थे (म. आ. ६०.५३; ५४९*)।

अर्जुनक नामक व्याध एवं सर्प से इसका संवाद हुआ था (म. अनु. १.५०–६७)। इसने नचिकेतस् को ब्रह्मविद्या सिखायी थी (क. उ. ३.१६; ६.१८)।

३. एक आचार्य, जो प्रजापति नामक आचार्य का शिष्य था। इसके शिष्य का नाम वायु था (वं. ब्रा. २)।

४. कलि एवं दुरुक्ति की कन्याओं में से एक।

५. एक व्यास (व्यास देखिये)।

६. वेन नामक सुविख्यात राजा का मातामह, जिसकी मानसकन्या का नाम सुनीथा था (वेन. २ देखिये)।

मृद—(सो. वृष्णि.) एक यादव राजा, जो विष्णु के अनुसार श्वफल्क राजा का पुत्र था।

मृदु—(सो. कुरु. भविष्य.) एक राजा, जो विष्णु के अनुसार नृपंजय राजा का पुत्र था।

मृदुर—(सो. वृष्णि.) एक यादव राजा, जो वायु एवं भागवत के अनुसार श्वफल्क राजा का पुत्र था।

मृदवित्—एक यादव राजा, जो भागवत के अनुसार श्वफल्क राजा का पुत्र था।

मृध्रवाच्—दस्यु लोगों का नामान्तर। मृध्रवाच का शब्दशः अर्थ 'शत्रु की भाषा बोलनेवाला' होता है, एवं इसी अर्थ से दस्युओं के लिए इस शब्द का प्रयोग किया गया है (दस्यु देखिये)।

मृलिक—एक देव, जो स्वायंभुव मन्वन्तर के जिदाजित् देवों में से एक था।

मृळिक वसिष्ठ--एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. ९.९७. २५-२७; १०.१५०)।

मृषा--अधर्म की पत्नी, जिसे दम्भ एवं माया नामक दो सन्तानें थी (भा. ४.८.२)।

मेकल--एक लोकसमूह, जो पहले क्षत्रिय था, किन्तु ब्राह्मणों के साथ ईर्ष्या करने से नीच हुआ (म. अनु. ३५.१७-१८)। भारतीय युद्ध में ये लोग कोसलनरेश बृहद्बल के साथ उपस्थित थे, एवं भीष्म की रक्षा करते थे (म. भी. ४७.१३)।

२. (भविष्य.) एक राजवंश, जो वायु के अनुसार पट्टमित्र राजा के पश्चात् उत्पन्न हुआ था।

मेघ--तारकासुर के पक्ष का एक असुर।

२. स्वायंभुव मनु के पुत्रों में से एक।

३. (भविष्य.) एक राजवंश, जो कोमल नामक नगरी में राज्य करता था। ब्रह्मांड के अनुसार इस वंश में नौ राजा, एवं वायु के अनुसार सात राजा थे (नल देखिये)।

मेघकर्णा--स्कंद की अनुचरी एक मातृका (म. श. ४५.२६)।

मेघजाति--(सो. पुरूरवस्.) एक राजा, जो वायु के अनुसार पुरूरवस् राजा का पुत्र था।

मेघनाद--रावणपुत्र 'इंद्रजित्' का नामांतर (इंद्रजित् १. देखिये)।

२. घटोत्कचपुत्र मेघवर्ण' का नामांतर (मेघवर्ण १. देखिये)।

३. स्कंद का एक सैनिक (म. श. ४४.५७)।

मेघनिनाद--घटोत्कच का पुत्र 'मेघवर्ण' का नामांतर (मेघवर्ण १. देखिये)।

२. रावणपुत्र 'इंद्रजित्' का नामांतर (इंद्रजित् १. देखिये)।

मेघपृष्ठ--(स्वा. प्रिय.) एक राजा, जो घृतपृष्ठ राजा का पुत्र था।

मेघमाला--स्कंद की अनुचरी एक मातृका (म. श. ४५.२८)।

मेघमालिन्--खर राक्षस का एक अमात्य।

२. स्कंद का एक पार्षद, जो उसे मेरु के द्वारा प्रदान किया गया था। दूसरे पार्षद का नाम 'कांचन' था (म. श. ४४.४३)।

मेघवत्--एक दानव, जो कश्यप एवं दनु के पुत्रों में से एक था।

मेघवर्ण--घटोत्कच का पुत्र, जिसे 'मेघनाद' एवं 'मेघनिनाद' नामांतर प्राप्त थे। पाण्डवों के अश्वमेध यज्ञ के समय, यह अश्वरक्षणार्थ अर्जुन के साथ उपस्थित था।

२. एक यक्ष, जो मणिवर एवं देवजनी के पुत्रों में से एक था।

मेघवर्णा--स्कंद की अनुचरी एक मातृका (म. श. ४५.२८)। पाठभेद-'एकचक्रा'।

मेघवासस्--वरुण की सभा का एक असुर (म. स. ९.१४)।

मेघवाह--जैगीषव्य नामक शिवावतार का एक शिष्य।

मेघवाहन--जरासंध का अनुयायी एक नृप (म. स. १३.१२)।

२. एक दैत्य, जो विष्णु के पदप्रहार से मृत हुआ (स्कंद. ७.१.२४)।

मेघवाहिनी--स्कंद की अनुचरी एक मातृका (म. श. ४५.१७)। पाठभेद-'मेघवासिनी'।

मेघवेग--कौरव पक्ष का एक वीर, जो अभिमन्यु के द्वारा मारा गया (म. द्रो. ४८.१६)।

मेघशर्मन्--एक सूर्यभक्त ब्राह्मण, जिसने सूर्य का जाप कर शन्तनु के राज्य में पर्जन्यवृष्टि करायी (भवि. प्रति. ४.८)।

मेघसंधि--(सो. मगध. भविष्य.) मगध देश का एक राजकुमार, जो जरासंध का पौत्र, एवं सहदेव राजा का पुत्र था। पुराणों में इसके 'मार्जारि', 'सोमाधि' एवं 'सोमापि' आदि नामांतर प्राप्त हैं।

अपने पिता सहदेव के साथ यह द्रौपदीस्वयंवर में उपस्थित था (म. आ. १७७.७)। पाण्डवों के अश्वमेध यज्ञ का अश्व इसने रोका था, एवं अर्जुन से युद्ध भी किया था। किंतु इस युद्ध में अर्जुन ने इसे पराजित किया (म. आश्व. ८३)।

मेघस्वना--स्कंद की अनुचरी एक मातृका (म. श. ४५.८)।

मेघस्वाति--(आंध्र. भविष्य.) एक आंध्रवंशीय राजा, जो भागवत के अनुसार चिबीलक राजा का, विष्णु के अनुसार दिवीलक राजा का, एवं मत्स्य के अनुसार अपीतक राजा का पुत्र था।

मेघहन्त--सुमेधस् देवों में से एक।

मेघहास--राहु का एक पुत्र। अपने पिता का श्रीविष्णु के द्वारा शिरच्छेद हुआ, यह सुन कर इसने गौतमी नदी के तट पर घोर तपस्या की। इस तपस्या से,

इसने अपने पिता को आकाश की ग्रहमाला में स्थान, एवं स्वयं के लिए 'नैर्ऋताधिपत्व' प्राप्त किया (ब्रह्म. १४२)।

मेचक—धृतराष्ट्रकुलोत्पन्न 'सेचक' नामक सर्प का नामान्तर (सेचक देखिये)।

मेद—ऐरावतकुल में उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजय के सर्पसत्र में दग्ध हुआ।

मेदिनी—पृथ्वी का एक नाम। भगवान् विष्णु के द्वारा मधु एवं कैटभ नामक दो दैत्यों का वध होने पर, उनकी लाशें जल में डूब कर एक हो गयी, एवं उन्हीके मेद से सारी पृथ्वी आच्छादित हो गयी। इसी कारण पृथ्वी को 'मेदिनी' नाम प्राप्त हुआ (मधुकैटभ देखिये)।

मेदोहन—भीषण नामक राक्षस का पुरोहित।

मेध—एक यज्ञकर्ता आचार्य, जिसका निर्देश कण्व एवं दीर्घनीथ लोगों के साथ प्राप्त है (ऋ. ८.५०.१०)।

२. (स्वा. प्रिय.) एक राजा, जो प्रियव्रत राजा का पुत्र था (मार्क. ५०.१६)।

मेधज—सुमेधस् देवों में से एक।

मेधस्—स्वायंभुव मनु के पुत्रों में से एक।

२. सुमेधस् देवों में से एक।

मेधा—दक्ष प्रजापति की कन्या एवं धर्म ऋषि की पत्नी। इसके पुत्र का नाम स्मृति था।

मेधातिथि—(स्वा. प्रिय.) शाकद्वीप का एक सुविख्यात राजा, जो प्रियव्रत एवं बर्हिष्मती के पुत्रों में से एक था। इसे निम्नलिखित सात पुत्र थे:-पुरोजव, मनोजव, पवमान, धूम्रानीक, चित्ररेफ, बहुरूप, एवं विश्वाधार। अपने दधिसमुद्र से वेष्टित शाकद्वीप के राज्य के सात विभाग कर, इसने अपने उपरनिर्दिष्ट पुत्रों में बाँट दिये (भा. ५.१.२०-२५)।

मार्कंडेय के अनुसार, यह प्लक्षद्वीप का राजा था, एवं इसने उस द्वीप के सात भाग कर, अपने निम्नलिखित भाईयों में बाँट दिये थे:—शाकमव, शिशिर, सुखोदय, आनंद, शिव, क्षेमक एवं ध्रुव। आगे चल कर प्लक्षद्वीप के ये सात भाग इसके भाईयों के सात नाम से सुविख्यात हुयें (मार्क. २९-३१)।

२. एक ऋषि, जो वसिष्ठ की अरुन्धती नामक पत्नी का पिता था। इसका आश्रम चन्द्रभागा नदी के तट पर था। इसने ज्योतिष्टोम नामक यज्ञ किया था (कालि. २२)।

३. वैवस्वत मन्वन्तर का सत्रहवाँ व्यास।

४. एक प्राचीन महर्षि, जिसका पिता कण्व पूरब के सप्तर्षियों में से एक था (म. शां. २०१.२६)।

महाभारत के अनुसार, यह एक दिव्य महर्षि था, एवं इसने वानप्रस्थाश्रम का स्वीकार कर, स्वर्ग-प्राप्ति की थी (म. शां. २३६.१५)। उपरिचर वसु राजा के यज्ञ का यह एक सदस्य था (म. शां. ३२३.७)। यह इंद्रसभा का भी सदस्य था (म. स. ७.१५)। शरशय्या पर पड़े हुए भीष्म से यह मिलने के लिये आया था, एवं युधिष्ठिर के द्वारा यह पूजित हुआ था (म. अनु. २६. ३-९)।

५. सुमेधस् देवों में से एक।

६. एक ऋषि, जो परिक्षित राजा की मृत्यु के समय उपस्थित था (भा. १.१९.१०)।

७. दक्षसावर्णि मन्वन्तर के सप्तर्षियों में से एक।

मेधातिथि काण्व—एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. १. १२-२३; ८.१.३-२९; २.४१-४२; ९२)। ऋग्वेद में अन्यत्र इसका निर्देश 'मेध्यातिथि काण्व' नाम से प्राप्त है (ऋ. १.३६.१०)। इसने स्वयं को 'काण्व मेधातिथि' कहलाया है (ऋ. ८.२०.४०)।

वैदिकऋषि—यह कण्व का वंशज, एवं प्रसिद्ध वैदिक ऋषि था। ऋग्वेद के अनुसार, इंद्र इसके पास एक मेष के रूप में आया था (ऋ. ८.२.४०)। यही पुराकथा सुविख्यात 'सुब्रह्मण्य मंत्र' में भी निहित है, जिसमें इन्द्र को 'मेधातिथि का मेष' कहा गया है, एवं जिसका पाठन यज्ञमंडप में सोम को ले आते समय पुरोहित करते है (जै. ब्रा. २.७९; श. ब्रा. ३.३.४.१८)।

पंचविंश ब्राह्मण में, इसके एवं वत्स ऋषि के दरम्यान हुए वादसंवाद का निर्देश प्राप्त है, जहाँ इसने उसे हीन-कुलत्व का लांच्छन लगाया था। किन्तु वत्स ने अग्निपरीक्षा के द्वारा, अपने कुल की श्रेष्ठता साबित की थी (पं. ब्रा. १४.६.६)।

यह विभिन्दुकियों के यज्ञ का बृहस्पति था, जिन्होने इसे विपुल गायें प्रदान की थी (जै. ब्रा. ३.२३३)। आसंग राजा ने भी इसे विपुल धन प्रदान किया था। अतः इसने उसकी स्तुति की थी (ऋ. ८.२.४१-४२)। अथर्ववेद में इसका उल्लेख अनेक ऋषियों के साथ प्राप्त हैं (अ. वे. ४.२९.६)।

काण्वशाखा—आंगिरस गोत्र के लोगों में से 'काण्व' अथवा 'काण्वायन' गोत्र के आदिपुरुष मेधातिथि, एवं इसके पिता कण्व माने जाते है। वायु, मत्स्य, विष्णु एवं गरुड

के अनुसार, सुविख्यात पौरव राजा अजमीढ को कण्व-नामक एक पुत्र था, जिसका पुत्र मेधातिथि था। आगे चल कर, इसी मेधातिथि से काण्वायन ब्राह्मण उत्पन्न हुए (मत्स्य. ४९.४६-४७; वायु. ९९.१६९-१७०)।

इसी 'काण्वायन' गोत्र में निम्नलिखित वैदिक सूक्तद्रष्टा आचार्य उत्पन्न हुए थे:—प्रगाथ काण्व (ऋ. ८.६५.१२ बृहद्दे. ६.३५-३९); पृषध्र काण्व, जो दस्यवेवृक का समकालीन था (ऋ. ८.५६.१-२); देवातिथि काण्व (ऋ. ८.४.१७); वत्स काण्व (ऋ. ८.६.४७); सध्वंस काण्व (ऋ. ८.८.४)।

मेधातिथि गौतम—एक ऋषि, जिसकी पत्नी का नाम अहल्या, एवं पुत्र का नाम चिरकारिन् था (चिरकारिन् देखिये)।

मेधाविन्—एक उद्दण्ड ऋषिपुत्र, जो बालधि ऋषि का पुत्र था। इसकी आयु पर्वतों पर निर्भर थी, इसलिए इसे 'पर्वतायु' भी कहते थे। धनुषाक्ष नामक मुनि ने इसकी आयु के निमित्तभूत पर्वतों को भैंसों से विदीर्ण करा दिया, जिस कारण इसकी मृत्यु हुयी (म. व. १३४; बालधि देखिये)।

२. एक ब्राह्मण बालक, जिसने अपने पिता को संसार की क्षणभंगुरता बता कर मोक्ष एवं धर्म की ओर प्रेरित किया था (म. शां. १६९)। यही कथा मार्कंडेय में अधिक विस्तृत रूप में प्राप्त है (मार्कं. १०)।

बौद्धधर्मीय 'धम्मपद' में, एव जैनधर्मीय 'उत्तराध्यायन सूत्र' में यही कथा कुछ अलग ढंग से प्राप्त है, जहाँ इसे राजकुमार मृगपुत्र कहा गया है (धम्म. ४. ४७-४८; उत्तराध्यायन. १४.२१-२३)। इससे प्रतीत होता है कि, तत्कालीन समाज में प्रचलित एक ही लोककथा के आधार पर, इन तीनों कथाओं की रचना की गयी हैं। इनमें से महाभारत में प्राप्त कथा सर्वाधिक सुयोग्य प्रतीत होती है।

३. (सो. कुरु. भविष्य.) एक कुरुवंशीय राजा, जो विष्णु, वायु एवं भागवत के अनुसार सुनय राजा का, एवं मत्स्य के अनुसार सुतपस् राजा का पुत्र था।

४. च्यवन ऋषि का एक पुत्र, जिसकी कथा 'पापमोचनी एकादशी' का माहात्म्य बताने के लिए पद्म में दी गयी है।

पापमोचनी एकादशी—एक बार चैत्ररथ नामक वन में इसकी मंजुघोषा नामक अप्सरा से भेंट हुयी। उसके रूप-यौवन से यह मोहित हुआ, एवं अपनी तपस्या छोड़ कर, यह उसीके साथ रहने लगा।

इस तरह अनेक साल बीत जाने पर मंजुघोषा ने इसे समय की कल्पना दी। फिर अपने तपःक्षय के विचार से यह विव्हल हो उठा, एवं इसने मंजुघोषा को पिशाच्च बनने का शाप दिया। उसके द्वारा दया की याचना की जाने पर, इसने उःशाप दिया, 'चैत्र माह के कृष्णपक्ष की पापमोचनी एकादशी का व्रत करने पर तुम्हे मुक्ति प्राप्त होगी।'

आगे चल कर, अपने पिता के कहने पर इसने भी उसी एकादशी का व्रत किया, जिस कारण इसे मुक्ति प्राप्त हुयी (पद्म. उ. ४६)।

मेधाविनी—कुलिंद राजा की पत्नी, जिसके पुत्र का नाम चंद्रहास था।

मेध्य—एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. ८.५३-५४; ५७-५८)। ऋग्वेद के वालखिल्य सूक्त में इसका मेध्य एवं मातरिश्वन् के साथ निर्देश प्राप्त है (ऋ. ८. ५२.२)।

२. स्वायंभुव मनु के पुत्रों में से एक।

मेध्यातिथि काण्व—मेधातिथि काण्व नामक वैदिक ऋषि का नामान्तर (मेधातिथि काण्व देखिये)। ऋग्वेद में इसे वैदिक सूक्तद्रष्टा बताया गया है (ऋ. ८.३; ३३; ९.४१-४३)।

मेनका—स्वर्गलोक की एक श्रेष्ठ अप्सरा, जो कश्यप एवं प्राधा की कन्याओं में से एक थी। इसकी गणना छः प्रधान अप्सराओं में की जाती थी (म. आ. ६८. ६७)। अर्जुन के जन्मोत्सव में, एवं उसके स्वागत-समारोह में इसने नृत्य किया था (म. आ. ११४.५३; व. ४४.२९)।

ऋग्वेद एवं ब्राह्मण ग्रंथों में इसे वृषणश्व की पुत्री अथवा कन्या कहा गया है (ऋ. १.५१.१३; श. ब्रा. ३.३.४.१८)। उन्ही ग्रंथों में वृषणश्व की एक उपाधि 'मेन' दी गयी है, जिस कारण इसे मेनका नाम प्राप्त हुआ होगा (ष. ब्रा. १.१)।

विवाह—इसे ऊर्णायु गंधर्व की पत्नी कहा गया है। गंधर्वराज विश्वावसु से इसे प्रमद्वरा नामक कन्या उत्पन्न हुयी थी। स्थूलकेश ऋषि के आश्रम में प्रमद्वरा को जन्म दे कर, इसने उसे वहीं त्याग दिया (म. आ. ८.६-८)।

इसके लावण्य से पृषत् राजा मोहित हुआ था, जिससे इसे द्रुपद नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था।

विश्वामित्र की तपस्या में बाधा डालने के लिए, इंद्र ने इसे उसके पास भेजा दिया था। इसने विश्वामित्र को मोहित कर, उसका तपोभंग किया। उससे इसे शकुन्तला नामक कन्या उत्पन्न हुयी। इसके अतिरिक्त, इसके वध्न्यश्व नामक एक पति का भी निर्देश प्राप्त है।

२. पितृकन्या मेना का नामान्तर।

३. पितृकन्या मेना की एक कन्या।

मेना—एक पितृकन्या, जो आप्य नामक पितरों की कन्या, एवं हिमवत् की पत्नी थी। कई ग्रंथों में इसे वैराज नामक पितरों की मानसकन्या कहा गया है।

इसे मैनाक तथा क्रौंच नामक दो पुत्र, एवं अपर्णा, एकपर्णा, एकपाताला एवं मेनका नामक चार कन्याएँ थी (भा. ४७; ह. वं. १.१८.११-१५; मार्क. ५०.१६; मत्स्य. १३; पितर देखिये)।

मेरु—एक पर्वत, जिसे निम्नलिखित नौ कन्याएँ थी:—मेरुदेवी, प्रतिरूपा, उग्रदंष्ट्री, लता, रम्या, श्यामा, नारी, भद्रा, एवं देववीति। मेरू की इन नौ कन्याओं के विवाह सुविख्यात सम्राट आग्नीध्र के नौ पुत्रों के साथ हुए थे (भा. ५.२.२३; आग्नीध्र देखिये)।

भागवत में इसके आयति एवं नियति नामक और दो कन्याओं का निर्देश प्राप्त है, जिनके विवाह क्रमशः धातृ एवं विधातृ से हुए थे (भा. ४.१.४४)।

मेरुदेवी—मेरुपर्वत की एक कन्या, जिसका विवाह आग्नीध्र राजा का पुत्र नाभि राजा से हुआ था। इसके पुत्र का नाम ऋषभदेव था (भा. १.३.१३; ५.४.२)।

मेरुसावर्णि अथवा **मेरुसावर्ण**—एक ऋषि, जिसने युधिष्ठिर को हिमालय पर्वत पर धर्म एवं ज्ञान का उपदेश दिया था (म. स. ६९.१२)। यह अत्यंत तपस्वी, जितेंद्रिय एवं त्रैलोक्य में विख्यात था (म. अनु. १५०. ४४-४५)।

२. दक्षकन्या सुव्रता के चार पुत्रों का सामूहिक नाम (वायु. १००.४२)। इस समूह में निम्नलिखित चार पुत्र शामिल थे, जो नौवें, दसवें, ग्यारहवें एवं बारहवें मन्वन्तर के अधिपति 'मनु' कहलाते है:—दक्षसावर्णि, ब्रह्मसावर्णि, धर्मसावर्णि एवं रुद्रसावर्णि (मार्क. ५०)।

इन्होंने मेरुपर्वत पर तपस्या की थी, जिस कारण इन्हें मन्वन्तरों का अधिपतित्व प्राप्त हो गया (ब्रह्मांड. १.२४)।

३. मत्स्य के अनुसार, दसवें मन्वन्तर का अधिपति मनु।

४. पद्म के अनुसार, ग्यारहवें मन्वन्तर का अधिपति मनु।

मेष—स्कंद का एक सैनिक (म. श. ४४.५९)।

मेषकिरीटकायन—कश्यपकुलोत्पन्न एक गोत्रकार ऋषिगण।

मेषप—कश्यपकुलोत्पन्न एक गोत्रकार ऋषिगण।

मेषहृत्—गरुड के पुत्रों में से एक।

मैत्रावरुण अथवा **मैत्रावरुणि**—वसिष्ठ एवं अगस्त्य ऋषियों का नामांतर (वसिष्ठ देखिये)।

मैत्रि—एक ऋषि, जो 'मैत्रि उपनिषद' का प्रवर्तक माना जाता है। इसकी माता का नाम मित्रा था (मै. उ. २.२.२)।

मैत्रि उपनिषद—'मैत्रि उपनिषद' नामक सुविख्यात ग्रंथ का कर्ता इसे मानते है। विचार एवं शब्दसंपत्ति इन दोनों दृष्टि से, यह उपनिषद् अत्यंत महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इस ग्रंथ में सात अध्याय हैं, जिसमें से पहले चार काफ़ी पूर्वकालीन हैं।

इस ग्रंथ के प्रारंभ में बताया गया है कि, एक बार बृहद्रथ राजा शाकायन्य ऋषि के पास आत्मज्ञान के हेतु गया। उस समय शाकायन्य ऋषि ने अपने गुरु मैत्रि ऋषि का तत्त्व उसे समझाया। वही 'मैत्रि उपनिषद' है।

इस उपनिषद में अंतरात्मा को मानवी शरीर का चालक कहा गया है, एवं उसीकी प्रेरणा से मानवी शरीर कुम्हार के चक्र की भाँति घूमता है, ऐसा कहा गया है। आत्मा के सचेतनत्व का 'मैत्रि उपनिषद' का यह सिद्धांत प्लेटो के सिद्धान्त से मिलता जुलता है।

इस ग्रंथ में मानवी शरीर का वर्णन करते समय, उसे एक रथ कहा गया है, जिसके अश्व कर्मेंद्रियों से बने है, एवं ज्ञानेंद्रिय को उसकी बागडोर, मानवी मन को उसका सारथी, एवं देहस्वभाव को उसका चाबुक (सचेतक) कहा गया है (मै. उ. २.९)।

इस उपनिषद में सात्विक, राजस एवं तामस गुणों का जो वर्णन प्राप्त है, वह भगवद्गीता से साम्य रखता हैं।

मैत्री—दक्ष की तेरह कन्याओं में से एक, जो स्वायंभुव मन्वन्तर के धर्मऋषि की पत्नी थी। इसके पुत्र का नाम प्रसाद था।

मैत्रेय—अत्रिकुलोत्पन्न एक गोत्रकार ऋषिगण।

२, ग्लाव एवं बक दाल्भ्य नामक आचार्यों का पैतृक नाम (छां. उ. १.१२.१; गो. ब्रा. १.१.३१; अ. वे. ११०)।

मैत्रेय कौशारव—एक सुविख्यात आचार्य एवं तत्वज्ञानी। ऐतरेय ब्राह्मण में इसे 'कौशारव' नामक आचार्य का पैतृक अथवा मातृक नाम बताया गया है, एवं इसके द्वारा सुत्वन् कैरिशय राजा को 'ब्राह्मण परिमर' विद्या प्रदान की जाने की कथा दी गयी है (ऐ. ब्रा. ८.२८.१८)।

नाम—पाणिनि के अनुसार, यह मित्रेयु नामक आचार्य का पुत्र था, जिस कारण इसे 'मैत्रेय' पैतृक नाम प्राप्त हुआ (पा. सू. ६.४.१७४; ७.३.२)। छांदोग्य उपनिषद के अनुसार, यह किसी मित्रा नामक स्त्री का पुत्र था, जिस कारण इसे 'मैत्रेय' यह मातृक नाम प्राप्त हुआ था (छां. उ. १.१२.१)।

भागवत में इसे कुषारव एवं मित्रा का पुत्र कहा गया हैं, जिस कारण इसे 'कौषारव' अथवा 'कौषारवि' पैतृक उपाधि प्राप्त हुयी होगी (भा. ३.४.२६; ३६; ५. १७)।

युधिष्ठिर की मयसभा में भी यह उपस्थित था (म. स. ४.८)।

दुर्योधन को शाप—जिस समय पांडव वनवास में थे, उस समय व्यास के आदेशानुसार, यह धृतराष्ट्र एवं दुर्योधन के पास उन्हें पाण्डवों के बल-पौरुष का ज्ञान कराने के लिए गया था। इसने दुर्योधन को बार बार समझाया, एवं अनुरोध किया, 'तुम पाण्डवों से द्रोह मत करो'। किन्तु दुर्योधन ने हँसते हुए इसकी खिल्ली उड़ाई, एवं जाँघ ठोकते हुए इसके द्वारा दिये गये उपदेश का अनादर किया। तब इसने क्रोधावेश में दुर्योधन को शाप दिया, 'तुम्हारी यह जंघा भीम की गदा के द्वारा भग्न होगी। यदि अब भी तुम पाण्डवों से मित्रता स्थापित करने को तैयार हो, तो मेरी यह शापवाणी व्यर्थ हो सकती है, अन्यथा नहीं' (म. व. ११.३२)।

व्यास-मैत्रेय संवाद—मैत्रेय धार्मिय प्रवृत्ति का ऋषि था, एवं ऋषि मुनियों के सत्संग के कारण, यह ज्ञानी, दानी एवं वेदमार्ग का अनुसरण करनेवाला हुआ था। यह एकान्त में रहना विशेष पसंद करता था। एक बार वाराणसी में यह गुप्तरूप से एग स्वैरिणी के घर में रहता था। यकायक श्री व्यास ने वहाँ आ कर इसे दर्शन दिया। मैत्रेय व्यास को देख कर अति प्रसन्न हुआ, एवं इसने उसकी विधिवत् पूजा की। पश्चात् इसने व्यास से विज्ञान, ज्ञान एवं तप के संबंध नानाविध प्रश्न किये, एवं व्यास ने उन प्रश्नों के यथोचित जवाब दे कर इसे आत्मज्ञान कराया। विद्या, ज्ञान, एवं तप का ज्ञान करानेवाला यह 'व्यास-मैत्रेय संवाद' महाभारत में प्राप्त है (म. अनु. १२०-१२२)

विदुर-मैत्रेय-संवाद—श्रीकृष्ण ने जिस समय उद्धव को उपदेश दिया था, उस समय मैत्रेय भी वहाँ उपस्थित था। श्रीकृष्ण की इच्छा थी कि, इस उपदेश के समय तत्वज्ञानी विदुर भी उपस्थित होता तो अच्छा था। किंतु विदुर उन दिनों तीर्थयात्रा के लिए बाहर गया था। तीर्थयात्रा के उपरांत विदुर ने कृष्ण के उस उपदेश को सुनना चाहा, जिसे उसने उद्धव को दिया था। किन्तु विदुर के लौटने तक कृष्ण का निर्वाण हो चुका था।

उस उपदेश को सुनने तथा जानने की इच्छा से, विदुर ऊद्धव के पास गया, लेकिन उद्धव ने उसे मैत्रेय के पास भेज कर कहा, 'मैत्रेय परम ज्ञानी है। कृष्ण की वाणी का कथन वही कर सकता है'। तब विदुर मैत्रेय के पास आया। मैत्रेय ने विदुर को कृष्ण का उपदेश सुनाया। इस उपदेश के अन्तर्गत 'कर्दमदेवहुति-संवाद,' 'ध्रुवचरित्र' तथा 'दक्षयज्ञ' आदि की कथाओं का वर्णन तत्त्वज्ञान के दृष्टि से किया गया था।

मैत्रेय के द्वारा कृष्ण का यह उपदेश जो विदुर से कहा गया, वह भागवत के तृतीय तथा चतुर्थ स्कंदों में प्राप्त है, जिसे 'विदुर-मैत्रेय संवाद' कहा गया है। अध्यात्म के क्षेत्र में यह अपने किस्म का अनूठा संवाद हैं।

कृष्ण के द्वारा उद्धव को दिया गया संवाद भागवत के एकादश स्कंद में प्राप्त है। महाभारत में जिस प्रकार गीता एवं अनुगीता है, उसी प्रकार भागवत में 'उद्धव-कृष्ण संवाद' एवं 'विदुर-मैत्रेयसंवाद' भी महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं।

भीष्म के देहत्याग के समय, तमाम ऋषियों के साथ यह भी वहाँ उपस्थित था (म. शां. ४७.६५)। यह व्यास की भाँति चिरंजीव माना जाता है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि, आज भी यह अपने भक्तों को दर्शन देता है।

मैत्रेय सोम—(सो. नील.) उत्तर पंचाल देश का सुविख्यात ब्रह्मक्षत्रिय राजा, जो 'मैत्रेय ब्राह्मणशाखा' का उत्पादक माना जाता है। अपने पितामह दिवोदास, एवं पिता मित्रेयु के समान, यह भी भृगुवंशीयों में संमिलित हो गया था, जिस कारण इसे 'मैत्रेय भार्गव' भी कहा जाता है (मत्स्य. ५०.१३; वायु.९९. २०६; ब्रह्म. १३; ह. वं.

१.३२.७५-७७)। इसके बाद इसका पुत्र सृंजय उत्तर पंचाल देश के राजगद्दी पर बैठा।

मैत्रेय ब्राह्मण—मैत्रेय राजा से 'मैत्रेय ब्राह्मण' नामक ब्राह्मणजाति का निर्माण हुआ। मैत्रेय एवं इसके पूर्वज 'क्षत्रिय ब्राह्मण' कहलाते थे। उत्तर पंचाल देश के मुद्गल राजा का ज्येष्ठ पुत्र ब्रह्मिष्ठ सर्वप्रथम ब्राह्मण बन गया, जिससे 'मुद्गल' अथवा 'मौद्गल्य' नामक क्षत्रिय ब्राह्मण उत्पन्न हो गये। ये ब्राह्मण स्वयं को 'आंगिरस' कहलाते थे (मत्स्य. ५-७; वायु. ९०.१९८-२०१)।

ब्रह्मिष्ठ का पुत्र वध्र्यश्व, एवं पौत्र दिवोदास ये दोनो वैदिक सूक्तद्रष्टा थे, एवं भार्गव कुल में शामिल हो गये थे (ऋ. १०.६९.२; ८.१०३.२)। स्वयं मैत्रेय, एवं इसका पिता मित्रयु 'भार्गव' कहलाते थे। पराशर ऋषि ने मैत्रेय को 'विष्णु पुराण' का ज्ञान कराया था (विष्णु. १.१. ४-५)।

मैत्रेय एवं मौद्गल्य ब्राह्मण कुलों में कोई भी विख्यात ऋषि उत्पन्न न हुआ था, किन्तु मैत्रेय कौशारव नामक एक ऋषि का निर्देश वैदिक ग्रंथों में प्राप्त है (मैत्रेय कौशारव देखिये)।

मैत्रेयी—एक सुविख्यात ब्रह्मवादिनी स्त्री, जो याज्ञवल्क्य महर्षि की दो पत्नियों में से एक थी (बृ. उ. ४. ५.१)। बृहदारण्यक उपनिषद में इसका अनेक बार उल्लेख प्राप्त है, जहाँ इसके एवं याज्ञवल्क्य ऋषि के संवाद उद्धृत किये गये हैं (बृ. उ. २.४.१-२; ४.५.१५)। यह संभवतः ब्रह्मवाह के पुत्र याज्ञवल्क्य की पत्नी होगी।

मैत्रेयी-याज्ञवल्क्यसंवाद— याज्ञवल्क्य महर्षि ने संन्यास लेने पर, उसकी जायदाद में से उसके अध्यात्मिक ज्ञान का हिस्सा मैत्रेयी ने माँगा। उस समय मैत्रेयी एवं याज्ञवल्क्य के बीच हुए संवाद का निर्देश 'बृहदारण्यक उपनिषद' में प्राप्त है (बृ. उ. ४.५.१-६)। मैत्रेयी ने कहा, 'मुझे अध्यात्मिक ज्ञान की आकांक्षा इसलिए है कि, साक्षात् सुवर्णमय पृथ्वी प्राप्त होने पर भी मुझे अमरत्व प्राप्त नही होगा, जो केवल अध्यात्मज्ञान से प्राप्त हो सकता है। जिस संपत्ति से मुझे अमरत्व प्राप्त नहीं होगा, उसे ले कर मैं क्या करूं' (येनाहं नामृता स्याम्, किमहं तेन कुर्याम्)।

फिर याज्ञवल्क्य ने इसे जवाब दिया, 'जो तुम कह रही हो वह ठीक है। तुम्हारे इन विचारों से मैं प्रसन्न हूँ। इसी कारण, मैं तुम्हे आत्मज्ञान सिखाना चाहता हूँ। आत्मा का अध्ययन एवं मनन करने से ही संसार के हर एक वस्तु का ज्ञान प्राप्त होता है। इसी कारण, इस सर्वश्रेष्ठ ज्ञान का साक्षात्कार मैं तुम्हे करना चाहता हूँ'।

इस संवाद में आत्मा शब्द का अर्थ 'विश्व का अन्तीम सत्य' लिया गया है।

बृहदारण्यक उपनिषद में अन्यत्र याज्ञवल्क्य एवं मैत्रेयी के बीच हुए अन्य एक संवाद का निर्देश प्राप्त है (बृ. उ. ४.५.११-१५)। मैत्रेयी याज्ञवल्क्य से पूछती है, 'मनुष्य जब बेहोश होता है, तब उसकी आत्मा का क्या हाल होता है? वह परमात्मा से विलग होता है, या वैसा ही रहता है'? उसपर याज्ञवल्क्य ने जवाब दिया, 'बेहोश अवस्था में भी आत्मा एवं परमात्मा एक ही रहते है, क्यों कि, आत्मा 'अग्राह्य' 'अशीर्य' एवं 'असंग' रहता है'।

याज्ञवल्क्य के द्वारा आत्मज्ञान की प्राप्ति होने पर, अपनी सारी जायदाद अपनी सौत कात्यायनी को दे कर, यह याज्ञवल्क्य के साथ वन में चली गयी।

मैनाक—एक सुविख्यात पर्वत, जो हिमालय एवं मेनका (मेना) का पुत्र था (ह. वं. ११८.१३)। वाल्मीकिरामायण में इसका चरित्र एक व्यक्ति मान कर दिया गया है।

इन्द्र ने पृथ्वी के सारे सारे पर्वतों के पंख तोड़ डाले। उस समय, यह भय के मारे समुद्र में जा कर छिप गया। हनुमत् लंका दहन के लिए जा रहा था, उस समय यह समुद्र के कहने पर बाहर आया, एवं अपने शिखर पर सवार होने की प्रार्थना इसने हनुमत् से की। इसके पुत्र का नाम क्रौंच था (वा. रा. सुं. १.१०५)।

मैंद—राम के पक्ष का एक वानर, जो सुषेण वानर के दो पुत्रों में से ज्येष्ठ था। इसके कनिष्ठ बन्धु का नाम द्विविद था। ये दोनों भाई अंगद वानर के मामा थे (भा. १०.६.२)।

वालिवध के पश्चात्, सुग्रीव ने सीता के शोधार्थ जो वानर गंधमादन पर्वत पर भेजे थे, उनमें यह भी शामिल था (वा. रा. कि. ४१.७)।

राम-रावण युद्ध में इसने अत्यधिक पराक्रम दिखाया था। इसने एक घूँसा मार कर, वज्रमुष्टि नामक असुर का वध किया (वा. रा. यु. ४३.२७)। इसने यूपाक्ष नामक असुर का भी वध किया था (वा. रा. यु. ७६.३४)।

इन्द्रजित् से युद्ध—इन्द्रजित् के साथ हुए मायावी युद्ध में राम एवं लक्ष्मण मूर्च्छित हुए। उस समय, बिभीषण ने कुबेर से प्राप्त दैवी उदक सारे रामपक्षीय वानरों को आँखों में लगाने के लिए दिया, जिसका उपयोग करते ही गुप्त रूप से लड़ाई करनेवाले इन्द्रजित् के सैन्य के सारे असुर वानरसैन्य को साफ दिखाई देने लगे। इस उदक को अपनी आँखों को लगा कर, इसने भी काफ़ी पराक्रम दिखाया था (म. व. २७३.१-१३)।

यह एवं इसका भाई द्विविद ने किष्किंधा नामक गुफा के समीप सहदेव से युद्ध किया था, जो दक्षिणदिग्विजय के लिए उस नगरी में आया था। आगे चल कर, इन्होंने सहदेव को रत्न आदि करभार प्रदान किया, एवं उसे बिदा किया (म. स. परि. १. क्र. १३ पंक्ति. १५-२०)।

मैरावण—महिरावण नामक राक्षस का नामान्तर। अहिरावण एवं महिरावण राक्षसों की कथा 'आनंद रामायण' में प्राप्त है, जहाँ उन्हे 'मैरावण' एवं 'ऐरावण' कहा गया हैं (अहिरावण-महिरावण देखिये)।

मोद—हिरण्याक्ष के पक्ष का एक असुर, जिसका देवासुरसंग्राम के समय वायु ने वध किया था।

२. ऐरावतकुलोत्पन्न एक सर्प, जो जनमेजय के सर्पसत्र में दग्ध हुआ था (म. आ. ५२.१०)

३. मौद्र नामक आचार्य का नामान्तर।

मोदोष—एक आचार्य, जो विष्णु के अनुसार व्यास की अथर्वन्‌शिष्यपरंपरा में से वेददर्श नामक आचार्य का शिष्य था (व्यास देखिये)।

मोद—ब्रह्मा का एक पुत्र, जो उसकी छाया से उत्पन्न हुआ था (भा. ३.२०)। मत्स्य के अनुसार, यह ब्रह्मा की बुद्धि से उत्पन्न हुआ था (मत्स्य. ३.११)।

मोदक—एक राजकुमार, जो राम के परमभक्त सुरथ नामक राजा का पुत्र था। सुरथ राजा ने राम का अश्वमेधीय अश्व रोक दिया था, जिस समय यह सुरथ की ओर से युद्ध में शामिल था (पद्म. पा. ४९)।

मोहना—सुग्रीव की पत्नी। राम के अश्वमेधीय अश्व को स्नान कराने के लिए, इसने अपने पति के साथ सरयू का जल लाया था (पद्म. पा. ६७)।

मोहिनी—विष्णु का एक अवतार, जो चाक्षुष मन्वन्तर में हुआ था। समुद्रमंथन से चौदह रत्न निकले, जिसमें अमृत भी था। देव एवं दानवों ने मिल कर समुद्रमंथन किया, जिस कारण दोनों को अमृतप्राशन करने का अधिकार था। इसलिए वे अमृतप्राशनार्थ एकत्रित हुयें। दानवों ने अपने अधिकार में अमृतकलश रक्खा था। देवों को अमृत पी कर अमर होने की इच्छा थी, किन्तु वे यह नही चाहते थे कि, दानव अमृतपान कर अमर हो जाये। इस अवसर पर, श्रीविष्णु ने मोहिनी नामक सुंदर अप्सरा का रूप धारण कर दानवों को मोहित किया। यह सुअवसर देखकर, देवों ने यथेष्ट अमृतपान किया, एवं वे अमर हुयें (भा. १.३; ८.८-१२; म. आ. १७. ३९-४०; भस्मासुर देखिये)।

२. एक वेश्या, जो मृत्यु के समय गंगाजल पीने के कारण, अगले जन्म में द्रविड देश के वीरवर्मा राजा की पटरानी हुयी (पद्म. उ. २२०)।

मौजवत—अक्ष नामक वैदिक सूक्तद्रष्टा का पैतृक नाम।

२. मूजवन्त् लोगों का नामान्तर (मूजवन्त् देखिये)।

मौंज—भृगुकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

मौंजकेश—अत्रिकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

मौंजवृष्टि—अंगिराकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

मौंजायन—युधिष्ठिर की सभा का एक ऋषि (म. स. ४.११)। हस्तिनापुर जाते समय, मार्ग में श्रीकृष्ण से इसकी भेंट हुयी थी (म. उ. ८१.३८८*)।

मौंजायनि—विश्वामित्रकुलोत्पन्न एक गोत्रकार। पाठभेद-'कौञ्जायनि'।

मौद्र—एक आचार्य, जो भागवत के अनुसार व्यास की अथर्वन्‌शिष्यपरंपरा में से देवदर्श नामक आचार्य का शिष्य थे। पाठभेद-'मोद' एवं 'मोदोष'।

मौद्गल—एक आचार्य, जो वेदमित्र नामक आचार्य का शिष्य था। पाठभेद-'मुद्गल' (व्यास देखिये)।

मौद्गलायन—भृगुकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

मौद्गल्य—एक पैतृक नाम, जो नाक, शतबलाक्ष एवं लांगलायन आदि आचार्यों के लिए प्रयुक्त हुआ है (श. ब्रा. १२.५.२.१; नि. ११.६; ऐ. ब्रा. ५.३.८)।'मुद्गल' का वंशज होने के कारण, उन्हे यह पैतृक नाम प्राप्त हुआ होगा।

२. एक ब्रह्मचारी पुरुष, जिसने ग्लाव मैत्रेय नामक आचार्य के साथ वाद-विवाद किया था (गो. ब्रा. १.१. ३१)।

३. एक ब्राह्मण, जो मुद्गल एवं भागीरथी का पुत्र था। इसकी पत्नी का नाम जाबाला था। विष्णु की आज्ञानुसार गरुड के द्वारा दिया हुआ मुद्रा इसने

गौतमी नदी के तट पर दान में दिया, जिस कारण इसे ऐश्वर्य एवं समृद्धि प्राप्त हुयी।

४. एक वृद्ध एवं कोढ़ी ब्राह्मण, जिसकी पत्नी का नाम नालायनी इन्द्रसेना था। इसकी पत्नी ने इसकी सेवा कर इसे प्रसन्न रखा था।

एक बार नालायनी की इच्छा होने पर, इसने पाँच प्रकार के रूप धारण कर, उसके साथ क्रीडा की। फिर भी वह अतृप्त रही। इस पर क्रुद्ध हो कर, इसने उसे अगले जन्म में पाँच पाण्डवों की पत्नी द्रौपदी बनने का शाप दिया (म. आ. परि. १. क्र. १००. पंक्ति. ६०–८०)।

महाभारत में अन्यत्र इसका, एवं इसकी पत्नी का नाम क्रमशः 'मुद्गल' एवं 'चन्द्रसेना' दिया गया है (म. व. ११४.२४; उ. ४५९*)।

५. अंगिराकुलोत्पन्न एक प्रवर।

६. राम की सभा का एक मंत्री (वा. रा. उ. ७४.४)।

७. जनमेजय के सर्पसत्र का एक सदस्य (म. आ. ४८.९)।

८. एक आचार्य, जो शतद्युम्न नामक राजा का गुरु था। पाठभेद–'मुद्गल' (मुद्गल ४. देखिये)।

९. एक ऋषि, जो शरशय्या पर पड़े हुए भीष्म से मिलने के लिए उपस्थित था (म. शां. ४७. ६६*)। पाठभेद–'मुद्गल'।

मौन--अणीचिन् नामक आचार्य का पैतृक नाम (कौ. ब्रा. २३.५)। 'मुनि' वंशज होने से, उसे यह पैतृक नाम प्राप्त हुआ होगा।

मौर्य--(ऐति.) एक सुविख्यात राजवंश, जिसमें चंद्रगुप्त आदि दस राजा हुए थे। पुराणों के अनुसार, इस वंश के राजाओं ने १३७ वर्षों तक राज्य किया। इस वंश में निम्नलिखित राजा प्रमुख थेः-- चन्द्रगुप्त, बिन्दुसार, अशोक, सुयशस् (कुनाल) एवं दशरथ। व्हिन्सेन्ट स्मिथ के अनुसार, इस राजवंश का राज्यकाल इ. पू. ३२२–१८५ माना गया है।

मौर्वी कामकटंकटा--मुरु नामक यवन राजा की कन्या, जो घटोत्कच की पत्नी थी। इसे 'काम' नामक देवी से युद्ध में अजेयत्व प्राप्त हुआ था।

कृष्ण के द्वारा मुरु राजा का वध होने पर, इसने श्रीकृष्ण के साथ तीन दिनों तक युद्ध किया। अन्त में कामदेवी ने इस युद्ध में मध्यस्थता की।

आगे चल कर, यह प्राग्ज्योतिषपुर में रहने लगी, जहाँ इसका विवाह घटोत्कच के साथ हुआ (स्कंद. १. २. ५९–६०)।

मौलि--अंगिराकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

२. एक आचार्य, जो बाभ्रव्य नामक आचार्य का पिता था। बाभ्रव्य ने पृषध्र राजा को शूद्र बनने का शाप दिया था (पृषध्र देखिये)। उस समय इसने उन दोनों में मध्यस्थता की थी।

मौषिकीपुत्र--एक आचार्य, जो हारिकर्णीपुत्र नामक आचार्य का शिष्य था। इसके शिष्य का नाम बाडेयीपुत्र था (श. ब्रा. १४.९.४.३०; बृ. उ. ६.४.३० माध्यं.)। मूषिका के किसी स्त्री वंशज का पुत्र होने के कारण, इसे 'मौषिकीपुत्र' नाम प्राप्त हुआ होगा।

मौहूर्तिक--एक देव, जो धर्म ऋषि एवं मूहूर्ता के पुत्रों में से एक था।

म्लेच्छ--एक जातिविशेष, जो नन्दिनी गौ के फेन से उत्पन्न हुयी थी। महाभारत में इनका वर्णन 'मुण्ड', 'अर्धमुण्ड', 'जटिल', एवं 'जटिलानन' शब्दों में किया गया है (म. द्रो. ६८.४४)। सर्वप्रथम ये लोग भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रदेश में रहते थे। किन्तु धर्म से भ्रष्ट हुये सारी जातियों को 'म्लेच्छ' सामान्य नाम मनुस्मृति के काल में दिये जाने लगा।

भाषा--शतपथ ब्राह्मण में म्लेच्छ भाषा का निर्देश प्राप्त है, जहाँ उसे अनार्य लोगों की बर्बर भाषा कहा गया है (श. ब्रा. ३.२.१.२४)।

महाभारत में--युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में, म्लेच्छों का राजा भगदत्त समुद्रतटवर्ति म्लेच्छ लोगों के साथ उपस्थित हुआ था (म. स. ३१.१०)।

महाभारत में सर्वत्र इन्हें नीच एवं धर्मभ्रष्ट माना गया है। प्रलय के पहले पृथ्वी पर म्लेच्छों का राज्य होने की, एवं विष्णुयशस् कल्कि के द्वारा इनका संहार होने की भविष्यवाणी वहाँ दी गयी है (म. व. १८८. २९–८९)। युधिष्ठिर के अश्वमेध यज्ञ में, ब्राह्मणों को देने के बाद जो धन बचा हुआ था, वह शूद्र एवं म्लेच्छ लोगों ने उठा लिया था (म. आश्व. ९१.२५)।

युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के समय, भीमसेन ने अपने पूर्व-दिग्विजय में समुद्रतट पर रहनेवाले म्लेच्छ लोगों

को जीता था, एवं उन से मणि, रत्न, सुवर्ण, रजत, चंदन आदि भेंटवस्तुएँ प्राप्त की थी (म. स. २७. २५-२६)।

सहदेव ने अपनी दक्षिण दिग्विजय में, एवं नकुल ने अपनी पश्चिम दिग्विजय में, इन लोगों पर विजय प्राप्त की थी (म. स. २८.४४; २९.१५)। युधिष्ठिर के अश्वमेध यज्ञ के समय भी, अर्जुन ने इन्हे जीता था।

इससे प्रतीत होता है कि, महाभारतकाल में इन लोगों के उपनिवेश पश्चिम, पूर्व एवं दक्षिण भारत में समुद्र के तट पर भी थे।

भारतीय युद्ध में ये लोग कौरवपक्ष में शामिल थे। इस युद्ध में, इन्होंने पाण्डवसेना पर क्रोधी गजराज छोड़ दिये थे (म. क. १७.९)। किन्तु अर्जुन ने समस्त 'जटिलानन' म्लेच्छों का संहार किया (म. द्रो. ६८.४२)। यादवराजा सात्यकि ने भी इनका संहार किया था (म. द्रो. ९५.३६)। इनके अंग नामक राजा का वध नकुल के द्वारा हुआ था (म. क. १४.१४-१७)।

म्लेच्छहन्तृ--म्लेच्छयज्ञ करनेवाले प्रद्योत राजा का नामान्तर (प्रद्योत २. देखिये)।

य

यक्ष--देवयोनि की एक जातिविशेष, जो पुलह एवं पुलस्त्य ऋषिओं की संतान मानी जाती है (म. आ. ६०.५४१)। महाभारत में इन लोगों को 'क्षुद्रदेवता' कहा गया है, एवं कुबेर को इनका राजा कहा गया है (म. आ. १. ३३; व. १११.१०-११)। ये लोग कुबेर की सभा में लाखों की संख्या में उपस्थित रह कर, उसकी उपासना करते थे (म. स. १०.१८)।

पद्म के अनुसार, ब्रह्मा के पाँचवें शरीर से यक्ष एवं राक्षस उत्पन्न हुये। इन्हे कोई माता न थी, क्यों कि, ब्रह्मा ने अपने मनःसामर्थ्य से इन्हे उत्पन्न किया था (ब्रह्मन् देखिये)।

उत्पन्न होते ही इन्होंने ब्रह्मा से पूछा, 'हमारा कर्तव्य क्या है?' (किं कुर्मः)। फिर ब्रह्मा ने इन्हे कहा, 'तुम यज्ञ करो' (यक्षध्वम्)। इसीकारण इन्हे 'यक्ष' नाम प्राप्त हुआ (वा. रा. उ. ४.१३)। यक्ष नाम की यह उपपत्ति कल्पनारम्य प्रतीत होती है। केन उपनिषद में 'यक्ष' शब्द का अर्थ 'आदि कारण ब्रह्म' दिया गया है।

ये लोग विद्याधरों के निवासस्थान के नीचे मेरु पर्वत के समीप रहते थे। महाभारत एवं पुराणों में निम्नलिखित यक्षों का निर्देश प्राप्त है :--

१. कुबेर के सेनापति--मणिकंधर, मणिकार्मुकधर, मणिभूष, मणिमत्, मणिभद्र, पूर्णभद्र, मणिस्रग्विन् (दे. भा. १२.१०)।

२. कुबेरसभा में उपस्थित यक्ष--मणिमंत्र, मणिवर, जिसके पुत्र 'गुह्यक' सामूहिक नाम से प्रसिद्ध थे। इन्ही पुत्रों के कारण कुबेर को 'गुह्यकाधिपति' उपाधि प्राप्त हुयी थी।

भीमसेन ने मणिमत्, कुबेर आदि यक्षों को परास्त किया था (म. व. १५७; भीमसेन देखिये)। सुंद एवं उपसुंद नामक राक्षसों ने भी इन्हे पराजित किया था (म. आ. २०२.७)।

कुबेर यक्ष लोगों का राजा था, किन्तु उसके रावण विभीषणादि चार पुत्र राक्षस थे। इन राक्षसपुत्रों की सन्तति भी राक्षस ही थी। इसी कारण कुबेर को यक्ष एवं राक्षसों का राजा कहा गया है।

२. एक यक्ष, जिसने पाण्डवों के वनवासकाल में युधिष्ठिरादि पाण्डवों को तत्त्वज्ञानविषयक प्रश्न पूछे थे (म. व. २९८.६-२५)। ये सारे प्रश्न धर्म ने यक्ष का वेष धारण कर पूछे थे (धर्म १. देखिये)।

३. एक राक्षस, जो कश्यप एवं खशा का पुत्र था। इसका जन्म संध्यासमय में हुआ था। अपने बाल्यकाल में यह अपनी माता को खाने के लिए दौडा। किन्तु इसके छोटे भाई रक्षस् ने इसका निवारण किया।

स्वरूपवर्णन--ब्रह्मांड में इसका स्वरूपवर्णन प्राप्त है, जहाँ इसे विलोहित, एककर्ण, मुंजकेश, ह्रस्वास्य, दीर्घजिह्व, बहुदंष्ट्र, महाहनु, रक्तपिंगाक्षपाद, चतुष्पाद, दो गतियों का, सारे शरीर पर बालवाला, चतुर्भुज, सुंदर

नाकवाला, एवं बड़े मुँहवाला कहा गया है (ब्रह्मांड. ३.७. ४२)।

परिवार—इसकी पत्नी का नाम जंतुधना था, जो शंड नामक असुर की पत्नी थी (ब्रह्मांड. ३.७.८६)। अपनी इस पत्नी से, इसे 'यातुधान' सामूहिक नाम धारण करनेवाले राक्षस पुत्ररूप में उत्पन्न हुयें (यातुधान देखिये)।

एक बार इसने वसुरुचि नामक गंधर्व का रूप ले कर, ऋतुस्थला अप्सरा से संभोग किया, जिससे इसे रजतनाभ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ (ब्रह्मांड. ३.७.१-१२)। पुत्र-जन्म के पश्चात्, इसने ऋतुस्थला को अप्सरागणों में लौटा दिया।

४. एक व्यास (व्यास देखिये)।

यक्षिणी—एक देवी, जिसके प्रसादरूप नैवेद्य के भक्षण से ब्रह्महत्या के पातक से मुक्ति प्राप्त होती है।

यक्षु—एक राजा, जो दाशराज्ञ युद्ध में सुदास राजा के विपक्ष में था (ऋ. ७.१८.६)। संभवतः यह 'यदु' राजा का ही नामान्तर होगा।

२. एक लोकसमूह, जिन्होंने दाशराज्ञ युद्ध में भेद के नेतृत्व में सुदास राजा के विपक्ष में हिस्सा लिया था (ऋ. ७. १८.१९)। अज एवं शिग्रु लोगों के साथ, इन्होंने परुष्णी एवं यमुना नदी के तट पर हुये संग्रामों में भाग लिया था। इंद्र के द्वारा भेद का वध होने पर, ये लोग भेंट ले कर इंद्र की शरण में गये।

ऋग्वेद में प्राप्त निर्देशों से ये लोग अनार्य जाति के प्रतीत होते हैं। अज एवं शिग्रु लोगों के साथ, ये संभवतः पूर्व भारत में निवास करते होंगे।

यक्षेश्वर--एक शिवावतार, जो देवों के गर्वहरण के लिए अवतीर्ण हुआ था। समुद्रमंथन के बाद देवताओं को अमृत प्राप्त हुआ, जिस कारण वे अत्यधिक गर्वोद्धत हुये। उस समय उनका गर्वहरण करने के लिए, शिव ने यक्षेश्वर नाम से अवतार लिया।

इसने देवताओं की परीक्षा लेने के लिए, उनके सामने घाँस का एक तिनका रख दिया, एवं उसे हिलाने को कहा। देवतागण उस कार्य में असफल होने पर, उन्हे अपने वास्तव सामर्थ्य का ज्ञान हुआ (शिव. शत. ३६)। इसी प्रकार की कथा 'केन उपनिषद' में भी प्राप्त है।

यक्ष्मनाशन प्राजापत्य—एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. १०.१.६१)।

यंकणा--रंकण नामक ब्राह्मण की स्त्री।

यजत--एक यज्ञकर्ता, जिसका अन्य ऋषियों के साथ निर्देश प्राप्त है (ऋ. ५.४४.१०-११)। ऋग्वेद में अन्यत्र निर्दिष्ट 'यजत आत्रेय' नामक वैदिक सूक्तद्रष्टा, एवं यह दोनो एक ही होंगे (ऋ. ५.६७-६८)।

यजत आत्रेय--एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (यजत देखिये)।

यजु--(सो. ऋक्ष.) एक राजा, जो मत्स्य के अनुसार उपरिचर वसु राजा का पुत्र था।

यजुदाय--(सो. वसु.) एक राजा, जो वायु के अनुसार वसुदेव एवं देवकी का पुत्र था।

यज्ञ--विष्णु का सातवाँ अवतार, जो स्वायंभुव मन्वन्तर में रुचि नामक ऋषि एवं आकूति के पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ था। इसकी पत्नी का नाम दक्षिणा था, जिससे इसे तुषित नामक बारह देव पुत्ररूप में उत्पन्न हुयें। इसे 'सुयज्ञ' नामान्तर भी प्राप्त था (भा. २. ७.२)।

स्वायंभुव मनु राजा ने 'पुत्रिकापुत्रधर्म' से इसका स्वीकार कर, इसे अपना पुत्र मान लिया था, एवं इसे अपने मन्वन्तर का इंद्र बनाया था (भा. १.३.१२;४.१. ८;८.१.१८; विष्णु. ३. १. ३६)।

सुश्रुत संहिता के अनुसार, प्राचीन काल में रुद्र के द्वारा इसका शिरच्छेद किया गया था। उस समय, अश्विनी-कुमारों ने इन्द्र की सहाय्यता से, इसके सर पर शल्यकर्म किया, एवं इसका सिर पूर्ववत् किया (सु. सं. १.१४)।

२. (आंध्र. भविष्य.) एक राजा, जो ब्रह्मांड के अनुसार गौतमी का पुत्र था।

यज्ञ प्राजापत्य—एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. १०. १३०)।

यज्ञकृत—(सो. क्षत्र.) एक राजा, जो विष्णु के अनुसार विजय का राजा पुत्र था।

यज्ञकोप--रावण के पक्ष का एक राक्षस, जो राम के द्वारा मारा गया (वा. रा. यु. ९.४३)।

यज्ञदत्त—कांपिल्य नगर का एक अग्निहोत्री ब्राह्मण, जिसके पुत्र का नाम गुणनिधि था (शिव. रुद्र. सृ १८)।

२. भगदत्त राजा के पुत्र 'वज्रदत्त' का नामांतर (वज्रदत्त देखिये)।

३. वसिष्ठकुलोत्पन्न एक ब्राह्मण, जो यज्ञकर्म में निपुण था। यह यामुन पर्वत की तलहटी में निवास करता था (पद्म. पा. ९६)।

४. (सो. कुरु. भविष्य.) एक राजा, जो भविष्य के अनुसार शतानीक राजा का पुत्र था।

यज्ञपति--भृगुकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

यज्ञापिंडायन--भृगुकुलोत्पन्न एक गोत्रकार। पाठभेद-'यद्रामिलायन'।

यज्ञबाहु--(स्वा. प्रिय.) शाल्मलिद्वीप का एक सुविख्यात राजा, जो भागवत के अनुसार प्रियव्रत राजा का पुत्र था। इसकी माता का नाम बार्हिष्मती था।

इसे निम्नलिखित सात पुत्र थेः--सुरोचन, सौमनस्य, रमणक, देववर्ष, पारिभद्र, आप्यायन एवं अविज्ञात (भा. ५.२०.९)। इसने शाल्मलिद्वीप के अपने राज्य के सात भाग कर, उन्हे अपने उपनिर्दिष्ट पुत्रों में बाँट दिये। आगे चल कर, उस द्विप के सात भाग इसके सात पुत्रों के नाम से सुविख्यात हुयें (भा. ५.१.२५)।

यज्ञवचस् राजस्तंबायन--एक आचार्य, जो तुर कावषेय नामक आचार्य का शिष्य था (श. ब्रा. १०.४.२.१; मै. सं. ३.१०.३; ४.८.२)। इसके शिष्य का नाम कुश्रि था (बृ. उ. ६.५.४ काण्व)। राजस्तंब का वंशज होने कारण, इसे 'राजस्तंबायन' नाम प्राप्त हुआ होगा।

यज्ञवराह--वराहरूपधारी श्रीविष्णु का नामान्तर (म. स. परि. १. क्र. २१. पंक्ति. १२८)।

यज्ञवाह--अगस्त्यकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

२. स्कंद का एक सैनिक (म. श. ४४.६५)।

यज्ञशत्रु--एक राक्षस, जो लंका में रहनेवाले खर नामक राक्षस का अनुगामी था (वा. रा. अर. २३.३१)।

यज्ञशर्मन्--द्वारका में रहनेवाला एक ब्राह्मण, जो शिवशर्मन् नामक एक तपस्वी ब्राह्मण का पुत्र था।

एकबार इसकी पितृभक्ति की परीक्षा लेने के लिए, इसके पिता शिवशर्मन् ने माया से इसकी पत्नी का वध किया। पश्चात् उसने इसे पत्नी की शरीर टुकड़े टुकड़े कर, उन्हें फेंक देने के लिए कहा। अपने पिता की आज्ञानुसार, इसने यह पाशवी कृत्य किया। इस पर इसका पिता प्रसन्न हुआ, एवं उसने इसे अपनी पत्नी को पुनः जीवित करने के लिए कहा (पद्म. भू. १.)।

यज्ञश्री--(आंध्र. भविष्य.) एक सुविख्यात आंध्रवंशीय राजा, जो ब्रह्मांड के अनुसार गौतमीपुत्र राजा का पुत्र था। मत्स्य में इसका 'शिवश्री' नामान्तर दिया गया है। इसके पितामह का नाम शिवस्वाति था। भागवत एवं विष्णु में इसे शिवस्कंद राजा का, एवं वायु में गौतम राजा का पुत्र कहा गया है।

यज्ञसेन--पांचालनरेश द्रुपद राजा का नामान्तर (म. आ. १२२.२६; द्रुपद देखिये)।

यज्ञसेन चैत्र--एक आचार्य, जिसका पैतृक नाम 'चैत्र' अथवा 'चैत्रियायण' था (का. सं. २१.४; तै. सं. ५.३.८.१)।

यज्ञहन्--एक राक्षस, जो रक्षस् एवं ब्रह्मधना का पुत्र था।

२. कृष्णपुत्र वृष का पुत्र।

यज्ञहोत्र--उत्तम मनु के पुत्रों में से एक।

यज्ञापेत--एक राक्षस, जो रक्षस् एवं ब्रह्मधना का पुत्र था।

यज्ञेषु--एक यज्ञकर्ता, जिसके पुरोहित का नाम मात्स्य था। यज्ञ प्रारंभ करने के लिए उत्तम मुहूर्त जाननेवाले मात्स्य ने, एक सुमुहूर्त पर इसका यज्ञ प्रारंभ किया, एवं संपन्न बनने में इसे सहाय्यता की (तै. सं. १. ५. २. १)।

यज्वन्--पारावत देवों में से एक।

यति--यज्ञविरोधी एक जातिसमूह, जिनका निर्देश ऋग्वेद में अनेक बार प्राप्त है (ऋ. ८.३.९; ६.१८)। ये लोग यज्ञविरोधी होने के कारण, इन्द्र ने एक अशुभ मुहूर्त में इन्हे लकड़बग्घे (सालावृक) को दे दिया था। इनमें से पृथुरश्मि, बृहद्गिरि एवं रायोवाज ही अपने को बचा सके। उनकी दया आ कर इंद्र ने उनकी रक्षा की, एवं उन्हे क्रमशः क्षात्रविद्या, ब्रह्मविद्या, एवं वैश्यविद्या सिखायी (तै. सं. २.४.९.२; का. सं. ८.५; पं. ब्रा. १३.४.१६)।

मनुस्मृति में इस कथा का निर्देश प्राप्त है, एवं जानबूझ कर ब्रह्महत्या करने पर प्रायश्चित्त लेनेवाले लोगों में मनु ने इन्द्र का निर्देश किया है (मनु. ११.४५. कुल्लूकभाष्य)।

२. एक आचार्य, जिसका निर्देश सामवेद में भृगु ऋषि के साथ किया गया है (सा. वे. २.३०४)।

३. (सो. पुरुरवस्.) नहुष के छः पुत्रों में से ज्येष्ठ पुत्र। कुकुत्स्थ राजा की कन्या गो इसकी पत्नी थी (ब्रह्म. १२.३; वायु. ९३.१४)।

नहुष राजा का ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण, उसके पश्चात् प्रतिष्ठान के राजगद्दी पर इसका ही अधिकार था। किंतु यह प्रारंभ से ही विरक्त था, जिस कारण अपने छोटे भाई ययाति को राज्य दे कर, यह स्वयं वन में चला

गया (म. आ. ७०.२८*; ६९२; भा. ९.१८.१-२; पद्म. सृ. १२; मत्स्य. २.४.५१; ह. वं. १.३०.३)।

४. ब्रह्मदेव का एक मानसपुत्र (भा. ४.८.१)।

५. विश्वामित्र का एक पुत्र।

६. शिवदेवों में से एक।

यतिनाथ—एक शिवावतार। अबु के पहाड पर आहुका नामक एक भिल्लदम्पती रहते थे। इसने उन पर कृपा की, जिसके कारण अगले जन्म में उन्हे राजवंश में नल एवं दमयंती के रूप में जन्म प्राप्त हुआ (शिव. शत. २८)।

यतीश्वर—शिखण्डिन् नामक शिवावतार का शिष्य।

यदु--एक जातिसमूह, जो दाशराज्ञ युद्ध में भरत राजा सुदास के विपक्ष में था (ऋ. ७.१९.१८)। त्सीमर के अनुसार, यदु, अनु, द्रुह्यु एवं तुर्वश लोग मिल कर प्राचीन 'पंचजन' लोग बने थे, जिनका निर्देश ऋग्वेद में प्राप्त है (त्सीमर- आल्टिन्डिशे लेबेन. १२२; १२४)। दाशराज्ञ युद्ध में अर्ण एवं चित्ररथ राजा पानी में डूब कर मर गये, जिनके साथ ये लोग भी मरनेवाले थे। किन्तु इन्द्र ने इन्हें बचाया। यदु एवं तुर्वश लोगों को सुदास राजा के हाथ में देने की प्रार्थना, ऋग्वेद में वसिष्ठ के द्वारा इन्द्र से की गयी है (ऋ. ७.१९.८)। इन्द्र के द्वारा इन्हे सुदास राजा के हाथ सौंप देने का निर्देश भी ऋग्वेद में प्राप्त है।

इससे प्रतीत होता है कि, ये लोग शुरु में सुदास राजा के शत्रु थे, किन्तु आगे चल कर उसके मित्र बने (ऋ. ४. ३०.१७; ६.२०.१२; ४५.१)।

२. यदु लोगों का राजा, जिसका निर्देश ऋग्वेद में अनेक बार प्राप्त है। यह सुदास राजा का शत्रु था, किन्तु इंद्र का उपासक था (ऋ. १.१०८.८; १७४. ९; ५.३१.७; ७.१९.८.)। दाशराज्ञ युद्ध में यह एवं तुर्वश राजा अपनी जान बचा कर भाग गये थे, जब की इसके मित्र अनु एवं द्रुह्यु मारे गये थे। इसके साथ उग्रदेव, नर्य, तुर्वीति, एवं वैय्य आदि व्यक्तियों के निर्देश प्राप्त हैं (ऋ. १.३६.१८; ५४.६)। ऋग्वेद में इसके वंशजों का निर्देश 'याद्व' नाम से किया गया है (ऋ. ७.१९.८.)। किन्तु इनमें से किसी का भी निर्देश पुराणों में प्राप्त नही है।

३. (सो. आयु.) ययाति राजा के पाँच पुत्रों में से ज्येष्ठ पुत्र। ययाति राजा को देवयानी से दो पुत्र उत्पन्न हुये थे, जिनके नाम यदु एवं तुर्वसु थे (ह. वं. १.३०. ५; म. आ. ७८.९; मत्स्य. ३२.९)।

अपने पिता ययाति को युवावस्था देने से इसने अस्वीकार कर दिया। इस कारण, ज्येष्ठ पुत्र होते हुये भी ययाति ने प्रतिष्ठान देश के अपने राज्य से इसे वंचित कर, अपने कनिष्ठ पुत्र पूरु को राज्य प्रदान किया। ययाति के मृत्यु के पश्चात्, उसके राज्य का थोडा हिस्सा इसे प्राप्त हुआ, जिसमें मध्य भारत के चर्मण्वती (चंबल), वेत्रवती (बेटवा), शुक्तिमती (केन) नदियों से वेष्टित प्रदेश शामिल था। हरिवंश के अनुसार, ययाति के राज्य में से पूर्वोत्तर प्रदेश का राज्य इसे प्राप्त हुआ था (ह. वं. १.३०.१८)।

इसी प्रदेश में इसने अपना सुविख्यात राजवंश एवं स्थापित किया। इस राजवंश ने मथुरा, गुजराथ, काठेवाड प्रदेश में स्थित राक्षस लोगों का नाश किया। पश्चात् इन दोनों प्रदेश में यादव एवं उन्हीके ही वंश के हैहय लोगों का राज्य स्थापित हुआ।

शाप—शुक्राचार्य के शाप के कारण, इसके पिता ययाति का तारुण्य नष्ट हुआ। फिर ययाति ने अपने ज्येष्ठ पुत्र यदु को अपनी जरा ले कर उसके बदले इसका तारुण्य देने की प्रार्थना की। यदु ने अपने पिता की यह प्रार्थना अस्वीकार कर दी। इस पर क्रुद्ध हो कर ययाति ने इसे शाप दिया, 'आज से तुम एवं तुम्हारे वंशज राज्यधिकार से वंचित रहोगे' (म. आ. ७९.१-७)। यदु के जिस भाईयों ने इसका अनुकरण किया, उन्हें भी ययाति का यही शाप प्राप्त हुआ।

पौराणिक ग्रंथों में ययाति ने इसे निम्नलिखित अन्य शाप देने का निर्देश प्राप्त है:— १. 'तुम मातुलकन्या-परिणय करोगे'। २. 'तुम मातृद्रव्य का हरण करोगे' (पद्म. भू. ८०)। ३. 'तुम सोमवंश में न रहोगे'। ४. तुम यातुधान नामक राक्षस उत्पन्न करोगे' (वा. रा. उ. ५९.५; १४-१६; २०)।

ययाति का अत्यंत प्रिय पुत्र होते हुये भी, यदु ने अपने पिता की जरा लेना अस्वीकार क्यों कर दिया, इसका स्पष्टीकरण वायु एवं भागवत में प्राप्त है। इन ग्रंथों के अनुसार, अपना यौवन ले कर अपने पिता अपनी ही माता से भोगविलास करे, यह कल्पना इसे अपवित्र एवं अवैध प्रतीत हुयी। इसी कारण, यद्यपि पिता की प्रार्थना मान्य करने से पित्राज्ञा का पालन करने का पुण्य प्राप्त होगा, फिर भी उससे मात्रागमन का महान् दोष भी लगेगा, ऐसे सोच कर, इसने ययाति की प्रार्थना अमान्य कर दी (वायु. ९३; भा. ९.१९.२३)।

हरिवंश एवं ब्रह्म के अनुसार, यदु ने किसी ब्राह्मण को कई वस्तु दान में देने का अभिवचन दिया था, जिस कारण इसने ययाति की जरा स्वीकार ने में असमर्थता प्रकट की (ह. वं. १.३०.२३–२४; ब्रह्म. १२)।

इसे एवं इसके भाई अनु को यद्यपि राज्य प्राप्त हुआ था, फिर भी सार्वभौम राज्याधिकार से ये सदा के लिए वंचित रहे (विष्णु. ५.३)। इसी कारण 'यादव वंश' में उत्पन्न हुयें कृष्ण आदि राजा को, एवं 'अनुवंश' में उत्पन्न हुयें कर्ण आदि को अन्य सार्वभौम राजाओं से उपेक्षा सहनी पडी। श्रीकृष्ण को 'ग्वाला', एवं कर्ण को 'सूतपुत्र' व्यंजनात्मक उपाधियाँ उनके विपक्ष के लोगों के द्वारा प्रदान की जाती थी।

परिवार—हरिवंश के अनुसार, यदु को कुल पाँच पत्नियाँ थी, जो धूम्रवर्ण नामक नाग की कन्याएँ थी। इन पाँच पत्नियों से इसे निम्नलिखित पाँच पुत्र उत्पन्न हुयेः— १. पद्मवर्ण, २. माधव, ३. मुचुकुंद, ४. सारस, ५. हरित (ह. वं. २.३८.२)। इसी ग्रंथ में अन्यत्र इसके 'सहस्त्रद' एवं 'पयोद' नामक दो पुत्रों का निर्देश प्राप्त है (ह. वं. १.३३.१)।

इनके अतिरिक्त, निम्नलिखित ग्रंथों में यदु के पुत्र इस प्रकार बताये गये हैः—

१. भागवत में—क्रोष्टु, सहस्रजित्, नल, एवं रिपु (भा. ९.२३)।

२. मत्स्य में—नील, अंतिक, एवं लघु (मत्स्य. ४३. ७)।

३. वायु में—जित एवं लघु (वायु. ९४.२)।

४. विष्णु में—क्रोष्टु (विष्णु. ४.११)।

५. पद्म में—भोज, भीमक, अंधक, कुंजर, वृष्णि, श्रुतसेन, श्रुताधार, कालदंष्ट्र एवं कालजित (पद्म. भू. १०९)।

पार्गिटर के अनुसार, भागवत में प्राप्त यदुपुत्रों की नामावली प्रक्षिप्त है। यदु के पुत्रों में केवल दो पुत्र ही महत्त्वपूर्ण थे :—१. क्रोष्टु, जिसने मथुरा में यादव वंश की स्थापना की; २. सहस्रजित्, जिसने हैहय वंश की स्थापना की (पार्गि. ८७)।

यादववंश—पुराणों में यादववंश की जानकारी विस्तृत रूप में उपलब्ध है, किंतु वहाँ प्राप्त बहुत सारे निर्देश एक दूसरे से मेल नही खाते है। वायु के अनुसार, यादव वंश की ग्यारह शाखाएँ थी (वायु. ९६.२५५)। मत्स्य के अनुसार, इनकी एकसौ शाखाएँ थी (मत्स्य. ४७,२५–२८)। हरिवंश के अनुसार, यदु के पाँच पुत्रों ने यादव वंश की पाँच शाखाएँ प्रस्थापित की। उनमें से माधव ने मथुरा नगरी में राज्य स्थापित किया, एवं मुचकुंद, सारस, हरित एवं पद्मवर्ण राजाओं ने दक्षिण हिंदुस्थान में महाराष्ट्र में आ कर स्वतंत्र राज्य स्थापित किये, जो आगे चल कर करवीर (कोल्हापूर) आदि नामों से प्रसिद्ध हुये। हरिवंश में प्राप्त माधव की वंशावली निम्न प्रकार है :—माधव–सत्वत्–भीम सात्वत–अंधक–रैवत–ऋक्ष एवं विश्वगर्भ–वसुदेव, दमघोष, वसु, बभ्रु, सुषेण एवं सभाक्ष–श्रीकृष्ण (ह. वं. २.३८.३६–५१)।

सात्वत शाखा—इनमें से भीम सात्वत राम दाशरथि राजा का समकालीन था। उसने इक्ष्वाकुवंशीय शत्रुघातिन् राजा से मथुरा नगरी को जीत कर, वहाँ अपना राज्य स्थापित किया। सात्वत राजा को भजमान, देवावृध, अंधक एवं वृष्णि नामक चार पुत्र थे, जिनके कारण, यादव वंश की चार शाखाएँ उत्पन्न हुयी। उनमें से देवावृध एवं उसके पुत्र बभ्रु ने अबु पहाड़ी के प्रदेश में स्थित मार्तिकावत देश में अपना राज्य स्थापित किया।

अंधक एवं उसके दो पुत्र कुकुर एवं भजमान, मथुरा में राज्य करते रहे। कंस राजा उन्ही के वंश में उत्पन्न हुआ था। भजमान के पुत्र 'अंधक' नाम से ही सुविख्यात हुये, एवं उनका राज्य मथुरा के पास ही कहीं था। भारतीय युद्ध के समय कृतवर्मन् उनका राजा था। वृष्णि का राज्य गुजरात में द्वारका प्रदेश में था (वृष्णि देखिये)।

अन्य शाखाएँ—इनके सिवा यादव वंशों के अन्य कई उपशाखाओं का राज्य विदर्भ, अवंती, दशार्ण प्रदेश में भी था।

हैहकों का मुख्य राज्य नर्मदा नदी के किनारे, माहिष्मती में था, एवं उनकी वीतहोत्र, शर्यात, भोज, अवन्ती एवं तुंडिकेर नामक पाँच शाखाएँ प्रमुख थी।

यद्यपि हैहयों के उपशाखाओं में से 'भोज' एक था, फिर भी गुजरात के वृष्णियों को छोड़ कर बाकी सारे यादव वंश 'भोज' सामुहिक नाम से प्रसिद्ध थे। इसी कारण, निम्नलिखित यादव राजाओं को 'भोज' कहा गया है :— उग्रसेन, कंस, कृतवर्मन्, विदर्भराज भीष्मक, एवं रुक्मिन्।

भीम सात्वत से ले कर श्रीकृष्ण तक के यादव राजाओं का मुख्य राज्य मथुरा में ही था। जरासंध की भय से, श्रीकृष्ण ने एक स्वतंत्र यादव राज्य पश्चिम समुद्र के तट पर सुराष्ट्र में स्थित द्वारका नगरी में स्थापित किया।

श्रीकृष्ण के समय, यादवों की संख्या कुल तीन कोटि थी, जिनमें से साठ लाख लोग शूर योद्धा थे।

अठारह महारथ--भागवत में यादववंश में उत्पन्न अठारह शूर योद्धाओं की नामावलि दी गयी है, जो निम्न-प्रकार हैः— प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, दीप्तिमत्, भानु, साम्ब, मधु, बृहद्भानु, चित्रभानु, वृक, अरुण, पुष्कर, वरबाहु, श्रुतदेव, सुनंदन, चित्रबाहु, विरूप, कवि एवं न्यग्रोध (भा. १०.९०.३३-३४)। इनमें से प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, एवं वज्र भारतीय युद्ध के पश्चात् हुये मौसल युद्ध में मारे गये। इसी युद्ध में समस्त यादव वंश का भी जड़मूल से संहार हुआ। इस महाभयानक संहार का वर्णन भागवत, एवं महाभारत में प्राप्त है (भा. ३.४.१-२; म. मौ. ४)। इस संहार से केवल चार पाँच यादव ही बच सके (भा. १.१५.२३)।

आर्यसंस्कृति का प्रसार—प्राचीन आर्यसंस्कृति का प्रसार राजपूताना, गुजरात, मालवा एवं दक्षिण के प्रदेशों में करने का महान कार्य यादव लोगों ने किया। पूर्वकाल में ये सारे प्रदेश अनार्य थे, जिन्हे आर्य धर्म एवं संस्कृति की दीक्षा यादवों ने दी। यह कार्य करते समय, ये लोग अनार्य लोगों के साथ सम्मिलित हुये कर्मठ आर्यधर्म का पालन न कर सके। इसी कारण महाभारत एवं पुराणों में इन्हे 'असुर' कहा गया है, एवं उत्तरी पश्चिमी भारत के 'नीच्य' एवं 'अपाच्य' जातियों में इनकी गणना की गयी है। फिर भी आर्यधर्म के प्रसार में इन्होंने जो कार्य किया वह प्रशंसनीय है। यादवों का सर्वश्रेष्ठ नेता श्रीकृष्ण था, जो धर्मनीति एवं युद्धनीति में प्रवीण होने के कारण, समस्त भारतवर्ष का नेता बन गया एवं साक्षात् विष्णु का अवतार कहलाने लगा। आर्यसंस्कृति के प्रसार में यादवों के द्वारा किये गये कार्य में श्रीकृष्ण का बड़ा हाथ रहा है।

यादवनिंदा—महाभारत में भूरिश्रवस् राजा के द्वारा यादवों की अत्यधिक कटुशब्दों में आलोचना की गयी है, जहाँ उन्हे आचारहीन (व्रात्य), निंद्यकर्म करनेवाले, एवं गर्हणीय योनि के कहा गया है (म. द्रो. ११८.१५)। कौटिलीय अर्थशास्त्र में भी इन्हे 'छलकपट करनेवाले' कहा गया है, एवं द्वैपायन के साथ कपट करने से इनका नाश होने का निर्देश प्राप्त है (कौ. अ. पृ. २२)।

४. विदर्भदेश का एक राजा, जिसने अपनी प्रभा अथवा सुमति नामक कन्या सगर राजा को विवाह में दी थी।

५. (सो. ऋक्ष.) एक राजकुमार, जो उपरिचर वसु राजा का पुत्र था। युद्ध में यह किसी से पराजित नही होता था (म. आ. ५७.२९)।

६. स्वायंभुव मन्वन्तर के जित देवों में से एक।

यदुध्र—रैवत मन्वन्तर के सप्तर्षियों में से एक।

यद्रामिलायन--भृगुकुलोत्पन्न गोत्रकार 'यज्ञपिंडायन' का नामान्तर।

यम—एक पार्षद, जो वरुण के द्वारा स्कंद को प्रदान किया गया था। दूसरे पार्षद का नाम 'अतियम' था (म. श. ४.४.४१)। पाठभेद (भांडारकर संहिता)- 'घस', एवं 'अतिघस'।

यम वैवस्वत--समस्त प्राणियों का नियमन करनेवाला एक देवता, जो मृत्युलोक का अधिष्ठाता माना जाता है। वैदिक ग्रंथों में इसे मृत व्यक्तियों को एकत्र करनेवाला, मृतकों को विश्रामस्थान प्रदान करनेवाला, एवं उनके लिए आवास निर्माण करनेवाला कहा गया है (ऋ. १०.१४; १८; अ. वे. १८.२)। ऋग्वेद में इसे मृतकों पर शासन करनेवाला राजा कहा गया है (ऋ. १०.१६)। इसके अश्व स्वर्ण नेत्रों तथा लौह खुरोंवाले हैं।

इसके पिता का नाम विवस्वत् था, एवं इसकी माता का नाम सरण्यु था (ऋ. १०.१४; १७)। इसी कारण इसे 'वैवस्वत' पैतृक नाम प्राप्त हुआ था (ऋ. १०. १४.१; ५८.१; ६०.१०; १६४.२)। अथर्ववेद में इसे 'विवस्वत्' से भी श्रेष्ठ बताया गया है (१८.२)। उपनिषदों में इसे देवता माना गया है (बृ. उ. १. ४. ४.११; ३.३.९.२१)।

पहला राजा—इसे पहला मनुष्य कहा गया है (अ. वे. ८.३.१३)। इसे राजा भी कहा गया है (कौ. उ. ४. १५; ऋ. ९.११३; १०.१४)। शतपथ में इसे दक्षिण का राजा माना गया है (श. ब्रा. २.२.४.२)। ऋग्वेद के तीन सूक्तों में इसका निर्देश हुआ है (ऋ. १०. १४. १३५; १५४)।

निवासस्थान—यम का निवासस्थान आकाश के दूरस्थ स्थानों में था (ऋ. ९.११३)। वाजसनेय संहिता में यम एवं उसकी बहन यमी को उच्चतम आकाश में रहनेवाले कहा गया हैं, जहाँ ये दोनों संगीत एवं वीणा के स्वरों से घिरे रहते हैं (वा. सं. १२.६३)। ऋग्वेद में अन्यत्र इसका वासस्थान तीन द्युलोकों में सब से उँचा कहा गया है (ऋ. १.३.५-६)।

दूत—यम के दूतों में दो श्वान प्रमुख थे, जो चार नेत्रोंवाले, चौड़ी नासिकावाले, शबल, उदुंबल (भूरे), एवं सरमा के पुत्र थे (ऋ. १०.१४.१०)। ऋग्वेद में अन्यत्र ‘ उलूक ’ एवं ‘ कपोत ’ को भी यम के दूत कहा गया है (ऋ. १०.१६५.४)।

मित्रपरिवार—यम के मित्रों में अग्नि प्रमुख है, जिसे यम का मित्र एवं पुरोहित कहा गया है (ऋ. १०.२१; ५२)। मृत लोगों को द्युलोक में ले जानेवाला अग्नि यम का मित्र होना स्वाभाविक ही प्रतीत होता है। इसके अन्य मित्रों में वरुण एवं बृहस्पति प्रमुख थे, जिनके साथ यह आनंदपूर्वक निवास करता था। वैदिक साहित्य में अन्यत्र निम्नलिखित देवताओं को यम से समीकृत किया गया है:— अग्नि (तै. सं. ३.३.८.३); वायु (नि. १०.२०.२); एवं सूर्य (ऋ. १०.१०; १३५.१)।

यम-यमी संवाद—यम एवं उसकी जुड़वा बहन यमी का संवाद ऋग्वेद में प्राप्त है, जहाँ यमी इससे संभोग के लिए प्रार्थना करती है। उस समय यम ने भगिनीसंभोग अधर्म कह कर उसे निराश किया। फिर यमी ने इससे कहा, ‘ यहाँ कौन देख रहा है ’? तब इसने कहा, ‘ देवदूत देखते है, जिनका निवास-संचार हर एक स्थान पर है ’ (न निमिषन्त्येते देवानां स्पर्श इह ये चरन्ति) (ऋ. १०.८)। यह कथा उस समय की है, जब मानवसमाज में नीतिशास्त्र अप्रगल्भ अवस्था में था।

आत्मसमर्पण—ऋग्वेद के एक सूक्त में यम के द्वारा मृत्यु की स्वीकार किये जाने का, एवं यज्ञकुंड में आत्माहुति देने का निर्देश प्राप्त है (ऋ. १०.१३.४)। उस सूक्त के अनुसार, देवों के कल्याण के लिए यम ने मृत्यु की स्वीकार की (अवृणीत मृत्युम्), एवं अपना प्रिय शरीर यज्ञकुंड में झोंक दिया (प्रियां यमस्तन्वं प्रारिरेचीत्)।

ऋग्वेद के इस महत्वपूर्ण सूक्त से प्रतीत होता है कि, वैदिक आर्यों के यज्ञसंस्था के प्रारम्भ में यज्ञकर्ता स्वयं की आहुति देता था। आत्मबलिदान की इसी कल्पना से यज्ञसंस्था का प्रारंभ हुआ। प्रजा तथा देवों के कल्याण के लिए, आत्मसमर्पण करनेवाला यम एक आद्य यज्ञकर्ता माना जाता है। आगे चल कर, यज्ञ में आत्मबलिदान की जगह यज्ञीय पशु का हवन करने की प्रथा प्रचलित हुयी।

मृत्यु का देवता—यम मरणशील मनुष्यों में प्रथम था, अतएव उसे मृत होनेवालों में प्रधान माना गया, तथा इसे मृत्यु के साथ समीकृत किया गया। अथर्ववेद तथा बाद के पुराकथाशास्त्र में, मृत्यु का भय के साथ घनिष्ठ रूप से संबद्ध होने के कारण, यम मृत्यु के देवता बन गया। बाद की संहिताओं में ‘ अंतक ’ ‘ मृत्यु ’ ‘ निर्ऋति ’ के साथ यम का उल्लेख कर, ‘ मृत्यु ’ को इसका दूत कहा गया है (अ. वे. ५.३०; १८.२)। अथर्ववेद में मृत्यु को मनुष्यों का, तथा यम को पितरों का अधिपति कहा गया है, तथा ‘ निद्रा ’ को कहा गया है कि, वह यम के क्षेत्र से आती है।

व्युत्पत्ति—यम शब्द का भाषाशास्त्रीय आशय ‘यमज’ (जुड़वां पैदा होनेवाला) है, जिस अर्थ में इसका निर्देश ऋग्वेद में अनेक बार प्राप्त है (ऋ. १०.१०)। अवेस्ता में निर्दिष्ट ‘ यिम ’ का अर्थ भी यही है। इसके अतिरिक्त, ‘ निर्देशक ’ अर्थ से ‘ यम ’ का प्रयोग भी ऋग्वेद में कई बार हुआ है। उत्तरकालीन साहित्य में, यम को दुष्टों का यमन (नियंत्रित) करनेवाला देवता माना गया है।

वेदकालोपरांत यम—महाभारत तथा पुराणों में इसे विवस्वत् तथा संज्ञा का पुत्र कहा गया है (ह. वं. १.९.८; मार्क. ७४.७; मा. ६.६.४०; मत्स्य. ११.४; विष्णु. ३.२.४; पद्म. सु. ८; वराह. २०.८; भवि. प्रति. ४. १८)। संज्ञा को सूर्य का तेज सहन न होता था, इसलिए वह उसके सामने आते ही नेत्र बन्द कर लेती थी। इसी लिए सूर्य ने उसे शाप दिया, ‘ तुम्हारे उदर से प्रजासंहारक यम जन्म लेगा ’ (मार्क. ७४.४)। यम यमी जुड़वा संतान थे (पद्म. सु. ८)।

यम को शाप—इसने छाया नामक अपनी सौतेली माता की निर्मर्त्सना कर के उसे लातों से मारा था (ब्रह्म. ६); एवं दाहिना पैर उठा कर उसकी निर्मर्त्सना की थी (मत्स्य. ११.११; पद्म. सु. ८)। इसलिए छाया ने एकदम क्रोध से इसे शाप दिया, ‘ तुम्हारा यह पैर गल जायेगा। उसमें पीप, रक्त तथा कीडे होंगे ’ (मत्स्य. ११.१२)। उसके बाद यम अपने पिता के पास गया, तथा सारी स्थिति कह सुनाई। तब पिता ने इसे उःशाप दिया, जिसके संबंध में काफी मत मतान्तर है:—‘ पैर हड्डी सहित न गलेगा, केवळ पैर का मांस कीड़े खा लेंगे ’ (ह. वं १.९.३१; वायु. ८४. ५५)। ‘ पीप रक्त इत्यादि कीड़े खा लेंगे, तथा बाद में पैर पूर्ववत् हो जायेगा ’ (मत्स्य. ११. १७)। ‘ एक लाल पैर का पक्षी पैर खा लेगा, तथा बाद में पैर छोटा परन्तु सुन्दर बन जायेगा ’।

पितरों का प्रमुख—बाद में इसे वैराग्य उत्पन्न हुआ, और इसने तप करना प्रारंभ किया। तब ब्रह्मदेव ने इसे

पितरों का स्वामित्त्व, तथा संसार के पापपुण्यों पर नज़र रखने का काम दिया (पद्म. सृ. ८)। इसे 'धर्म' नामांतर भी प्राप्त था (ब्रह्म. ९४. १६-३२)।

यम-नचिकेत संवाद—कठोपनिषद् में 'यम-नचिकेत संवाद' नामक एक तत्त्वज्ञानविषयक संवाद प्राप्त है, जिसके अनुसार एक बार नचिकेतस् यम से मिलने यम लोक में गया। वहाँ यम ने उसे 'पितृक्रोधशमन' एवं 'अग्निज्ञान' ये दो वर प्रदान किये। उसके पश्चात नचिकेतस् ने यम से पूछा 'मृत्यु के बाद प्राण कहाँ जाता हैं? यम ने कहा, 'मृत्य के उपरांत प्राणगमन की स्थिति तुम मत पूछो' (मरणं मानु प्राक्षीः)। किन्तु नचिकेतस् के अत्यधिक आग्रह पर यम ने कहा, 'मृत्यु के उपरांत प्राण नष्ट नहीं होता। कर्म के अनुसार, उसे गति प्राप्त होती है'।

इसके पश्चात् नचिकेतस् ने यम से ब्रह्म के स्वरूप के बारे में प्रश्न किया। तब यम ने उत्तर दिया, 'देवताओं को भी ब्रह्म के सत्यस्वरूप का ज्ञान नहीं है। क्यों कि, ब्रह्मज्ञान जटिल एवं गहन है'। इस प्रकार कठोपनिषद में वर्णित यम, देवता न हो कर एक आचार्य है, जिसने धार्मिक मनोवृत्तियों के वशीभूत हो कर, तात्विक रूप से धर्म की व्याख्या कर के लोगों को उपदेश दिया है (क. उ. १.१६)। यही यम-नचिकेत संवाद अग्निपुराण में भी प्राप्त है (अग्नि. ३८५)।

यम को नारायण से 'शिवसहस्रनाम' का उपदेश मिला था, जिसे भी इसने नचिकेत को प्रदान किया था (म. अनु. १७.१७८-१७९)।

यमगीता—यम एवं यमदूतों के बीच हुअे अनेकानेक संवाद 'यमगीता' नाम से प्रसिद्ध है। यमगीता निम्नलिखित पुराणों में ग्रथित की गयी हैः— विष्णुपुराण (३.७); नृसिंहपुराण (८); अग्निपुराण (३८२); स्कंदपुराण।

महाभारत में वर्णित यम—महाभारत में इसे प्राणियों का नियमन करनेवाला यमराज कहा गया है, जो भगवान सूर्य का पुत्र, एवं सब के शुभाशुभ कर्मों का साक्षी बताया गया है (म. आ. ६७.३०)। इसे मारीच कश्यप एवं दाक्षायणी का पुत्र कहा गया है (म. आ. ७०.१०)। अणीमाण्डव्य ने इसे शूद्रयोनि में जन्म लेने के लिए शाप दिया था (म. आ. १०१.२५), क्यों कि, यम ने उसे निरपराधी होते हुए भी फाँसी की सजा दी थी। बाद को इसने विदुर के रूप में जन्म लिया था (भा. १.१३.१५; म. आ. ५७.८०; १००.२८; १०१. २७)।

पूर्वकाल में नैमिषारण्य में यम वैवस्वत ने शामित्र (कर्म) नामक यज्ञ किया था। वहाँ इसने यज्ञदीक्षा ली, जिससे संसार मृत्यु के द्वारा नष्ट होने से बच गया। सभी व्यक्ति अमर हो गए, तथा इस प्रकार संसार में जनसंख्या बढने लगी। तब इसने युद्धादि को जन्म दिया, जिससे प्राणियों की संख्या मृत्यु के द्वारा कम हो गयी (म. आ. १८९.१-८)। खाण्डवदाह के समय, श्रीकृष्ण तथा अर्जुन से युद्ध करने के लिए इंद्र की ओर से, यह भी कालदण्ड ले कर आया था (म. आ. २१८.३१)।

एक बार इसको उद्देशित कर कुन्ती ने मंत्र का उच्चारण किया, जिसके कारण इसे उसके पास जाना पड़ा। वहाँ उसके उदर से इसने एक पुत्र उत्पन्न किया। वही 'युधिष्ठिर' है (म. आ. ११४.३)। इसने अर्जुन को एक अस्त्र प्रदान किया था (म. व. ४२.२३)। इसने दमयन्तीस्वयंवर के समय राजा नल को भी वर प्रदान किया था। धर्मराज के द्वारा इसके प्रश्नों के योग्य उत्तर देने के कारण, एक सरोवर में मृत पड़े उसके चारों भाइयों को इसने जीवित किया था, तथा अज्ञातवास में सफल होने का उसे वरदान भी दिया था (म. व. २९७-२९८)। सावित्री को अनेक वर देने के उपरांत, इसने उसे सत्यवान् का पुनः जीवित होने का वर प्रदान किया था (म. व. २८१.२५-५३)।

इंद्र ने इसे पितरों का राजा बनाया था। पितरों के द्वारा पृथ्वीदोहन के समय यह बछड़ा बना था (अ. वे. २.८.२८)। त्रिपुरदाह के समय, यह शिव के बाण के पूछभाग में प्रतिष्ठित था। इसका महर्षि गौतम के साथ धर्मसंवाद हुआ था (म. शां. १२७)। इसने उसे मातृ-पितृऋण से मुक्त होने का मार्ग बताया था।

यम मुंज पर्वत पर शिव की उपासना करता था (म. आश्व. ८.१-६)। इसकी पत्नी का नाम धूमोर्णा था (म. अनु. १६५.११)।

अन्य पुराणों के अनुसार, इसकी नगरी का नाम संयमिनी था, जो मानसोत्तर पर्वत पर स्थित थी (भवि. ब्राह्म. ५३)। रामभक्त सुरथ की परीक्षा ले कर, इसने उसे वर दिया था, 'तुम्हें मृत्यु तभी प्राप्त होगी, जब तुम राम के दर्शन कर लोगे (पद्म. पा. ३९)।

यम की उपासना—यम को उसकी बहन यमी ने कार्तिक शुक्ल द्वितीया को भोजन दिया था। इसी लिए

इसने उसे वर दिया था कि, जो भी इस दिन बहन के हाथों बना भोजन ग्रहण करेंगे, उन्हे सदैव सौख्य प्राप्त होगा (स्कंद. २.४.११)।

हर्षण राजा के विश्वरूप नामक पिता को तथा विष्टि नामक माता को भीषण स्वरूप प्राप्त हुआ था। हर्षण ने यम की उपासना कर इससे प्रार्थना की कि, उन्हे सौम्य स्वरूप प्राप्त हो। तब इसने उन्हे गंगास्नान का व्रत बताया (ब्रह्म. १६५)।

एक बार इसके तप को देख कर इंद्र को भय हुआ, एवं उसने एक अप्सरा को भेज कर, इसका तप भंग करना चाहा। तब इसने इंद्र को सूचित किया कि, यह उसका इंद्रासन नहीं चाहता। बाद को इसने 'धर्मारण्य' नामक प्रदेश प्राप्त किया, जो शंकर का वासस्थान था (स्कंद. ३.२४)।

ग्रन्थ—यम के नाम पर तीन ग्रन्थ उपलब्ध हैं:—१. यमसंहिता, २. यमस्मृति, ३. यमगीता।

धर्मशास्त्रकार—याज्ञवल्क्य के द्वारा दी गयी धर्मशास्त्रकारों की सूची में यम का भी उल्लेख आता हैं (१.५)। वसिष्ठ धर्मसूत्र में यम के श्लोक आये हैं। अपरार्क ने शंखस्मृति में यम के धर्मविषयक विचारों को व्यक्त किया है, जिसके अनुसार कुछ पक्षियों का ही माँस खाना उचित कहा गया है (अपरार्क पृ. ११६७)। हर एक रूप में दूसरे जीवों के प्राणों की रक्षा के लिए भी वहाँ गया है। जीवानंद संग्रह में इसके श्लोकों की संख्या अठत्तर दी गयी हैं, जो आत्मशुद्धि एवं प्रायश्चित्त से सम्बन्धित हैं। आनंदाश्रम के 'स्मृतिसमुच्चय' में इसकी निन्नानवे श्लोकों की स्मृति प्राप्त है, जिसमें प्रायश्चित्त, श्राद्ध आदि के बारे में विचार प्राप्त है। इसकी स्मृति में इसका निर्देश 'भास्वति' (सूर्यपुत्र) नाम से किया गया है।

यम के अनुसार, विवाह के पश्चात् पत्नी का स्वतंत्र गोत्र नष्ट हो कर, उसका एवं उसके पति का गोत्र एक ही होता है (याज्ञ. १.२५४)। 'बृहद् यम स्मृति' नामक एक अन्य स्मृतिग्रंथ भी प्राप्त हैं, जिसमें पाँच अध्याय, एवं १८२ श्लोक प्राप्त है। उस स्मृति में शुद्धि आदि विषयों का विचार किया गया है। इस स्मृति में 'यम' एवं 'शातातप' आचार्यों के निर्देश प्राप्त हैं (बृहद्-यम. ३.४२; ५.२०)।

विश्वरूप, विज्ञानेश्वर, अपरार्क, स्मृतिचंद्रिका आदि उत्तरकालीन ग्रंथों में 'यमस्मृति' में से तीन सौ के उपर श्लोक उद्धृत किये गये है, जिनमें निम्नलिखित विषयों पर यम के विचार प्राप्त हैं :— श्राद्ध (याज्ञ. १.२२५); गोवध का प्रायश्चित्त (याज्ञ. ३.२६२); कन्या का विवाहयोग्य वय (स्मृतिचं. पृ. ७९); अपवित्र अन्न शुद्ध कैसे किया जा सकता है (अपरार्क. पृ. २६७); ब्रह्मचारी का वेश कैसा चाहिए (अपरार्क. पृ. ५८); ब्राह्मण को देहान्त शासन न देना चाहिए (स्मृतिचं. पृ. ३१६); असुर पत्नी का स्त्रीधन (याज्ञ. २.१४५); व्यभिचार (अपरार्क. पृ. ८६०)। आयुष्यक्षय के संबंध में इसने नचिकेत को बतायी हुयी गाथाएँ महाभारत में प्राप्त हैं (म. अनु. १०४.७२-७६)।

यम के अनुसार, स्त्रियों के लिए संन्यास-आश्रम अप्राप्य है। उन्हें चाहिये कि, वे अपनी एवं अपनी जाति के संतानों की सेवा करे (स्मृतिचं. पृ. २५४)।

यम के द्वारा रचित 'लघुयम' एवं 'स्वल्पयम' स्मृतिग्रंथों के उद्धरण भी हरदत्त, अपरार्क एवं स्मृतिरत्नाकर में प्राप्त हैं।

यमक—एक लोकसमूह, जो युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के समय भेंट ले कर उपस्थित थे (म. स. ४८. १२)। पाठभेद (भांडारकर संहिता)-'वैयमक'।

यमदूत—विश्वामित्र ऋषि का एक पुत्र।

यमराज—एक ग्रंथकार, जिसने 'भास्करसंहिता' के अंतर्गत 'ज्ञानार्णवतंत्र' की रचना की थी (ब्रह्मवै. २.१६)।

यमिन—स्वायंभुव मन्वन्तर के जिताजित् देवों में से एक।

यमी वैवस्वती—यम वैवस्वत की बहन, जो विवस्वत् आदित्य एवं संज्ञा की कन्या थी (भा. ६.६.४०; ८. १३.९)। कई ग्रंथों में इसकी माता का नाम सरण्यू दिया गया है। इसे 'यमुना' नामान्तर भी प्राप्त था। ऋग्वेद के एक सूक्त का प्रणयन भी इसने किया था (ऋ. १०.१०)।

ऋग्वेद में इसने अपने भाई यम के साथ किया हुआ 'यम-यमी संवाद' प्राप्त है, जहाँ इसने यम से संभोग की याचना की थी (ऋ. १०.८; यम वैवस्वत देखिये)।

'भय्यादूज' का व्रत कर, इसने अपने भाई यम को प्रसन्न किया था (स्कंद. २.४.११)।

यमुना—यमी वैवस्वती का नामान्तर।

ययाति—(सो. आयु.) प्रतिष्ठान देश का एक सुविख्यात राजा, जो नहुष राजा का पुत्र, एवं देवयानी तथा शर्मिष्ठा का पति था। महाभारत एवं पुराणों में इसे

'सम्राट' एवं 'श्रेष्ठ विजेता' कहा गया है। इसका राज्य-काल ३०००–२७५० ई. पू. माना जाता है।

इसने अपने पितामह आयु एवं पिता नहुष के कान्यकुब्ज देश के राज्य का विस्तार कर, अयोध्या के पश्चिम में स्थित मध्यदेश का सारा प्रदेश अपने राज्य में समाविष्ट किया। उत्तरी पश्चिम में सरस्वती नदी तक का सारा प्रदेश इसके राज्य में समाविष्ट था। इसके अतिरिक्त कान्यकुब्ज देश के दक्षिण, दक्षिणीपूर्व एवं पश्चिम में स्थित बहुत सारा प्रदेश इसने अपने बाहुबल से जीता था।

ऋग्वेद में इसे एक प्राचीन यज्ञकर्ता माना गया है, जो वेद की कुछ ऋचाओं का द्रष्टा था (ऋ. १.३१.१७; १०.६३.१; ९.१०१.४–६)। ऋग्वेद में एक बार इसका निर्देश नहुष राजा के वंशज 'नहुष्य' के रूप में किया गया है। पूरु के साथ इसके सम्बन्ध का निर्देश वैदिक ग्रंथो में अप्राप्य है। इसलिए महाकाव्य की परम्परा को निश्चित रूप से त्रुटिपूर्ण मानना चाहिए।

जन्म—ययाति का वंश अग्नि, चन्द्र तथा सूर्य से उत्पन्न हुआ था (म. आ. १.४४)। प्रजापतिओं में यह दसवाँ था (म. आ. ७१.१)। यह नहुष को, सुधन्वन् संज्ञक पितृकन्या विरजा से उत्पन्न पुत्रों में से दूसरा था (म. आ. ७०.२९; ८४.१; ९०.७; उ. ११२.७; द्रो. ११९.५; अनु. १४७.२७; वा. रा. उ. ५८; भा. ९.१८; विष्णु. ४.१०; गरुड. १.१३९.१८; पद्म. सृ. १२; अग्नि. २७४; वायु. ९३; ह. वं. १३०; ब्रह्म. १२; कूर्म. १.२२; लिंग. १.६६)। मत्स्य में, इसकी माता का नाम 'सुधन्वन्' की जगह 'सुस्वधा' दिया गया है (मत्स्य. १५.२०-२३)। पद्म के अनुसार, यह नहुष को अशोक-सुन्दरी नामक स्त्री से हुआ था (पद्म. भू. १०९)। इसके भाइयों की संख्या तथा नाम पुराणों में भिन्न भिन्न दिये गये हैं (नहुष देखिये)। इसका ज्येष्ठ भ्राता यति योग का आश्रय लेकर मुनि हो गया, तथा नहुष अजगर बन गया, जिससे यह भूमण्डल का सम्राट बना।

महाभारत में इसका जीवनचरित्र दो विभागों में दिया गया है:—(१) **पूर्वययात**, जिसमें इसके स्वर्गगमन तक का चरित्र प्राप्त है; (२) **उत्तरययात**, जहाँ इसके स्वर्गपतन के बाद का जीवन ग्रथित किया गया है (म. आ. ७०–८०; ८१–८८; मत्स्य. ३४–८८)।

देवयानी से भेट—एक बार मृगया के निमित्त जंगल में विचरण करता हुआ, तृषा से व्याकुल होकर यह एक कुँएँ के निकट आया। जैसे ही इसने कुँए में पानी देखना चाहा कि, इसे उसमें एक नग्न सुन्दरी दिख पड़ी। ययाति ने तत्काल उसे अपना उत्तरीय देकर, एवं उसका दाहिना हाथ पकड़ कर बाहर निकाला। बाद में उस स्त्री से इसे पता चला कि, वह दैत्यराज शुक्र की कन्या देवयानी है। अन्त में यह अपने नगर वापस आया (म. आ. ७३.२२–२३; भा. ९.१८)।

एक बार इसने देवयानी के साथ एक अन्य कन्या को देख कर उन दोनों का परिचय करना चाहा। तब देवयानी ने बताया, 'मैं शुक्राचार्य की कन्या हूँ, तथा यह वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा है, जो मेरी दासी है। यह सुन कर राजा ने अपना परिचय दिया, एवं विदा होने के लिए देवयानी से आज्ञा माँगी। तब देवयानी ने राजा को रोक कर उससे प्रार्थना करते हुए कहा, 'मैनें दो सहस्र दासी तथा शर्मिष्ठा के सहित आपको तन-मन धन से वरण किया है। अतएव आप मुझे अपनी पत्नी बना कर गौरवान्वित करे'।

ययाति-देवयानीसंवाद—प्रतिलोम विवाह उस समय सर्वत्र प्रचलित न थे, अतएव इसने साफ इन्कार कर दिया। तब इसका तथा देवयानी का परस्परसंवाद हुआ, जिसमें देवयानी ने कहा, 'हे राजा, तुम न भूलो कि, जब जब क्षत्रियकुल का संहार हुआ है, तब ब्राह्मणों से ही क्षत्रियों की उत्पत्ति हुयीं है। लोपामुद्रादि क्षत्रिय कुमारिकाओं का भी ब्राह्मणों से विवाह हुआ है। मेरे पिता आपके न माँगने पर भी यदि मुझे आपको देते हैं, तो आपको कुछ भी आपत्ति न होनी चाहिए। मैं कहती हूँ, इसमें आपको कुछ भी दोष एवं पाप न लगेगा'।

भागवत के अनुसार, देवयानी ने ययाति से कहा, 'कच के द्वारा मुझे यह शाप मिल चुका है कि, मुझसे कोई भी ब्राह्मणपुत्र शादी न करेगा। इसीलिए मैं तुमसे बार बार विवाह का निवेदन कर रही हूँ' (भा.९.१८)। किन्तु महाभारत के अनुसार, देवयानी ने कच के शाप की बात ययाति से न बतायीं, तथा तर्क के द्वारा उसे समझाने की कोशिश की कि, ययाति उससे विवाह कर ले।

विवाह—बाद में शुक्राचार्य ने देवयानी की इच्छा के अनुसार, उसकी शादी ययाति से कर दी। शुक्र ने विवाह में धनसंपत्ति के साथ दो हजार दासियाँ के साथ शर्मिष्ठा को भी ययाति को दिया, तथा कहा, 'शर्मिष्ठा कुलीन घराने की कन्या है, उसे कभी अपनी शय्या पर न बुलाना'। चलते समय शुक्राचार्य ने ययाति से कहा, 'देवयानी मेरी प्रिय कन्या है। तुम इसे अपनी पटरानी

बनाओ; तुम्हें प्रतिलोमविवाह का कुछ भी दोष न लगेगा'। अंत में यह देवयानी को उनकी दासियों के सहित के अपने नगर वापस लाया।

पुत्रप्राप्ति--बाद में इसने अशोकवनिका के पास ही शर्मिष्ठा तथा उसकी दासियों की योग्य व्यवस्था कर दी। वहाँ देवयानी के साथ यह प्रसन्नपूर्वक विलासमय जीवन बिताता रहा। कालांतर में देवयानी से इसे दो पुत्र भी हुए।

एक बार ययाति को एकान्त में देख कर शर्मिष्ठा इसके पास आयी, तथा इससे अपने ऋतुकाल को सफल बनाने की प्रार्थना की। पहले ययाति एवं शर्मिष्ठा में परस्पर संवाद हुआ, किन्तु अंत में इसे शर्मिष्ठा की यथार्थता को स्वीकार कर, उसे अपनी भार्या बना कर सहवास करना पड़ा। कालान्तर में उससे इसे तीन तेजस्वी पुत्र हुए।

शुक्र से शाप--एक दिन देवयानी ने शर्मिष्ठा के तीन पुत्र देखे। पूछने पर जैसे ही उसे पता चला कि, शुक्र के द्वारा रोके जाने पर भी, ययाति ने शर्मिष्ठा को भार्या के रूप में स्वीकार कर उसे तीन पुत्र दिये हैं, वह क्रोध में जल उठी, एवं तत्काल पिता के घर को चली गयी। उसके पीछे पीछे यह भी जा पहुँचा। वहाँ जैसे ही शुक्राचार्य को सारी बातें पता चलीं, उन्हों ने ययाति को जराग्रस्त होने का शाप दिया।

तब ययाति ने शुक्राचार्य से प्रार्थना की कि, वह उसे इस शाप से बचाये। तब शुक्राचार्य ने प्रसन्न हो कर कहा, 'तुमने मेरा स्मरण किया है, अतएव मैं तुम्हें वरदान देता हूँ कि, तुम अपनी यह जरावस्था किसी को भी दे कर, उसका तारुण्य ले सकते हो। जो पुत्र तुम्हें अपनी तरुणता दे, तथा तुम्हारी वृद्धावस्था स्वीकार करे, उसे ही तुम अपने राज्य का अधिकारी बनाओं; चाहे वह कनिष्ठ ही क्यों न हो। तुम्हे तरुणता देनेवाला तुम्हारा पुत्र दीर्घजीवी, कीर्तिवान् तथा अनेक पुत्रों का पिता बनेगा' (भा. ९.१८; ब्रह्म. १४६)। इस प्रकार वृद्धावस्था को धारण कर ययाति अपने नगर वापस आया (म. आ. ७८. ४०-४१)।

पुत्रों को शाप--राजधानी में आकर, इसने अपने ज्येष्ठ पुत्र यदु से कहा, 'तुम अपनी युवावस्था दे कर, मेरी वृद्धता एवं चित्तदुर्बलता हज़ार वर्षों के लिए स्वीकार करो'। यदु ने इन्कार करते हुए कहा, 'मेरे समान आपके अन्य भी पुत्र हैं। आप उनसे यही माँग करे, तो अच्छा होगा। यह सुन कर ययाति ने उसे शाप दिया, तुम एवं तुम्हारे पुत्रों राज्य के अधिकार से वंचित होगे' (यदु देखिये)।

आगे चल कर, यही प्रश्न इसने तुर्वसु से किया, किन्तु वह भी तैयार न हुआ। तब इसने उसे शाप दिया, 'तुम्हारी संतति नष्ट हो जावेगी, तथा जिन म्लेच्छों के यहाँ धर्म, आचार, विचार को स्थान न दिया जाता हो, एवं जहाँ की कुलीन स्त्रियाँ नीच वर्णों के साथ रमण करती हो, उसी पापी जाति के तुम राजा बनोगे'।

पश्चात् यह शर्मिष्ठा के ज्येष्ठ पुत्र द्रुह्यु के पास गया। वह भी जरावस्था को लेने के लिए तैयार न हुआ। फिर इसने उसे शाप दिया, 'तुम्हारा कल्याण कभी न होगा! तुम्हे ऐसे दुर्गम स्थान पर रहना पड़ेगा, जहाँ का व्यापार नावों के माध्यम से होता है। वहाँ भी तुम्हें अथवा तुम्हारे वंशजों को राज्यपद की प्राप्ति न होगी, तथा तुम राज्याधिकार से वंचित होकर 'भोज' कहलाओगे'।

इसके उपरांत यह अपने पुत्र अनु के पास गया। वह भी राजी न होने पर, इसने उसे शाप दिया, 'तुम इसी समय जराग्रस्त हो जाओगे। तुम्हारे द्वारा 'श्रौत' अथवा 'स्मार्त' अग्नि की सेवा न होगी, एवं तुम नास्तिक बन जाओगे' (म. आ. ७९.२३)।

यौवनप्राप्ति--सबसे अन्त में यह अपने कनिष्ठ पुत्र पूरु के पास गया, एवं उसकी युवावस्था माँगी। पूरु तैयार हो गया। तब इसने उसके शरीर में अपनी जरा को दे कर उसका यौवन स्वयं ले लिया। पश्चात् इसने उसे वर प्रदान किया, 'आज से मेरा सारा राज्य तुम्हारा एवं तुम्हारे पुत्रों का होगा' (म. आ. ७९.२४-३०)।

पूरु का यौवन प्राप्त कर ययाति अपनी विषयवासनाओं को पूर्ण करने में निमग्न हुआ। इसने देवयानी तथा शर्मिष्ठा से खूब विषयसुख लिया। बाद में इसने विश्वाची नामक अप्सरा के सहित नंदनवन में, तथा उत्तरस्थ मेरु पर्वत के अल्का नामक नगरी में अनेक प्रकार की विलासात्मक लिप्साओं का भोग किया। गौ नामक अप्सरा के साथ चैत्ररथवन वन में विलास किया। इतना सुख लूटने के बाद भी, जब इसका जी न भरा, तब इसने अनेक यज्ञ किये, दान दिये, तथा राजनीति का अनुसरण कर के प्रजा को सुखी बनाया। अब यह विषयवासनाओं से अत्यधिक ऊब चुका था।

विरक्तावस्था-- इसी विरक्त अवस्था में इसने अपनी जीवन गाथा रुपक में बाँध कर देवयानी को कह सुनाई। इस कथा में एक बकरा एवं बकरी की कथा कथन कि थी,

जो सदैव भोगलिप्सा में ही विश्वास करते थे (भा. ९. १९)। अत्यधिक भोग लिप्सा से आत्मा किस प्रकार विरक्त बनती है, इसकी कथा इसने पुत्र पूरु को सुनाई, एवं कहा:—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥
(म. आ. ८०, ८४०*; विष्णु. ४. १०. ९-१५)।

(कामोपभोग से काम की तृष्णा कम नही होती, बल्कि बढती है, जैसे कि अग्नि में हविर्भाग डालने से वह और जोर से भडक उठती है।)

वानप्रस्थाश्रम—अंत में इसने पूरु को उसकी जवानी लौटा कर, उससे अपनी वृद्धावस्था ले ली। इसके उपरांत, इसने बड़े शौक से पूरु को राज्याभिषेक किया। जनता ने इसका विरोध किया कि, राज्य ज्येष्ठ पुत्र को ही मिलना चाहिए। किन्तु इसने जनता को तर्कपूर्ण उत्तर दे कर शान्त किया, तथा वानप्रस्थाश्रम की दीक्षा ले कर ब्राह्मणों के साथ यह बन चला गया (म. आ. ८१. १-२)।

पुराणों के अनुसार, वनगमन के पूर्व ययाति ने अपने प्रत्येक पुत्र को भिन्न भिन्न प्रदेश दिये। तुर्वसु को आग्नेय, यदु को नैऋत्य, द्रुह्यु को पश्चिम, अनु को उत्तर, तथा पूरु को गंगा-जमुना के बीच में स्थित मध्य-प्रदेश दिया (वायु. ९३; कूर्म. १. २२)। कई पुराणों में यही जानकारी कुछ अन्य प्रकार से दी गयी है, जो निम्नलिखित है:- यदु को ईशान्य (ह. वं. १.३०.१७-१९); पूर्व (ब्रह्म. १२), दक्षिण (विष्णु. ४.३०; लिंग १. ६६); द्रुह्य को आग्नेय; यदु को दक्षिण; तुर्वसु को पश्चिम, तथा अनु को उत्तर प्रदेश का राज्य दिया गया (भा. ९.१९)।

उत्तरयायात आख्यान—अपने पुत्रों को राज्य प्रदान करने के पश्चात्, इसने भृगु पर्वत पर आ कर तप किया, एवं अपनी भार्याओं के साथ यह स्वर्गलोक गया। स्वर्ग में जाने के उपरांत, इसके घमण्डी स्वभाव, एवं दूसरों को अपमानित करने की भावना ने इसे निस्तेज कर दिया, एवं इंद्र ने इसे स्वर्ग से भौमनर्क में ढकेल दिया। किन्तु यह अपनी इच्छा के अनुसार, नैमिषारण्य में इसकी कन्या माधवी के पुत्र प्रतर्दन, वसुमनस्, शिबि तथा अष्टक जहाँ यज्ञ कर रहे थे, वहाँ जा कर गिरा। तब इसकी कन्या माधवी ने अपना आधा पुण्य, तथा गालव ने अपने पुण्य का अठवाँ अंश इसे प्रदान किया, जिस कारण यह पुनः स्वर्ग का अधिकारी बन गया (म. आ. ८१-८८; मत्स्य. २५-४२; माधवी देखिये)।

बाद में नैमिषारण्य में पाँच स्वर्णरथ आये, जिनमें चढ़ कर यह अपने चार नातियों के साथ पुनः स्वर्गलोक का अधिकारी हुआ। स्वर्गलोक में जाने के उपरांत, ब्रह्मदेव ने इसे बताया, 'तुम्हारे पतन का कारण तुम्हारा अभिमान ही था। अब तुम यहाँ आ गये हो, तो अभिमान छोड़ कर स्वस्थ मन से यहाँ वास करो (म. आ. ८१-८८; उ. ११८-१२१; मत्स्य. ३४-४२)।

वाल्मीकि रामायण में-ययाति की यह कथा वाल्मीकि रामायण में भी प्राप्त है, किंतु वह कथा पुराणों से कुछ भिन्न है। उसमें लिखा हैं कि, जब यदु ने इसकी जरावस्था को स्वीकार न किया, तब इसने शाप दिया, 'तुम यातुधान तथा राक्षस उत्पन्न करोगे। सोमकुल में तुम्हारी संतति न रहेगी, तथा वह उदण्ड होगी'। इसी के शाप के कारण, यदु राजा से क्रौंचवन नामक वन में हज़ारो यातुधान उत्पन्न हुए (वा. रा. उ. ५९)।

पद्म में—पद्म के अनुसार, पहले यह बड़ी धार्मिक प्रवृत्ति का राजा था, तथा धर्मभावना से ही राज्य करता था। किंतु इन्द्र के द्वारा भड़काने पर, इसका मस्तिष्क कुमार्गों की ओर लग गया।

इसकी धर्मपरायणता को देख कर इंद्र को शंका होने लगी कि, कहीं यह मेरे इंद्रासन को न ले ले। अतएव उसने अपने सारथी मातलि को भेजा कि, वह इसे ले आये। मातलि तथा इसके बीच परमार्थ के संबंध में संवाद हुआ, परंतु यह स्वर्ग न गया। तब इन्द्र ने गंधर्वों के द्वारा ययाति के सामने 'वामनावतार' नाटक करवाया। उसमें रति की भूमिका देख कर यह विमुग्ध हो उठा।

अश्रुबिंदुमती से विवाह--एक बार मलमूत्रोत्सर्ग करने के बाद, इसने पैर न धोया। यह देख कर जरा तथा मदन ने इसके शरीर में प्रवेश किया। कालांतर में एक बार जब यह शिकार के लिए अरण्य में गया था, तब इसे 'अश्रुबिन्दुमती' नामक एक सुंदर स्त्री दिखाई दी। तब इसने उसका परिचय प्राप्त करना चाहा। तब उसकी सखी विशाला ने उसका परिचय देते हुए इसे बताया, 'मदन-दहन के उपरांत रति ने अति विलाप किया, तब देवों ने उस पर दया कर के अनंग मदन का निर्माण किया। इस प्रकार अपने पति को पुनः पा कर रति प्रसन्नता से रोने लगी। रोते समय उसकी बाँयी आँख से

जो अश्रुबिन्दु टपका, उसीसे इस सुंदरी का जन्म हुआ है। अब यह बड़ी हो गयी है, तथा स्वयंवर करना चाहती है'। यह सुन कर ययाति ने अश्रुबिन्दुमती से कहा, 'मैं तुमसे शादी करने को तैयार हूँ'। अश्रुबिंदुमती ने कहा, 'यदि तुम दूसरे को जरा दे कर यौवन प्राप्त कर लो, तब मैं तुम्हारे साथ विवाह कर सकती हूँ'।

यह सुन कर, यौवन माँगने के लिए यह अपने 'तुरु', 'यदु', 'कुरु', एवं 'पूरु' इन चार पुत्रों के पास गया। उनमें से तुरु एवं यदु ने इसे यौवन देने से इन्कार किया, जिस कारण इसने उन्हे नानाविध तरह के शाप दिये। तीसरा पुत्र कुरु अल्पवय का था, अतएव यह उसके पास न गया। चौथे पुत्र पूरु ने अपना यौवन इसे प्रदान किया। तत्पश्चात् इसने अश्रुबिंदुमती से विवाह किया, जिसने इसे अपनी अन्य दो पत्नियों से संबंध न रखने की शर्त विवाह के समय लगा दी।

इसे एवं अश्रुबिन्दुमती को इस प्रकार रहते देख कर, देवयानी तथा शर्मिष्ठा को अत्यधिक सौतिया दाह हुआ। यह देख कर इसने यदु को आज्ञा दी, 'इन दोनों का वध करो'। किन्तु उसने इसकी आज्ञा का उल्लंघन किया। इससे क्रोधित हो कर ययाति ने यदु को शाप दिया, 'तुम्हारे वंश के पुरुष मामा की पुत्री के साथ वरण करेंगें, तथा मातृद्रव्य में हिस्सा लेंगे (पद्म. भू. ८०.१३)

बाद में, मेनका के सुझाये जाने पर अश्रुबिन्दुमती ने इससे अनुरोध किया कि, यह स्वर्ग देखने चले। तब इसने अपना सम्पूर्ण राज्य पूरु को दे कर, उसे राजनीति का उपदेश दिया, एवं यह वैकुंठ चला गया (पद्म. भू. ६४. ८३; ७७.७७)।

श्रेष्ठ सम्राट—इसका जीवन विभिन्न प्रकार के मोड़ों से गुज़रा। एक ओर जहाँ यह धर्मात्मा, दानी महापुरुष था, वहीं कालचक्र में फँस कर भोग-लिप्सा में ऐसा चिपका कि, अपने को ही भूल बैठा। किन्तु विभिन्न प्रभावों के द्वारा किये गये इसके कार्यों को छोड़ कर, इसका निष्पक्ष रूप से अवलोकन करने पर पता चलता हैं कि, ययाति मन तथा इन्द्रियों को संयम में रखनेवाला भूमण्डल का श्रेष्ठ सम्राट था। इसके भक्तिभाव से देवताओं तथा पितरों का पूजन कर, यज्ञों के अनुष्ठानों को करते हुए, समस्त पृथ्वी का पालन किया था (म. आ. ८०)।

इन्द्र ने इसे एक स्वर्ण का रथ दिया था। इस रथ को ले कर इसने छः रात्रियों में सम्पूर्ण पृथ्वी को जीत लिया, तथा समस्त देव, दानवों एवं मनुष्यों में यह अजेय साबित हुआ (ह. वं. १.३०.६-७)। लिंग में यह भी दिया गया है कि, यह रथ ययाति को शुक्र के द्वारा दिया गया था, तथा उसके साथ अक्षय तूणीर भी इसे दिये गये थे (लिंग. १.६६)। ब्रह्म के अनुसार, इसने पृथ्वी को छः दिनों में, तथा लिंग के अनुसार छः महीनें में जीता था (ब्रह्म. १२; लिंग. १.६६)। ब्रह्मदेव द्वारा निर्मित दिव्य खड्ग नहुष ने इसे दिये, तथा इसने वह पूरु को दे दिया था (म. शां. १६०.७३)।

यह अपने समय का बड़ा प्रसिद्ध राजा था, जिसके नाम के सामने स्थान स्थान पर 'सम्राट' 'सार्वभौम' इत्यादि उपाधियों लगाई जाती थीं। जब यह यज्ञ करता था, तब सरस्वती तथा अन्य नदियाँ, सप्तसागर तथा पर्वत इसे दुग्ध तथा घी देते थे (म. श. ४०.३०)। देवासुर-युद्ध में इसने देवताओं की सहायता की थी (म. द्रो. परि. १. क्र. ८. पंक्ति. ५७३; शां. २९.९०)। अज्ञात-वास के अन्त में पांडवों के द्वारा किया गया युद्ध देखने के लिये, यह देवों के विमान में बैठ कर आया था (म. वि. ५१.९)।

धार्मिकता—जहाँ राजाओं में यह सम्राट था, वहीं इसमें दानवीरता की भी कमी न थी (म. व. परि. १. क्र. २)। यह बड़ा प्रजापालक राजा था (म. आ. ८४. ८५७*; शां. २९.८८-८९; अनु. ८१.५)। इसने गुरुदक्षिणा देने के लिए, एक ब्राह्मण को हजार गौओं का दान किया था (म. व. १९०. परि. १.२०. ३) सरस्वती नदी के किनारे जो 'यायत' नामक प्रसिद्ध तीर्थ है, वह इसीके कारण प्रचलित हुआ (म. श. ४०.२९)। यह शंकर का बड़ा भक्त था (लिंग १. ६६)। इसे 'काशीपति' भी कहा गया है (म. उ. ११३. ३)। यह यमसभा में रह कर सूर्यपुत्र यम की उपासना करता था (म. स. ८.८)।

परिवार—ययाति को दो पत्नियाँ थीः—१. देवयानी, जो सुविख्यात भार्गव ऋषि उशनस् शुक्र की कन्या थी, २. शर्मिष्ठा, जो असुर राजा वृषपर्वन् की कन्या थी। पद्म में इसकी अश्रुबिंदुमती नामक तृतीय पत्नी का निर्देश प्राप्त है (पद्म. भू. ६४.१०८)। किन्तु अन्य कहीं भी उसका निर्देश अप्राप्य है।

ययाति राजा को कुल पाँच पुत्र थे। उनमें से यदु एवं तर्वसु इसे देवयानी से, एवं अनु, द्रुह्यु एवं पूरु नामक तीन पुत्र शर्मिष्ठा से उत्पन्न हुए थे (म. आ. ८०.१३-

१४; ९०.८-९)। इन पुत्रों के अतिरिक्त इसे माधवी एवं सुकन्या नामक दो कन्याएँ भी थी (विष्णुधर्म. १. ३२)। किंतु अन्य ग्रंथों में सुकन्या को वैवस्वत मनु के पुत्र शर्याति की कन्या कहा गया है।

ययातिपुत्रों के राज्य--ययाति ने अपना साम्राज्य अपने पाँच पुत्रों में बाँट दिया, जहाँ उन्होंने पाँच स्वतंत्र राजवंशों की स्थापना की। उनकी जानकारी निम्न-प्रकार है :--

१. यदु--इसे मध्यदेश के चर्मण्वती (चंबल), वेत्रवती (बेटवा) एवं शुक्तिमती (केन) नदियों से वेष्ठित प्रदेश का राज्य प्राप्त हुआ, जहाँ उसने यादववंश की स्थापना की।

२. तुर्वसु--इसे मध्यदेश के आग्नेय भाग में स्थित बाहरे प्रदेश का राज्य प्राप्त हुआ, जहाँ उसने तुर्वसु (यवन) वंश का राज्य स्थापित किया।

३. अनु--इसे मध्यदेश के उत्तर भाग में स्थित गंगा यमुना नदियों के दोआब का राज्य प्राप्त हुआ, जहाँ उसने अनु (म्लेच्छ) राज्य स्थापित किया।

४. द्रुह्यु--उसे मध्यप्रदेश के यमुना नदी के पश्चिम में, एवं चंबल नदी के उत्तर में स्थित प्रदेश का राज्य प्राप्त हुआ, जहाँ उसने द्रुह्यु (भोज) वंश का राज्य स्थापित किया।

५. पूरु--इसने ययाति की जरा स्वीकारने के कारण, ययातिपुत्रों में सब से छोटा होने पर भी, पूरु प्रतिष्ठान देश का राजा बनाया गया। इसे राज्य का सब से बडा हिस्सा मिल गया, जिस में सारा मध्यदेश एवं गंगा-यमुना के दो आब का प्रदेश समाविष्ट था। सोमवंश की मुख्य शाखा पूरु राजा से 'पूरुवंश' अथवा 'पौरव' कहलाने लगी।

२. स्वायंभुव मन्वन्तर के जित देवों में से एक।

यवक्री--'यवक्रीत' ऋषि का नामांतर।

यवक्रीत--भरद्वाज ऋषि का एकलौता पुत्र, जिसने वेदों की विद्या को प्राप्त करने के लिए घोर तप किया था (म. व. १३५.१३)। 'यवक्रीत' का शाब्दिक अर्थ 'यव दे कर खरीदा गया' होता है। इसे 'यवक्री' नामांतर भी प्राप्त था। इसका आश्रम स्थूलशिरस् ऋषि के आश्रम के पास था (म. व. १३५.१३८)। ज्ञान केवल अध्ययन से ही प्राप्त हो सकता है, तप से नही, इस तत्त्व के प्रतिपादन के लिए इसकी कथा महाभारत में दी गयी है।

यवक्रीत एवं इसके पिता दोनों तपोनिष्ठ व्यक्ति थे, किंतु इन दोनों को ब्राह्मणलोग आदर की दृष्टि से न देखते थे, क्यों कि, इनमें वेदों की ऋचाओं के निर्माण करने की शक्ति न थी।

तपस्या--यवक्रीत ने वेदज्ञान प्राप्त करने के लिए कठोर तप किया, जिससे घबरा कर इंद्र ने इसे सूचना की कि, यह अपने इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए व्यर्थ प्रयत्न न करे। किंतु यह प्रचंड अग्नि को प्रज्वलित कर के वेदप्राप्ति की लिप्सा में कठोर तप करता ही रहा। इंद्र के बार बार मना करने पर इसने उसे उत्तर दिया, 'अगर तुम मेरी मनःकामना पूरी न करोगे, तो मैं इससे भी कठिन तप कर कें, अपने प्रत्येक अंग को छिन्नभिन्न कर, जलती हुई अग्नि में होम कर दूँगा।'

इंद्र से भेंट--यवक्रीत के न मानने पर, इंद्र ने वृद्ध ब्राह्मण का वेष धारण किया, एवं वह संध्या के समय घाट पर जाकर, भागीरथी में मुठ्ठी भर भर कर बालू डालने लगा। उसे ऐसा करते देख कर, इसने उसका कारण पूछा। तब इंद्ररूपधारी ब्राह्मण ने कहा, 'भागीरथी में बालू डाल डाल कर, लोगों के लिए मै एक पूल निर्माण करना चाहता हूँ'। इसने उस ब्राह्मण की खिल्ली उड़ायी, एवं उसको इस निरर्थक कार्य को न करने की सलाह देते हुए कहा, 'यह भागीरथी की धारा का प्रवाह मुठ्ठी भर मिट्टी से तुम नहीं रुका सकते। सेतु बाँधने की कोरी कल्पना में तुम अपने श्रम को व्यर्थ न गवाँओं'। तब ब्राह्मण ने कहा, 'जिस प्रकार तुम वेदज्ञान की प्राप्ति के लिए तप कर रहे हो, उसी प्रकार मैं भी लगा हूँ। तब हँसने की बात ही क्या?'

यह सुन कर यवक्रीत ने इंद्र को पहचान लिया, तथा उससे क्षमा माँगते हुए वरदान माँगा, 'मेरी योग्यता अन्य सारे ऋषिओं से श्रेष्ठ हो'। तब इंद्र ने इसके द्वारा माँगे गये सभी वर देते हुए कहा, 'तुम्हें एवं तुम्हारे पिता में वेदों के सृजन करने की शक्ति जाग्रत होगी। तुम अन्य लोगों से श्रेष्ठ होंगे, तथा तुम्हारे सभी मनोरथ पूर्ण होंगे' (म. व. १३५)।

इन्द्र के द्वारा वर प्राप्त कर यह अपने पिता भरद्वाज के पास आया, एवं उसे वरप्राप्ति की कथा सविस्तार बतायी। भरद्वाज ने इसकी गर्वपूर्ण वाणी को सुन कर, इसकी अभिमानभावना को नाश करने के लिए, इसे बालधि ऋषि तथा उसके पुत्र मेधाविन् की कथा सुनायी, एवं

इसे उपदेश दिया की, गर्व करने के क्या दुष्परिणाम होते हैं।

रैभ्य से विरोध—जिस स्थान पर यह तथा इसके पिता रहते थे, वहीं पास में ही विश्वामित्र ऋषि का पुत्र रैभ्य भी आश्रम बना कर, अर्वावसु तथा परावसु नामक अपने पुत्रों के साथ रहता था। रैभ्य के साथ उसकी स्नुषा, परावसु की परम सुंदरी पत्नी भी रहती थी। एक बार घूमते घूमते यह रैभ्य आश्रम के पास आया, तथा स्नुषा के रूप को देख कर इतना अधिक पागल हो उठा कि, उसके बार बार मना करने पर भी, इसने उसके साथ बलात्कार किया। बाद को स्नुषा ने सारी कथा रो रोकर अपने श्वशुर रैभ्य ऋषि को बतायी।

यवक्रीत की यह आवारगी एवं निर्लज्ज कामातुरता की कहानी सुन कर, रैभ्य क्रोध में तमतमाने लगा। उसने अपनी दो जटायें उखाड कर, उन्हे अग्नि में होम कर, एक राक्षस तथा एक सुंदर स्त्री का निर्माण किया, एवं उन्हे यवक्रीत का नाश करने की आज्ञा की। उस कृत्यारूपी सुन्दर स्त्री ने तप करते हुए यवक्रीत को मोहित किया, एवं इसका समस्त तेज ले लिया। तब राक्षस अपने शूल को ले कर इस पर दौड़ा। यह राक्षस को भस्म करने के लिए पानी ढूँडने लगा। उसे न देख कर भागता भागता यह नदियों के पास गया, किंतु वहाँ नदीयाँ में भी पानी न था। तब इसने पिता की होमशाला में आ कर, उसमें घुस कर, प्राण बचाना चाहा। किंतु आश्रम के अंधे शूद्र के द्वारा यह बाहर ही रोक लिया गया। उसी समय अवसर देख कर, राक्षस ने अपने शूल से प्रहार कर इसके वक्षःस्थल को विदीर्ण किया, एवं इसका वध किया। इस प्रकार रैभ्य ऋषि की श्रमपूर्वक संपादित की हुयी विद्या के आगे यवक्रीत की वरप्राप्ति की विद्या ठहर न सकी।

बाद में ब्रह्मयज्ञ कर के भरद्वाज मुनि आश्रम आये, तथा यह देख कर कि, आज होमशाला की अग्नि प्रज्वलित नहीं है, उन्होंने इसका कारण अपने गृहरक्षक शूद्र से पूछा। उस शूद्र ने सारी कथा कह सुनायी, तथा भरद्वाज तुरंत ही समझ गये कि, मना करने पर भी यह अवश्य ही रैभ्य के आश्रम गया होगा। पुत्र को धरती पर पड़ा हुआ देख कर भरद्वाज ने कहा, 'हे मेरे एकलौते पुत्र, तुम्हें बार बार मना किया, किंतु तुम न माने। वेदों के ज्ञान को पा कर, तुम घमण्डी, तथा कठोर बन कर पापकर्म में रत हुए हो। आज मैं पुत्रशोक में कितना विह्वल हूँ। तुम्हारी मृत्यु तो हुई, किंतु तुमको मरवानेवाला रैभ्य भी अपने पुत्र के द्वारा ही मारा जायेगा'। इस प्रकार विलाप करते हुए भरद्वाज मुनि ने रैभ्य को शाप दिया, एवं मृत पुत्र के साथ ही अग्नि में प्रविष्ट हो कर, उसने अपनी जान दे दी (म. व. १३७)।

मुक्ति—कालांतर में भरद्वाज के द्वारा दिये गये शाप के कारण, रैभ्य अपने पुत्र परावसु के द्वारा मारा गया। यह देख कर, रैभ्य के परमसुशील पुत्र अर्वावसु ने उग्र तप कर के सूर्य तथा देवों को प्रसन्न किया। उसने उनके द्वारा वर प्राप्त कर, भरद्वाज, यवक्रीत तथा रैभ्य को जीवित कर पितृहत्या के दोष से अपने बंधु परावसु को मुक्त किया एवं दो अन्य वर भी प्राप्त किये। पहला वर माँगा कि, 'मेरे पिता भरद्वाज के द्वारा किये गये वध का स्मरण उसे न रहे,' तथा दूसरा माँगा कि, 'मुझे जो वेद को प्रकाशित करनेवाला सूर्यमंत्र प्राप्त हुआ है, वह हमारे परिवार एवं परम्परा में सदैव बना रहे'।

बाद में इंद्रादि देवों ने यवक्रीत से बताया, 'रैभ्य ने गुरु से वेदों का अध्ययन किया है, इसलिए सामर्थ्य में वह तुमसे श्रेष्ठ है'। भरद्वाज ने अर्वावसु का अभिनंदन किया, तथा उसके इस उपकार के लिए बार बार प्रशंसा की। अंत में यह अपने पिता के साथ उसके आश्रम रहने गया (म. व. १३८)।

यवन—कृष्ण के द्वारा मारे गये 'कालयवन' राजा का नामान्तर (म. व. १३.२९; कालयवन देखिये)।

२. हैहयराज का एक साथी, जिसे सगर ने पराजित किया था। पश्चात् यह वसिष्ठ ऋषि की शरण में गया, जिसने इसे जीवितदान तो दिया; किन्तु इसके सर के बाल निकालने की, एवं दाढ़ी रखने की सजा इसे थी (पद्म. उ. २०)।

३. एक लोकसमूह, जो गांधार देश के सीमाभाग में स्थित 'अरिआ' एवं 'अर्कोशिया' प्रदेश में रहते थे। प्राचीन वाङ्मय में 'अयोनियन' ग्रीक लोगों के लिए 'यवन' शब्द प्रायः प्रयुक्त किया जाता है। इन युनानी लोगों को फारसी भाषा में 'यौन' कहते थे, जिसका ही रूपान्तर प्राकृत भाषा में 'यौन', एवं संस्कृत में 'यवन' नाम से किया गया प्रतीत होता है।'

उपनिवेश—सिकंदर के हमले के पूर्वकाल में योन लोगों का एक उपनिवेश, अफगाणिस्तान में बल्ख एवं समरकंद के बीच के प्रदेश में बसा हुआ था, जिन लोगों का राजा 'सेर्क्सस' था। पाणिनि के व्याकरण में 'यवन लिपि' का निर्देश है, जो संभवतः प्राग्मौर्य थी, एवं इन्ही

लोगों के द्वारा प्रस्थापित की गयी थी (पा. सू. ४.१.४९; कात्यायन वार्तिक. ३)।

सिकंदर के हमले के पश्चात्, यवन लोगों का एक उपनिवेश भारत के उत्तरीपश्चिम प्रदेश में बसा हुआ था। चंद्रगुप्त मौर्य के दरबार में आये हुये मेगॅस्थिनिस, दिओन्सिअस आदि परदेशीय वकील यवन ही थे।

अशोक के बारहवे स्तंभलेख में, 'योन' लोगों के देश में महारक्षित नामक बौद्ध भिक्षु धर्मप्रचारार्थ भेजने का निर्देश प्राप्त है। 'योन धर्मरक्षित' नामक अन्य एक बौद्ध धर्मगुरु अशोक के द्वारा 'अपरान्त' प्रदेश में भेजा गया था। रुद्रदामन् के जुनागड स्तंभलेख में, अपरान्त प्रदेश का राज्य योनराज तुषाष्प के द्वारा नियंत्रित किये जाने का, एवं वह सम्राट अशोक का राजप्रतिनिधि होने का निर्देश प्राप्त है। इससे प्रतीत होता है कि, अशोक के राज्यकाल में यवन लोगों की एक बसाहत पश्चिमी भारत में गुजरात प्रदेश में भी बसी हुयी थी।

पतंजलि के महाभाष्य में, मिनॅन्डर नामक यवन राजपुत्र ने 'साकेत' (अयोध्या) एवं 'मध्यमिका' नगरी को युद्ध में घिरा लेने का निर्देश प्राप्त है (महा. २.११९)। आगे चल कर शुंगराजा पुष्यमित्र एवं वसुमित्र ने यवनों को पराजित किया। आंध्र राजा गौतमीपुत्र शातकर्णी ने इनका संपूर्ण नाश किया।

महाभारत में—महाभारत के अनुसार, यवन लोग ययातिपुत्र तुर्वसु के वंशज थे (म. आ. ८०.२६)। ये लोग पहले क्षत्रिय थे; किंतु ब्राह्मणों से द्वेष रखने के कारण, बाद में शूद्र बन गये थे (म. अनु. ३५.१८)। उसी ग्रंथ में अन्यत्र इन्हे नंदिनी के योनि (मूत्र) प्रदेश से उत्पन्न कहा गया है (म. आ. १६५.३५)।

सहदेव ने अपनी दक्षिणदिग्विजय में इनके नगरों को जीता था (म. स. २८.४९)। नकुल ने भी अपनी पश्चिम दिग्विजय में इन्हे परास्त किया था (म. स. २९.१५ पाठ.)। कर्ण ने अपनी पश्चिम दिग्विजय में इन्हे जीता था (म. व. परि. १.२४.६६)।

भारतीय युद्ध में, ये लोग कौरवों के पक्ष में शामिल थे। कांबोजराज सुदक्षिण यवनों के साथ एक अक्षौहिणी सेना ले कर भारतीय युद्ध में उपस्थित हुआ था (म. उ. १९.२१-२२)। भारतीय युद्ध में यवनों के साथ अर्जुन का (म. द्रो. ६८.४१;९६.१), एवं सात्यकि का (म. द्रो. ९५.४५–४६) घनघोर युद्ध हुआ था।

यवस—सावर्णि मनु के पुत्रों में से एक। पद्म में इसे 'यवसु' कहा गया है (पद्म. सृ. ७)।

२. इध्मजिह्व राजा के सात पुत्रों में से एक।

यविष्ठ—स्वायंभुव मन्वन्तर के जिदाजित् देवों में से एक।

२. अग्नि का एक नामान्तर।

यवीनर—(सो. द्विमीढ.) द्रुह्युकुलोत्पन्न एक सुविख्यात राजा, जो मत्स्य के अनुसार अजमीढ राजा का, एवं भागवत, विष्णु एवं वायु के अनुसार द्विमीढ राजा का पुत्र था। इसके पुत्र का नाम धृतिमंत (कृतिमत्) था।

२. (सो. नील.) उत्तर पंचाल देश का एक राजा, जो भागवत के अनुसार भर्म्यश्व राजा का पुत्र था। इसे मुद्गल, सृंजय, बृहदिशु, एवं कांपिल्य नामक चार भाई थे। भर्म्यश्व राजा के ये पाँच पुत्र 'पंचाल' नाम से सुविख्यात थे।

यावियस्—(सो. नील.) एक राजा, जो वायु के अनुसार ऋक्ष राजा का पुत्र था।

२. एक आचार्य, जो वायु के एवं ब्रह्मांड के अनुसार, व्यास की सामशिष्यपरंपरा में से हिरण्यनाभ ऋषि का शिष्य था।

यश—सुतभ देवों में से एक।

२. विकुंठ देवों में से एक।

यशस्कर—शिवदेवों में से एक।

यशस्विन्—प्रतर्दन देवों में से एक।

यशस्विन् जयन्त्य लौहित्य—एक आचार्य, जो कृष्णरात त्रिवेद लौहित्य नामक आचार्य का शिष्य था (वं. ब्रा. ३; जै. उ. ब्रा. ३.४२.१)। लोहित का वंशज होने से इसे 'लौहित्य' पैतृक नाम प्राप्त हुआ होगा।

यशस्विनी—स्कंद की अनुचरी एक मातृका (म. श. ४५.१०)।

यशोदा—हविष्मत् नामक पितरों की मानसकन्या (ह. वं. १.१८.६१)। कई ग्रंथों में इसे 'सुस्वधा' (उपहूत) पितरों की कन्या कहा गया है। इसका विवाह इक्ष्वाकुवंशीय विश्वमहत् (विश्वसह) राजा से हुआ था, जिससे इसे दिलीप खट्वांग नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था (ब्रह्मांड. ३.१०.९०)।

मत्स्य में इसे इक्ष्वाकुवंशीय अंशुमत् राजा की पत्नी कहा गया है (मत्स्य. १५.१८)। किन्तु यह अयोग्य प्रतीत होता है। अंशुमत् राजा के पुत्र का नाम भी दिलीप (प्रथम) ही था। संभव है, इसी नामसादृश्य से

मत्स्य में, इसे अंशुमत् की पत्नी होने का अयोग्य निर्देश किया गया होगा।

२. नंद गोप की पत्नी, जिसने श्रीकृष्ण को पालपोस कर बडा किया था (भा. १०.२.९)। यह देवक नामक गोप की कन्या थी। भागवत में, इसे द्रोण नामक वसु की पत्नी धरा का अवतार कहा गया है (भा. १०.८.५०; रापण देखिये)।

यशोदेवी--अनुवंशीय सम्राट बृहन्मनस् की पत्नी।

यशोधन--पाण्डवपक्षीय दुर्मुख पांचाल नामक राजा का पुत्र। इसे 'दौर्मुखी' पैतृक नाम भी प्राप्त था (म. द्रो. १५९.४)। पाठभेद (भांडारकर संहिता)—'यशोधर'।

यशोधर—श्रीकृष्ण एवं रुक्मिणी का एक पुत्र (म. अनु. १४.३३)।

यशोधरा--विरोचन दैत्य की कन्या, जो त्वष्ट्र की पत्नी थी। इसे 'वैरोचनी यशोधरा' एवं 'रचना' नामान्तर भी प्राप्त थे। इसे त्वष्ट्र से निम्नलिखित दो पुत्र उत्पन्न हुये थे:–त्रिशिरस् विश्वरूप, एवं विश्वकर्मन् (संनिवेश) (ब्रह्मांड. ३.१.८६–८७)।

२. त्रिगर्तराज की कन्या, जो पूरुवंशीय सम्राट हस्तिन् की पत्नी थी। इसके पुत्र का नाम विकुंठन था। पाठभेद-- 'यशोदा'।

यशोभद्र—एक राजा, जो मनोभद्र राजा का पुत्र था। इसके भाई का नाम वीरभद्र था। पूर्वजन्म में गंगास्नान का पुण्य करने के कारण, इसे राजकुल में जन्म प्राप्त हुआ था (पद्म. क्रि. ३)।

यशोमेधस्—सुमेधस् देवों में से एक।

यशोवती—हैहय राजा एकवीर की पत्नी।

यशोवसु—(सो. अमा.) एक राजा, जो वायु के अनुसार कुश राजा का पुत्र था। विष्णु में इसे 'अमावसु' एवं भागवत में 'वसु' कहा गया है।

यस्क—एक व्यक्ति, जो गिरिक्षित का वंशज था (का. सं. १३.१२)। इसी कारण इसे 'गैरिक्षित' कहा गया है।

२. भृगुकुलोत्पन्न एक गोत्रकार, जिसके नाम के लिए 'यस्कावर' पाठभेद प्राप्त है। पाणिनि ने यस्क नामक एक आचार्य का निर्देश किया है (पा. सू. २.४.६३; ४.१.११२)। आश्वलायन श्रौतसूत्र के गोत्रप्रवरों की तालिका में 'यस्क' का निर्देश प्राप्त है (आ. श्रौ. ६.१०.१०)। संभवतः ये सारे व्यक्ति एक ही होगे।

याज—कश्यपकुलोत्पन्न एक ऋषि, जो यमुना नदी के तट पर निवास करता था। द्रोण का विनाश करनेवाला पुत्र उत्पन्न करने के लिए द्रुपद राजा ने इससे, एवं इसके भाई उपयाज से एक यज्ञ कराया था।

यह वेदाभ्यासक एवं सूर्यभक्त ऋषि था। किन्तु प्रारंभ से ही, यह अत्यंत हीन मनोवृत्ति का एवं लोभी था (म. आ. १५५.१४–२१)। पंचाल देश का द्रुपद राजा एक ऐसे पुत्र की कामना मन में रखता था, जो उसके शत्रु द्रोणाचार्य का वध करे। इसने एवं इसके भाई उपयाज ने एक अर्बुद धेनुओं के बदले में, द्रुपद राजा के पुत्रकामेष्टी यज्ञ का काम स्वीकार लिया (म. आ. १६७.२१)। यज्ञ समाप्त होने पर, यज्ञ में सिद्ध किया गया 'चरु' भक्षण करने के लिए, इसने द्रुपदपत्नी सौत्रामणि को बुलाया। उसे आने में विलंब होते ही, इस तामसी ऋषि ने वह चरु अग्नि में झोंक दिया, जिससे द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न उत्पन्न हुआ (द्रुपद देखिये)।

पंचाल देश में राज्य करनेवाला पुरुयशस् राजा भी याज एवं उपयाज ऋषियों का ही शिष्य था (स्कंद. २.७.१५–१६; पुरुयशस् देखिये)।

याज्ञ--भृगुकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

याज्ञतुर--ऋषभ नामक अश्वमेध करनेवाले राजा का पैतृक नाम (श. ब्रा. १२.८.३.७; सां. श्रौ. १६.९.८.१०)। 'यज्ञतुर' का वंशज होने से, इसे यह पैतृक नाम प्राप्त हुआ होगा।

याज्ञदत्त--वसिष्ठकुलोत्पन्न याज्ञवल्क्य नामक गोत्रकार का नामान्तर (याज्ञवल्क्य २. देखिये)।

याज्ञवल्क्य--विश्वामित्रकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

२. वसिष्ठकुलोत्पन्न एक गोत्रकार। इसे याज्ञदत्त नामान्तर भी प्राप्त था (मत्स्य. २००.६)।

३. एक आचार्य, जो व्यास की ऋक्‌शिष्यपरंपरा में से बाष्कल नामक ऋषि का शिष्य था। इसीके नाम से व्यास की उस ऋक्‌शिष्यपरंपरा को 'याज्ञवल्क्य' नाम प्राप्त हुआ (वायु. ६०.१२–१५)।

४. एक आचार्य, जिसके आश्रय में विष्णुयशस् नामक ब्राह्मण के घर, कल्कि नामक विष्णु का ग्यारहवाँ अवतार उत्पन्न होनेवाला है (भा. १. २. ३५)। वास्तव में, कल्कि अवतार इसके पहले ही हो चुका है। किन्तु उस अवतार के जीवन-चरित्र में किसी याज्ञवल्क्य नामक आचार्य का निर्देश अप्राप्य है।

५. विश्वामित्र के ब्रह्मवादी पुत्रों में से एक (म. अनु. ४. ५१)।

याज्ञवल्क्य वाजसनेय—एक सर्वश्रेष्ठ विद्वान्, वादपटु, एवं आत्मज्ञ ऋषि, जो 'शुक्लयजुर्वेद संहिता' का प्रणयिता माना जाता है। यह उद्दालक आरुणि नामक आचार्य का शिष्य था (बृ. उ. ६. ४. ३. माध्यं.)। यह सांस्कारिक एवं दार्शनिक समस्या का सर्वश्रेष्ठ अधिकारी विद्वान् था, जिसके निर्देश शतपथ ब्राह्मण, एवं बृहदारण्यक उपनिषद में अनेक बार प्राप्त हैं (श. ब्रा. १. १. १. ९; २. ३. १. २१; ४. २. १. ७; बृ. उ. ३. १. २ माध्यं.)।

ओल्डेनबर्ग के अनुसार, यह विदेह देश में रहनेवाला था। जनक राजा के द्वारा इसे संरक्षण मिलने की जो कथा बृहदारण्यक उपनिषद में प्राप्त है, उससे भी यही प्रस्थापित होता है। किन्तु इसका गुरु उद्दालक आरुणि कुरुपंचाल देश में रहनेवाला था, जिस कारण इसको भी उसी देश के निवासी होने की संभावना है।

नाम— यज्ञवल्क्य का वंशज होने के कारण, इसे 'याज्ञवल्क्य' पैतृक नाम प्राप्त हुआ होगा। बृहदारण्यक उपनिषद में इसे 'वाजसनेय' कहा गया है (बृ. उ. ६. ३. ७–८, ६.५.३; श. ब्रा. १४.९.४.३३)। महीधर के अनुसार, वाजसनि का पुत्र होने के कारण, इसे वाजसनेय नाम प्राप्त हुआ होगा। इसके 'मध्यंदिन' नामक शिष्य के द्वारा इसके शुक्लयजुर्वेद संहिता का प्रचार होने के कारण, इसे 'माध्यंदिन' भी कहते है।

विष्णु में इसे ब्रह्मरात का पुत्र, एवं वैशंपायन का शिष्य कहा गया है (विष्णु. ३.५.२)। वायु, भागवत, एवं ब्रह्मांड में इसके पिता का नाम क्रमशः 'ब्रह्मवाह', 'देवरात' एवं 'ब्रह्मराति' प्राप्त है (वायु. ६०.४१; भा. १२.६.६४; ब्रह्मांड. ३.३५.२४)। ब्रह्मा के शरीर से उत्पन्न होने के कारण, इसे 'ब्रह्मवाह' नाम प्राप्त हुआ था (वायु.६०.४२)। महाभारत में इसे वैशंपायन ऋषि का भतिजा एवं शिष्य कहा गया है (म. शां. ३०६. ७७६*)। उद्दालकशिष्य याज्ञवल्क्य एवं वैशंपायनशिष्य याज्ञवल्क्य दोनों संभवतः एक ही होंगे। उनमें से उद्दालक इसका दार्शनिक शास्त्रों का, एवं वैशंपायन वैदिक सांस्कारिक शास्त्रों का गुरु था।

इनके अतिरिक्त, हिरण्यनाभ कौशल्य नामक इसका और एक गुरु था, जिससे इसने योगशास्त्र की शिक्षा प्राप्त की थी (ब्रह्मांड. ३.६३.२०८; वायु ८८.२०७; विष्णु. ४. ४.४७; भा. ९.१२.४)।

योग्यता—याज्ञवल्क्य के दो प्रमुख पहलू माने जाते हैं। यह वैदिक संस्कारों का एक श्रेष्ठ ऋषि था, जिसे 'शुक्ल यजुर्वेद' एवं 'शतपथ ब्राह्मण' के प्रणयन का श्रेय दिया जाता है। इसके साथ ही साथ यह दार्शनिक समस्याओं का सर्वश्रेष्ठ आचार्य भी था, जिसका विवरण 'बृहदारण्यक उपनिषद' में विस्तारशः प्राप्त है। वहाँ इसने अत्यंत प्रगतिशील दार्शनिक विचार सरलतम भाषा में व्यक्त किये है, जो विश्व के दार्शनिक साहित्य में अद्वितीय माने जाते हैं।

यजुःशिष्यपरंपरा—याज्ञवल्क्य यजुःशिष्यपरंपरा में से वैशंपायन ऋषि का शिष्य था। वैशंपायन ऋषि के कुल ८६ शिष्य थे, जिनमें श्यामायनि, आसुरि, आलंबि, एवं याज्ञवल्क्य प्रमुख थे (वैशंपायन देखिये)। वैशंपायन ने 'कृष्णयजुर्वेद' की कुल ८६ संहिताएँ बना कर, याज्ञवल्क्य के अतिरिक्त अपने बाकी सारे शिष्यों को प्रदान की थीं। वैशंपायन के शिष्यों में से केवल याज्ञवल्क्य को 'कृष्णयजुर्वेद संहिता' प्राप्त न हुयी, जिस कारण इसने 'शुक्लयजुर्वेद' नामक स्वतंत्र संहिता-ग्रंथ का प्रणयन किया।

कृष्णयजुर्वेद का शुद्धीकरण—याज्ञवल्क्य ने 'कृष्णयजुर्वेद' के शुद्धीकरण का महान् कार्य सम्पन्न किया, एवं उसी वेद के संहिता में से चालीस अध्यायों से युक्त नये शुक्लयजुर्वेद का निर्माण किया (श. ब्रा. १४.९.४.३३)। याज्ञवल्क्य के पूर्व, कृष्णयजुर्वेद संहिता में यज्ञविषयक मंत्र, एवं यज्ञप्रक्रियाओं की सूचनायें, उलझी हुई सन्निहित थीं। उदाहरणार्थ, तैत्तिरीय संहिता में 'इषेत्वेति छिनत्ति' मंत्र प्राप्त है। यहाँ 'इषेत्वेति' (इषे त्वा) वैदिक मंत्र है, जिसके पठन के साथ 'छिनत्ति' (लकड़ी तोड़ना) की प्रक्रिया बताई गयी है।

याज्ञवल्क्य की महानता यह है कि, इसने 'इषे त्वा' की भाँति वैदिक मंत्रभागों को अलग कर उन्हें 'शुक्ल युजुर्वेद' संहिता में बाँध दिया, एवं 'इति छिनत्ति' जैसे याज्ञिक प्रक्रियात्मक भागों को अलग कर, ब्राह्मण ग्रन्थों में एकत्र किया।

कृष्णयजुर्वेद के इस शुद्धीकरण के विषय में, याज्ञवल्क्य को अपने समकालीन आचार्यों से ही नहीं, बल्कि, अपने गुरु वैशंपायन से भी झगड़ा करना पड़ा। आगे चल कर संहिताविषयक धर्मग्रंथसम्बन्धी यह वादविवाद, एक देशव्यापी आन्दोलन के रूप में उठ खड़ा हुआ। अन्त में यह विवाद हस्तिनापुर के सम्राट जनमेजय (तृतीय) के

पास तक जा पहुँचा, और उसने याज्ञवल्क्य की विचारधारा को सही कह कर उसका अनुमोदन किया।

जनमेजय की राजसभा में—जनमेजय का राजपुरोहित उस समय वैशंपायन था, जिसे छोड कर यज्ञों के अध्वर्युकर्म के लिए उसने याज्ञवल्क्य को अपनाया। किन्तु इसके परिणामस्वरूप, जनमेजय के विरुद्ध उसकी प्रजा में अत्यधिक क्षोभ की भावना फैलने लगी, जिस कारण उसे राजसिंहासन को परित्याग कर वनवास की शरण लेनी पड़ी। इतना हो जाने पर भी, जनमेजय ने अपनी ज़िद न छोड़ी, और याज्ञवल्क्य के द्वारा ही अश्वमेधादि यज्ञ करा कर, 'महावाजसनेय' उपाधि उसने प्राप्त की। इसके परिणाम स्वरूप वैशंपायन और उसके अनुयायियों को मध्यदेश छोड़ कर पश्चिम में समुद्रतट, एवं उत्तर में हिमालय की शरण लेनी पड़ी।

इस प्रकार, धार्मिक आधार पर खड़ी हुई याज्ञवल्क्य और वैशंपायन के बीच के विवाद ने राजनैतिक जीवन के आदर्शों का आमूल परिवर्तन किया, जो भारतीय इतिहास में एक अनूठी घटना साबित हुयी। इस प्रकार सर्वसाधारण से लेकर राजाओं तक को भी अपने प्रभाव से बदल देनेवाला याज्ञवल्क्य एक युगप्रवर्तक आचार्य बन गया।

शुक्ल यजुर्वेद का प्रणयन—अन्य वैदिक आचार्यों के समान याज्ञवल्क्य भी कर्म एवं ज्ञान के सम्मिलन को महत्त्व प्रदान करता था। इसी कारण, 'शुक्लयजुर्वेद' का प्रणयन करते समय, इसने उस ग्रंथ के अन्त में 'ईश उपनिषद' का भी साम्मिलन किया है। शुक्लयजुर्वेद वैदिक कर्मकाण्ड का ग्रंथ हैं। उसे ज्ञानविषयक 'ईश उपनिषद' के अठारह मंत्र जोड़ने के कारण, उस ग्रंथ की महत्ता कतिपय बढ़ गयी है। वैदिक कर्मकाण्ड का अंतिम साध्य आत्मज्ञान की प्राप्ति है। इसी तत्त्व का साक्षात्कार 'ईश उपनिषद' से होता है।

अपने समय के सर्वश्रेष्ठ उपनिषदकार माने गये याज्ञवल्क्य ने कर्म एवं ज्ञान का सम्मिलन करनेवाले 'शुक्लयजुर्वेद' की रचना की, इस घटना को वैदिक साहित्य के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। वैदिक परंपरा मंत्रों के अर्थ से संगठित है। वह अर्थ मूलस्वरूप में रखने के लिए, प्रसंगवश मंत्रों के शब्दों में बदला किया जा सकता है, इसी क्रांतिकारी विचारधारा का प्रणयन याज्ञवल्क्य ने किया, एवं यह वैदिक सूक्तकारों में एक श्रेष्ठ आचार्य बन गया।

ईश उपनिषद—शुक्लयजुर्वेद संहिता का चालीसवाँ अंतिम अध्याय 'ईश उपनिषद' अथवा 'ईशावास्य उपनिषद' से बना हुआ है। इस उपनिषद में केवल अठारह मंत्र है, फिर भी, वह प्रमुख दस उपनिषदों में से एक माना जाता है। शंकराचार्य से ले कर विनोबाजी तक के सारे प्राचीन एवं आधुनिक आचार्य, उसे अपना नित्यपाठन का ग्रंथ मानते है। इस उपनिषद में, 'सारा संसार ईश्वर से भरा हुआ है' (ईशावास्यमिदं सर्वम्), यह सिद्धान्त बहुत ही सुंदर तरीके से कथन किया गया है। इसी उपनिषद के अन्य एक मंत्र में, धनलोभ का निषेध किया गया है।

शतपथ ब्राह्मण—शुक्लयजुर्वेद का ब्राह्मण ग्रंथ 'शतपथ ब्राह्मण है। इस ग्रंथ में चौदह काण्ड, एवं सौ अध्याय हैं। उनमें से १–४ एवं १०–१४ काण्डों में याज्ञवल्क्य के 'यज्ञप्रक्रिया' 'देवताविज्ञान' आदि विषयक सिद्धान्त ग्रथित किये गये हैं। इस ग्रंथ के ५–९ काण्डों में तुर कावषेय एवं शांडिल्य के सिद्धान्तों का संग्रह याज्ञवल्क्य के द्वारा किया गया है। इस ग्रंथ का प्रचंड विस्तार, एवं उसमें प्रकट किये गये प्रगतिशील विचारों के कारण, 'शतपथब्राह्मण' वैदिक सात्करिक सिद्धान्तों का एक अद्वितीय ग्रंथ माना जाता है।

इसी ग्रंथ के अंतिम भाग में 'बृहदारण्यक उपनिषद' का समावेश किया गया हैं। ब्रह्मज्ञान एवं आत्मज्ञान के विषय में याज्ञवल्क्य का तत्वज्ञान इस उपनिषद में समाविष्ट किया गया है।

कात्यायन के वार्तिक में 'शतपथ ब्राह्मण' को पुराणकल्प में विरचित अन्य ब्राह्मण ग्रंथों से उत्तरकालीन कहा गया है (पुराणप्रोक्तेपु ब्राह्मणकल्पेपु) (पा. सू. ३.३. १०५)।

वैशंपायन से विरोध—अपने गुरु वैशंपायन से याज्ञवल्क्य का विरोध किस कारण से हुआ, इसके संबंध में अनेकानेक कथाएँ पुराणों में प्राप्त है, जिनमें ऐतिहासिकता के बदले काल्पनिकता अधिक प्रतीत होती है।

एक बार सब ऋषियों ने नियत समय पर मेरु पर्वत पर एकत्र होने का निश्चय किया। उस समय यह भी तय हुआ कि, जो भी ऋषि समय पर न आयेगा, उसे ब्रह्महत्या का पाप लगेगा। दैवयोग से, वैशंपायन समय पर न पहुँच सका, तथा उसे ब्रह्महत्या का पाप सहना पड़ा। तब उसने ब्रह्महत्या के अपने पाप को समाप्त करने के लिए, अपने सभी शिष्यों से प्रायश्चित्त लेने के लिए कहा। उस समय,

याज्ञवल्क्य ने आत्मप्रशंसा से वशीभूत हो कर कहा, 'सब शिष्यों की क्या आवश्यकता है? मैं अकेला ही काफ़ी हूँ'। इसकी ऐसी गर्वोक्ति सुन कर वैशंपायन क्रोधित हो उठा, तथा उसने इससे कहा, 'तुमने मुझसे जो वेद सीख लिये हैं, वे मुझे वापस करो'।

गुरु के शाप के कारण, सीखे हुये सारे वेद इसे निगलने पड़े, जिसे वैशंपायन के बाकी शिष्यों ने उठा लिये। वेद-विहीन होने के कारण, यह विद्याहीन, स्मृतिहीन एवं कुष्ठरोगी बन गया। किन्तु पश्चात्, सरस्वती की कृपा से इसने नया वेद प्राप्त कर लिया, एवं यह पूर्व की भाँति तेजस्वी बन गया (म. शां. ३०६; वायु. ६१.१८-२२)।

सूर्य से वेदप्राप्ति--सूर्य से वेद स्वीकार करते समय, याज्ञवल्क्य ने अश्व का रूप धारण किया था, जिस कारण इसके वेदों तथा शिष्यों को 'वाजिन्' नाम प्राप्त हुआ (वायु. ६१.२२)। अन्य पुराणों के अनुसार, वेद लेते समय इसने नहीं, बल्कि सूर्य ने अश्व का रूप धारण किया था (भा. १२.६.७३; ब्रह्मांड. २.३५.२६-७४)।

स्कंद में इसके गुरु का नाम वैशंपायन न देकर, शाकल्य दिया है एवं अपने आथर्वण मंत्र के बल से शाकल्य ने इसकी समस्त वेदविद्या वापस लेने की कथा वहाँ बतायी है (स्कंद. ६.१२९)।

कालनिर्णय—सूर्य से वेदविद्या सीखने के बाद, इसने वह विद्या जनक, कात्यायन, शतानीक, जनमेजय (तृतीय) आदि राजाओं को सिखायी थी (विष्णु. ४.२१.२)। इससे याज्ञवल्क्य ऋषि शतानीक एवं जनमेजय (तृतीय) राजाओं का समकालीन प्रतीत होता है।

महाभारत में, याज्ञवल्क्य के द्वारा देवराति जनक के सभा में वाद-विवाद करने का निर्देश प्राप्त है। किन्तु उस समय देवराति जनक का होना असंभव प्रतीत होता है। उस समय जो जनक था, उसका स्पष्ट उल्लेख यद्यपि अप्राप्य है, तथापि शतानीक, जनमेजय इत्यादि याज्ञवल्क्य के समकालीन राजाओं से प्रतीत होता है कि, उस समय का जनक उग्रसेन होगा (पुष्करमालिन् देखिये)। एक तर्क यह भी दिया गया है कि, 'दैवराति' जनक का विशेषण न होकर, याज्ञवल्क्य का विशेषण है (पं. भगवत्दत्त- वैदिक वाङ्मय का इतिहास, पृ. २६४)।

महाभारत में, जनक एवं विश्वावसु गंधर्व के साथ याज्ञवल्क्य के द्वारा किये तत्त्वज्ञानविषयक संवाद का निर्देश प्राप्त है (म. शां २९८-३०६)। वहाँ इसने विश्वावसु के चौबीस प्रश्नों के उत्तर दिये हैं (म. शां. ३०६.२६-८०)।

दार्शनिक समस्याओं का आचार्य—'बृहदारण्यक उपनिषद' के दूसरे, तीसरे एवं चौथे अध्यायों में याज्ञवल्क्य की दार्शनिक महत्ता, एवं सिद्धान्तों का परिचय प्राप्त होता है। उनमें से दूसरे अध्याय में, याज्ञवल्क्य का अपनी ब्रह्मवादिनी पत्नी मैत्रेयी से तत्वज्ञान पर संवाद प्राप्त है; तीसरे अध्याय में विदेह देश के जनक राजा के दरबार में इसके द्वारा अनेकानेक तत्वज्ञानियों से हुए वाद-विवादों की जानकारी दी गयी है; एवं चौथे अध्याय में स्वयं जनक राजा से हुए इसके तत्वज्ञान पर संवाद प्राप्त है। इन सारे संवादों से याज्ञवल्क्य के प्रागतिक व्यक्तित्व, एवं दार्शनिक तत्वज्ञान पर काफ़ी प्रकाश पडता है।

जनक राजा के दरबार में — जनक राजा के यज्ञ-मंडप में कुरुपंचाल देश के अनेकानेक तत्वज्ञ उपस्थित हुये थे। याज्ञवल्क्य ने उन सारे तत्वज्ञों को वाद-विवाद में परास्त किया। बृहदारण्यक उपनिषद के अनुसार, याज्ञवल्क्य ने जिन आचार्यों के साथ वाद-विवाद किये थे, उन के नाम, एवं वाद-विवाद के विषय निम्न प्रकार हैं:—

१. **अश्वल**—'मृत्यु से मुक्ति कैसे प्राप्त हो सकती है' (बृ. उ. ३.१)।

२. **जारत्कारव आर्तभाग**--'आठ ग्रह एवं आठ उपग्रह कौनसे हैं' (बृ. उ. ३.२)।

३. **भुज्यु लाह्यायनि**--'मृत्यु के उपरांत परलोक में क्या होता है; यज्ञ करनेवाले परिक्षित् राजा को कौन सी गति मिली (बृ. उ. ३.३)।

४. **उषस्त चाक्रायण**-'सर्वअन्तर्यामी आत्मा' (बृ. उ. ३.४)।

५. **कहोल कौषीतकेय**—'सर्वअन्तर्यामी आत्मा' (बृ. उ. ३.५)।

६. **गार्गी वाचक्नवी**—'जगत का मूल कारण क्या है' (बृ. उ. ३.६)।

७. **वाचक्नवी**--'ब्रह्म' (बृ. उ. ३.८)।

८. **उद्दालक आरुणि**—'अन्तर्यामी आत्मा'; 'परलोक' (बृ. उ. ३.७)।

९. **विदग्ध शाकल्य**—'देव कितने है' (बृ. उ. ३.९)।

उपरिनिर्दिष्ट आचार्यों के सिवा, याज्ञवल्क्य ने निम्न-लिखित आचार्यों से भी तत्वज्ञानसंबंधी वाद-विवाद किये

थे, जिनका निर्देश बृहदारण्यक उपनिषद के चौथे अध्याय में प्राप्त हैं :--

१. उदंक शौल्बायन--' प्राणब्रह्म ' (बृ. उ. ४.१.२.३)।

२. बर्कु वार्ष्ण--' चक्षुब्रह्म ' (बृ. उ. ४.१.४)।

३. गर्दभीविपीत भारद्वाज--' श्रोत्रब्रह्म ' (बृ. उ. ४.५)।

४. सत्यकाम जाबाल--' मनोब्रह्म ' (बृ. उ. ४.१.६)।

५. विदग्ध शाकल्य--' हृदयब्रह्म ' (बृ. उ. ४.१.७)।

वादविवाद के विषय--जनक के दरबार में हुये वाद-विवाद में, अश्वल एवं विदग्ध शाकल्य ने याज्ञवल्क्य से ईश्वर एवं कर्मकाण्ड के विषय में प्रश्न पूछे थे, जो विशेष कठिन नहीं थे। शाकल्य ने इससे पूछा, ' देव कितने है ' (कति देवाः)। इस पर याज्ञवल्क्य ने देवों की संख्या तीन हज़ार तैंतीस, तैंतीस, तीन, ऐसी विभिन्न प्रकार से बताकर, अंत में ये सारे एक ही परमेश्वर के विविध रूप है, ऐसा कह कर बहुत ही सुंदर जबाब दिया था (बृ. उ. ३.९.१-३)।

अपने इस जबाब से याज्ञवल्क्य ने शाकल्य को मौन कर दिया। यही नहीं, वादविवाद के शर्त के अनुसार, शाकल्य को मृत्यु स्वीकार करनी पड़ी, एवं उसकी अस्थियाँ भी उसके शिष्यों को प्राप्त न हुई (बृ. उ. ३.९.४-२६)

शाकल्य की तुलना में, याज्ञवल्क्य से वाद विवाद करनेवाले जनकसभा के अन्य ऋषिगण अधिकतर अधिकारी व्यक्ति थे, एवं उनके द्वारा पूछे गये प्रश्न भी अधिक कठिन थे। मृत्यु के पश्चात् आत्मा की क्या गति होती है, यह पूछनेवाला जारत्कारव; अंतिम सत्य का स्वरूप क्या होता है, यह पूछनेवाला उषस्त; आत्मानुभव किस मार्ग से मिलता है, यह पूछनेवाला कहोल; एवं परमात्मा सर्वोतर्गत हो कर भी अचेतन अथवा चेतनायुक्त कैसे रह सकता है, यह पूछनेवाले उद्दालक एवं गार्गी, ये उस समय के सर्वश्रेष्ठ तत्त्वज्ञ थे। उनके प्रश्नों को तर्कशुद्ध जबाब दे कर, याज्ञवल्क्य ने विद्वत्सभा में अपना श्रेष्ठत्व प्रस्थापित किया।

निष्प्रपंच सिद्धान्त--इसी वाद-विवाद में याज्ञवल्क्य ने आत्मा के विषयक अपने ' निष्प्रपंच सिद्धान्त ' का पुनरुच्चार किया। इसने कहा, ' आत्मा बड़ा नहीं, उसीतरह छोटा भी नहीं। वहा ऊँचा नहीं, उसी तरह नीचा भी नहीं। वह रुचि, दृष्टि एवं गंध के विरहित है (बृ. उ. ३.८.८)। वह सृष्टि के समस्त वस्तुमात्रों का अंतर्नियामक है, जिसके कारण सारी सृष्टि कठपुतलियों के जैसी नाचती है '।

पुराणों में--देवमित्र शाकल्य के साथ याज्ञवल्क्य ने किये वादविवाद की कथा, पुराणों एवं महाभारत में भी विस्तृत रूप से दी गयी है।

विदेह देश के देवराति (दैवराति) जनक ने अश्वमेध यज्ञ प्रारंभ किया, तथा उस सम्बन्ध में सैकड़ो ऋषियों को निमंत्रित भी किया (म. शां. ३०६)। उस यज्ञ में, हज़ार गायों के अतिरिक्त न जाने कितने स्वर्ण, रत्नादि सामने रक्ख कर उसने कहा, 'यह सारी सुखसामग्री, तथा ग्रामादि और सेवक आदि सारी संपत्ति वह ऋषि ले सकता है, जो उपस्थित सभा में सर्वश्रेष्ठ हो'। यह सुन कर कोई न उठा। तब याज्ञवल्क्य सामने आया, तथा अपने शिष्य सामश्रवस् से इसने कहा, ' मेरे समान वेदवक्ता यहाँ कोई नहीं है। इसलिए यह समस्त संपत्ती हमारी है। उसे तुम उठा लो '।

इतना कह कर फिर समस्त उपस्थितजनों को सम्बोधित कर याज्ञवल्क्य ने कहा, 'यदि कोई भी व्यक्ति मुझे सर्वश्रेष्ठ नहीं समझता, तो उसे मेरी ओर से चुनौती है किं, वह मेरे सामने आये '। इतना सुनते ही सारी सभा में खलभली मच गई, और कई ब्राह्मण इससे वादविवाद करने आये। लेकिन सभी इससे परास्त हुए।

उपस्थित पंडितों से इसका कई विषयों पर वादविवाद हुआ। सब को जीतने के बाद, इसने देवमित्र शाकल्य को ललकारते हुए कहा, ' मरी हुई धौंकनी के समान चुप क्यों बैठे हो ? कुछ बोलो तो'। इस प्रकार इसकी वाणी सुन कर शाकल्य ने अकेले ही समस्त धन ले जाने के संबंध में इससे शिकायत की। तब याज्ञवल्क्य ने कहा, ' ब्राह्मण का बल है विद्या, एवं तत्त्वज्ञान में निपुणता। क्यों कि, मैं किसी प्रकार के प्रश्न का उत्तर देने के लिए अपने को समर्थ समझता हूँ, इसलिए इस समस्त धन पर मेरा अपना अधिकार है '।

याज्ञवल्क्य की ऐसी वाणी सुन कर देवमित्र शाकल्य क्रोध से पागल हो गया, और उसने इससे एक हज़ार प्रश्न पूछे, जिनके सभी उत्तर इसने बड़ी निपुणता एवं विद्वत्ता के साथ दिये। फिर याज्ञवल्क्य की प्रश्न पूछने की बारी आई। याज्ञवल्क्य ने एक ही प्रश्न उससे किया। किन्तु शाकल्य उसका भी उत्तर न दे सका, जिसके परिणामस्वरूप उसे अपनी जान से हाथ धोना पड़ा।

देवमित्र शाकल्य की मृत्यु से सब ब्राह्मणों को ब्रह्महत्या का को पाप लगा। इसलिए सभी उपस्थित जनों ने पवनपुर में जा कर द्वादशार्क, वालुकेश्वर, एकादश रुद्र इत्यादि के दर्शन

किये, और चारों कुण्डों में स्नान किया। उसके उपरांत इन्होंने उत्तरेश्वर में जा कर बाडवों का दर्शन किया, जिससे सभी व्यक्ति हत्यादोष से मुक्त हुए (वायु. ६०.६९-७१)। प्रस्तुत कथा पुरातन इतिहास के रूप में भीष्म के द्वारा युधिष्ठिर से कही गयी है (म. शां २९८.४; ३०६.९२)। वंशावलि के अनुसार, दैवराति जनक दाशरथि राम से काफ़ी पूर्वकालीन माना जाता है।'

याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी-संवाद—याज्ञवल्क्य ऋषि के द्वारा संन्यास लिये जाने पर, उसने अपनी संपत्ति कात्यायनी एवं मैत्रेयी नामक अपनी दो पत्नियों में विभाजित करनी चाही। उस समय इसकी ब्रह्मवादिनी पत्नी मैत्रेयी ने इससे अध्यात्मिक ज्ञान का हिस्सा माँगा, एवं इसे अमरत्व प्राप्त करने का मार्ग पूछा। उस समय इसने मैत्रेयी से कहा, 'पति, पत्नी, संतान, संपत्ति ये सारे आत्मा के ही अनेकविध रूप है। इस आत्मा का निरीक्षण, अध्ययन एवं मनन (निदिध्यास) करने से ही समस्त वस्तुजातों का ज्ञान प्राप्त होता है' (बृ. उ. २. ४.२-५; मैत्रेयी देखिये)।

आत्मा का स्वरूप बताते हुये याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी से कहा, 'जिस तरह समस्त स्पर्श त्वचा में केंद्रीभूत होते हैं, अथवा सारे विचार मन में समा जाते हैं, उसी प्रकार संसार की सारी चीज़े आत्मा में केंद्रीभूत होती हैं (बृ. उ. २.८.११)। इसी कारण, आत्मप्राप्ति ही मानवी प्रयत्नों का सब से बडा साध्य है। बाकी सारे ध्येय भुलावे के (आर्तम्) हैं'।

ध्येयात्मक अद्वैतवाद—केवल आत्मा के ज्ञान से ही बाह्यसृष्टि का ज्ञान हो सकता है, इस सिद्धान्त का विवरण करते समय, याज्ञवल्क्य ने आत्मा एवं मानवी मन का ध्येयात्मक अद्वैत प्रतिपादित किया। इस प्रतिपादन के समय, इसने आत्मा को दुंदुभी बजानेवाला वादक कह कर, मानवी मन को, दुंदुभी वाद्य की उपमा दे दी। याज्ञवल्क्य ने कहा, 'दुंदुभी बजानेवाले को हाथ में पकड़ लेने से, दुंदुभी का आवाज सहजवश हाथ में आता है। उसी प्रकार आत्मा की ज्ञान होने से, संसार की सारी वस्तुमात्रों का ज्ञान विना किसी कष्टों से प्राप्त हो सकता है' (बृ. उ. २.४.६-९)।

अमरत्व की प्राप्ति—अमरत्व की प्राप्ति कैसे हो सकती है, इसका विवरण करते हुये याज्ञवल्क्य ने कहा, 'आत्मा के श्रवण, मनन एवं चिंतन कर आत्मतत्त्व के व्यापकत्व का अनुभव हर एक साधक ने करना चाहिये (आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः)। आत्मतत्त्व के इसी अनुभव से अमरत्त्व प्राप्त हो सकता है (एतावद् खलु अमृतत्वम्)। आत्मतत्व का यह साक्षात्कार केवल मन से ही हो सकता है (मनसैवानुद्रष्टव्यम्)'।

जनक-याज्ञवल्क्यसंवाद—बृहदारण्यक उपनिषद् के चौथे अध्याय में आत्मज्ञानसम्बधी 'जनक-याज्ञवल्क्य-संवाद' प्राप्त है। उस संवाद के प्रारम्भ में याज्ञवल्क्य ने जनक से पूछा, 'अन्तिम सत्य के बारे में किन किन ऋषियों के उपदेश आज तक आपने सुना है'। उस पर जनक ने कहा, 'वाणी को परमसत्य कहनेवाले जित्वन् शैलिनि का, प्राण को ब्रह्म कहनेवाले उदंक शौल्बायन का, चक्षु को परमसत्य कहनेवाले बर्कु वार्ष्ण का, कर्ण को ब्रह्म कहनेवाले गर्दभीविपीत भारद्वाज का, मन को ब्रह्म कहनेवाले सत्यकाम जाबाल का, एवं हृदय को अन्तिम सत्य कहनेवाले विदग्ध शाकल्य का उपदेश आज तक मैने श्रवण किया है'। उस पर याज्ञवल्क्य ने कहा, 'तुम्हारे द्वारा सुने गये ये उपदेश अंशतः सत्य है, पूर्णरूपेण नही' (बृ. उ. ४.१.२-७)।

अपने इस कथन से याज्ञवल्क्य यह कहना चाहता था कि, इन्द्रियों अथवा मन से परमसत्य प्राप्त होना असम्भव है। वह तो केवल आत्मज्ञान से ही प्राप्त हो सकता है। क्यों कि, आत्मा ही केवल सत्य है, मन एवं इन्द्रियाँ केवल साधनमात्र है।

मृत्यु का वर्णन—मृत्यु के समय मानवी देहात्मा की स्थिति क्या होती है, उसका अत्यंत सुंदर वर्णन याज्ञवल्क्य ने जनक राजा को बताया था। इसने कहा, 'मृत्यु के समय मनुष्य की प्रज्ञात्मा उसके देहात्मा पर आरूढ होती है। इसी कारण, बोझ से लदे हुए गाडी जैसा आर्त चित्कार मृत्यु की समय मानवी देहात्मा से निकलती है (बृ. उ. ४.३.३५)। मृत्यु के पूर्व आँखो में से प्राणरूपी पुरुष सर्व प्रथम निकल जाता हैं। पश्चात् हृदय का नोंक प्रकाशित होता है, जिसकी सहाय्यता से नेत्र, मस्तक अथवा अन्य कौनसी भी इंद्रियाँ के द्वारा आत्मा निकल जाती है। उस समय, मनुष्य का कर्म ही केवल उसके साथ रहता है, जो आत्मा के अगले जन्म का मार्गदर्शक बनता है (बृ. उ. ४.४.१-५)।

तत्त्वज्ञान- (१) सुखैकपुरुषार्थवाद—'नैतिक कल्याण मानवीय जीवन का अन्तिम साध्य जरूर है; फिर भी ऐहिक सुख का महत्त्व नैतिक कल्याण से कम नहीं है,' ऐसा याज्ञवल्क्य का मत था। राजा जनक के सभा में जब यह गया तब उसने इसे उद्देशित कर कहा, 'आप धनलक्ष्मी तथा गायों को प्राप्त करने के लिए आयें हैं, अथवा विद्वानों के बीच चल रही चर्चा में भाग ले कर विजय प्राप्त

करने आये हैं ? ' उस समय विश्वास के साथ इसने जवाब दिया, 'दोनों के लिए (उभयमेव सम्राट्); जिनकी सींगों में स्वर्ण मुद्रिकाओं की थैलियाँ लगी हुई हैं, ऐसी गायों की प्राप्ति मैं उतनी ही आवश्यक समझता हूँ, जितना कि आवश्यक, विद्वानों के बीच अपनी विजय ' ।

अपने द्वारा कही उक्त बात का स्पष्टीकरण करते हुए इसने स्वयं कहा है, ' मेरा पिता का कथन था कि, बिना धन प्राप्त किये किसी को भी आत्मज्ञान न देना चाहिए ' । ' किन्तु आत्मज्ञान का उपदेश किये बगैर किसी से दक्षिणा न लेनी चाहिये, ' ऐसा भी इसका अभिमत था (अननुच्य हरेत-दक्षिणां न गृह्णीयात्) ।

जनक राजा के पुरोहित अश्वल के द्वारा पूछने पर भी याज्ञवल्क्य ने स्पष्ट शब्दों में कहा था, ' मैं ब्रह्मज्ञ जरुर हूँ, किन्तु मैं धन की कांक्षा भी मन में रखता हूँ (गोकामा एव वयं स्मः) ' ।

इस प्रकार आध्यात्मिक एवं आधिभौतिक इन दोनों को मान्यता देनेवाला याज्ञवल्क्य पाश्चात्य ' साफ़िस्ट ' लोगों जैसा प्रतीत होता है । ' साफ़िस्ट ' वह लोग है, जो तत्त्वज्ञान के उपलक्ष में धनग्रहण करना कोई खराबी नहीं मानते हैं ।

(२) **आत्मज्ञान**—'जीवन में आत्मज्ञान प्राप्त करना सम्भव है, और वही अन्तिम सत्य है', ऐसा इसका अभिमत था । जनक ने इससे प्रश्न किया था, ' मनुष्य की ज्योति कौन है, जो उसे प्रकाश देती है ? ' इस प्रश्न का यथाविध उत्तर देते हुए इसने सूर्य, चन्द्र तथा अग्नि को मनुष्य की ज्योति बता कर कहा, 'आत्मज्ञान मनुष्य की अन्तिम ज्योति है, जो सूर्य, चन्द्र तथा अग्नि की अनुपस्थिति में भी उसे प्रकाश देती है' (बृ. उ. ४.३.२-६) ।

जब कि आत्मा ही केवल ज्ञेय एवं ज्ञाता रहता है, उस अवस्था का वर्णन याज्ञवल्क्य ने उक्त कथन में व्यक्त किया है । अरस्तू (ॲरिस्टॉटल) उसे ' थिओरिया ' अथवा ' उन्मन ' अवस्था कहता है ।

(३) **शुद्धाद्वैतवाद अथवा कर्ममीमांसा**—याज्ञवल्क्य शुद्धाद्वैतवाद का पुरस्कर्ता था, जिसके अनुसार आत्मा अजर, अमर एवं कालातीत अवस्था में सर्वत्र उपस्थित रहता है । इस कारण, मृत्यु के साथ होनेवाले आत्मा के स्थलांतर अथवा जन्मान्तर में शोक अथवा दुःख करने की आवश्यकता नहीं है । जिस तरह घाँस का नया तिनका प्राप्त किये बगैर भँवरा अपना पहला तिनका नहीं छोड़ता है, उसी प्रकार अपने वास्तव्य की नयी व्यवस्था हुये वगैर आत्मा अपनी पुरानी बदन को नही छोड़ता है । इस प्रकार, मृत्यु ही स्वयं एक माया होने के कारण, उसमें दुःख नहीं मानना चाहिये । जिस प्रकार सुवर्णकार पुराने अलंकारों से नया, एवं पहले से भी अधिक सुंदर अलंकार बना सकता है, उसी प्रकार आत्मा को पहले से भी अधिक सुंदर जन्म प्राप्त होना संभवनीय है (बृ. उ. ४.४.४) ।

याज्ञवल्क्य के यह विचार सुन कर इसकी पत्नी मैत्रेयी भीतिग्रस्त हुयी । इसी कारण अपने मतों का अधिक विवरण न करते हुए याज्ञवल्क्य ने कहा, 'जो मैंने कहा है वह संसार के अज्ञ लोगों के लिए काफ़ी है' (बृ. उ. २.४.१३) ।

चरित्रचित्रण—याज्ञवल्क्य अपने युग का एक अद्वितीय विद्वान्, वादपटु, एवं आत्मज्ञानी था । यह बड़ा उग्र स्वभाव का था । जनक की विद्वत्सभा में विवाद करते समय, इसने शाकल्य से आक्रोशपूर्ण शब्दों में कहा था, ' आगे तुम इस प्रकार के प्रश्न करोगे, तो तुम्हारा सर काट कर पृथ्वी पर लोटने लगेगा ' (मूर्धा ते निपतिष्यति) । यह क्रोधी था, उसी प्रकार परमदयालु तथा कोमल प्रवृत्तियों का भी था, जो इसके द्वारा अपनी पत्नी मैत्रेयी के संवाद से प्रकट है ।

यह जरुर है कि, वादविवाद के बीच स्त्रीजाति हो, अथवा कोई भी हो, किसी के प्रति यह कृपाभावना नही दिखाता था । गार्गी से चल रही चर्चा के बीच, इसने उसे ' तुम बहुत प्रश्न कर रही हो ' (अतिप्रश्नं पृच्छसि) कह कर, उद्दामता न दिखाने के लिए डाँटा था ।

यह बड़ा होशियार भी था । जब जनक की सभा में जारत्कारव ने ज्ञान एवं कर्म के संबंध में कुछ ऐसे प्रश्न किये थे, जो केवल अधिकारी व्यक्तियों ही जान सकते है । उसके जवाब इसने उसे सभा से अलग ले जा कर, एकान्त में बताये थे ।

यह अपने समय का सब से बड़ा वादपटु था । अश्वल ने इससे 'आचार्य-सम्प्रदाय ' के सम्बन्ध में बहुत कठिन प्रश्न पूछे, जिनके तत्काल उचित उत्तर दे कर इसने उसे निरुत्तर किया ।

आत्मगत भाषण—अधिकारी विद्वान् के द्वारा तत्वज्ञान-सम्बन्धी प्रश्न पूछे जाने पर ही, उसका जवाब देने की इसकी पद्धति थी । किंतु कभी कभी ऐसा भी होता था कि, भावतिरेक में यह प्रश्न की परिघ से अलग बातों विषयों की विवेचना कर, उनका भी कथन करने लगता

था। उदाहरणार्थ, जनक की सभा में उद्दालक के प्रश्न का उत्तर देते समय यह एकाएक ध्यानमग्न हुआ, तथा ईश्वर की व्यापकता बताते हुए इसने कहा, 'ईश्वर तो जगत्व्यापी है'। याज्ञवल्क्य के उक्त विचार 'अन्तर्यामी ब्राह्मण' नामक ग्रन्थ में सम्मिलित है (बृ. उ. ३.७.१)।

जनक राजा के साथ हुए संवाद में, आत्मा के 'अव्यय रूप' के सम्बन्ध में अपने विचार भी इसने बिना पूछे ही प्रकट किये थे। इस प्रकार, जब यह भावमग्न हो कर आत्मज्ञानसम्बन्धी विचारों को प्रकट करता था, तो प्रकट ही करता जाता था, जैसे कि आकाश के बादल बरसते नहीं, तथा जब ऋतु पा कर बरसते हैं, तो बरसते ही जाते हैं।

परिवार--याज्ञवल्क्य को मैत्रेयी एवं कात्यायनी नामक दो पत्नियाँ थी। उनमें से मैत्रेयी आध्यात्मिक ज्ञान की पिपासु थी। इस कारण, इसने उसे आत्मज्ञान कराया, एवं संन्यास लेने के पश्चात् भी यह उसे अपने साथ अरण्य में ले गया (मैत्रेयी देखिये)। स्कंद में मैत्रेयी के लिए 'कल्याणी' नामान्तर प्राप्त है (स्कंद. ६.१३०-१३१)। वैदिक ग्रंथों में से 'जाबालोपनिषद्' एवं 'शतपथ ब्राह्मण' में भी उसका उल्लेख प्राप्त है (श. ब्रा. १.४.१०-१४)।

इसकी दूसरी पत्नी कात्यायनी एक सामान्य गृहिणी थी, जिससे इसे कात्यायन एवं पिप्पलाद नामक दो पुत्र उत्पन्न हुये थे (स्कंद. ५.३; ४२.१; पिप्पलाद देखिये)।

शिष्यपरंपरा--काण्व एवं माध्यंदिन परंपरा में इसके निम्नलिखित शिष्यों का निर्देश प्राप्त है :--

१. **आसुरि**--यह याज्ञवल्क्य का प्रमुख शिष्य था, जिससे 'आसुरि' नामक शिष्यशाखा का निर्माण हुआ (श. ब्रा. १४.९.४.३३)। आसुरि के शिष्य का नाम 'पंचशिख' अथवा 'कापिलेय' अथवा 'कपिल' था (मत्स्य. ३. २९)। पंचशिख के शिष्यों में विदेह के राजा 'जनक जानदेव' एवं 'जनक धर्मध्वज' प्रमुख थे। पंचशिख के शिष्यों में आसुरायण प्रमुख था, जो यास्क का समकालीन था।

२. **मधुक पैंग्य**--इसके शिष्यों में चूड भागवित्ति प्रमुख था। चूड भागवित्ति से लेकर जानकि आयस्थूण, सत्यकाम जाबाल ऐसी इसकी शिष्यपरंपरा थी (बृ. उ. ६.३.७-११)।

३. **सामश्रवस्**--इसे जनक के विद्वत्सभा में अपनी ओर से संपत्ति उठाने के लिए याज्ञवल्क्य ने कहा था।

इनके सिवा महाभारत में इसके सौ शिष्य बताये गये हैं (म. शां. ३०६.१७; व्यास देखिये)।

शाखाप्रवर्तक शिष्य--वायु में याज्ञवल्क्य के निम्नलिखित पंद्रह शाखाप्रवर्तक शिष्य बताये गये हैं--१. कण्व; २. वैधेय; ३. शालिन्; ४. मध्यंदिन; ५. शापेयिन; ६. विदिग्ध; ७. उद्दल; ८. ताम्रायण; ९. वात्स्य; १०. गालव; ११. शैषिरिन्; १२. आटविन्; १३. पर्णिन्; १४. वीरणिन् १५. परायण (वायु. ६१.२४-२५)। इन शिष्यों को 'वाजिन्' सामुहिक नाम प्राप्त था। ब्रह्मांड में ये नाम कई पाठभेदों के साथ प्राप्त हैं (ब्रह्मांड. २.३५.८-३०)। अन्य पुराणों में भी इन शाखा-प्रवर्तक आचार्यों के नाम अनेकानेक रूप से दिये गये हैं।

इन शाखाप्रवर्तक आचार्यों में से 'कण्व' एवं 'माध्यंदिन' शाखाओं के ग्रंथ आज प्राप्त हैं। बाकी शाखाओं के ग्रंथ नष्ट हो चुके हैं।

ग्रंथ--याज्ञवल्क्य के नाम पर निम्नलिखित ग्रंथ प्राप्त है :--१. शुक्लयजुर्वेद संहिता (श. ब्रा. १४.९.४.३३); २. ईशावास्योपनिषद; ३. सांग शतपथ ब्राह्मण (म. शां. ३०६.१-२५); ४. बृहदारण्यक उपनिषद (याज्ञ. ३. ११०); ५. याज्ञवल्क्यशिक्षा, जिसमें २३२ श्लोक हैं; ६. मनःस्वारशिक्षा, जिसमें हस्तस्वर की अपेक्षा भिन्न प्रकार के विचारों को प्रतिपादित किया गया है; ७. बृहद्याज्ञवल्क्य; ८. बृहद्योगीयाज्ञवल्क्य; ९. योगशास्त्र। इनके सिवा इसके नाम पर 'याज्ञवल्क्यस्मृति' नामक एक स्मृतिग्रंथ भी प्राप्त है।

शुक्लयजुर्वेद--शुक्लयजुर्वेद संहिता के कुल चालीस अध्याय हैं, एवं उनमें निम्नलिखित विषयों का विवरण प्राप्त हैं :--अ. १-२, दर्शपूर्णमासमंत्र एवं पिंडपितृयज्ञ; अ. ३, नित्याग्निकर्म, अग्निप्रतिष्ठा, हवन एवं चातुर्मास्ययज्ञ; अ. ४-८, सोमयज्ञ, पशुयज्ञ एवं राजसूययज्ञ के मंत्र अ. ९-१०,-सोमयज्ञ के मंत्र; अ. ११-१८, अग्निचयनविधि एवं मंत्र; अ. १९-२१, सौत्रामणियज्ञ के मंत्र; अ. २२-२५, अश्वमेधयज्ञ के मंत्र; अ. २६-३०, पुरुषमेध (यज्ञरहस्य); अ. ३१, पुरुषसूक्त; अ. ३२, तत्त्वज्ञान (उपनिषद्); अ. ३३-३४, शिवसंकल्पोपनिषद्; अ. ३५, अंत्येष्टिमंत्र, अ. ३६-३९, प्रवर्ग्य मंत्र; अ. ४०, ईशावास्य उपनिषद्। इनमें से अध्याय २६-३५ को 'खिल' (परिशिष्ट) कहते है।

यह संहिता गद्य एवं पद्य भागों से बनी है। उनमें से पद्य भाग ऋग्वेद से लिया गया है, एवं गद्य भाग नया है। उस गद्य भाग को ही 'यजुः' कहते है, जिस कारण इस वेद को यजुर्वेद नाम प्राप्त हुआ है।

इस वेद के श्रौतसूत्र की रचना कात्यायन ने की है। उसमें 'श्रौत' एवं 'गृह्य' ये दोनों सूत्र समाविष्ट किये गये है, जिसमें से 'गृह्य' सूत्र 'पारस्कर गृह्यसूत्र' नाम से सुविख्यात है। इन सूत्रों का प्रतिशाख्य भी कात्यायन के द्वारा ही विरचित है।

शुक्लयजुर्वेद का शिक्षाग्रंथ 'याज्ञवल्क्यशिक्षा' है, जो इस वेद के उच्चारण की दृष्टी से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। स्वर एवं उच्चारण की दृष्टी से यह वेद अन्य वेदों से काफी अलग है। प्रायः इस वेद में 'य' एवं 'ष' का उच्चारण क्रमशः 'ज' एवं 'ख' जैसे किया जाता है। अनुस्वारों का उच्चारण भी सानुनासिक किया जाता है। इस वेदों के स्वर भी उच्चारण से व्यक्त करने के बदले, हाथों के द्वारा अधिकतर व्यक्त किये जाते हैं।

याज्ञवल्क्यस्मृति--इस ग्रंथ में एक हजार श्लोक हैं, जो तीन काण्डों में विभाजित किये गये हैं। यद्यपि इस ग्रंथ के आरंभ में इसकी रचना का श्रेय 'शतपथ ब्राह्मण' 'योगशास्त्र' आदि ग्रंथों के रचयिता योगीराज याज्ञवल्क्य को दिया गया है, फिर भी 'मिताक्षरा' के अनुसार, इस ग्रंथ का रचयिता याज्ञवल्क्य न हो कर, इसका कोई शिष्य था। फिर भी इस ग्रंथ की विचारधारा शुक्लयजुर्वेद एवं तत्संबंधित अन्य ग्रंथों से काफ़ी साम्य रखती है।

इस ग्रंथ में प्राप्त व्यवहारविषयक विवरण अग्निपुराण में प्राप्त 'व्यवहारकाण्ड' से मिलता जुलता है। इस स्मृति में प्राप्त वेदान्तविषयक विवरण शंकराचार्य के 'ब्रह्मसूत्र' से काफी मिलता जुलता है (याज्ञ. ३.६४; ६७; ६९; १०९; ११९; १२५; १४०; २०५)।

हर एक सप्ताह में अंतर्भूत किये गये 'इतवार', 'सोमवार' आदि वारों का संबंध आकाश में स्थित 'रवि,' 'सोम' आदि ग्रहों से है, ऐसा स्पष्ट निर्देश याज्ञवल्क्यस्मृति में, प्राप्त है। इस स्मृति में नाणक आदि सिक्कों का, एवं ताम्रपट, शिलालेख आदि उत्कीर्ण शिलालेखों का भी निर्देश प्राप्त हैं (याज्ञ. १.२९६; ३१५)। इन निर्देशों से प्रतीत होता है कि, इस ग्रंथ का रचनाकाल ई. स. पहली शताब्दी के लगभग होगा।

याज्ञसेन--शिखंडिन् नामक आचार्य का पैतृक नाम (सां. ब्रा. ७-४)।

याज्ञसेनी--द्रुपदपुत्र शिखंडिन् का नामान्तर (म. भी. १०८.१९)।

याज्ञेयि--भृगुकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

यातुधान--एक राक्षस, जो कश्यप एवं सुरसा के के पुत्रों में से एक था। इसके कुल में उत्पन्न राक्षसों को 'यातुधान' वांशिक नाम प्राप्त था।

२. एक राक्षससमूह, जो रक्षस् एवं जंतुधना की संतान मानी जाती है। इस समूह में निम्नलिखित राक्षस शामिल थेः-- हेति, प्रहेति, उग्र, पौरुषेय, वध, विद्युत्, स्फूर्ज, वात, आय, व्याघ्र, सूर्य (ब्रह्मांड. ३.७.९०; रक्षस् देखिये)।

यातुधानी--एक कृत्या, जो राजा वृषादर्भि के द्वारा किये गये यज्ञ में से उत्पन्न हुयी थी (म. अनु. ९३. ५३)। वृषादर्भि ने इसे सप्तर्षियों का वध करने के लिए उत्पन्न किया था। 'मनसा' नाम धारण कर यह सप्तिर्षियों के पास उनके नाशार्थ गयी। किन्तु वहाँ उपस्थित शुनःसखरूपधारी इन्द्र ने इसका वध किया (वृषादर्भि देखिये)।

याद्व--एक लोकसमूह, जो संभवतः यदु लोगों का ही नामांतर होगा। यदु राजा के वंशज होने से इन्हे यह नाम प्राप्त हुआ होगा। ऋग्वेद मे इनके संपत्ति का एवं दानशूरता का उल्लेख प्राप्त है (ऋ. ७.१९.८)। उसी ग्रंथ में अन्यत्र आसंग प्लायोगि नामक आचार्य के द्वारा इनके पशुसंपत्ति का निर्देश किया गया है (ऋ. ८.१.३१)।

पर्शु राजा एवं उसका पुत्र तिरिंदर से इन लोगों का शत्रुत्व था। तिरिंदर ने इन्हे दास बना कर इनका दान किया था (ऋ. ८.६.४८)। सायणाचार्य के अनुसार, इनकी सारी संपत्ति तिरिंदर ने वत्स काण्व नामक आचार्य को प्रदान की थी।

यान--वसिष्ठ के पुत्रों में से एक।

याम--स्वायंभुव मन्वन्तर का एक देवतासमूह (म. भी. ८.१.१८)। इस समूह में निम्नलिखित बारह देव शामिल थेः- यदु, ययाति, विवध, स्त्रासत, मति, विभास, क्रतु, प्रयाति, विश्रुत, द्युति, वायव्य एवं संयम (ब्रह्मांड. २.१३.९३)।

यामायन--एक पैतृक नाम, जो निम्नलिखित वैदिक सूक्तद्रष्टाओं के लिए प्रयुक्त हैः-- ऊर्ध्वकृषन (ऋ. १०. १४४); कुमार (ऋ. १०.१३५); देवश्रवस् (ऋ. १०. १७); मथित (ऋ. १०.१९); शंख (ऋ. १०.१५) एवं संकुसुक (ऋ. १०.१८)।

यामिनी--प्राचेतस दक्ष प्रजापति की कन्या, जो कश्यप ऋषि की पत्नियों में से एक थी। इसकी संतान शलभ

मानी जाती है। इसकी माता का नाम असिक्नी था (भा. ६.६.२१)।

यामी—दक्ष राजा की कन्या, जो धर्मऋषि की पत्नियों में से एक थी। इसे 'जामि' नामान्तर भी प्राप्त था। इसके पुत्र का नाम स्वर्ग एवं कन्या का नाम नागवीथी था।

यामुनि—कश्यपकुलोत्पन्न एक गोत्रकार। पाठभेद—'सामुकि'।

याम्य—स्वायंभुव मन्वंतर का एक देव।

यायावर--एक व्यक्ति, जिसका कोई निश्चित आवास न था (तै. सं. ५.२.१.७; का. सं. १९.१२)। 'यायावर' का शब्दशः अर्थ 'इधर उधर घूमनेवाला' होता है।

२. संन्यासियों का एक समूह, जो मुनिवृत्ति से कठोर व्रत पालन करते हुये इधर उधर घूमते रहते थे। जरत्कारु नामक सुविख्यात ऋषि इनमें से ही एक था (म. आ. १३.१०-१३)। इस ऋषि के धार्मिकता का निर्देश महाभारत में प्राप्त है (म. अनु. १४२)।

महाभारत में अन्यत्र जरत्कारु ऋषि के पितृगण का नाम 'यायावर' बताया गया हैं। उन्हें कोई संतान न होने के कारण, वे स्वर्ग से च्युत हो गये थे। अतएव पुनः स्वर्गप्राप्ति होने के लिए, इन्होंने जरत्कारु ऋषि से, विवाह कर पुत्रप्राप्ति करने की प्रार्थना की थी (म. आ. १३.१४-१६; ४१.१६-१७)।

यास्क--निरुक्त नामक सुविख्यात ग्रंथ का कर्ता, जो 'शब्दार्थतत्त्व' का परमज्ञाता माना जाता है। यस्क ऋषि का शिष्य होने से इसे संभवतः 'यास्क' नाम प्राप्त हुआ होगा। इसने प्रजापति कश्यप के द्वारा लिखित निघंटु नामक ग्रंथ पर विस्तृत भाष्य लिखा था, जो 'निरुक्त' नाम से प्रसिद्ध है। इसके द्वारा लिखित यह ग्रंथ वेदार्थ का प्रतिपादन करनेवाला सर्वाधिक प्राचीन ग्रंथ माना जाता है। महाभारत के अनुसार, दैवी आपत्ति से विनष्ट हुआ निरुक्त ग्रंथ इसे विष्णुप्रसाद के कारण पुनः प्राप्त हुआ (म. शां. ३३०.८-९)। इसी कारण इसने अनेक यज्ञों में श्रीविष्णु का शिपिविष्ट नाम से गान किया है (म. शां. ३३०.६-७)।

बृहदारण्यक उपनिषद में यास्क को आसुरायण नामक आचार्य का समकालीन, एवं भारद्वाज ऋषि का गुरु कहा गया है (बृ. उ. २.५.२१; ४.५.२७ माध्यं; श. ब्रा. १४.५.५.२१)। संभवतः निरुक्तकार यास्क एवं उपनिषदों में निर्दिष्ट यास्क दोनो एक ही व्यक्ति होंगे। उसी ग्रंथ में अन्यत्र इसके शिष्य का नाम जातूकर्ण्य दिया गया है (बृ. उ. २.६.३; ४.६.३)।

निरुक्त के अंत में यास्क को 'पारस्कर' कहा गया है, जिससे प्रतीत होता है कि यह पारस्कर देश में रहनेवाला था।

पाणिनि के व्याकरणग्रंथ में यास्क शब्द की व्युत्पत्ति प्राप्त है, जिससे प्रतीत होता है कि, यह पाणिनि के पूर्वकालीन था (पा. सू. २.४.६३)। पिंगल के छंदःसूत्र में एवं शौनक ऋक्प्रातिशाख्य में इसका निर्देश प्राप्त है (छं. सू. ३.३०; शौनक देखिये)। इसका काल लगभग ई. पू. ७७० माना जाता है।

निरुक्त—वेदों में प्राप्त मंत्रों का शब्दव्युत्पत्ति, शब्दरचना आदि के दृष्टी से अध्ययन करनेवाले शास्त्र को 'निरुक्त' कहते है। यद्यपि आग्रायण, औदुंबरायण, औपमन्यव, शाकपूणि आदि प्राचीन भाषाशास्त्रज्ञों ने निरुक्तों की रचना की थी, तथापि उनके ग्रंथ आज उपलब्ध नहीं हैं। प्राचीन निरुक्त ग्रंथों में से यास्क का निरुक्त ही आज उपलब्ध है, जिसमें ऋग्वेद के कई मंत्रों के अर्थ का स्पष्टीकरण, एवं देवताओं के स्वरूप का निरूपण किया गया है। इस ग्रंथ में गार्ग्य, औदुंबरायण एवं शाकपूणि नामक पूर्वाचार्यों का निर्देश प्राप्त है।

निरुक्त तथा व्याकरण ये दोनों शास्त्र शब्दज्ञान एवं शब्दव्युत्पत्ति से ही संबंधित है। वेदमंत्रों का अर्थ जानने के लिए पहले उनकी 'निरुक्ति' जानना आवश्यक होता है। इसी कारण, जो कठिण शब्द व्याकरणशास्त्र से नही सुलझते थे, उनके अर्थज्ञान के लिए निरुक्त की रचना की गयी है।

यास्क के पहले 'निघंटु' नामक एक वैदिक शब्दकोश था, जिस पर इसने निरुक्त नामक अपने भाष्य की रचना की। वेदों में प्राप्त विशिष्ट शब्द विशिष्ट अर्थ में क्यों रूढ है, इसकी निरुक्ति इस ग्रंथ में की गयी है। इसी कारण वर्णागम, वर्णविपर्यय, वर्णविकार, वर्णनाश, आदि विषयों का प्रतिपादन निरुक्त में किया गया है। यास्क ने वैदिक शब्दों को धातुज मान कर उनकी निरुक्ति की है, जिस कारण वह एक असाधारण ग्रंथ बन गया है। इस ग्रंथ में वैदिक शब्दों की व्याख्या के साथ व्याकरण, भाषाविज्ञान, साहित्य आदि विषयों की जानकारी भी प्राप्त हैं।

निरुक्त में नैघंटुक, नैगम एवं दैवत नामक तीन काण्ड है, जो बारह अध्यायों में विभक्त किये गये है।

पूर्वाचार्य--यास्क ने अपने 'निरुक्त' में इस विषय के बारह निम्नलिखित पूर्वाचार्यों का निर्देश किया है:--औदुम्बरायण, औपमन्यव, वार्ष्यायणि, गार्ग्य, आग्रहायण, शाकपूणि, और्णवाभ, तैटीकि, गाल्व, स्थौलाष्ठीवि, क्रौष्टु एवं कात्थक्य।

भाषाशास्त्रज्ञ--एक प्राचीन भाषाशास्त्रज्ञ के नाते, यास्क भाषाशास्त्रीय विचारप्रणालियों का आद्य आचार्य माना जाता है। इसका मत था, कि जो शब्द भाषा के प्रचलित (लौकिक) शब्दों के समान रहते है, वे ही अर्थवान् बनते है (अर्थवन्तः शब्दसाम्यात्) (नि. १. १६)।

अपने ग्रंथ में वैदिक मंत्रों का अशुद्ध उच्चारण करनेवाले व्यक्तियों की यास्क ने कटु आलोचना की है। इसने कहा है, स्वर एवं वर्ण से भ्रष्ट हुयें मंत्र इंद्रशत्रु की भाँति वाग्वज्र हो कर यजमान को विनष्ट कर देते है।

वैदिक मंत्रों का प्रथम दर्शन करनेवाले प्रतिभावान् व्यक्ति को इसने मंत्रद्रष्टा अथवा ऋषि कहा है (ऋषिर्दर्शनात्, ऋषयः मंत्रद्रष्टारः) (नि. २.११)।

युक्त--रैवत मनु के पुत्रों में से एक।

२. स्वायंभुव मन्वन्तर के अजित देवों में से एक।

३. मौत्य मन्वन्तर के सप्तर्षियों में से एक।

युक्ताश्व आंगिरस--एक सामद्रष्टा ऋषि (पं. ब्रा. ११.८.८)। अपनी पूर्वायुष्य में यह वेदवेत्ता ऋषि था। किन्तु एक बार इसने दो नवजात शिशुओं का हरण कर उनका वध किया। इस पाप के कारण, इसका वेदों का सारा ज्ञान नष्ट हुआ।

वेदों के पुनःप्राप्ति के लिए इसने कठोर तपस्या की, जिस कारण इसके प्रतिभा जाग्रत हो कर इसने एक साम की रचना की। आगे चल कर इसे पुनः वेदज्ञान प्राप्त हुआ।

युगदत्त--(सो. पूरु.) एक राजा, जो मत्स्य के अनुसार ब्रह्मदत्त का, एवं वायु के अनुसार योग राजा का पुत्र था (मत्स्य. ४९.५८; वायु. ९९.१८०)।

युगंधर--(सो. वृष्णि.) एक यादव राजा, जो भागवत के अनुसार कुणि राजा का, मत्स्य के अनुसार द्युम्नि का, एवं वायु के अनुसार भूति राजा का पुत्र था।

२. (सो. वृष्णि.) एक यादव राजा, जो सात्यकि राजा का पुत्र था। भारतीय युद्ध में यह कौरवों के पक्ष में शामिल था। द्रोण से युद्ध करते समय, द्रोण के द्वारा इसका वध हुआ (म. द्रो. १५.३१; साल्व देखिये)।

युगप--एक देवगंधर्व, जो अर्जुन के जन्मोत्सव में उपस्थित था (म. आ. ११४.४५)।

युगादिदेव--एक राजा, जिसका गया नदी में स्नान करने के कारण उद्धार हुआ (स्कंद. ५.१.५७)।

युद्धतुष्ट--(सो. कुकुर.) एक राजा, जो वायु के अनुसार उग्रसेन राजा का पुत्र था। वायु तथा विष्णु में इसे 'युद्धमुष्टि', एवं भागवत में इसे 'सृष्टि' कहा गया है।

युद्धमुष्टि--युद्धतुष्ट नामक यादव राजा का नामान्तर।

युद्धोन्मत्त--रावण के पक्ष का एक राक्षस (वा. रा. यु. ६)।

युधांश्रौष्टि औग्रसैन्य--एक राजा, जिसे पर्वत एवं नारद ऋषि ने ऐन्द्र 'महाभिषेक' किया था (ऐ. ब्रा. ८. २१.७)। पौराणिक वाङ्मय में निर्दिष्ट 'युद्धमुष्टि' अथवा 'युद्धतुष्ट' राजा यही है (युद्धतुष्ट देखिये)। उग्रसेन राजा का पुत्र होने से इसे 'औग्रसैन्य' पैतृक नाम प्राप्त हुआ होगा।

युधाजित्--केकय देश के अश्वपति राजा का पुत्र, जो दशरथ की पत्नी कैकेयी का भाई था। एक समय अपने भतिजे भरत एवं शत्रुघ्न को केकय देश को ले गया था, जो अवसर देख कर दशरथ ने राम को यौवराज्याभिषेक किया (वा. रा. बा. ७७; दशरथ देखिये)।

२. अवन्ति देश का एक राजा, जो इक्ष्वाकुवंशीय सुदर्शन राजा के लीलावती नामक पत्नी का पिता था। अपने जामात सुदर्शन से इसका शत्रुत्व था, जिस कारण इसने उसे राजगद्दी से निकाल कर उसके भाई शत्रुजित् को अयोध्या का राज्य प्रदान किया था (सुदर्शन ९. देखिये)।

३. (सो. क्रोष्टु.) एक यादव राजा, जो क्रोष्टु एवं माद्री का पुत्र था (ब्रह्म. १४; ह. वं. १.३८.११)। अन्य पुराणों में इसे वृष्णि का पुत्र कहा गया है (पद्म. सृ. १३; वायु. ९६; मत्स्य. ४५; विष्णु. ४.१३; भा. ९. २४)। इसे शिनि एवं अनमित्र नामक दो पुत्र थे। इसीके वंश में उपन्न हुये श्वफल्क एवं चित्ररथ नामक राजाओं ने स्वतंत्र राजवंश की स्थापना की थी (भा. ९. २४; यदु. ३. देखिये)।

४. भृगुकुलोत्पन्न एक मंत्रकार।

युधाजित--(सो. वृष्णि.) एक यादव राजा, जो अनमित्र एवं पृथ्वी का पुत्र था (मत्स्य. ४५.२५; पद्म सृ. १३)।

युधामन्यु—पंचाल देश का एक राजकुमार, जो भारतीय युद्ध में पाण्डवों के पक्ष में शामिल था। यह महारथि, महाधनुर्धर,तथा गदा एवं धनुष्य के युद्ध में अत्यंत प्रवीण था (म. उ. १६७.५; १९७.३)। भारतीय युद्ध में यह अर्जुन का चक्ररक्षक था (म. भी. १६.१९)। इसके रथ के अश्व 'सारंग' वर्णके थे (म. द्रो. २२. १६०*)। इसका निम्नलिखित योद्धाओं के साथ युद्ध हुआ था :-कृतवर्मन् एवं कृप (म. द्रो. ६७.२९); द्रोण एवं दुर्योधन (म. द्रो. १०५.८१९*); कर्ण का भाई चित्रसेन (म. क. ८३.३९)।

द्रोणपुत्र अश्वत्थामा ने शिबिर में निद्रिस्त पांडव योद्धाओं का संहार किया, जिस समय उसके द्वारा यह भी मारा गया (म. सौ. ८.३४-३५)।

युधिष्ठिर—(सो. कुरु.) पाण्डुराजा की पत्नी कुन्ती का ज्येष्ठ पुत्र (भा. ९.२२.२७; म. आ. ९०.६९)।

तत्त्वदर्शी राजाः—एक धीरोदात्त, ज्ञानी, धर्मनिष्ठ एवं तात्विक प्रवृत्तियों का महात्मा मान कर, युधिष्ठिर का चरित्रचित्रण श्रीव्यास के द्वारा महाभारत में किया गया है। एक महाधनुर्धर एवं पराक्रमी व्यक्ति के नाते से अर्जुन महाभारत का नायक प्रतीत होता है। किन्तु अर्जुन की एवं समस्त पाण्डवों की सर्वोच्च प्रेरकशक्ति एवं अधिष्ठाता पुरुष, वास्तव में युधिष्ठिर ही है।

अपने समय का सर्वश्रेष्ठ क्षत्रिय होते हुये भी, सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण के सारे गुण इसमें सम्मिलित थे। इस तरह इसका व्यक्तिमत्त्व तत्कालीन क्षत्रिय नृपों से नही, बल्कि विदेह देश के तत्त्वचिंतक एवं तत्वज्ञ राजाओं से अधिक मिलता जुलता था। 'विदेह' जनक से ले कर गौतम बुद्ध तक के जो तत्त्वदर्शी राजा प्राचीन भारत में उत्पन्न हुये, उसी परंपरा का युधिष्ठिर भी एक तत्त्वदर्शी राजा था। महाभारत में प्राप्त युधिष्ठिर के अनेक नीतिवचन एवं विचार गौतमबुद्ध के वचनों से मिलते जुलते है।

चिंतनशील व्यक्तित्त्व—युधिष्ठिर पाण्डवों का ज्येष्ठ भ्राता था, जिस कारण यह आजन्म उनका नेता रहा। फिर भी इसका व्यक्तित्व क्रियाशील क्षत्रिय के बदले, एक तत्त्वदर्शी एवं पूर्णतावादी तत्त्वज्ञ होने के कारण, स्वयं पराक्रम न करते हुये भी इसे अपने भाईयों को कार्यप्रवण करने का मार्ग अधिक पसंद था। इसी कारण अपने पराक्रमी भाईयों को कार्यप्रवण करने का, एवं उनके कर्तृत्व को पूर्णत्व प्राप्त कराने का कार्य यह करता रहा। स्वभाव से यह पूर्णतावादी था, इसलिए इसे जीवन की त्रुटियाँ तथा अपूर्णता का ज्ञान एवं विवेक अधिक था। इसकी चिंतनशीलता एवं अन्य पाण्डवों की क्रियाशीलता का जो आंतरिक विरोध इसकी आयु में चलता रहा, वहीं पांडवों का संघर्ष एवं परस्परसौहार्द का अधिष्ठान था।

स्वभाव से अत्यंत चिंतनशील एवं अजातशत्रु हो कर भी, इसे सारी आयुःकाल में अपने कौरव भाईयों के साथ झगड़ना पडा, एवं उत्तरकालीन आयु में उनके साथ महायुद्ध भी करना पड़ा। फिर भी धर्म, नीति, सत्य, क्षमा, आत्मौपम्य आदि जिन धारणाओं को इसने जीवन का मूलाधार मानने का व्रत स्वीकृत किया था, उससे यह आजन्म अटल रहा। धर्म का आद्य मूलतत्त्व उच्चतम नीतिमत्ता है, ऐसी इसकी धारणा थी। उसी नीतिमत्ता का पालन वैयक्तिक, कौटुंबिक एवं राजनैतिक जीवन में होना चाहिये, इस ध्येयपूर्ति के लिए यह आजन्म झगड़ता रहा।

धर्म का अधिष्ठान अध्यात्म में नही, बल्कि दया, क्षमा, शांति जैसे आचरण में है, ऐसी इसकी भावना थी। इसी कारण, धर्माचरण मोक्षप्राप्ति के लिए नही, बल्कि अपने बांधवों के सुखसमाधान के लिए करना चाहिये, ऐसी इसकी विचारधारा थी।

अपने इन अभिमतों के सिध्यर्थ, इसे आजन्म कष्ट सहने पड़े, शत्रुमित्रों की एवं पाण्डव बांधवों की नानाविध व्यंजना सुननी पड़ी। फिर भी यह अपने तत्त्वों से अटल रहा। अपनी इसी विचारों के कारण, यह आजन्म एकाकी रहा, एवं एकाकी अवस्था में ही इसकी मृत्यु हुयी।

जन्म—तूल राशि में जब सूर्य, तथा ज्येष्ठा नक्षत्र में जब चन्द्र था, तब दिन के आठवें अभिजित् मुहुर्त पर आश्विन सुदी पंचमी के दिन दूसरे प्रहर में इसका जन्म हुआ (म. आ. ११४.४; नीलकंठ टीका-१२३.६)। युधिष्ठिर आदि सभी पाण्डव इन्द्रांश थे (मार्क ५.२०-२६)। इसके जन्मकाल में आकाशवाणी हुयी थी— 'पाण्डु का यह प्रथम पुत्र युधिष्ठिर नाम से विख्यात होगा, इसकी तीनों लोकों में प्रसिद्धी होगी। यह यशस्वी, तेजस्वी तथा सदाचारी होगा। यह श्रेष्ठ पुरुष धर्मात्माओं में अग्रगण्य, पराक्रमी एवं सत्यावादी राजा होगा' (म. आ. ११४. ५-७)।

स्वरूपवर्णन—यह शरीर से कृश तथा स्वर्ण के समान गौरवर्ण का था। इसकी नाक बड़ी तथा नेत्र आरक्त एवं विशाल थे। यह लम्बे कद का था, एवं इसका वक्षःस्थल

विशाल था। इसके स्नायु प्रमाणबद्ध थे (म. आश्र. ३२.६)।

ध्वज एवं आयुध—इसके धनुष्य का नाम ' माहेन्द्र ' एवं शंख का नाम ' अनंतविजय ' था। इसके रथ के अश्व हस्तिदंत के समान शुभ्र थे, एवं उनकी पूँछ कृष्ण-वर्णीय थी। इसके रथ पर नक्षत्रयुक्त चंद्रवाला स्वर्णध्वज था। उस पर यंत्र के द्वारा बजनेवाले ' नंद ' तथा ' उपनंद ' नामक दो मृदंग थे (म. द्रो. २२.१६२. परि. १. क्र. ५. पंक्ति ४-७)।

शिक्षा—इसके संस्कारों के विषय में मतभेद है। किसी प्रति में लिखा है कि सभी संस्कार शतशृंग पर हुए, और किसी में हस्तिनापुर के बारे में उल्लेख मिलता है। कहते है कि, शतशृंगनिवासी ऋषियों द्वारा इसका नामसंस्कार हुआ (म. आ. ११५.१९-२०), तथा वसुदेव के पुरोहित काश्यप के द्वारा इसके उपनयनादि संस्कार हुए (म. आ परि १-६७)

शर्यातिपुत्र शुक्र से इसने धनुर्वेद सीखा, तथा तोमर चलाने की कला में यह बड़ा पारंगत था (म. आ. परि. १.६७.२८-३४)। प्रथम कृप ने, तथा बाद में द्रोणाचार्य ने इसे शस्त्रास्त्र विद्या सिखायी थी (म. आ. १२०.२१;१२२)। कौरव पाण्डवों की द्रोण द्वारा ली गयी परीक्षा में इसने अपना कौशल दिखा कर सब को आनंदित किया था (म. आ. १२४-१२५)। गुरुदक्षिणा देने के लिए इसने भीमार्जुन की सहाय्यता ली थी (म. आ. परि. ७८. पंक्ति. ४२)

पाण्डवों के पिता पाण्डु का देहावसान उनके बाल्यकाल में ही हुआ था। कौरव बांधवों की दुष्टता के कारण, इसे अपने अन्य भाइयों के भाँति नानाविध कष्ट सहने पडे। किन्तु इसी कष्टों के कारण इसकी चिंतनशीलता एवं नीति-परायणता बढती ही रही। कौरवों की जिस दुष्टता के कारण, अर्जुन ने ईर्ष्यायुक्त बन कर नवनवीन अस्त्र संपादन किये, एवं भीम में अत्यधिक कटुता उत्पन्न कर वह कौरवो के द्वेष में ही अपनी आयु की सार्थक्यता मानने लगा, उन्हीं के कारण युधिष्ठिर अधिकाधिक नीतिप्रवण एवं चिंतनशील बनता गया। भारतीययुद्ध जैसे संहारक काण्ड के समय, भीष्मद्रोणादि नीतिपंडितों की सूक्तासूक्त-विषयक धारणाएँ जड़मूल से नष्ट हो गयी, उस प्रलय-काल में भी युधिष्ठिर की नीतिप्रवणता वैसी हि अबाधित एवं निष्कलंक रही।

यौवराज्याभिषेक— यह क्षात्रविद्यासंपन्न होने पर, धृतराष्ट्र ने भीष्म की आज्ञा से इसे यौवराज्याभिषेक किया, एवं अर्जुन इसका सेनापति बनाया गया (म. आ. परि. १. क्र. ७९. पंक्ति. १९१-१९३)। इसने अपने शील, सदाचार एवं प्रजापालन की प्रवृत्तियों के द्वारा अपने पिता पाण्डु राजा की कीर्ति को भी ढक दिया। इसकी उदारता एवं न्यायी स्वभाव के कारण, प्रजा इसे ही हस्तिनापुर के राज्य को पाने के योग्य बताने लगी।

पाण्डवों की बढती हुयी शक्ति एवं ऐश्वर्य को देख कर दुर्योधन मन ही मन इसके विरुद्ध जलने लगा, एवं पाण्डवों को विनष्ट करने के षड्यंत्र रचाने लगा, जिनमें धृतराष्ट्र की भी संमति थी (म. आ. परि. १. क्र. ८२. पंक्ति. १३१-१३२)।

लाक्षागृहदाह—धार्तराष्ट्र एवं पाण्डवों के बढते हुऐ शत्रुत्व को देख कर, इन्हे कौरवों से अलग वारणावत नामक नगरी में स्थित राजगृह में रहने की आज्ञा धृतराष्ट्र ने दी। इसी राजगृह को आग लगा कर इन्हे मारने का षड्यंत्र दुर्योधन ने रचा। किन्तु विदुर की चेतावनी के कारण, पाण्डव इस लाक्षागृह-दाह से बच गये। विदुर के द्वारा भेजे गये नौका से ये गंगानदी के पार हुये। पश्चात सभी पाण्डवों के साथ इसका भी द्रौपदी के साथ विवाह हुआ।

अर्ध राज्यप्राप्ति—द्रौपदी-विवाह के पश्चात्, धृतराष्ट्र ने हस्तिनापुर के अपने राज्य के दो भाग किये, एवं उसमें से एक भाग इसे प्रदान किया। अपने राज्य में स्थित खाण्डवप्रस्थ नामक स्थान में इन्द्रप्रस्थ नामक नयी राजधानी बसा कर, यह राज्य करने लगा (म. आ. १९९)।

राजसूययज्ञ—इसकी राजधानी इंद्रप्रस्थ में मयासुर ने मयसभा का निर्माण किया, जो स्वर्ग में स्थित इन्द्रसभा, वरुणसभा, ब्रह्मसभा के समान वैभवसंपन्न थी। एक बार युधिष्ठिर से मिलने आये हुये नारद ने मय-सभा को देख कर अत्यधिक प्रसन्नता व्यक्त की, एवं कहा, ' हरिश्चंद्र राजा ने राजसूय यज्ञ करने के कारण, जो स्थान इंद्रसभा में प्राप्त किया है, वही स्थान तुम्हारे पिता पाण्डु प्राप्त करना चाहते है। यदि तुम राजसूय यज्ञ करोंगे तो तुम्हारे पिता कि यह कामना पूर्ण होगी ' (म. स. ५.१२)।

नारद की इस सूचना का स्वीकार कर, युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण की सहाय्यता से राजसूययज्ञ का आयोजन किया।

इस यज्ञ के सिध्यर्थ इसने अर्जुन, भीम, सहदेव एवं नकुल इन भाईयों को क्रमशः उत्तर, पूर्व, दक्षिण एवं पश्चिम दिशाओं में भेज दिया। इन दिग्विजयों से अपार संपत्ति प्राप्त कर, पाण्डवों ने अपने राजसूय-यज्ञ का प्रारंभ किया (भा. १०.७२.७४)।

श्रीकृष्ण की आज्ञा से, इसने स्वयं राजसूय यज्ञ की दीक्षा ली थी। इसके यज्ञ के प्रमुख पुरोहितगण निम्नलिखित थे:—ब्रह्मा–द्वैपायन व्यास; सामग–सुसामन्; अध्वर्यु–ब्रह्मिष्ठ याज्ञवल्क्य; होता–वसुपुत्र पैल एवं धौम्य (म. स. ३०.३४–३५)।

इस यज्ञ में कौरव, यादव एवं भारतवर्ष के अन्य सभी राजा उपस्थित थे। इस यज्ञ की व्यवस्था युधिष्ठिर के द्वारा निम्नलिखित व्यक्तियों पर सौंपी गयी थी:—भोजनशाला–दुःशासन; ब्राह्मणों का स्वागत–अश्वत्थामा, दक्षिणाप्रदान–कृपाचार्य; आयव्ययनिरीक्षण–विदुर; ब्राह्मणों का चरणक्षालन–श्रीकृष्ण; सामान्य प्रशासन–भीष्म एवं द्रोण।

इस यज्ञ में प्रतिदिन दस हजार ब्राह्मणों को स्वर्ण की स्थालियों में भोजन कराया जाता था। एक लाख ब्राह्मणों को इस तरह भोजन दिया जाने पर, 'लक्षभोजन' सूचक शंखध्वनि की जाती थी (म. स. ४५.३०)। इस प्रकार इसका राजसूय यज्ञ सर्वतोपरि सफल रहा।

दुर्योधनविद्वेष––युधिष्ठिर के द्वारा किये गये इस यज्ञ की सफलता को देख कर दुर्योधन ईर्ष्या से जल-भून गया। युधिष्ठिर के द्वारा खर्च की गयी अगणित संपत्ति, एवं लोगों के द्वारा की गयी युधिष्ठिर की प्रशंसा उसे असह्य प्रतीत हुयी (म. स. ३२.२७; भा. १०.७४)। इसी कारण इसे जड़मूल से उखाड़ फेंकने की योजनाएँ वह बनाने लगा। इसे युद्ध में जीतना तो असंभव था। इसी कारण द्यूत के द्वारा इसकी समस्त धन-संपत्ति हरण करने की शकुनि मामा की सूचना उसने मान्य की। पश्चात् इसी सूचना को स्वीकार कर, धृतराष्ट्र ने विदुर के द्वारा युधिष्ठिर को द्यूत खेलने का निमंत्रण दिया।

द्यूत-पराजय—हस्तिनापुर में संपन्न हुए द्यूतक्रीडा में, दुर्योधन के स्थान पर शकुनि ने बैठ कर युधिष्ठिर को पूरी तरह से हरा दिया, एवं इसका सबकुछ जीत लिया। यह धन, राज्य, भाई तथा द्रौपदी सहित अपने को भी हार गया। द्यूत खेल कर पराजित होने के बाद, इसने बारह-वर्ष का वनवास एवं वर्ष एक का अज्ञातवास स्वीकार लिया, एवं यह भी शर्त मान्य की कि, यदि अज्ञातवास के समय पाण्डव पहचाने गये, तो इन्हे बारह वर्षों का वनवास और सहना पडेगा (म. स. ७१)।

वनवास—कार्तिक शुक्ल पंचमी के दिन यह अपने अन्य भाई एवं द्रौपदी के साथ वनवास के लिए निकला। यह जब अरण्य की ओर चला, उस समय हस्तिनापुर के अनेक नगरवासी इसके साथ जाने के लिए तत्पर हुये। इसने इन सभी लोगों को लौट जाने के लिए कहा, एवं ऋत्विजों में से केवल इसके उपाध्याय धौम्य इसके साथ रहे। वनवास के प्रारंभ में ही इसने सूर्य की प्रार्थना कर, अक्षय्य अन्न-प्रदान करनेवाली एक स्थाली प्राप्त की। इस तरह अपनी एवं अपने बांधवों की उपजीविका का प्रश्न हल किया (म. व. १–४)।

युधिष्ठिर के द्यूत खेलने के समय एवं द्रौपदी वस्त्रहरण के समय श्रीकृष्ण हस्तिनापुर में नही था, क्यों कि, उसी समय शाल्व ने द्वारका पर आक्रमण किया था। पाण्डवों के वनवास की वार्ता ज्ञात होते ही वह इनसे मिलने वन में आया। उस समय धार्तराष्ट्रों पर आक्रमण कर, उनका राज्य पाण्डवों को वापस दिलाने का आश्वासन कृष्ण ने इसे दिया। किन्तु इसने दृढता से कहा, 'मैंने कौरवों से शब्द दिया है कि, बारह साल वनवास एवं एक साल अज्ञातवास हम भुगत लेंगें। यह मेरी आन है, एवं उसे किसी तरह भी निभाना यह हमारा कर्तव्य है। इसी कारण वनवास की समाप्ति के पश्चात् ही हमे राज्य के पुनःप्राप्ति का विचार करना चाहिए'।

द्रौपदी–युधिष्ठिर संवाद––पाण्डवों के वनवास के प्रारंभ में ही, द्वैत-वन में द्रौपदी ने युधिष्ठिर के पास अत्यधिक विलाप किया। उसने कहा, 'द्रुपद राजा की कन्या, पाण्डुराजा की स्नुषा एवं तुम्हारी पटरानी, जो मैं आज तुम्हारे कारण वनवासी बन गयी हूँ। भीम जैसे राजकुमार एवं अर्जुन जैसे योद्धा आज भूख एवं प्यास से व्याकुल हो कर इधर उधर घूम रहे है। अपने बांधवों की यह हालत देख कर भी तुम चुपचाप क्यों बैठते हो?। दुर्योधन अत्यंत पापी एवं लोभी है, एवं उसका नाश करना ही उचित है'।

इस पर युधिष्ठिर ने कश्यपगीता का निर्देश करते हुए कहा, 'क्षमा पर ही सारा संसार निर्भर है। राज्य के लोभ से अपने मन में स्थित क्षमाभावना का त्याग करना उचित नही है। लोभ से बुद्धि मलीन हो जाती है।

'केवल पाण्डवों का ही नही, बल्कि सारे भरत वंश का नाश होने का समय आज समीप आया है। फिर भी अपनी मन की शान्ति हमें नहीं छोडनी चाहिये'।

युधिष्ठिर का यह वचन सुन कर द्रौपदी और भी क्रुद्ध हुयी। समस्त सृष्टि के संचालक विधातृ की दोष देते हुये उसने कहा, ' तुम्हारे आत्यंतिक धर्मभाव से मैं तंग आयी हूँ। कहते है कि, धर्म का रक्षण करने पर वह मनुष्यजाति का रक्षण करता है। किन्तु धर्माचरण का कुछ भी फायदा तुम्हे नही हुआ है। अपनी समस्त आयु में तुमने यज्ञ किये, दान दिये, सत्याचरण किया। एक साया जैसे तुम धर्म का पीछा करते रहे। फिर भी उसके बदले हमे दुःख के सिवा कुछ भी न मिला '।

द्रौपदी के इस कटुवचन को सुन कर युधिष्ठिर ने अत्यंत शान्ति से कहा, फलों की कामना मन में रखकर धर्म का आचरण करना उचित नहीं है। जो नीच एवं कमीने होते है, वे ही धर्म का सौदा करते है। अपने दुर्भाग्य के लिए देवताओं को दोष देना श्रद्धाहीनता का द्योतक है। धर्म असफल होने पर तप, ज्ञान एवं दान निष्फल हो जायेंगे, एवं समस्त मनुष्य जाति पशु बन जायेंगी। परमात्मा की कर्तृत्वशक्ति अगाध है। उसकी निंदा करने का पापाचरण तुमने न करना चाहिये '। युधिष्ठिर ने आगे कहा, ' दुर्योधन की राजसभा में मैंने वनवास की प्रतिज्ञा की है, जो मुझे अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय है। हमे सत्य कभी भी न छोंडना चाहिये (म. व. २८-३१)।

इसी संभाषण के अन्त में इसने अपने भाईयों से कहा ' कौरवों के साथ द्यूत खेलते समय मैं हारा गया, इस कारण आप मुझे जुआँरी एवं मूरख कह कर दोष देते है, यह ठीक नही। जब मैं द्यूत के लिए उद्यत हुआ था, उस समय आप चुपचाप क्यों बैठे '?

इसी समय व्यास ने युधिष्ठिर से कहा, ' बांधवों के लिए यही अच्छा है कि, वे सदैव एकत्र न रहे। ऐसे रहने से प्रेम बढता नही, बल्कि घटता है '। इसी कारण, व्यास ने इसे एक ही स्थान पर न रहने की सूचना दी (म. व. ३७.२७-३२)। व्यास के इस वचन को प्रमाण मान कर इसने अर्जुन को ' पाशुपतास्त्र ' प्राप्त करने के लिए भेज दिया एवं द्रौपदी का भार भीम पर सौंप कर यह निश्चिंत हुआ।

इसके पश्चात् यह कुछ काल तक काम्यकवन में रहा, जहाँ इसके दुःख का परिहार करने के लिए, बृहदश्व ऋषि ने नल राजा का चरित्र इसे कथन किया (म. व. ७८. १७)। इसी समय उसने इसे 'अक्षहृदय' एवं 'अक्षविद्या' प्रदान की, जिस कारण यह द्यूतविद्या में अजिंक्य बन गया।

तीर्थयात्रा—एक बार लोमश ऋषि इसे वनवास में मिलने आये, एवं उन्होंने इसे कहा, ' अर्जुन को अपनी तपस्या से लौट आने में काफी समय लगनेवाला है। इसी कारण तुम्हारी मनःशांति के लिए तुम भारतवर्ष की यात्रा करोंगे, तो अच्छा होगा। इसी समय पुलस्त्य एवं धौम्य ऋषि ने भी इसे तीर्थयात्रा करने का महत्त्व कथन किया था (म. व. ८०-८३-८४-८८)।

पश्चात् यह लोमश ऋषि के साथ तीर्थयात्रा के लिए निकल पड़ा। लोमश ऋषि ने इसे तीर्थयात्रा करते समय अनेकविध तीर्थस्थान, नदियाँ, पर्वत आदि का माहात्म्य कथन किया, एवं उस माहात्म्य के आधारभूत प्राचीन ऋषि, मुनि एवं राजाओं की कथा इसे सुनाई (म. व. ८९-१५३)। महाभारत के जिस 'तीर्थयात्रा पर्व' में युधिष्ठिर की इस यात्रा का वर्णन प्राप्त है, वहाँ पुष्कर-तीर्थ एवं कुरुक्षेत्र को भारतवर्ष के सर्वश्रेष्ठ तीर्थ कहा गया है, एवं समुद्रस्नान का माहात्म्य भी वहाँ कथन किया गया है।

नहुषमुक्ति—तीर्थयात्रा समाप्त करने के पश्चात्, पाण्डव गंधमादन पर्वत पर गये। वहाँ अर्जुन भी पाशुपतास्त्र संपादन कर स्वर्ग से वापस आया था (म. व. १६२-१७१)। गंधमादन पर्वत के नीचे पाण्डव जिस समय अरण्य में संचार कर रहे थे, उस समय अजगर रूपधारी नहुष ने भीम को निगल लिया। नहुष के द्वारा पूछे गये धर्मविषयक अनेकानेक प्रश्नों के युधिष्ठिर ने सुयोग्य उत्तर दिये, एवं इस तरह भीम को अजगर से मुक्तता की (म. व. १७७-१७८; नहुष देखिये)। तत्पश्चात् नहुष की अजगरयोनि से मुक्तता हो कर वह भी स्वर्ग चला गया। भीम के शारीरिक बल से युधिष्ठिर का आत्मिक सामर्थ्य अधिक श्रेष्ठ था, यह बताने के लिए यह कथा दी गयी है।

घोषयात्रा—पाण्डव जिस समय द्वैतवन में निवास करते थे, उस समय उन्हे अपना वैभव दिखाने के लिये दुर्योधन वहाँ ससैन्य उपस्थित हुआ। चित्रसेन गंधर्व ने उसे पकड लिया। तत्पश्चात् दुर्योधन के सेवक युधिष्ठिर के पास मदद की याचना करने के लिए आ पहुँचे। उस समय भीम ने कहा 'दुर्योधन हमारा शत्रु है। उसकी जितनी बेइज्जती हो, उतना हमारे लिए अच्छा ही है '। किन्तु युधिष्ठिर कहा, ' दुर्योधन हमारा कितना ही बड़ा शत्रु हो, उसकी किसी दूसरे के द्वारा बेइज्ज़ती होना

हमारे कुरुकुल के लिए लांछन है। कौरवों के साथ संघर्ष करते समय, सौ कौरव एवं पाँच पाण्डव अलग अलग रहेंगे, किन्तु किसी परकीय शत्रु से युद्ध करते समय, हम दोनो एक सौ पाँच बन कर उसका प्रतिकार करे, यही उचित है—

परस्पराणां संघर्षे, वयं पञ्च च ते शतम्।
अन्यैः सह विरोधे तु, वयं पञ्चाधिकं शतम्।

जयद्रथ की मुक्तता—इसीके ही पश्चात् थोडे दिन में जयद्रथ ने द्रौपदी का हरण करने का प्रयत्न किया (म. व. २५५.४३)। उसी समय भी इसने जयद्रथ धृतराष्ट्र की कन्या दुःशीला का पति है, यह जान कर उसकी मुक्तता की (म. व. २५६.२१-२३)।

जयद्रथ के द्वारा किये गये द्रौपदीहरण से खिन्न हुये युधिष्ठिर को, मार्कंडेय ऋषि ने रावण के द्वारा किये गये सीताहरण की, एवं अश्वपति राजा की कन्या सावित्री की कथा सुनाई, एवं मनःशांति प्राप्त करा दी।

यक्षप्रश्न—कालान्तर में यह काम्यकवन छोड़ कर फिर द्वैतवन में रहने लगा। एक बार सभी लोग प्यासे थे। इसने नकुल से पानी लाने के लिए कहा किन्तु नकुल वापस न लौटा। तब इसने बारी बारी से सहदेव, अर्जुन तथा भीम को भेजा। किन्तु कोई वापस न लौटा। हार कर यह जलाशय के तट पर आया तब अपने सभी भाइयों को मूर्च्छित देखकर अत्यधिक क्षुब्ध हुआ, एवं दुःख से पीडित हो कर विलाप करने लगा। तत्काल, इसे शंका हुयी कि दुर्योधन ने इस जलाशय में विष घुलवा दिया हो। इतने में एक ध्वनि आयी, 'तुम मेरे प्रश्नों का उत्तर दो, फिर पानी ले सकते हो। यदि मेरी बात न मानोंगे, तो तुम्हारी भी यही हालत होगी, जो तुम्हारे भाइयों की हुयी है।

तब बक रूप धारण कर, उस यक्ष ने इसे अस्सी प्रश्न किये, जो साधारण बुद्धि, तत्वज्ञान, दर्शन, धर्म तथा राजनीति सम्बन्धी थे। इसने उन सभी का उत्तर संतोषजनक दिया। उनमें से प्रमुख प्रश्न तथा उनके उत्तर निम्नलिखित थे (यक्ष प्रश्न की तालिका देखिये)।

यक्ष के प्रश्न	युधिष्ठिर के उत्तर
सूर्य का आधार क्या है?	ब्रह्म।
सूर्य के साथ कौन है?	देवता।
धर्म का अधिष्ठान क्या है?	सत्य।
आदमी को बल कैसे प्राप्त होता है?	धैर्य से।
कौन आदमी मृत है?	धनहीन।
कौन राष्ट्र मृत है?	जहाँ अराजकता है।
ब्राह्मण देवत्व किस प्रकार पा सकता है?	विद्या से।
क्षत्रिय देवत्व किस प्रकार प्राप्त कर सकता है?	शस्त्रादि से।
जीवित कौन है?	देवता, अतिथि, नौकर-चाकर, पितर एवं आत्मा को तृप्त करनेवाला।

इस प्रकार अपने सभी प्रश्नों का तर्कपूर्ण उत्तर पा कर, बकरूपधारी यक्ष ने सन्तुष्ट होकर युधिष्ठिर से कहा, 'तुम अपने भाइयों में किसी एक को पुनः प्राप्त कर सकते हो'। तब इसने माद्रीपुत्र नकुल का जीवनदान माँगा। तब इसके पक्षपातरहित समत्वबुद्धि को देख कर यक्ष प्रसन्न हो उठा। उसने इसके सभी भाइयों को जीवित कर दिया, तथा वर दिया, 'अज्ञातवास के समय तुम्हें कोई पहचान न सकेगा'। वह यक्ष कोई दूसरा न था, बल्कि साक्षात यमधर्म ही था। उसने इसे विराटनगरी में रहने के लिए कहा, तथा ब्राह्मण की अरणी देते हुए वर प्रदान किया, 'लोभ, क्रोध तथा मोह को जीत कर दान, तप तथा सत्य में तुम्हारी आसक्ति हो (म. व. २९५-२९८)।

अज्ञातवास—पाण्डवों के अज्ञातवास में इसने गुप्त रूप से जय, तथा प्रकट रूप से कंक नामक ब्राह्मण का रूप धारण किया था (म. वि. १.२०; ५. ३०)। अज्ञातवास शुरु होने के पूर्व धौम्य ऋषि ने इसे अज्ञात बास में

किस तरह आचरण करना चाहिये, इस विषय में उपदेश किया था। पश्चात् अपने बन्धु एवं द्रौपदी के साथ, मत्स्यराज विराट के यहाँ इसने अज्ञातवास का एक वर्ष विताया (म. वि. ६. ११)।

यह द्यूतक्रीडा का बड़ा शौकिन एवं बडा प्रवीण खिलाडी था। यह द्यूत में विराट के धन को जीतता था, एवं गुप्त रूप से वह अपने भाईयों से देता था (म. वि. १२.५)। एक बार द्यूत खेलते समय इसने बृहन्नला (अर्जुन) की काफ़ी तारीफ की, जिस कारण क्रुद्ध होकर विराट ने इसकी नाक पर एक पाँसा फेंक कर मारा। उससे इसकी नाक से खून बहने लगा, जिसे द्रौपदी ने अपने पल्ले से पोंछ लिया था (म. वि. ६३)।

संधि का प्रयत्न--ज्येष्ठ कृष्ण अष्टमी के दिन पाण्डव अपने वनवास एवं अज्ञात वास से प्रकट हुये। तत्पश्चात् इसने द्रुपद राजा के पुरोहित को राज्य का आधा हिस्सा माँगने के लिए भेज दिया (म. उ. ६.१८)। पुरोहित ने धृतराष्ट्र से युधिष्ठिर का संदेश कह सुनाया, एवं भीष्म द्रोणादि ने भी उसका समर्थन किया। धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर की माँग का सीधा जवाब नहीं दिया, किन्तु संजय के हाथों इतना ही संदेश भेद दिया, 'मैं आप से सख्य भाव रखना चाहता हूँ। जो लोग मूढ एवं अधर्मज्ञ होते है, वे ही केवल युद्ध की इच्छा रखते है। तुम स्वयं ज्ञाता हो। इसी कारण अपने बांधवों को युद्ध से परावृत्त करो, यही उचित है'।

इस पर युधिष्ठिर ने जवाब दिया, 'वनवास के आपत्काल में पाण्डवों ने भिक्षा माँग कर अपना गुजारा किया है। अभी आपत्काल समाप्त होने पर भिक्षावृत्ति से जीना हमारे लिए असंभव है। फिर भी शान्ति का आखिरी प्रयत्न करने के लिए मैं श्रीकृष्ण को धृतराष्ट्र के दरबार में भेज देता हूँ'।

युधिष्ठिर-कृष्ण संवाद—युधिष्ठिर पहले से हीं युद्ध करने के विरुद्ध था। इसी कारण, इसने कृष्ण से हर प्रयत्न से युद्ध टालने की प्रार्थना की। इसने कहा, 'युद्ध में सर्वनाश के सिवा कुछ संपन्न नही होता है। जिस तरह पानी में मछलिया एक दूसरी के साथ झगडती हैं, एवं एक दूसरी को खा जाती है, उसी तरह युद्ध में क्षत्रिय, क्षत्रिय के साथ झगड़ते है, एवं एक दूसरे का संहार करते है। क्षत्रिय लोग युद्ध में पराजय की अपेक्षा मृत्यु को अधिक पसंत करते है। किन्तु जिस युद्ध में अपने सारे बान्धवों का संहार होता हैं, उससे सुख की प्राप्ति कैसे हो सकती है? शत्रुत्व युद्ध से घटता नही, बल्कि बढ़ता है। इसी कारण शांति में जो सुख है, वह युद्ध में कहाँ'?

इसी दौत्यकर्म के समय धृतराष्ट्र के राजगृह में रहनेवाली अपनी माता कुन्ती से मिलने के लिए, इसने श्रीकृष्ण को बार बार प्रार्थना की थी। इसने कहा, 'हमारी माता कुन्ती को जीवन में दुख के सिवा अन्य कुछ भी नहीं प्राप्त हुआ। फिर भी बाल्यकाल में उसने दुर्योधन से हमारा संरक्षण किया'।

कृष्णदौत्य—युधिष्ठिर के कहने पर श्रीकृष्ण दुर्योधन के दरबार में गया, एवं उसने कहा, 'अविस्थल, वृकस्थल माकंदी (आसंदी), वारणावत आदि पाँच गाँव पाण्डवों के भरणपोषण के लिए आप युधिष्ठिर को दे दे। इतना छोटा हिस्सा प्राप्त होने पर भी, युधिष्ठिर धार्तराष्ट्रों से संधि करने के लिए तैय्यार है (म. उ. ७०-७५)।

किन्तु दुर्योधन ने सूई की नोंक के बराबर भी भूमि पाण्डवों को देना अमान्य कर दिया (म. उ. १२६.२६)। अन्त में कुरुक्षेत्र में हिरण्यवती नदी के किनारे खाई खोद कर युधिष्ठिर ने अपनी सेना एकत्र की (म. उ. १४९.७-७४)। युद्ध टालने का अखीर का प्रयत्न करने के लिए, इसने फिर एकबार उलूक राजा को मध्यस्थता के लिए दुर्योधन के पास भेज दिया, एवं कहा 'भाईयों का यह रिश्ता न टूटे तो अच्छा'। किन्तु मामला उलझता ही गया, सुलझा नही, एवं भारतीय युद्ध का प्रारंभ हुआ (म. उ. १५७).

भारतीय युद्ध-पाण्डवपक्ष के योद्धा--भारतीय युद्ध प्राचीन भारतीय इतिहास का पहला महायुद्ध माना जाता है। इस कारण इस युद्ध में तत्कालीन भारतवर्ष का हर एक राजा, कौरव अथवा पाण्डव किसी न किसी पक्ष में शामिल था। भारतीय युद्ध में पाण्डवों के पक्ष में निम्नलिखित देश शामिल थे:—

१. मध्यदेश के देश—वत्स, काशी, चेदि, करूष, दशार्ण एवं पांचाल। पार्गिटर के अनुसार, मध्यदेश में से मत्स्य, पूर्व कोसल; एवं विंध्य एवं आडावला पर्वत में रहनेवाली वन्य जातियाँ भी पाण्डवों के पक्ष में शामिल थी।

२. पूर्व भारत के देश--पूर्व भारत में से केवल पश्चिम मगध देश एवं उसका राजा जरासंधपुत्र सहदेव पाण्डवों के पक्ष में थे।

३. पश्चिम भारत--गुजरात में एवं गुजरात के पूर्व भाग में रहनेवाले. यादव राजा, जैसे कि, वृष्णि राजा युयुधान एवं यादव राजा सात्यकि।

४. उत्तरी पश्चिम भाग के देश--अभिसार देश, जो काश्मीर के दक्षिणी पश्चिम दिशा में स्थित था। पार्गिटर के अनुसार, इसी प्रदेश में स्थित केकय देश भी पांण्डवों के पक्ष में शामिल था।

५. दक्षिण भारत के देश—पाण्डय देश एवं कर्नाटक में रहनेवाली कई द्रविड जातियाँ।

उपर्युक्त नामावली से प्रतीत होता है कि, पाण्डवों के पक्ष में दक्षिण मध्यदेश के सारे देश, जैसे कि, मत्स्य, चेदि, करुष, काशी एवं पांचाल; पूर्व भारत के पश्चिम मगध आदि देश; गुजराथ के सारे यादव; एवं दक्षिणी भारत के पाण्डय राजा शामिल थे।

पाण्डवों के पक्ष में पांचाल देश का राजा द्रुपद, चेदिराज धृष्टकेतु, मगधदेशाधिपति जयत्सेन, यमुना-तीर निवासी पाण्ड्य एवं यादव राजा सात्यकि प्रमुख थे। इनमें से द्रुपद पाण्डवों का, श्वशुर था एवं सात्यकि श्रीकृष्ण का रिश्तेदार था। नकुलसहदेव का मामा मद्रराज शल्य एक अक्षौहिणी सैन्य ले कर पाण्डवों के सहाय्यार्थ निकला था। किन्तु रास्ते में उसका विपुल आदरातिथ्य कर दुर्योधन ने उसे अपने पक्ष में शामिल करा लिया।

विदर्भ देश का राजा रुक्मिन् ससैन्य पाण्डवों की सहाय्यार्थ आया था। किन्तु उसका कहना था, 'यदि पाण्डव मेरी सहाय्य की याचना करेंगे, तो ही मैं उनकी सहाय्यता करूंगा। इस पर अर्जुन ने उसे कहा, 'यह युद्ध एक रणयज्ञ है। जिसकी जैसी इच्छा हो, उस पक्ष में हर एक राजा शामिल हो सकता है। किसी की हम याचना करने के लिए तैय्यार नही है'। बलराम पाण्डवों का रिश्तेदार था, किन्तु उसकी सारी सहानुभूति दुर्योधन की ओर थी। इस उलझन से छुटकारा पाने के लिए, वह किसी के पक्ष में शामिल न हो कर तीर्थयात्रा के लिए चला गया।

कौरवपक्ष के देश—भारतीय युद्ध में कौरवों के पक्ष में निम्नलिखित देश शामिल थे:—

१. पूर्व भारत के देश—प्राचीन मगध साम्राज्य के पश्चिम मगध छोड़ कर बाकी सारे देश, जैसे कि, पूर्व मगध, विदेह, अंग, वंग, कलिंग, जिन सारे देशों पर अंगराज कर्ण का स्वामित्व था; प्राग्ज्योतिष (चीन एवं किरात जातियों के साथ)। इस समय प्राग्ज्योतिष का राजा भगदत्त था। पार्गिटर के अनुसार, उत्कल, मेकल, आंध्र एवं उन सारे प्रदेशों में रहनेवाली वन्य जातियाँ भी कौरवों के पक्ष में शामिल थी।

२. मध्यदेश के देश--कोसल, वत्स एवं शूरसेन। इस समय कोसल देश का राजा बृहद्बल था।

३. उत्तरीपश्चिम भारत के देश—सिन्धुसौवीर, गांधार त्रिगर्त, केकय, शिबि, मद्र, वाह्लिक, क्षुद्रक, मालव, अंबष्ठ, एवं कंबोज। इनमें से सिन्धुसौवीर, गांधार, त्रिगर्त, मद्र, अंबष्ठ एवं कंबोज देशों के राजा क्रमशः जयद्रथ, शकुनि, सुशर्मन्, शल्य, श्रुतायु एवं सुदक्षिण थे। पार्गिटर के अनुसार, इन देशों में रहनेवाली वन्य जातियाँ भी कौरवों के पक्ष शामिल थी।

४. मध्यभारत के देश—माहिष्मती, भोज-अंधक-वृष्णि, विदर्भ, निषाद, शाल्व एवं अवंती देशों के यादव राजा। इन देशों में से माहिष्मती, भोज-अंधकवृष्णि एवं अवंती देशों के राजा क्रमश नील, कृतवर्मन् एवं विंद-अनुविंद थे। पार्गिटर के अनुसार, आधुनिक बड़ौदा नगर के दक्षिण एवं दक्षिणीपूर्व प्रदेश में रहनेवाले सारे यादव राजा, दखन प्रदेश में रहनेवाली वन्य जातियाँ, एवं मध्य भारत में स्थित कुन्तल देश भी कौरवों के पक्ष में शामिल था।

उपर्युक्त नामावलि से प्रतीत होता है कि, कौरवों के पक्ष में उत्तर, उत्तरीपश्चिम, मध्य एवं पूर्व भारत के प्रायः सारे देश शामिल थे। उन देशों में उत्तर एवं दक्षिणी पूर्व भारत के सारे देश; बंगाल एवं पश्चिमी आसाम के सारे देश; बंगाल के दक्षिण में गोदावरी तक का फैला हुआ सारा प्रदेश; मध्यदेश के शूरसेन, वत्स एवं कोसल देश; उत्तरी भारत के शाल्व, मालव आदि सारे देश, एवं मध्य-भारत के अवन्ति आदि सारे देश समाविष्ट थे।

कौरवों के पक्ष में शकयवनादि देशों का राजा, माहिष्मती का राजा नील, केकयाधिपति केकय, प्राग्ज्योतिषपुर का राजा भगदत्त, सौवीर देश का राजा जयद्रथ, त्रिगर्त-राज सुशर्मन्, गांधारराज बृहद्बल, कौरव राजा भूरिश्रवस्, अंगराज कर्ण आदि राजा प्रमुख थे। इनमें से जयद्रथ, सुशर्मन् एवं कर्ण का पाण्डवों से पुरातन शत्रुत्व था, जिस कारण वे कौरवों के पक्ष में शामिल हो गये थे

इस प्रकार, कौरव एवं पाण्डवों के बीच हुआ भारतीय युद्ध वास्तव में एक ओर दक्षिण मध्य देश एवं पांचाल देश, एवं दूसरी ओर बाकी सारा भारत देश इनके बीच हुआ था। इस तरह सेनाबल के दृष्टि से कौरवों का पक्ष पाण्डवों से कतिपय बलवान् था।

कई अभ्यासकों ने वांशिक दृष्टि से इस युद्ध को उभय पक्षीयों का अध्ययन करने का प्रयत्न किया है। किन्तु

उसमें कुछ तथ्य नहीं प्रतीत होता है, क्यों कि, पाण्डव एवं कौरव इन दोनो पक्ष में शामिल हुए राजाओं में कौनसा भी वांशिक साधर्म्य नही था। इन दोनों पक्षों में शामिल होनेवाले देश प्रायः सर्वत्र अपने राजा के कारण विशिष्ट पक्ष में आये थे, एवं बहुत सारे स्थानों पर राजा एवं प्रजा अलग अलग वंशों के थे।

युद्धशिबिर—पाण्डवों के पक्ष का युद्धशिबिर मत्स्य देश की राजधानी उपप्लव्य नगरीं में था, एवं समस्त मत्स्य देश में उनकी सेना एकत्रित की गयी थी। कौरवपक्ष का युद्धशिविर कुरु देश की राजधानी हस्तिनापुर में था। किन्तु उनका सैन्यविस्तार इतना प्रचंड था कि, दक्षिण पंजाब से ले कर उत्तर कुरुक्षेत्र से होता हुआ वह उत्तर पंचाल देश तक अर्धचंद्राकृति वह फैला हुआ था। उस शिबिर का विस्तार ५ योजन (४० मील) था। एक प्रचंड नगर के समान उसकी शान थी, एवं वहाँ नौकर, शिल्पी, सूतमागध, गणिका आदि सारा परिवार उपस्थित था (म. उ. १. १९६.१५)।

सांख्यिक बलाबल-भारतीय युद्ध में पाण्डवों की सेनासंख्या सात अक्षौहिणी एवं कौरवों की सेनासंख्या ग्यारह अक्षौहिणी थी। कौरव पक्ष की ग्यारह अक्षौहिणी सेना में से एक एक अक्षौहिणी सेना निम्नलिखित दस राजाओं के द्वारा लायी गयी थी—भगदत्त, भूरिश्रवस्, कृतवर्मन्, विंद, जयद्रथ, अनुविंद, सुशर्मन, नील, केकय, एवं कांबोज।

महाभारत में निर्दिष्ट 'अक्षौहिणी,' सैन्यसंख्या दर्शानेवाली एक सामान्य गणनापद्धति न हो कर, वह रथ, हाथी, अश्व, पैदल आदि विभिन्न प्रकार के सैनिकों से बना हुआ एक 'सैनिकी विभाग' था। इस तरह एक अक्षौहिणी सेना में १०९३५० पैदल, ६५६१० अश्वदल, २१८७० गजदल, एवं २१८७० रथों का समावेश होता था। यह सेनाविभाग पत्ती, सेनामुख, गुल्म आदि उपविभागों में विभाजित किया जाता था, जिनमें से हर एक की गणसंख्या निम्नप्रकार रहती थी (सेनागणना पद्धति की तालिका दखिये)।

सेनाप्रमुख एवं सेनापति—पाण्डवों की सात अक्षौहिणी सेना के निम्नलिखित सात सेनाप्रमुख (अधिपति) चुने गये थेः—द्रुपद, विराट, धृष्टद्युम्न, भीम, शिखंडिन्, चेकितान एवं सात्यकि। पाण्डवों का मुख्य सेनापति धृष्टद्युम्न था, जो युद्ध के अठरह दिन सैनापत्य का काम निभाता रहा। पाण्डव सेना का सर्वश्रेष्ठ मार्गदर्शक श्रीकृष्ण ही था।

सेनागणनापद्धति की तालिका

	पत्ती	सेनामुख (= ३ पत्ती)	गुल्म (= ३ सेनामुख)	गण (= ३ गुल्म)	वाहिनी (= ३ गण)	पृतना (= ३ वाहिनी)	चमू (= ३ पृतना)	अनीकिनी (= ३ चमू)	अक्षौहिणी (= १० अनीकिनी)
रथ	१	३	९	२७	८१	२४३	७२९	२१८७	२१८७०
हाथी	१	३	९	२७	८१	२४३	७२९	२१८७	२१८७०
अश्व	३	९	२७	८१	२४३	७२९	२१८७	६५६१	६५६१०
पैदल	५	१५	४५	१३५	४०५	१२१५	३६४५	१०९३५	१०९३५०

(म. आ. २.१५-२३)

पाण्डवों के सेना में से रथी महारथी आदी विभिन्न श्रेणियों के योद्धाओं की विस्तृत जानकारी महाभारत में प्राप्त है (भीष्म देखिये)।

कौरव पक्ष के ग्यारह अक्षौहिणी सेना के निम्नलिखित सेनाप्रमुख चुने गये थेः—कृप, द्रोण, शल्य, कांबोज, कृतवर्मन्, कर्ण, अश्वत्थामन्, भूरिश्रवस्, जयद्रथ, सुदक्षिण एवं

शकुनि (म. उ. १५२.१२८-१२९)। भारतीय युद्ध के अठरह दिनों में कौरवपक्ष के निम्नलिखित सेनापति हुये थे:- पहले १० दिन—भीष्म; ११-१५ दिन-द्रोण; १६-१७ दिन-कर्ण; १८ वें दिन का प्रथमार्ध-शल्य; द्वितायार्ध-दुर्योधन।

युद्ध का प्रारंभ—मार्गशीर्ष शुद्ध त्रयोदशी के दिन भारतीय युद्ध का प्रारंभ हुआ एवं पौष अमावस्या के दिन वह समाप्त हुआ। इस तरह यह युद्ध अठारह दिन अविरत चलता रहा। युद्ध के पहले दिन पाण्डवों का सैन्य उत्तर की ओर आगे बढा, एवं कुरुक्षेत्र की प्रश्चिम में आ कर युद्ध के लिए सिद्ध हुआ। इस पर कौरव सैन्य कुरुक्षेत्र की पश्चिम में प्रविष्ट हुआ, एवं उसी मैदान में भारतीय युद्ध शुरू हुआ।

युद्ध के प्रारंभ में युधिष्ठिर अपना कवच एवं शस्त्र उतार कर पैदल ही कौरव सेना की ओर निकला। इसका अनुकरण करते हुए इसके चारो भाई भी चल पड़े। अपने गुरु भीष्म, द्रोण एवं कृपाचार्य से वंदन कर इसने युद्ध करने की अनुज्ञा माँगी, एवं कहा, 'इस युद्ध में हमें जय प्राप्त हो, ऐसा आशीर्वाद आप दे दिजिए'। गुरुजनों का आशीर्वाद मिलने के बाद, इसने अपने सेनापति को युद्ध प्रारंभ करने की आज्ञा दी (म. भी. ४१.३२-३४)।

प्रारंभ में—प्रथम दिन के युद्ध में इसका शल्य के साथ युद्ध हुआ था। भीष्म के पराक्रम को देखकर इसे बड़ी चिन्ता हुई थी, एवं उसके युद्ध से भयभीत हो कर इसने धनुष्य बाण तक फेंक दिया था (म. भी. ८१.२९)। इसने भीष्म के साथ युद्ध भी किया, किन्तु पराजित रहा। भीष्म का विध्वंसकारी युद्ध देखकर इसने बड़े करुणपूर्ण शब्दों में भीष्मवध के लिए पाण्डवों की सलाह ली थी, तथा कृष्ण से कहा था, 'आप ही भीष्म से पूछे कि, उनकी मृत्यु किस प्रकार हो सकती है (म. भी. १०३.७०-८२)।

भीष्म के बाद द्रोण—दुर्योधन ने भीष्म के बाद द्रोणाचार्य को सेनापति बनाया। द्रोण द्वारा वर माँगने के लिए कहा जाने पर, दुर्योधन ने उससे यह इच्छा प्रकट की थी कि, वह उसके सम्मुख युधिष्ठिर को जिंदा पकड़ लाये। तब द्रोण ने कहा था, 'अर्जुन की अनुपस्थिति में ही यह हो सकता है'। दुर्योधन युधिष्ठिर को जीवित पकड़कर इस लिए लाना चाहता था कि, उसे फिर द्यूत खेलने के लिए मज़बूर करे, और समस्त पाण्डवों को फिर वनवास भेज कर चैन की बन्सी बजाओं।

युधिष्ठिर ने जब द्रोण की प्रतिज्ञा सुनी, इसने तब अर्जुन को अपने पास ही रहने के लिए कहा (म. द्रो १३.७४२)। द्रोणाचार्य द्वारा निर्मित 'गरुडव्यूह' को देख कर यह अत्यधिक भयभीत हुआ था (म. द्रो १९.२१-२४)। अभिमन्यु के मृत्यु के बाद इसने बहुत करुण विलाप किया था, तथा व्यासजी से मृत्यु की उत्पत्ति आदि के विषय में प्रश्न किया था। व्यास के द्वारा अत्यधिक समझाये जाने पर यह शोकरहित हुआ था (म. द्रो. परि. १.८)।

इसने युद्ध में दुर्योधन एवं द्रोणाचार्य को मूर्च्छित कर परास्त किया था (म. द्रो. १३७.४२)। किन्तु इसी युद्ध में कृतवर्मन् ने इसे परास्त किया था, एवं कर्ण से यह घबरा उठा था। अभिमन्यु की भाँति भीमपुत्र घटोत्कच की मृत्यु से भी यह अत्यधिक शोकविव्हल हो उठा था।

पश्चात् द्रोण ने अपने अत्यधिक पराक्रम के बल से इसे विरथ कर दिया, एवं डर कर यह युंद्धभूमि से भाग गया (म. द्रो. ८२.४६)। अन्त में—

'अश्वत्थामा हतो ब्रह्मन्निवर्तस्वाहवादिति'

कह कर यह द्रोण की मृत्यु का कारण बन गया (द्रोण देखिये; म. द्रो. १६४.१०२-१०६)। द्रोणवध के समय इसने 'नरो वा कुञ्जरो वा' कह कर द्रोणाचार्य से मिथ्या भाषण किया, जिस कारण पृथ्वी पर निराधार अवस्था में चलनेवाला इसका रथ भूमि पर चलने लगा (म. द्रो १६४.१०७)।

द्रोणाचार्य के सैनापत्य के काल में कौरव एवं पाण्डवों के सैन्य का अत्यधिक संहार हुआ, जिस कारण उन दोनों का केवल दो दो अक्षौहिणी सैन्य बाकी रहा।

कर्णवध—द्रोण के उपरांत कर्ण सेनापति बना, जिसने इसका पराभव कर इसकी काफ़ी निर्भर्त्सना की (म. क. ४९. ३४-४०)। पराजित अवस्था में, इसका वध न कर कर्ण ने इसे जीवित छोड़ दिया। इस अपमानित एवं घायल अवस्था में लज्जित हो कर यह शिबिर में लौट आया। इतने में इसे ढूँढने के लिए गये कृष्ण एवं अर्जुन भी वापस आये। उन्हे देख कर यह समझा कि, वे कर्ण का वध कर के लौट आ रहे है। अतएव इसने उनका बड़ा स्वागत किया, किन्तु अर्जुन के द्वारा सत्यस्थिति जानने पर, यह अत्यंत शांत प्रकृति का धर्मात्मा क्रोध से

पागल हो उठा, एवं इसने अर्जुन की अत्यंत कटु आलोचना की।

युधिष्ठिर-अर्जुन-संवाद--इस समय युधिष्ठिर एवं अर्जुन के दरम्यान जो संवाद हुआ, वह उन दोनों के व्यक्तित्व पर काफ़ी प्रकाश डालता है।

इसने अर्जुन से कहा, 'बारह साल से कर्ण मेरे जीवन का एक काँटा बन कर रह गया है। एक पिशाच के समान वह दिनरात मेरा पीछा करता है। उसका वध करने की प्रतिज्ञा तुमने द्वैतवन में भी की थी, किन्तु वह अधुरी ही रही। तुम कर्ण का वध करने में यद्यपि असमर्थ हो, तो यहीं अच्छा है कि, तुम्हारा गांडीव धनुष, बाण, एवं रथ यहीं उतार दो'।

अर्जुन ने प्रतिज्ञा की थी कि, जो उसे गांडीव धनुष उतार देने को कहेगा, उसका वह वध करेगा। इसी कारण उसने युधिष्ठिर से कहा, 'युद्ध से एक योजन तक दूर भागनेवाले तुम्हे पराक्रम की बातें छेड़ने का अधिकार नहीं है। यज्ञकर्म एवं स्वाध्याय जैसे ब्राह्मणकर्म में तुम प्रवीण हो। ब्राह्मण का सारा सामर्थ्य मुँह में रहता हैं। ठीक यही तुम्हारी ही स्थिति है। तुम स्वयं पापी हो। तुम्हारे द्यूत खेलने के कारण ही हमारा राज्य चला गया, एवं हम संकट में आ गये। ऐसी स्थिति में मुझे गांडीव धनुष उतार देने को कहनेवाले तुम्हारा मैं यही शिरच्छेद करता हूँ'।

अर्जुन जैसे अपने प्रिय बन्धु से ऐसा अपमानजनक (प्राकृत) भाषण सुन कर, पश्चाताप भरे स्वर में इसने उसे कहा, 'तुम ठीक कह रहें हो। मेरी मूढता, कायरता, पाप एवं व्यसनासक्तता के कारण ही सारे पाण्डव आज संकट में आ गयें है। तुम्हारे कटु वचन मुझसे अभी नहीं सहे जाते हैं। इसी कारण तुम मेरा शिरच्छेद करो, यही अच्छा है। नही तो, मैं इसी समय वन में चला जाता हूँ'।

युधिष्ठिर की यह विकल मनस्थिति देख कर सारे पाण्डव भयभीत हो गये। अर्जुन भी आत्महत्या करने के लिए प्रवृत्त हुआ। अन्त में श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर से आश्वासन दिया, 'आज ही कर्ण का वध किया जाएगा'। इस आश्वासन के अनुसार, अर्जुन ने कर्ण का वध किया (म. क. परि. १. क्र. १८. पंक्ति ४५–५०)।

जिस कर्ण के वधके लिए यह तरस रहा था, वह पाण्डवों का ही एक भाई एवं कुंती का एक पुत्र है, यह कर्ण–वध के पश्चात् ज्ञात होने पर, युधिष्ठिर आत्मग्लानि से तिलमिला उठा। कर्ण एवं कुंती के चेहरे में साम्य है, यह पहले से ही यह जानता था। इस साम्य का रहस्यभेद न करने से बन्धुवध का पातक अपने सर पर आ गया इस विचार से यह अत्यधिक खिन्न हुआ। यही नही, कर्णजन्म का रहस्य छिपानेवाली अपनी प्रिय माता कुन्ती को इसने शाप दिया।

कर्णवध के पश्चात्, शिबिर में सोये हुए पाण्डवपरिवार का अश्वत्थामन् ने अत्यंत क्रूरता के साथ वध किया, जिसमें सभी पाण्डवपुत्र मर गये। । इस समाचार को सुन कर यह अत्यंत दुःखी हुआ था।

बाद में द्रौपदी ने विलाप करते हुए इससे अश्वत्थामा तथा उसके सहकारियों के वध करने की प्रार्थना की। युधिष्ठिर ने कहा कि, वह अरण्य चला गया है। बाद को द्रौपदी द्वारा यह प्रतिज्ञा की गयी कि, अश्वत्थामा के मस्तक की मणि युधिष्ठिर के मस्तक पर वह देखेगी, तभी जीवित रह सकती है। तब, भीम, कृष्ण अर्जुन तथा युधिष्ठिर के द्वारा द्रौपदी का प्रण पूरा किया गया (म. सौ. ९. १६)।

दुर्योधनवध--दुर्योधन एवं भीम के दरम्यान हुये द्वंद्वयुद्ध में भीम ने दुर्योधन की बायी जाँघ फाड़ कर उसे नीचे गिरा दिया, एवं उसी घायल अवस्था में लत्ताप्रहार भी किया। उस समय युधिष्ठिर ने भीम की अत्यंत कटु आलोचना की। इसने कहा, 'यह तुम क्या कर रहें हो? दुर्योधन हमारा रिश्तेदार ही नही, बल्कि एक राजा भी है। उसे घायल अवस्था में लत्ताप्रहार करना अधर्म है'। पश्चात् इसने दुर्योधन के समीप जा कर कहा, 'तुम दुःख मत करना। रणभूमि में मृत्यु आने के कारण, तुम धन्य हो। सारे रिश्तेदार एवं बांधव मृत होने के कारण, हमारा जीवन हीनदीन हो गया है। तुम्हे स्वर्गगति तो जरुर प्राप्त होंगी। किन्तु बांधवों के विरह की नरकयातना सहते सहते हमें यहाँ ही जीना पडेगा'।

बचे हुए वीर—दुर्योधनवध के पश्चात् भारतीय युद्ध की समाप्ति हुयी। कौरव एवं पाण्डवों के अठारह अक्षौहिणी सैन्य में से केवल दस लोग बच सके। उनमें पाण्डवपक्ष में से पाँच पाण्डव, कृष्ण एवं सात्यकि, तथा कौरवपक्ष में से कृप, कृत एवं अश्वत्थामन् थे (म. सौ. ९.४७–४८)। युद्धभूमि से बचें हुए इन लोगो में धृतराष्ट्र पुत्र युयुत्सु का निर्देश भी प्राप्त है, जो युद्ध के प्रारंभ में ही पाण्डवपक्ष में मिला था।

भारतीययुद्ध के मृतकों की संख्या युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र को तीन करोड़ बतायी थी, जो सैनिक एवं उनके अन्य सहाय्यक मिला कर बतायी होगी। युद्धभूमि में लड़नेवाले एक सैनिक के लिए दस सहाय्यक रहते थे (म. स्त्री. २६.९-१०)।

विरक्ति—युद्ध में मृत हुए अपने बांधवों का अशौच तीस दिनों तक माननें के बाद युधिष्ठिर हस्तिनापुर में लौट आया (म. शां. १.२)। युद्ध की विभीषिका को देख कर यह इतना दुःखी था कि, किसी से कुछ भी न कह पाता था, तथा मन ही मन आन्तरिक पीड़ा में सुलग रहा था। अपने मन की पीड़ा को अग्रजों से ही कह कर यह कुछ शान्ति का अनुभव कर सकता था, किन्तु कहे तो किससे? कृष्ण ने इसे युद्ध के लिए प्रेरित ही किया था, तथा उसका ढाँचा भी उसीके द्वारा बनाया गया था। धृतराष्ट्र स्वयं अपने सौ पुत्रों एवं साथियों की पीड़ा से पीड़ित था। व्यास भी दुखी था, कारण उसका भी तो कुल नाश हुआ था। इस प्रकार इसके मन में राज्यग्रहण के संबंध में विरक्ति की भावना उठी, एवं इसने राज्य छोड़ कर वानप्रस्थाश्रम स्वीकारने का निश्चय किया। इस समय, अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव, द्रौपदी आदि ने इसे गृहस्थाश्रम एवं राज्यसंचालन का महत्त्व समझाते हुए इसकी कटु आलोचना की।

युधिष्ठिर-अर्जुन-संवाद—इस समय हुआ युधिष्ठिर-अर्जुनसंवाद अत्यधिक महत्वपूर्ण है। अर्जुन ने इसे क्रुद्ध हो कर कहा, 'राज्य प्राप्त करने के पश्चात्, तुम भिक्षापात्र लेकर वानप्रस्थाश्रम का स्वीकार करोंगे तो लोग तुम्हे हँसेंगे। तुम युद्ध की सारी बाते भूल कर आनेवाले राज्य-वैभव का विचार करो, जिससे तुम जीवन के सारे दुःखों को भूल जाओंगे। किन्तु मैं जानता हूँ कि, तुम्हारे लिए यह असंभव हैं, क्यों कि, सुख के समय भी, जीवन की दुःखी यादगारें तुम्हें आती ही रहती हैं'।

इस पर युधिष्ठिर ने कहा, 'जिसे तुम सुख तथा दुःख कहते हो वह सापेक्ष है। विदेह देश का जनक राजा अपनी राजधानी मिथिला जलने पर भी शान्त रहा, क्यों कि, उसकी आध्यात्मिक संपत्ति अपार थी'। इस पर अर्जुन ने कहा, 'अपना राज्य जला कर वानप्रस्थाश्रम लेनेवाले जनक जैसे मूढ राजा का दृष्टान्त देना यहाँ उचित नही है। प्रजापालन एवं देवता, अतिथि एवं पंचमहाभूतों का पूजन यही राजा का प्रथम कर्तव्य है'। इस पर युधिष्ठिर ने कहा 'तुम केवल अस्त्रविद्या ही जानते हो, धर्म एवं शास्त्रों का उचित अर्थ तुम्हे समझना असंभव है। मैंने वेद, धर्म एवं शास्त्रों का अध्ययन किया है। इसी कारण धर्म का सूक्ष्म स्वरूप केवल मैं ही जानता हूँ। धन एवं राज्य से तप अधिक श्रेष्ठ है, जिससे मनुष्यप्राणि को सद्‌गति प्राप्त होती है'।

अंत में युधिष्ठिर एवं अर्जुन के बीच श्रीव्यास ने मध्यस्थता की। उसने कहा, 'राज्य से सुख प्राप्त होता हो या न हो, उसका स्वीकार करना ही उचित है। आप्तजनों के सहवास की परिणति वियोग में ही होती है। इस कारण उनकी मृत्यु का दुःख करना व्यर्थ है। रही बात धन की, यज्ञ करने में ही धन की सार्थकता है।

राज्याभिषेक—धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों की मृत्यु से हस्तिनापुर के कुरुवंश का राज्य नष्ट हुआ। बाद में कृष्ण ने इसका राज्याभिषेक किया, एवं मार्कंडेय ऋषि के कथनानुसार इससे प्रयागयात्रा करवायी (पद्म. स्व. ४०.४९)। तत्पश्चात् व्यास की आज्ञानुसार इसने तीन अश्वमेध यज्ञों का आयोजन किया (म. आश्व. ९०.१५; भा. १.१२.३४)।

इस यज्ञ में व्यास प्रमुख ऋत्विज था, एवं बक दाल्भ्य, पैल, ब्रह्मा, वामदेव आदि सोलह ऋत्विज थे (म. आश्व. ७१.३)। जैमिनि अश्वमेध में इन सोलह ऋत्विजों के नाम दिये हैं (जै. अ. ६३)। इस यज्ञ के लिए द्रव्य न होने के कारण, इसने वह हिमवत् पर्वत से मरुत्तों से लाया (म. आश्व. ९.१९-२०)। इस यज्ञ की व्यवस्था इसने अपने भाईयों पर निम्न प्रकार से सौंपी थी:— अश्वरक्षण-अर्जुन, राज्यपालन- भीम एवं नकुल; कौटुंबिक व्यवस्था-सहदेव (म. आश्व. ७१.१४-२०)।

इस यज्ञ के समय, इसने पृथ्वी का अपना सारा राज्य व्यास को दान में दिया, जो व्यास ने इसे लौटा कर उसके मूल्य का धन ब्राह्मणों को दान में देने के लिए कहा (म. आश्व. ९१.७-१८१)।

गर्वहरण—अश्वमेध यज्ञ में एक नेवला के द्वारा किये गये युधिष्ठिर के गर्वहरण की चमत्कृतिपूर्ण कथा महाभारत में दी गयी है। अश्वमेध यज्ञ के पश्चात्, एक विचित्र नेवला इसके पास आया, जिसका आधा शरीर किसी ब्राह्मण द्वारा अन्नदान किया जाने पर छोडे गये पानी में लोट लगाने के कारण, स्वर्णमय हो गया था। उसने आ कर युधिष्ठिर से कहा, 'आपके अश्वमेध यज्ञ की प्रशंसा सुन कर अपने आधे बचे अंग को स्वर्णमय बनाने आया था। किन्तु, यहाँ यह शरीर स्वर्णमय न हो सका'। इससे यज्ञकर्ता युधिष्ठिर के मन में उत्पन्न हुआ अभिमान नष्ट

हो गया, तथा नेवले का अर्धांग भी स्वर्णमय हो गया (म. आश्व. ९२–९५; जै. अ. ६६; उञ्छवृत्ति देखिये)।

धृतराष्ट्र का वनगमन—अश्वमेध यज्ञ के पश्चात् धृतराष्ट्र की अनुमति से युधिष्ठिर ने राज्यसंचालन आरंभ किया। पश्चात् धृतराष्ट्र ने अन्न-सत्याग्रह कर के, वन में जाने के लिए इससे अनुमति माँगी। यह अत्यधिक दुःखी हुआ, एवं उसे ही राज्य अर्पित कर इसने स्वयं वन में जाने की इच्छा प्रकट की (म. आश्र. ६.७–९)। पश्चात् व्यास के समझाने पर युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र को वन जाने की अनुमति दे दी (म. आश्र. ८.१)। चलते समय धृतराष्ट्र ने इसे राजनीति का उपदेश दिया (म. आश्र. ९–१२)।

वन में जाते समय धृतराष्ट्र ने अपने पूर्वजों का श्राद्ध करने के लिए हस्तिनापुर राज्य के कोशाध्यक्ष भीम के पास कुछ द्रव्य की याचना की। किन्तु भीम ने उसे देने से साफ इन्कार कर दिया। फिर युधिष्ठिर एवं अर्जुन ने अपने खानगी द्रव्य दे कर उसे बिदा किया (म. आश्र. १७)। बाद को यह धृतराष्ट्र से मिलने के लिए 'शतयूपाश्रम' में भी गया था (म. आश्र. ३१–३२)।

विदुर का निर्याण हिमालय में हुआ, जिस समय यह उसके पास था। विदुर की मृत्यु के पश्चात् उसकी प्राणज्योति युधिष्ठिर के शरीर में प्रविष्ट हुयी, जिस कारण यह अधिक सतेज बना (म. आश्र. ३३.२६)।

महाप्रस्थान—द्वारका में वृष्णि एवं यादव लोग आपस में झगड़ा कर के विनष्ट हुये। तत्पश्चात् हुए कृष्ण-निर्याण की वार्ता सुन कर यह अत्यधिक खिन्न हुआ। अभिमन्यु के ३६ साल के पुत्र परिक्षित् को राज्याभिषेक कर, एवं धृतराष्ट्र को वैश्य स्त्री से उत्पन्न युयुत्सु नामक पुत्र को प्रधानमंत्री बना कर, यह महाप्रस्थान के लिए निकल पड़ा। इस समय इसके पाण्डव बन्धु एवं द्रौपदी भी राज्य छोड़ कर इसके साथ निकल पड़े (भा. १.१५. ३७–४०)।

महाभारत के अनुसार, परिक्षित् का भार उसके गुरु कृपाचार्य पर सौंप कर युधिष्ठिर ने महाप्रस्थान की तैयारी की। परिक्षित् राजा की गृहव्यवस्था इसने उसकी दादी सुभद्रा के उपर सौंप दी, एवं इंद्रप्रस्थ का राज्य श्रीकृष्ण का प्रपौत्र वज्र को दिया, जो यादवसंहार के कारण निराश्रित बन गया था। इसके पूर्व,इसने राजवैभव छोड़ कर वल्कल धारण किये एवं अग्निहोत्र का विसर्जन किया। इस तरह पाँच पांडव, द्रौपदी एवं इसके साथ सहजवश आया हुआ एक कुत्ता भारत प्रदक्षिणा के लिए निकले, एवं पूरब की ओर चल पड़े।

'लौहित्य' नामक सलिलार्णव में अपने धनुष्य बाण विसर्जित कर ये निःशस्त्र हुये। पश्चात् दक्षिणीपश्चिम दिशा में मुड़ कर ये द्वारका नगरी के पास आयें। अन्त में पुनः उत्तर की ओर मुड़ कर हिमालय में प्रविष्ट हुयें। वहाँ इन्होंने वालुकार्णव एवं मेरुपर्वत के दर्शन लिये। पश्चात् इन्होंने स्वर्गारोहण प्रारंभ किया (म. महा. १–२)।

स्वर्गारोहण—स्वर्गारोहण के समय, मार्ग में द्रौपदी, सहदेव, नकुल, अर्जुन एवं भीमसेन ये एक एक कर क्रमशः गिर पड़े। अन्त में युधिष्ठिर एवं श्वानरूपधारी यमधर्म ही बाकी रहे। ये दोनों स्वर्गद्वार पहूँचते ही, स्वयं इंद्र रथ ले कर इसे सदेह स्वर्ग में ले जाने के लिए उपस्थित हुआ। यह रथ में बैठनेवाला ही था कि, कुत्ते ने भी इसके साथ रथ में बैठना चाहा, जिसे इंद्र ने इन्कार कर दिया। इसने कुत्ते के सिवा स्वर्ग में प्रवेश करना अमान्य कर दिया। फिर यमधर्म अपने सही रूप में प्रकट हुआ, एवं इन्द्र इन दोनों को सदेह अवस्था में स्वर्ग ले गया।

मृत्यु—महाभारत के भीष्म, द्रोण, कर्ण, दुर्योधन आदि व्यक्तियों की मृत्यु में जो नाट्य प्रतीत होता हैं, वह युधिष्ठिर की मृत्यु में नहीं है। इसकी मृत्यु में उदात्तता जरुर है, किन्तु आजन्म सत्य एवं नीतितत्त्व के पालन में एकाकी अस्तित्व बितानेवाला युधिष्ठिर अपनी मृत्यु में भी एकाकी रहा। सारे तत्त्वदर्शी एवं ध्येयवादी व्यक्ति अपनी आयु में तथा मृत्यु में एकाकी रहे, यही विधिघटना युधिष्ठिर की मृत्यु में पुनः एकबार प्रतीत होती है।

स्वर्गप्रवेश—स्वर्ग में पहुँचते ही नारद ने इसकी स्तुति की, एवं इन्द्र ने इसकी उत्तम लोक में रहने की व्यवस्था की। किन्तु इसने स्वर्ग में प्रवेश करते ही अपने भाइयों के संबंध में पूछा। फिर यमधर्म ने इसकी सत्वपरीक्षा लेने के लिए, इसके सारे पाण्डव बांधव नर्कलोक में वास कर रहे हैं, ऐसा मायावी दृश्य दिखाया। यह दृश्य देख कर इसने यमधर्म से कहा, 'मैं अकेला स्वर्गसुख का उपभोग लेना नहीं चाहता हूँ। मेरे समस्त बांधव जिस नर्कलोक में वास कर रहे हैं, वही मैं उनके साथ रहना चाहता हूँ (म. स्व. २. १४)।

यमधर्म से भेंट— इस पर यमधर्म ने अपने अंशावतार से उत्पन्न युधिष्ठिर को साक्षात् दर्शन दिया एवं कहा, 'आज तक तीन बार मैंने तुम्हारी सत्त्वपरीक्षा लेनी चाही। किन्तु उन तीनो समय तुमने खुद को एक सत्त्वनिष्ठ क्षत्रिय

साबित किया है। इसी कारण मैं तुमसे अत्यधिक प्रसन्न हूँ' (म. स्व. ५.१९)।

यमधर्म के द्वारा निर्दिष्ट युधिष्ठिर की सत्वपरीक्षा के तीन प्रसंग निम्न है :—(१) **यक्षप्रश्न**, जिस समय यमधर्म ने यक्ष का रूप ले कर युधिष्ठिर के पाण्डव बांधवों में से किसी एक को जीवित करने का आश्वासन दिया था। इस समय युधिष्ठिर ने माद्री से उत्पन्न अपना सौतेला भाई सहदेव को जीवित करने को कहा था।

(२) **स्वर्गारोहण के समय**, यमधर्म ने कुत्ते का रूप धारण कर युधिष्ठिर की परीक्षा लेनी चाहीं। उस अवसर पर कुत्ते को साथ ले कर ही स्वर्ग में प्रवेश करने का निर्धार युधिष्ठिर ने प्रकट किया, एवं कुत्ते के बगैर स्वर्ग में प्रवेश करने से इन्कार कर दिया।

(३) **स्वर्ग में प्रवेश करने के पश्चात्**, इसने अपने भाईयों के साथ नर्क में रहना पसंद किया।

पश्चात् युधिष्ठिर ने स्वर्ग में स्थित मन्दाकिनी नदी में स्नान कर अपने मानवी शरीर का त्याग किया, एवं यह दिव्य लोक में गया (म. स्व. ३.१९)। वहाँ इसकी श्रीकृष्ण, अर्जुन आदि की भेंट हुयी। अन्त में यह यमधर्म के स्वरूप में विलीन हुआ (म. स्व. ३.१९)।

परिवार—युधिष्ठिर को द्रौपदी एवं पौरवी नामक दो पत्नियाँ थी। उन में से द्रौपदी से इसे प्रतिविंध्य एवं पौरवी से देवक नामक पुत्र उत्पन्न हुआ (भा. ९.२२. २७–३०)। महाभारत में इसकी दूसरी पत्नी का नाम देविका, एवं उससे उत्पन्न इसके पुत्र का नाम यौधेय दिया गया है (म. आ. ९०.८३)।

भारतीय युद्ध में इसके दोनों पुत्र मारे गये, जिस कारण इसके पश्चात् अभिमन्यु का उत्तरा से उत्पन्न पुत्र परिक्षित् हस्तिनापुर का राजा बन गया (भा. १.१५–३२)।

परिक्षित् राजा के राज्यारोहण से द्वापर युग समाप्त हो कर, कलियुग प्रारंभ हुआ ऐसा माना जाता है। पुराणों में प्राप्त प्राचीनकालीन राजवंश का इतिहास भी इसी घटना के साथ समाप्त होता है। परिक्षित् राजा के उत्तरकालीन राजवंशों की पुराणों में प्राप्त जानकारी वहाँ भविष्यकालीन कह कर बतायी गयी है (परिक्षित देखिये)।

आयु—युधिष्ठिर की आयु के संबंध में सविस्तृत जानकारी महाभारत कुंभकोणम् संस्करण में प्राप्त है। किन्तु भांडारकर संहिता में उस जानकारी को प्रक्षिप्त माना गया है (म. आ. परि. १. क्र. ६७. पंक्ति ४५–६५)।

इस जानकारी के अनुसार, सोलहवें वर्ष में यह सर्वप्रथम हस्तिनापुर आया। वहाँ तेरह वर्ष बिताने के बाद छः महीने तक जतुगृह में, छः महीने एकचक्रा में, एक वर्ष द्रुपद के घर में, पाँच वर्ष दुर्योधनादि के साथ तथा तेइस वर्ष इन्द्रप्रस्थ में बितायें। बाद में कौरवों द्वारा द्यूतक्रीड़ा में हार जाने के कारण बारह वर्ष बनवास तथा एक वर्ष अज्ञातवास में रहा। अज्ञातवास के उपरांत युद्ध हुआ, तथा युद्ध के बाद इसने छत्तीस वर्षों तक राज्य किया। इस प्रकार इसने अपने जीवन के एक सौ आठ वर्ष बितायें। इसके छोटे भाई इससे क्रमशः एक एक वर्ष से छोटे थे। कई ग्रंथों के अनुसार इसने नौ वर्षों तक राज्य किया था (गर्ग. सं. १०.६०.९)। किन्तु यह जानकारी गलत प्रतीत होती है।

कालनिर्णय—पुराणों में प्राप्त परंपरा के अनुसार, भारतीय युद्ध का काल ई. पू. ३१०२ माना गया है। युधिष्ठिर के नाम से 'युधिष्ठिर शक' अथवा 'कलि अब्द' नामक एक शक भी अस्तित्व में था, जिसका प्रारंभकाल पुराणों में ई. पू. ३१०२ बताया गया है। किन्तु शिलालेख ताम्रपटादि कौनसे भी ऐतिहासिक साहित्य में 'युधिष्ठिर शक' का निर्देश प्राप्त नहीं है। इस कारण आधुनिक योरिपियन विद्वान् 'युधिष्ठिर शक' की धारणा निर्मूल एवं निराधार बताते हैं।

आधुनिक विद्वानों के अनुसार भारतीय युद्ध का काल इ. पू. १४०० माना जाता है (हिस्ट्री ॲन्ड कल्चर ऑफ इंडियन पीपल १. ३०४)। यद्यपि वेद एवं ब्राह्मण ग्रंथों में भारतीय युद्ध का निर्देश प्राप्त नही है, फिर भी सूत्र ग्रंथों में इस युद्ध का निर्देश प्राप्त है (आश्व. गृ. ३. ४.४; सां. श्रौ. १५.१६)। पाणिनि के काल में भारतीय युद्ध में भाग लेनेवाले कृष्ण-अर्जुनादि व्यक्तियों की देवता मान कर पूजा होने लगी थी।

तिथिनिर्णय—महाभारत में प्राप्त तिथिवर्णनों से प्रतीत होता है कि, उस समय चान्द्रमास का उपयोग किया जाता था। पाण्डवों ने अपना वनवास भी चान्द्रवर्ष के अनुसार ही बिताया था (म. वि. ४२.३–६; ४७)।

युधिष्ठिर के जीवन में से कई घटनाओं का तिथिवर्णन महाभारत में प्राप्त है, जो निम्न प्रकार है :–

युधिष्ठिर का जन्म—अश्विन शुक्ल ५।
कौरवों से द्यूत—अश्विन कृष्ण ८।
वनवास का प्रारंभ—कार्तिक शुक्ल ५।
कौरवों की घोषयात्रा—ज्येष्ठ कृष्ण ८।

अज्ञातवास की समाप्ति—ज्येष्ठ कृष्ण ८।
अभिमन्यु एवं उत्तरा का विवाह—ज्येष्ठ कृष्ण ११।
भारतीय युद्ध का प्रारंभ—मार्गशीर्ष शुक्ल १३।
अभिमन्यु की मृत्यु—पौष कृष्ण ११।
भारतीय युद्ध की समाप्ति—पौष अमावस्या।
युधिष्ठिर का हस्तिनापुर प्रवेश—माघ शुक्ल १।
अश्वमेध यज्ञ का प्रारंभ—चैत्र शुक्ल १५।

युध्यामाधि—एक राजा, जो दाशराज्ञ युद्ध में सुदास के द्वारा मारा गया था (ऋ. ७.१८.२०)।

युयुत्सु—(सो. कुरु.) धृतराष्ट्र का वैश्य स्त्री से उत्पन्न पुत्र (म. आ. ५७.९९. ५२८ * पंक्ति. ४; १७७. २)। क्षत्रिय पिता को वैश्य स्त्री से उत्पन्न होने के कारण इसे 'करण' भी कहते थे। महाभारत में 'करण' एक मिश्र जाति का नाम बताया गया है।

धृतराष्ट्र का पुत्र हो कर भी, कौरवों का पाण्डवों के साथ का दुर्व्यवहार इसे पसंद न था, जिस कारण इसकी सद्भावना हमेशा पाण्डवों के ओर ही थी। दुर्योधन की प्रेरणा से भीमसेन को विषयुक्त अन्न खिलाया जाने की सूचना, इसने पहले ही उसे दी थी (म. आ. ११९. ४०)।

भारतीय युद्ध में यह प्रथम कौरवों के पक्ष में शामिल हुआ था (म. भी. ४१. ९५)। किन्तु बाद में यह पाण्डवों के पक्ष में शामिल हुआ (म. द्रो. २२.२७)। यह योद्धाओं में श्रेष्ठ, उत्तम धनुर्धर, शूर एवं बलवान् था। इसके रथ के अश्व शक्तिशाली एवं पृथुल थे (म. द्रो. २२.२७)। भारतीय युद्ध में इसका निम्नलिखित योद्धाओं से युद्ध हुआ था:—सुबाहु (म. द्रो. २४.१४), भगदत्त (म. द्रो. २५.४८-५१), उलूक (म. क. १८.१-१०);

भारतीय युद्ध से बचे हुये लोगों में से यह एक था। युद्ध के पश्चात्, युधिष्ठिर के द्वारा धृतराष्ट्र की सेवा में इसे नियुक्त किया गया था (म. शां. १४१.१६)। अश्वमेध यज्ञ के पूर्व पाण्डव जब धृतराष्ट्र से मिलने वन गये थे, एवं मरुत्त का धन लाने हिमालय गये थे, उन दोनों समय हस्तिनापुर की रक्षा का भार इसी पर सौंपा गया था (म. आश्र. ३०.१५; आश्व. ६२.२३)।

पाण्डवों के महाप्रस्थान के समय, परिक्षित् राजा की एवं कुरु राज्य की रक्षा का भार भी युधिष्ठिर ने इसी पर निर्भर किया था (म. महा १.६-७)। इससे प्रतीत होता है कि, धृतराष्ट्र का पुत्र हो कर भी युधिष्ठिर इससे काफी प्रेम एवं विश्वास करता था।

२. धृतराष्ट्र के शतपुत्रों में से एक।

युयुध—(सू. निमि.) विदेह देश का एक राजा, जो वस्वनन्त राजा का पुत्र था (भा. ९.१३.२५)।

युयुधान—(सो. वृष्णि.) सुविख्यात यादव राजा 'सात्यकि' का नामान्तर (सात्यकि देखिये)।

युवन् कौशिक—एक आचार्य, जिसके 'शांत्युदक' यज्ञ के संबंधित मतों के उद्धरण प्राप्त है (कौ. सू. ९.११)।

युवनस्—लेख देवों में से एक।

युवनाश्व—(सू. इ.) एक इक्ष्वाकुवंशीय राजा, जो युवनाश्व (प्रथम) नाम से सुविख्यात है। भागवत के अनुसार यह चंद्रराजा का, विष्णु के अनुसार आर्द्र का, मत्स्य के अनुसार इन्दु का, एवं वायु के अनुसार आंध्र राजा का पुत्र था। इसके पुत्र का नाम श्रावस्त था।

२ (सू. इ.) इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न एक सुविख्यात नरेश, जो युवनाश्व (द्वितीय) नाम से सुविख्यात हैं। महाभारत में इसे सुद्युम्न राजा का पुत्र कहा गया है, जिस कारण इसे सौद्युम्नि नामान्तर भी प्राप्त था। विष्णु एवं वायु के अनुसार यह प्रसेनजित् राजा का, मत्स्य के अनुसार रणाश्व का एवं भागवत के अनुसार सेनजित् का पुत्र था।

इसकी सौ पत्नियाँ थी, जिनमें से गौरी इसकी पटरानी थी। बहुत वर्षों तक इसे पुत्र न था। इसलिए पुत्रप्राप्ति के लिए भृगु ऋषि को अध्वर्यु बना कर इसने एक यज्ञ का आयोजन किया। यज्ञसमारोह की रात्रि में अत्यधिक प्यास होने के कारण, इसने भृगुऋषि के द्वारा इसकी पत्नियों के लिए सिद्ध किया गया जल गलती से प्राशन किया। इसी जल के कारण, इसमें गर्भस्थापना हो कर इसकी बायी कुक्षी से 'मांधातृ' नामक सुविख्यात पुत्र का जन्म हुआ (म. व. १९३.३; भा. ९.६.२५-३२; मांधातृ देखिये)।

इसकी गौरी नामक पत्नी पौरवराजा मतिनार की कन्या थी। वायु में इसके द्वारा गौरी को शाप दिये जाने की एक कथा प्राप्त है, जिस कारण वह बाहुदा नामक नदी बन गयी (वायु. ८८.६६; ब्रह्मांड. ३.६३.६७; ब्रह्म. ७. ९१; ह. वं १. १२. ५)।

इसकी एक कन्या का नाम कावेरी था, जो गंगा नदी का ही मानवी रूप थी (ह. वं. १.२७.९)। अपनी इस कन्या को इसने नदी बनने का शाप दिया, जो आज ही नर्मदा नदी की सहाय्यक नदी के नातें विद्यमान है (मत्स्य. १८९. २-६)।

अपने पूर्ववर्ती रैवत नामक राजा से इसे एक दिव्य खड्ग की प्राप्ति हुयी थी, जो इसने अपने वंशज रघु

राजा को प्रदान किया था (म. शां. १६०.७६)। यह एक सुविख्यात दानी राजा था, जिसने अपनी सारी पत्नियाँ एवं राज्य ब्राह्मणों को दान में दिया था (म. शां. २१६. २५)।

३. (सू. इ.) एक इक्ष्वाकुवंशीय राजा, जो युवनाश्व (तृतीय) नाम से सुविख्यात था। यह मांधातृपुत्र अंबरीष राजा का पुत्र था। मांधातृ एवं इसके वंशज क्षत्रिय ब्राह्मण कहलाते थे, जिस कारण इसे भी यही उपाधि प्राप्त थी। यह एवं इसका पुत्र हरित, अंगिरस ब्राह्मण कुल में प्रविष्ट हुयें थे। एक वैदिक सूक्तद्रष्टा के नाते से इसका उल्लेख प्राप्त है (ऋ. १०.१३४)। इसे अंगिरस कुल का एक मंत्रकार भी कहा गया है। इसके पितामह मांधातृ ने एक प्रवर के नाते इसका स्वीकार किया था (भा. ९.७.१)।

४. (स्वा. प्रिय.) एक राजा, जो भागवत के अनुसार पृथु राजा का पुत्र था।

५. शूलिन् नामक शिवावतार का एक शिष्य।

यूथग—चाक्षुष मन्वन्तर का देवगण।

यूथप—धूम्रपराशरकुलोत्पन्न एक ऋषि।

यूपकेतु—इक्ष्वाकुवंशीय शत्रुघातिन् राजा का नामान्तर (शत्रुघातिन् देखिये)।

२. कुरुवंशीय भूरिश्रवस् राजा का नामान्तर (म. द्रो. २४.५३)।

यूपध्वज--भूरिश्रवस् राजा का नामान्तर (म. स्त्री. २४.५)

यूपाक्ष--रावण का एक सेनापति, जो हनुमत् के द्वारा मारा गया था (वा. रा. सुं, ४६.३२)।

२. एक राक्षस, जो रामरावण युद्ध में मैंद नामक वानर के द्वारा मारा गया (वा. रा. यु. ७६.३४)

योग—एक ऋषि, जो धर्म एवं क्रिया के पुत्रों में से एक था (भा. ४.१.५१)। यह तपस्वी, जितेंद्रिय एवं त्रैलोक्य में सुविख्यात था (म. अनु. १५०.४५)।

योगदायन—कश्यपकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

योगवती—मेना की तृतीय कन्या, जो जैगीषव्य ऋषि की पत्नी थी (पद्म. सृ. ९)।

योगसूनु—(सो. पूरु.) पूरुवंशीय युगदत्त राजा का नामान्तर (युगदत्त देखिये।

योगीश—जैगीषव्य नामक शिवावतार का एक शिष्य।

योगेश्वर--शिव का प्रथम अवतार, जो वैवस्वत मनु के रूप में इस पृथ्वी पर अवतीर्ण हुआ था। यह वराह कल्पान्तर्गत वैवस्वत मन्वन्तर में, द्वापर युग शुरू होनें के पहले अवतीर्ण हुआ था।

२. विष्णु का एक अवतार, जो देवसावर्णि मन्वन्तर में बृहतीपुत्र देवहोत्र के रूप में अवतीर्ण हुआ था (भा. ८. १३.३२)।

३. रौच्य मन्वन्तर का एक देवावतार।

४. एक देवता का समूह, जो कलियुग के श्वेतकली नामक प्रथम खण्ड में उत्पन्न हुआ था। इसमें निम्नलिखित देवता सम्मिलित थे :—१. रुद्र, २. सुतार, ३. तारण, ४. सुहोत्र, ५. कंकण, ६. लोक, ७. जैगीषव्य, ८. दधिवाहन, ९. ऋषभ, १०. उग्र, ११. अत्रि, १२. गौतम, १३. वेदशीर्ण, १४. गोकर्ण आदि (स्कंद. १.२.४०)।

५. एक सुविख्यात योगीसमूह, जो भागवत धर्म के सर्वश्रेष्ठ ज्ञाता माने जाते हैं। ये ऋषभ ऋषि के पुत्र थे, एवं नग्न अवस्था में सर्वत्र घूमते थे। इस समूह में निम्नलिखित योगी शामिल थे :— कवि, हरि, अंतरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, अविर्होत्र, द्रुमिल, चमस एवं करभाजन।

इस योगीसमूह नें मिथिलानरेश निमि के यज्ञ में भाग ले कर, उसे भागवतधर्म का उपदेश किया था (भा. ११.२-५)।

योजनगंधा--व्यासमाता सत्यवती का नामान्तर (सत्यवती देखिये)।

यौगंधरि—साल्व लोगों का एक नामान्तर (मंत्रपाठ २.११-१२)। युगंधर के वंशज होने से इन्हे यह नाम प्राप्त हुआ होगा।

यौधयान—कश्यपकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

यौधेय--(सो. कुरु.) युधिष्ठिर का एक पुत्र, जो उसे शैब्य गोवासन राजा की कन्या देविका से उत्पन्न हुआ था (म. आ. ९०.८३)।

२. (सो. कुरु.) एक राजा, जो मत्स्य के अनुसार प्रतिविंध्य राजा का पुत्र था।

३. एक जातिविशेष, जो युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भेंट ले कर उपस्थित हुयी थी (म. स. ५२. १४)।

यौन—यवन जाति का नामान्तर (यवन देखिये)।

यौयुधान अथवा **यौयुधानि**—यादव राजा सात्यकि का एक पुत्र, जो यादवों के हत्याकांड से बचे हुये वीरों में से एक था। युधिष्ठिर ने इसे सरस्वती नदी के तट पर स्थित इन्द्रप्रस्थ का राज्य प्रदान किया था (म. मौ. ८. ६९)। महाभारत के कई संस्करणों में इसकी माता का नाम सरस्वती बताया गया है, जो अयोग्य प्रतीत होता है।

यौवनाश्व--युवनाश्व राजा के पुत्र मांधातृ का पैतृक नाम (मांधातृ देखिये)।

२. भद्रावती नगरी के श्वेतपर्ण राजा का पैतृक नाम (श्वेतपर्ण यौवनाश्व देखिये)।

३. इक्ष्वाकुवंशीय युवनाश्व (तृतीय) राजा का नामान्तर (युवनाश्व ३. देखिये)।

यौवनाश्वि--मांधातृ राजा का नामान्तर।

र

रक्त--एक असुर, जो महिषासुर का पुत्र था। यह स्वायंभुव मन्वन्तर का सुविख्यात असुर हिरण्याक्ष के समान पराक्रमी था। इसे बल एवं अतिबल नामक दो पुत्र थे।

इसकी सेना अत्यंत प्रचंड थी, जिसके बल से इसने इन्द्र को भी परास्त किया था। इसके धूम्राक्ष आदि तैंतीस सेनापति थे, जो प्रत्येकी एक हजार अक्षौहिणी सेना के अधिपति थे (स्कंद. ७.१.११९)।

रक्तकर्णी--एक राक्षसी, जो रक्षस् एवं ब्रह्मधना की कन्या थी।

रक्तबीज--एक असुर, जो शुंभ एवं निशुंभ के पक्ष में शामिल था। इसे रुद्र का वरदान था कि, जब भी यह घायल हो कर इसके खून की बूँदें भूमि पर गिरेंगी, उनसे इसके सादृश उतने ही राक्षस निर्माण होंगे। रुद्र के इस वर के कारण, यह अत्यंत उन्मत्त बन गया था।

एक बार यह शुंभ-निशुंभ के पक्ष में चामुंडा देवी से युद्ध करने गया। इस युद्ध में मध्यस्थता करते समय, इसने बड़ी उद्दण्डता से देवी से कहा, 'तुम शुंभ-निशुंभ की पत्नी हो जाओ, नही तो इस युद्ध में तुम्हारा पराजय अटल है'। फिर देवी ने अत्यंत भयंकर रूप धारण कर इसका सारा खून भूमि पर एक ही बूँद छिड़कने का मौका न देते हुये प्राशन किया। इस तरह देवी ने इसका एवं इससे उत्पन्न राक्षसों का संपूर्ण विनाश किया (दे. भा. ५.२७-२९; मार्क. ८५; शिव. उमा. ४७; देवी-चामुंडा देखिये)।

रक्तांग—धृतराष्ट्रकुलोत्पन्न एक नाग, जो जनमेजय के सर्पसत्र में दग्ध हुआ था (म. आ. ५२.१६)।

रक्ष--एक व्यास (व्यास देखिये)।

रक्षस्—एक राक्षस, जो कश्यप एवं खशा का पुत्र था। इसका जन्म प्रातःकाल के समय हुआ था। इसकी पत्नी का नाम ब्रह्मधना था, जिससे इसे नौ पुत्र एवं चार कन्याएँ उत्पन्न हुयीं थी (ब्रह्मधना देखिये)।

इसका सविस्तृत स्वरूपवर्णन ब्रह्मांड में निम्न प्रकार प्राप्त है :-यह तीन पैरोंवाला, तीन हाथोंवाला, तीन सिरवाला, काली आँखेवाला, खड़े बालवाला, एवं पीली मूँछेवाला था। इसका शरीर शक्तिशाली किंतु कद में छोटा था। इसके स्कंध विशाल थे, किन्तु उदर अत्यंत कृश था। यह प्रबाहु, जिह्वास्य, शंकुकर्ण, पिंगलोद्वृत्तनयन, जटिल, महोरस्क, पृथुघोण, अस्थूल एवं लंबमेढ्राण्डपिंडक था। यह अत्यंत विरूप था, जिसका मुँह कानों तक फटा हुआ था, एवं नाक फैली हुयी थी। इसे केवल आठ ही दाँत थे। कौनसी भी शीला का यह मुष्टिप्रहार से चकनाचूर कर देता था, जिस कारण इसे 'शीलासंहनन' उपाधि प्राप्त हुयी थी (ब्रह्मांड. ३.७.४७)।

२. एक मानव जातिविशेष, जो वैदिक साहित्य में प्रायः सर्वत्र मनुष्यजाति के शत्रुओं, पार्थिव दैत्यों, एवं राक्षसों के लिए प्रयुक्त किया गया है।

वैदिक साहित्य में असुरों, राक्षसों एवं पिशाचों को क्रमशः देवों, मनुष्यों एवं पितरों का विरोधी कहा गया है (तै. सं. २.४.१)। इस कारण, जहाँ वृत्र, पिप्रु, शंबर आदि इंद्र के शत्रुओं को असुर कहा गया है, वहाँ मनुष्य-जाति के यज्ञों का विनाश करनेवाले यातु एवं यातुधान राक्षसों को रक्षस् कहा गया है। वैदिक साहित्य में दैत्य, दानव एवं असुर शब्द समानार्थी रूप में प्रयुक्त किये गये है।

पाणिनि के अष्टाध्यायी में असुर, रक्षस् एवं पिशाच तीन स्वतंत्र मानव जातियाँ मानी गयी है, जिनके 'आयुध-जीवीसंघों' का निर्देश वहाँ स्वतंत्र रूप से किया गया है।

पौराणिक साहित्य एवं महाभारत, रामायण में रक्षस्, असुर, दैत्य दानव ये सारे शब्द समानार्थी मान कर प्रयुक्त किये गये है; जिससे प्रतीत होता है कि, उस समय मनुष्य एवं देवों के शत्रुओं के लिए ये सारे नाम उलझे हुए रूप में प्रयुक्त हो जाने लगे थे। उपनिषदों में भी मानवी देह को आत्मा माननेवाले दुष्टात्माओं को असुर अथवा रक्षस् कहा गया है।

ऋग्वेद में पचास से अधिक बार रक्षसों का निर्देश प्राप्त है, जहाँ प्रायः सर्वत्र किसी देवता को इनका विनाश करने के लिए आवाहन किया गया है, अथवा रक्षसों के संहारक के रूप में देवताओं की स्तुति की गयी है।

रक्षसों का वर्णन करनेवाले ऋग्वेद के दो सूक्तों में, इन्हें यातु (ऐन्द्रजालिक) नामान्तर प्रदान किया गया है। (ऋ. ७.१०४.१०;८७)। यजुर्वेद में 'यतः' शब्द का प्रयोग एक दुष्ट जाति के रूप में किया गया है, एवं इन्हें रक्षसों की उपजाति कहा गया है।

स्वरूपवर्णन--अथर्ववेद में रक्षसों का अत्यंत विस्तृत स्वरूपवर्णन प्राप्त है, जहाँ उन्हे प्रायः मानवीय रूप हो कर भी, उनमें कोई न कोई दानवी विरूपता होने का वर्णन प्राप्त है। इन्हें तीन सर, दो मुख, रीछों जैसी ग्रीवा, चार नेत्र, पाँच पैर रहते थे, इनके पैर पीछे की ओर मुड़े हुये एवं उँगलीविहीन रहते थे। इनके हाथों पर सिंग रहते थे (अ. वे. ८.६)। इनका वर्ण नीला, पीला अथवा हरा रहता था (अ. वे. १९.२२)। इन्हें मनुष्यों जैसी पत्नि, पुत्र आदि परिवार भी रहता था (अ. वे. ५.२२)।

नानाविध रूप--ये लोग कुत्ता, गृध्र, उलूक, बंदर आदि पशुपक्षियों के वेशान्तर में (ऐंद्रजालिक विद्या में) अत्यंत प्रवीण थे (अ. वे.७.१०४)। भाई, पति अथवा प्रेमी का वेश ले कर ये लोग स्त्रियों के पास जाते थे, एवं उनकी संतानों को नष्ट कर देते थे (अ. वे. १०.१६२)।

आहार--ये लोग मनुष्यों एवं अश्वों का माँस भक्षण करते थे एवं गायों का दूध पिते थे (ऋ. १०.८७)। माँस एवं रक्त की अपनी क्षुधा तृप्त करने के लिए, ये लोग प्रायः मनुष्य के शरीर में प्रवेश कर उन पर आक्रमण करते थे। मनुष्यों के शरीर में इनका प्रवेश (आ विश) रोकने के लिए ऋग्वेद में अग्नि का आवाहन किया गया है।

मनुष्यों को पीड़ा—ये लोग प्रायः भोजन के समय मुख से मनुष्यों के शरीर में प्रवेश करते थे, एवं तत्पश्चात् उनके माँस को विदीर्ण कर उन्हे व्याधी-ग्रस्त कर देते थे। (अ. वे. ५.२९)। ये मनुष्यों की वाचाशक्ति नष्ट कर देते थे, एवं उनमें अनेक विकृतियाँ निर्माण कर देते थे।

विचरण—संध्यासमय अथवा रात्रि के समय ये लोग विचरण करते थे। उस समय, ये लोग नर्तन करते हुए, गद्धों की भाँति चिल्लाते हुए, अथवा खोपड़ी की अस्थि से जलपान करते हुए नज़र आते थे (अ. वे. ८.६)। इनके विचरण का समय अमावास्या की रात्रि में रहता था। पूर्व दिशा में प्रकाशित होनेवाले सूर्य से ये डरते थे (अ. वे. १.१६; २.६)।

ये लोग दिव्य यज्ञों में विघ्न उत्पन्न कर देते थे, एवं हवि को इधर उधर फेंक देते थे (ऋ. ७.१०४)। ये पूर्वजों की आत्माओं का रूप धारण कर पितृयज्ञ में भी बाधा उत्पन्न करते थे (अ. वे. १८.२)।

अग्नि से विरोध—अंधःकार को भगानेवाला एवं यज्ञ का अधिपति अग्नि रक्षसों का सर्वश्रेष्ठ संहारक माना गया है। वह इन्हें भस्म करने का, भगाने का एवं नष्ट करने का काम करता है (ऋ. १०.८७)। इसी कारण अग्नि को 'रक्षोहन्' (रक्षसों का नाश करनेवाला) कहा गया है।

ये केवल अपनी इच्छा से नही, किन्तु अभिचारियों के द्वारा बहकाने से मनुष्यजाति को दुःख पहुँचाते है। इसी कारण रक्षसों को बहकानेवाले अभिचारियों को ऋग्वेद में 'रक्षोयुज्' (रक्षसों को कार्यप्रवण करनेवाला) कहा गया है (ऋ. ६.६२)। अथर्ववेद में अन्यत्र रक्षसों की प्रार्थना की गयी है कि, वे उन्हीं को भक्षण करे जिन्हों ने इन्हे भेजा है (अ. वे. २.२४)।

व्युत्पत्ति—भाषाशास्त्रीय दृष्टि से रक्षस् शब्द 'रक्ष्' (क्षति पहुँचाना) धातु से उत्पन्न माना जाता है। किन्तु कई अभ्यासकों के अनुसार, यहाँ रक्ष् धातु का अर्थ रक्षित करना लेना चाहिये, एवं 'रक्षस्' शब्द की व्युत्पत्ति 'वह, जिससे रक्षा करना चाहिये' माननी चाहिये। बर्गेन के अनुसार, ये लोग किसी दिव्य संपत्ति के 'रक्षक'(लोभी) थे, जिस कारण इन्हें रक्षस् नाम प्राप्त हुआ था।

रक्षस् कल्पना का विकास—दैनिक जीवन में मनुष्य-जाति पर उपकार करनेवाले आधिभौतिक शक्ति को प्राचीन साहित्य में देव नाम दिया गया। उसी तरह मनुष्यजाति को घिरा कर उन्हें क्षति पहूँचानेवाले दुष्टात्माओं की कल्पना विकसित हो गयी, जिसका ही विभिन्न रूप असुर, रक्षस्, पिशाच आदि में प्रतीत होता है। इस तरह इन सारी जातियों को मनुष्यों को त्रस्त करनेवाले दुष्टात्माओं का वैयक्तीकृत रूप कहा जा सकता है।

इस कल्पना का प्रारंभिक रूप इंद्र एवं वृत्रासुर के युद्ध में प्रतीत होता है। बाद में वही कल्पना क्रमशः देवों एवं असुरों के दो परस्परविरोधी एवं संघर्षरत दलों के रूप में विकसित हुयी।

असुरों का वैयक्तीकरण--वैदिक साहित्य में रक्षस् एवं पिशाचों की अपेक्षा, असुरों का वैयक्तीकरण अधिक प्रभावशाली रूप में आविष्कृत किया गया है, जहाँ देवों से विरोध करने वाले निम्नलिखित असुरों का निर्देश स्पष्ट रूप से प्राप्त हैः—अनर्शनि (ऋ. ८.३२); अर्बुद (ऋ. १०.६७); इलीबिश (ऋ. १.१.३३); उरण (ऋ. २. १४) चुमुरि (ऋ. ६.२६); त्वष्ट (ऋ. १०.७६); दमीक (ऋ.२.१४); धुनि (२.१५); नमुचि (ऋ. २. १४.५); पिप्रु (ऋ. १०.१३८); रुधिक्रा (ऋ. २.१४.५); बल (ऋ. १०.६७); वर्चिन् (ऋ. ७.९९); विश्वरूप (ऋ. १०.८); वृत्र (ऋ ८.७८); शुष्ण (ऋ. ४.१६); श्रुबिंद (ऋ. ८.३२); स्वर्भानु (ऋ. ५.४०)। मैत्रायणि संहिता में कुसितायी नामक एक राक्षसी का निर्देश प्राप्त है, जिसे कुसित की पत्नी कहा गया है (मै. सं. ३.२. ६)।

ऋग्वेद में—स्वयं देवता हो कर भी, जिनमें मायावी अथवा गुह्यशक्ति हों, ऐसे देवों को भी ऋग्वेद में 'असुर' कहा गया है। इससे प्रतीत होता है कि, असुरों की दुष्टता की कल्पना उत्तर ऋग्वेदकालीन है। ऋग्वेदरचना के प्रारंभिक काल में गुह्य शक्ति धारण करनेवाले सभी देवों को 'असुर' उपाधि प्रदान की जाती थी। जेंद अवेस्ता में भी असुरों का निर्देश, 'अहुर' नाम से किया गया है। ऋग्वेद एवं अवेस्ता में असुर (अहुर) शब्द, कई जगह ऐसी सर्वोच्च देवताओं के लिए प्रयुक्त किया गया है, जो परमप्रतापी माने गये हैं। झरतुष्ट्र धर्म का आद्य संस्थापक अहुर मझ्द स्वयं एक असुर ही था।

इरान में असुरपूजा—कई अभ्यासकों के अनुसार, वैदिक आर्य प्राचीन पंजाब देश में आये, उस समय उनमें 'सुर' एवं 'असुर' दोनों देवों की पूजा पद्धति शुरु थी। कालोपरान्त वैदिक आर्यों की दो शाखाएँ उत्पन्न हुयी, जिनमें से असुर देवों की उपासना करनेवाले वैदिक आर्य मध्य एशिया में स्थित इरान में चले गये। दूसरी शाखा भारत में रह गयी, जिसमें सुर देवों की पूजा ज़ारी रही। इसी कारण उत्तरकालीन भारतीय वैदिक साहित्य में 'असुर' देव निंद्य एवं गर्हणीय माने जाने लगे, एवं उन्हें देवताविरोधी मान कर उनका चरित्रचित्रण उत्तरकालीन वैदिक साहित्य में किया गया। भारतीय वैदिक आर्यों में सुर देवों की पूजा प्रस्थापित होने के पूर्वकाल में प्रायः सभी वैदिक देवताओं को 'असुर' कहा गया है, जिनके नाम निम्नलिखित है :—अग्नि (ऋ. ३.३.४); इन्द्र (ऋ. १.१७४.१); त्वष्ट्र (ऋ. १.११०.३); पर्जन्य (ऋ. ५.८३.६); पूषन् (ऋ. ५.५१.११); मरुत् (ऋ. १. ६४.२)।

उपनिषदों में--छांदोग्य उपनिषद में विरोचन दैत्य की कथा प्राप्त है, जिसमें देव एवं असुरों के जीवन एवं आत्मज्ञानविषयक तत्त्वज्ञान का विभेद अत्यंत सुंदर ढंग से दिया गया है। उस कथा के अनुसार, प्रजापति के मिथ्याकथन को सही मान कर, विरोचन दैत्य आँखों में, आइने में, एवं पानी में दिखनेवाले स्वयं के परछाई को ही आत्मा समझ बैठा। इस तरह छांदोग्य उपनिषद के अनुसार, मानवी देह का अथवा उसकी परछाई को आत्मा समझनेवाले तामस लोग असुर कहलाते हैं। आगे चल कर, इन्ही असुर लोगों की परंपरा देहबुद्धि को आत्मा मानने की भूल करनेवाले चार्वाक आदि तत्वज्ञों ने चलायीं (छां. उ. ८.७; विरोचन देखिये)।

अष्टाध्यायी में—पाणिनि के अष्टाध्यायी में रक्षस्, असुर आदि लोगों का अलग अलग निर्देश प्राप्त है। वहाँ निम्नलिखित असुरों का निर्देश देवों के शत्रु के नाते से किया गया है :—दिति, जो दैत्यों की माता थी (पा. सू. ४.१.८५); कद्रू, जो सर्पों की माता थी (पा. सू. ४.१.७१)। इनके अतिरिक्त निम्नलिखित असुर जातियों का भी निर्देश अष्टाध्यायी में प्राप्त है :—असुर (पा. सू. ४.४.१२३); रक्षस् (पा. सू. ४.४.१२१); यातु (पा. सू. ४.४.१२१)। इसी ग्रंथ में 'आसुरी माया' का निर्देश भी प्राप्त है, जिसका प्रयोग असुर विद्या के लिए होता था (पा. सू. ४.४. १२३)।

अष्टाध्यायी में असुर, पिशाच एवं रक्षस् इन तीनों जातियों का निर्देश 'आयुधजीवी' संघों में किया गया है, जिनकी जानकारी निम्नप्रकार है :—

(१) **असुर**—पर्शुसंत्र की भाँति असुर लोग भी मध्य एशिया में रहते थे, जिनका निवासस्थान आधुनिक असिरिया में था। ये लोग वैदिक आर्यों के पूर्वकाल में भारतवर्ष में आये थे, एवं सिंधु-घाटी में स्थित सिंधु सभ्यता के जनक संभवतः यही थे। बहिस्तून के शिलालेख में इनका निर्देश 'अथुरा' एवं 'अश्शुर' नाम से किया गया है। अष्टाध्यायी में पर्शु आदि आयुधजीवी गण में

इन्हें समाविष्ट किया गया हैं (पा. सू. ५.३.११७; पर्श्वादिगण)। भांडारकरजी के अनुसार, शतपथ ब्राह्मण में असुरों के मगध (दक्षिण बिहार) में स्थित उपनिवेशों का निर्देश प्राप्त है।

(२) रक्षस्--उत्तरी बलूचिस्थान के चगाई प्रदेश में रहनेवाले आधुनिक रक्षानी लोग संभवतः यही होंगे। इन्हे राक्षस भी कहते थे।

(३) पिशाच-प्राचीन वाङ्मय में कच्चा माँस खानेवाले लोगों को ' पिशाच ' सामुहिक नाम प्रदान किया गया है। ग्रीअरसन के अनुसार, उत्तर-पश्चिम सीमान्त प्रदेश में दरदिस्थान एवं चितराल प्रदेश के लोगों में कच्चा माँस खाने का रिवाज था, जिस कारण, इस प्रदेश के लोग ही प्राचीन पिशाच लोग होने की संभावना है। बर्नेल के अनुसार, आधुनिक लमगान प्रदेश में रहनेवाले पशाई काफ़ि लोग ही प्राचीन पिशाच लोग थे (पिशाच देखिये)।

पुराणों में--पुराणों में असुर, दानव, दैत्य एवं राक्षस जातियों का स्वतंत्र निर्देश प्राप्त है (मत्स्य. २५.८; १७; ३०; ३७; २६.१७)। किन्तु इन ग्रंथों में इन सारी जातियों का स्वतंत्र अस्तित्व नष्ट हो कर, अनार्य एवं दुष्ट लोगों के लिए ये सारे नाम उपाधि की तरह प्रयुक्त किये गये प्रतीत होते हैं। महाभारत एवं पुराणों में निर्दिष्ट रक्षस् (राक्षस), असुर, दैत्य एवं दानव निम्न हैंः--१. **वृषपर्वन्**, जो दैत्य एवं दानवों का राजा था, एवं जिसकी कन्या शर्मिष्ठा का विवाह पूरुवंशीय ययाति राजा से हुआ था; २. **शाल्वलोग**, जिन्हे दानव एवं दैत्य कहा गया है, एवं जिनका राज्य अबु पहाड़ी के प्रदेश में था; ३. **हिडिंब**, जो राक्षसों का राजा था, एवं जिसकी बहन हिडिंबा का विवाह भीमसेन पाण्डव के साथ हुआ था; ४. **घटोत्कच**, जो राक्षसों का राजा था, एवं जो भारतीय-युद्ध में पाण्डवों के पक्ष में शामिल था; ५. **भगदत्त**, जो प्राग्ज्योतिषपुर के म्लेंच्छ लोगों का राजा था, एवं जिसके राज्य पर पूर्वकाल में सदियों तक दानव, दैत्य एवं दस्युओं का राज्य था; ६. हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष प्रह्लाद एवं बलि, जो सर्वश्रेष्ठ असुरसम्राट माने जाते थे; ७. **रावण**, जो लंका में स्थित राक्षसों के राज्य का अधिपति था; ८. **बाण**, जो दैत्यों का राजा था, एवं जिसकी कन्या उषा का विवाह श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध से हुआ था।

पुराणों में प्राप्त पुलस्त्य, पुलह एवं अगस्त्य ऋषि की संतान राक्षस कही गयी हैं (वायु. ७०.५१-६५)। ययाति राजा के सुविख्यात आख्यान में, उसके द्वारा अपने पुत्र यदु को 'यातुधान' नामक राक्षस संतति निर्माण करने का शाप देने की कथा प्राप्त है (यदु देखिये)।

सामान्य उपाधि--आगे चल कर, राक्षस एवं दैत्य एक वांशिक उपाधि न रह कर, किसी भी दुष्ट, धर्मविहीन एवं खलप्रवृत्त राजा को ये उपाधियाँ लगायी जाने लगी, जिसके उदाहरण निम्नप्रकार हैः--१. यादवराजा मधु, जो वास्तव में पूरुवंशीय ययाति एवं यदु राजाओं का वंशज था; २. कंस, जो वास्तव में मथुरा देश का यादव राजा था; ३. लवण माधव, जो मधु राजा का ही वंशज था; ४. जरासंध, जो वास्तव में मगध देश का भरतवंशीय राजा था। इसी तरह बौद्ध तथा जैन लोगों को, एवं दक्षिण भारत के द्रविड लोगों को पुराणों में असुर एवं दैत्य कहा गया है (ब्रह्म. १६०.१३; विष्णु. ३.१७.८-९)।

रक्षा--ऋक्ष ऋषि की बहन, जो प्रजापति की पत्नी थी। इसके पुत्र का नाम जांबवत् था (ब्रह्मांड. ३.७.२९९-३००)।

रक्षिता--एक अप्सरा, जो कश्यप एवं प्राधा की कन्याओं में से एक थी।

रक्षोहन् ब्राह्म--एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. १०. १६२)।

रघु--(सू. इ.) एक सुविख्यात इक्ष्वाकुवंशीय राजा, जिसका निर्देश महाभारत में प्राप्त प्राचीन राजाओं की नामावलि में प्राप्त है (म. आ. १.१७२)। भागवत, विष्णु एवं वायु के अनुसार, यह दीर्घबाहु राजा का पुत्र, एवं दिलीप खट्वांग राजा का पौत्र था। मत्स्य एवं पद्म में इसे निघ्न नामक राजा का पुत्र कहा गया है (पद्म. सृ. ८)। किन्तु निघ्न राजा के पुत्र का नाम रघूत्तम था, जो संभवतः इक्ष्वाकुवंशीय होते हुये भी रघु राजा से अलग था (निघ्न देखिये)।

कालिदास के रघुवंश में इसे दिलीप राजा का पुत्र कहा गया है, जो उसे नंदिनी नामक धेनु के प्रसाद से प्राप्त हुआ था (र. वं. २)। रघुवंश में प्राप्त यह कथा पद्म में भी पुनरुक्त है (पद्म. उ. २०३)।

यह इक्ष्वाकुवंश का एक श्रेष्ठ राजा होने के कारण इसे अयोध्या का पहला राजा कहा गया है (ह. वं. १.१५. २५)। इसकी महत्ता के कारण, आगे चल कर, इक्ष्वाकुवंश 'रघुवंश' नाम से सुविख्यात हुआ।

पराक्रम--इसके पराक्रम एवं दानशूरता की कथा रघुवंश एवं स्कंद में प्राप्त है। एक बार दशदिशाओं में विजय कर, इसने विपुल संपत्ति प्राप्त की, एवं अपने गुरु वसिष्ठ की आज्ञानुसार विश्वजित् यज्ञ किया। उस यज्ञ के कारण,

इसकी सारी संपत्ति व्यतीत हुयी, एवं यह निष्कांचन बन गया।

इसी अवस्था में विश्वामित्र ऋषि का शिष्य कौत्स इसके पास द्रव्य की याचना करने आया, जो उसे अपनी गुरुदक्षिणा की पूर्ति करने के लिए आवश्यक था। यह स्वयं द्रव्यहीन होने के कारण, कौत्स की माँग पूरी करने के लिए इसने कुबेर पर आक्रमण किया, एवं उसे इसके राज्य पर स्वर्ण की वर्षा करने के लिए मजबूर किया। इस स्वर्ण में से कौत्स ने चौदह करोड़ सुवर्णमुद्रा दक्षिणा के रूप में स्वीकार ली, एवं उन्हें अपने गुरु विश्वामित्र को दक्षिणा के रूप में दी (स्कंद. २.८.५)। रघुवंश में यही कथा प्राप्त है, किन्तु वहाँ कौत्स के गुरु का नाम विश्वामित्र की जगह वरतंतु बताया गया है (र. वं. ५)।

महाभारत के अनुसार, इसे अपने पूर्वज युवनाश्व राजा के द्वारा दिव्य खड्ग की प्राप्ति हुयी थी, जो आगे चल कर इसने अपने वंशज हरिणाश्व को प्रदान किया था (म. शां. १६०.७६)।

रघु के पश्चात् इसका पुत्र अज अयोध्या का राजा हुआ, जिसका पुत्र दशरथ एवं पौत्र राम दाशरथि इक्ष्वाकु वंश के सर्वश्रेष्ठ राजा साबित हुयें।

रंगदास—एक शूद्र, जो वेंकटाचल पर्वत पर स्थित श्रीनिवास का परमभक्त था। इसने वेंकटाचल में अनेक मंदिर बँधवाये थे (स्कंद. २.१.९)।

रंगवेणी—सारंग नामक गोप की कन्या, जो पूर्वजन्म में हरिधामन् नामक ऋषि थी (हरिधामन् देखिये)।

रचना—विरोचन दैत्य की यशोधरा नामक कन्या का नामान्तर (यशोधरा देखिये)।

रज—एक सप्तर्षि, जो वसिष्ठ एवं ऊर्जा के पुत्रों में से एक था।

२. धर नामक वसु के पुत्रों में से एक।

३. (स्वा. नाभि.) एक राजा, जो विष्णु के अनुसार विरज राजा का पुत्र था।

४. स्कंद का एक सैनिक (म. श. ४४.६८)।

रजत—शुक्राचार्यपुत्र के वरत्रिन् के तीन यज्ञविरोधी पुत्रों में से एक (वरत्रिन् देखिये)।

रजतनाभ—एक यक्ष, जो यक्ष एवं क्रतुस्थला के पुत्रों में से एक था। इसकी पत्नी का नाम मणिवरा था, जो अनुह्राद नामक राक्षस की कन्या थी। उससे इसे मणिवर एवं मणिभद्र नामक दो पुत्र उत्पन्न हुये थे।

रजन कोणेय अथवा **कौणेय**—एक आचार्य, जो अंधा था (तै. सं. २.३.८.१; क. सं. २७.२)। क्रतुजित् जानकि नामक आचार्य ने इसके लिए सफलतापूर्वक यज्ञ संपन्न कर, इसे पुनः दृष्टि प्रदान की थी (क. सं. ११.१)। इसके पुत्र का नाम उग्रदेव राजनि था (पं. ब्रा. १३.४. ११)।

अथर्ववेद में इसे कुष्ठरोगी बताया गया है, एवं रजनी नामक पौधे के द्वारा यह पुनः निरोगी होने का निर्देश प्राप्त है (ब्लूमफिल्ड, अ. वे. २६६.२६७)।

राजि—(सो. पुरूरवस्.) पुरूरवस्वंशीय एक राजा, जो प्रतिष्ठान देश के आयु राजा के पाँच पुत्रों में से एक था। इसकी माता का नाम प्रभा था, जो दानव राजा स्वर्भानु की कन्या थी (म. आ. ७०.२३)। इसके अन्य चार भाईयों के नाम क्रमशः नहुष, क्षत्रवृद्ध, (वृद्धशर्मन्), रंभ, एवं अनेनस् (विपाप्मन्) थे।

यह एवं इसके 'राजेय क्षत्रिय' नामक वंशज इन्द्र के साथ स्पर्धा करने से विनष्ट होने की कथा कई पुराणों में प्राप्त है। यह स्वयं अत्यंत पराक्रमी था, एवं युद्ध में जिस पक्ष में रहता था, उसे विजय प्राप्त कराता था। एक बार देवासुर संग्राम में इंद्रपद प्राप्ति की शर्त पर यह देवों के पक्ष में शामिल हुआ। उस समय इन्द्र भी स्वयं दुर्बल बन गया था, एवं स्वर्ग का राज्य सम्हालने की ताकद उसमें नही थी। इस कारण इंद्र ने खुशी से अपना राज्य इसे प्रदान किया। इस तरह यह स्वयं इंद्र बन गया।

आगे चल कर इससे सैंकडो पुत्र उत्पन्न हुये, जो 'राजेय क्षत्रिय' सामूहिक नाम से सुविख्यात थे। वे सारे पुत्र नादान थे, एवं इंद्रपद सम्हालने की ताकद उनमें से किसी एक में भी न थी। इस कारण, इन्द्र ने देवगुरु बृहस्पति की सलाह से उन पुत्रों को भ्रष्टबुद्धि बना कर उनका नाश किया, एवं उनसे इंद्रपद ले लिया (भा. ९. १७; वायु. ९२. ७६–१००; ब्रह्म ११; ह. वं. १.२८; मत्स्य. २४. ३४–४९)।

वायु में इसे विष्णु का अवतार बताया गया है, एवं इसके द्वारा कोलाहल पर्वत पर दानवों के साथ किये गये युद्ध का निर्देश किया गया है। इस युद्ध में देवताओं की सहाय्यता से इसने दानवों पर विजय प्राप्त की थी (वायु. ९९.८६)।

२. एक दानव राजा, जिसका इंद्र ने पिठीनस् नामक राजा के संरक्षण के लिए वध किया था (ऋ. ६.२६.६)।

सायणाचार्य के अनुसार, रजि एक स्त्री का नाम है, जिसे इंद्र ने पिठीनस् राजा को प्रदान किया था।

रजेयु—(सो. पूरु.) एक राजा, जो वायु के अनुसार रौद्राश्व राजा का पुत्र था। भागवत एवं विष्णु में इसे 'ऋतेयु,' एवं मत्स्य में इसे 'औचेयु' कहा गया है।

रज्जुकंठ—एक व्याकरणकार, जिसका उल्लेख पाणिनि के अष्टाध्यायी में एक वैदिक शाखाप्रवर्तक ऋषि के नाते किया गया है (पाणिनि देखिये)।

रज्जुबाल—जटायु के पुत्रों में से एक।

रज्जुभार—एक व्याकरणकार, जिसका उल्लेख पाणिनि के अष्टाध्यायी में एक वैदिक शाखाप्रवर्तक ऋषि के नाते किया गया है (पाणिनि देखिये)

रण—एक राक्षस, जिसका हिरण्याक्ष एवं देवताओं के दरम्यान हुए युद्ध में वायु के द्वारा वध हुआ था (पद्म. सृ. ७०५)।

रणक--(सू. इ. भविष्य.) अयोध्या का एक राजा, जो भागवत के अनुसार क्षुद्रक राजा का पुत्र था। इसे 'कुलक' नामान्तर भी प्राप्त था।

रणंजय—(सू. इ. भविष्य.) अयोध्या का एक राजा, जो कृतंजय राजा का पौत्र, एवं व्रात राजा का पुत्र था। भागवत, विष्णु एवं भविष्य में इसे कृतंजय राजा का ही पुत्र कहा गया है। मत्स्य के अनुसार, इसे 'रणेजय' नामान्तर प्राप्त था।

रणधृष्ट--वैवस्वत मनुपुत्र धृष्ट के तीन पुत्रों में से एक (धृष्ट देखिये)।

रणाश्व—(सू. इ.) अयोध्या का एक राजा, जो मत्स्य एवं पद्म के अनुसार संहताश्व राजा का पुत्र था।

रणेजय—अयोध्या के रणंजय राजा का नामान्तर।

रणोत्कट--स्कंद का एक सैनिक (म. श. ४४. २६४*)।

रता—दक्षप्रजापति की एक कन्या, जो धर्मऋषि की पत्नी थी। अहन् नामक वसु इसका पुत्र था (म. आ. ६०.१९)।

रति—धर्म ऋषि के पुत्र कामदेव की पत्नी (म. आ. ६०.३२; मा १०. ५५. ७)। यह दक्षप्रजापति के घर्म-बिन्दुओं से उत्पन्न हुयी थी (कालि.३; शिव, रुद्र. स. ४)। शिव के तृतीय नेत्र से कामदेव का भस्म होने पर, यह अत्यधिक शोक करने लगी, जब शिव ने स्वयं प्रकट हो कर इसे सांत्वना दी (पद्म. सृ. ४३)। पश्चात्, यह ब्रह्मा की सभा में रह कर उसकी उपासना करने लगी (म. स. ११.१३२*)।

अगले जन्म में इसे शंबरासुर की पत्नी मायावती का जन्म प्राप्त हुआ, जिस समय इसने श्रीकृष्णपुत्र प्रद्युम्न के रूप में अपने पति कामदेव को पुनः प्राप्त किया (पद्म. पा. ७०; प्रद्युम्न देखिये)। अपने इस जन्म में इसकी उम्र अपने पति प्रद्युम्न से अधिक थी (पद्म. भू. १०३)।

२. अलकापुरी की एक अप्सरा, जिसने अष्टावक्र के स्वागतसमारोह में कुबेर भवन में नृत्य किया था (म. अनु. १९.४५)।

३. अजनाभ वर्ष के राजा ऋषभदेव के वंशज विभु राजा की पत्नी (भा. ५. १५. १६)। इसके पुत्र का नाम पृथुषेण था।

रतिकला--श्रीकृष्ण की एक प्राणसखी।

रतिगुण--एक देवगंधर्व, जो कश्यप एवं प्राधा के पुत्रों में से एक था।

रतिनार--पुरुवंशीय रंतिभार राजा का नामान्तर।

रतिविदग्धा—हस्तिनापुर की एक वेश्या, जिसे ब्राह्मणों को अन्नदान करने के पुण्य के कारण, मृत्यु की पश्चात् वैकुंठ की प्राप्ति हुयी (पद्म. क्रि. २०)।

रतिसर्वस्वा--श्रीकृष्ण की एक प्राणसखी (पद्म. पा. ७४)।

रत्नकूटा--अत्रि ऋषि की पत्नियों में से एक (ब्रह्मांड. ३. ७४-८७)।

रत्नग्रीव—कांचन नगरी का एक राजा, जो विष्णु का परम भक्त था। नील पर्वत पर श्रीविष्णु की उपासना करने के कारण, इसे सरूप मुक्ति प्राप्त हो कर, यह विष्णुलोकवासी बन गया (पद्म. पा. १७-२२)।

रत्नचूड--पाताललोक का एक राजा (रत्नावलि देखिये)।

रत्ना—यादवराजा अक्रूर की पत्नियों में से एक।

रत्नाकर--एक वैश्य, जो एक बैल के द्वारा मारा गया था। इसकी मृत्यु के समय धर्मस्व नामक एक ब्राह्मण ने इस पर गंगोदक का संमार्जन किया, जिस कारण इसे विष्णुलोक की प्राप्ति हो गयी (पद्म. क्रि. ७)।

रत्नांगद—पाण्डय देश के वज्रांगद राजा का नामान्तर (वज्रांगद देखिये)।

रत्नावलि--एक राजकन्या, जिसे रत्नेश्वर नामक शिवमंदिर में शिव की नृत्योपासना करने के कारण, पाताल

लोक का रत्नचूड नामक राजा पति के रूप में प्राप्त हुआ (स्कंद. ४.२.६७)।

रथकार--एक जातिविशेष, जो वैश्यों से हीन, किन्तु शूद्रों से श्रेष्ठ मानी जाती थी (क. सं. १७.१३; श. ब्रा. १३.४.२.१७)। याज्ञवल्क्य के अनुसार, 'माहिष्य' (क्षत्रिय पति एवं वैश्य पत्नी का पुत्र), एवं 'करणी' (वैश्य पति एवं शूद्र पत्नी की कन्या) इन दोनों की संतान रथकार नाम से कहलायी जाती थी (याज्ञ. १.९५)।

किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से, इन्हे रथ का निर्माण करनेवाली एक जातिविशेष मानना ही अधिक सयुक्तिक प्रतीत होता है। हिलेब्रान्ट के अनुसार, ये लोग अनु जाति से ही उत्पन्न हुयें थे। अनु एवं रथकार ये दोनो जातियाँ उन ऋभुओं की उपासक थी, जो स्वयं अत्यंत उत्कृष्ट रथ बनाती थी (वेदिशे माइथौलोजी, ३.१५२-१५३)।

रथकृत--एक यक्ष, जो धातृ नामक आदित्य के साथ चैत्रमाह में भ्रमण करता है (भा. १२.११.३३)।

रथजूति--अथर्ववेद में निर्दिष्ट एक व्यक्तिनाम (अ. वे. १९.४४.३)।

रथध्वज--विदेह देश के कुशध्वज जनक राजा का पिता। इसकी पौत्री का नाम वेदवती था (वेदवती देखिये)।

रथध्वान--वीर नामक अग्नि का नामान्तर (वीर १०. देखिये)।

रथन्तर--एक अग्नि, जो पांचजन्य नामक अग्नि का पुत्र था (म. व. २१०.७)। इसे 'तरसाहस' नामक दो भाई थे। यह पांचजन्य के मुख से प्रकट हुआ था।

२. एक साम, जो मूर्तिमान् स्वरूप में ब्रह्मा की सभा में उपस्थित रहता था (म. स. ११.२१)। इसीके द्वारा वसिष्ठ ऋषि ने इन्द्र का मोह दूर कर उसे प्रबुद्ध बनाया था।

रथन्तरी अथवा **रथन्तर्या**--पूरुवंशीय दुष्यन्त राजा की माता, जो ईलिन (इलिल) राजा की पत्नी थी (म. आ. ९०.२९)। दुष्यन्त के अतिरिक्त इसे निम्नलिखित चार पुत्र थे:--शूर, भीम, प्रवसु एवं वसु (म. आ. ८९.१५)।

रथप्रभु--वीर नामक अग्नि का नामान्तर (वीर १०. देखिये)।

रथप्रोत दार्भ्य--मैत्रायणि संहिता में निर्दिष्ट एक आचार्य (मै. सं. २.१.३)। कई अभ्यासकों के अनुसार, यह एक पुरोहित न हो कर एक राजा था। दर्भ का वंशज होने से इसे 'दार्भ्य' पैतृक नाम प्राप्त हुआ होगा।

रथराजी--वसुदेव की पत्नियों में से एक।

रथवर--(सो. क्रोष्टु.) एक यादव राजा, जो वायु के अनुसार भीमरथ राजा का पुत्र था।

रथवाहन--मत्स्यनरेश विराट के भाईयों में से एक। भारतीय युद्ध में यह पाण्डवों के पक्ष में शामिल था (म. द्रो. १३३.३९)।

रथवीति दार्भ्य--एक ऋषि, जो हिमालय के दूरस्थ पर्वतों में गायों से परिपूर्ण (गोमतीर् अनु) प्रदेश में रहता था (ऋ. ५.६१.१७-१९)। एक बार अंधिगु श्यावाश्व नामक आचार्य ने, तरंत नामक राजा के यज्ञ में होमकर्म करने के लिए इसे आमंत्रित किया। उस समय यह अपनी कन्या को साथ ले कर यज्ञ करने गया। वहाँ श्यावाश्व के पिता अर्चनानस् आत्रेय ने अपने वेदवेत्ता पुत्र के लिए इसके कन्या की माँग की। किन्तु इसने साफ़ इन्कार कर दिया, एवं श्यावाश्व को अपने यज्ञ से बाहर निकाल दिया। किन्तु अंत में तरन्त राजा के कहने पर इसने अपनी कन्या श्यावाश्व को दे दी (ऋ. सायणभाष्य ५.६१)।

बृहद्देवता के अनुसार, तरन्त राजा को शशीयसी नामक पत्नी से एक पुत्र उत्पन्न हुआ था, जिसके लिए उसने रथवीति के कन्या की माँग की थी (बृहद्दे. ५.५०-८१)।

आधुनिक विद्वानों के अनुसार, रथवीति दार्भ्य एक आचार्य न हो कर एक राजा था, एवं श्यावाश्व इसका पुत्र था। श्यावाश्व ने अपने पिता एवं मरुतों की सहाय्यता से अपने लिए एक पत्नी प्राप्त की थी, जिसका निर्देश ऋग्वेद के उपर्युक्त सूक्त में प्राप्त है (ओल्डेनबर्गः ऋग्वेद नोटेन. १.३५३-३५४)।

रथसेन--पाण्डव पक्ष का एक योद्धा, जिसके रथ के अश्व मटर के फूल के समान रंगवाले थे, एवं उनकी रोमराजी श्वेतलोहित वर्ण की थी (म. द्रो. २२.५८)।

रथस्वन--एक यक्ष, जो मित्र नामक सूर्य के साथ ज्येष्ठ माह में भ्रमण करता है (भा. १२.११.३५)।

रथाक्ष--स्कंद एक का सैनिक (म. श. ४४.५८)। पाठभेद-'झषाक्ष'

रथाग्रणी--एक योद्धा, जो रामचन्द्र के अश्वमेधीय अश्व के संरक्षण के लिए शत्रुघ्न के साथ उपस्थित था (पद्म. पा. ११)।

रथीतर--(सू. इ.) एक राजा, जो मनु वैवस्वतकुलोत्पन्न नाभागवंशीय पृषदश्व राजा का पुत्र था।

नाभाग से ले कर रथीतर तक का वंशक्रम वायु में निम्न-प्रकार प्राप्त है :—नाभाग—अंबरीष—विरूप—पृषदश्व—रथीतर (वायु. ८८.५-७)।

रथीतर ब्राह्मण—इसे कुल दो पुत्र थे, जो जन्म से क्षत्रिय हो कर भी आंगिरसवंशीय ब्राह्मणों में शामिल हो गयें। इसी कारण रथीतर वंश के लोग रथीतर गोत्र के क्षत्रिय ब्राह्मण बन गये (ब्रह्मांड. ३.६३.५-७), एवं उनका निर्देश आंगिरस कह कर किये जाने लगा (मत्स्य. १९६.३८)। रथीतर ब्राह्मण कौनसे समय आंगिरस वंश में शामिल हुये यह कहना मुष्किल है, किन्तु बाद के पौराणिक साहित्य में उनका निर्देश प्रायः अप्राप्य है। रथीतर का निर्देश अंगिरस कुल का गोत्रकार एवं प्रवर नाम से किया गया है।

रथीतरों की ब्रह्मक्षत्रिय बनने की यही कथा भागवत में विपरीत रूप में दी गयी है, जिसके अनुसार, रथीतर राजा को पुत्र न होने के कारण, इसने अंगिरस् ऋषि से संतति उत्पन्न करायी। रथीतर राजा की यही संतान आगे चल कर रथीतर ब्राह्मण नाम से प्रसिद्ध हुयीं (भा. ९.६.३)।

२. बौधायन श्रौतसूत्र में निर्दिष्ट एक आचार्य (बौ. श्रौ. २२.११; बृहद्दे. १.२६; ३.४०)।

रथीतर शाकपूर्ण—एक आचार्य, जो विष्णु के अनुसार व्यास की ऋक्‌शिष्यपरंपरा में से सोमति नामक आचार्य का शिष्य था। वायु एवं ब्रह्मांड में इसे सत्यश्री का शिष्य कहा गया है। विष्णु में इसे 'शाकपूर्ण' एवं ब्रह्मांड में 'शाकवैण' कहा गया है। वेबर के अनुसार, इन पाठभेदों में से 'शाकपूणि' पाठ ही सर्वाधिक स्वीकरणीय है। यह ऋग्वेद के तीन प्रमुख शाखाप्रवर्तक आचार्यों में से एक माना जाता है। ऋग्वेद के अन्य दो शाखाप्रवर्तक आचार्यों के नाम देवमित्र शाकल्य एवं बाष्कलि भारद्वाज थे।

इसने ऋग्वेद की तीन संहिताओं की एवं निरुक्त की रचना की। इसके निम्नलिखित चार शिष्य थे :—केतव, दालकि, शतबलाक, एवं नैगम। विष्णु के अनुसार, निरुक्त ग्रंथ की रचना रथीतर के द्वारा न हो कर इसके शिष्य नैगम ने की थी।

रथोर्मि—प्रतर्दन देवों में से एक।

रंति—रन्तिनार राजा का नामान्तर (रन्तिनार देखिये)।

रंतिदेव सांकृत्य—(सो. पूरु.) सुविख्यात भरतवंशीय सम्राट, जिसका निर्देश महाभारत में प्राप्त सोलह श्रेष्ठ राजाओं की नामावली में प्राप्त है। एक श्रेष्ठ दानी राजा के नाते इसका निर्देश महाभारत में पुनः पुनः प्राप्त है (म. शां. २९. ११३-१२१)।

मत्स्य, भागवत एवं विष्णु में इसे संकृति राजा का पुत्र कहा गया है, जिस कारण इसे 'सांकृत्य' पैतृक नाम प्राप्त हुआ था (म. अनु. १३७.६)। वायु के अनुसार इसे त्रिवेद नामान्तर प्राप्त था। इसकी माता का नाम सत्कृति था। सुविख्यात पौरव राजा रंतिनार (मतिनार, रंतिभार) से यह काफ़ी उत्तरकालीन था। भरत से लेकर रंतिदेव तक का वंशक्रम इस प्रकार है:—भरत–वितथ–भुवमन्यु–नर–संकृति–रंतिदेव। इस वंशक्रम से प्रतीत होता है कि, हस्तिनापुर का सुविख्यात सम्राट हस्तिन् इसका चाचा था।

यज्ञपरायणता—इसका राज्य चर्मण्वती (आधुनिक चंबल) नदी के किनारे था, एवं इसकी राजधानी दशपुर नगरी में थी (मेघ. ४६-४८)। महाभारत में इसकी दानशूरता का, एवं इसके द्वारा किये गये यज्ञयागों का सविस्तर वर्णन प्राप्त है। अतिथियों की व्यवस्था के लिए अपने राजगृह में इसने दो लाख पाकशास्त्रियों की नियुक्ति की थी। इसके यज्ञ में बलिप्राणि बन स्वर्ग प्राप्ति हों, इस उद्देश्य से यज्ञीय पशु स्वयं ही इसके यज्ञ में प्रवेश करते थे।

एक बार एक गोयज्ञ करने के लिए इसके राज्य की गायों ने इसे विवश किया, किन्तु इनमें से एक गाय आहुति देने के लिए नाराज़ दिखाई देने पर इसने अपना गोयज्ञ उसी क्षण बन्द कर दिया। यज्ञ में पशुओं की आहुति देने के बाद, उनकी बची हुयी चमड़ी यह नजीक ही स्थित नदी में फेंक देता था, जिस कारण उस नदी को चर्मण्वती (चमड़ी को धारण करनेवाली) नाम प्राप्त हुआ था (म. अनु. १२३.१३)।

दानशूरता—इसने अपनी सारी संपत्ति दान में दी थी (म. द्रो. परि. १. क्र. ८. पंक्ति. ६९५)। इसका नियम था कि, इसके यहाँ आया हुआ अतिथि विन्मुख न लौटे। इसके इस नियम के कारण, इसके परिवार को काफ़ी कष्ट सहने पडते थे। एक बार तो ४८ दिनों तक इसके परिवार के सदस्यों को भूखा रहना पड़ा। अगले दिन यह अन्न-ग्रहण करनेवाला ही था कि, कई शूद्र एवं चाण्डाल अतिथि इसके यहाँ आ पहूँचे। फिर उस दिन भी भूखा रह कर इसने अपने अपना सारा अन्न उन्हें दे दिया (भा. ९.२१)। अपने गुरु वसिष्ठ को विधिवत् अर्घ्यदान करने के

कारण इसे स्वर्गप्राप्ति हो गयी (म. शां. २६.१७; अनु. २००.६)।

सांकृत्य ब्राह्मण—रंतिदेव राजा के एवं इसके भाई गुरुधि के वंशज जन्म से क्षत्रिय हो कर भी ब्राह्मण बन गयें। इस कारण वे 'सांकृत्य ब्राह्मण' कहलाते थें। कालोपरान्त ये आंगिरस कुल में शामिल हो गये, जिसके एक गोत्रकार के नाते उनका निर्देश प्राप्त है (वायु. ९९. १६०)।

रंतिनार--(सो. पूरु.) सुविख्यात पूरुवंशीय सम्राट, जो ऋतेयु नामक राजा का पुत्र था। मत्स्य में इसे अंतिनार, भागवत में इसे रंतिभार, एवं वायु में इसे रंति कहा गया है। मत्स्य एवं वायु में इसके पिता का नाम क्रमशः औचेयु एवं रजेयु दिया गया है।

इसकी पत्नी का नाम सरस्वती था (वायु. ९९. १२९), जिसका नाम मत्स्य में मनस्विनी दिया गया है। अपनी इस पत्नी से इसे निम्नलिखित चार पुत्र उत्पन्न हुये थेः--तंसु, महान्, अतिरथ एवं द्रुह्यु। कई पुराणों के अनुसार, इसे अप्रतिरथ (प्रतिरथ) नामक और एक पुत्र भी था, जिसके पुत्र काण्व ने आंगिरसांतर्गत काण्व शाखा का प्रारंभ किया (पार्गि. २२५)।

रभस--रामसेना का एक वानर (वा. रा. यु. ४. ३६)।

२. रावण पक्ष का एक राक्षस (वा. रा. यु. ९.१)।

३. (सो. पुरूरवस्.) एक राजा, जो आयुपुत्र रंभ का पुत्र था। महाभारत में इसे सोम एवं मनोहरा का पुत्र कहा गया है (म. आ. ६०.२१)।

रमेणक—तक्षक कुलोत्पन्न एक नाग, जो जनमेजय के सर्पसत्र में मारा गया था (म. आ. ५२.७)।

रमठ—एक म्लेंन्छ जाति, जो मांधातृ के राज्यकाल में उसके राज्य में निवास करती थी (म. शां. ६५.१४)।

रमण—एक वसु, जो धर नामक वसु के पुत्रों में से एक था।

रमणक--एक राजा, जो प्रियव्रत पुत्र यज्ञबाहु के सात पुत्रों में से तीसरा था। इसका राज्य (वर्ष) इसीके ही नाम सें प्रसिद्ध था (भा. ५. २०.९)।

२. एक राजा, जो प्रियव्रतपुत्र वीतिहोत्र के दो पुत्रों से ज्येष्ठ था (भा. ५. २०. ३१)।

रंभ—(सो. पूरूरवस्.) एक राजा, जो भागवत एवं विष्णु के अनुसार, पुरूरवस् राजा का पौत्र, एवं आयु राजा के पुत्रों में से चौथा पुत्र था। स्वर्भानु असुर की कन्या प्रभा इसकी माता थी। हरिवंश के अनुसार, इसे कोई पुत्र न था (ह. वं. १.२९)। किन्तु भागवत में इसका वंशक्रम निम्नप्रकार दिया गया हैः—रंभ-रभस-गंभीर-अक्रिय। रंभ के ये सारे वंशज जन्म से क्षत्रिय हो कर भी आगे चल कर ब्राह्मण बन गये (भा. ९.१७.१०)।

२. (सू. दिष्ट.) एक राजा, जो भागवत के अनुसार, विविंशति राजा का पुत्र था। इसके पुत्र का नाम खनिनेत्र था।

३. रामसेना का एक वानर (वा. रा. यु. २६)।

४. रंभ-करंभ नामक दो दानवों में से एक।

रंभ-करंभ--दानवद्वय, जो कश्यप एवं दनु के पुत्र थे। एक बार ये दोनों भाई पानी में तप कर रहे थे, जब इन्द्र ने मगर का रूप धारण कर इनमें से करंभ का वध किया।

अपने भाई की मृत्यु से रंभ अत्यधिक दुःखी हुआ, एवं आत्महत्या करने के लिए उद्यत हुआ। उस समय अग्नि ने प्रकट हो कर इसे सान्त्वना दी, एवं वरप्रदान किया, 'तुम्हारे वंश की परंपरा आगे चलानेवाला विजयी पुत्र तुम्हे प्राप्त होगा'। अग्नि के इस वर के अनुसार, इसे महिषासुर नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। आगे चल कर एक महिष के द्वारा रंभ का वध हुआ (दे. भा. ५.२; शिव. उ. ४६)।

रंभा--एक सुविख्यात अप्सरा, जो कश्यप एवं प्राधा की कन्याओं में से एक थी (म. आ. ५९.४८)। यह कुबेरसभा में रहती थी। अर्जुन के जन्मोत्सव में, एवं अष्टावक्र के स्वागतसमारोह में इसने नृत्य किया था (म. आ. ११४.५१; अनु. १९.४४)। इसने इंद्रसभा में भी अर्जुन के स्वागतार्थ नृत्य किया था (म. व. ४४. २९)।

कुबेरपुत्र नलकूबर के साथ यह पत्नी के नाते से रहती थी। एक बार रावण ने इस संबंध में इसकी खिल्ली उड़ायी, जिस कारण क्रुद्ध हो कर नलकूबर ने रावण को शाप दिया, 'तुझे न चाहनेवाली किसी स्त्री से अगर तूं बलात्कार करेगा, तो तुझे प्राणों से हाथ धोना पडेगा'। नलकूबर के इसी शाप के कारण राम के द्वारा रावण का वध हुआ (म. व. २६४.६८-६९)।

विश्वामित्र के तपोभंग के लिए इन्द्र ने इसे उसके पास भेजा था। किन्तु विश्वामित्र ने इन्द्र के षड्यंत्र को पहचान लिया, एवं क्रुद्ध हो कर इसे शाप दिया, 'तुम हजारों वर्षों तक शिला बन कर रहोगी (म. अनु. ३.११)।

वाल्मीकि रामायण के अनुसार, विश्वामित्र ने इसे ब्राह्मण के द्वारा उद्धार होने का उःशाप भी प्रदान किया था।

स्कंद में श्वेतमुनि के द्वारा इसका उद्धार होने की कथा प्राप्त है। एकबार श्वेतमुनि का एक राक्षसी से युद्ध हुआ। उस समय श्वेतमुनि के द्वारा छोडे गये 'वायु अस्त्र' के कारण वह राक्षसी एवं शिलाखंड बनी हुयी रंभा, दोनों भी आँधी में फँसकर 'कपितीर्थ' में जा गिरी। इस कारण रंभा एवं राक्षसी का रुप प्राप्त हुयी वारांगना दोनों भी मुक्त हो गयीं (स्कंद. ३.१.३९)।

महाभारत में अन्यत्र इसे तुंबरु नामक गंधर्व की पत्नी कहा गया है (म. उ. १०.११.११२*)। किन्तु वाल्मीकि रामायण में इससे संबंध रखने के कारण, तुंबरु को विराध नामक राक्षस का रूप प्राप्त होने की कथा प्राप्त है (वा. रा. अर. ४.१६-१९)। इससे प्रतीत होता है कि, तुंबरु इसका वास्तव पति नही था।

२. मयासुर की पत्नी, जिससे इसे निम्नलिखित छः संतान उत्पन्न हुयी थी:—मायाविन्, दुंदुभि, महिष, कालिका, अजकर्ण एवं मंदोदरी (ब्रह्मांड. ३.६.२८-२९)।

रम्यक--(स्वा. प्रिय.) 'रम्यकवर्ष' नामक देश का राजा, जो भागवत के अनुसार, आग्नीध्र राजा का पुत्र था। इसकी माता का नाम 'पूर्णवित्ति' एवं पत्नी का नाम 'रम्या' था।

रम्या--मेरु की नौ कन्याओं में से पाँचवी कन्या, जो रम्यक राजा की पत्नी थी (भा. ५.२.६३)

रय--(सो. पुरूरवस्) एक राजा, जो भागवत के अनुसार, पुरूरवस् राजा का पुत्र था।

२. एक प्रजापति, जो स्वायंभुव मन्वन्तर के वसिष्ठ ऋषि का पुत्र था।

रवि—सौवीर देश का एक राजकुमार, जो जयद्रथ राजा का भाई था। यह जयद्रथ के पीछे हाथ में ध्वजा ले कर चलता था (म. व. २४९.१०)। जयद्रथ के द्वारा द्रौपदी का हरण किये जाने पर हुये युद्ध में अर्जुन के द्वारा इसका वध हुआ था।

२. धृतराष्ट्र के शतपुत्रों में से एक, जो भीमसेन के द्वारा मारा गया था (म. श. २५.१२)।

रशादु--(सो. क्रोष्टु.) एक यादव राजा, जो विष्णु एवं वायु के अनुसार 'स्वाहि' राजा का, भागवत के अनुसार 'श्वाहि' राजा का, एवं मत्स्य के अनुसार 'स्वाह' राजा का पुत्र था। भागवत में इसे 'रुशेकु,' एवं विष्णु तथा मत्स्य में इसे 'रुषद्गु' कहा गया है।

रश्मि--सुतप देवों में से एक।

रश्मिकेतु--रावण के पक्ष का एक राक्षस, जो राम के द्वारा मारा गया था (वा. रा.सुं. ६; यु. ९; ४७)।

रश्मिवत्--एक सनातन विश्वेदेव।

रस--तुषित देवों में से एक।

रसद्वीचि--अत्रिकुलोत्पन्न गोत्रकार हरप्रीति का नामांतर।

रसपासर--एक आचार्य, जो वायु के अनुसार, व्यास की सामशिष्य परंपरा में से कुथुमि नामक आचार्य का शिष्य था। ब्रह्मांड में इसे पराशर कहा गया है।

रसमंथरा, रसवल्लरी, रसालया--श्रीकृष्ण की प्राणसखियाँ (पद्म. पा. ७४)।

रसिप—एक दानव, जो कश्यप एवं दनु के पुत्रों में से एक था।

रहस्युदेव मलिम्लुच--एक व्यक्ति, जिसने 'मुनि-मरण' नामक स्थान पर संततुल्य वैखानसों का वध किया (पं. ब्रा. १४.४.७)।

रहूगण--एक परिवार, जिसमें गोतम राहूगण नामक ऋषि का जन्म हुआ था। शतपथ ब्राह्मण में इनका निर्देश 'राहूगण' नाम से प्राप्त है। इस पैतृक नाम को धारण करनेवाले अनेक आचार्यों का निर्देश वहाँ प्राप्त है (श. ब्रा. १.४.१०-१९)।

ऋग्वेद में गोतमऋषि का पैतृक नाम 'राहूगण' बताया गया है। गोतम के द्वारा रचित एक सूक्त में वह कहता है, 'हम राहूगण अग्नि के इन मधुस्तोत्रों की रचना करते हैं' (ऋ. १.७८.५; गोतम ३. देखिये)। गोतम राहूगण विदेघ देश के माधव राजा का उपाध्याय था।

२. सिंधुसौवीर देश का एक राजा, जिसका भरत (जड) नामक तत्वज्ञ के साथ संवाद हुआ था।

एक बार यह पालकी में बैठकर कपिलाश्रम में ब्रह्मज्ञान का उपदेश सुनने जा रहा था। जब यह इक्षुमती नदी के तट पर जा पहूँचा, उस समय वहाँ के अधिपति ने जड भरत को पालकी उठाने के लिए पकड़ लाया। भरत स्वयं एक महान् तत्त्वज्ञ एवं सिद्ध पुरुष है, इसका पता चलते ही यह उसकी शरण में गया, एवं उससे शरीर तथा आत्मा की भिन्नाता के संबध में, इसने ज्ञान संपादन किया (भा. ५.१०-१४; भरत जड देखिये)।

भागवत में प्राप्त 'भरत-रहूगण संवाद' में इक्षुमती नदी, चक्र नदी, शालग्राम तीर्थ, पुलस्त्य एवं पुलह

ऋषियों के आश्रम, कालंजर तीर्थ आदि तीर्थस्थानों का निर्देश प्राप्त है (भा. ५.८.३०; १०.१)।

रहूगण आंगिरस—आंगिरसकुलोत्पन्न एक आचार्य, जिसके द्वारा रचित दो सूक्त ऋग्वेद में प्राप्त है (ऋ. ९. ३७-३८)। ऋग्वेद में एक कुलनाम के नाते रहूगण का निर्देश प्रायः प्राप्त है। किन्तु 'रहूगण आंगिरस' के निर्देश से प्रतीत होता है कि, रहूगण एक व्यक्तिनाम भी था।

राका--अंगिरस् ऋषि की कन्या, जो भागवत के अनुसार, उसे श्रद्धा नामक पत्नी से उत्पन्न हुई थी।

२. एक वैदिक देवता, जो समृद्धि एवं उदारता की देवी मानी गयी है (ऋ. २.३२; ५.४२)।

३. एक राक्षसकन्या, जो सुमाली राक्षस एवं केतुमती की कन्या थी। कुबेर की आज्ञा के अनुसार, यह विश्रवस् ऋषि की परिचर्या में रहती थी। आगे चल कर, उस ऋषि से इसे खर नामक राक्षस एवं शूर्पणखा नामक राक्षसी उपन्न हुयी (म. व. २५९.३-८)। यह रावण-कुंभकर्ण एवं विभीषण की सौतेली माँ थी, जो सारे पुत्र विश्रवस् ऋषि को पुष्पोत्कटा नामक पत्नी से उत्पन्न हुये थे।

४. द्वादश आदित्यों में से धाता नामक आदित्य की पत्नी।

रामकर्णि--राहुकर्णि नामक अंगिराकुलोत्पन्न गोत्रकार का नामान्तर।

रागा--बृहस्पति आंगिरस ऋषि की सात कन्याओं में से एक, जिसकी माता का नाम शुभा था। इसपर समस्त प्राणिसृष्टि अनुराग करती थी, जिस कारण इसका नाम रागा हुआ (म. व. २०८.४)।

राजक--(प्रद्योत. भविष्य.) एक राजा, जो भागवत के अनुसार विशाखयूप राजा का पुत्र था। वायु एवं ब्रह्मांड में इसे 'अजक', विष्णु में 'जनक' एवं मत्स्य में 'सूर्यक' कहा गया है। वायु के अनुसार इसने ३१ वर्षों तक, एवं मत्स्य तथा ब्रह्म के अनुसार इसने २१ वर्षों तक राज्य किया था। इसके पुत्र का नाम नंदिवर्धन था।

राजकेशिन्—अंगिराकुलोत्पन्न एक ऋषि।

राजधर्मन्—एक धर्मप्रवृत्त बकराज, जो कश्यपऋषि का पुत्र एवं ब्रह्मा का मित्र था (म. शां. १६३. १८-१९)। इसे नाडिजंघ नामान्तर भी प्राप्त था। एक बार गौतम नामक एक कृतघ्न ब्राह्मण इससे मिलने आया, जिसका उचित आदर सत्कार कर, इसने अपने विरुपाक्ष नामक राक्षस मित्र से उससे विपुल धन दिलाया। आगे चल कर गौतम ने कृतघ्नता से इसका वध किया। किन्तु राक्षसराज विरूपाक्ष ने सुरभि गौ के दूध के झाग से इसे जीवित किया, एवं गौतम का वध किया। जीवित होने के पश्चात्, इसने इन्द्र से गौतम को पुनः जीवित करने के लिए अनुरोध किया, जिस पर इन्द्र ने अमृत छिड़क कर गौतम को प्राणदान दिया। तत्पश्चात् इसने गौतम को विपुल धन आदि दे कर विदा किया (म. शां १६३-१६७; गौतम ५. देखिये)।

राजन्—सूर्य के दो द्वारपालों में से एक (भवि. ब्राह्म. ७६)।

राजनि—उग्रदेव नामक राजा का पैतृक नाम (पं. ब्रा. १४.३.१७; तै. आ. ५.४.१२)। 'रजन' का वंशज होने से उसे यह पैतृक नाम प्राप्त हुआ होगा।

राजन्यर्षि--सिंधुक्षित् राजा के लिए प्रयुक्त एक उपाधि (पं. ब्रा. १२.१२.६)। क्षत्रिय ब्राह्मण राजाओं के लिए यह उपाधि प्रयुक्त की जाति होगी।

राजवर्तप--कश्यपकुलोत्पन्न एक गोत्रकार। इसे 'राजवल्लभ' नामान्तर भी प्राप्त था।

राजवल्लभ—राजवर्तप नामक कश्यपकुलोत्पन्न गोत्रकार का नामान्तर।

राजस्तंबायन--यज्ञवचस् नामक आचार्य का पैतृक नाम (श. ब्रा. १०.४.२.१)। राजस्तंब का वंशज होने से उसे यह पैतृक नाम प्राप्त हुआ होगा।

राजश्रवस् वेन--देवी भागवत में निर्दिष्ट एक व्यास।

राजाज--शंभु राजा का एक पुत्र (ब्रह्मांड. ३.५.४०)।

राजाधिदेव--(सो. विदू.) एक राजा, जो मत्स्य एवं पद्म के अनुसार, विदूरथ राजा पुत्र था। वायु में इसे राज्याधिदेव कहा गया है। इसके पुत्र का नाम 'शोणाश्व' था (पद्म. सृ. १३)।

राजाधिदेवी—सोमवंशीय शूर राजा की पाँच कन्याओं में से कनिष्ठ कन्या, जिसकी माता का नाम मारिषा था। इसका विवाह अवंती देश का राजा जयसेन से हुआ था (भा. ९.२४.३१; १०.५८.३१)।

राजिक--एक आचार्य, जो वायु एवं ब्रह्मांड के अनुसार, व्यास की सामशिष्यपरंपरा में से हिरण्यनाभ ऋषि का शिष्य था।

राज्ञ—सूर्य का द्वारपाल (भवि. ब्राह्म. १२४)।

राज्ञी—रैवत मनु की एक कन्या, जो विवस्वान् आदित्य के तीन पत्नियों में से द्वितीय थी। इसके पुत्र का नाम रेवत था।

राज्यवर्धन--(सू. दिष्ट.) वैशाली देश का एक राजा, जो दम राजा का पुत्र था। दक्षिणनरेश विदूरथ राजा की कन्या इसकी पत्नी थी।

यह बड़ा तपस्वी एवं त्रिकालदर्शी राजा था। अपनी मृत्यु निकट आयी है यह बात ज्ञात होने पर, यह वार्ता इसने अपनी प्रजा को सुनायी, एवं तपस्या के लिए यह वन चला गया।

पश्चात् इसकी प्रजा एवं अमात्यों ने सूर्य की आराधना की, एवं उससे वर प्राप्त किया, 'तुम्हारा राज्यवर्धन राजा दस हजार वर्षों तक रोगरहित, जितशत्रु, धनधान्यसंपन्न एवं स्थिरयौवन अवस्था में जीवित रहेगा'।

तदोपरान्त इसकी प्रजा ने वन में जा कर इसे सूर्य के द्वारा प्राप्त वर की सुवार्ता कह सुनाई। किन्तु यह वार्ता सुन कर इसे सुख के बदले दुख ही अधिक हुआ। यह कहने लगा, 'इतने वर्षों तक जीवित रहने पर, मुझे पुत्र-पौत्रादि तथा प्रजा की मृत्यु देखनी पड़ेगी, एवं मेरा सारा जीवित दुःखमय हो जाएगा'। इस दुःख से छुटकारा पाने के लिये इसने स्वयं अपनी प्रजा पौत्र एवं भृत्य आदि के लिए भी दस हजार वर्षों की आयु का वरदान प्राप्त किया (मार्क. १०६-१०७)।

राज्याधिदेव--विदूरथवंशीय राजाधिदेव राजा का नामान्तर।

राड--एक आचार्य, जो वायु एवं ब्रह्मांड के अनुसार-व्यास की सामशिष्य परंपरा में से कृति नामक ऋषि का शिष्य था।

राडवीय--एक आचार्य, जो ब्रह्मांड के अनुसार व्यास की सामशिष्यपरंपरा में से हिरण्यनाभ नामक आचार्य का शिष्य था।

राणायनि--एक आचार्य, जो व्यास की सामशिष्य-परंपरा में से लोकाक्षि नामक आचार्य का शिष्य था। इसी से ही आगे चल कर सामवेदीय ब्राह्मणों की 'राणायनीय' शाखा का निर्माण हुआ। सामवेदी लोगों के ब्रह्मयज्ञांगतर्पण में इसका निर्देश प्राप्त है (जै. गृ. १.१४; गोभिल एवं द्राह्यायण देखिये)।

राणायनीपुत्र--एक आचार्य (ला. श्रौ. ६.९.१६)।

रातहव्य आत्रेय--एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. ५. ६५-६६)।

रात्रि--रात्रि की एक अधिष्ठात्री देवी, जिसका निर्देश ऋग्वेद में 'नक्ता' नाम से किया गया है।

ऋग्वेद में इसे उषस् की छोटी बहन कहा गया है (ऋ. १. १२४) एवं उषस् के साथ इसका अनेक बार एक युगल रूप मे निर्देश किया गया है ('उषासानक्ता' अथवा 'नक्तोषासा')।

अपनी बहन उषस् की भाँति इसे भी आकाश की पुत्री कहा गया है। ऋग्वेद में रात्रि का एक सूक्त प्राप्त है, जहाँ तारों से प्रकाशमान रात्रि का बड़ा ही काव्यमय वर्णन प्राप्त है (ऋ. १०.१२७)। यह अपने तारकामय नेत्रों से प्रकाशित होती है, एवं अपने प्रकाश के द्वारा अंधकार को भगाती है। इसके आने पर, अपने घोंसलों में लौट आनेवाले पक्षियों की भाँति, मनुष्य अपने अपने घर लौट आते हैं। चोरों को एवं भेड़ियों को दूर रखने के लिए, तथा पथिकों को सुरक्षित स्थान पर पहुँचाने के लिये इसकी प्रार्थना की गयी है।

यह अपने मूर्तिमान् स्वरूप धारण कर स्कंद के अभिषेक समारोह में उपस्थित हुई थी (म. श. ४४.१३)। शची ने अपनी मनोकामना की पूर्ति के लिए इसकी आराधना की थी (म. उ. १३.२१-२३)।

रात्रि भारद्वाजी--एक वैदिक सूक्तद्रष्ट्री (ऋ. १०. १२७)।

राथीतर--सत्यवचस् नामक आचार्य का पैतृक नाम (तै. उ. १.९.१)। रथीतर का वंशज होने से उसे यह पैतृक नाम प्राप्त हुआ होगा। इसके धर्मविषयक अनेक मतों का निर्देश बौधायन श्रौतसूत्र में प्राप्त है (बौ. श्रौ. ७.४)।

राथीतरीपुत्र--एक आचार्य, जो भालुकिपुत्र नामक आचार्य का शिष्य था (बृ. उ. ६.५.१ काण्व.)। अन्यत्र इसे क्रौंचिकीपुत्र नामक आचार्य का शिष्य कहा गया है (बृ. उ. ६.४.३२ माध्यं.)। इसके शिष्य का नाम शांडिलीपुत्र था। रथीतर के किसी स्त्री वंशज का पुत्र होने से, इसे 'राथीतरीपुत्र' नाम प्राप्त हुआ था।

राधगौतम--वंश ब्राह्मण में निर्दिष्ट एक आचार्यद्वय (वं. ब्रा. २)। ये गातुःनामक आचार्य के पुत्र, एवं गौतम नामक आचार्य के शिष्य थे।

राधा--कृष्ण की सुविख्यात प्राणसखी एवं उपासिका, जिसका निर्देश गोपालकृष्ण की बाललिलाओं में पुनः पुनः प्राप्त है। गोकुल में रहनेवाले एवं राधा के साथ नानाविध क्रीडा करनेवाले 'गोपालकृष्ण' का निर्देश पतंजलि के व्याकरण महाभाष्य, महाभारत एवं नारायणीय आदि ग्रंथों में अप्राप्य है। इसके नाम का सर्वप्रथम निर्देश

हरिवंश, वायु एवं भागवत में प्राप्त है, जिनका रचना-काल ई. स. तीसरी शताब्दी माना जाता है।

सृष्टिउपकारक पाँच विष्णुशक्तियों में से राधा एक मानी गयी है (दे. भा. ९.१; नारद. २.८१)। यह संपत्ति की अधिष्ठात्री है, तथा इसे कान्ता, अतिदान्ता, शान्ता, सुशीला, सर्वमंगला, आदि नाम प्राप्त हैं।

लक्ष्मी के दो रूप माने गये हैं--एक राधा एवं दूसरा लक्ष्मी। इसी प्रकार कृष्ण के भी द्विभुज एवं चतुर्भुज ऐसे दो रूप माने गये है। इनमें से द्विभुज कृष्ण गोलोक में निवास करता है, जहाँ राधा उसकी पत्नी है। चतर्भुज कृष्ण वैकुंठ में निवास करता है, एवं वहाँ उसकी पत्नी लक्ष्मी है (ब्रह्मवै. २.४९.५६-५७; दे. भा. ९.१; आदि. ११)। यह गोलोक में नही, बल्कि वैकुंठ में ही रह कर श्रीकृष्ण की सेवा करती है, ऐसा निर्देश भी कई पुराणों में प्राप्त है (दे. भा. ९.१८)।

जन्म—यह गोकुल में वैश्य वृषभानु नामक गोप को कलावती नामक पत्नी से उत्पन्न हुई थी (ब्रह्मवै. २.४९. ३५-४२; नारद. २.८१.)। पद्म में इसे वृषभानु राजा की कन्या कहा गया है। यह राजा यज्ञ के लिए पृथ्वी साफ़ कर रहा था, उस समय, उसे भूमिकन्या के रूप में राधा प्राप्त हुई। पश्चात् उसने इसे अपनी कन्या मान कर इसका भरणपोषण किया (पद्म. ब्र. ७)। कृष्ण के वामांग से यह उत्पन्न हुई, ऐसी कथा भी कई पुराणों में प्राप्त है (ब्रह्मवै. २.१२.१६)।

पृथ्वी पर अवतार--राधा का अवतार पृथ्वी पर किस कारण से हुआ, यह बतानेवाली अनेक कथाएँ पुराणों में प्राप्त हैं, जो काफी कल्पनारम्य प्रतीत होती हैं। कृष्णावतार लेते समय विष्णु ने अपने परिवार के समस्त देवताओं को पृथ्वी पर अवतार लेने के लिए आज्ञा दी। इस आज्ञा के अनुसार, विष्णु की प्रियसखी राधा ने पृथ्वी पर जाना स्वीकार किया, एवं भाद्रपद शुक्ल अष्टमी के दिन, ज्येष्ठा नक्षत्र के चतुर्थ चरण में प्रातःकाल के समय जन्म लिया (आदि. ११)।

नारद के अनुसार, एक बार श्रीविष्णु विरजा नामक गोपी को अपने साथ रासमंडल में ले गये। यह सुनते ही राधा क्रुद्ध हुयी एवं विष्णु के पास गयी। किन्तु वहाँ पहुँचने के पहले ही वे दोनों लुप्त हो गये। बाद में इसने विरजा को पुनः एक बार कृष्ण एवं सुदामा के साथ बैठते हुए देखा। इस कारण इसने श्री विष्णु की काफ़ी निंदा की। जब सुदामा ने इसे खूब डाँटा एवं इसे शाप दिया, 'तुम्हे मानवयोनि में जन्म प्राप्त होगा, जिस समय तुम्हे कृष्ण से काफ़ी विरह सहना पड़ेगा' (नारद. २.८१; ब्रह्मवै. २.४९)।

पश्चात् इसने भी सुदामा को शाप दिया, 'तुमने मुझे बूरा भला कहा है, अतः तुम्हे दानव-योनि में जन्म प्राप्त होगा (दे. भा. ९.१९)। राधा के इस शाप के कारण, सुदामा शंखचूड नामक असुर बन गया (ब्रह्मवै. २.४९. ३४)! पश्चात् कृष्ण ने सुदामा को उःशाप दिया, 'गोलोक का आधा क्षण अर्थात् एक मन्वन्तर तक ही तुम असुर रहोगे। पश्चात् तुम्हे मुक्ति प्राप्त होगी'। नारद में सुदामा की असुर-अवस्था की कालमर्यादा सौ साल दी गयी है (नारद. २. ८१)।

कृष्ण से विवाह—मानव योनि में जन्म लेने के पश्चात् राधा का कृष्ण से विवाह, वैशाख शुक्ल तृतीया के दिन रोहिणी नक्षत्र पर हुआ था (आदि. ११)। किन्तु अन्य पुराणों में गोकुलनिवासी राधा को कृष्ण की सखी बताया गया है, एवं इसके पति का नाम 'रापाण' दिया गया है (ब्रह्मवै. २.४९.३७)।

ब्रह्मवैवर्त के काण्व शाखा में राधा का आख्यान प्राप्त है, जहाँ राधा एवं कृष्ण को एक दूसरे का उपासक कहा गया है (ब्रह्मवै. २. ४८.१२-१३)। राधा एवं कृष्ण के उपासक 'राधाकृष्ण' नाम का जाप कर के इनकी उपासना करते हैं। 'राधाकृष्ण' के स्थान पर 'कृष्णराधा' इस क्रम से नामोच्चारण करने परनरक की प्राप्ती होती है, ऐसी भक्तों की धारणा है (ब्रह्मवै. २. ४९-५९)।

राधा के नामस्मरण का माहात्म्य बतानेवाला एक मंत्र का पाठ राधाकृष्ण के उपासक प्रतिदिन करते है, जो निम्नप्रकार है :--

राशब्दोच्चारणाद्भक्तो राति मुक्तिं सुदुर्लभाम्।
धाशब्दोच्चारणाद् दुर्गे धावत्येव हरेः पदम् ॥
रा इत्यादानवचनो धा च निर्वाणवाचकः।
ततोऽवाप्नोति मुक्तिं च येन राधा प्रकीर्तिता ॥
(ब्रह्मवै. २.४८. ४०; ४२)

राधा की उपासना--राधा एवं कृष्ण की उपासना का प्राचीनतम ग्रंथ 'ज्ञानामृतसार' है, जो 'नारद पंचरात्र' नामक संहिता में समाविष्ट है। इस ग्रंथ के अनुसार, कृष्ण गोलोक नामक दिव्य लोक में निवास करते हैं, जहाँ राधा भी उनकी प्रियतम सखी बन कर रहती है (ज्ञानामृत. २.३.२४)। इस ग्रंथ में राधा को

कृष्ण के बराबर ही श्रेष्ठ माना गया है, एवं इन दोनो की उपासना करने से भक्त को भी गोलोक की प्राप्ति होती है, ऐसा कहा गया है। इस ग्रंथ का रचना काल ई. स. ४ थी शताब्दी माना गया है।

(१) **निंबार्क सांप्रदाय**—राधाकृष्ण संप्रदाय का अन्य एक उपासक निंबार्क माना जाता है, जो ई. स. ११ वी शताब्दी में उत्पन्न हुआ था। निंबार्क स्वयं रामानुज संप्रदाय का था। किंतु जहाँ रामानुज नारायण, एवं उसकी पत्नी लक्ष्मी (भू अथवा लीला) की उपासना पर जोर देते है, वहाँ निंबार्क गोपालकृष्ण एवं राधा के उपासना को प्राधान्य देते हैं। निंबार्क का यह तत्त्वज्ञान 'सनक सांप्रदाय' नाम से सुविख्यात है। निंबार्क स्वयं दक्षिण देश में रहनेवाला तैलंगी ब्राह्मण था, फिर भी वह स्वयं उत्तर भारत में मथुरा एवं वृन्दावन के पास रहता था। इस कारण इसके सांप्रदाय के बहुत सारे लोग उत्तर प्रदेश एवं बंगला में दिखाई देते हैं। ये लोग अपने भालप्रदेश पर गोपीचंदन का टीका लगाते हैं एवं तुलसीमाला पहनते हैं।

(२) **वल्लभ सांप्रदाय**—राधाकृष्ण सांप्रदाय का अन्य एक महान् प्रचारक 'वल्लभ' माना जाता है, जो १५ वीं शताब्दी में उत्पन्न हुआ था। गोकुल में नानाविध बाल-लीला करनेवाला गोपालकृष्ण एवं उसकी प्रियसखी राधा 'वल्लभ संप्रदाय' के अधिष्ठात्री देवता हैं। इस संप्रदाय के अनुसार, गोलोक, जहाँ कृष्ण एवं राधा निवास करते हैं, वह श्रीविष्णु के वैकुंठ से भी श्रेष्ठ है, एवं उस लोक में प्रवेश प्राप्त करना यहीं प्रत्येक साधक का अंतीम ध्येय है।

(३) **सखीभाव सांप्रदाय**—राधाकृष्ण की उपासना का और एक आविष्कार 'सखीभाव' संप्रदाय है, जहाँ साधक स्वयं स्त्रीवेष धारण कर राधा-कृष्ण की उपासना करते हैं। राधा के समान स्त्रीवेष धारण करने से श्रीकृष्ण का साहचर्य अधिक सुलभता से प्राप्त हो सकता है, ऐसी इन लोगों की धारणा है। उन्हें राधाकृष्ण की उपासना का एक काफ़ी विकृत रूप माना जा सकता है (भांडारकर, वैष्णविजम्, पृ. ९३; ११७,१२३; १२६।

(४) **श्री विठ्ठल-उपासना**—महाराष्ट्र में कृष्ण-उपासना का आद्य प्रवर्तक पुंडलीक माना जाता है, जिसकी परंपरा आगे चल कर नामदेव एवं तुकाराम आदि संतों ने चलायी। किन्तु महाराष्ट्र में प्राप्त श्रीविठ्ठल की उपासना में राधा का स्थान श्रीकृष्ण की पत्नी रुक्मिणी के द्वारा लिया गया प्रतीत होता है। रुक्मिणी के कारण श्रीकृष्ण पंढरपुर (पुंडलीकपुर) में आया, तथा श्रीविठ्ठल नाम से प्रसिद्ध हुआ।

२. (सो. अनु.) अधिरथ सूत की पत्नी, जिसे राधिका नामांतर भी प्राप्त था। कुन्ती के द्वारा नदी में छोड़ा गया कर्ण इसे मिला था। इसने उसका नाम वसुषेण रखा था। कर्ण को मिलने के बाद इसे अन्य औरस पुत्र भी हुए थे (म. आ. १०४.१४-१५; व. २९३.१२)।

राधिक—(सो. कुरु.) एक कुरुवंशीय राजा, जो भागवत के अनुसार जयसेन राजा का पुत्र था। विष्णु, वायु एवं मत्स्य में इसे क्रमशः 'आराविन्', 'आराधि' एवं 'रुचिर' कहा गया है।

राधेय—सांख्यायन आरण्यक में निर्दिष्ट एक आचार्य (सां. आ. ७.६)। राधा का वंशज होने से इसे यह नाम प्राप्त हुआ होगा।

२. अंगराज कर्ण का मातृक नाम। अधिरथ सूत की पत्नी राधा ने कर्ण को पाल-पोस कर बड़ा किया था, जिस कारण, उसे यह मातृक नाम प्राप्त हुआ था (कर्ण १. देखिये)।

३. अधिरथ सूत एवं राधा के चार पुत्रों का सामुहिक नाम। भारतीय युद्ध में ये चार ही पुत्र कौरवों के पक्ष में शामिल थे, जिनमें से एक अभिमन्यु के द्वारा, एवं बाकी तीन अर्जुन के द्वारा मारे गये (म. द्रो. ३१.७)।

राम—ऋग्वेद में निर्दिष्ट एक राजा, जहाँ दुःशीम पृथवान् एवं वेन नामक राजाओं के साथ इसके दानशूरता की प्रशंसा की गयी है (ऋ. १०.९३.१४)। लुडविग के अनुसार, इसका पैतृक नाम 'मायव' था (लुडविग, ऋग्वेद का अनुवाद. ३.१६६)।

२. (सो. पुरूरवस्.) एक राजा, जो वायु के अनुसार सेनजित् राजा का पुत्र था। अन्य पुराणों में इसका निर्देश अप्राप्य है।

३. सावर्णि मन्वन्तर का एक ऋषि।

४. श्रीकृष्ण के ज्येष्ठ भ्राता बलराम का नामान्तर।

५. परशुराम जामदग्न्य का नामान्तर

राम औपतस्विनि—एक यज्ञवेत्ता आचार्य, जो उपतस्विन् का पुत्र एवं याज्ञवल्क्य का समकालीन था। 'अंशुग्रह' नामक यज्ञ के संबंधी इसके मतों का निर्देश शतपथ ब्राह्मण में प्राप्त है (श. ब्रा. ४. ६. १. ७)।

राम क्रातुजातेय वैयाघ्रपद्य—एक आचार्य, जो शंग शात्यायनि आत्रेय नामक आचार्य का शिष्य, एवं शंख बाभ्रव्य नामक आचार्य का गुरु था (जै. उ. ब्रा. ३.

४०.१; ४.१६.१)। 'क्रतुजात' एवं व्याघ्रपद्' नामक आचार्यों का वंशज होने के कारण, इसे 'क्रातुजातेय' एवं 'वैयाघ्रपद्य' पैतृक नाम प्राप्त हुए होगे।

राम जामदग्न्य—एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. १०. ११०; कात्यायन सर्वानुक्रमणी)। परशुराम जामदग्न्य एवं यह दोनों एक ही व्यक्ति थे (परशुराम देखिये)।

राम दाशरथि—अयोध्या का एक सुविख्यात सम्राट, जो भारतीयों की प्रातःस्मरणीय विभूति मानी जाती है। यह अयोध्या के सुविख्यात राजा दशरथ के चार पुत्रों में से ज्येष्ठ पुत्र था। ई. पू. २३५०-१९५० यह काल भारतीय इतिहास में अयोध्या के रघुवंशीय राजाओं का काल माना जाता है, जिसके वैभव की परमोच्च सीमा राम दाशरथि के राज्यकाल में हुई।

आदर्श पुरुषश्रेष्ठ--एक आदर्श पुरुषश्रेष्ठ मान कर, वाल्मीकि रामायण में राम का चरित्रचित्रण किया गया है। प्राचीन भारतीय परंपरा के अनुसार, आदर्शपुत्र, आदर्श पति, आदर्श राजा इन तीनो आदर्शों का अद्वितीय संगम राम के जीवनचरित्र में हुआ है। एकवचन, एक-पत्नी, एकबाण इन व्रतों का निष्ठापूर्वक आचरण करनेवाला राम सर्वतोपरी एक आदर्श व्यक्ति है, जिसका सारा जीवन-चरित्र आदर्श जीवन का एक वस्तुपाठ है।अहिंसा, दया, अध्ययन, सुस्वभाव, इंद्रियदमन एवं मनोनिग्रह इन छः गुणों से युक्त एक आदर्श व्यक्ति का जीवनचरित्र लोगों के सम्मुख रखना, यही वाल्मीकि रामायण का प्रमुख हेतु है।

इस दृष्टि से वाल्मीकि रामायण के प्रारंभ के श्लोक दर्शनीय है, जहाँ वाल्मीकि ऋषि नारद से पृथ्वी के एक आदर्श व्यक्ति का जीवनचरित्र सुनाने की प्रार्थना करते है :—

को न्वस्मिन् सांप्रतं लोके, गुणवान् कश्च वीर्यवान्।

(इस पृथ्वी में जो गुणसंपन्न, पराक्रमी, धर्मज्ञ, सत्यवक्ता, दृढव्रत, चारित्र्यवान्, ज्ञाता, लोकप्रिय, संयमी, तेजस्वी ऐसे व्यक्ति का जीवनचरित्र मैं सुनना चहाता हूँ)।

वैयक्तिक सद्गुणों का आदर्श—इस तरह वैयक्तिक सद्गुणों का उच्चतम आदर्श, समाज के सम्मुख रखना यह वाल्मीकि-प्रणीत रामकथा का प्रमुख उद्देश है। इसकी तुलना महाभारत में वर्णित युधिष्ठिर राजा से ही केवल हो सकती है। किन्तु युधिष्ठिर का चरित्रचित्रण करते समय एक तत्त्वदर्शी एवं धर्मनिष्ठ राजा को कौटुंबिक एवं सामाजिक घटक के नाते कदम कदम पर कौनसी कठिनाईयाँ उठानी पडती है, एवं मनस्ताप सहना पड़ता है, इसका चित्रण व्यास-प्रणीत महाभारत में किया गया है। वहाँ व्यक्तिधर्म को गौणत्व दे कर, समाजधर्म एवं राष्ट्रधर्म का चित्रण प्रमुख उद्देश्य माना गया है। उसके विपरीत, व्यक्तिगत सद्गुण एवं वैयक्तिक धर्माचरण का आदर्श राम दाशरथि को मान कर, उसका चरित्रचित्रण वाल्मीकि के द्वारा किया गया है। इस कारण श्रीकृष्ण जैसा राजनीतिज्ञ, अथवा युधिष्ठिर जैसा धर्मज्ञ न होते हुए भी, राम प्राचीन भारतीय इतिहास का एक अद्वितीय पूर्ण-पुरुष प्रतीत होता है।

प्राचीन क्षत्रिय समाज में, जब बहुपत्नीकत्व रूढ था, उस समय एक पत्नीकत्व का आदर्श इसने प्रस्थापित किया था। परशुराम जामदग्न्य के पृथ्वी निःक्षत्रिय करने की प्रतिज्ञा के कारण, सारा क्षत्रिय समाज जब हतप्रभ एवं निर्वीर्य बन गया था, उस समय आदर्श क्षत्रिय व्यक्ति एवं राजा का आचरण कैसा हो, इसका वस्तुपाठ राम ने क्षत्रियों के सम्मुख रख दिया। रावण जैसे राक्षसों के आक्रमण के कारण, जब सारा दक्षिण भारत ही नहीं, बल्कि गंगा घाटी का प्रदेश ही भयभीत हो चुका था, उस समय राम ने अपने पराक्रम के कारण, इस सारे प्रदेश को भीतिमुक्त किया, एवं इस तरह केवल उत्तर भारत में ही नहीं बल्कि दक्षिण भारत में भी आर्य संस्कृति की पुनःस्थापना की। इस तरह एक व्यक्ति एवं एक राजा के नाते राम के द्वारा किया गया कार्य अद्वितीय ऐतिहासिक महत्त्व रखता है।

नाम--यद्यपि उत्तरकालीन साहित्य में 'रामचंद्र' नाम से राम दाशरथि का निर्देश अनेक बार प्राप्त है, फिर भी वाल्मीकि रामायण में सर्वत्र इसे राम ही कहा गया है। क्वचित एक स्थल में इसे चंद्र की उपमा दी गयी है (वा. रा. यु. १०२. ३२)। संभव है, चंद्र से इस सादृस्य के कारण, इसे उत्तरकालीन साहित्य में 'रामचंद्र' नाम प्राप्त हुआ होगा।

जन्म--जैसे पहले ही कहा गया है, ई. पू. २०००-१९५० लगभग यह राम दाशरथि का काल माना गया है। भारतीय परंपरा के अनुसार, वैवस्वत मन्वन्तर के चौबीसवे त्रेतायुग में यह उत्पन्न हुआ था (ह. वं १.४१; वायु. ७०.४८; ब्रह्मांड. ३. ८.५४; ब्रह्म. २१३.१२४; मत्स्य. ४७.२४७; भा. ९.१०.५२; पद्म. पा. ३६)। महाभारत के अनुसार, यह अट्ठाईसवें त्रेतायुग में उत्पन्न

हुआ था (म. स. परि. १. क्र. २१. पंक्ति ४९४–४९५)।

दशरथ राजा को कौसल्या, सुमित्रा एवं कैकेयी नामक तीन पत्नियाँ होते हुए भी कोई भी पुत्र न था। इसी अवस्था में पुत्रप्राप्ति के हेतु उसने ऋष्यशृंग ऋषि से एक 'पुत्रकामेष्टी यज्ञ' कराया। उस यज्ञ में सिद्ध किये गये 'चरु' का आधा भाग दशरथ की पटरानी कौसल्या ने भक्षण किया, जिस कारण यज्ञ के पश्चात् एक साल बाद उसके गर्भ से राम दाशरथि का जन्म हुआ।

राम का जन्म चैत्र शुक्ल नवमी के दिन दोपहर के बारह बजें, जब पाँच ग्रह उच्चस्थिति में थे उस समय हुआ था। उस समय पुनर्वसु नक्षत्र, कर्क लग्न एवं लग्न में गुरुचंद्र योग था (वा. रा. बा. १८.८–९; अ. रा. १. ३; पद्म. उ. २४२)।

अवतार––पौराणिक साहित्य में इसे श्री विष्णु का सातवा अवतार कहा गया है। वाल्मीकि रामायण में इसे अनेक बार श्रीविष्णु के सदृश पराक्रमी कहा गया है (वा. रा. बा. १.३८), किन्तु श्रीविष्णु का अवतार कहीं भी नही कहा गया है। क्वचित् एक स्थान पर जहाँ इसे श्रीविष्णु का अवतार कहा गया है (वा. रा. यु. १.१७), वह भाग प्रक्षिप्त प्रतीत होता है।

उत्तरकालीन साहित्य में रामभक्ति की कल्पना का जों जो विकास होने लगा, तब उसके साथ साथ राम के अवतारवाद की कल्पना भी दृढ़ होती गयी। रामतापनीय उपनिषद् से ले कर अध्यात्मरामायण तक के समस्त राम भक्तिविषयक रचनाओं में राम को केवल विष्णु का ही नहीं, बल्कि साक्षात् परब्रह्म का ही अवतार माना गया है (अ. रा. बा. १)। इन ग्रंथों के अनुसार, जन्म लेते ही अपनी माता कौसल्या को इसने श्रीविष्णु के रूप में दर्शन दिया था (अ. रा. बा. १.३.१३–१५; पद्म. उ. २६९. ८०; आ. रा. १.२.४)। महाभारत के अनुसार, यह मार्कंडेय के अंश से, एवं हरीवंश के अनुसार विश्वामित्र के अंश से उत्पन्न हुआ था। देवी भागवत में राम एवं लक्ष्मण को नरनारायण का अवतार कहा गया है।

स्वरूपवर्णन— राम का स्वरूपवर्णन 'वाल्मीकि रामायण' में प्राप्त है, जिसका पाठन रामभक्त लोग आज भी नित्यपाठ के स्तोत्र की भाँति करते है :-

विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवो महाहनुः।
महोरस्को महेष्वासो, गूढजत्रुररिंदमः॥
आजानुबाहुः सुशिराः, सुललाटः सुविक्रमः।
समः समविभक्ताङ्गः, स्निग्धवर्णः प्रतापवान्॥
पीनवक्षा विशालाक्षो, लक्ष्मीवान् शुभलक्षणः।
धर्मज्ञः सत्यसंधश्च, प्रजानां च हिते रतः॥
विष्णुना सदृशो वीर्ये, सोमवत् प्रियदर्शनः।
कालाग्निसदृशः क्रोधे, क्षमया पृथिवीसमः॥
(वा. रा. बा. १.१०–१८)।

नामकरण एवं शिक्षा––राम का नामकरण दशरथ राजा के कुलगुरु वसिष्ठ के द्वारा हुआ, जिसने 'रामस्य लोक–रामस्य' कह कर इसका नाम 'राम' रख दिया (वा. रा. बा. १८. २९)। नामकरण एवं उपनयन के पश्चात् वसिष्ठ से इसे शस्त्र एवं शास्त्रों की शिक्षा प्राप्त हुई (वा. रा. बा. १८.३६–३७)। इसे यजुर्वेद का भी ज्ञान प्राप्त था (वा. रा. सुं.३५.१४)

वसिष्ठ से उपदेशप्राप्ति––शिक्षा समाप्त होने पर सोलह वर्ष का राम तीर्थयात्रा करने के लिए निकला। इस तीर्थयात्रा को समाप्त करने पर, राम के मन में यकायक विरक्ति की भावना उत्पन्न हुई, एवं धन, राज्य, माता आदि का त्याग कर प्राणत्याग करने के विचार इसके मन में आने लगे :––

किं धनेन किमम्बाभिः किं राज्येन किमीहया।
इति निश्चयमापन्नः प्राणत्यागपरः स्थितः॥
(यो. वा. १.१०.४६)।

राम की यह विलक्षण वैराग्यवृत्ति देख कर वसिष्ठ ने उसे ज्ञानकर्मसमुच्चयात्मक उपदेश प्रदान किया, जो 'योगवासिष्ठ' नामक ग्रंथ में समाविष्ट है।

वसिष्ठ ने राम से कहा, 'आत्मज्ञान एवं मोक्षप्राप्ति के लिए अपना दैनंदिन व्यवहार एवं कर्तव्य छोड़ने की आवश्यकता नही है। जीवन सफल बनाने के लिए कर्तव्य निभाने की उतनी ही ज़रूरत है, जितनी आत्मज्ञान की है:–

उभाभ्यामेव पक्षाभ्यां यथा खे पक्षिणां गतिः।
तथैव ज्ञानकर्मभ्यां जायते परमं पदम्॥
केवलात्कर्मणो ज्ञानान्नहि मोक्षोऽभिजायते।
किन्तूभाभ्यां भवेन्मोक्षः साधनं तूभयं विदुः॥
(यो. वा. १.१.७–८)।

(आकाश में घूमनेवाला पंछी जिस तरह अपने दो पंखों पर तैरता है, उसी तरह ज्ञान एवं कर्मों का समुच्चय करने से ही मनुष्य को जीवन में परमपद की प्राप्ति हो सकती है। केवल ज्ञान अथवा केवल कर्म की उपासना करने

से मोक्ष की प्राप्ति होना असंभव है। इसी कारण इन दोनों का समन्वय कर के ही, ज्ञानी लोग मोक्ष की प्राप्ति कर लेते हैं)।

विश्वामित्रसहवास—राम युवावस्था में प्रविष्ट होने पर, एक बार विश्वामित्र महर्षि दशरथ राजा से मिलने आयें। उन्होंने कहा, 'मैंने दण्डकारण्य में आजकल एक यज्ञ का प्रारंभ किया है, जिसमें मारीच एवं सुबाहु नामक राक्षसों की दुष्टता के कारण, काफ़ी रुकावटें पैदा हो रही है। ये दोंनो राक्षस यज्ञस्थल में आ कर सड़ा हुआ रक्त एवं माँस की वर्षा करते हैं, एवं यज्ञ में बाधा उत्पन्न करते हैं। उन राक्षसों का वध तुम्हारे नवयुवा पुत्र राम एवं लक्ष्मण ही केवल कर सकते हैं। उन्हें मेरी सहाय्यता के लिए दण्डकारण्य में भेजने की आप कृपा करे'।

वसिष्ठ की सूचना के अनुसार, दशरथ राजा ने विश्वामित्र की यह प्रार्थना मान्य कर दी, एवं राम लक्ष्मण को विश्वामित्र के साथ जाने की आज्ञा दी। कमर को विजयशाली तलवार एवं कंधे पर धनुष्य एवं बाण लगाये हुए राम एवं लक्ष्मण विश्वामित्र के साथ दण्डकारण्य की ओर चल पड़े।

दण्डकारण्य जाते समय इन्होंने सर्व प्रथम सरयू नदी पार की। उसी नदी के तट पर विश्वामित्र ने रामलक्ष्मण को 'बल' एवं 'अतिबल' नामक मंत्रों का ज्ञान कराया, जिनके कारण भूख एवं प्यास को सहन करने की ताकद इन्होंमें उत्पन्न हुई। तत्पश्चात् अंगदेश में स्थित कामाश्रम में ये पहुँचे, जहाँ विश्वामित्र ने इन्हें मदनदाह की कथा सुनाई (वा. रा. बा. ३२-४८)।

ताटकावध—तदोपरान्त गंगा नदी पार कर ये दण्डकारण्य में आ पहुँचे, जहाँ विश्वामित्र ने इन्हें दण्डकारण्य का पूर्व इतिहास बताया, एवं कहा, 'आज जहाँ तुम घना जंगल देख रहे हो, वहाँ पूर्वकाल में अगस्त्य ऋषि का संपन्न देश था। सुंद राक्षस की पत्नी ताटका एवं उसका पुत्र मारीच के कारण, यहाँ की सारी वस्ती आज उजड़ गयी है। ताटका में बीस हाथियों का बल है, जिसकारण उसे समस्त पौरजन डरते है। ऋषिमुनियों को पीड़ा देनेवाली उस राक्षसी का वध करने के लिए ही मैं आज तुम्हें यहाँ लाया हूँ'।

ताटका स्त्री होने के कारण, उसके हाथ एवं पैर ही तोड़ कर उसे हतबल बनाने का पहले इसका विचार था। किन्तु ताटका के द्वारा आकाश में से पत्थरों का मारा किये जाने पर, इसने अपना एक बाण छोड़ कर उस महाकाय एवं विरूप राक्षसी का वध किया, एवं उसके द्वारा विजन किये गये मलद एवं करुषक देशों को पुनः आबाद बनाया (वा. रा. बा. २४)।

मारीच एवं सुबाहु से युद्ध—ताटकावध के पश्चात् विश्वामित्र रामलक्ष्मणों को साथ ले कर सिद्धाश्रम में गये, जहाँ उनका यज्ञसमारोह चल रहा था। वहाँ पहुँचने पर विश्वामित्र ने इससे कहा, 'यह वहीं स्थान है, जहाँ बलि वैरोचन के वध के लिए भगवान् विष्णु ने वामनावतार धारण किया था। इस स्थान पर मेरा आश्रम बसा हुआ है, एवं यहाँ मैंनें यज्ञ समारोह भी प्रारंभ किया है। किन्तु मारीच एवं सुबाहु राक्षसों के कारण, यज्ञकार्य आज असम्भव हो रहा है। इस कारण मेरी यही इच्छा है कि, तुम उनसे युद्ध कर उन्हें परास्त करो'।

विश्वामित्र की आज्ञा के अनुसार, राम एवं लक्ष्मण ने छः दिन अहोरात्र यज्ञमंडप में कड़ा पहारा किया। छठे दिन प्रातःकाल के समय, मारीच एवं सुबाहु ने यज्ञभूमि पर आक्रमण किया। राम ने मानवास्त्र का प्रयोग कर, मारीच को शतयोजन की दूरी पर समुद्र में फेंक दिया, एवं 'अग्नि अस्त्र' से सुबाहु का वध किया।

अहल्योद्धार—इस प्रकार विश्वामित्र का कार्य समाप्त कर, राम एवं लक्ष्मण ने अयोध्या नगरी के लिए पुनः प्रस्थान किया। मार्ग में विश्वामित्र ने इन्हें गंगा नदी की कथा सुनाई। कान्यकुब्ज देश, शोण नदी, भागीरथी नदी, विशाला नगरी आदि तीर्थस्थानों का दर्शन लेते हुए ये मिथिला नगरी के समीप ही स्थित गौतमाश्रम में आ पहुँचे। वहाँ विश्वामित्र ने राम को अहल्या की कथा सुनाई, एवं तत्पश्चात् राम ने अपने पदस्पर्श से उस शापित स्त्री का उद्धार किया (वा. रा. बा. २७)।

कई अभ्यासकों के अनुसार, राम के द्वारा किये गये ताटकावध एवं अहिल्योद्धार, ये दोनो कथाएँ रूपकात्मक हैं। दण्डकारण्य प्रदेश प्राचीन काल में गंगा नदी तक फैला हुआ था। उसे राक्षसों की पीड़ा से मुक्त कर वहाँ की बंजर भूमि को राम ने पुनः सुजला एवं सुफला बना दिया, यही इन दोनों कथाओं का वास्तव अर्थ प्रतीत होता है (अहल्या देखिये)।

सीतास्वयंवर—पश्चात् विश्वामित्र की सूचना के अनुसार, ईशान्य की ओर मुड़ कर राम एवं लक्ष्मण सीरध्वज जनक राजा की मिथिला नगरी में सीतास्वयंवर के लिए पधारे। वहाँ राम ने जनक राजा के द्वारा लगायी गयी सीतास्वयंवर की शर्त के अनुसार, शिवधनुष को लीलया उठा कर उसे बाण लगाया, जिस समय शिव-

धनुष भंग हो कर उसके दो टुकड़े हुयें। पश्चात् जनक राजा ने राम को सीता विवाह में दे दी, एवं कहाः--

इयं सीता मम सुता, सहधर्मचरी तव ॥
प्रतीच्छ चैनां भद्रं ते, पाणिं गृह्णीष्व पाणिना।
पतिव्रता महाभागा, छायेवानुगता सदा ॥
(वा. रा. बा. ७३.२६-२७)।

(मेरी कन्या सीता आज से धर्म मार्ग पर चलते समय तुम्हें साथ देगी। साया के समान वह तुम्हारे साथ रहेगी। उसका तुम स्वीकार करो)

उत्तर भारत में विवाहान्तर्गत कन्यादान के समय इन श्लोकों का आज भी बड़ी श्रद्धा भाव से पठन किया जाता हैं।

राम के विवाह के समय, जनक राजा नें राम के भाई लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्न के विवाह क्रमशः ऊर्मिला, मांडवी एवं श्रुतकीर्ति से करायें। उनमें से उर्मिला स्वयं जनक की, एवं माण्डवी एवं श्रुतकीर्ति जनक के छोटे भाई कुशध्वज की कन्याएँ थी (वा. रा. बा. ७३)।

वाल्मीकि रामायण में अन्यत्र लक्ष्मण अविवाहित होने का, एवं भरत का विवाह सीतास्वयंवर के पहले ही होने का निर्देश प्राप्त है (वा. रा. अर. १८.३; बा. ७३.४)। इन निर्देशों को सही मान कर, कई अभ्यासक राम के साथ साथ उसके अन्य भाईयों का विवाह होने का वाल्मीकि रामायण में प्राप्त निर्देश प्रक्षिप्त मानते हैं।

परशुराम से संघर्ष—विवाह के पश्चात् अयोध्या आते समय, यकायक परशुराम ने राम के मार्ग का अवरोध किया। उसने राम से कहा, 'मेरे गुरु शिव के धनुष का भंग कर तुमने उनका अवमान किया है। मैं यही चाहता हूँ कि, मेरे हाथ में जो विष्णु का धनुष्य है उसका भी भंग कर तुम्हारें ताकद की प्रचीति मुझे दो'।

इस पर राम ने परशुराम से कहा, 'अपने पिता के वध का बदला लेने के लिए पृथ्वी के समस्त क्षत्रियों की नाश करने के लिए आप उद्यत हुए है, किन्तु अन्य क्षत्रियों की भाँति मैं आपकी शरण में न आऊँगा'। इतना कह कर राम ने परशुराम के विष्णुधनुष का भी भंग किया, जिस पर परशुराम इसकी शरण में आया।

इस तरह बड़ी उद्दण्डता से क्षत्रियसंहार के लिए तुले हुए परशुराम को राम ने परास्त किया, एवं पृथ्वी पर बचे हुए क्षत्रियों का रक्षण किया (वा. रा. बा. ७६-७७)।

यौवराज्याभिषेक--विवाह के समय राम एवं सीता की आयु पंद्रह एवं छः वर्षों की थी। अयोध्या में आने के पश्चात् बारह वर्षों तक राम तथा सीता का जीवन परस्परों के सहवास में अत्यंत आनंद से व्यतीत हुआ। अपने सद्गुण एवं धर्मपरायणता के कारण यह अपने पौरजनों में भी काफ़ी लोकप्रिय बना था।

इसकी आयु सत्ताईस वर्षों की होने पर, दशरथ राजा ने से यौवराज्याभिषेक करने का निश्चय किया। इस समय उसने अपने सभाजनों से कहा, 'राम राजकारण में कुशल है, एवं शौर्य में इसकी बराबरी करनेवाला क्षत्रिय आज पृथ्वी पर नहीं है। इसी कारण मैं अपने सारे पुत्रों में से राम को ही यौवराज्याभिषेक करना चाहता हूँ'।

इस तरह राम के यौवराज्याभिषेक का दिन चैत्र माह में पुष्यनक्षत्र में निश्चित किया गया। यौवराज्याभिषेक के अगले दिन रात्रि में राम तथा सीता ने उपोषण किया एवं दर्भासन पर निद्रा की। तत्पश्चात् होमहवनादि धार्मिक विधि भी कियें। दूसरे दिन प्रातःकाल में यह यौवराज्याभिषेक के लिए निकल ही रहा था, इतने में दशरथ राजा की ओर से सुमंत्र की हाथों इसे बुलावा आया।

कैकेयी से संभाषण--उस बुलावे के अनुसार, कैकेयी के महल में बैठे हुए अपने पिता से मिलने जाने पर, दशरथ ने इससे कोई भी भाषण न किया। फिर कैकेयी ने राम से कहा, 'दशरथ राजा तुमसे कुछ कहना चाहते हैं, किन्तु तुम्हारे प्रेम के कारण, कह नहीं पातें। इस अवस्था में तुम्हारा यही कर्तव्य है, कि उनकी इच्छा का तुम पालन करो'।

इसपर दशरथ राजा की हर एक इच्छा का पालन करने का अपना दृढनिश्चय व्यक्त करते हुए राम ने कहा :—

'अहं हि वचनाद्राज्ञः, पतेयमपि पावके ॥
भक्षयेयं विषं तीक्ष्णं, पतेयमपि चार्णवे।
नियुक्तो गुरुणा पित्रा, नृपेण च हितेन च ॥
तद्ब्रूहि वचनं देवि, राज्ञो यदभिकांक्षितम्।
करिष्ये प्रतिजाने च, रामो द्विर्नाभिभाषते ॥'
(वा. रा. अयो. १८.२८-३०)।

(दशरथ के द्वारा आज्ञा किये जाने पर, मैं अग्निप्रवेश, विषभक्षण आदि के लिए भी सिद्ध हूँ। क्यों कि, दशरथ राजा मेरा पिता, गुरु, एवं हितदर्शी है। अतः राजा का मनोगत बताने की कृपा आप करें। उसका तुरंत ही पालन किया जाएगा, यही मेरी आन है। मैं सत्यप्रतिज्ञ हूँ, एवं प्रतिज्ञा का पालन करना अपना धर्म समझता हूँ।)

राम के इस कहने पर कैकेयी ने देवासुरयुद्ध के समय, दशरथ राजा के द्वारा दिये गये दो वरों की कथा कह सुनाई, एवं कहा, 'ये वर मैंने राजा से आज माँग लिये है, जिसके अनुसार अयोध्या का राज्य मेरे पुत्र भरत को प्राप्त होगा, एवं तुम्हें चौदह वर्षों के लिए वनवास जाना पडेगा'।

इस पर राम ने जीवनमुक्त सिद्ध की भाँति 'शुभ छत्र' एवं अन्य राजभूषणों का त्याग किया, एवं स्वजन एवं पौरजनों से बिदा ले कर वन की ओर प्रस्थान किया (वा. रा. अयो. २०.३२-३४)।

राम का वनगमन का यह निश्चय सुन कर इसकी माता कौसल्या, एवं बन्धु लक्ष्मण ने इसे इस निश्चय से परावृत्त करने का काफ़ी प्रयत्न किया। लक्ष्मण ने इसे कहा, 'बुढ़ापे के कारण, दशरथ राजा की बुद्धि विनष्ट हो चुकी है। इस कारण, उसकी आज्ञा का पालन करने की कोई भी जरुरत नही है'।

इन आक्षेपों को उत्तर देते समय, एवं अपनी तात्त्विक भूमिका का विवरण करते हुए राम ने कहा—

धर्मोहि परमो लोके धर्मे सत्यं प्रतिष्ठितम्।
धर्मसंश्रितमप्येतत्पितुर्वचनमुत्तमम्॥
(वा. रा. अयो. २१.४१)।

(इस संसार में धर्म सर्वश्रेष्ठ है, एवं धर्म ही सत्य का अधिष्ठान है। मेरे पिता ने जो आज्ञा मुझे दी है, वह भी इसी धर्म का अनुसरण करनेवाली है)।

राम ने आगे कहा, 'राजा का यही कर्तव्य है कि वह सत्यमार्ग से चले। राजा के द्वारा असत्याचरण किये जाने पर, उसकी प्रजा भी असत्यमार्ग की ओर जाने की संभावना हैं'।

वनवास—राम के साथ इसका भाई लक्ष्मण, एवं इसकी पत्नी सीता इसके साथ वनवास में गये। ये तीनों अयोध्या छोड़ कर सायंकाल के समय पैदल ही तमसा नदी पर आयें, जहाँ अयोध्या के समस्त पौरजन वनवासगमन की इच्छा से इनके साथ आये। प्रातःकाल के समय वनवासगमन के लिए उत्सुक पौरजनों को भुलावा दे कर राम, सीता तथा लक्ष्मण के साथ आगे बढ़े। तत्पश्चात् वेदश्रुति, स्यंदिका, गोमती आदि नदियों को पार कर, ये दक्षिण दिशा की ओर जाने लगे (वा. रा. अयो. ४९)।

अयोध्या राज्य के सीमा पर पहुँचते ही इसने अयोध्या एवं वहाँ की देवताओं को पुनः एकबार वंदन किया। पश्चात् शृंगवेरपुर नगरी के समीप भागीरथी नदी को पार कर, निषादराज गुह ने इसे दक्षिण की ओर पहुँचा दिया। वहाँ पहुँचते ही राम ने पुनः एकबार लक्ष्मण को अयोध्या लौट जाने के लिए कहा, किन्तु लक्ष्मण अपने निश्चय पर अटल रहा (वा. रा. अयो. ५३)।

बाद में प्रयाग आ कर राम ने भरद्वाज से मुलाकात की, एवं वनवास के चौदह साल शान्तता से कहाँ बिताये जा सकेंगे, इसके संबंध में उस मुनि की सलाह ली। भरद्वाज ने इन्हें चित्रकूट पर्वत पर पर्णकुटी बना कर रहने की सलाह दी। इस सलाह के अनुसार, कालिंदी नदी को पार कर यह चित्रकूट पर्वत पर पहुँच गया, जहाँ पर्णकुटी बना कर रहने लगा।

तत्पश्चात् भरद्वाज ऋषि को साथ ले कर, भरत इससे मिलने चित्रकूट आया। वहाँ दशरथ राजा की मृत्यु की वार्ता उसने इसे सुनाई, एवं अयोध्या नगरी को लौट आने की इसकी बार बार प्रार्थना की। इसने उसे कहा, 'जो कुछ हुआ है, उसके संबंध में अपने आप को दोष दे कर, तुम दुःखी न होना। जो कुछ हुआ है उसमें किसी मानव का दोष नहीं, वह ईश्वर की इच्छा है। इस कारण तुम वृथा शोक मत करो, बल्कि अयोध्या जा कर, राज्य का सम्हाल करो। यही तुम्हारा कर्तव्य है'।

दण्डकारण्यप्रवेश—भरत के अयोध्यागमन के पश्चात् राम को चित्रकूट पर्वत पर रहने में उदासीनता प्रतीत होने लगी। इस कारण, इसने चित्रकूट पर्वत को छोड़ कर दक्षिण में स्थित दण्डकारण्य में प्रवेश किया। वहाँ सर्वप्रथम यह अत्रि ऋषि के आश्रम में गया, एवं उसका एवं उसकी पत्नी अनसूया का दर्शन लिया।

आगे चल कर घोर अरण्य प्रारंभ हुआ, जहाँ इसने विराध नामक राक्षस का वध किया। तत्पश्चात् यह शरभंग ऋषि के आश्रम में गया, जहाँ उस ऋषि ने अपनी सारी तपस्या का दान कर, इसे पुनः राज्य प्राप्त करा देने का आश्वासन दिया। किन्तु इसने अत्यंत नम्रता से उसका इन्कार किया, एवं यह सुतीक्ष्ण ऋषि के आश्रम में गया। वहाँ जाते समय इसे राक्षसों के द्वारा मारे गये तपस्वियों की हड्डियों का ढेर दिखाई दिया, तब इसने वहाँ स्थित ऋषियों को आश्वासन दिया, 'मैं अब इसी वन में रह कर राक्षसों की पीड़ा से तुम्हारी रक्षा करूँगा' (वा. रा. अर. ७)।

राक्षस-विरोध—राक्षस संहार की राम की इस प्रतिज्ञा को सुन कर सीता ने इसे इस प्रतिज्ञा से परावृत्त करने

का प्रयत्न किया। उसने कहा, 'राक्षसों का संहार कर, ऋषिकुलों का रक्षण करना चतुरंगसेनाधारी राजा का कर्तव्य है; हमारे जैसे एकाकी एवं शस्त्र-विहीन वनवासियों का नहीं। इसी कारण, स्वसंरक्षण के अतिरिक्त अन्य किसी कारण से भी राक्षसों का वध करना हमारे वनवासधर्म के लिए योग्य नहीं है'।

इस पर राम ने कहा, 'ब्राह्मणों को अभयदान देना, यह हर एक क्षत्रिय का कर्तव्य है, चाहे वह राज्य पर हो या न हो। मैंने ऋषियों को अभयदान दिया है। अब चाहे आकाश भी गिर पड़े; मैं अपनी प्रतिज्ञा से हरनेवाला नहीं हूँ'।

राम के इसी प्रतिज्ञा के कारण, दण्डकारण्यनिवासी राक्षसों से इसका शत्रुत्व उत्पन्न हुआ, एवं सीताहरण, रावण से युद्ध आदि अनेकानेक आपत्तियाँ इसके वनवास काल में उत्पन्न हुयीं।

इस तरह दण्डकारण्य के, ऋषियों के सहवास में राम ने अपने वनवास के दस साल बितायें। कई आश्रम में यह तीन महिनें रहा, तथा कहींकहीं यह एक साल तक भी रहा। जहाँ जहाँ यह गया, वहाँ इसका हार्दिक स्वागत ही हुआ।

इस प्रकार दस साल बड़े ही आनंद से बिताने के बाद, यह अगस्त्य एवं लोपामुद्रा के दर्शन के लिए अगस्त्य आश्रम में गया। वहाँ अगस्त्य ने इसे विश्वकर्मा के द्वारा भगवान् विष्णु के लिए बनाया गया दिव्य धनुष्य, एवं अक्षय्य तुणीर प्रदान किये, एवं पंचवटी में रह कर वहाँ के राक्षसों का संपूर्ण नाश करने का आदेश इसे दिया (वा. रा. अर. १२.२४-३०)।

पंचवटी में—तत्पश्चात् राम पंचवटी में पर्णकुटी बाँध कर रहने लगा। वहाँ गरुड के भाई अरुण का पुत्र जटायु इनसे मिला, एवं उसने रामलक्ष्मण का आश्रम में न होने के काल में, सीता के संरक्षण का भार स्वीकार लिया (वा. रा. अर. १४)।

शूर्पणखावध—पंचवटी में वास करते समय, एक बार लंकाधिपति रावण की बहन शूर्पणखा राम से मिलने आई। इसे देख कर उसकी कामवासना जाग्रत हुई, एवं उसने इससे विवाह करने की इच्छा प्रकट की। फिर इसकी आज्ञा के अनुसार, लक्ष्मण ने उस राक्षसी के नाक एवं कान काट दियें; तथा उसके भाई खर एवं उसके दूषण, त्रिशिरस् आदि चौदह सेनापतियों का भी वध किया।

पंचवटी में हुयें राक्षससंहार से अकंपन नामक एक राक्षस ही केवळ बच सका, जिसने एवं शूर्पणखा ने लंकाधिपति रावण को जनस्थान प्रदेश में पंचवटी ग्राम में राम के द्वारा किए गये राक्षससंहार की वार्ता कह सुनाई।

सीताहरण—इस पर रावण ने मारीच नामक अपने 'कामरूपधर' (मन चाहे रूप धारण करनेवाले) मित्र से कांचनमृग का रूप धारण करने के लिए कहा, एवं उसकी सहाय्यता से रामलक्ष्मण को आश्रम से बाहर निकाल कर, ऋषिवेश में सीता का हरण किया।

उसी समय सीता के द्वारा पुकारे जाने पर जटायु ने रावण से युद्ध किया। किंतु रावण ने उसके दोनों पंख काट लियें, जिस कारण वह आहत हो कर मूर्च्छित गिर पड़ा।

बाद में जब रामलक्ष्मण सीता को ढूँढने के लिए निकले, तब जटायु ने इन्हें रावण के द्वारा सीता के हरण किये जाने की, एवं दक्षिण की ओर प्रस्थान करने की वार्ता कह सुनाई। इतना कह कर जटायु ने देहत्याग किया। जटायु की मृत्यु देख कर राम अत्यधिक विह्वल हुआ, एवं इसने उसे साक्षात् अपना पिता मान कर उसका दाहसंस्कार किया (वा. रा. अर. ७२)।

कबंधवध—जटायु के दाहकर्म के पश्चात, सीता की खोज करते हुए राम एवं लक्ष्मण अगस्त्याश्रम की ओर मुड़े। मार्ग में इन्हें कबंध नामक एक राक्षस मिला, जिसका राम ने वध किया। मरते समय, कबंध ने सीता की मुक्ति के लिए, ऋष्यमूक पर्वत पर पंपा सरोवर के किनारे वनवासी अवस्था में रहनेवाले सुग्रीव वानर की सहाय्यता लेने की राम को सलाह दी। तदनुसार राम ऋष्यमूक पर्वत की ओर मुड़ा, जहाँ जाते समय, इसने मतंगाश्रम में मतंग ऋषि की शिष्या शबरी के आतिथ्य का स्वीकार किया।

वालिवध—बाद में यह सप्तसागर तीर्थ पर जा कर, पंपा सरोवर की ओर चल पड़ा, जहाँसे यह ऋष्यमूक पर्वत पर पहुँच गया। अपने भाई वालि के द्वारा विजनवासी किया गया सुग्रीव, राम को देख कर शंकित हुआ, जिस कारण उसने अपने मंत्री हनुमत् को राम के पास भेज दिया।

हनुमत् ने बड़ी कुशाग्र बुद्धि से इसका परिचय पूछा, एवं अंत में अपनी पीठ पर बिठा कर सुग्रीव के पास ले आया। सुग्रीव एवं राम ने आपस में मिल कर बात की, एवं पश्चात् अग्नि की सौगंध खा कर, परस्परों को सहाय्यता

करने की प्रतिज्ञा की। सीताहरण के समय गिरें हुए आभूषण सुग्रीव ने इसे बतायें। इसी समय, राम ने वालि के वध की प्रतिज्ञा की। पश्चात् वालि एवं सुग्रीव का घमासान युद्ध होते समय, वही सुअवसर मान कर, वृक्ष के पीछे से इसने एक बाण वालि पर छोड़ दिया, एवं उसका वध किया (वा. रा. कि. २६.१४)।

वालि का आक्षेप--राम ने वालिवध करते समय जो कपटाचरण किया, वह क्षत्रिययुद्धनीति के विरुद्ध माना गया है। इस युद्ध के पूर्व वालि ने अपनी पत्नी तारा से राम के संबंध में कहा था--

'धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च कथं पापं करिष्यति'।

(वा. रा. कि. १६)।

(राम धर्मज्ञ एवं कृतज्ञ होने के कारण, उसके हाथों कौनसा भी पापकर्म होना असंभव है)।

इसी कारण, मृत्यु के समय, वालि ने राम को उसके कपटाचरण के लिए काफ़ी दोष दिया, जिसका कोई भी उत्तर राम न दे सका। राम ने उसे इतना ही कहा, 'अपने भाई के राज्य एवं पत्नी का अपहरण करनेवाले तुम, अत्यंत पापी हो, जिस कारण मैंने तुम्हारा वध किया है (वा. रा. कि. १७-१८)। रे. बुल्के के अनुसार, राम-वालि संवाद के ये दोनों सर्ग प्रक्षिप्त है (रामकथा पृ. ४७९)।

सीता की खोज--वालिवध के पश्चात्, राम ने किष्किंधा के राज्य पर सुग्रीव को राज्याभिषेक किया। अनन्तर वर्षाऋतु अर्थात श्रावण से कार्तिक मास तक के चार महिने राम ने प्रस्त्रवणगिरी के एक गुफा में बितायें (वा. रा. कि. २७-२८)।

वर्षाकाल समाप्त होने पर भी, जब सुग्रीव ने सीताशोध के संबंध में कोई प्रयत्न नहीं शुरु किया, तब राम ने लक्ष्मण के द्वारा उसकी काफ़ी निर्भत्सना की। फिर सुग्रीव ने सीता की खोज़ के लिए नाना दिशाओं में अपने निम्नलिखित वानर सेनापति भेज दियें:--उत्तर दिशा में-शतबली; पूर्व दिशा में-विनत; पश्चिम दिशा में-सुषेण; दक्षिण दिशा में--हनुमत्, तार एवं वालिपुत्र अंगद (वा. रा. कि. २९-४७)। हनुमत् के साथ गयें वानर-सैन्य में निम्नलिखित वानर भी शामिल थे:--अनंग, नील, सुहोत्र, शरारि, शरगुल्म, नज, गवाक्ष, गवय, वृषभ, सुषेण, मैंद, द्विविद, गंधमादन, उल्कामुख, एवं जांबवत् (वा. रा. कि. ४१)।

उपर्युक्त सेनापतियों में से हनुमत् की योग्यता जान कर राम ने उसे 'अभिज्ञान' के रूप में 'स्वनामांकोपशोभित' अंगुठी सौंप दी थी (वा. रा. कि. ४४.१२)। रे. बुल्के के अनुसार, वाल्मीकि रामायण में प्राप्त वानरों के प्रेषण की अधिकांश सामग्री प्रक्षिप्त है (रामकथा पृ. ४८६)।

हनुमत् एवं उसके साथियों ने विंध्य पर्वत की गुफाओं में, एवं ऋक्षबिल गुफा में, सीता का शोध किया। वह न लगने पर, सभी वानर निरुत्साहित हो कर प्रायोपवेशन करने लगे। इतने में जटायु के भाई संपाति ने एक सौ योजना की दूरी पर समुद्र में निवास करनेवाले रावण का पता वानरों को बताया। फिर हनुमत् ने समुद्र लाँघ कर सीता का शोध लगाया। इस कालावधी में सारे वानर एक पैर पर खड़े हो कर तपस्या करते रहे (वा. रा. कि. ६७.३४)।

लंका पर आक्रमण--मसीता को ढूँढ निकालने के उपलक्ष्य में राम ने हनुमत् की बड़ी प्रशंसा की, एवं लंका के बारे में सारी जानकारी भी प्राप्त की। पश्चात् नील को सेनापति बना कर, उत्तर फाल्गुनी नक्षत्र के सुमुहूर्त पर इसने लंका की ओर प्रयाण किया। इस तरह यह महेन्द्रपर्वत के शिखर पर आ पहुँचा (वा. रा. यु. १-५)

जब हनुमत् सीता से मिल कर वापस आया, तब उसके पराक्रम के कारण, रावण के मंत्रिमंडल में काफ़ी कोलाहल मच गया। रावण के छोटे भाई बिभीषण ने उसे सलाह दी कि, सीता को जल्द वापस किया जाए। रावण के द्वारा उसे इन्कार किये जाने पर, अपने अनल, पनस, संपाति एवं प्रमति नामक चार प्रधानों के साथ, बिभीषण राम के पक्ष में शामिल होने के लिए उपस्थित हुआ।

बिभीषण से मित्रता--बिभीषण को अपने पक्ष में शामिल करने के संबंध में सुग्रीवादि वानर शुरु में अत्यंत नाराज़ थे। किन्तु, उस समय राम ने कहा--

बद्धांजलिपुटं दीनं याचन्तं शरणागतम्।
न हन्यादानृशंस्यार्थमपि शत्रुं परंतप ॥

(वा. रा. यु. १८.२७)

(शरण में आये हुए किसी भी व्यक्ति को, उसके सारे प्रमादों की माफ़ी कर उसे अभयदान देना, यह मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ।)

राम ने आगे कहा, 'इस समय, साक्षात् रावण भी मेरी शरण में आएगा, तो उसे भी मैं अभयदान दूँगा'। बिभीषण के द्वारा किया गया रावण पक्ष का त्याग, एवं

राम के द्वारा उसे दिया गया अभयदान, ये दोनों प्रसंग वैष्णव धर्म की परंपरा में 'भगवद्गीता' के समान ही महत्त्वपूर्ण एवं पवित्र माने जाते हैं।

पश्चात् इसने बिभीषण को रावण का वध कर, उसे लंका का राजा बनाने का आश्वासन दिया। बिभीषण ने भी इसे वचन दिया कि, वह रावणवध में इसकी सहाय्यता करेगा (वा. रा. यु. १७-१९)।

राम के द्वारा लंका पर आक्रमण होने के पूर्व, रावण ने अपने शुक नामक गुप्तचर के द्वारा, सुग्रीव को अपने पक्ष में लाने का प्रयत्न किया, किन्तु सुग्रीव ने उसकी उपेक्षा की।

सेतुबंध—लंका में पहुँचने के लिए समुद्र पार करना आवश्यक था। समुद्र में मार्ग प्राप्त करने के लिए, इसने कुशासन पर आधिष्ठित हो कर, एवं तीन दिनों तक प्रायोपवेशन कर, समुद्र की आराधना की। किन्तु समुद्र ने इसे मार्ग न दिया, जिस कारण इसने क्रुद्ध हो कर समुद्र पर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया (वा. रा. यु. २१)। तत्पश्चात् समुद्र इसकी शरण में आया, एवं विश्वकर्मापुत्र नल के द्वारा समुद्र पर वृक्षों तथा पत्थरों से एक सेतु बाँधने की उसने इसे सलाह दी।

नील के द्वारा निर्माण किया गया यह सेतु सौ योजन लंबा था, जो उसने पाँच दिनों में, प्रतिदिन चौदह, बीस, इक्कीस, बाइस, तेइस योजन इस क्रम से तैयार किया था। इस सेतु के द्वारा, ससैन्य, समुद्र को लाँघ कर यह लंका पहुँच गया (वा. रा. यु. २२.४१-७७)। वहाँ 'सुवेल पर्वत' के समीप इसने पड़ाव डाले (वा. रा. यु. २३-२४)।

लंका का अवरोध—वानर सेना के समुद्र पार करने के बाद, रावण ने शुक, सारण एवं शार्दूल नामक अपने गुप्तचरों को वानरवेश से राम सेना की ओर भेज दिया, तथा रामसेना की गणना करने के लिए कहा। किंतु बिभीषण ने उनको पहचान लिया, एवं राम के संमुख पेश किया। पश्चात् वे शरण आने के कारण, राम ने उन्हें जीवनदान दिया (वा. रा. यु. २५-२७)। रे. बुल्के के अनुसार, वाल्मीकि रामायण में प्राप्त गुप्तचरों का यह वृत्तांत, एवं तत्पश्चात् दिया गया राम के कटे हुए मायाशीर्ष का वृत्तांत प्रक्षिप्त है (रामकथा पृ. ५५५-५५६)।

युद्ध के पूर्व, राम ने अपनी सेना को सुसंघटित बनाया, जिसमें अंगद को लंका के दक्षिण द्वार पर, हनुमत् को पश्चिम द्वार पर, एवं नील को पूर्व द्वार पर आक्रमण के लिए नियुक्त किया गया। लंका के उत्तर द्वार पर, लक्ष्मण की सहाय्यता से राम ने रावण से स्वयं ही सामना देने का निश्चय किया (वा. रा. यु. ३७)।

दूतप्रेषण—रावण से युद्ध शुरू करने के पूर्व, राम ने सुवेल पर्वत पर चढ़ कर लंका का निरीक्षण किया। उसी समय, सुग्रीव सहसा पर्वत पर चढ़ कर लंका का के गोपुर पर कूद पड़ा, एवं वहाँ अकेले ही उसने रावण को द्वंद्वयुद्ध में परास्त किया (वा. रा. यु. ४०)।

तत्पश्चात् बिभीषण के परामर्श पर, राम ने अंगद के द्वारा रावण को संदेश भेजा, 'यदि तुम सीता को नहीं लौटाओगे, तो मैं सारे राक्षसों के साथ तुम्हारा संहार करूँगा'। अंगद के मुँह से राम का यह संदेश सुन कर, रावण ने उसका वध करने का आदेश दिया। चार राक्षसों ने अंगद को पकड़ना चाहा, किंतु अंगद उन चारों को उठा कर इतने वेग से एक भवन पर कूद पड़ा कि, वे राक्षस निःसहाय्य भूमि पर गिर पड़े। पश्चात् अंगद उस भवन ढहा कर, सुरक्षितता से राम के पास आ पहुँचा। राम ने जब समझ लिया कि, किसी प्रकार मित्रता के साथ युद्ध टालना असंभव है, तब इसने अपने सेनापति नील को युद्ध शुरु करने की आज्ञा दे दी (वा. रा. यु. ४१-४२)।

प्रथम दिन—लंका को वानरसेना से अवरुद्ध जान कर, रावण ने उसका सामना करने के लिए अपनी सेना को भेज दिया। इस समय राम एवं इसके सहयोगियों के द्वारा निम्नलिखित राक्षस योद्धा मारे गये :—राम के द्वारा—अग्निकेतु, रश्मिकेतु, मित्रघ्न एवं यज्ञकेतु; प्रजंघ के द्वारा—संपाति; सुग्रीव–प्रघस; लक्ष्मण–विरूपाक्ष; मैंद–वज्रमुष्टि; नील–निकुंभ; द्विविद–अशनिप्रभ; सुषेण–विद्युन्मालिन्; गजवर–तपन; हनुमत्–जंबुमालिन्; नल–प्रतपन (वा. रा. यु. ४३)।

सायंकाल के समय, प्रथम दिन का युद्ध समाप्त हुआ, किंतु राक्षसों के द्वारा पुनः युद्ध प्रारंभ किये जाने पर राम ने यज्ञशत्रु, महापार्श्व, महोदर, शुक एवं सारण आदि राक्षसों का पराजय किया।

नागपाश—तत्पश्चात् अंगद ने रावण के पुत्र इंद्रजित् से युद्ध प्रारंभ कर उसे परास्त किया। फिर इंद्रजित् ने ब्रह्मा के वरदान से अदृश्य हो कर, राम एवं लक्ष्मण को नागमय शरों से आहत किया, जिस कारण ये दोनों निश्चेष्ट पड़े रहे। तब इंद्रजित् ने इन दोनों को मृत समझ कर वैसी सूचना रावण को दी (वा. रा. यु. ४२-४६)।

यह सुन कर रावण ने सीता एवं त्रिजटा को पुष्पक विमान में बैठा कर, रणभूमि में मूर्च्छित पड़े हुए राम-लक्ष्मण को दिखलाया। सीता इन दोनों को मृत समझ कर विलाप करने लगी, किन्तु त्रिजटा ने उसको वास्तव परिस्थिति का ज्ञान दिला कर सांत्वना दी (वा. रा. यु. ४७-४८)।

बाद में राम को जैसे ही होश आया, यह लक्ष्मण को मूर्च्छित देख कर विलाप करने लगा (वा. रा. यु. ४९)। पश्चात् सुषेण ने राम को कहा कि, ओषधि लाने के लिए हनुमत् को द्रोणाचल भेज़ दिया जाये। किन्तु इसी समय, गरुड का युद्धभूमि में आगमन हुआ, जिसको देखते ही नागपाश के सारे नाग भाग गयें, एवं उसके स्पर्शमात्र से ही राम एवं लक्ष्मण स्वस्थ हो गयें (वा. रा. यु. ५०)। रे. बुल्के के अनुसार, गरुड़ के आगमन का यह कथाभाग प्रक्षित है (रामकथा. ५६२)

राक्षससंहार—युद्ध के दूसरे दिन हनुमत् ने रावणपक्षीय योद्धा धूम्राक्ष का वध किया (वा. रा. यु. ५१-५२)। तीसरे दिन अंगद ने वज्रदंष्ट्र आदि राक्षसों का वध किया (वा. रा. यु.५३-५४)। चौथे दिन हनुमत् ने अकंपनादि राक्षसों का वध किया (वा. रा. यु. ५५-५६)। पाँचवे दिन रावण का प्रमुख सेनापति प्रहस्त, अग्निपुत्र नील वानर के द्वारा मारा गया, एवं उसके सैन्य में से नरान्तक, महानंद, कुंभहनु आदि राक्षसों का भी संहार हुआ (वा. रा. यु. ५७-५८)।

युद्ध के छठवें दिन, रावण स्वयं अपना पुत्र इंद्रजित् एवं आतिकाय आदि राक्षसों के साथ स्वयं युद्धभूमि में प्रविष्ट हुआ। उसने सुग्रीव, गवाक्ष आदि वानरों को परास्त किया, एवं 'अग्नि-अस्त्र' के द्वारा नील वानर का पराजय किया।

तत्पश्चात् रावण एवं लक्ष्मण का युद्ध हुआ, जिसमें 'ब्रह्मास्त्र' के द्वारा उसने लक्ष्मण को मूर्च्छित किया। रावण उसे उठा कर ले जाने लगा, किंतु हनुमत् लक्ष्मण को रणभूमि से उठा कर राम के पास ले आया। तत्पश्चात् राम ने हनुमत् के स्कंध पर आरूढ हो कर, रावण को आहत किया, एवं उसके मुकुट को बाण मार कर नीचे गिरा दिया। पश्चात् राम ने रावण को रणभूमि से भाग जाने पर मज़बूर कर दिया (वा. रा.यु. ५९)।

उसी दिन शाम को राम ने कुंभकर्ण का भी वध किया, जिस समय इसने सर्वप्रथम उसकी भुजाएँ, तत्पश्चात् उसके पैर, एवं अंत में उसका सिर अपने बाणों से काट दिया। मृत्यु की पश्चात्, कुंभकर्ण का सिर सूर्योदयकालीन चंद्रमा के समान आकाश में दिखाई पड़ा, एवं वह स्वयं पृथ्वी पर गिर कर, उसके प्रचंड देह के कारण अनेक भवन गिर पड़े।

युद्ध के सातवें दिन रामपक्षीय वानरों ने देवान्तक, नरांतक, त्रिशिरस् एवं अतिकाय नामक चार रावणपुत्रों का वध किया। महोदर एवं महापार्श्व नामक रावण के भाईयों का भी वध किया गया। उनमें से नरान्तक का वध अंगद के द्वारा, देवान्तक एवं त्रिशिरस् का वध हनुमत् के द्वारा, महोदर का वध नील के द्वारा, एवं अतिकाय का वध लक्ष्मण के द्वारा हुआ (वा. रा. यु. ६९-७१)।

इंद्रजित् का वध—युद्ध के आठवें दिन रावण का पुत्र इंद्रजित् अदृश्य रूप से रणभूमि में आया, एवं उसने वानरसेना पर ऐसा ज़ोरदार हमला किया कि, उसमें ६८ करोड़ वानर मारे गयें। इंद्रजित् के द्वारा छोड़े गये ब्रह्मास्त्र के कारण, राम एवं लक्ष्मण मूर्च्छित हुयें (वा. रा. यु. ७३)।

रात्री के समय बिभीषण एवं हनुमत् मशाल ले कर युद्धभूमि में आये, एवं उन्होंने देखना शुरू किया कि, कौन मरा एवं कौन बचा। उस समय उन्हें सर्वप्रथम जांबवत् मिला, जिसने हनुमत् से आज्ञा दी, 'इसी समय, हिमालय के ऋषभ शिखर पर जा कर, वहाँसे संजीवनी, विशल्यकरिणी, सुवर्णकरिणी एवं संधानी नामक चार ओषधियाँ ले आना'। हनुमत् के द्वारा उपर्युक्त वनस्पतियाँ लाने के उपरान्त, जांबवत् ने राम एवं लक्ष्मण को होश में लाया, एवं संपूर्ण वानरसेना को पुनः जीवित किया (वा. रा. यु. ७४)।

युद्ध के नौवें दिन वानरों ने लंका में घुस कर, उसे आग लगा दी, एवं कुंभ, निकुंभ, यूपाक्ष आदि राक्षसों का वध किया (वा. रा. यु. ७५-७७)। इसी दिन राम के द्वारा मकराक्ष राक्षस मारा गया (वा. रा. यु. ७८-७९)।

बाद में इंद्रजित ने अपने मायावी युद्ध के कारण, वानरसेना में हाहाक्कार मचा दिया, एवं उन्हे घबराने के लिए, उनकी आँखों के सामने सीतावध का मायावी दृश्य निर्माण किया। तत्पश्चात् वह निकुंभिला नामक स्थान में जा कर, वानरसंहार के लिए आसुरी-यज्ञ करने लगा। बिभीषण की सलाह के अनुसार, लक्ष्मण ने वहाँ जा कर इंद्रास्त्र छोड़ कर उसका वध किया। पश्चात् इस युद्ध में मूर्च्छित एवं मृत हुयें वानरों को सुषेण ने पुनः जीवित किया (वा. रा. यु. ९१)।

अपने पुत्र इंद्रजित् के वध की वार्ता सुन कर रावण अत्यधिक क्रुद्ध हुआ, एवं अपने खड्ग से सीता का वध करने के लिए प्रवृत्त हुआ। किन्तु सुपार्श्व नामक उसके आमात्य ने इस पापकर्म से उसे रोक लिया, एवं चैत्र कृष्ण १४ का दिन युद्ध की तैयारी में व्यतीत कर, अमावास्या के दिन राम पर आखिरी हमला करने की सलाह उसने उसे दी (वा. रा. यु. ९२.६२)।

रावणवध—चैत्र अमावास्या के दिन रावण ने राक्षसों के जय के लिए हवन शुरु किया, किन्तु वानरों ने उसके यज्ञकार्य में बाधा उत्पन्न की। फिर क्रोध में तमतमाता हुआ रावण, महापार्श्व, महोदर एवं विरुपाक्ष नामक तीन सेनापतियों के साथ युद्धभूमि में प्रविष्ट हुआ। राम ने उसके साथ घमासान युद्ध किया। उस समय राम की सहाय्यार्थ आये हुए विभीषण एवं लक्ष्मण को रावण ने मूर्च्छित किया। सुषेण ने हिमालय से प्राप्त वनस्पतियों से उन दोनों को पुनः होश में लाया (वा. रा. यु. १०२)।

तत्पश्चात् राम इंद्र के द्वारा दिये गये दिव्य रथ पर आरूढ हुआ, एवं अगस्त्य के द्वारा दिये गये ब्रह्मास्त्र से रावण का हृदय विदीर्ण कर इसने उसका वध किया (वा. रा. यु. ११०; म. व. २७४.२८)। वाल्मीकि रामायण के दक्षिणात्य पाठ के अनुसार, अगस्त्य ऋषि ने राम को 'आदित्य हृदय' नामक स्तोत्र सिखाया था, जिसके पाठन से रावण का वध करने में यह यशस्वी हुआ।

राम-रावण के इस अंतीम युद्ध में रावण के सिर पुनः पुनः उत्पन्न होने की कथा वाल्मीकि रामायण में प्राप्त है। इस कथा के अनुसार, राम ने रावण के कुल एक सौ सिर काट दियें (एकमेव शतं छिन्नं शिरसा तुल्यवर्चसः) (वा. रा. यु. १०७.५७)।

अध्यात्म रामायण के अनुसार, रावण के नाभिप्रदेश में अमृत रखा था। विभीषण की सलाह के अनुसार, राम ने 'आग्नेय अस्त्र' छोड़ कर उस अमृत को सुखा दिया, एवं रावण का वध किया (अध्या. रा. युद्ध. ११.५३; आ. रा. १. ११.२७८;)

महाभारत के अनुसार, रावण ने अंतीम युद्ध के समय राम एवं लक्ष्मण का रूप धारण करनेवाले बहुत से मायामय योद्धाओं का निर्माण किया था। किन्तु राम ने अपने ब्रह्मास्त्र से इन सारे योद्धाओं को रावण के साथ ही जला दिया, जिस कारण उनकी राख भी शेष न रही (म. व. २७४.८; ३१)।

रावणवध से राम-रावण युद्ध समाप्त हुआ। तत्पश्चात् राम के अनुरोध पर, विभीषण ने अपने भाई रावण का विधिवत् अग्निसंस्कार किया (वा. रा. यु. १११)। मंदोदरी आदि रानियों को सांत्वना दे कर इसने उन्हें लंका के लिए रवाना किया। रावण की अंतीम क्रिया होने के उपरान्त, राम ने लक्ष्मण के द्वारा विभीषण को लंका का राजा बना कर उसका राज्याभिषेक किया। बाद में, राम ने समुद्र में बनाया हुआ सेतु भी तोड़ा, जिससे आगे चल कर लंका को परकीय आक्रमण का भय न रहे (पद्म. सृ. ३८)।

अग्नि-परीक्षा—तत्पश्चात् विभीषण के द्वारा सीता को शिबिका में बैठा कर राम के पास लाया गया। इस समय राम ने सीता से कहा, 'रावण से युद्ध कर मैंने तुझे आज विमुक्त किया है। मैंने आज तक किया हुआ युद्ध तुम्हारे आसक्ति के कारण नहीं, बल्कि एक क्षत्रिय के नाते मेरा कर्तव्य निभाने के लिए किया है। तुझे पुनः प्राप्त करने में मुझे आनंद ज़रुर हुआ है; किन्तु इतने दिनों तक एक अन्य पुरुष के घर तुम्हारे रहने के कारण, तुम्हारा पुनः स्वीकार करना असंभव है'।

राम का यह कथन सुन कर, सीता ने अपने सतीत्व की सौगंध खायी; एवं लक्ष्मण के द्वारा चिता तैयार कर, वह अग्निपरीक्षा के लिए सिद्ध हुई (वा. रा. यु. ११६)। इतने में अनेक देवता के सम्मुख अग्नि देवता नें सीता के सतीत्व का साक्ष दिया, एवं उसका स्वीकार करने के लिए राम से कहा। तब राम ने सीता के अग्निपरीक्षा के संबंध में अपनी भूमिका विशद करते हुए कहा, 'मुझे सीता पर संदेह नहीं है, एवं कभी नहीं था। मैंने यह सब कुछ इसलिये कहा कि, कोई भी सीता के चरित्र पर आक्षेप न करें (वा. रा. यु. ११८)।

दक्षिण की विजययात्रा—इस तरह रावण से युद्ध कर, उसका वध करने के कारण, राम का वनवास पाण्डवों के वनवास की भाँति केवल एक वनवास ही न रह कर, दक्षिण भारत की विजययात्रा में परिणत हुआ।

अपने चौदह वर्षों के वनवास में से १२॥ वर्ष इसने पंचवटी में वनवासी तपस्वी की भाँति व्यतीत कियें। वनवास के बाकी बचे हुए १॥ वर्ष इसने राक्षसों के संग्राम में व्यतीत किया, जो कार्तिक कृष्ण १० के दिन शूर्पणखा-वध से प्रारंभ हुआ, एवं अगले साल के वैशाख शुक्ल १२ के दिन रावणवध से समाप्त हुआ। इस राक्षससंग्राम के कारण, रावण के द्वारा लंका में

स्थापित बलाढ्य राक्षस साम्राज्य विनष्ट हुआ। दक्षिण भारत का सारा प्रदेश राक्षसों के भय से विमुक्त हो कर, वहाँ दाक्षिणात्य वानरों का राज्य प्रस्थापित हुआ, एवं अगस्त्य के द्वारा दक्षिण भारत में प्रस्थापित किये गये आर्य संस्कृति का दृढ रूप से पुनरुत्थान हुआ। इस तरह राम का दक्षिण दिग्विजय अनेकानेक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण प्रतीत होता है। इस दृष्टि से सीता के अग्नि-परीक्षा की कथा भी रूपकात्मक प्रतीत होती है, जो संभवतः राम के द्वारा शुरु किये गये दक्षिण भारत की आबादी एवं पुनर्वसन के कार्य की यशस्विता प्रतीकरूप से दर्शाती है। सीता शब्द का शब्दशः अर्थ भी भूमि ही है (सीता देखिये)।

राक्षससंग्राम का तिथिनिर्णय—राम एवं रावण का युद्ध कुल ८७ दिनों तक चलता रहा, उनमें से पंद्रह दिन कोई युद्ध न हुआ था, जिस कारण राम-रावण का प्रत्यक्ष युद्ध ७२ दिनों तक हुआ प्रतीत होता है। यह युद्ध माघ शुद्ध द्वितीया को शुरु हुआ, एवं वैशाख कृष्ण द्वादशी के दिन रावण वध से समाप्त हुआ।

लंका का स्थलनिर्णय—रावणसंग्राम के संबंध में, लंका के स्थलनिर्णय की समस्या महत्त्वपूर्ण प्रतीत होती है। रायचौधरी आदि अभ्यासकों के अनुसार, आधुनिक सिलोन ही लंका है, एवं आधुनिक महाराष्ट्र प्रदेश ही प्राचीन दण्डकारण्य है। किबे आदि अन्य अभ्यासक लंका का स्थान आधुनिक मध्य हिंदुस्थान में अमरकंटक पर्वत के पास मानते हैं। वडेर आदि कई अन्य अभ्यासक आधुनिक मालदिव अंतरीप को राक्षसद्वीप मानते हैं। अन्य कई अभ्यासकों के अनुसार, प्राचीन लंका देश आधुनिक आंध्र प्रदेश के उत्तर में बंगाल उपसागर के बीच कहीं बसा हुआ था। डॅनिएल जॉन के अनुसार, प्राचीन लंका आधुनिक सीलोन के दक्षिण में अथवा दक्षिणीपूर्व में कहीं बसी हुई थी (डॉ. पुसालकर स्टडीज इन दि एपिक्स ॲन्ड पुराणाज पृ. १९१)।

वानर कौन थे—किबे एवं हिरालाल के अनुसार, अमरकंटक पर्वत के प्रदेश में रहनेवाले वन्य लोग प्राचीन काल में वानर, एवं आधुनिक गोंड लोग राक्षस कहलाते थे। अन्य कई अभ्यासक राक्षसों को असुरवंशीय मानते हैं। चक्रवर्ती राजगोपालाचारी के अनुसार, आधुनिक द्रविड प्रदेश में रहनेवाले द्रविडवंशीय लोग रामायण काल में वानर कहलाते थे (डॉ. पुसालकर, पृ. १९२; वानर देखिये)।

उत्तर काण्ड का विश्लेषण—कई अभ्यासकों के अनुसार, रावणवध के साथ ही साथ राम का दैवी अवतार समाप्त होता है। अपने इस अवतारकार्य के समाप्ति के पश्चात्, इक्ष्वाकुवंश का एक राजा यही मर्यादित स्वरूप रामचरित्र धारण करता है। इसी कारण, वाल्मीकि रामायण के उत्तर काण्ड में चित्रित किया गया राम, पहले काण्डों में चित्रित राम से अलग व्यक्ति प्रतीत होता है। रे. बुल्के भी संपूर्ण उत्तर काण्ड को प्रक्षिप्त मानते है, जिसकी रचना वाल्मीकि के द्वारा नही, बल्कि भिन्न भिन्न उत्तरकालीन कवियों के द्वारा हुयीं है (रामकथा, पृ. ६०५-६०६)। वाल्मीकिद्वारा रचित 'आदिरामायण' एवं अन्य प्राचीन ग्रंथों में भी राम के द्वारा रावण की पराजय, एवं सीता की पुनःप्राप्ति के साथ ही 'रामकथा' समाप्त की गयी है।

अयोध्यागमन—युद्ध के पश्चात् राम, सीता एवं लक्ष्मण को साथ ले कर पुष्पक विमान में बैठकर अयोध्या की ओर चल पड़े। उस समय राक्षससंग्राम में भाग लेनेवाले समस्त वानरों ने इच्छा प्रकट की, कि वे अयोध्या में रामराज्याभिषेक देखना चाहते हैं। इस कारण, उन्हे एवं सुग्रीवादि अपने मित्रों को साथ ले कर यह अयोध्या में आया। अयोध्या जाते समय, राम ने सीता को युद्धभूमि, नल के द्वारा बाँधा गया सेतु, किष्किंधा आदि ऐतिहासिक स्थान बतायें।

राम के चौदह वर्षों के वनवास में से एक दिन बाकी था, इसलिए वैशाख शुद्ध पंचमी के दिन, इसने भरद्वाज ऋषि के आश्रम में वास किया, एवं हनुमत् के द्वारा अपने आने का संदेश भेजा। दूसरे दिन पुष्य नक्षत्र के अवसर पर, नंदिग्राम में राम एवं भरत की भेंट हुयी, एवं उसके साथ अयोध्या जा कर, अपनी माताओं एवं वसिष्ठ आदि गुरुजनों के इसने दर्शन किये (वा. रा. यु. १२६)।

रामराज्याभिषेक—वैशाख शुद्ध सप्तमी के दिन, राम एवं भरत ने मंगल स्नान किये, एवं इसका राज्याभिषेक तथा भरत का यौवराज्याभिषेक वसिष्ठ के द्वारा किया गया। अनंतर राम ने पहले ब्राह्मणों को तथा बाद में सुग्रीवादि वानरों को विपुल दान दिया। राम ने लक्ष्मण को युवराज बनाना चाहा, किन्तु लक्ष्मण के द्वारा उस पद को अस्वीकार किये जाने पर, भरत को युवराज बनाया गया।

वाल्मीकि रामायण में रामाभिषेक के लिए आमंत्रित राजाओं की जानकारी सविस्तृत रूप में प्राप्त है, जहाँ इसके

सीरध्वजादि आप्त, प्रतर्दनादि मित्र, एवं तीन सौ मांडलिक राजाओं के उपस्थिति का निर्देश प्राप्त है (वा. रा. उ. ३७-४०)। इस समारोह के समय, सुग्रीव आदि को छः महिने तक अतिथि के रूप में रख कर आदरपूर्वक बिदा किया गया। बिभीषण के द्वारा राम को दिया गया पुष्पक विमान कुबेर को वापस भेज दिया गया (वा. रा. उ. ४१)। तत्पश्चात् राम ने अत्यधिक कुशलता के साथ राज्य किया, जिस कारण आज भी आदर्श राज्य को लोग 'रामराज्य' कहते है (वा. रा. यु. १२८)।

सीतात्याग--कुछ समयोपरांत सीता गर्भवती हुई, तथा उसने अरण्य में घूमने की इच्छा प्रकट की। उसको अगले दिन तपोवन में भेज देने का आश्वासन दे कर, राम अपने मित्रों के साथ परिहास की कहानियाँ सुनने बैठा। उस समय, राम ने भद्र नामक अपने मित्र से पूछाँ, 'मेरे, सीता, एवं भरत आदि के विषय में लोग क्या कहते है'? तब भद्र ने सीता के कारण हो रहे लोकापवाद, एवं जनता की आचरण पर पडने वाले उसके कुप्रभाव निर्देश करते हुआ कहा-

अस्माकमपि दारेषु सहनीयं भविष्यति।
यथा हि कुरुते राजा प्रजास्तमनुवर्तते॥
(वा. रा. उ. ४३.१९)

(राम के द्वारा सीता का स्वीकार किये जाने के कारण हमको भी अपनी स्त्रियों का वैसा ही आचरण अब सहना पड़ेगा। क्यों कि, जैसा आचरण राजा करता है, वैसा ही आचरण प्रजा करती है)।

लोकापवाद की यह कथा सुन कर, राम अत्यधिक व्याकुल हुआ। दूसरे दिन इसने लक्ष्मण को बुला कर सीता को गंगा नदी के उस पार छोड़ आने का आदेश दिया। तदनुसार, तपोवन दिखलाने के बहाने लक्ष्मण सीता को रथ पर ले गया, एवं उसने सीता को वाल्मीकि ऋषि के आश्रम के समीप छोड़ दिया। उस समय, लक्ष्मण ने बडे दुःख के साथ सीता को बताया कि, लोकापवाद के कारण राम ने उसका त्याग किया है (वा. रा. उ. ६९)।

कालिदास के रघुवंश में प्राप्त सीतात्याग की कथा में भद्र को राम का मित्र नही, किंतु गुप्तचर बताया गया है (रघु. १४)। कथासरित्सागर एवं भागवत में एक धोबी का उदाहरण दे कर लोकापवाद की यह कथा प्रस्तुत की गयी है। एक बार गुप्तवेश में घुमते हुए राम ने देखा कि, एक धोबी अपनी स्त्री को अपने घर से निकाल रहा है। उस समय धोबी ने अपनी पत्नी से कहा, 'मै राम की तरह नही हूँ, जिन्होंने दीर्घकाल तक दूसरे के घर में रहनेवाली सीता का पुनः स्वीकार किया' (कथा. ९.१. ६६; भागवत. ९.११.९)।

कुश-लवजन्म—वाल्मीकि के आश्रम में, सीता ने दो पुत्रों को जन्म दिया, जिनका नाम वाल्मीकि ने कुश एवं लव रख दिया (वा. रा. उ. ६६)। बाद में कुश एवं लव वाल्मीकि के शिष्य बन गयें, जिसने उन्हें समग्र रामायण सिखा दिया। बाद में वे दोनों सभाओं में जा कर रामायण का गान करने लगे। किसी दिन राम ने उन दोनों को अयोध्या के राजमार्ग में रामायण का गान करते हुए देखा, जब उन्हें महल में ले जा कर इसने भरत आदि भाईयों के साथ रामायण का गान सुना (वा. रा. बा. ४)।

अश्वमेधयज्ञ—रावण स्वयं ब्राह्मण था, जिस कारण उसका वध करने से राम को ब्रह्महत्या का पाप लग गया। उस पाप से बचने के लिए, राम ने अगस्त्य ऋषि के कथनानुसार अश्वमेधयज्ञ का आयोजन किया (पद्म. पा. ८-१०; शत्रुघ्न देखिये)। इसके पूर्व, राम ने राजसूय यज्ञ करने की इच्छा प्रगट की थी। किंतु भरत के द्वारा, उस यज्ञ के कारण राजवंश के विनाश का भय व्यक्त करने पर, राम ने दस अश्वमेध यज्ञ करने का निश्चय किया। लक्ष्मण ने भी उसी सूचना को अनुमोदन दिया (वा. रा. उ. ८३-८४)।

अश्वमेध यज्ञ करते समय पत्नी की उपस्थिति आवश्यक रहती है, अतएव इसने सीता की स्वर्णमूर्ति बनवा कर एवं उसे अपने पास रख कर यज्ञानुष्ठान किया (वा. रा. उ. ९९.७)। इसी अश्वमेध यज्ञ के समय, कुशलव के साथ ले कर वाल्मीकि ऋषि उपस्थित हुए, एवं उन्होंने उनके द्वारा रामायण का गान करा, राम से कुशलव का परिचय करवाया (कुश-लव देखिये)।

उपर्युक्त यज्ञ के अतिरिक्त, राम के द्वारा वाजपेय, अग्निष्टोम, अतिरात्र आदि यज्ञ करने का निर्देश भी प्राप्त है (वा रा. उ. ९९.९-१०)।

सीता का भूमिप्रवेश—अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर, अपने पुत्रों को देख कर, राम ने वाल्मीकि के द्वारा सीता को भी बुलावा भेज दिया। इस पर सीता को साथ ले कर वाल्मीकि रामसभा में उपस्थित हुए, एवं उसने सीता के सतीत्व की साक्ष दी। तदनंतर राम के द्वारा सीता

को अपने सतीत्व का प्रमाण देने के लिए अनुरोध किये जाने पर, सीता ने स्वयं को निष्पाप बताते हुए पृथ्वी में प्रवेश किया॰ (वा. रा. उ. ९७; सीता देखिये)।

देहत्याग—कुछ समय के उपरांत, कौसल्या, सुमित्रा, कैकेयी आदि राम के माताओं का क्रमशः देहान्त हुआ (वा. रा. उ. ९९)। लक्ष्मण भी सरयू नदी के तट पर जा कर, एवं कृतांजलि हो कर सशरीर स्वर्ग चला गया (वा. रा. उ. १०३-१०६)। फिर लक्ष्मण के वियोग के कारण दुःखी हो कर, राम ने भरत, शत्रुघ्न एवं सुग्रीव के साथ सरयू नदी के तट पर देहत्याग किया। पश्चात् यह विष्णु के रूप में प्रविष्ट हुआ, एवं इसके साथ आये हुए बाकी सारे लोग 'संतानक' लोग में प्रविष्ट हुये (वा. रा. उ. १०७-११०)।

रामकथा का तिथिनिर्णय—जैसे पहले ही कह गया है कि, वनवास जाते समय राम एवं सीता की आयु क्रमशः सताईस एवं अठारह वर्षों की थी। चौदह वर्षों का वनवास भुगतने के पश्चात् राम को राज्याभिषेक हुआ, जिस समय राम एवं सीता की आयु क्रमशः बयालिस एवं तैतीस वर्षों की थी। रावण के बंदिवास में सीता कुल ग्यारह मास एवं चौदह दिनों तक थी (स्कंद. ३.३.३०; पद्म. पा. ३६)।

राम के वनवास के प्रथम दिन से ले कर, राज्याभिषेक तक की महत्त्वपूर्ण घटनाओं का तिथिनिर्णय उपर्युक्त पुराणों में निम्न प्रकार दिया गया हैः—

वैशाख शुक्ल १—वनवास का प्रथम दिन।

वैशाख शुक्ल २—चित्रकूट की ओर गमन।

वैशाख शुक्ल ६—चित्रकूट में भरत से भेंट।

(बारह वर्ष, छः महिनों तक पंचवटी में निवास)

कार्तिक कृष्ण १०—शूर्पणखा के नाक एवं कान काटना।

फाल्गुन कृष्ण ८—रावण के द्वारा सीता का हरण।

(दस महिनों के बाद)

मार्गशीर्ष शुक्ल ९—सीताशोध के लिए गये हनुमत् की संपाति से भेंट।

मार्गशीर्ष शुक्ल ११—महेंद्रपर्वत पर से हनुमत् का लंका के लिए उड़ान।

मार्गशीर्ष शुक्ल १२—अशोकवन में हनुमत् एवं सीता की भेंट।

मार्गशीर्ष शुक्ल १३—हनुमत् के द्वारा अक्ष आदि राक्षसों का वध, एवं अशोकवन का विध्वंस।

मार्गशीर्ष शुक्ल १४—रावण के द्वारा हनुमत्-बंधन, एवं हनुमत् के द्वारा लंकादहन।

मार्गशीर्ष शुक्ल १५—हनुमत् का महेंद्रपर्वत पर पुनरागमन।

पौष कृष्ण १-५—हनुमत् का महेंद्र से किष्किंधा तक प्रवास।

पौष कृष्ण ६—हनुमत् की वानरों से भेंट, एवं मधुवन का विध्वंस।

पौष कृष्ण ७—हनुमत् की राम से भेंट।

पौष कृष्ण ८—राम के द्वारा रावणवध की प्रतिज्ञा, एवं उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र तथा विजय योग पर, दक्षिण की ओर प्रयाण।

पौष कृष्ण ९-३०—राम का किष्किंधा से समुद्र तक का प्रवास।

पौष शुक्ल १-३—राम का समुद्र तट पर आगमन।

पौष शुक्ल ४—बिभीषण का राम के पास आना।

पौष शुक्ल ५—राम के द्वारा समुद्र पार करने का विचार।

पौष शुक्ल ६-९—समुद्र के तुष्टयर्थ राम का प्रायोपवेशन।

पौष शुक्ल १०-१३—सेतुबंधन।

पौष शुक्ल १४—राम का सुवेल पर्वत पर आगमन।

पौष शुक्ल १५—माघ कृष्ण २—राम सेना का सुवेल पर्वत पर आगमन।

माघ कृष्ण ३-१०—रामसेना के द्वारा लंका का अवरोध।

माघ कृष्ण ११—शुक एवं सारण नामक रावण के दूतों का राम के पास आगमन।

माघ कृष्ण १२—राम की सेनागणना।

माघ कृष्ण १३-३०—रावण की सेनागणना।

माघ शुक्ल १—रावण के पास अंगद का दूत के रूप में जाना।

माघ शुक्ल २-८—युद्धारंभ।

माघ शुक्ल ९—इंद्रजित् के द्वारा रामलक्ष्मण का नागपाश में बंधन।

माघ शुक्ल १०—गरुडमंत्र की सहाय्यता से हनुमत् के द्वारा राम-लक्ष्मण की मुक्ति।

माघ शुक्ल ११-१२—हनुमत् के द्वारा धूम्राक्ष का वध।

माघ शुक्ल १३—हनुमत् के द्वारा अकंपन का वध।

माघ शुक्ल १४—फाल्गुन कृष्ण १—नील के द्वारा प्रहस्त का वध।

फाल्गुन कृष्ण २–४—राम-रावण का युद्ध एवं रावण का युद्धभूमि से पलायन।

फाल्गुन कृष्ण ५–८—कुंभकर्ण को जगाना।

फाल्गुन कृष्ण ९–१४—राम के द्वारा कुंभकर्ण से युद्ध एवं वध।

फाल्गुन कृष्ण ३०—युद्धविराम।

फाल्गुन शुक्ल १–४—राम लक्ष्मणों का इंद्रजित् से युद्ध।

फाल्गुन शुक्ल ५–७—लक्ष्मण के द्वारा अतिकाय का वध।

फाल्गुन शुक्ल ८—इंद्रजित् से द्वितीय युद्ध।

फाल्गुन शुक्ल ९–१२—कुंभ एवं निकुंभ का वध।

फाल्गुन शुक्ल १३—चैत्र कृष्ण १–मकराक्ष का वध।

चैत्र कृष्ण २—इंद्रजित् से तृतीय युद्ध, एवं लक्ष्मण की मूर्च्छा।

चैत्र कृष्ण ३–७—युद्धविराम, एवं हनुमत् के द्वारा लक्ष्मण के लिए ओषधी लाना।

चैत्र कृष्ण ८–१३—इंद्रजित् से चतुर्थ युद्ध एवं वध।

चैत्र कृष्ण १४—रावण का आसुरि यज्ञ।

चैत्र कृष्ण ३०—रावण का युद्धभूमि में प्रवेश।

चैत्र शुक्ल १–५—राम-रावणयुद्ध, एवं रावण का युद्धभूमि से पलायन।

चैत्र शुक्ल ६–८—महापार्श्व आदि राक्षसों का वध।

चैत्र शुक्ल ९—राम–रावणयुद्ध एवं रावण का युद्धभूमि से पलायन।

चैत्र शुक्ल १०—युद्धविराम।

चैत्र शुक्ल ११—इंद्र के द्वारा राम के लिए रथ का प्रेषण।

चैत्र शुक्ल १२—वैशाख कृष्ण ४—राम-रावणयुद्ध, एवं रावण का वध।

वैशाख कृष्ण १५—युद्धसमाप्ति एवं रावण का अंतिम संस्कार।

वैशाख शुक्ल २—बिभीषण का राज्याभिषेक।

वैशाख शुक्ल ३—राम एवं सीता की भेंट।

वैशाख शुक्ल ४—राम का विमान में बैठ कर अयोध्या के लिए प्रस्थान।

वैशाख शुक्ल ५—राम के चौदह वर्षों के वनवास की समाप्ति, एवं उसी दिन प्रयाग में भारद्वाज-आश्रम में आगमन।

वैशाख शुक्ल ६— नंदिग्राम में राम एवं भरत की पुनर्भेट।

वैशाख शुक्ल ७—राम का राज्याभिषेक।

सर्वमान्य तिथियाँ—वाल्मीकि रामायण के 'तिलक टीका' में एवं कालिकापुराण में राम के वनवास का तिथि-निर्णय कुछ अलग ढँग से प्राप्त है, जो निम्न प्रकार हैः– चैत्र शुक्ल १०–वनवास का प्रथम दिन; भाद्रपद शुक्ल १–युद्धारंभ; आश्विन शुक्ल १– राम–रावणयुद्ध; आश्विन शुक्ल ९–रावण वध; कार्तिक कृष्ण ६–राम का अयोध्या में आगमन। उत्तर भारत में रामलीला आदि भी इन्हीं तिथियों के अनुसार होते है।

चांद्रमास के अनुसार, अधिक मास छोड़ कर काल गणना की जाएँ, तो यह कालगणना वाल्मीकि रामायण से भी बिलकुल मिलती जुलती है (वा. रा. यु. १११ तिलक टीका; कालिका ६२.२३–३९)।

ताम्रपटों का निर्देश—जब वनवास के बाद राम अयोध्या में आया, तब इसने ताम्रपट पर अपने पराक्रम का वर्णन, एवं राज्यशासन के कुछ नियम लिखवाये। इसने उन ताम्रपटों की स्थापना श्रीमातास्थान, बकुलार्क, एवं धर्मस्थान आदि स्थानों में की, एवं इस समारोह के उपलक्ष्य में पचास गाँव ब्राह्मणों को दान में दियें (स्कंद. ३.२.२४)।

'कालनिर्णयरामायण' ग्रन्थ—कई रामायणों में रामकथा की प्रधान घटनाओं की तिथियाँ दी हैं, जिनमें निम्न रामायणग्रंथ प्रमुख हैः—१. **अग्निवेश रामायण**–श्लोक संख्या १०५; २. **अब्दरामायण**–(कल्याण 'रामायणांक' पृ. ३०४) ३. **लोमश रामायण**–जो पद्मपुराण के पातालखंड में प्राप्त है (पद्म. पा. ३६)।

इनके अतिरिक्त व्यासकृत 'रामायणतात्पर्यदीपिका,' श्रीनिवासराघवकृत 'रामायण संग्रह' एवं 'रामावतारकाल-निर्णय सूचिका' आदि ग्रन्थों में भी रामचरित्र की तिथियों का वर्णन प्राप्त हैं।

चरित्रचित्रण—एक सत्यपराक्रमी क्षत्रिय, आज्ञाधारक पुत्र एवं स्वदारनिरत पति के रूप में राम का चरित्र वाल्मीकि रामायण में किया गया है। तिब्बती, खोतानी, सिंहली एवं मलय आदि विदेशी रामकथाओं में भी राम प्रायः एक पत्नीव्रती राजा के रूप में चित्रित किया गया है। यह वाल्मीकीय आदर्श का ही स्वाभाविक विकास प्रतीत होता है।

सीता के प्रति राम का विशुद्ध एवं निरतिशय प्रेम का चित्रण वाल्मीकि रामायण में प्राप्त है (वा. रा. अर. ३.६० -६६; ७५; सुं. २७-२८; ३०; यु. ६६; उ. ५)। अत्रि ऋषि के आश्रम में सीता ने अत्रिपत्नी अनसूया से कहा था, 'राम मुझसे इतना ही प्रेम करते है, जितना मैं उनसे करती हूँ। इसी कारण, मैं अपने आप को अत्यंत भाग्यवान् समझती हूँ।

रामचरित्र के दोष—राम स्वयं एक अत्यंत सच्चरित्र एवं क्षत्रियधर्म का पालन करनेवाला आदर्श राजा होते हुए भी, इसके चरित्र के कुछ दोष वाल्मीकि रामायण एवं उत्तररामचरित में दिखाये गये है, जो निम्न प्रकार है:- १. स्त्री होते हुए भी इसने ताटका का वध किया; २. खर से युद्ध करते समय यह तीन पग पीछे हटा (वा. रा. अर. ३०.२३); ३. वृक्ष के पीछे छिप कर इसने वालि का वध किया (उत्तरराम. ५); ४. लोकापवाद के भय से निर्दोष सीता का त्याग किया; ५. अहिरावण के पत्नी के महल प्रवेश किया।

इसमें से अंतिम आक्षेप अनैतिहासिक मानकर छोड़ा जा सकता है। ताटका का वध विश्वामित्र के संमति से किये जाने के कारण, एवं खर के वध के समय शरसंधान के लिए पीछे हटने के कारण, इन दोनों प्रसंग में राम निर्दोष प्रतीत होता है। सीतात्याग के संबंध में व्यक्तिधर्म एवं राजधर्म का संघर्ष प्रतीत होता है। रही बात वालि-वध की, जिस समय राम का आचरण असमर्थनीय प्रतीत होता है।

परिवार—राम को अपनी पत्नी सीता से कुश एवं लव नामक दो पुत्र उत्पन्न हुयें थे, जिनका जन्म राम के द्वारा सीता का त्याग किये जाने पर वाल्मीकि ऋषि के आश्रम में हुआ था। राम के पश्चात् कुश दक्षिण कोसल का राजा बन गया। लव को उत्तर कोसल देश का राज्य प्राप्त हुआ, जिसकी राजधानी श्रावस्ती नगरी में थी। राम के पश्चात् अयोध्या नगरी उजड़ गयी, जिस कारण कुश ने विंध्य पर्वत के दक्षिण तट पर कुशावती नामक नयी राजधानी की स्थापना की।

राम के छोटे भाई लक्ष्मण को अंगद एवं चंद्रकेतु नामक दो पुत्र थे। उन्हें राम ने क्रमशः हिमालय पर्वत के समीप स्थित कारुपथ एवं मल्ल देशों का राज्य प्रदान किया। उन प्रदेशों में 'अंगदिया' एवं 'चंद्रचक्रा' नामक राजधानियाँ बसा कर वे दोनों राज्य करने लगे (वा. रा. उ, १०२)।

राम के तृतीय बन्धु भरत को अपनी माता कैकेयी का केकय राज्य प्राप्त हुआ, जिसमें सिन्धु (आधुनिक उत्तर सिंध) प्रदेश भी शामिल था। भरत के तक्ष एवं पुष्कल नामक दो पुत्र थे, जिन्होंने आगे चल कर गंधर्व लोगों से गांधार देश को जीत लिया, एवं वहाँ क्रमशः तक्षशिला एवं पुष्कलावती नामक राजधानियों की स्थापना की (वा. रा. उ. १०१)। इनमें से तक्षशिला नगरी के खण्डहर आधुनिक रावलपिंडी के उत्तरीपश्चिम में २० मील पर स्थित भीर में प्राप्त हैं, एवं पुष्कलावती के खण्डहर आधुनिक पेशावर के उत्तरीपश्चिम में १७ मील पर कुभा एवं सुवास्तु नदियों के संगम पर स्थित चारसद्दा ग्राम में प्राप्त हैं।

राम के चतुर्थ बन्धु शत्रुघ्न ने यमुना नदी के पश्चिम में सात्वत यादवों को पराजित कर, उनका राजा मधु राक्षस का पुत्र माधव लवण का वध किया, एवं मधुपुरी अथवा मधुरा (मथुरा) में अपनी राजधानी स्थापित की।

शत्रुघ्न को सुबाहु एवं शत्रुघातिन् नामक दो पुत्र थे। शत्रुघ्न के पश्चात् उनमें से सुबाहु मधुरा नगरी में राज्य करने लगा, एवं शत्रुघातिन् को वैदिश नगरी का राज्य प्राप्त हुआ (वा. रा. उ. १०७-१०८)।

राम के परिवार के इन लोगों के राज्य काफ़ी दिनों तक न रह सकें। गांधार देश में स्थित तक्ष एवं पुष्कल को उसी प्रदेश में रहनेवाले द्रुह्यु लोगों ने जीत लिया। शत्रुघ्नपुत्र, सुबाहु एवं शत्रुघातिन् को यादव राजा भीम सात्वत ने मधुराराज्य से पदभ्रष्ट किया, जहाँ पुनः एक बार यादववंशीयों का राज्य शुरु हुआ। लक्ष्मणपुत्र अंगद एवं चंद्रकेतु के राज्य भी नष्ट हो गयें, एवं लव के उत्तर कोसल देश के राज्य की भी वही हालत हुई। आगे चल कर अयोध्या का सूर्यवंशीय राज्य भी नष्टप्राय हुआ, एवं उत्तरी भारत का सारा राज्य पौरव एवं यादव राजाओं के हाथ में चला गया।

वाल्मीकि रामायण—रामचरित्र का प्राचीनतम विस्तृत ग्रन्थ 'वाल्मीकि रामायण' है, जो आदिकवि वाल्मीकि की रचना मानी जाती है। रे. बुल्के के अनुसार, इस ग्रंथ का रचनाकाल ई. पू. ३०० माना गया है। इस ग्रन्थ की कुल श्लोकसंख्या २४००० हैं, जो बाल, अयोध्या, अरण्य, किष्किंधा, सुंदर, युद्ध एवं उत्तर आदि सात कांडों में विभाजित है।

महाभारत में रामकथा— महाभारत के वनपर्व में 'रामोपाख्यान' नामक एक उपपर्व है, जिसमें उन्नीस

अध्याय है। जयद्रथ के द्वारा द्रौपदी का हरण किये जाने पर युधिष्ठिर की मनःशांति के लिए मार्कंडेय ऋषि ने उसे प्राचीन राम-कथा सुनाई, जो 'रामोपाख्यान' में समाविष्ट की गयी है (म. व. २५८-२७६)।

इसके अतिरिक्त महाभारत वनपर्व में संक्षेप रामायण प्राप्त है, जो हनुमत् ने भीमसेन को कथन किया था (म. व. १४७. २३-३८)। महाभारत में प्राप्त 'षोडश राजकीय उपाख्यान' में भी राम दाशरथि का निर्देश प्राप्त है।

पुराणों में रामकथा—निम्नलिखित पुराण-ग्रन्थों में रामकथा प्राप्त हैः—

(१) **ब्रह्मांडपुराण**—राम, विष्णु का अवतार (ब्रह्मांड. ३.७३); सीताजन्म (ब्रह्मांड. ३.६४)।

(२) **विष्णुपुराण**—संक्षिप्त रामकथा (विष्णु. ४.४) सीताजन्म (विष्णु. ४.५)।

(३) **वायुपुराण**—संक्षिप्त रामकथा (वायु. ८८. १८३-१९६); सीताजन्म (वायु. ८९.२२)।

(४) **भागवतपुराण**—रामकथा (भा. ९.१०-११)।

(५) **कूर्मपुराण**—राक्षसवंशवर्णन (कूर्म. पूर्व.१९); सूर्यवंश के अंतर्गत रामकथा (कूर्म. पूर्व. २१); पतिव्रतोपाख्यान में सीताचरित्र (कूर्म. उत्तर. ३४)।

(६) **वराहपुराण**—रामजन्म (वराह. ४५)।

(७) **अग्निपुराण**—रामकथा, जो वाल्मीकि रामायण के सात खण्डों का संक्षेप है (अग्नि. ५-११)।

(८) **लिंगपुराण**—संक्षिप्त रामकथा (लिंग. पूर्व. ६६.३५-३६)।

(९) **नारदपुराण**—संक्षिप्त रामकथा (नारद. १. ७५)।

(१०) **ब्रह्मपुराण**—रामचरित्र, जो संपूर्णतः हरिवंश से उद्धृत किया गया है (ब्रह्म. २१३); रावणचरित्र (ब्रह्म. १७६); रामतीर्थ माहात्म्य (ब्रह्म. ७०-१७५)।

(११) **गरुडपुराण**—रामकथा (गरुड. १४३)।

(१२) **स्कंदपुराण**—रावणवध (स्कंद. माहेश्वर-); दशरथ का जन्म (स्कंद २०-२५); वाल्मीकि की जन्मकथा (स्कंद. वैष्णव. २०-२५); सेतुबंधन की कथा (स्कंद. ब्राह्म. २-४७); कालनिर्णय रामायण (स्कंद. धर्मारण्य. ३०-३१)।

(१३) **पद्मपुराण**—राम का अश्वमेध यज्ञ (पद्म. पा. १-६८); लोमश रामायण (पद्म. पा. ३६); जांबुवत् रामायण (पद्म. पा. ११२); रामचरित्र (पद्म. उ. २६९-२७१)।

(१४) **नृसिंहपुराण**—जिसमें वाल्मीकि रामायण के प्रथम छः काण्डों की कथा संक्षेप में दी गयी है (नृसिंह ४७-५२)।

रामभक्ति-सांप्रदाय—भागवतादि पुराण ग्रंथों-में राम एवं कृष्ण को विष्णु का अवतार माना गया है। किन्तु फिर भी रामोपासना कृष्णोपासना की अपेक्षा काफ़ी उत्तरकालीन प्रतीत होती है। यद्यपि राम को विष्णु का अवतार मानने की कल्पना ईसा की पहली शताब्दी में प्रस्थापित हो चुकी थी, फिर भी इस सांप्रदाय की प्रतिष्ठा ग्यारहवीं शताब्दी के बाद ही प्रस्थापित होती सी प्रतीत होती है (डॉ. भांडारकर, वैष्णविजम पृ. ४७)। रामपंचायतन की प्रतिमा, जिसमें राम, लक्ष्मण, भरत, सीता एवं हनुमत् समाविष्ट किये जाते हैं, वह भी इसी काल में उत्पन्न प्रतीत होती है।

रामभक्तिप्रभावित उपनिषद ग्रन्थ—निम्नलिखित तीन उपनिषद ग्रंथ रामभक्ति सांप्रदाय से प्रभावित माने जाते हैंः— १. रामपूर्वतापनीय; २. रामोत्तरतापनीय; ३. रामरहस्य। इन तीनो ग्रंथों में रामयंत्र, राममंत्र एवं सीतामंत्र का निर्देश प्राप्त है, एवं इन ग्रंथों में राम एवं सीता को क्रमशः परमपुरुष एवं मूल प्रकृति माना गया है।

निम्नलिखित वैष्णवोपदनिषदों में भी रामकथा का निर्देश प्राप्त हैः— १. कलिसंतरण; २. गोपालोत्तरतापनीय; ३. तारसार; ४. त्रिपाद-विभूति-महानारायण; ५. मुक्तिकर। इनके अतिरिक्त शाक्तोपनिषदों में भी 'सीतोपनिषद्' का निर्देश प्राप्त है।

रामभक्ति का विकास—रामभक्ति के विकास के साथ साथ रामकथा को भक्ति सांप्रदाय के ढाँचें में बिठाने की आवश्यकता निर्माण हुई, जिसके फलस्वरूप अनेकानेक सांप्रदायिक रामायणों का निर्माण हुआ। इन सांप्रदायिक रामायणों में अध्यात्म, आनंद एवं अद्‌भुत ये तीन रामायण ग्रंथ प्रमुख मानें जाते हैं।

आधुनिक भारतीय भाषाओं में लिखित रामायण ग्रंथों में तुलसी द्वारा विरचित 'रामचरितमानस' एक अद्वितीय ग्रंथ है, जिसमें रामचरित्र की सर्वांगीण झाँकि आदर्शात्मक रूप में प्रस्तुत की गयी है।

सांप्रदायिक रामायण ग्रन्थ—इन ग्रंथों में निम्नलिखित ग्रंथ प्रमुख माने जाते हैंः—

(१) **अध्यात्मरामायणः--ग्रंथकर्ता**--अनिश्चित, किन्तु कई अभ्यासकों के अनुसार रामानंद इस ग्रंथ के रचयिता थे; **रचनाकाल**--इ. स. १४ वीं अथवा १५ वीं शताब्दी; **श्लोकसंख्या**--४३९९, जो ७ काण्डों में, एवं ६५ सर्गों में विभाजित है; **महत्त्व**--यह ग्रंथ सांप्रदायिक रामायणों में सब से अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इस ग्रंथ में रामानुज के द्वारा प्रतिपादित समुच्चयवाद का स्पष्ट शब्दों में विरोध किया गया है, विशिष्टाद्वैत का कहीं भी समर्थन नहीं हुआ। आनंद रामायण, तुलसीदासजी-कृत रामचरितमानस एवं एकनाथ के मराठी भावार्थ-रामायण पर इसका काफ़ी प्रभाव है। रामभक्ति के विकास में इस ग्रंथ का महत्त्व अधिक माना जाता है।

इस ग्रंथ में राम एवं सीता को क्रमशः परम पुरुष एवं माया माना गया है, एवं इसी रूपक के द्वारा शंकराचार्य-प्रणीत अद्वैत वेदांत का प्रतिपादन किया गया है। सरल प्रतिपादन, भक्तिप्राधान्य, अद्वैत तत्त्वज्ञान का प्राधान्य, एवं अल्पविस्तार, इन गुणों के कारण यह ग्रंथ भारतीय रामभक्तों में विशेष आदरणीय माना जाता है।

(२) **आनंदरामायण--रचनाकाल**--१५ वीं शताब्दी, अर्थात् अध्यात्म रामायण के पश्चात्, एवं एकनाथ के पूर्व; **श्लोकसंख्या**--१२२५२, जो निम्नलिखित ९ काण्डों में विभाजित है :--सार, यात्रा, याग, विलास, जन्म, विवाह, राज्य, मनोहर एवं पूर्ण। इस ग्रंथ में अध्यात्म रामायण के कई उद्धरण प्राप्त हैं।

(३) **अद्‌भुतरामायण--रचनाकाल**--ई. स. १३००-१४००; **श्लोकसंख्या**--१३५३, जो २७ सर्गों में विभाजित है; **महत्त्व**--इस ग्रंथ की रचना 'वाल्मीकिभारद्वाजसंवाद' के रूप में प्राप्त है, एवं उसके अधिकांश सर्ग में (११-१५) राम एवं हनुमत् का भक्ति के विषय में एक संवाद प्राप्त है।

(४) **महारामायण** (=योगवासिष्ठ=वसिष्ठ रामायण) **ग्रंथकर्ता**-वसिष्ठ; **रचनाकाल**-ई. स. ८ वीं शताब्दी (विंटरनित्स), अथवा ११ वीं शताब्दी (डॉ. राघवन्); **श्लोकसंख्या**--३२ हज़ार; **महत्त्व**--यह ग्रंथ वसिष्ठ एवं राम के संवाद के रूप में लिखा गया है, जिसमें अध्यात्म का विस्तृत एवं प्रासादिक विवेचन प्राप्त है।

(५) **तत्त्वसंग्रहरामायण--ग्रंथकर्ता**--राम ब्रह्मानंद; **रचनाकाल**-ई. स. १७ वी शताब्दी; महत्व-इस ग्रंथ में रामकथा के तत्त्व (अर्थात् राम के परब्रह्मत्व) पर प्रकाश डाला गया है।

(६) **पुरातनरामायण** (जांबवत् रामायण)--जो पद्म-पुराण पातालखंड में प्राप्त है। यह प्रायः गद्य में है, एवं जांबवत् के द्वारा राम को कथन किया गया है।

(७) **संक्षेपरामायण**--जो महाभारत वन पर्व में प्राप्त है (म. व. १४७.२३-३८), एवं हनुमत् के द्वारा भीम को कहा गया है।

(८) **मंत्ररामायण**--जिसमें रामायण के वेदमूलत्व का प्रतिपादन किया गया है। इस ग्रंथ में, ग्रंथकर्ता नीलकंठ ने वैदिक मंत्रों का एक संग्रह प्रस्तुत किया है, जिसका परोक्षार्थ रामकथा से संबंध रखता है।

(९) **भुशुंडीरामायण** (= मूलरामायण = आदि-रामायण)--जो पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर नामक पर्वों में विभाजित है।

(१०) **वेदान्तरामायण**--जिसमें वाल्मीकि के द्वारा परशुराम का जीवन चरित्र राम को सुनाया गया।

इनके अतिरिक्त निम्नलिखित रामायण-ग्रंथों का निर्देश श्रीरामदास गौड के 'हिन्दुत्व' में प्राप्त है, जिनमें से अधिकांश ग्रंथ १७ वीं शताब्दी अथवा उसके बाद की रचनाएँ प्रतीत होती हैं :--महारामायण, संवृत्तरामायण, लोमश-रामायण, अगस्त्यरामायण, मंजुलरामायण, सौपद्यरामायण, सौहार्दरामायण, सौर्यरामायण, चांद्ररामायण, मैंदरामायण, सुब्रह्मरामायण, सुवर्चसरामायण, देवरामायण, श्रवण-रामायण, एवं दुरंतरामायण।

बौद्ध एवं जैन वाङ्मय में रामकथा--ई. पू. चौथी शताब्दी से ई. स. सोलहवी शताब्दी तक के बौद्ध एवं जैन साहित्य में, रामकथाविषयक अनेकानेक ग्रंथ प्राप्त हैं, जिनमें निम्नलिखित ग्रन्थ प्रमुख है :--दशरथजातक की गाथाएँ (ई. पू. ४ थी शताब्दी); अनामकजातक (ई. १ ली शताब्दी); पउमचरियम्, दशरथकथानकम् (ई. ४ थी शताब्दी); पद्मचरित (ई. ७ वीं शताब्दी); पउमचरिउ (ई. ८ वीं शताब्दी); रामलक्खणचरियम् (ई. ९ वीं शताब्दी); अंजनापवनांजय (ई. १३ वीं शताब्दी); रामदेवपुराण; बलभद्रपुराण (ई. १५ वीं शताब्दी); सोमसेन विरचित रामचरित (ई. १६ वीं शताब्दी)।

आधुनिक भारतीय भाषाओं में रामकथा--आधुनिक भारतीय भाषाओं में रामकथा पर आधारित अनेकानेक ग्रन्थों की निर्मिति ११ वी शताब्दी के उत्तरकाल में हो चुकी है, जिनकी संक्षिप्त जानकारी निम्नप्रकार है:--

(१) **असमीया**--शंकरदेव द्वारा विरचित माधव-कंदलीरामायण (१४ वीं शताब्दी); गीतिरामायण, रामविजय, श्रीरामकीर्तन (१६ वीं शताब्दी), गणक-चरित, कथा रामायण (१७ वीं शताब्दी)।

(२) **उड़ीया**--'उत्कलवाल्मीकि' बलरामदासकृत जगमोहनरामायण, रामविभा (१६ वीं शताब्दी); रघुनाथविलास, अध्यात्मरामायण (१७ वीं शताब्दी)।

(३) **उर्दू**--मुन्शी जगन्नाथ कृत रामायण खुश्तर (१९ वीं शताब्दी)।

(४) **कन्नड**--पंपरामायण (११ वीं शताब्दी); नरहरिकृत तोरवेरामायण, एवं मैरावण कालग (१६ वीं शताब्दी)।

(५) **काश्मीरी**--काश्मीरी रामायण, अर्थात् रामावतारचरित।

(६) **गुजराती**--रामलीला ना पदों (१४ वीं शताब्दी); रामविवाह, रामबालचरित, सीताहरण (१५ वीं शताब्दी); रावणमंदोदरीसंवाद, सीता-हनुमानसंवाद, लवकुशाख्यान (१६ वीं शताब्दी); रण-यज्ञ, सीताविरह (१७ वीं शताब्दी)।

(७) **गुरुमुखी पंजाबी**--गुरुगोविंदसिंह कृत रामावतार अर्थात् गोविंद रामायण (१७ वीं शताब्दी)।

(८) **तमिल**--कंबरामायण (१२ वीं शताब्दी)।

(९) **तेलुगु**--रंगनाथकृत द्विपदरामायण, निर्वचनोत्तर रामायण, विठ्ठलराजुकृत उत्तररामायण (१३ वीं शताब्दी); भास्कररामायण (१४ वीं शताब्दी); मोल्लरामायण (१६ वीं शताब्दी); कट्टवरदकृत द्विपद रामायण।

(१०) **बंगाली**--कृत्तिवासरामायण (१५ वीं शताब्दी); अद्भुताश्चर्य रामायण, रामायणगाथा; अद्भुतरामायण, अध्यात्मरामायण (१७ वीं शताब्दी)।

(११) **मराठी**--भावार्थ रामायण (१६ वीं शताब्दी); श्रीधर द्वारा विरचित रामविजय (१८ वीं शताब्दी)।

(१२) **मलयालम**--रामचरितम् (१४ वीं शताब्दी); कण्णश्शरामायण (१५ वीं शताब्दी); अध्यात्म-रामायण (१६ वीं शताब्दी)।

(१३) **सिंहली**--रामकथा (१५ वीं शताब्दी)।

(१४) **हिन्दी**--भरतमिलाप, रामचरितमानस (१६ वीं शताब्दी); रामचंद्रिका, अवधविलास, गोविंद-रामायण (१७ वीं शताब्दी)।

इनके अतिरिक्त तिब्बती, खोतानी, मलायी, श्यामी, कांबोदिया, एवं जावा की भाषाओं में भी, राम कथा-विषयक साहित्य प्राप्त है, जिसकी रचना नौवीं शताब्दी से लेकर सोलहवीं शताब्दी तक हो चुकी है।

राम मार्गवेय श्यापर्णेय--एक आचार्य, जो श्यापर्णों के पुरोहित परिवार में से एक था (ऐ. ब्रा. ७.२७.३)। यह मृगवु का पुत्र था, जिस कारण इसे मार्गवेय पैतृक नाम प्राप्त हुआ था।

इसका मत था कि, क्षत्रियों के द्वारा किये गये यज्ञ में, सोम के स्थानपर औदुंबर के फूलों का उपयोग करना चाहिए, जो मत इसने विश्वंतर राजा को कथन किया था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र लोगों के लिये अलग अलग वस्तुओं का सोमरस इसके द्वारा बताया गया है, जिसके अनुसार इन चार जातियों को क्रमशः सोमवल्ली, औदुंबर (पीपल एवं प्लक्ष), दधि, एवं जल का सोम के लिये उपयोग करने को कहा गया है।

यह विश्वंतर राजाओं का पुरोहित था। विश्यापर्ण नामक पुरोहितों ने विश्वंतर राजाओं के पुरोहित बनने की कोशिश की। किन्तु इसने विश्यापर्णों को दूर हटा कर, अपना पौरोहित्य पुनः प्राप्त किया।

रामकायन--वस्त नामक आचार्य का पैतृक नाम।

रामकृष्ण--एक व्याकरणाचार्य, जिसके द्वारा रचित षोडशश्लोकी शिक्षाग्रंथ प्राप्त है। उस ग्रंथ में वर्णोच्चार का ही केवल विचार किया गया है। स्वयं शंकर के मुख से इस शिक्षाग्रंथ का प्रणयन हुआ ऐसा निर्देश उक्त ग्रंथ के प्रारंभ में है।

२. एक मुनि, जिसके तप के कारण वेंकटाचल पर 'रामकृष्णतीर्थ' का निर्माण हुआ (स्कंद. २.१.१५)।

रामचंद्र--(पौर. भविष्य.) एक राजा, जो पुरंजय राजा का पुत्र था।

रामठ--एक म्लेंछ जाति, जिसे नकुल ने अपने पश्चिम दिग्विजय के समय जीता था युधिष्ठिर के रांजसूय यज्ञ के समय ये लोग उपस्थित थे। पाठभेद-'रमठ'।

रामेश्वर ज्योतिर्लिंग--शंकर का एक अवतार, जो रामेश्वर में प्रगट हुआ था। शिव का यह अवतार रामचंद्र के लिए लिया गया था (शिव. शत. ४२.)। इसके उपलिंग का नाम गुप्तेश्वर था (शिव. कोटि १.)।

रामोद--भृगुकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

रायाण--गोकुल का एक ग्वाला, जो कृष्ण की माता यशोदा का भाई था (ब्रह्मवै. २.४९.३७-३९)।

इसकी पत्नी का नाम राधा था। इसे 'रापाण' नामान्तर भी प्राप्त था (ब्रह्मवै. ४.३)

रायोवाज—एक सामद्रष्टा आचार्य (पं. ब्रा. ८.१.४; १४.४.१७)। यह यति लोगों में से एक था, एवं इन्द्र ने इसे वैद्यविद्या प्रदान की थी (यति १. देखिये)।

रावण 'दशग्रीव'—लंका का सुविख्यात राक्षस सम्राट, जो पुलस्त्यपुत्र विश्रवस् नामक राक्षस का पुत्र था। राम दाशरथि की पत्नी सीता का हरण करने के कारण, रावण प्राचीन भारतीय इतिहास में पाशवी वासना एवं दुष्टता का प्रतीक बन गया है।

नाम—इसे रावण नाम क्यों प्राप्त हुआ, इस संबंधी कथा वाल्मीकि रामायण में प्राप्त है। शिव के द्वारा इसकी भुजाएँ कैलास पर्वत के नीचे दबायी गयीं। उस समय, इसने क्रोध एवं पीड़ा से भीषण चीत्कार (रावः सुदारुणः) किया, जिस कारण इसे रावण नाम प्राप्त हुआ (वा. रा. ३.१६.२९)। इसी ग्रंथ में अन्यत्र 'शत्रु को भीषण चीत्कार करने पर विवश करनेवाला' इस अर्थ से इसे 'शत्रु रावण' कहा गया है (वा. रा. सुं. २३.८)।

हनुमत् की तरह रावण का नाम भी एक अनार्य नाम का संस्कृत रूपान्तर प्रतीत होता है। पार्गिटर के अनुसार, रावण शब्द तामिल 'इरैवण' (=राजा) का संस्कृत रूप है (पार्गि. २७७)। रायपुर जिलें में रहनेवाले गोंड लोग अपने को आज भी रावण के वंशज मानते है। राँची जिले के कटकयाँ गाँव में 'रावना' नामक परिवार आज भी विद्यमान है। इससे स्पष्ट है कि, रामकथा में निर्दिष्ट लंकाधिपति रावण एवं उसकी राक्षस प्रजा विंध्य प्रदेश एवं मध्य भारत में निवास करनेवाली अनार्य जातियों से कुछ ना कुछ संबंध ज़रूर रखती थी। इस तरह रावण एवं राक्षस वास्तव में यही नाम धारण करनेवाले इसी प्रदेश के आदिवासी थे (बुल्के, रामकथा पृ. १२३)।

रावण का उपनाम 'दशग्रीव' (=दशशीर्ष, दशानन) था, जिस कारण इसे दस सिर एवं बीस हाथ थे, ऐसा कल्पनारम्य वर्णन अनेकानेक रामायण ग्रंथों में.एवं पुराणों में किया गया है। किन्तु संभव है, 'दशग्रीव' नाम पहले इसे रूपक के रुप में प्रयुक्त किया होगा (दशग्रीव, अर्थात् जिसकी ग्रीवा दश अन्य साधारण ग्रीवों के समान बलवान् हो), एवं बाद में यह रुपकात्मक अर्थ नष्ट हो कर इसे दस मुख होने की कल्पना प्रसृत हो गयी हो। पार्गिटर के अनुसार, दशग्रीव शब्द किसी द्राविड़ नाम का संस्कृत रूप होगा। वाल्मीकि रामायण में कई जगह, इसे एक मुख, एवं दो हाथ होने का स्पष्ट निर्देश प्राप्त है (वा. रा. सुं. २२.२८; यु. ४०.१३;५९.४६; १०७.५४-५७; १०९.३; ११०. ९-१०; १११.३४-३७)।

अथर्ववेद में एक 'दशास्य'वाले (दशमुख) ब्राह्मण का निर्देश प्राप्त है (अ. वे. ४.६.१)। इस निर्देश का प्रभाव भी रावण के स्वरूप की कल्पना पर पड़ा होगा।

स्वरूपवर्णन—रावण का शरीर प्रचंड, बलिष्ठ एवं 'नीलांजनचयोपम' अर्थात् कृष्णवर्णीय था। इसकी आँखे क्रूर, विकृत एवं कृष्णपिंगल वर्ण की थीं (वा. रा. सुं. २२.१८)। इसकी दोनों भुजाएँ इंद्रध्वज के समान बलिष्ठ थी, एवं उन पर स्वर्ण के बाहुभूषण रहते थे। इसके स्कंध अत्यंत विशाल थे, जिन पर इंद्रवज्र के आघात से उत्पन्न हुयें अनेक घाव स्पष्ट रूप से दिखाई देते थें। क्रोधित होने पर इसकी आँखे लाल, महाभयंकर एवं दैदीप्यमान बनती थी (वा. रा. सुं. १०.१५-२०)।

इसे केवल दों ही हाथ थे, किन्तु युद्ध के समय अपनी इच्छा के अनुसार, दश (अथवा विंश) हस्तधारी बनने की शक्ति इसमें थी।

वाल्मीकि रामायण में क्वचित् इसे बाघ, उँट, हाथी अश्व आदि की नानाविध शीर्ष धारण करनेवाला, फैली हुयीं (विवृत्त) आँखोंवाला, एवं भूतगणों से परिवेष्टित कहा गया है (वा. रा. यु. ५९.२३)। किन्तु इस प्रकार का वर्णन वाल्मीकि रामायण में बहुत ही कम है।

जन्म—पुलस्त्य ऋषि का पुत्र विश्रवस् रावण का पिता था। उसकी माता का नाम केशिनी था, जो सुमालि राक्षस की कन्या थी।

वाल्मीकि रामायण में इसकी जन्मकथा निम्न प्रकार दी गयी है:—ब्रह्मा ने जलसृष्टि का निर्माण करने के पश्चात्, प्राणिसृष्टि का निर्माण किया, जिनमें से यक्ष एवं राक्षस उत्पन्न हुयें। इन राक्षसों का एक प्रमुख नेता हेति था, जिसके पुत्र का नाम विद्युत्केश एवं पौत्र का नाम सुकेश था। सुकेश को माल्यवान्, सुमालि एवं मालि नामक तीन पुत्र थे, जिन्होंने ब्रह्मा से अमरत्व का वरदान प्राप्त किया था। उन राक्षसों के लिए विश्वकर्मा ने त्रिकूट पर्वत पर लंका का निर्माण किया। ये तीनों भाई देवताओं तथा तपस्वियों को त्रस्त करने लगे, जिस कारण विष्णु ने मालि का वध किया, एवं सुमालि को लंका छोड़ कर, रसाताल जाने पर विवश किया।

विश्रवस् ऋषि को अपनी देववर्णिनी नामक पत्नी से कुबेर (वैश्रवण) नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। एक बार सुमालि ने कुबेर कों पुष्पक विमान पर विराजमान हो कर बड़े ही वैभव से भ्रमण करते हुए देखा, जिस कारण उसने अपनी कन्या कैकसी विश्रवस् ऋषि को विवाह में देने का निश्चय किया। विश्रवस् ऋषि ने कैकसी का स्वीकार करते हुए कहा, 'तुम इस दारुण समय पर आई हो, इस कारण तुम्हारे पुत्र क्रूरकर्मा राक्षस होंगे; किन्तु अंतीम पुत्र धर्मात्मा होगा'। इसी शाप के अनुसार, कैकसी को रावण, कुंभकर्ण, एवं शूर्पणखा नामक लोकोद्वेगकरी संतान, एवं बिभीषण नामक धर्मात्मा पुत्र उत्पन्न हुआ।

महाभारत में रावण को विश्रवस् एवं पुष्पोत्कटा का पुत्र कहा गया है। विश्रवस् का अन्य पुत्र कुबेर था, जिसने अपने पिता की सेवा के लिए पुष्पोत्कटा, राका एवं मालिनी नामक तीन सुंदर राक्षसकन्याएँ नियुक्त की। इन राक्षसकन्याओं में से पुष्पोत्कटा से रावण एवं कुंभकर्ण का, राका से खर एवं शूर्पनखा का, एवं मालिनी से विभीषण का जन्म हुआ (म. व. २५९.७)।

वाल्मीकि रामायण एवं महाभारत में प्राप्त उपर्युक्त कथाओं में रावण को ब्रह्मा का वंशज एवं कुबेर का भाई कहा गया है, जो कल्पनारम्य प्रतीत होता है। रावण का स्वतंत्र निर्देश प्राचीन साहित्य में रामकथा के अतिरिक्त अन्य कहीं भी प्राप्त नहीं है, जैसा कि ब्रह्मा अथवा कुबेर का प्राप्त है। इससे प्रतीत होता है कि, प्राचीन ऐतिहासिक राक्षस कुल से रावण का कोई भी संबंध वास्तव में नहीं था। किन्तु रामकथा के विकास के साथ साथ रावण का भी महत्त्व बढ़ने पर, राक्षस वंश के साथ इसका संबंध प्रस्थापित किया गया।

भागवत में इसका संबंध हिरण्याकशिपु एवं हिरण्याक्ष के साथ प्रस्थापित किया गया है, जहाँ विष्णु के द्वारपाल जय एवं विजय शापवश अपने अगले तीन जन्मों में, क्रमशः हिरण्यकशिपु एवं हिरण्याक्ष, रावण एवं कुंभकर्ण, शिशुपाल एवं दंतवक्र के रूप में पृथ्वी पर प्रगट होने का निर्देश प्राप्त हैं (भा. ७.१.३५-३६)।

तपश्चर्या—रावण के सौतेला भाई वैश्रवण कुबेर ने तपस्या कर के चतुर्थ लोकपाल (धनेश) का पद एवं पुष्पक विमान प्राप्द किया। विश्रवस् ने भी अपने पुत्र कुबेर को लंका का राज्य प्रदान किया था, जो राक्षसों के द्वारा विष्णु के भय से छोड़ा गया था (वा. रा. उ. ३)। एक बार, कुबेर पुष्पक विमान में बैठ कर अपने पिता विश्रवस् ऋषि से मिलने आया। रावण की माता कैकसी ने इसका ध्यान कुबेर की ओर आकर्षित कर के कहा, 'तुम भी अपने भाई के समान वैभवसंपन्न बन जाओ'। अतः यह अपने भाईयों के साथ गोकर्ण में तपस्या करने लगा (वा. रा. उ. ९.४०-४८)।

इस तरह यह दस हजार वर्षों तक तपस्या करता रहा, जिसमें प्रति सहस्त्र वर्ष के अंत में, यह अपना एक सिर अग्नि में हवन करता था। दस हजार वर्षों के अन्त में यह अपना दसवाँ सिर भी हवन करनेवाला ही था कि, इतने में प्रसन्न हो कर ब्रह्माने इसे कर दिया, 'तुम सुपर्ण, नाग, यक्ष, दैत्य, दानव, राक्षस तथा देवताओं के लिए अवध्य रहोगे'। पश्चात् ब्रह्मा ने इसके नौ सिर लौटा कर, इसे इच्छारूपी बनने का भी वर प्रदान किया (वा. रा. उ. १०-१८-२६; पद्म. पा. ६; म. व. २६९. २६)।

ब्रह्मा से वर प्राप्त करने के पश्चात्, रावण ने अपने पितामह सुमालि के अनुरोध पर अपने मंत्री प्रहस्त को कुबेर के पास भेज़ दिया, एवं लंका का राज्य राक्षसवंश के लिए माँग लिया। तत्पश्चात् अपने पिता विश्रवस् ऋषि की आज्ञा मान कर कुबेर कैलास चला गया, एवं रावण ने अपने राक्षसबांधवों के साथ लंका को अपने अधिकार में ले लिया (वा. रा. उ. ११.३२)।

अत्याचार—ब्रह्मा से वर प्राप्त करने के पश्चात्, लंकाधिपति रावण पृथ्वी पर अनेकानेक अत्याचार करने लगा। इसने अनेक देव, ऋषि, यक्ष, गंधर्वों का वध किया, एवं उनके उद्यानों को नष्ट किया। यह देखकर इसके सौतेले भाई कुबेर ने दूत भेजकर इसे सावधान करना चाहा। किन्तु रावण ने अपनी तलवार से उस दूत का वध किया, एवं अपने मंत्रियों के साथ कैलासपर्वत पर रहनेवाले कुबेर पर आक्रमण किया। वहाँ इसने यक्ष सेना को पराजित किया, एवं कुबेर को द्वंद्व युद्ध में परास्त कर उसका पुष्पक विमान छीन लिया (वा. रा. उ. ९)

गर्वहरण—कुबेर को पराजित करने के बाद, पुष्पक विमान में बैठकर यह कैलासपर्वत के उपर से जा रहा था, तब पुष्पक अचानक रुक गया। फिर रावण पुष्पक से पृथ्वी पर उतरा, एवं शिवपार्षद नंदी का वानरमुख देख कर इसने उसका उपहास किया। इस कारण नंदी ने इसे शाप दिया, 'मेरे जैसे वानरों के द्वारा तुम पराजित होंगे' (वा. रा. उ. १६)।

पश्चात् यह कैलास पर्वत को जड़मूल से उखाड़ देने की चेष्टा करने लगा। कैलास पर्वत को उठा कर यह लंका में ले जाना चाहता था। रावण के बल से पर्वत हिलने लगा, किन्तु शिव ने अपने पादांगुष्ठ से कैलास पर्वत को नीचे दबाया, जिससे रावण की भुजाएँ उस पर्वत के नीचे जकड़ गयीं।

फिर रावण विविध स्तोत्रों के द्वारा शिव का गुणगान करने लगा, एवं एक सहस्त्र वर्षों तक विलाप करता रहा। तत्पश्चात् शिव इस पर प्रसन्न हुयें, एवं उन्होंने रावण की भुजाएँ मुक्त कर उसे चंद्रहास नामक खड्ग प्रदान किया एवं अपने भक्तों में शामिल करा दिया। तदोपरान्त रावण परमशिवभक्त बन गया, एवं एक सुवर्णलिंग सदा ही साथ रखने लगा (वा. रा. उ. ३१)। रावण की शिवभक्ति की कथाएँ आनंद रामायण, एवं स्कंद तथा पद्म पुराणों में भी प्राप्त है (आ. रा. १.१३.२६-४४; पद्म. उ. २४२)।

विवाह--एक बार रावण ने मृगया के समय दिति के पुत्र मय को देखा, जो अपनी पुत्री मंदोदरी के साथ वन में टहल रहा था। रावण का परिचय प्राप्त करने के पश्चात्, मय ने मंदोदरी का विवाह इससे करना चाहा। रावण ने इस प्रस्ताव को स्वीकार लिया। विवाह के समय मय ने रावण को एक अमोघ शक्ति प्रदान की, जिससे राम-रावण युद्ध में इसने लक्ष्मण को आहत किया था (वा. रा. उ. १२)।

वेदवती से शाप--एक बार कुशध्वज ऋषि की कन्या वेदवती, नारायण को पतिरूप में प्राप्त करने के लिए तप करती थी। इस समय रावण उसके रूपयौवन पर मोहित हो कर, उस पर अत्याचार करने पर प्रवृत्त हुआ। इस पर वेदवती ने इसे शाप दिया, 'मैं तुम्हारे नाश के लिए अयोनिजा सीता के रूप में पुनः जन्म ग्रहण करूँगी' (वा. रा. उ. १७)।

विजययात्रा--रावण की विजययात्रा का सविस्तृत वर्णन वाल्मीकि रामायण में प्राप्त है, जिसके अनुसार इसने निम्नलिखित राजाओं का पराभव किया :—मरुत्त, दुष्यन्त, सुरथ, गाधि, मय, पुरूरवस् एवं अनरण्य। तत्पश्चात् रावण ने नारद की सलाह से यमलोक पर आक्रमण किया, जिसमें इसने यम की सेवकों परास्त किया। अनंतर इसने वरुणालय में नागों का राजा वासुकि को परास्त किया, अश्मनगर में अपने बहनोई विद्युज्जिह्व का वध किया, एवं वरुणसेना को परास्त कर वह वापस आया (वा. रा. उ. १८-२३)।

अपनी विजययात्रा के उपलक्ष्य में रावण जब लंका में अनुपस्थित था, तब मधु नामक दैत्य ने इसकी बहन कुंभीनसी का हरण किया। यह सुन कर, रावण ने अपने सैन्य के साथ, मधुपुर पर आक्रमण किया। किन्तु अपनी बहन के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर, इसने मधु दैत्य को अभय दिया (वा. रा. उ. २५.४६)।

मधुदैत्य के यहाँ से यह कैलासपर्वत की ओर गया, जहाँ इसने अपने भाई कुबेर की स्नुषा रंभा पर अत्याचार करना चाहा। रंभा ने इसे खूब समझाया कि, वह इसकी पुत्रवधू, अर्थात् कुबेरपुत्र नलकूबर की पत्नी है। किंतु इसने उत्तर दिया, 'अप्सराओं को कोई पति होता ही नहीं' (पतिरप्सरसां नास्ति), एवं इसने रंभा के साथ बलात्कार किया। पश्चात् यह वार्ता सुन कर नलकूबर ने इसे शाप दिया, 'न चाहनेवाली किसी स्त्री की इच्छा करने से तुम्हारे मस्तक के सात टुकडे हो जाएँगे (वा. रा. उ. २६.५५)।

तदोपरांत रावण ने कैलास पर्वत पार कर इंद्रलोक पर आक्रमण किया, जहाँ हुए युद्ध में इसके पितामह सुमालि का वध हुआ। पश्चात् इसके पुत्र मेघनाद ने इंद्र को परास्त किया, एवं उसे लंका में ले आया, जिस कारण उसे इंद्रजित् नाम प्राप्त हुआ (वा. रा. उ. ३०)।

पराजय—इसकी विजययात्राओं के साथ इसके कई पराजयों का निर्देश भी वाल्मीकिरामायण में प्राप्त है। एक बार यह माहिष्मती नगरी के समीप नर्मदा नदी में स्नान कर शिवपूजा करने के लिए गया। वहाँ माहिष्मती का हैहय राजा कार्तवीर्य अर्जुन अपनी पत्नियों के साथ आया था। उसने अपनी सहस्त्र भुजाओं से नर्मदा की धारा रोक दी, जिस कारण नदी विपरीत दिशा से बहने लगी, एवं रावण के द्वारा चढ़ाई गयी शिवपूजा के फूल ले गयी। इस पर रावण अर्जुन से द्वंद्वयुद्ध करने गया। किंतु इस युद्ध में कार्तवीर्य ने इसे परास्त कर माहिष्मती के कारावास में रख दिया। बाद में पुलस्त्य ऋषि ने मध्यस्तता कर रावण की मुक्तता की, एवं कार्तवीर्य के साथ मित्रता प्रस्थापित की (वा. रा. ३. ३१-३३)।

पार्गिटर के अनुसार, कार्तवीर्य अर्जुन पुलस्त्य से काफी पूर्वकालीन था, जिससे प्रतीत होता है कि, इस कथा में निर्दिष्ट रावण किसी अन्य द्रविड राजा था (पार्गि. २४२)।

कार्तवीर्य के कारागृह से मुक्त होने के पश्चात्, रावण फिर योग्य प्रतिद्वंद्वियों का शोध करने लगा। पश्चात् यह

किष्किंधा में वालि के पास युद्ध करने के लिए गया, जब वालि ने इसे बगल में दबा कर क्रमशः पश्चिम, उत्तर एवं पूर्व सागरों में घुमाया। तब यह वालि के सामर्थ्य को देख कर अत्यधिक आश्चर्यचकित हुआ, एवं अग्नि के साक्षी में यह उसका मित्र बना (वा. रा. उ. ३४)।

पराजय की अन्य कथाएँ—यह पाताललोक में बलि राजा को भी जीतने गया था। किन्तु वहाँ भी इसे नीचे देखना पड़ा (वा. रा. उ. प्रक्षिप्त १–५; बलि वैरोचन देखिये)।

एक बार नारद के कथनानुसार, यह श्वेतद्वीप में युद्ध करने गया। तब वहाँ की स्त्रियों ने इसे लीलापूर्वक एक दूसरी की ओर फेंक दिया। इस कारण अत्यंत भयभीत हो कर, यह समुद्र के मध्य में जा गिरा (वा. रा. उ. प्र. ३७)।

यह सीता-स्वयंवर के लिए जनक राजा की मिथिला नगरी में गया था। जनक राजा के प्रण के अनुसार, इसने शिवधनुष्य उठाने की कोशिश की। किन्तु उसे सम्हाल न सकने के कारण वह इसकी छाती पर गिरा; तब राम ने इसकी मुक्तता की (आ. रा. ७.३)। यह कथा वाल्मीकि रामायण में अप्राप्य है।

सीताहरण—एक बार राम के द्वारा विरूपित की गई रावण की बहन शूर्पणखा इसके पास आयी, एवं उसने खरवध का समाचार, एवं सीता के सौंदर्य की प्रशंसा इसे सुनाई। फिर इसने सीता का हरण करने का मन में निश्चय किया। इस कार्य में सहाय्यता प्राप्त करने के लिए यह मारीच नामक इच्छारूपधारी राक्षस के पास गया, एवं कांचनमृग का रूप धारण कर सीताहरण में सहाय्यक बनने की इसने उसे प्रार्थना की। मारीच ने इस प्रार्थना का इन्कार कर दिया, एवं स्पष्ट शब्दों में कहा, 'यदि तुम सीताहरण की ज़िद चलाओगे तो लंका का सत्यानाश होगा'।

किन्तु रावण ने मारीच की यह सलाह न मानी, एवं उसे इस कार्य में सहाय्यता करने के पुरस्कारस्वरूप, आधा राज्य प्रदान करने का आश्वासन दिया। रावण ने उसे यह भी कहा, 'यदि यह प्रस्ताव तुम स्वीकार नहीं करोगे, तो मैं तुम्हारा वध करूँगा'।

मारीच की संमति प्राप्त करने के बाद, रावण ने उसे अपने रथ में बिठा कर, जनस्थान की ओर प्रस्थान किया। वहाँ राम कांचनमृगरूपधारी मारीच के पीछे चले जाने पर, एवं लक्ष्मण उसकी खोज के लिए जाने पर, एक परिव्राजक के रूप में रावण ने सीता की पर्णकुटी में प्रवेश किया। उससे आतिथ्यसत्कार ग्रहण करने के पश्चात्, इसने अपना परिचय देते हुए कहा—

भ्राता वैश्रवणस्याऽहं सापत्नो वरवर्णिनि।
रावणो नाम भद्रं ते दशग्रीवः प्रतापवान्॥
(वा. रा. अर. ४८.२)।

(मेरा नाम रावण है, एवं मैं कुबेर का सापत्न भाई हूँ। सुविख्यात पराक्रमी राजा दशग्रीव तो मैं ही हूँ)।

पश्चात् इसने सीता को अपने साथ आ कर लंका की महारानी बनने की प्रार्थना की। इसने उसके सामने राक्षस-विवाह का प्रस्ताव रखते हुए कहा—

अलं व्रीडेन वैदेहि धर्मलोपकृतेन ते।
आर्षोऽयं देवि निष्पन्दो यस्त्वामभिभविष्यति॥
(वा. रा. अर. ५५.३४–३५)।

(अपने पति का त्याग करने के कारण, धर्मविरुद्ध आचरण करने का भय तुम मन में नहीं रखना, क्यों कि, जिस विवाह का मैं प्रस्ताव रखता हूँ, वह वेदप्रतिपादित ही है)।

रावण के इस प्रस्ताव का सीता के द्वारा अस्वीकार किये जाने पर, इसने अपना प्रचंड राक्षस-रूप धारण किया, एवं सीता को ज़बरदस्ती से रथ में बिठा कर यह लंका की ओर चला गया। मार्ग में बाधा डालनेवाले जटायु के पंख तोड़ कर इसने उसका वध किया। पश्चात् इसने सीता को लंका में स्थित अशोकवन में रख दिया (वा. रा. अर. ४३–५४; पद्म. उ. २४२; भा. ९.१०. ३०; म. व. २६३)।

श्री. चिं. वि. वैद्य के अनुसार, वाल्मीकि रामायण के सीताहरण के वृत्तांत में प्राप्त कांचनमृग का आख्यान प्रक्षिप्त है, एवं अद्भुत रस की उत्पत्ति के लिए यह आख्यान बाद में रामायण में रखा गया है (वैद्य, दि रिडल ऑफ दि रामायण पृ. १४४)।

रावण-सीता संवाद—हनुमत् ने अशोकवन में प्रवेश पा कर सीता की भेंट ले ली। उसी रात्री के अन्त में रावण अपनी पत्नियों के साथ सीता का दर्शन करने आया, एवं इसने दीनतापूर्वक सीता से प्रार्थना की, 'पति के रूप में तुम मेरा स्वीकार करो'। सीता के द्वारा इस प्रार्थना का इन्कार किये जाने पर, इसने क्रुद्ध हो कर कहा—

द्वाभ्यामूर्ध्वं तु मासाभ्यां भर्तारं मामनिच्छतीम्।
मम त्वां प्रातराशार्थे सूदाश्छेत्स्यन्ति खण्डशः॥
(वा. रा. सुं. २२.९)

(दो महिने में अगर तुम स्वेच्छा से मेरी पत्नी न बनोगी, तो रसोयें तुम्हारे शरीर के टुकड़े कर, मेरे प्रातःकाल के भोजन के लिए पकायेंगे।)

इतना कह कर रावण ने पहारा देनेवाली राक्षसियों को आदेश दिया कि, वे सीता को इसके वश में लाने का प्रयत्न करती रहें। किन्तु सीता को वश में लाने के उनके हर प्रयत्न असफल रहे, एवं सीता अपने वचनों पर दृढ रही (वा. रा. यु. ३१-३२; म. व. २८१)।

रावण-बिभीषण संवाद—रावण के छोटे भाई बिभीषण ने, धर्म एवं नीति का अनुसरण कर, सीता को राम के पास लौटाने के लिए इससे पुनः अनुरोध किया, एवं ऐसे न करने पर इसका एवं इसके लंका के राज्य का नाश होने की आशंका भी व्यक्त की।

इसने बिभीषण की एक न सुनी, एवं कहा —

घोराः स्वार्थप्रयुक्तास्तु ज्ञातयो नो भयावहाः
(वा. रा. यु. १६.७)।

(अप्रामाणिक, संशयात्मा एवं स्वयं की जबाबदारी टालनेवाले स्वजातीय लोग ही राज्य के सबसे बड़े शत्रु होते है।)

आगे चल कर बिभीषण को राक्षसकुल का कलंक (कुलपांसन) बता कर इसने कहा, 'वीर पुरुष के सबसे बड़े शत्रु उसके भाई ही होते है, जैसे कि रानहाथी का सबसे बड़ा शत्रु व्याध के पक्ष में मिलनेवाला उसका भाई ही होता है'। इस कठोर निर्भर्त्सना से घबरा कर बिभीषण ने चार राक्षसों के साथ लंका छोड़ दी, एवं वह राम के पक्ष में जा मिला। रावण के मातामह माल्यवत् ने भी इसे बहुत समझाया। किन्तु उसके उपदेशों का इसके उपर कुछ प्रभाव न पड़ा (वा. रा. यु. ३५)।

युद्धारंभ—राम से युद्ध शुरू होने के पूर्व रावण ने शुक को रामसेना की जानकारी प्राप्त करने के लिए भेज़ा था, एवं सुग्रीव के पास संदेश भी भेजा था कि, वह युद्ध में राम की सहाय्यता न करे (वा. रा. यु. २०)। किन्तु उसका कुछ भी परिणाम न हुआ, एवं शान्ति के सारे प्रयत्न अयशस्वी हो कर इसका राम के साथ युद्ध शुरू हुआ।

सेनावर्णन—रावण की सेना बहुत बड़ी थी, जिसके छः सेनापति प्रमुख थे :—महोदर, प्रहस्त, मारीच, शुक, सारण एवं धूम्राक्ष (वा. रा. उ. १४.१)। युद्ध के प्रारंभ में इसने प्रहस्त, महापार्श्व, महोदर एवं अपने पुत्र इंद्रजित् को लंका के चारों द्वार के संरक्षण के लिए नियुक्त किया था। लंका के मध्यभाग के संरक्षण का भार विरुपाक्ष पर सौंपा गया था, एवं यह स्वयं शुक, सारण एवं अन्य सेना के साथ उत्तरद्वार पर खड़ा हुआ था (वा. रा. यु. ३६)।

युद्ध के प्रारंभ में, राम एवं लक्ष्मण को नागपाश में बँधा जाने का प्रसंग इसने सीता त्रिजटा से विदित कराया, एवं सीता को वश में लाने का आखिरी प्रयत्न किया। किन्तु उस प्रयत्न में यह असफल रहा।

बाद में राम के साथ किये गये युद्ध में एक एक कर के प्रहस्त, धुम्राक्ष, वज्रदंष्ट्र, अकंपन आदि इसके सारे सेनापति, एवं इसका भाई कुंभकर्ण एवं पुत्र इंद्रजित् मारे गयें। तत्पश्चात् क्रोध में आकर यह सीता के वध के लिए उद्यत हुआ। किन्तु सुपार्श्व नामक इसके अमात्य ने स्त्रीवध से इसे रोक दिया (वा. रा. यु. ९२.५८)।

रामरावणयुद्ध—राम एवं रावण का युद्ध कुल दो बार हुआ था। इसमें से पहले युद्ध में बिभीषण ने इसके रथ के घोड़ों का वध किया था। तत्पश्चात् इसने रथ से उतर कर, शक्ति नामक एक बरछी बिभीषण की ओर फेंक दी, किन्तु लक्ष्मण ने उस शक्ति को छिन्नभिन्न कर फेंक दिया। पश्चात् मय के द्वारा दी गयी 'अमोघा' शक्ति लक्ष्मण पर छोड़ कर इसने उसे मूर्च्छित किया। तत्पश्चात् राम ने लक्ष्मण को हनुमान आदि वानरों की रक्षा में छोड़ कर, रावण पर ऐसा हमला किया कि, यह रणभूमि छोड़ कर भाग गया (वा. रा. यु. ९९-१००)।

इंद्रजित् के वध के पश्चात् यह 'जयप्रापक' नामक मंत्र का जाप करने बैठा। इस वार्ता को सुन कर, बिभीषण ने राम से किसी तरह भी इस जाप में बाधा डालने की सूचना दी, क्यों कि, इस जाप का पूरा होते ही यह शिव की प्रसाद से अजेय होने की संभावना थी।

बिभीषण की सूचना के अनुसार, अंगद मंदोदरी के केशों को खींच कर रावण के पास ले आया, जिस कारण क्रुद्ध हो कर रावण ने अपना जाप यज्ञ अधुरा ही छोड़ दिया, एवं यह युद्धभूमि में आ डटा (वा. रा. यु. ८२ प. उ. पाठ)।

वध—इसके उपरान्त राम-रावण का विकराल युद्ध हुआ। इस युद्ध के समय इन्द्र ने अपना रथ, एवं मातलि

नामक सारथी राम के सहाय्यार्थ भेजा। अगस्त्य ने भी राम को आदित्य नामक स्तोत्र प्रदान किया। राम-रावण का यह युद्ध सात दिनों तक चलता रहा। इस युद्ध में रावण एक बार मूर्च्छित हुआ, एवं अपने सारथि के द्वारा युद्धभूमि से दूर लाया गया (वा. रा. यु. १०२-१०३)।

होश में आते ही रावण पुनः एक बार युद्धभूमि में आ उतरा। अंत में अगस्त्य के द्वारा दिये गये ब्रह्मास्त्र इसकी छाती पर मार कर, राम ने इसका वध किया। (वा.रा.यु.१०८; म.स. परि. १.क्र. २१ पंक्ति. ५३६; व. २९१.२९; द्रो. परि. १. क्र. ८. पंक्ति. ४४७)। राम-रावण के इस अंतीम युद्ध में रावण के सिर पुनः पुनः उत्पन्न होते थे, यहाँ तक कि, राम ने रावण के एकसौ सिर काट दिये (वा. रा. यु. १०७.५७)।

परिवार—मंदोदरी के अतिरिक्त रावण के धान्य-मालिनी नामक अन्य एक पत्नी का निर्देश प्राप्त है, जो अतिकाय की माता थी (वा. रा. सुं. २२.३९; यु. ७१. ३०)।

इन दो पत्नियों के अतिरिक्त रावण को हज़ार पत्नियाँ थी, जिनमें देव, गंधर्व, नाग आदि स्त्रियों का समावेश था (वा. रा. अयो. १२३.१४; सुं. १०-११; १८; २२; यु. ११०; उ. २२)।

रावण के पुत्रों में इंद्रजित् सर्वाधिक प्रसिद्ध है। उसके अतिरिक्त इसे निम्नलिखित अन्य पुत्र भी थे:— अक्ष, (वा. रा. सुं. ४७); अतिकाय (वा. रा. यु. ७१. ३०); त्रिशीर्ष (वा. रा. यु. ७०); नरान्तक (वा. रा. यु. ६९); देवान्तक (वा. रा. यु. ७०)।

रावण को कुंभकर्ण एवं विभीषण नामक दो भाई, एवं शूर्पणखा नामक बहन थी। उनके अतिरिक्त मत्त एवं युद्धोंमत्त नामक इसके अन्य दो भाईयों का, एवं कुंभिनसी नामक एक बहन का भी निर्देश प्राप्त है (वा. रा. यु. ७१.२)।

चरित्रचित्रण—राम जैसे परमवीर राजा को युद्ध में ललकारने की हिंमत करनेवाला रावण, स्वयं एक परमऐश्वर्युक्त, शोभासंपन्न एवं पराक्रमी राजा था। रावण स्वयं एक साधारण सम्राट न था, किन्तु समस्त पृथ्वी को जीतनेवाला एक लोकव्यापी आतंक भी था। स्वर्णासन पर बैठ कर अग्नि जैसे तेजस्वी दिखनेवाले रावण को देख कर, स्वयं राम भी प्रभावित हो चुका था (वा. रा. अर. ३२.५; यु. ५९.२६)। इस उग्र तथा पाप करनेवाले राजा को देख कर, पृथ्वी के चर प्राणी ही क्या, वायु, वृक्ष, आदि अचर वस्तु भी कंपित होती थी (वा. रा. अर. ४६.६-८)।

यह कुशल राजनीतिज्ञ एवं दिग्विजयी सम्राट् था। इसकी प्रजा ऐश्वर्यसंपन्न एवं धनधान्य से पूरित थी (वा. रा. सुं. ४.२१-२७; ९.२-१७)। इसके राज्य में अनेकानेक वस्तुओं निर्माण करने की कला चरम सीमा पर थी (वा. रा. सुं. ६)।

यह अपने मंत्रिगणों में अत्यधिक आदरणीय था, एवं यह स्वयं मंत्रियों के विचारविमर्श पूछ कर ही राज्य का कारोबार चलाता था (वा. रा. अर. ३८.२३-३३)।

परमपराक्रमी होने के साथ, यह उच्चश्रेणी का रसिक एवं संगीतज्ञ भी था (वा. रा. सुं. ४४. ३२)। अपने परिवार के लोगों के प्रति यह अत्यन्त स्नेहशील था। अपनी बहन शूर्पणखा विधवा होने पर, यह बड़ा दुःखी हुआ था (वा. रा. उ. २४)।

महापंडित रावण—रावण वेदों का महापंडित, एवं समस्त शास्त्रो का माना हुआ विद्वान् था। वाल्मीकि रामायण में इसे 'वेदविद्यानिष्णात' (वेदविद्याव्रतस्नातः) एवं 'आचारसंपन्न' (स्वकर्मनिरतः) कहा गया है (वा. रा. यु.९२.६०)। शाखाओं के क्रम के अनुसार वेदों का विभाजन करने का काम इसके द्वारा किया गया था। इसके नाम पर ऋग्वेद का एक भाष्य एवं वेदों का एक पद-पाठ भी प्राप्त है। बलराम रामायण के अनुसार, इसने वैदिक मंत्रों का संपादन कर, वेदों की एक नयी शाखा का निर्माण भी किया था।

रावण के नाम पर निम्नलिखित ग्रंथ भी प्राप्त है:— अर्कप्रकाश, कुमारतंत्र, इंद्रजाल, प्राकृत कामधेनु, प्राकृत-लंकेश्वर, ऋग्वेदभाष्य, रावणभेट आदि।

कई अभ्यासकों के अनुसार, उपर्युक्त ग्रंथ लिखनेवाला रावण, लंकाधिपति रावण से कोई अलग व्यक्ति था।

'तुलसी रामायण' में—'मानस' में चित्रित किया गया रावण इंद्रियलोलुप, कुटिल राजनीतिज्ञ, क्रोधी एवं परम शक्तिशाली खलपुरुष है। यह एक वस्तुवादी, अधार्मिक, अभिमानी एवं हठी व्यक्ती है, जो मारीच, विभीषण, माल्यवत्, प्रहस्त, कुंभकर्ण एवं मंदोदरी के द्वारा किये गये सदुपदेश पर किंचित भी ध्यान नहीं देता है।

'मानस' में रावण के अनाचारों, अत्याचारों एवं निरंकुशता की ओर विशेष संकेत किया गया है, एवं इसे नीच, खल, अधम आदि विशेषणों से भूषित किया

गया है (मानस. ३.२३.८; ३.२८.८)। इससे प्रतीत होता है कि, राम के चरित्रचित्रण में तुलसी का मन जितना रमा है, उतना उसके प्रतिपक्षी रावण के चित्रण में नही।

रावण शतमुख—मायापुरी का राक्षस नृप, जो कुंभकर्ण का पौत्र पौंड्रक राजा का मित्र था। बिभीषण के विरोधी पक्ष में होने के कारण राम ने इसका वध किया (आ. रा. राज्य. ५)।

रावण सहस्रमुख—पुष्करद्वीप का एक सहस्रमुखी राक्षस, जिसका सीता के द्वारा वध हुआ था (अद्भुत रा.१७)।

राष्ट्र—(सो. क्षत्र) एक राजा, जो वायु के अनुसार काशि राजा का पुत्र था।

राष्ट्रपाल—(सो. वृष्णि.) एक यादव राजकुमार, जो कंस राजा का भाई, एवं उग्रसेन के नौ पुत्रों में से एक था।

राष्ट्रपाला अथवा **राष्ट्रपालिका**—मथुरा के उग्रसेन राजा की कन्या, जो वसुदेव के भाई सृंजय राजा की पत्नी थी। इसे वृक एवं दुर्मषण नामक दो पुत्र थे (भा. ९. २४-२५; ४२)।

राष्ट्रपिंड—अंगिराकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

राष्ट्रभृत--अथर्ववेद में निर्दिष्ट तीन अप्सराओं में से एक (अ. वे. १६.११८; वा. सं. १५.१५-१९)। अन्य दो अप्सराओं के नाम उग्रजित एवं उग्रपश्या थे।

२. (स्वा. प्रिय.) एक राजा, जो भागवत के अनुसार भरत एवं पंचजनी के पुत्रों में से एक था।

राष्ट्रवर्धन--दशरथ राजा के अष्टप्रधानों में से एक (वा. रा. बा. ७.३)।

२. राज्यवर्धन राजा का नामान्तर (राज्यवर्धन देखिये)।

राहु--एक दानव, जो अष्टग्रहों में से एक पापग्रह माना जाता है। सूर्य को ग्रसित करनेवाले दानव के रूप में इसका निर्देश अथर्ववेद में प्राप्त है (अ. वे. १९.९-१०)।

पुराणों में इसे कश्यप एवं दनु का पुत्र बताया गया है। अन्य ग्रंथों में से इसे कश्यप एवं सिंहिका का पुत्र कहा गया है (म. आ. ५९.३०; विष्णुधर्म. १.१०६; पद्म. सृ. ४०)। भागवत एवं ब्रह्मांड में इसे विप्रचित्ति एवं सिंहिका का पुत्र कहा गया है (भा. ६.६.३७; १८.१३; ब्रह्मांड. ३.६.१८-२०)।

स्वर्भानु नामक एक आसुर प्राणि का निर्देश ऋग्वेद में प्राप्त है, जिसे सूर्य के प्रकाश को रोंकनेवाला माना गया है (ऋ. ५.४०; स्वर्भानु देखिये)। वैदिक साहित्य में निर्दिष्ट स्वर्भानु का स्थान ही वैदिकोत्तर पुराकथाशास्त्र में राहु के द्वारा लिया गया है, जिस कारण इसे 'चंद्रार्क-प्रमर्दन' (चंद्र एवं सूर्य को जीतनेवाला) कहा गया है (भा. ५.२३.७)। कई पुराणों में इसका नामान्तर स्वर्भानु बताया गया है (ब्रह्मांड. ३.६.२३)। शिशुमार चक्र के गले में इसका निवासस्थान था।

शिरच्छेद—समुद्रमंथन के उपरान्त देव-गण अमृत-पान करने लगा, जब यह दानव भी प्रच्छन्न रूप धारण कर अमृतपान में शामिल हुआ। अमृत इसके गले तक ही पहुँच पाया था कि, सूर्यचंद्र ने यह दैत्य होने की सूचना विष्णु को दी। विष्णु ने तत्काल इसका शिरच्छेद किया, जिससे इसका सिर बदन से अलग हो कर धरती पर जा गिरा (म. आ. १७.४.६)।

पश्चात् इसके सिर से केतु का निर्माण हुआ, एवं यह सिरविरहित अवस्था में घूमने लगा। तदोपरान्त विष्णु की डर से ये दोनों भाग गयें। किन्तु सूर्य एवं चंद्रमा के प्रति राहु-केतुका द्वेष कम न हुआ। इसी कारण, ये आज भी उन्हे ग्रासते रहते हैं, जिसे क्रमशः सूर्यग्रहण एवं चंद्रग्रहण कहते हैं (पद्म. ब्र. १०)।

राहु ग्रह का आकार वृत्ताकार माना जाता है। इसका व्यास बारह हज़ार योजन, तथा दायरा बयालिस हज़ार योजन है।

जिस समय शंकर एवं जालंधर का युद्ध हुआ था, उस समय यह जालंधर की ओर से राजदूत बन कर शंकर के पास गया था (पद्म. उ. १०)। किन्तु वहाँ शंकर की क्रोधाग्नी से डर कर यह भाग गया (पद्म. उ. १९)। इस पापग्रह के प्रभाव की जानकारी संजय ने धृतराष्ट्र को बताई थी (म. स. १३.३९-४१)। ब्रह्मा की सभा में उपस्थित ग्रहों में भी इसका नाम प्राप्त है।

इसकी कन्या का नाम सुप्रभा था (पद्म. सृ. ६), जिसे भागवत में स्वर्भानुपुत्री कहा गया है। कई अन्य पुराणों में इसकी कन्या का नाम प्रभा दिया गया है (ब्रह्मांड. ३.६. २३; विष्णु. १.२१)।

राहुकर्णि—अंगिराकुलोत्पन्न एक गोत्रकार। पाठभेद-'रागकर्णि'।

राहुल—(सू. इ. भविष्य.) शुद्धोदन राजा के पुत्र पुष्कल राजा का नामान्तर (पुष्कल. २. देखिये)।

राहूगण—गोतम नामक आचार्य का पैतृक नाम (श. ब्रा. १.४.१.१०)। रहुगण का वंशज होने से, इसे यह पैतृक नाम प्राप्त हुआ होगा (रहूगण देखिये)।

रिक्ष—(सो. नील.) नीलवंशीय चक्षु राजा का नामान्तर (चक्षु २. देखिये)।

रिपु—(सो. द्रुह्यु.) एक राजा, जो वायु के अनुसार बभ्रु राजा का पुत्र था।

२. (सो. पुरूरवस्) एक राजा, जो भागवत के अनुसार यदु राजा का पुत्र था।

रिपुंजय—(सो. द्विमीढ.) एक राजा, जो भागवत के अनुसार सुवीर राजा का पुत्र था। इसे नृपंजय नामान्तर भी प्राप्त था।

२. (स्वा. उत्तान.) एक राजा, जो ध्रुवपुत्र शिष्ट राजा के चार पुत्रों में से एक था। इसकी माता का नाम सुच्छाया था।

३. (सो. मगध. भविष्य.) मगधवंशीय महाबाहु राजा का नामान्तर। ब्रह्मांड में इसे श्रुतंजय का पुत्र कहा गया है (महाबाहु ३. देखिये)।

४. (सो. मगध. भविष्य.) मगधदेश का एक राजा, जो विष्णु के अनुसार विश्वजित का, एवं मत्स्य के अनुसार अचल राजा का पुत्र था। वायु एवं ब्रह्मांड में इसे अरिंजय, तथा भागवत में इसे पुरंजय कहा गया है। इसने पचास वर्षों तक राज्य किया। इसके शुनक नामक प्रधान ने इसका वध कर, अपने प्रद्योत नामक स्वतंत्र राजवंश की स्थापना की।

५. एक ब्राह्मण, जो उदारधी एवं भद्रा के दो पुत्रों में से एक था।

६. कुण्डल नगरी के सुरथ राजा का पुत्र। सुरथ ने राम का अश्वमेधीय अश्व पकड़ लिया था। उस समय शत्रुघ्न के साथ हुए युद्ध में, यह सुरथ के साथ युद्धभूमि में प्रविष्ट हुआ था (पद्म. पा. ४९)।

७. एक ब्राह्मण, जो अपने अगले जन्म में काशी देश के दिवोदास नामक राजा बना। एक बार काशीदेश में से अग्नि लुप्त हुआ, जिस समय इसने स्वयं अग्नि का काम निभाया (स्कंद. ४.२.३९-५८)।

रिपुताप—एक शूर योद्धा, जो शत्रुघ्न के साथ राम के अश्वमेधीय अश्व के संरक्षण के लिए उपस्थित था (पद्म. पा. ११)।

रिपुवार—वीरमणि राजा का सेनापति। वीरमणि के द्वारा राम का अश्वमेधीय अश्व पकड़ लिये जाने पर, इसने शत्रुघ्न के साथ युद्ध किया था।

रिषा—कश्यप एवं क्रोधा की एक कन्या, जो धर्म ऋषि की पत्नी थी।

रिष्ट—वैवस्वत मनु के पुत्रों में से एक।

२. यम सभा में उपस्थित एक राजा (म. स. ८. १४)।

रुक्म—(सो. क्रोष्टु.) एक यादवराजा, जो भागवत के अनुसार रुचक राजा का पुत्र था। इसके भाई का नाम पृथु था, जिस कारण इन दोनों का एकत्र निर्देश अनेक ग्रंथों में प्राप्त है।

रुक्मकवच—एक यादवराजा, जो मत्स्य एवं वायु के अनुसार कंबलबर्हिष राजा का पुत्र था। विष्णु एवं पद्म में इसे शिनेयु राजा का, एवं भागवत में इसे रुचक राजा का पुत्र कहा गया है।

रुक्मकेश—एक राजकुमार, जो विदर्भदेशाधिपति भीष्मक राजा के पाँच पुत्रों में से चौथा पुत्र था (भा. १०.५२.२२)।

रुक्मबाहु—एक राजकुमार, जो विदर्भदेशाधिपति भीष्मक राजा के पाँच पुत्रों में से तीसरा पुत्र था (भा. १०.५२.२२)।

रुक्मभूषण—विदिशा नगरी का एक राजा, जो ऋतुध्वज राजा का पुत्र था। इसके पुत्र का नाम धर्मांगद था (धर्मांगद देखिये)।

रुक्ममालिन्—एक राजकुमार, जो विदर्भदेशाधिपति भीष्मक राजा के पाँच पुत्रों में से पाँचवा पुत्र था (भा. १०.५२.२२)।

रुक्मरथ—एक राजकुमार, जो विदर्भदेशाधिपति भीष्मक राजा के पाँच पुत्रों में से दूसरा पुत्र था (भा. १०.५२.२२)। द्रौपदी स्वयंवर के समय यह उपस्थित था (म. आ. १७७.१३)।

२. मद्रदेशाधिपति शल्य राजा का ज्येष्ठ पुत्र, जो अपने पिता एवं भाई रुक्मांगद के साथ द्रौपदीस्वयंवर में उपस्थित था (म. आ. १७७.१३)।

भारतीययुद्ध में यह कौरवों के पक्ष में शामिल था। युद्ध के प्रारंभ में इसका श्वेत से युद्ध हुआ था, जिसके बाणों से यह आहत हुआ था (म. भी. परि. १. क्र. ४. पंक्ति. १०)।

इसका अभिमन्यु से युद्ध हुआ था, जिसमें यह एवं इसके अन्य भाई मारे जाने का निर्देश प्राप्त है (म. द्रो. ४४.१३)। किन्तु सहदेव के द्वारा इसका वध होने का निर्देश भी महाभारत में अन्यत्र प्राप्त है (म. क. ४.२७)। इनमें से अभिमन्यु के द्वारा इसका वध होने की संभावना अधिक प्रतीत होती है। सहदेव के द्वारा मारा

गया योद्धा शल्यपुत्र रुक्मरथ न हो कर, शल्य का अन्य पुत्र रुक्मांगद होगा।

३. (सो. द्विमीढ.) एक राजा, जो मत्स्य के अनुसार महापौरव राजा का पुत्र था।

४. द्रोणाचार्य का नामांतर, जो उसे उसके सुवर्णरथ के कारण प्राप्त हुआ था (म. द्रो. १२.२२)।

५. त्रिगर्तदेशीय राजकुमारों के एक दल का सामूहिक नाम। इसने कर्ण की आज्ञा से अर्जुन पर आक्रमण किया था (म. द्रो. ८७.१९-२५)।

रुक्मवती—विदर्भदेशाधिपति भीष्मक राजा की पौत्री, एवं रुक्मि की कन्या। अपनी बहन रुक्मिणी के कहने पर रुक्मि ने अपनी इस कन्या का विवाह रुक्मिणी का पुत्र प्रद्युम्न के साथ किया था (भा. १०.६१.२३)।

रुक्मांगद—मद्रराज शल्य का द्वितीय पुत्र, जो अपने पिता एवं ज्येष्ठ बंधु रुक्मरथ के साथ द्रौपदी-स्वयंवर में उपस्थित था (म. आ. १७७.१३)। भारतीय-युद्ध में यह सहदेव के द्वारा मारा गया (रुक्मरथ २. देखिये)।

२. (सू. इ.) एक इक्ष्वाकुवंशीय राजा, जो ऋतुध्वज राजा का पुत्र था (नारद. २.१२.२०)। इसकी पत्नी का नाम विंध्यावली, एवं पुत्र का नाम धर्मांगद था।

रुक्मांगद राजा की एकादशीव्रत पर विशेष श्रद्धा थी। ब्रह्मा के मन में इसे उस व्रत से भ्रष्ट करने की इच्छा उत्पन्न हुई, जिस काम के लिए उसने मोहिनी नामक अप्सरा की नियुक्ति की। एक बार यह मंदर पर्वत पर शिकार करने गया था, जहाँ मोहिनी भी उपस्थित हुई। मोहिनी ने अपने नृत्यगायन से इसका मन आकर्षित किया, एवं इसने उससे विवाह की माँग की।

एक बार मोहिनी ने इसे अपने प्रेम की आन दे कर, एकादशीव्रत से इसे परावृत्त करने का प्रयत्न किया। किन्तु इसने मोहिनी की माँग अमान्य कर दी। फिर उसने इसे अपने पुत्र धर्मांगद का सिर तलवार से काटने को कहा। मोहिनी की इस माँग को यह पूरी करनेवाला ही था कि, इतने में श्रीविष्णु ने साक्षात प्रकट हो कर, इस कृत्य से इसे परावृत्त किया, एवं प्रसन्न हो कर इसे अनेकानेक वर प्रदान किये (नारद. २.३६)।

३. वीरमणि राजा का पुत्र, जिसने राम का अश्वमेधीय अश्व पकड़ लिया था। तत्पश्चात हुए युद्ध में शत्रुघ्नपुत्र पुष्कल ने इसे परास्त कर आहत कर दिया (पद्म. पा. ३९-४१)।

४. एक कुष्ठरोगी राजा, जो कौंडिन्यपूर के भीम राजा का पुत्र था। इसकी माता का नाम चारुहासिनी था। श्रीगणेश के चिंतामणि-क्षेत्र में स्नान करने के कारण, यह कुष्ठ रोग से मुक्त हुआ (गणेश १.२७-३५)।

रुक्मिणी—विदर्भाधिपति भीष्मक (हिरण्यरोमन्) राजा की लक्ष्मी के अंश से उत्पन्न कन्या, जो श्रीकृष्ण की पटरानी थी (ह. वं. २.५९.१६)। भीष्मक राजा की कन्या होने के कारण इसे 'भैष्मी,' एवं विदर्भराजकन्या होने के कारण इसे 'वैदर्भी' नामान्तर भी प्राप्त थे (भा. १०.५३.१; ६०.१)। इसके पिता भीष्मक को हिरण्यरोमन् नामान्तर होने के कारण, इसे एवं इसके पाँच बन्धुओं को 'रुक्मि' (सुवर्ण) उपपद से शुरु होनेवाले नाम प्राप्त हुयें थे (भीष्मक देखिये)।

श्रीकृष्ण से प्रेम—विवाहयोग्य होने के उपरांत, एक बार, नारद के द्वारा कृष्ण के गुण, रूप तथा सामर्थ्य का वर्णन इसने सुना, जिस कारण कृष्ण के ही साथ विवाह करने का निश्चय इसने किया (भा. १०.५२.३९)।

इसके रूप एवं गुणों को सुन कर कृष्ण के मन में भी इसके प्रति प्रेम की भावना उत्पन्न हुई, तथा उन्होंने इसके साथ विवाह करने की अपनी इच्छा इसके पिता भीष्मक से प्रकट की। परन्तु इसका ज्येष्ठ भ्राता रुक्मि जरासंध का अनुयायी था, एवं कंसवध के समय से कृष्ण से क्रोधित था। अतएव उसने भीष्मक से कहा, 'रुक्मिणी की शादी कृष्ण से न कर के शिशुपाल के साथ कर दो, जो कन्या के लिए अधिक योग्य वर है'। भीष्मक ने अपने पुत्र की इस सूचना का स्वीकार किया, एवं इसका विवाह शिशुपाल से निश्चित किया।

यह वार्ता सुन कर यह अत्यधिक दुःखित हुई, एवं इसने मौका देख कर श्रीकृष्ण को एक पत्र लिखा, जो सुशील नामक एक ब्राह्मण के द्वारा इसने द्वारका भेज दिया। इस पत्र में इसने श्रीकृष्ण के प्रति अपनी प्रणय-भावना स्पष्ट रूप से प्रगट कर, आगे लिखा था, 'हमारे घर ऐसी प्रथा है कि, विवाह के एक दिन पूर्व कन्या नगर के बाहर स्थित अंबिका के दर्शन के लिए जाती है। उस समय गुप्त रूप में आ कर, आप मेरा हरण करें'।

श्रीकृष्ण का आगमन—रुक्मिणी का यह पत्र मिलते ही, कृष्ण सुशील ब्राह्मण के सहित रथ में बैठ कर एक रात्रि में आनर्त देश से कुंडिनपुर पहुँच गये। यह देख कर, एवं परिस्थिति गंभीर जान कर, बलराम भी यादवसेना को ले कर कृष्ण के पीछे निकल पड़ा। बलराम

एवं कृष्ण विदर्भ देश से क्रथ तथा कौशिक देश में गयें, जहाँ के राजाओं ने उनका काफ़ी सत्कार किया (ह. वं. २.५९)।

भागवत एवं विष्णु के अनुसार, कृष्ण एवं बलराम शिशुपाल एवं रुक्मिणी के विवाहसमारोह में शामिल होने के बहाने कुंडिनपुर आयें थे (भा. १०.५३; विष्णु. ५.२६)।

चेदिराज शिशुपाल एवं रुक्मिणी का विवाह भली प्रकार निर्विघ्न सम्पन्न हो, इसके लिए निम्नलिखित राजा अपनी सेनाओं सहित विद्यमान थे--दंतवक्त्रपुत्र सुवक्त्र, पौंड्राधिपति वासुदेव, वासुदेवपुत्र सुदेव, एकलव्यपुत्र, पांड्य-राजपुत्र, कलिंगराज, वेणुदारि, अंशुमान्, क्राथ, श्रुतधर्मा, कालिंग, गांधाराधिपति, कौशांबीराज आदि। इसके अतिरिक्त भगदत्त, शल, शाल्व, भूरिश्रवा तथा कुंतिवीर्य आदि राजा भी आयें हुए थे।

रुक्मिणीहरण—विवाह के एक दिन पूर्व, कुलपरंपरा के अनुसार रुक्मिणी शहर के बाहर भवानी के दर्शन करने के लिए गई, तथा वहाँ जाकर कृष्ण को ही पति के रूप में प्राप्त करने की प्रार्थना इसने की। हरिवंश के अनुसार, यह इन्द्र एवं इन्द्राणी के दर्शन के लिए गई थी।

दर्शन करने के उपरांत, रुक्मिणी बाहर आकर कृष्ण को इधर उधर देखने लगी। तब शत्रुओं को देखते देखते कृष्ण ने इसे अपने रथ में बैठा दिया, एवं शत्रुओं की सेना को पराजित करने का भार अपनी यादवसेना को सौंप कर कृष्ण ने इसका हरण किया। तब बलराम तथा अन्य यादवों ने विपक्षियों को पराजित किया।

रुक्मी का पराजय—बाद में रुक्मिणी के ज्येष्ठ भ्राता रुक्मी, कृष्ण को भली प्रकार दण्डित करने के लिए, नर्मदा तट से पीछा करता हुआ कृष्ण के पास आ पहुँचा। जैसे ही उसने रुक्मिणी तथा कृष्ण को एक दूसरे से निकट बैठा हुआ देखा, वह क्रोध से पागल हो उठा, एवं उसने कृष्ण से युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया। भीषण संग्राम के उपरांत कृष्ण ने रुक्मी को पराजित किया। कृष्ण उसका वध करनेवाला ही था, कि इसने अपने भाई का जीवन-दान उससे माँगा। तब कृष्ण ने रुक्मी को विद्रूप कर क छोड़ दिया। भाई को विद्रूप देखकर यह रोने लगी, तब बलराम ने इसे सान्त्वना दी, एवं कृष्ण को उसके इस कृत्य के लिए काफ़ी डाटा।

अन्त में बड़ी धूमधाम के साथ इसका एवं कृष्ण का विवाह द्वारका में संपन्न हुआ (भा. १०.५४; ८३; ह. वं. २.६०; विष्णु. ५.२६; पद्म. उ. २४७-२४९)।

प्रासादवर्णन--विश्वकर्मा ने इन्द्र की प्रेरणा से कृष्ण एवं रुक्मिणी के लिए एक मनोहर प्रासाद का निर्माण किया था, जिसका विस्तार एक योजन था। उसके शिखर पर सुवर्ण चढाया था, जिस कारण वह मेरु पर्वत के उत्तुंगशृंग की शोभा धारण करता था (म. स. परि. १. २१. १२४०)

भाग्यश्री किस तरह प्राप्त हो सकती है, इस संबंध में इसका स्वयं भाग्यश्री देवी से संवाद हुआ था, जिस समय श्रीकृष्ण भी उपस्थित था (म. अनु. ३२)। अपने स्वयंवर की कहानी इसने द्रौपदी को सुनाई थी (भा १०.८३)।

भागवत में इसके द्वारा श्रीकृष्ण से किये गये प्रणय-कलह का सुंदर वर्णन प्राप्त है (भा. १०.६०)।

पुत्रप्राप्ति--विवाह के पश्चात् इसे प्रद्युम्न नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसके बचपन में ही शंबरासुर ने उसका हरण किया, जिस कारण इसने अत्यधिक शोक किया था। प्रद्युम्न साक्षात् मदन का ही अवतार था, जिसे इसके भाई रुक्मिन् ने अपनी कन्या रुक्मवती विवाह में प्रदान की थी।

अग्निप्रवेश--श्रीकृष्ण की मृत्यु के पश्चात् इसने एवं श्रीकृष्ण की अन्य चार पत्निओं ने चितारोहण किया। ब्रह्म के अनुसार, श्रीकृष्ण की मृत्यु के पश्चात् उसकी आठ पत्नीयों ने अग्निप्रवेश किया, जिसमें यह प्रमुख थी।

महाभारत में रुक्मिणी के एक आश्रम का निर्देश प्राप्त है, जो उज्जानक प्रदेश की सीमा में स्थित था। इस स्थान पर इसने क्रोध पर विजय पाने के लिए घोर तपस्या की थी (म. व. १३०.१५)।

परिवार--रुक्मिणी को श्रीकृष्ण से चारुमती नामक एक कन्या, एवं निम्नलिखित दस पुत्र उत्पन्न हुयें थे:-- प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, सुदेष्ण, चारुदेह, सुचारु, चारुगुप्त, भद्रचारु, चारुचंद्र, विचारु, एवं चारु (भा. १०.६१; ह. वं. २. ६०)।

महाभारत में इसके पुत्रों के नाम निम्न प्रकार प्राप्त हैं:--चारुदेष्ण, सुचारु, चारुवेश, यशोधर, चारुश्रवस्, चारुयशस्, प्रद्युम्न एवं शंभु (म. अनु. १४.३३-३४)।

रुक्मिन्--विदर्भदेश का एक श्रेष्ठ राजा, जो विदर्भाधिपति भीष्मक (हिरण्यरोमन्) के पाँच पुत्रों में से ज्येष्ठ

पुत्र था। यह एवं इसके पिता यादववंशीय विदर्भ राजा के वंश में उत्पन्न हुयें थे, एवं स्वयं को भोजवंशीय कहलाते थे। महाभारत में इसे दन्तवक्र एवं क्रोधवश नामक असुरों के वंश से उत्पन्न हुआ कहा गया है (म. आ. ६१.५७)।

यह अत्यंत पराक्रमी था। इसने गंधमादननिवासी द्रुम ऋषि का शिष्य हो कर, चारों पादों से युक्त संपूर्ण धनुर्वेद की विद्या प्राप्त की थी। द्रुम ऋषि ने इसे इंद्र का विजय नामक एक धनुष भी प्रदान किया था, जो गांडीव, शार्ङ्ग आदि धनुष्यों के समान तेजस्वी था (म. उ. १५५. ३–१०)। परशुराम ने इसे ब्रह्मास्त्र प्रदान किया था।

श्रीकृष्ण से पराजय—इसके मन के विरुद्ध, इसकी बहन रुक्मिणी का श्रीकृष्ण ने हरण किया। उस समय, क्रुद्ध हो कर अपने पिता के सामने इसने प्रतिज्ञा की, 'मैं कृष्ण का वध कर रुक्मिणी को वापस लाऊँगा, अन्यथा लौट कर कुण्डिनपुर कभी न आऊँगा'।

तत्पश्चात् अपनी एक अक्षौहिणी सेना के साथ, इसने श्रीकृष्ण पर हमला किया। इस युद्ध में श्रीकृष्ण ने इसे परास्त कर इसे विरूप कर दिया (भा. १०.५२–५४; रुक्मिणी देखिये)। तत्पश्चात् अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार, यह कुण्डिनपुर वापस न गया, एवं जिस स्थान पर कृष्ण ने इसे परास्त किया था, वहीं भोजकट नामक नई नगरी बसा कर यह रहने लगा। इसी कारण उत्तरकालीन साहित्य में इसे भोजकट नगर का राजा कहा गया है (म. उ. १५५.२; व. २५५.११)।

सहदेव के दक्षिणदिग्विजय के समय, इसने एवं इसके पिता भीष्मक ने उसके साथ दो दिनों तक युद्ध किया था, एवं तत्पश्चात् उसके साथ संधि किया था (म. स. २८.४०–४१)। दुर्योधन की ओर से दक्षिणदिग्विजय के लिए निकले हुए कर्ण के युद्धकौशल्य से प्रसन्न हो कर, इसने उसे भेंट एवं कर प्रदान किये थे (म. व. परि. १. क्र. २४. पंक्ति. ५१–५४)।

भारतीय युद्ध में—भारतीय युद्ध के प्रारंभ में, बड़े अभिमान से एक अक्षौहिणी सेना ले कर यह भोजकट से निकला, एवं कृष्ण को प्रसन्न करने के हेतु से पाण्डवों के पास गया। वहाँ इसने अर्जुन से बड़ी उद्दण्डता से कहा, 'यदि पाण्डव मेरी सहाय्यता की याचना करेंगे, तो मैं उनकी सहाय्यता करने के लिए तैयार हूँ'। अर्जुन के द्वारा इन्कार किये जाने पर, यह दुर्योधन के पास गया, जहाँ इसने अपना उपर्युक्त कहना दोहराया (युधिष्ठिर देखिये)। किन्तु अभिमानी दुर्योधन ने भी इसकी सहाय्यता ठुकरा दी। तब अपमानित हो कर यह अपने नगर में लौट आया (म. व. ११५)।

परिवार—इसे रुक्मवती अथवा शुभांगी नामक एक कन्या थी, जिसका विवाह रुक्मिणीपुत्र प्रद्युम्न से हुआ था। इसकी रोचना नामक पौत्री का विवाह कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध से हुआ था। रोचना के विवाह के समय इसने बलराम के साथ कपटता के साथ द्यूत खेला था, एवं उसकी निंदा की थी, तब क्रोधित हो कर बलराम ने स्वर्ण के पाँसों से इसका वध किया (ह. वं. २.६१.५; २७–४६; भा. १०.६१)।

रुक्मेषु—(सो. क्रोष्टु.) एक यादव राजा, जो मत्स्य एवं वायु के अनुसार रुक्मकवच राजा का पुत्र था। भागवत में इसे रुचक राजा का, तथा विष्णु एवं पद्म में इसे परावृत् राजा का पुत्र कहा गया है।

अपने भाई पृथुरुक्म की सहाय्यता से, इसने यादव राजा ज्यामघ को अपने राज्य से भगा दिया। तत्पश्चात् ज्यामघ ने शुक्तिमती नामक नगरी में नया राज्य स्थापित किया (ब्रह्म. १४.१०–१६; ज्यामघ देखिये)।

रुक्ष—पूरुवंशीय उरुक्षय राजा का नामान्तर।

रुच—(सो. कुरु. भविष्य.) एक राजा, जो वायु के अनुसार सुनीथ राजा का पुत्र था। इसे ऋच नामान्तर भी प्राप्त था। इसके पुत्र का नाम नृचक्षु (त्रिचक्षु) था।

रुचक—(सो. क्रोष्टु.) एक यादव राजा, जो भागवत के अनुसार उशनस् राजा का पुत्र था।

२. (सू. इ.) इक्ष्वाकुवंशीय भरुक राजा का नामान्तर।

३. एक यक्ष, जो मणिभद्र एवं पुण्यजनी के पुत्रों में से एक था।

रुचि—एक प्रजापति, जो ब्रह्मा के मन से उत्पन्न हुआ था। इसकी पत्नी का नाम आकूति था, जो स्वायंभुव मनु की कन्या थी। आकूति से इसे यज्ञ एवं दक्षिणा नामक जुड़वे संतान (मिथुन) उत्पन्न हुयें। पुत्रिकाधर्म की शर्त के अनुसार, इसने उन दोनों पुत्रों को मनु को वापस दे दिया (भा. ३.१२.५६; ४.१.२; पद्म. सृ. ३; ब्रह्मांड. १. १. ५८)।

२. एक प्रजापति। यह पहले ब्रह्मचारी था, किन्तु पितरों के कहने पर इसने मालिनी नामक अप्सरा से विवाह किया, जो वरुणपुत्र पुष्कर एवं प्रम्लोचा नामक अप्सरा की कन्या थी (गरुड. १.८९–९०; मार्क. ९२)।

३. एक अप्सरा, जिसने अलकापुरी में अष्टावक्र के स्वागतसमारोह में नृत्य किया था (म. अनु. १९.४४)।

४. देवशर्मन् नामक ऋषि की पत्नी, जिस पर इन्द्र मोहित हुआ था (म. अनु. ४०.१७-१८)। एक बार इसकी रक्षा का भार अपने शिष्य विपुल पर सौंप कर, देवशर्मन् यज्ञ के लिए बाहर गया। तत्पश्चात् कामासक्त इंद्र इसके पास आया, एवं भोग की याचना करने लगा। फिर विपुल ने इन्द्र का प्रतिकार किया एवं इसके सतीत्व की रक्षा की।

इसकी बहन का नाम प्रभावती था, जो अंगराज चित्ररथ की पत्नी थी। प्रभावती के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर, इसने उसे एक दिव्य पुष्प प्रदान किया था (म. अनु. ४२; प्रभावती ४. देखिये)। अंत में अपने पति के साथ यह स्वर्गलोक गयी (म. अनु. ४३.१७)।

५. नहुष राजा की कन्या, जो आप्नवान् ऋषि की पत्नी थी।

रुचिपर्वन्—दुर्योधनपक्षीय एक राजा, जो कृति राजा का पुत्र था। भारतीय युद्ध में सुपर्वन् राजा ने इसका वध किया (म. द्रो. २५.४५)।

रुचिप्रभ—एक राक्षस, जो प्राचीन काल में पृथ्वी का शासक था (म. शां. २२०.५२)। पाठभेद- 'रुचि-प्रभु'।

रुचिर—(सो. कुरु.) कुरुवंशीय राधिक राजा का नामान्तर। मत्स्य में इसे जयत्सेन राजा का पुत्र कहा गया है।

रुचिरधि—पुरूरवसवंशीय गुरु राजा का नामान्तर (गुरु. २. देखिये)। विष्णु में इसे संकृति राजा का पुत्र कहा गया है।

रुचिराश्व—(सो. अज.) एक राजा, जो सेनजित् राजा का पुत्र था।

रुचिरोमा—स्कंद की अनुचरी एक मातृका (म. श. ४५.७)। पाठभेद-'कद्रुला'।

रुचीक—गुहवासिन् नामक शिवावतार का एक शिष्य।

रुतिमत्—(सो. कुरु. भविष्य.) कुरुवंशीय वृष्णिमत् राजा का नामान्तर। वायु में इसे शुचिद्रथ राजा का पुत्र कहा गया है।

रुद्र—वैवस्वत मन्वंतर का एक देवगण।

रुद्र-शिव—एक देवता, जो सृष्टिसंहार का मूर्तिमान् प्रतीक माना जाता है। प्राचीन भारतीय साहित्य में निर्देशित त्रिमूर्ति की कल्पना के अनुसार, ब्रह्मा को सृष्टि उत्पत्ति का, विष्णु को सृष्टिसंचालन (स्थिति) का, एवं शिव को सृष्टिसंहार का देवता माना गया है।

भयभीत करनेवाले अनेक नैसर्गिक प्रकोप एवं रोग-व्याधि आदि के साथ मनुष्यजाति को दैनंदिन जीवन में सामना करना पड़ता है। वृक्षों को उखाड़ देनेवाले झंझावात, मनुष्यों एवं पशुओं को विद्युत् एवं उल्कापात से नष्ट कर देनेवाले निसर्गप्रकोप, एवं समस्त पृथ्वी में संहारसत्र शुरू करनेवाले रोग एवं व्याधियाँ आदि की, मनुष्यजाति प्रागैतिहासिक काल से ही शिकार बन चुकी है। इसी नैसर्गिक एवं व्याधिजनित प्रकोपों का प्रतीकरूप मान कर रुद्रदेवता की उत्पत्ति वैदिक आर्यों के मन में हुई, जिस तरह उन्हें प्रातःकाल में 'उषस्' देवता का, एवं उदित होनेवाले सूर्य में 'मित्र' देवता का साक्षात्कार हुआ था।

वैदिक साहित्य में नैसर्गिक एवं व्याधिजनित उत्पात निर्माण करनेवाले देवता को रुद्र कहा गया है, एवं उसी उत्पातों का शमन करनेवाले देवता को शिव कहा गया है। इस प्रकार रुद्र एवं शिव एक ही देवता के रौद्र एवं शांत रूप है।

सृष्टि का प्रचंड विस्तार एवं सुविधाएँ निर्माण करनेवाले परमेश्वर के प्रति मनुष्यजाति को जो आदर, कृतज्ञता एवं प्रेम प्रतीत हुआ, उसीका ही मूर्तिमान् रूप भगवान् विष्णु है, एवं उसी सृष्टि का विनाश करनेवाले प्रलयंकारी देवता के प्रति जो भीति प्रतीत होती है, उसीका मूर्तिमान् रूप रुद्र है। पाश्चात्य देवताविज्ञान में सृष्टिसंचालक एवं सृष्टिसंहारक देवता प्रायः एक ही मान कर, इन द्विविध रूपों में उसकी पूजा की जाती है। किन्तु भारतीय देवताविज्ञान में सृष्टि की इन दो आदि-शक्तियों को विभिन्न माना गया है, जिसमें से सृष्टि संचालक शक्ति को विष्णु-नारायण-वासुदेव-कृष्ण कहा गया है, एवं सृष्टिसंहारक शक्ति को रुद्र कहा गया है।

इस तरह ऋग्वेद से ले कर गृह्यसूत्रों तक के ग्रंथों में रुद्रदेवताविषयक कल्पनाओं की उत्क्रांति जब हम देखते है, तब ऐसा प्रतीत होता है कि, ऋग्वेद आदि ग्रन्थों में रुद्र निसर्गप्रकोप का एक सामान्य देवता था। वही रुद्र उत्तरकालीन ग्रंथों में पशु, जंगल, पर्वत, नदी, स्मशान आदि सारी सृष्टि को व्यापनेवाला एक महाबलशाली देवता मानने जाने लगा, एवं यह विष्णु के समान ही सृष्टि का एक श्रेष्ठ देवता बन गया।

स्वरूप-वर्णन—ऋग्वेद में इसका स्वरूप वर्णन प्राप्त है, जहाँ इसका वर्ण भूरा (बभ्रु), एवं रूप अतितेजस्वी बताया गया है (ऋ. २.३३)। यह सूर्य के समान जाज्वल्य, एवं सुवर्ण की भाँति प्रदीप्त है (ऋ. १.४३)। पूषन् देवता की भाँति यह जटाधारी है। बाद की संहिताओं में इसे सहस्रनेत्र, एवं नीलवर्णीय ग्रीवा एवं केशवाला बताया गया है (वा. सं. १६.७; अ. वे. २.२७)। इसका पेट कृष्णवर्णीय एवं पीठ रक्तवर्णीय है (अ. वे. १५.१)। यह चर्मधारी है (वा. सं. १६.२-४; ५१)।

महाभारत एवं पुराणो में प्राप्त रुद्र का स्वरूपवर्णन कल्पनारम्य प्रतीत होता है। इस वर्णन के अनुसार, इसके कुल पाँच मुख थे, जिनमें से पूर्व, उत्तर, पश्चिम एवं उर्ध्व दिशाओं की ओर देखनेवाले मुख सौम्य, एवं केवल दक्षिण दिशा की ओर देखनेवाला मुख रौद्र था (म. अनु. १४०.४६)। इन्द्र के वज्र का प्रहार इसकी ग्रीवा पर होने के कारण, इसका कंठ नीला हो गया था (म. अनु. १४१.८)। महाभारत में अन्यत्र, समुद्र-मंथन से निकला हुआ हलाहल विष प्राशन करने के कारण, इसके नीलकंठ बनने का निर्देश प्राप्त है, जहां इसे 'श्रीकंठ' भी कहा गया है (म. शां. ३४२.१३)।

पुराणों में भी इसका स्वरूपवर्णन प्राप्त है, जहाँ इसे चतुर्मुख (विष्णुधर्म. ३.४४-४८; ५५.१); अर्धनारी-नटेश्वर (मत्स्य. २६०); एवं तीन नेत्रोंवाला कहा गया है।

निवासस्थान--वैदिक ग्रंथों में इसे पर्वतों में एवं मूजवत् नामक पर्वत में रहनेवाला बताया गया है (वा. सं. १६.२-४; ३.६१)।

इसका आद्य निवासस्थान मेरुपर्वत था, जिस कारण इसे 'मेरुधामा' नामान्तर प्राप्त था (म. अनु. १७. ९१)। विष्णु के अनुसार, हिमालय पर्वत एवं मेरु एक ही हैं (विष्णु. २.२)। कृष्ण द्वैपायन व्यास ने एवं कुबेर ने मेरुपर्वत पर ही इस की उपासना की थी।

महाभारत में अन्यत्र, इसका निवासस्थान मुंजवान् अथवा मूजवत् पर्वत बताया गया है, जो कैलास के उस-पार था (म. आश्व. ८.१; सौ. १७.२६, वायु. ४७. १९)। कैलास एवं हिमालय पर्वत भी इसका निवासस्थान बताया गया है (म. भी. ७.३१; ब्रह्म. २९.२२)।

इसका अत्यंत प्रिय निवासस्थान काशी में स्थित स्मशान था (म. अनु. १४१.१७-१९, नीलकंठ टीका) इसी कारण शिव के भक्तों में काशी अत्यंत पवित्र एवं मुमुक्षुओं का वसतिस्थान माना गया है (मैत्रेय देखिये) संवर्त को शवरूप में शिवदर्शन का लाभ काशीक्षेत्र में ही हुआ था।

तपस्यास्थान—हिमवत् पर्वत के मुंजवत् शिखर पर शिव का तपस्यास्थान है। वहां वृक्षों के नीचे, पर्वतों के शिखरों पर, एवं गुफाओं में यह अदृश्यरूप से उमा के साथ तपस्या करता है। इसकी उपासना करनेवाले, देव-गंधर्व, अप्सरा, देवर्षि, यातुधान, राक्षस एवं कुबेरादि अनुचर विकृत रूप में वहीं रहते हैं, जो रुद्रगण नाम से प्रसिद्ध हैं। शिव एवं इसके उपासक अदृश्य रूप में रहते हैं, जिस कारण वे चर्मचक्षु से दिखाई नहीं देते (म. आश्व. ८.१-१२)।

वाहन एवं ध्वज—दक्षप्रजापति ने शिव को नंदिकेश्वर नामक वृषभ प्रदान किया, जिसे इसने अपना ध्वज एवं वाहन बनाया। इसी कारण शिव को 'वृषभध्वज' नाम प्राप्त हुआ (म. अनु. ७७.२७-२८; शैलाद देखिये)।

आयुध—इसका प्रमुख अस्त्र विद्युत्-शर (विद्यत्) है, जो इसके द्वारा आकाश से फेंके जाने पर, पृथ्वी को विदीर्ण करता है (ऋ. ७.४६)। इसके धनुषबाण एवं वज्र आदि शस्त्रों का भी निर्देश प्राप्त है (ऋ. २.३३.३; १०; ५.४२.११; १०.१२६.६)।

ऋग्वेद में प्राप्त रुद्र के इस स्वरूप एवं अस्त्रवर्णन में आकाश से पृथ्वी पर आनेवाली प्रलयंकर विद्युत अभिप्रेत होती है।

पराक्रम—ऋग्वेद में इसे भयंकर एवं हिंसक पशु की भाँति विनाशक कहा गया है (ऋ. २.३३)। अपने प्रभावी शस्त्रों से यह गायों एवं मनुष्यों का वध करता है (ऋ. १.११४.१०)। यह अत्यंत क्रोधी है, एवं क्रुद्ध होने पर समस्त मानवजाति को विनष्ट कर देता है। इसी कारण, इसकी प्रार्थना की गयी है कि, यह क्रोध में आ कर अपने स्तोताओं एवं उनके पितरों, संतानों, संबंधियों, एवं अश्वों का वध न करे (ऋ. १.११४)।

अपने पुत्र एवं परिवार के लोगों को रोगविमुक्त करने के लिए भी इसकी प्रार्थना की गयी है (ऋ. ७. ४६.२)। ऋग्वेद में अन्यत्र इसे 'जलाष' (व्याधियों का उपशमन करनेवाला) एवं 'जलाषभेषज' (उपशामक औषधियों से युक्त) कहा गया है (ऋ. १.४.३-४)। यह चिकित्सकों में भी श्रेष्ठ चिकित्सक है (ऋ. २.३३

४), एवं इसके पास हज़ारों औषधियाँ है (ऋ. ७.४६.३)।

यह दानवों की भाँति केवल क्रूरकर्मा ही नही, बल्कि प्रसन्न होने पर मानवजाति का कल्याण करनेवाला, एवं पशुओं का रक्षण करनेवाला होता है। इसी कारण, ऋग्वेद में इसे शिव (ऋ. १०.९२.९), एवं पशुप (ऋ. १.११४.९)। कहा गया है।

तैत्तिरीय संहिता में--यजुर्वेद के शतरुद्रीय नामक अध्याय में रुद्र का स्वभावचित्रण अधिक स्पष्ट रूप से प्राप्त है (तै. सं. ४.५.१; वा. सं. १६)। वहाँ इसका 'रुद्र स्वरूप' (रुद्रतनुः), एवं 'शिव स्वरूप' (शिवतनुः) का विभेद स्पष्ट रूप से बताते हुए कहा गया है :—

या ते रुद्र शिवा तनू शिवा विश्वस्य भेषजी।
शिवा रुद्रस्य भेषजी तया नो मृड जीवसे॥
(तै. सं. रुद्राध्याय २)।

(रुद्र के घोरा एवं शिव नामक दो रूप हैं, जिनमें से पहला रूप दुःखनिवृत्ति एवं मृत्युपरिहार करनेवाला, एवं धन, पुत्र, स्वर्ग आदि प्रदान करनेवाला है; एवं दूसरा रूप आत्मज्ञान एवं मोक्ष प्रदान करनेवाला है)।

यजुर्वेद संहिता में मेघ से समीकृत कर के रुद्र का वर्णन किया गया है। इसे गिरीश एवं गिरित्र (पर्वतों में रहनेवाला) कहा गया है, एवं इसे जंगलों का, एवं वहाँ रहनेवाले पशुओं, चोर, डाकू एवं अन्त्यजों का अभिनियन्ता कहा गया है। यजुर्वेद में अग्नि को रुद्र कहा गया है, एवं उसे मखघ्न विशेषण भी प्रयुक्त किया गया है (तै. सं. ३.२.४; तै. ब्रा. ३.२.८.३)। रुद्र के द्वारा दक्षयज्ञ के विध्वंस की जो कथा पुराणों में प्राप्त है, उसीका संकेत यहाँ किया होगा।

यजुर्वेद में इसे कपर्दिन् (जटा धारण करनेवाला), शर्व (धनुषबाण धारण करनेवाला), भव (चर एवं अचर सृष्टि को व्यापनेवाला), शंभु (सृष्टिकल्याण करनेवाला), शिव (पवित्र), एवं कृत्तिवसनः (पशुचर्म धारण करनेवाला) कहा गया है (वा. सं. ३.६१; १६.५१)।

इसके द्वारा असुरों के तीन नगरों के विनाश का निर्देश भी प्राप्त है (तै. सं. ६.४.३)।

यजुर्वेद में रुद्र-गणों का निर्देश प्राप्त है, एवं इस गण के लोग जंगल में रहनेवाले निषाद आदि वन्य जमातियों के 'गणपति' होने का निर्देश भी प्राप्त है। रुद्र वन्य जमातियों का राजा अथवा प्रमुख होने का निर्देश सर्वप्रथम यजुर्वेद संहिता में ही प्राप्त होता है।

इस तरह जंगलों का देवता माना गया रुद्र, जंगलों में रहनेवाले लोगों का भी देव बन गया, जो संभवतः वैदिक रुद्र देवता का एवं अनार्य लोगों के रुद्रसदृश देवता के सम्मीलन की ओर संकेत करता है।

अथर्ववेद में—इस वेद में रुद्र के कुल सात नाम प्राप्त है, किन्तु उन्हें एक नहीं, बल्कि सात स्वतंत्र देवता माना गया है। जिस तरह सूर्य के सवितृ, सूर्य, मित्र, पूषन् आदि नामांन्तर प्राप्त है, उसी प्रकार अथर्ववेद में प्राप्त रुद्रसदृश देवता, एक ही रुद्र के विविध रुप प्रतीत होते है, जिनके नाम निम्न प्रकार है:--

१. ईशान,--जो समस्त मध्यमलोक का सर्वश्रेष्ठ अधिपति है।

२. भव,—जो मध्यमलोक के पूर्वविभाग का राजा, व्रात्य लोगों का संरक्षक एवं उत्तम धनुर्धर है। यह एवं शर्व पृथ्वी के दुष्ट लोगों पर विद्युत्‌रूपी बाण छोड़ते हैं। इसे सहस्र नेत्र हैं, जिनकी सहायता से यह पृथ्वी की हरेक वस्तु देख सकता है (अ. वे. ११.२.२५)। यह आकाश, पृथ्वी एवं अंतरिक्ष का स्वामी है (अ. वे. ११.२.२७)। भव, शर्व एवं रुद्र के बाण कल्याणप्रद (सदाशिव) होने के लिए, इनकी प्रार्थना की गयी है (अ. वे. ११.६.९)।

३. शर्व,—जो उत्तम धनुर्धर एवं मध्यमलोक के दक्षिण विभाग का अधिपति है। इसे एवं भव को 'भूतपति' एवं 'पशुपति' कहा गया है (अ. वे. ११.२.१)।

४. पशुपति,—जो मध्यमलोक के पश्चिम विभाग का अधिपति है। इसे अश्व, मनुष्य, बकरी, मेंढक एवं गायों का स्वामी कहा गया है (अ. वे. ११.२.९)।

५. उग्र,—यह एक अत्यंत भयंकर देवता है, जो मध्यमलोक के उत्तर विभाग का अधिपति कहा गया है। यह आकाश, पृथ्वी एवं अंतरिक्ष के सारे जीवित लोगों का स्वामी है (अ. वे. ११.२.१०)।

६. रुद्र,--जो कनिष्ठ लोक का स्वामी है; एवं रोग-व्याधि, विषप्रयोग एवं आग फैलाने की अप्रतिहत शक्ति इसमें है। अग्नि, जल, एवं वनस्पतियों में इसका वास है, एवं पृथ्वी के साथ चंद्र एवं ग्रहमंडल का नियमन भी यह करता है (अ. वे. १३.४.२८)। इसी कारण, इसे 'ईशान' (राजा) कहा गया है।

७. महादेव,--जो उच्चलोक का अधिपति है।

ब्राह्मण ग्रंथों में--इन ग्रंथों में रुद्र को उषस् का पुत्र कहा गया है, एवं जन्म के पश्चात् इसे प्रजापति के द्वारा आठ विभिन्न नाम प्राप्त होने का निर्देश प्राप्त है (श. ब्रा. ६.१.३.७; कौ. ब्रा. ६.१.९)। इनमें से सात नाम यजुर्वेद की नामावलि से मिलते जुलते है, एवं आठवाँ नाम 'अशनि' (उल्कापात) बताया गया है। किन्तु इन ग्रंथों में ये आठ ही नाम एक रुद्र देवता के ही विभिन्न रूप दिये गये हैं। इनमें से, रुद्र, शर्व, उग्र एवं अशनि रुद्र के जगत्संहारक रूप के प्रतीक हैं, एवं भव, पशुपति, महादेव एवं ईशान आदि बाकी चार नाम इसके शान्त एवं जगत्प्रतिपालक रूप के द्योतक हैं। इस तरह ऋग्वेद काल में पृथ्वी को भयभीत करनेवाले जगत्संहारक-रुद्रदेवता को, ब्राह्मण ग्रंथों के काल में जगत्संहारक एवं जगत्प्रतिपालक ऐसे द्विविध रूप प्राप्त हुयें।

ब्राह्मण ग्रंथों में रुद्र के उत्पत्ति की एक कथा भी दी गई है। प्रजापति के द्वारा दुहितृगमन किये जाने पर उसे सजा देने के लिए रुद्र की उत्पत्ति हुई। पश्चात् रुद्र ने पशुपति का रूप धारण कर मृगरूप से भागनेवाले प्रजापति का वध किया। प्रजापति एवं उसका वध करनेवाला रुद्र आज भी आकाश में मृग एवं मृगव्याध नक्षत्र के रूप में दिखाई देते हैं (ऐ. ब्रा. ३.३३; श. ब्रा. १.७.४.१-३; ब्रह्म. १०२)।

उपनिषदों में--रुद्र-शिव से संबंधित सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपनिषद 'श्वेताश्वतर उपनिषद' है, जिसमें रुद्र-शिव को सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ देवता कहा गया है।

अनादि अनंत परमेश्वर का स्वरूप क्या है, एवं आत्मज्ञान से उसकी प्राप्ति कैसे हो सकती है, इसकी चर्चा अन्य उपनिषदों के भाँति इस उपनिषद में भी की गयी है। किन्तु यहाँ प्रथम ही जगत्संचालक ब्रह्मन् का स्थान जीवित व्यक्ति का रंग एवं रूप धारण करनेवाले रुद्र-शिव के द्वारा लिया गया है। इस उपनिषद में रुद्र, शिव, ईशान एवं महेश्वर को सृष्टि का अधिष्ठात्री देवता (देव) कहा गया है, एवं इसकी उपासना से एवं ज्ञान से ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता हैं, ऐसा कहा गया है। इस उपनिषद के अनुसार, सृष्टि का नियामक एवं संहारक देवता केवल रुद्र ही है (श्वे. उ. ३.२), जो गूढ, सर्वव्यापी एवं सर्वशासक है (श्वे. उ. ५.३), एवं केवल उसीके ज्ञान से ही मोक्षप्राप्ति हो सकती है (श्वे. उ. ४.१६)। इस ग्रंथ में विश्वमाया का नाम प्रकृति दिया गया है, एवं उस माया का शास्ता रुद्र बताया गया है (श्वे. उ. ४.१०)।

श्वेताश्वतर उपनिषद शैवपंथीय नहीं, बल्कि आत्मज्ञान का एवं ईश्वरप्राप्ति का पंथनिरपेक्ष मार्ग बतानेवाला एक सर्वश्रेष्ठ प्राचीन उपनिषद माना जाता है, एवं इसी कारण शंकराचार्य, रामानुज आदि विभिन्न पंथ के आचार्यों ने इसके उद्धरण लिये हैं।

यह उपनिषद ग्रंथ भक्तिसांप्रदाय एवं रुद्र-शिव की उपासना का आद्य ग्रंथ माना जाता है, एवं इसका काल भगवद्गीता के पूर्वकालीन है, जिसे वासुदेव कृष्ण की उपासना का आद्य ग्रंथ माना जाता है। इससे प्रतीत होता है कि, भगवद्गीता तक के काल में भारतवर्ष में रुद्र-शिव ही एकमेव उपास्य देवता थी, जिसके स्थान पर भवद्गीता के पश्चात्, रुद्र एवं वासुदेव कृष्ण इन दोनों देवताओं की उपासना प्रारंभ हुयीं।

केन उपनिषद में—रुद्र-शिव की पत्नी उमा (हैमवती) का सर्वप्रथम निर्देश इस उपनिषद में प्राप्त है, जहाँ उसे स्पष्ट रूप से शिव की पत्नी नही, बल्कि साथी कहा गया है। इंद्र, वायु, अग्नि आदि वैदिक देवताओं की शक्ति, जिस समय काफ़ी कम हो चुकी थी एवं रुद्र-शिव ही एक देवता पृथ्वी पर रहा था, उस समय की एक कथा इस उपनिषद में दी गयी है:—एक बार देवों के सारे शत्रु को ब्रह्मन् ने पराजित किया, किन्तु इस विजयप्राप्ति का सारा श्रेय इंद्र, अग्नि आदि देवता लेने लगे। उस समय रुद्र-शिव देवों के पास आया। देवों का गर्वपरिहार करने के लिए इसने अग्नि, वायु एवं इंद्र के सम्मुख एक घाँस का तिनका रखा, एवं उन्हें क्रमशः उसे जलाने, भगाने एवं उठाने के लिए कहा। इस कार्य में तीनों वैदिक देव असफल होने के पश्चात्, हैमवती उमा ने ब्रह्मस्वरूप रुद्र-शिव का माहात्म्य उन्हें समझाया।

'शिव अथर्वशिरस् उपनिषद' में भी रुद्र की महत्ता का वर्णन प्राप्त है। किन्तु वहाँ रुद्र-शिव के संबंधी तात्त्विक जानकारी कम है, एवं शिवोपासना के संबंधी जानकारी अधिक है, जिस कारण यह उपनिषद् काफ़ी उरत्तकालीन प्रतीत होता है।

गृह्यसूत्रों में--इन ग्रंथों में गायों का रोग टालने के लिए शूलगव नामक यज्ञ की जानकारी दी गयी है, जहाँ बैल के 'वपा' की आहुति रुद्र के निम्नलिखित बारह नामों का उच्चारण के साथ करने को कहा गया है:—रुद्र; शर्व; उग्र; भव; पशुपति; महादेव; ईशान; हर; मृड; शिव; भीम एवं शंकर। इनमें से पहले तीन

जगत्संहारक रुद्र के, दूसरे चार नाम जगत्प्रतिपालक रुद्र के, एवं अंतिम पाँच नाम नये प्रतीत होते हैं।

पारस्कर गृह्य एवं हिरण्यकेशी गृह्यसूत्रों में शूलगव यज्ञ की प्रक्रिया दी गयी है। किन्तु वहाँ रुद्र के बदले इंद्राणी, रुद्राणी, शर्वाणी, भवानी आदि रुद्रपत्नियों के लिए आहुति देने को कहा है, एवं 'भवस्य देवस्य पत्न्यै स्वाहा' इस तरह के मंत्र भी दिये गये हैं (पा. गृ. ३. ८; हि. गृ. २.३.८)।

इन्हीं ग्रंथों में पर्वत, नदी, जंगल, स्मशान आदि से प्रवास करते समय, रुद्र की उपासना किस तरह करनी चाहिये, इसका भी दिग्दर्शन किया गया है (पा. गृ. १५, हि. गृ. ५.१६)।

महाभारत में—इस ग्रंथ में रुद्र का निर्देश शिव एवं महादेव नाम से किया गया है। वहाँ इसकी पत्नी के नाम उमा, पार्वती, दुर्गा, काली, कराली आदि बताये गये हैं, एवं इसके पार्षदों को 'शिवगण' कहा गया है।

मुंजवत् पर्वत पर तपस्या करनेवाले शिव को योगी अवस्था कैसी प्राप्त हुई इसकी कथा महाभारत में प्राप्त है। सृष्टि के प्रारंभ के काल में, ब्रह्माकी आज्ञा से शिव प्रजा-उत्पत्ति का कार्य करता था। आगे चल कर, ब्रह्मा के द्वारा इस कार्य समाप्त करने की आज्ञा प्राप्त होने पर, शिव पानी में जा कर छिप गया। पश्चात् ब्रह्मा ने दूसरे एक प्रजापति का निर्माण किया, जो सृष्टि उत्पत्ति का कार्य आगे चलाता रहा। कालोपरान्त शिव पानी से बाहर आया, एवं अपने अनुपस्थिति में भी प्रजा-उत्पत्ति का कार्य अच्छी तरह से चल रहा है, यह देख कर इसने अपना लिंग काट दिया, एवं यह स्वयं मुंजवत् पर्वत पर तपस्या करने के लिये चला गया।

इसी प्रकार की कथा वायुपुराण में भी प्राप्त है। ब्रह्मन् के द्वारा नील लोहित (महादेव) को प्रजाउत्पत्ति की आज्ञा दिये जाने पर, उसने मन ही मन अपनी पत्नी सती का स्मरण किया, एवं हज़ारो विरूप एवं भयानक प्राणियों (रुद्रसृष्टि) का निर्माण किया, जो रंगरूप में इसी के ही समान थें। इस कारण ब्रह्मा ने इसे इस कार्य से रोक दिया। तदोपरान्त यह प्रजा-उत्पत्ति का कार्य समाप्त कर 'पाशुपत योग' का आचरण करता हुआ मुंज पर्वत पर रहने लगा (वायु. १०; विष्णु. १.७-८; ब्रह्मांड. २.९.७९)।

उपासक-गण—महाभारत में निम्नलिखित लोगों के द्वारा शिव की उपासना करने का निर्देश प्राप्त है:— १. अर्जुन, जिसने पाशुपतास्त्र की प्राप्ति के लिए शिव की दोबार उपासना की थी (म. भी ३८-४०; द्रो. ८०-८१); २. अश्वत्थामन्, जिसके शरीर में प्रविष्ट हो कर शिव ने पाण्डवों के रात्रिसंहार में मदद की थी (म. सौ. ७); ३. श्रीकृष्ण, जिसने अपनी पत्नी जांबवती को तेजस्वी पुत्र प्राप्त होने के लिए तपस्या की थी, एवं जिसे शिव एवं उमा ने कुल चौबीस वर प्रदान किये थें (म. अनु. १४); ४. उपमन्यु, जिसने कड़ी तपस्या कर शिव से इच्छित वर प्राप्त किये थे; ५. शाकल्य, जिसने शिव-प्रसाद से ऋग्वेद संहिता एवं पदपाठ की रचना में हिस्सा लिया था (म. अनु. १४)।

इनके अतिरिक्त, शिव के उपासकों में अनेकानेक ऋषि, राजा, दैत्य, अप्सरा, राजकन्या, सर्प आदि शामिल थे, जिनकी नामावलि निम्नप्रकार है:- १. ऋषि— दुर्वासस्, परशुराम, मंकणक; २. राजा—राम दाशरथि, जयद्रथ, द्रुपद, मणिपुरनरेश प्रभंजन, श्वेतकि; ३. दैत्य—अंधक, अंधकपुत्र आडि, जालंधर, त्रिपुर, बाण, भस्मासुर, रावण, रक्तबीज, वृक, हिरण्याक्ष; ४. अप्सरा—तिलोत्तमा; ५. राजकन्या—अंबा, गांधारी; ६. सर्प--मणि।

इनमें से दैत्य एवं असुरों के द्वारा शिव की उदारता एवं भोलापन का अनेकबार गैर फायदा लिया गया, जो त्रिपुर, भस्मासुर, रक्तबीज, रावण आदि के चरित्र से विदित है।

अष्ट-रुद्र--पुराणों में अष्टरुद्रों की नामावलि दी गयी है, जो शतपथ ब्राह्मण की नामावलि से मिलती जुलती है। इन ग्रंथों के अनुसार, ब्रह्मा से जन्म प्राप्त होने पर यह रोदन करते हुए इधर उधर भटकने लगा। पश्चात् इसके द्वारा प्रार्थना किये जाने पर, ब्रह्मा ने इसे आठ विभिन्न नाम, पत्नियाँ एवं निवासस्थान आदि प्रदान किये।

प्रमुख पुराणों में से, विष्णु, मार्कंडेय, वायु एवं स्कंद में अष्टमूर्ति महादेव की नामावलि प्राप्त है (विष्णु. १. ८; मार्क. ४९; पद्म. सृ. ३; वायु. २७; स्कंद. ७.१. ८७)। इन पुराणों में प्राप्त रुद्र की पत्नियों, संतान, निवासस्थान आदि की तालिका निम्नप्रकार है:-

रुद्र का नाम	पत्नी	संतान	निवासस्थान
रुद्र	सुवर्चला अथवा सती	शनैश्चर	सूर्य
भव	उमा (उषा)	शुक्र	जल
शर्व (शिव)	विकेशी	मंगल	मही
पशुपति	शिवा	मनोजव	वायु
भीम	स्वाहा (स्वधा)	स्कंद	अग्नि
ईशान	दिशा	स्वर्ग	आकाश
उग्र	दीक्षा	संतान	यज्ञीय ब्राह्मण
महादेव	रोहिणी	बुध	चंद्र

कालिदास के शाकुन्तल की नांदी में, अष्टमूर्ति शिव का निर्देश है, जहाँ उपर्युक्त तालिका में दिये गयें रुद्र के निवासस्थानों को ही 'अष्टमूर्ति' कहा गया हैं :-- जल, वह्नि, सूर्य, चंद्र, आकाश, वायु, पृथ्वी (अवनी) एवं यज्ञकर्ता (शा. १.१)।

एकादश रुद्र—महाभारत एवं पुराणों में प्रायः सर्वत्र रुद्रों की संख्या एकादश बतायी गयी हैं, एवं उनकी उत्पत्ति ब्रह्मा के शरीर से उत्पन्न एक ही आद्य रुद्र से होने की कथा बताई गयी है। किन्तु इन ग्रंथों में प्राप्त एकादश रुद्रों की नामावलि एक दूसरी से मेल नहीं खाती है। इनमें से प्रमुख ग्रंथों में प्राप्त नामावलियाँ निम्न प्रकार है :—

१. महाभारत—मृगव्याध, शर्व, निर्ऋति, अजैकपात्, अहिर्बुध्न्य, पिनाकिन्, दहन, ईश्वर, कपालिन्, स्थाणु, एवं भव (म. आ. ५०.१-३)।

२. स्कन्द पुराण में—भूतेश, नीलरुद्र, कपालिन्, वृषवाहन, त्र्यंबक, महाकाल, भैरव, मृत्युंजय, कामेश, एवं योगेश (स्कंद. ७.१.८७)। इस पुराण के अनुसार, कृतयुग में अष्ट रुद्र उत्पन्न हुयें, एवं कलियुग में ग्यारह रुद्रों का अवतार हुआ, जिनकी नामावलि यहाँ दी गयी है। ये ग्यारह रुद्र, दस वायु एवं एक आत्मा मिल कर बन गयें हैं, जिनमें से दस वायु के नाम निम्न हैं :— प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त एवं धनंजय।

३. भागवत में--इस ग्रंथ में ग्यारह रुद्रों के नाम, उनकी पत्नियाँ, एवं निवासस्थान दिये गयें हैं, जो निम्न प्रकार है :—

रुद्र का नाम	पत्नी	निवासस्थान
मन्यु	धी	हृदय
मनु	वृत्ति	इंद्रिय
महिनस् (लोम)	उशना	असु
महत्	उमा	व्योम
शिव	नियुता	वायु
ऋतध्वज	सर्पि	अग्नि
उग्ररेतस्	इला	जल
भव	अंबिका	मही
काल	इरावती	सूर्य
वामदेव	सुधा	चंद्र
धृतध्वज	दीक्षा	तप

(भा. ३.१२.७-१८)।

विभिन्न पुराणों में—उपर्युक्त ग्रंथों के अतिरिक्त अन्य पुराणों में प्राप्त एकादश रुद्र के नाम एवं उनके संभवनीय पाठभेद निम्न प्रकार है :— १. अजैकपात् (अज, एकपात, अपात्); २. अहिर्बुध्न्य; ३. ईश्वर (सुरेश्वर, विश्वेश्वर, अपराजित, शास्तृ, त्वष्ट्र); ४. कपालिन्; ५. कपर्दिन्; ६. त्र्यंबक (दहन, दमन, उग्र, चण्ड, महातेजस्, विलोहित, हवन), ७. बहुरूप (निंदित, निर्ऋति महेश्वर), ८. पिनाकिन् (भीम); ९. मृगव्याध (रैवत, परंतप); १०. वृषाकपि (विरूपाक्ष, भग); ११. स्थाणु (शंभु, रुद्र, जयंत, महत्, अयोनिज, हर, भव, शर्व, ऋत, सर्वसंज्ञ, संध्य एवं सर्प)।

जन्म की कथाएँ--रुद्र के जन्म के संबंधी विभिन्न कथाएँ पुराणों में प्राप्त है। सृष्टि के विस्तार का कार्य ब्रह्मा के सनंदन आदि प्रजापतिपुत्रों पर सौंपा गया था। किंतु वह काम उनके द्वारा यथावत् न किये जाने पर ब्रह्मा क्रुद्ध हुआ, एवं अपनी भ्रुकुटि उसने वक्र की। ब्रह्मा के उस वक्र किये भ्रुकुटि से ही रुद्र का जन्म हुआ (विष्णु. १.७.१०-११)। पद्म एवं भागवत में भी इसे

ब्रह्मा के क्रोध से उत्पन्न कहा गया है (पद्म. सृ. ३; भा. ३.१२.१०)। अन्य पुराणों में, इसे ब्रह्मा के अभिमान से (ब्रह्मांड. २.९.४७); ललाट से (भवि. ब्राह्म ५७); मन से (मत्स्य. ४.२७); मस्तक से (स्कंद. ५.१.२) उत्पन्न कहा गया है।

विष्णु के अनुसार, प्रजोत्पादनार्थ चिंतन करने के लिए बैठे हुए ब्रह्मा को एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो शुरु में रक्तवर्णीय था, किन्तु पश्चात् नीलवर्णीय बन गया। ब्रह्मा का यही पुत्र रुद्र है। स्कंद में शंकर के आशीर्वाद से ही ब्रह्मा के रुद्र नामक पुत्र होने की कथा प्राप्त है।

अन्य पुराणों में रुद्रगणों को कश्यप एवं सुरभि के (ह. वं. १.३; ब्रह्म ३.४७-४८; शिव. रुद्र. १७); भूतकन्या सुरूपा के (भा. ६.६. १७); तथा प्रभास एवं बृहस्पतिभगिनी के (विष्णु १. १५. २३) पुत्र कहा गया है। महाभारत में कई स्थानों पर, रुद्र देवता के स्थान पर एकादश रुद्रों का निर्देश किया गया है (म. आ. ६०.३; ११४. ५७-५८; शां. २०१.५४८ *; अनु. २५५.१३; स्कंद. ६.२७७; पद्म सृ. ४०)।

पराक्रम—इसके पराक्रम की विभिन्न कथाएँ पुराणों में प्राप्त हैं। गंधमादन पर्वत पर अवतीर्ण होनेवाली गंगा इसने अपने जटाओं में धारण की (पद्म. स्व. ३)। अपने श्वसुर दक्ष के द्वारा अपमान किये जाने पर, इसने उसके यज्ञ का विध्वंस अपने वीरभद्र नामक पार्षद के द्वारा कराया। ब्रह्मा के द्वारा अपमान होने पर, इसने उसका पाँचवाँ सिर अपने दाहिने पाँव के अंगूठे के नाखुन से काट डाला। ब्रह्मा का सिर काटने से इसे ब्रह्महत्त्या का पातक लगा, जो इसने काशी क्षेत्र में निवास कर नष्ट किया (पद्म. सृ. १४)। कई अन्य पुराणों में ब्रह्मा का पाँचवा सिर इसने अपने भैरव नामक पार्षद के द्वारा कटवाने का निर्देश प्राप्त है (शिव. विद्या. १.८)।

ब्रह्मा के यज्ञ में यह हाथ में कपाल धारण कर गया, जिस कारण इसे यज्ञ के प्रवेशद्वार के पास ही रोका दिया गया। किन्तु आगे चलकर इसके तपःप्रभाव के कारण, इसे यज्ञ में प्रवेश प्राप्त हुआ, एवं ब्रह्मा के उत्तर दिशा में बहुमान की जगह इसे प्रदान की गई (पद्म. सृ. १७)।

समुद्रमंथन से निकला हलाहल-विष इसने प्राशन किया जिस कारण, इसकी ग्रीवा नीली हो गई, एवं इसके शरीर का अत्यधिक दाह होने लगा। उस दाह का उपशम करने के लिए, इसने अपने जटासंभार में उसी समुद्रमंथन से निकला हुआ चंद्र धारण किया, जिस कारण इसे 'नीलकंठ,' एवं 'चंद्रशेखर' नाम प्राप्त हुयें।

ब्राह्मणों का नाश करने के हेतु, एक दैत्य हाथी का रूप धारण कर काशीनगरीं में प्रविष्ट हुआ था, जिसका इसने वध किया, एवं उसका चर्म का वस्त्र बनाया। इसी कारण इसे 'कृत्तिवासस्' (हाथी का चर्म धारण करनेवाला) नाम प्राप्त हुआ (पद्म. स्व. ३४)।

देव असुरों के युद्ध में यह प्रायः देवों के पक्ष में ही शामिल रहता था, एवं देवसेना के सेनापति के नाते इसने अपने पुत्र कार्तिकेय को अभिषेक भी किया था (विष्णुधर्म. १.२३३)। फिर भी अपना श्रेष्ठत्व प्रस्थापित करने के लिए इसने देवों से तीन बार, एवं नारायण तथा कृष्ण से एक एक बार युद्ध किया था (म. शां. ३३०)। नारायण के साथ कियें युद्ध में, इसने उसके छाति पर शूल से प्रहार किया था, जो व्रण 'श्रीवत्स-चिह्न' नाम से प्रसिद्ध है (म. शां ३३०. ६५)।

महाभारत में वर्णन किये गये शिव के पराक्रम में दक्ष-यज्ञ का विध्वंस, एवं त्रिपुरासुर का वध (म. क. २४). इन दोनों को प्राधान्य दिया गया है (दक्ष प्रजापति एवं त्रिपुर देखिये)। त्रिपुरासुर के वध के पहले इसने उसके आकाश में तैरनेवाले त्रिपुर नामक तीन नगरों को जला दिया। शिव के द्वारा किये गयें त्रिपुरदाह का तात्त्विक अर्थ महाभारत में दिया गया है, जिसके अनुसार स्थूल, सूक्ष्म, एवं कारण नामक तीन देहरूप नगरों का शिव के द्वारा दाह किया गया। हर एक साधक को चाहिए की, वह भी शिव के समान इन तीन नगरों का नाश करे, जो दुष्कर कार्य शिव की उपासना करने से ही सफल हो सकता है।

तामस-रूप—यह भूत पिशाचों का अधिपति था, एवं अमंगल वस्तु धारण कर इसने कंकाल, शैव, पाषंड, महादेव आदि अनेक तामस पंथों का निर्माण किया था। विष्णु की आज्ञानुसार, इसने निम्नलिखित ऋषियों को तामसी बनाया था:—कणाद, गौतम, शक्ति, उपमन्यु, जैमिनि, कपिल, दुर्वास, मृकंडु, बृहस्पति, भार्गव एवं जामदग्न्य। देवों के यज्ञ में हविर्भाग प्राप्त न होने के कारण, इसने क्रुद्ध हो कर भग एवं पूषन् को क्रमशः

एकाक्ष एवं दंतविहीन बनाया था, एवं यज्ञ देवता को मृग का रूप ले कर भागने पर विवश किया था।

भूतपिशाचों के गणों के वीरभद्र आदि अधिपति इसके ही पुत्र माने जाते हैं। इसी कारण इसको एवं इसकी पत्नी को क्रमशः 'महाकाल' एवं 'काली' कहा गया है। स्कंद में इसे सात सिरोंवाला कहा गया है, जिनमें से हर एक सिर अज, अश्व, बैल आदि विभिन्न प्राणियों से बना हुआ था। इन सिरों में से अपना अज एवं अश्व का सिर, इसने क्रमशः ब्रह्मा एवं विष्णु को प्रदान किया था।

वामन आदि पुराणों में रुद्र के तामस स्वरूप का अधिकांश वर्णन प्राप्त है। भूतपतित्व, शीघ्रकोपित्व, एवं आहारादि में मद्यमांस की आधिक्यता, ये रुद्र के तामस स्वरूप की तीन प्रमुख विशेषताएँ है।

शिवदेवता की उत्क्रांति—इस तरह हम देखते है कि, रुद्र–शिव के उपासकों के मन में इस देवता की दो प्रतिमाएँ प्रस्तुत की गयी हैं। इन ग्रंथों में निर्दिष्ट तामस रुद्र का वर्णन ज्ञानप्रधान एवं योग–साधना में मग्न हुए शिव से अलग है। वेदों के पूर्वकालीन अनार्य रुद्र का उत्क्रान्त आध्यात्मिक रूप शिव माना जाता है। ऋग्वेद एवं ब्राह्मण ग्रन्थों में जो रुद्र था, वहीं आगे चल कर, उपनिषद ग्रन्थों में शिव बन गया, एवं उसे परमशुद्ध आध्यात्मिक रूप प्राप्त हो गया। उसकी पूजा मद्यमांस से नहीं, बल्कि फलपुष्पादि पदार्थों से की जाने लगी। कोई न कोई कामना मन में रख कर, परमेश्वर की उपासना करनेवाले सामान्य जनों के अतिरिक्त, परब्रह्मप्राप्ति की आध्यात्मिक इच्छा मन में रखनेवाले तत्त्वज्ञ भी उसे 'महादेव' मानने लगे।

किंतु सामान्य भक्तों में उनके आध्यात्मिक अधिकार के अनुसार, शिव के तामस रूप की पूजा चलती ही रही, जिसका आविष्कार रुद्र के भैरव, कालभैरव आदि अवतारों की उपासना में आज भी प्रतीत होता है।

रुद्र–शिव के इसी दो रूपों का विशदीकरण महाभारत में प्राप्त है, जहाँ रुद्र की 'शिवा' एवं 'घोरा' नामक दो मूर्तियाँ बतायी गयीं है :—

द्वे तनू तस्य देवस्य वेदज्ञा ब्राह्मणा विदुः।
घोरामन्यां शिवामन्यां ते तनू बहुधा पुनः॥
(म. अनु. १६१.३)

(शिव की घोरा एवं शिवा नामक दो मूर्तियाँ है, जिनमें से घोरा अग्निरूप, एवं शिवा परमगुह्य अध्यात्मस्वरूप महेश्वर है)।

परिवार—रुद्र-शिव को निम्नलिखित दो पत्नियाँ थीः– १. दक्षकन्या सती; २. हिमाद्रिकन्या पार्वती (उमा) (दक्ष, सती एवं पार्वती देखिये)।

रुद्र को सती से कोई भी पुत्र नही था। पार्वती से इसे निम्नलिखित दो पुत्र उत्पन्न हुयें थेः––१. गजानन (गणपति), जो पार्वती के शरीर के मल से उत्पन्न हुआ था; २. कार्तिकेय स्कंद, जो शिव का सेनापति था (गणपति एवं स्कंद देखिये)।

उपर्युक्त पुत्रों के अतिरिक्त, पार्वती ने भूतपिशाचाधिपति वीरभद्र को, एवं बाणासुर को अपने पुत्र मान लिया था, जिस कारण यें दोनों भी शिव के पुत्र ही कहलाते हैं (वीरभद्र एवं बाण देखिये)। इसने शैलादपुत्र नंदिन् को भी अपना पुत्र माना था (नंदिन् देखिये)।

रुद्रोपासना—रुद्र शिव की उपासना प्राचीन भारतीय इतिहास में अन्य कौनसे भी देवता की अपेक्षा प्राचीन है। ऐतिहासिक दृष्टि से रुद्र–शिव की इस उपासना के दो कालखंड माने जाते हैं:– १. जिस काल में शिव की प्रतिकृति की उपासना की जाती थी; २. जिस काल में शिव की प्रतिकृति के उपासना का लोप हो कर, उसका स्थान शिवलिंगोपासना ने ले लिया।

यद्यपि ऋग्वेद में शिश्न देवता की उपासना करनेवाले अनार्य लोगों का निर्देश दो बार प्राप्त है (ऋ. ७. २१. ५;१०.९९.३), फिर भी रुद्र की उपासना में लिंगोंपासना का निर्देश प्राचीन वैदिक वाङ्मय में कहीं भी प्राप्त नहीं होता है। यही नही, पतंजलि के व्याकरण महाभाष्य में शिव, स्कंद एवं विशाख की स्वर्ण आदि मौल्यवान् धातु के प्रतिकृतियों की पूजा करने का स्पष्ट निर्देश प्राप्त है (महा. ३.९९)। वेम कद्‌फिसस् के सिक्कों पर भी शिव की त्रिशूलधारी मूर्ति पाई जाती है, एवं वहाँ शिव के प्रतीक के रूप में शिवलिंग नहीं, बल्कि नन्दिन् दिखाया गया है।

शिवलिंगोपासना का सर्वप्रथम निर्देश श्वेताश्वतर उपनिषद में पाया जाता है, जहाँ 'ईशान रुद्र' को सृष्टि के समस्त योनियों अधिपति कहा गया है (श्वे. उ. ४.११; ५.२)। किन्तु यहाँ भी शिवलिंग शिव का प्रतीक होने का स्पष्ट निर्देश अप्राप्य है, एवं सृष्टि के समस्त प्राणि जातियों का सृजन रुद्र के द्वारा किये जाने का तात्त्विक अर्थ अभिप्रेत है। महाभारत में दिये गये उपमन्यु के आख्यान में शिवलिंगोपासना का स्पष्ट रूप से निर्देश प्रथम ही पाया जाता है।

डॉ. भांडारकरजी के अनुसार, रुद्र-शिव सर्वप्रथम वैदिक देवता था, किन्तु आगे चल कर, वह व्रात्य, निषाद आदि वन्य एवं अनार्य लोगों का भी देवता बन गया। उन लोगों के कारण रुद्र-शिव के संबंधी प्राचीन वैदिक आर्यों के द्वारा प्रस्थापित की गयी कल्पनाओं में पर्याप्त फ़र्क किये गये, एवं भूतपति, सर्पधारण करनेवाला, स्मशान में रहनेवाला एक नया देवता का निर्माण हुआ। रुद्र के इस नये रूपान्तर के साथ ही साथ उसके प्रतिकृति की उपासना करने की पुरातन परंपरा नष्ट हो गयी, एवं उसका स्थान शिवलिंग की उपासना करनेवाली नयी परंपरा ने ले लिया।

अन्य कई अभ्यासकों के अनुसार, अनार्य लोगों से पूजित रुद्रदेवता, वैदिक रुद्र देवता से काफ़ी पूर्वकालीन है, एवं इन्हीं रुद्रपूजक लोगों का निर्देश ऋग्वेद में यज्ञविरोधी, शिश्नपूजक अनार्य लोगों के रूप में किया गया है। अनार्य लोगों के इस मद्यमांसभक्षक, भूतों से वेष्टित, एवं अत्यंत क्रूरकर्मा तामस देवता को वैदिक रुद्र देवता से सम्मीलित कर, उसके उदात्तीकरण का एक महान् प्रयोग वैदिक आर्यों के द्वारा किया गया। इस प्रयोग के कारण, रुद्र देवता अपने नये रूप में जनमानस की एक अत्यंत लोकप्रिय देवता बन गई, एवं उसके अनार्य वन्य एवं अंत्यज भक्तों के भक्ति का भी एक नया उदात्तीकरण हो गया। अनार्यों के इस देवता के तामस स्वरूप को उदारता का, शक्ति का एवं तपश्चरण का एक नया पहलु वैदिक आर्यों के द्वारा प्रदान किया गया। श्वेताश्वतर जैसे उपनिषदों ने तो रुद्र-शिव को समस्त सृष्टि का नियंता एवं परब्रह्म प्राप्ति करानेवाला परमेश्वर बना दिया। यह उदात्तीकरण का कार्य करते समय, अनार्य रुद्र देवता के कुछ तामस पहलु वैदिक रुद्र देवता में आ ही गयें, जिनमें से शिवलिंगोपासना एवं लिंगपूजा एक है।

मुँहेंजोदड़ो में—शिव की अत्यधिक प्राचीन प्रतिकृति मुँहेंजोदड़ो एवं हड़प्पा के उत्खनन में प्राप्त हुए सिन्धु सभ्यता के खंडहरों में दिखाई देती हैं। इस उत्खनन में शिवस्वरूप से मिलते जुलते देवता के कई सिक्के प्राप्त है, जहाँ तीन मुखवाले एक देवता की प्रतिमा चित्रांकित की गई है। यह देवता योगासन में बैठी है, एवं उसके शरीर के निचला भाग विवस्त्र है। मुँहेंजोदड़ो के इस देवता का स्वरूप महाभारत में वर्णित किये गए शिव के 'त्रिशीर्ष' (चतुर्मुख), 'विवस्त्र' (दिग्वासस्), 'ऊर्ध्वलिंग' (ऊर्ध्वरेतस्), 'योगाध्यक्ष' (योगेश्वर), स्वरूप से मिलता जुलता है (म. अनु. १४.१६२; १६५; ३२८; १७.४६; ७७; ९९)। इन सिक्कों के आधार पर, सर जॉन मार्शल के द्वारा यह अनुमान व्यक्त किया गया है कि, ई. पू. ३००० कालीन सिन्धुघाटी सभ्यता में शिव के सदृश कई देवताओं की पूजा अस्तित्व में थी।

मुँहेंजोदड़ो में प्राप्त देवता के बाये बाजू में व्याघ्र एवं हाथी है, एवं दाये बाजू में बैल एवं गण्डक हैं। यह चित्र महाभारत में प्राप्त शिव के वर्णन से मिलता जुलता है, जहाँ इसे 'पशुपति', 'शार्दूलरूप', 'व्यालरूप', 'मृगबाणरूप', 'नागचर्मोत्तरच्छद', 'व्याघ्राजीन', 'महिषघ्न', 'गजहा' एवं 'मण्डलिन्', तथा इसकी पत्नीं दुर्गा को 'गण्डिनी' कहा गया है (म. अनु. १४. ३१३; १७.४८; ६१; ८५; ९१)।

पश्चिम एशिया में—इस प्रकार महाभारत में प्राप्त शिववर्णन में एवं मुँहेंजोदड़ो में प्राप्त त्रिशिर देवता में काफ़ी साम्य दिखाई देता है। किन्तु शिव का प्रमुख विशिष्टता जो वृषभ, वह मुँहेंजोदड़ो में प्राप्त सिक्कों में नही दिखाई देता है। महाभारत में शिव को सर्वत्र 'वृषभवाह' एवं 'वृषभवाहन' कहा गया हैं (म. अनु. १४.२९९; ३९०)। इस विशिष्ट दृष्टि से ई. पू. २००० में पश्चिम एशिया में हिटाइट लोगों के द्वारा पूजित तेशब देवता से शिव का काफ़ी साम्य दिखाई देता है। बाबिलोनिया में प्राप्त अनेक शिल्पों में एवं अवशेषों में तेशब देवता की प्रतिमा दिखाई देती है, जहाँ उसे वृषभवाहन एवं त्रिशुलधारी बताया गया है। उसकी पत्नी का नाम माँ था, जिसकी जगन्माता मान कर पूजा की जाती थी।

वैदिक एवं पौराणिक वाङ्मय में निर्दिष्ट रुद्र में एवं तेशब देवता में काफ़ी साम्य है। तेशब से समान रुद्र-शिव हाथ में विद्युत्, धनुष (धन्वी, पिनाकिन्), त्रिशूल (शूल), दण्ड, परशु, पट्टीश आदि अस्त्र धारण करता है (ऋ. २.३३.३; म. अनु. १४.२८८; २८९; १७.४३; ४४; ९९)। तेशब के समान रुद्रशिव भी अंबिका का पति है, जिसे पार्वती, देवी एवं उमा कहा गया है (म. व. ७८.५७; अनु. १४.३८४; ४२७)। तेशब देवता की पत्नी सिंहारूढ वर्णित है, जो सिंहवाहिनी देवी दुर्गा से साम्य रखती है (मार्क. ४.२)। सुसा में प्राप्त तेशब देवता के पत्नी का चित्रण—प्रायः मधुमक्षिका के साथ किया गया है, जो मार्कंडेय में निर्दिष्ट 'भ्रामरीदेवी' से साम्य रखता है (मार्क. ८८.५०; दे. भा. १०.१३)।

मार्कंडेय के अनुसार, भ्रामरीदेवी ने अरुण नामक असुर का वध किया था, जिससे प्रायः असीरिया एवं इराण में रहनेवाले कई विपक्षीय जाति का बोध होता है।

सुमेर में—शुक्लयजुर्वेद मे प्राप्त 'शतुंजय-सूक्त' रुद्र-शिव को उद्देश्य कर लिखा गया है, जिसकी सारी विचारधारा सुमेरियन देवता नेर्गल को उद्देश्य कर लिखे गये सूक्त से काफ़ी मिलतीजुलती है।

इन सारे निर्देशों से प्रतीत होता है की, ॲनातोलिया, मेसोपोटॅमिया एवं सिन्धुघाटी सभ्यता में प्राप्त नानाविध देवताओं से भारतीय रुद्रशिव कोई ना कोई साम्य जरूर रखता है (रॉय चौधरी—स्टडीज इन इंडियन ॲन्टिक्विटीज, पृष्ठ २००-२०४)।

शिव के अवतार—अपने भक्तो के रक्षण के लिए एवं शत्रु के संहार के लिए शिव ने नानाविध अवतार नानाविध कल्पों में लिये, जिनकी जानकारी विभिन्न पुराणों में प्राप्त है। इन अवतारों की संख्या विभिन्न पुराणों में पाँच, दस, अठ्ठाईस एवं शत बताई गई है। शिव के इन सारे अवतारों में निम्नलिखित अवतार अधिक प्रसिद्ध हैः—

(१) **चार अवतार**—१. शरभ, जो अवतार इसने नृसिंह का पराजय करने के लिए धारण किया था, २. मल्लारि, जो अवतार इसने मणिमल्ल का वध करने के लिए धारण किया था, ३. दुर्वासस्, जो अवतार त्रिमूर्ति में स्थित माना जाता है; ४. पंचशिख, जो अवतार त्रिपुरदाह के पश्चात् अवतीर्ण हुआ था।

(२) **पंच अवतार**—शिव पुराण में शिव के निम्नलिखित पाँच अवतार दिये गयें हैं:—सद्योजात, अघोर, तत्पुरुष, ईशान, वामदेव (शिव. शत. १)।

(३) **दश अवतार**—विष्णु के समान शिव के द्वारा भी दश अवतार लियें गयें थें, जो निम्नप्रकार हैं:— महाकाल, तार, भुवनेश, श्रीविद्येश, भैरव, छिन्नमस्तक, धूमवत्, बगलामुख, मातंग, कमल (शिव शतरुद्र. १७)।

(४) **अठ्ठाईस अवतार**—वाराह कल्प के वर्तमान कल्प में शिव के द्वारा कुल अठ्ठाईस अवतार लिये गये थे, जो तत्कालीन द्वापर युग के व्यास को सहाय्यता करने के लिए उत्पन्न हुयें थे। पुराणों मे प्राप्त अवतारों की इस नामावलि में हर एक अवतार के चार चार शिष्य बतायें गयें हैं, एवं कहीं कहीं इन अवतारों का अवतीर्ण होने का स्थान भी बताया गया है। वायु में इन्हीं अवतारों को 'माहेश्वरावतार' कहा गया है। शिव के अठ्ठाईस अवतार, उनका अवतीर्ण होने का स्थान, एवं शिष्यों के नाम निम्न प्रकार हैं:—

(१) **श्वेत**—(छागल पर्वत)—श्वेत, श्वेतशिख, श्वेताश्व, श्वेतलोहित।

(२) **सुतार**—दुंदुभि, शतरूप, हृषीक, केतुमत्।

(३) **दमन**—विशोक, विशेष, विपाप, पापनाशन।

(४) **सुहोत्र**—सुमुख, दुर्मुख, दुदर्भ, दुरतिक्रम।

(५) **कंक**—सनक, सनत्कुमार, सनंदन, सनातन।

(६) **लोकाक्षि**—सुधामन्, विरजस्, संजय, अंडज।

(७) **जैगीषव्य**—(काशी)—सारस्वत, योगीश, मेघवाह, सुवाहन।

(८) **दधिवाहन**—कपिल, आसुरि, पंचशिख, शाल्वल।

(९) **ऋषभ**—पराशर, गर्ग, भार्गव, गिरीश।

(१०) **भृगु**—(भृगुतुंग)—भृंग, बलबंधु, नरामित्र, केतुशृंग।

(११) **तप**—(गंगाद्वार)—लंबोदर, लंबाक्ष, केशलंब, प्रलंबक।

(१२) **अत्रि**—(हेमकंचुक)—सर्वज्ञ, समबुद्धि, साध्य, शर्व।

(१३) **बलि**—(वालखिल्याश्रम)—सुधामन्, काश्यप, वसिष्ठ, विरजस्।

(१४) **गौतम**—अत्रि, उग्रतपस्, श्रावण, श्रविष्ट।

(१५) **वेदशिरस्**—(सरस्वती के तट पर)—कुणि, कुणिबाहु, कुशरीर, कुनेत्रक।

(१६) **गोकर्ण**—(गोकर्णवन)—काश्यप, उशनस्, च्यवन, बृहस्पति।

(१७) **गुहावासिन्**—(हिमालय)—उतथ्य, वामदेव, महायोग, महाबल।

(१८) **शिखंडिन्**—(सिद्धक्षेत्र या शिखंडिवन)—वाचःश्रवस्, रुचीक, स्यवास्य, यतीश्वर।

(१९) **जटामालिन्**—हिरण्यनामन्, कौशल्य, लोकाक्षिन्, प्रधिमि।

(२०) **अट्टहास**—(अट्टहासगिरि)—सुमंतु, वर्वरि, कबंध, कुशिकंधर।

(२१) **दारुक**—(दारुवन)—प्लक्ष, दार्भायणि, केतुमत्, गौतम।

(२२) **लांगली भीम**—(वाराणसी)—भल्लविन्, मधु, पिंग, श्वेतकेतु।

(२३) श्वेत--(कालंजर) -- उशिक, बृहदश्व, देवल, कवि।

(२४) शूलिन्--(नैमिषारण्य)--शालिहोत्र, अग्निवेश, युवनाश्व, शरद्वसु।

(२५) दंडीमुंडीश्वर--छगल, कुंडकर्ण, कुभांड, प्रवाहक।

(२६) सहिष्णु-- (रुद्रेवट)--उलूक, विद्युत्, शंबुक, आश्वलायन।

(२७) सोम--(प्रभासतीर्थ)--अक्षपाद, कुमार, उलूक, वत्स।

(२८) लकुलिन्--कुशिक, गर्ग, मित्र, तौरुष्य (वायु. २३; शिव. शत. ४-५; शिव. वायु. ८-९; लिंग. ७)।

(४) शत-अवतार--भिन्न कल्पों में उत्पन्न हुयें शिव के शत अवतारों की नामावलि भी शिवपुराण में प्राप्त है, जहाँ इन अवतारों के वस्त्रों के विभिन्न रंग, एवं पुत्रों के विभिन्न नाम विस्तृत रूप से प्राप्त हैं (शिव. शत. ५)।

शिव-उपासना के सांप्रदाय--रुद्र शिव की उपासाना भारतवर्ष के सारे विभागों में प्राचीन काल से ही अत्यंत श्रद्धा से की जाती थी। रुद्र के इन उपासकों के दो विभाग दिखाई देते हैं:--१. एक सामान्य उपासक, जो शिव-उपासना के कौनसे भी सांप्रदाय में शामिल न होते हुए भी शिव की उपासना करते हैं; २. शिव के अन्य उपासक, जो शिव-उपासना के किसी न किसी सांप्रदाय में शामिल हो कर इसकी उपासना करते है।

कालिदास, सुबंधु, बाण, श्रीहर्ष, भट्टनारायण, भवभूति आदि अनेक प्राचीन साहित्यिकों के ग्रंथ में श्रीविष्णु के साथ रुद्र-शिव का भी नमन किया गया है। प्राचीन चालुक्य एवं राष्ट्रकूट राजाओं के द्वारा शिव के अनेकानेक मंदिर बनायें गयें है, जिनमें वेरूल में स्थित कैलास मंदिर विशेष उल्लेखनीय है। ये सारी कृतियाँ सामान्य शिवभक्तों के द्वारा किये गये सांप्रदायनिरपेक्ष शिवोपासना के उदाहरण माने जा सकते हैं।

शिव-उपासना का आद्य सांप्रदाय--ई. स. १ ली शताब्दी में श्रीविष्णु-उपासना के 'पांचरात्र' नामक सांप्रदाय की उत्पत्ति हुई। उसका अनुसरण कर ई. स. २ री शताब्दी में लकुलिन् नामक आचार्य ने 'पाशुपत' नामक शिव-उपासना के आद्य सांप्रदाय की स्थापना की, एवं इस हेतु 'पंचार्थ' नामक एक ग्रंथ भी लिखा। आगे चल कर इसी पाशुपत सांप्रदाय से शिव-उपासना के निम्नलिखित तीन प्रमुख सांप्रदायों का निर्माण हुआ:--१. कापालिक; २. पाशुपत; ३. शैव।

(१) **कापालिक सांप्रदाय**--रामानुज के अनुसार, शरीर के छः मुद्रिका का ज्ञान पा कर, एवं स्त्री के जननेंद्रिय में स्थित आत्मा का मनन कर, जो लोग शिव की उपासना करते है, उन्हें कापाल सांप्रदायी कहते है (रामानुज. २.२. ३५)। अपने इस हेतु के सिध्यर्थ्य इस संप्रदाय के लोग निम्नलिखित आचारों को प्राधान्य देते हैं:-- १. खोंपडी में भोजन लेना; २. चिताभस्म सारे शरीर को लगाना; ३. चिताभस्म भक्षण करना; ४. हाथ में डण्डा धारण करना; ५. मद्य का चषक साथ में रखना; ६. मद्य में स्थित रुद्रदेवता की उपासना करना।

ये लोग गले में रुद्राक्ष की माला पहनते है, एवं जटा धारण करते हैं। गले में मुंडमाला धारण करनेवाले भैरव एवं चण्डिका की ये लोग उपासना करते है, जिन्हें ये लोग शिव एवं पार्वती का अवतार मानते है।

इसी सांप्रदाय की एक शाखा को 'कालामुख' अथवा 'महाव्रतधर' कहते है, जो अन्य सांप्रदायिकों से अधिक कर्मठ मानी जाती है।

(२) **पाशुपत सांप्रदाय**--इस सांप्रदाय के लोग सारे शरीर को चिताभस्म लगाते है, एवं चिताभस्म में ही सोते है। भीषण हास्य, नृत्य, गायन, हुडुक्कार एवं अस्पष्ट शब्दों में ॐकार का जाप, आदि छः मार्गों से ये शिव की उपासना करते हैं।

इस सांप्रदाय की सारी उपासनापद्धति, अनार्य लोगों के उपासनापद्धति से आयी हुई प्रतीत होती है।

(३) **शैव सांप्रदाय**--यह सांप्रदाय कापालिक एवं पाशुपत जैसे 'अतिमार्गिक' सांप्रदायोंसे तुलना में अधिक बुद्धिवादी है, जिस कारण इन्हें 'सिद्धान्तवादी' कहा जाता है। इस सांप्रदाय में मानवी आत्मा को पशु कहा गया है, जो इंद्रियपाशों से बँधा हुआ है। पशुपति अथवा शिव की मंत्रोपासना से आत्मा इन पाशों से मुक्त होता है, ऐसी इस सांप्रदाय के लोगों की कल्पना है।

काश्मीर शैव-सांप्रदाय--इस सांप्रदाय की निम्नलिखित दो प्रमुख शाखाएँ मानी जाती हैं:--१. स्पंदशास्त्र, जिसका जनक वसुगुप्त एवं उसका शिष्य कल्लट माने जाते हैं। इस सांप्रदाय के दो प्रमुख ग्रंथ 'शिवसूत्रम्' एवं 'स्पंदकारिका' हैं, एवं इसका प्रारंभकाल ई. स. ९ वीं शताब्दी माना जाता है; २. प्रत्यभिज्ञानशास्त्र, जिसका जनक सोमानंद एवं उसका शिष्य उदयाकर माने जाते हैं।

इस सांप्रदाय का प्रमुख ग्रंथ 'शिवदृष्टि' है, जिसकी विस्तृत टीका अभिनवगुप्त के द्वारा लिखी गयी है। इस सांप्रदाय का उदयकाल ई. स. १० वीं शताब्दी का प्रारंभ माना जाता है।

इन दोनों सांप्रदायों में कापालिक एवं पाशुपत जैसे प्राणायाम एवं अघोरी आचरण पर जोर नहीं दिया गया है, बल्कि चित्तशुद्धि के द्वारा 'आनव,' 'मायिय' एवं 'काय' आदि मलों (मालिन्य) को दूर करने को कहा गया है। इस प्रकार ये दोनों सिद्धान्त अघोरी रुद्र उपासकों से कतिपय श्रेष्ठ प्रतीत होते हैं।

राजतरंगिणी के अनुसार, काश्मीर का शैव सांप्रदाय अत्यधिक प्राचीन है, एवं सम्राट अशोक के द्वारा काश्मीर में शिव के दो देवालय बनवायें गयें थे। काश्मीर का सुविख्यात राजा दामोदर (द्वितीय) शिव का अनन्य उपासक था। इस प्रकार प्राचीन काल से प्रचलित रहे शिव-उपासना के पुनरुत्थान का महत्वपूर्ण कार्य 'स्पंद शास्त्र' एवं 'प्रत्यभिज्ञान शास्त्र' वादी आचार्यों के द्वारा ई. स. १० वीं शताब्दी में किया गया।

वीरशैव (लिंगायत) सांप्रदाय—इस सांप्रदाय का आद्य प्रसारक आचार्य 'बसव' माना जाता है, जिसकी जीवनगाथा 'बसवपुराण' में दी गयी है। इस सांप्रदाय के मत शैवदर्शन अथवा सिद्धान्तदर्शन से काफ़ी मिलते जुलते है। इस पुराण से प्रतीत होता है की, प्राचीन काल में विश्वेश्वराध्य, पण्डिताराध्य, एकोराम आदि आचार्यों के द्वारा प्रसृत किये गये सांप्रदाय को बसव ने ई. स. १२ वीं शताब्दी में आगे चलाया।

इस सांप्रदाय के अनुसार, ब्रह्मन् का स्वरूप 'सत्,' 'चित्' एवं 'आनंद' मय है, एवं वही शिवतत्त्व है। इस आद्य शिवतत्त्व के लिंग (शिवलिंग), एवं अंग (मानवी आत्मा) ऐसे दो प्रकार माने गये हैं, एवं इन दोनों का संयोग शिव की भक्ति से ही होता है ऐसा कहा गया है।

इस तत्त्वज्ञान में लिंग के महालिंग, प्रसादलिंग, चरलिंग, शिवलिंग, गुरुलिंग एवं आचारलिंग ऐसे प्रकार कहे गये हैं, जो शिव के ही विभिन्न रूप हैं। इसी प्रकार अंग की भी 'योगांग,' 'भोगांग' एवं 'त्यागांग' ऐसी तीन अवस्थाएँ बतायी गयी है, जो शिव की भक्ति की तीन अवस्थाएँ मानी गयी हैं।

लिंगायतों के आचार्य स्वयं को लिंगी ब्राह्मण (पंचम) कहलाते है, एवं इस सांप्रदाय के उपासक गले में शिवलिंग की प्रतिमा धारण करते हैं।

द्रविड देश में शिवपूजा—ई. स. ७ वीं शताब्दी से द्रविड देश में शिवपूजा प्रचलित थी। इस प्रदेश के शैवसांप्रदाय का आद्य प्रचारक तिरुनानसंबंध था, जिसके द्वारा लिखित ३८४ पदिगम् (स्तोत्र) द्रविड देश में वेदों जैसे पवित्र माने जाते हैं। तंजोर के राजराजेश्वर मंदिर में प्राप्त राजराजदेव के ई. स. १० वीं शताब्दी के शिलालेख में तिरुनानसंबंध का अत्यंत आदर से उल्लेख किया गया है। कांची के शिव मंदिर में, एवं पल्लव राजा राजसिंह के द्वारा ई. स. ६ वीं शताब्दी बनवायें गयें राजसिंहेश्वर मंदिर में शिवपूजा का अत्यंत श्रद्धाभाव से निर्देश प्राप्त है। पेरियापुराण नामक तमिल ग्रंथ में इस प्रदेश में हुयें ६३ शिवभक्तों के जीवनचरित्र दिये गये हैं।

शक्तिपूजा—शिवपूजा का एका उपविभाग शक्ति अथवा देवी की उपासना है, जहाँ देवी की त्रिपुरसुंदरी नाम से पूजा की जाती है (देवी देखिये)।

शिवपूजा के अन्य कई प्रकार गणपति (विनायक) एवं स्कंद की उपासना हैं (विनायक एवं स्कंद देखिये)।

शिवरात्रि—हर एक माह के कृष्ण एवं शुक्ल चतुर्दशी को शिवरात्रि कहते है, एवं फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी को महाशिवरात्रि कहते है। ये दिन शिव-उपासना की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं।

शिव-उपासना के ग्रन्थ—इस संबंध में अनेक स्वतंत्र ग्रंथ, एवं आख्यान एवं उपाख्यान महाभारत एवं पुराणों में प्राप्त है, जो निम्नप्रकार हैः—

(१) **शिवसहस्रनाम**, जो महाभारत में प्राप्त है। यह तण्डि ने उपमन्यु को, एवं उपमन्यु नें कृष्ण को कथन किया था (म. अनु. १७.३१-१५३)। इसके अतिरिक्त दक्षवर्णित शिवसहस्रनाम महाभारत में प्राप्त है (म. शां. परि. १.२८)।

शिवसहस्रनाम की स्वतंत्र रचनाएँ भी लिंगपुराण (लिंग. ६५.९८), एवं शिवपुराण (शिव. कोटि. ३५) में प्राप्त है।

(२) **शिवपुराण**—शैवसांप्रदाय के निम्नलिखित पुराण ग्रंथ प्राप्त हैः—कूर्म, ब्रह्मांड, भविष्य, मत्स्य, मार्कंडेय, लिंग, वराह, वामन, शिव एवं स्कंद (स्कंद. शिवरहस्य खंड, संभवकांड २.३०-३३; व्यास देखिये)।

(३) **शिवगीता**, जो पद्म पुराण के गौडीय संस्करण में प्राप्त हैं, किन्तु आनंदाश्रम संस्करण में अप्राप्य है।

(४) **शिवस्तुति,** महाभारत में शिवस्तुति के निम्नलिखित आख्यान प्राप्त हैं:—१. अश्वत्थामन् कृत (म. सौ. ७) २. कृष्णकृत (म. अनु. १४; ह. वं. २.७४.२२-३४); ३. कृष्णार्जुनकृत (म. द्रो. ५७); ४. तण्डिन्कृत (म. अनु. ४७); ५. दक्षकृत (म. शां. परि. १.२८); मरुत्तकृत (म. आश्व. ८.१४.)।

(५) **शिवमहिमा,** जो महाभारत के एक स्वतंत्र आख्यान में वर्णित है।

(६) **लिंगार्चन महिमा,** जो महाभारत के एक स्वतंत्र आख्यान में प्राप्त है (म. अनु. २४७)।

(७) **शिवनिंदा,** दक्ष के द्वारा की गई शिवनिंदा भागवत में प्राप्त है (भा. ४.२.९-१६)।

रुद्र-शिव के तीर्थस्थान--रुद्र-शिव के नाम से, एवं इनके प्रासादिक विभूतिमत्त्व से प्रभावित हुए अनेक तीर्थ-स्थानों का निर्देश महाभारत एवं पुराणों में प्राप्त है, जिन में निम्नलिखित तीर्थस्थान प्रमुख हैं:—

(१) **ज्योतिर्लिंग**--जिनकी संख्या कुल बारह बतायी गयी है (ज्योतिर्लिंग देखिये)।

(२) **मुंजपृष्ठ**--एक रुद्रसेवित स्थान, जो हिमालय के शिखर पर स्थित था (म. शां. १२२.२-४)।

(३) **मुंजवट**--गंगा के तट पर स्थित एक तीर्थस्थान, जहाँ शिव की परिक्रमा करने से गणपति पद की प्राप्ति होती है (म. व. ८३.४४६*)।

(४) **मुंजवत्**--हिमालय में स्थित एक पर्वत, जहाँ भगवान् शंकर तपस्या करते है।

(५) **रुद्रकोटि**—एक तीर्थस्थान, जहाँ शिवदर्शन की अभिलाषा से करोड़ो मुनि एकत्रित हुये थे, एवं उन पर प्रसन्न हो कर शिव ने करोड़ो शिवलिंगों के रूप में उन्हें दर्शन दिया था (म. व. ८०.१२४-१२९)।

(६) **रुद्रपद**--एक तीर्थ, जहाँ शिव की पूजा करने से अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है (म. व. ८०. १०८; पाठभेद-'वस्त्रापथ'।)

(७) **हिमवत्**--एक पवित्र पर्वत, जो त्रिपुरदाह के समय भगवान् रुद्र के रथ में आधारकाष्ठ बना था। इस पर्वत में स्थित आदित्यगिरि नामक स्थान में शिव का आश्रम स्थित था (म. शां. ३१९-३२०)।

रुद्रकेतु—एक असुर। इसकी पत्नी का नाम शारदा था, जिससे इसे देवान्तक एवं नरान्तक नामक पुत्र उत्पन्न हुए थे। इसके पुत्रों के पराक्रम से संतुष्ट हो कर नारद ने इसे 'पंचाक्षरी महाविद्या' का उपदेश दिया था। आगे चल कर इसके पुत्र देवान्तक एवं नरान्तक का भगवान् विनायक ने वध किया (गणेश. क्री. २)।

रुद्रभूति द्राह्यायण--एक आचार्य, जो त्रात ऐक्ष्मत नामक आचार्य का शिष्य था। इसके शिष्य का नाम शर्वदत्त गार्ग्य था (वं. ब्रा. १.)।

रुद्रश्रेण्य--(सो. सह.) एक राजा, जो मत्स्य के अनुसार महिष्मत राजा का पुत्र था।

रुद्र सावर्णि--बारहवें मन्वन्तर का अधिपति मनु, जो भव राजा का पुत्र था। इसकी माता का नाम सुव्रता था, जो प्राचेतस् दक्ष की कन्या थी (मार्क. ९१; विष्णु. ३.२.३२)।

देवी भागवत में इसे तेरहवें मन्वन्तर का अधिपति कहा गया है, एवं वैवस्वत मनु के पुत्र शर्याति को बारहवें मन्वन्तर का अधिपति कहा गया है (दे. भा. १०.१३) वायु के अनुसार, यह चाक्षुष मन्वन्तर में हुआ था (वायु. १००.५८)। कई ग्रंथों में इसे चतुर्थ मेरुसावर्णि भी कहा गया है।

रुद्रसेन—एक राजा, जो भारतीययुद्ध में पाण्डवों के पक्ष में शामिल था (म. द्रो. १३३.३७)। पाठभेद--'भद्रसेन'।

रुधिका--एक असुर, जिसका पिप्रु नामक असुर के साथ निर्देश प्राप्त है। इन्द्र ने इन दोनों का वध किया (ऋ. २.१४.५)।

रुधिराक्ष—एक असुर, जो लवणासुर का मामा था।

रुधिराशन--एक राक्षस, जो खर राक्षस के बारह अमात्यों में से एक था (वा. रा. अर २३.३२)।

रुन्द--एक राजा, जो पहले क्षत्रिय था, किन्तु पश्चात् ब्राह्मण हुआ (वायु. ९३.११४)।

रुम—एक वैदिक जातिसमूह। रुशम, श्यावक, कृप राजाओं के साथ रुम लोगों के राजा का निर्देश भी इंद्र के कृपापात्र लोगों के नाते प्राप्त हैं (ऋ. ८.४.२)।

रुमण—राम की सेना का एक सुविख्यात वानर।

रुमण्वत्--परशुराम का भ्राता, जो जमदग्नि एवं रेणुका के पाँच पुत्रों में से ज्येष्ठ था। इसके अन्य भाइयों के नाम सुषेण, वसु, विश्वावसु एवं परशुराम थें।

इसे इसकी माता रेणुका का वध करने की आज्ञा जमदग्नि ने दी। किन्तु इसने उसका पालन नहीं किया, जिससे कुपित हो कर जमदग्नि ने इसे मृगपक्षियों की भाँति जडबुद्धि होने का शाप दिया (म. व. ११६.१०)

पश्चात् परशुराम ने पिता को प्रसन्न कर के इसे शापमुक्त कराया।

रुमा--सुग्रीव की पत्नी, जो पनस वानर की कन्या थी (ब्रह्मांड. ३.७.२२१)।

सुग्रीव को विजनवासी बना कर उसके भाई वालि ने रुमा का हरण किया। वालिवध के पश्चात् रुमा पुनः एक बार सुग्रीव के पास आ गई, एवं वालि की पत्नी तारा भी सुग्रीव की पत्नी बन गई (वा. रा. कि. २०-२१; पद्म. ४.११२.१६१)।

इससे प्रतीत होता है कि, राज्य के साथ अपने बान्धवों की पत्नियाँ भी अपनाने की रुढि वानरों में थी। फिर भी वाल्मीकि रामायण में वालि को भार्यापहार का दोष लगाया गया है।

बिभीषण से मिलने के लिए जाते समय राम किष्किंधा में ठहरा था। उस समय अन्य राजस्त्रियों के साथ राम के दर्शनार्थ यह उपस्थित हुई थी (पद्म. सृ. ३८)।

रुरु--एक ऋषिकुमार, जो च्यवन ऋषि का पौत्र एवं प्रमति ऋषि का पुत्र था। घृताची नामक अप्सरा इसकी माता थी (म. अनु. ३०.६४)। इसके पुत्र का नाम शुनक था।

इसकी पत्नी का नाम प्रमद्वरा था, जो सर्पदंश के कारण मृत होने पर इसने अत्यधिक विलाप किया था। पश्चात् अपनी आधी आयु दे कर, इसने उसे पुनः जीवित किया।

इस प्रसंग के कारण, इसके मन में सर्पजाति के प्रति विद्वेष उत्पन्न हुआ, एवं सर्प को देखते ही उसे मारने का इसने प्रारंभ किया। एक बार यह डुण्डुभ नामक साप को मारनेवाला ही था, कि उस सर्प ने इसे कहा, 'साँप को मारने के पहले वह विषैला है या नहीं, यह सोंच कर तुम उसे मारा करो'। पश्चात् डुण्डुभ ने इसे अहिंसा एवं वर्णधर्म का उपदेश प्रदान किया।

डुण्डुभ पूर्वजन्म में सहस्रपात नामक एक ऋषि था, जिसे शाप के कारण सर्पयोनि प्राप्त हुई थी। रुरु ऋषि के दर्शन से उसे भी मुक्ति प्राप्त हुई (म. आ. ८-१२; दे. भा. २.९)।

२. एक भैरव, जो अष्टभैरवों में से द्वितीय माना जाता है।

३. एक असुर, जो हिरण्याक्ष के वंश में पैदा हुआ था। इसके पुत्र का नाम दुर्गमासुर था।

४. एक दैत्य, जो ब्रह्मा के द्वारा प्राप्त वर से अत्यंत उन्मत्त हुआ था। इसी उन्मत्तता के कारण, इसने देवताओं पर हमला किया। इस पर सारा देवगण भाग गया, एवं वे आत्मरक्षा के लिए शंकर के जटा से निकली हुई एक शक्ति की शरण में आये, जो नीलपर्वत पर तपस्या कर रही थी।

इतने में देवताओं का पीछा करता हुआ रुरु दैत्य भी ससैन्य वहाँ आ पहुँचा। इस पर शक्ति देवी ने विकट हास्य किया, जिससे डाकिनी की एक सेना उत्पन्न हुई। उस सेना ने इसके सैन्य के सारे दैत्यों का नाश किया। देवी ने अपने पाँव के अंगूठे के नाखून से वध किया। पश्चात् भगवान् शिव ने स्वयं प्रकट हो कर, डाकिनियों को अनेक वर प्रदान करते हुए कहा, 'आज से लोग तुम्हे जगन्माता मानेंगे' (पद्म. सृ. ३१)।

स्कंद में इसे रथंतर कल्प में उत्पन्न हुआ दैत्य कहा गया है, एवं एक ऋषि के द्वारा उत्पन्न की गयीं कुमारिकाओं से इसका वध होने की कथा वहाँ प्राप्त है (स्कंद. ७.१. २४२-२४७)।

५. चाक्षुष मनु के पुत्रों में से एक।

६. कश्यपकुलोत्पन्न एक ऋषि, जो सावर्णि मन्वन्तर में उत्पन्न हुआ था।

७. (सू. इ.) एक राजा, जो विष्णु के अनुसार अहीनगु राजा का पुत्र था।

रुरुक--(सू. इ.) एक इक्ष्वाकुवंशीय राजा, जो विष्णु एवं वायु के अनुसार विजय राजा का पुत्र था। यह राजनीति एवं अर्थशास्त्र में अत्यंत प्रवीण था (ह. वं. १.१३.२९)।

रुशती--एक कन्या, जिसका विवाह अश्वियों के द्वारा श्याव राजा से संपन्न कराया था (ऋ. ११७.८)। रुशती का शब्दशः अर्थ 'श्वेतवर्णीय' होता है।

रुशदश्व--इक्ष्वाकुवंशीय वसुमनस् राजा का पिता।

रुशद्रथ--(सो. अनु.) एक राजा, जो भागवत के अनुसार तितिक्षु राजा का पुत्र था। मत्स्य में इसे वृषद्रथ, एवं विष्णु एवं वायु में उषद्रथ कहा गया हैं।

रुशम--एक वैदिक ज्ञातिसमूह, जो इन्द्र का आश्रित था (ऋ. ८.३.१३; ४.२; ५१.९)। इनके राजा का नाम 'रुणंचय' था (ऋ. ५.३०.१२-१५)। अथर्ववेद में इनके राजा का नाम 'कौरम' दिया गया है (अ. वे. २०.१२७.१)।

रुशामा--एक ब्रह्मवेत्ता आचार्य, जिसकी कथा पंचविंश ब्राह्मण में कुरुक्षेत्र का माहात्म्य कथन करने के लिए दी गई है।

एकबार इंद्र एवं रुशमा में पृथ्वी प्रदक्षिणा के लिए शर्त लगी। तदोपरान्त इंद्र ने पृथ्वीप्रदक्षिणा की, एवं रुशमा ने कुरुक्षेत्र की प्रदक्षिणा की। बाद में विजय किसका हुआ इस संबंध में निर्णय देते हुए देवों ने कहा, 'कुरुक्षेत्र ब्रह्मा की वेदि है, जिस कारण समस्त पृथ्वी उसमें समाविष्ट होती है। अतः विजय दोनों की ही हुई है' (पं. ब्रा. २५.१३.३)।

कई अभ्यासकों के अनुसार, इस कथा का संकेत रुशम ज्ञाति के लोगों की ओर है, एवं उनका कुरुओं के साथ संबंध होने का संकेत इस कथा में प्राप्त है।

रुशेकु—(सो. क्रोष्टु.) यादववंशीय रशादु राजा का नामान्तर।

रुशंगु--उशंगु ऋषि का नामान्तर (उशंगु देखिये)।

रुषद्गु—(सो. क्रोष्टु.) यादववंशीय रशादु राजा का नामान्तर।

रुशद्रु--यमसभा में उपस्थित एक राजा (म. स. ८.१२)।

रुषर्द्धिक—सुराष्ट्रवंशीय एक कुलांगार राजा, जिसने अपने दुर्व्यवहार के कारण अपने स्वजन एवं ज्ञाति-बांधवों का नाश किया (म. उ. ७२.११)। पाठभेद (भांडारकर संहिता)- 'कुशर्द्धिक'।

रुषाभानु—हिरण्याक्ष असुर की पत्नी (भा. ७. २.१९)।

रूपक--एक शिवभक्त राक्षस, जिसके पुत्र का नाम संपति था। ये दोनों अन्याय्य मार्ग से संपत्ति प्राप्त कर, वह शिव-उपासना के लिए व्यतीत करते थे। इस कारण मृत्यु की पश्चात्, शिव के मानसपुत्र वीरभद्र ने इन्हें कहा, 'अगले जन्म में तुम चोर बनोगे, किन्तु शिवभक्ति के कारण तुम्हारा उद्धार होगा' (पद्म. पा. ११५)।

रूपवती--त्रेतायुग की एक वेश्या, जो देवदास नामक एक स्वर्णकार से प्रेम करती थी। वैशाखस्नान के कारण, इन दोनों को मुक्ति मिल गयी (पद्म. पा. ९७)।

रूपि—भृगुकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

रूपिन्—अजमीढ नामक सोमवंशीय राजा का पुत्र, जिसकी माता का नाम केशिनी था। इसके जह्नु एवं जन नामक दो भाई थे (म. आ. ८९.२८)।

रेणु—एक आचार्य, जो विश्वामित्र ऋषि का पुत्र था (ऐ. ब्रा. ७.१७.७; सां. श्रौ. १५.२६.१)। ऋग्वेद के एक सूक्त का प्रणयन इसने किया है (ऋ. ९. ७०)। इसे कुशिकगोत्र का मंत्रकार भी कहा गया है।

२. (सू. इ.) एक इक्ष्वाकुवंशीय राजा, जिसे प्रसेनजित्, प्रसेन, एवं सुवेणु नामान्तर प्राप्त थे। इसकी कन्या का नाम रेणुका था, जो जमदग्नि ऋषि की पत्नी एवं परशुराम की माता थी (भा. ९.१५.१२; म. व. ११६.२)।

रेणुक—एक सत्वगुणसंपन्न नाग, जो रसातल में रहता था। इसने देवताओं के कहने पर दिग्गजों के पास जा कर धर्म के संबंधी प्रश्न पूछे थे (म. अनु. १३२.२६)

रेणुका—इक्ष्वाकुवंशीय रेणु (प्रसेनजित्) राजा की कन्या, जो जमदग्नि महर्षि की पत्नी थी (भा. ९.१५.२; ह. वं. १.२७.३८; म. व. ११६.२)। कई अन्य ग्रंथों में इसे अनावसु की, एवं विकल्प में सुवेणु की कन्या कहा गया है (रेणु. ५)। कालिका पुराण में इसे विदर्भ राजा की कन्या कहा गया है (कालि. ८६)। इसे कामली नामान्तर भी प्राप्त था।

जन्म—महाभारत के अनुसार, इसकी उत्पत्ति कमल में हुई थी, एवं इसके पिता एवं भ्राता का नाम क्रमशः सोमप एवं रेणु था (म. अनु. ५३.२७)। सोमप राजा के द्वारा इसका पालन होने कारण, संभवतः उसे इसका पिता कहा होगा। रेणुकापुराण के अनुसार, रेणु राजा ने कन्याकामेष्टियज्ञ किया। उस यज्ञकुण्ड से इसकी उत्पत्ति हुई (रेणु. ३)।

अपने पूर्वजन्म में यह अदिति थी। इसका स्वयंवर भागीरथी क्षेत्र में हुआ, जिस समय इसने स्वयंवर में जमदग्नि का वरण किया (रेणु. ११)। इसके स्वयंवर के समय इंद्र ने इसे कामधेनु, कल्पतरु, चिंतामणि एवं पारस आदि विभिन्न मौल्यवान् चीज़े भेंट में दे दी (रेणु. १३)।

एक बार जमदग्नि ऋषि बाणक्षेपण का खेल खेल रहे थे, जिस समय बाण वापस लाने का काम इस पर सौंपा गया था। एकबार बाण लाने में इसे कुछ देरी हो गयी, जिस कारण क्रुद्ध हो कर जमदग्नि ने अपने पुत्र परशुराम से इसका शिरच्छेद करने के लिए कहा (म. अनु. ९५. ७-१७)। अपने पिता की आज्ञानुसार, परशुराम ने इसका वध किया, एवं पश्चात् जमदग्नि से अनुरोध कर इसे पुनर्जीवित कराया (म. व. ११६.५-१८)।

परिवार—इसे निम्नलिखित पाँच पुत्र थेः-रुमण्वत्, सुषेण, वसु, विश्वावसु एवं परशुराम (म. व. ११६. १०-११)। रेणुकापुराण में 'रुमण्वत्' एवं 'सुषेण' के बदले पुत्रों के नाम 'बृहत्भानु' एवं 'बृहत्कर्मन्'

दिये गयें हैं (रेणू. १३)। कलिका पुराण में ' रुमण्वत् ' के बदले ' मरुत्वत् ' नाम प्राप्त है (कालि. ८६)।

रेणुमती--नकुलपत्नी करेणुमती का नामान्तर।

रेपलेंद्र—एक राक्षस, जिसका घटोत्कचपुत्र बर्बरिक के द्वारा वध हुआ था।

रेभ--एक वैदिक सूक्तद्रष्टा, जो अवत्सार काश्यप नामक आचार्य के पुत्रों में से एक था (ऋ. ८.९७)।

यह अश्वियों के कृपापात्र व्यक्तियों में से एक था। एक बार असुरों के इसे बाँध कर कुए में डाल दिया, जहाँ इसे नौ दिन एवं दस रात्रियों तक भूखा एवं प्यासा रहना पड़ा (ऋ. १.११२.५)। तदोपरान्त अश्वियों ने इसकी मुक्तता की (ऋ. १.११६.२४; ११७.४)।

एक गुफा की बंदिशाला में एकबार यह रखा गया था, जिस समय भी अश्वियों ने इसकी मुक्तता की (ऋ. १०. ३९.९)।

रेव--(सू. शर्याति.) एक शर्यातिवंशीय राजा, जो हरिवंश, भागवत विष्णु एवं वायु के अनुसार आनर्त राजा का पुत्र था। पद्म में इसे आनर्त का पौत्र, एवं रोचमान राजा का पुत्र कहा गया हैं। भागवत एवं विष्णु के अनुसार, इसे ' रेवत ' नामान्तर प्राप्त था। ब्रह्म में इसे रैव कहा गया है।

इसने पश्चिम समुद्र में कुशस्थली नामक नगरी की स्थापना कर उसे अपनी राजधानी बनाई (भा. ९.३. २८)। आगे चल कर यही नगरी द्वारका नाम से प्रसिद्ध हुई (मत्स्य. ६९.९)।

द्वारका नगरी पर शर्याति राजवंशीय लोगों का राज्य अधिककाल न रहा सका, जिसे पुण्यजन राक्षसों ने नष्ट किया, एवं यह राजवंश हैहय वंश में विलीन हुआ।

इसे रैवत ककुद्मिन् आदि सौ पुत्र थे। शर्याति राजा से ले कर रैवत तक का वंशक्रम इसप्रकार हैः--शर्याति--आनर्त--रोचमान--रेव--रैवत ककुद्मिन्।

रेवत--(सो. कुकुर.) एक राजा, जो वायु के अनुसार कपोतरोमन् राजा का पुत्र था।

२. शर्यातिवंशीय रेव राजा का नामांतर।

३. एकादश रुद्रों में से एक।

रेवती—शर्यातिवंशीय रैवत ककुद्मिन् राजा की कन्या, जो बलराम की पत्नी थी। यह उम्र में बलराम से बड़ी थी (पद्म. भू. १०३)। बलराम की मृत्यु होने पर, इसने उसके चिता में अग्निप्रवेश किया (ब्रह्म. २१२.३)।

२. भरद्वाज ऋषि की बहन, जो उसने अपने कठ नामक शिष्य को विवाह में दी थी (ब्रह्म. १२१)।

३. मित्र नामक आदित्य की पत्नी (भा. ६.१८. ६)।

४. रैवत नामक पाँचवे मन्वन्तर के अधिपति रैवत राजा की माता। इसकी जन्मकथा मार्कंडेय पुराण में प्राप्त है, जो निम्नप्रकार हैः—

ऋतवाच् नामक एक सच्छील मुनि था, जिसे रेवती नक्षत्र के अवसर पर एक दुःशील पुत्र उत्पन्न हुआ। यह दुर्घटना रेवती नक्षत्र के प्रभाव से हो हुई है, यह गर्ग ऋषि से ज्ञान होते ही, ऋतवाच् ऋषि ने रेवती नक्षत्र को शाप दिया, एवं उसे नीचे गिरा दिया।

रेवती नक्षत्र के पतन के स्थान पर एक सरोवर निर्माण हुआ, जिस में से कालोपरांत एक कन्या उत्पन्न हुई। वही रेवती है।

इस कन्या को प्रमुच मुनि ने पाल-पोस कर बड़ा किया, एवं विक्रमशील राजा के पुत्र दुर्गम से इसका विवाह कर दिया।

इसके द्वारा प्रार्थना की जाने पर, प्रमुच ऋषि ने इसका विवाह रेवती नक्षत्र के मुहूर्त पर ही किया, एवं इसे मन्वन्तराधिप पुत्र होने का आशीर्वाद भी दिया। इस आशीर्वाद के अनुसार, रैवत नामक पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुआ (मार्क. ७२)।

५. सत्ताईस नक्षत्रों में से एक (म. भी. १२.१६)।

रेवन्त—एक सूर्यपुत्र, जो अश्व के रूप में उत्पन्न हुआ था। इसकी माता का नाम संज्ञा था। बड़ा होने पर इसे गुह्यकों का आधिपत्य दिया गया (मार्क. १०३)। भविष्य के अनुसार, इसे अश्वों का अधिपत्य दिया गया था (भवि. ब्राह्म. ८९.१२४)।

रेवाग्नि--अंगिराकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

रेवोत्तरस्—पाटव चाक्र स्थपती नामक आचार्य का उपनाम (श. ब्रा. १२.९.३.१; चाक्र देखिये)।

रैक्व 'सयुग्वा'--एक तत्त्वज्ञानी आचार्य, जिसका जीवनचरित्र एवं तत्त्वज्ञान छांदोग्योपनिषद में प्राप्त हैं। यह सदैव बैलों के गाडी के नीचे ही निवास करता था, जिस कारण इसे ' सयुग्वा ' (गाड़ी के नीचे रहनेवाला) उपाधि प्राप्त हुई थी।

जानश्रुति राजा से भेंट—एक बार जानश्रुति नामक राजा जंगल में शिकार के लिये घूमता था, जिस समय उसने दो हंसी के बीच हुआ संवाद सहजवश सुन लिया।

इस संवाद में एक हंस दूसरे से कहता था, 'जिस प्रकार पाँसों का अंतिम डाव जीतनेवाले को उस खेल के सारे दान प्राप्त होते है, उसी प्रकार सृष्टि के हरएक पुण्यवान् व्यक्ति के द्वारा किया गया पुण्यसंचय, गाडी के नीचे निवास करनेवाले रैक्व ऋषि तक पहुँचता है'।

हंसों का यह संवाद सुन कर, जानश्रुति को अत्यंत आश्चर्य हुआ, एवं वह इसे ढूँढते ढूँढते वहाँ तक पहुँच गया, जहाँ खुजली को खुजलाते यह गाड़ी के नीचे बैठा था, राजा ने इसे अनेक गायें, सुवर्ण का रत्नहार, आदि अनेक उपहार देना चाहा, किंतु इसने उनका स्वीकार न कर, अपनी गाडी ही राजा को दान में दे दी।

पश्चात् जानश्रुति ने अपनी कन्या इसे विवाह में दे दी, एवं इसको प्रसन्न कर इससे तत्त्वज्ञान की शिक्षा पा ली। जानश्रुति ने इसे एक गाँव भी प्रदान किया था, जो महावृष देश में रैक्वपर्ण नाम से सुविख्यात हुआ (छां. उ. ४.३.१-२; स्कंद. ३.१.२६)।

तत्त्वज्ञान—रैक्व का कहना था कि, इंद्रद्युम्न के समान समस्त सृष्टि का आदिकारण एवं अदिदैवत वायु ही है, जिसमें सृष्टि की सारी वस्तुएँ विलीन होती है। इस प्रकार, अग्नि को बुझाने पर वह वायु में विलीन होता है; सूर्य एवं चंद्र अस्तंगत होने पर वे भी वायु में अंतर्धान होते हैं।

रैक्व का यह तत्त्वजान ग्रीक तत्त्वज्ञ ॲनॉक्झेमिनीज् के तत्त्वज्ञान से काफ़ी मिलता जुलता है, जिसके अनुसार वायु को समस्त सृष्टि का आदि एवं अन्त माना गया है। वायु के कारण सृष्टि की सारी वस्तुएँ विनष्ट कैसी हो जाती है, इसका स्पष्टीकरण रैक्व के द्वारा नहीं दिया गया है। किन्तु जिस प्राचीन काल में, अप एवं अग्नि को सृष्टि का आदि कारण माना जाता था, उस समय सृष्टि के अन्य वस्तुओं के समान, अप एवं अग्नि स्वयं वायु में ही विलीन होते हैं, यह क्रान्तिदर्शी तत्त्वज्ञान रैक्व के द्वारा प्रस्थापित किया गया।

पद्म में भी रैक्व का निर्देश प्राप्त है, जहाँ इसने जानश्रुति को गीता के छठवे अध्याय के पठन से मनःशान्ति प्राप्त करने का उपदेश प्रदान करने की कथा प्राप्त है (पद्म. उ. १७६)।

रैभ्य—एक आचार्य, जो पौतिमाष्यायण एवं कौण्डिन्यायन नामक आचार्यों का शिष्य था (बृ. उ. २.५. २०; ४.५.२६)। रेभ का वंशज होने से इसे यह नाम प्राप्त हुआ होगा।

२. एक ऋषि, जो विश्वामित्र ऋषि का पुत्र, एवं भरद्वाज मुनि का मित्र था (म. शां. ४९.४९)। महाभारत में अन्यत्र इसे अंगिरस् ऋषि का पुत्र कहा गया है।

इसे अर्वावसु एवं परावसु नामक दो पुत्र थे (म. व. १३५.१२-१३)। भरद्वाज ऋषि के पुत्र यवक्रीत के दुराचरण से क्रुद्ध हो कर इसने उसका वध किया, जिस पर भरद्वाज ऋषि ने इसे अपने ज्येष्ठ पुत्र के द्वारा वध होने का शाप दिया।

पश्चात् अपने पुत्र परावसु के द्वारा हिंस्र पशु के धोखे में इसका वध हुआ। किन्तु इसके द्वितीय पुत्र अर्वावसु ने अध्ययन से प्राप्त वेदमंत्रो से इसे पुनः जीवित किया (म. व. १३९.५-२३; स्कंद ३.१.३३; यवक्रीत देखिये)।

३. (सो. पुरूरवस्.) एक राजा, जो भागवत के अनुसार, सुमति राजा का पुत्र था।

४. ब्रह्मा के पुत्रों में से एक। एक बार यह वसु एवं अंगिरस् ऋषियों के साथ बृहस्पति के पास गया, एवं इसने मोक्षप्राप्ति के बारे में अनेकानेक प्रश्न किये। मोक्ष कर्म से नहीं, बल्कि ज्ञान से प्राप्त होता है, यह ज्ञान प्राप्त होने पर यह गया में तपश्चर्या करने लगा, जहाँ सनत्कुमारों से इसकी भेंट हुई थी (वराह. ७)।

एक बार इसकी तपस्या में बाधा डालने के लिये उर्वशी उपस्थित हुई, जिसे इसने विरूप होने का शाप दिया। पश्चात् उर्वशी के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर, इसने उसे योगिनी-कुंड में स्नान कर पूर्ववत् बनने का उःशाप दिया, जब से योगिनी-कुंड को 'उर्वशीकुंड' नाम प्राप्त हुआ (स्कंद २.८.७)।

५. एक मुनि, जो वीरण ऋषि का शिष्य था। वीरण से इसे सात्वत धर्म का उपदेश प्राप्त हुआ था, जो इसने अपने दिक्पाल कुक्षि नामक पुत्र को प्रदान किया था (म. शां. ३३६.१७)। पाठभेद-'रौच्य'।

६. रैवत मन्वंतर के भूतरजस् देवगणों में से एक।

रैवत—एक राजा, जो पंचम मन्वंतराधिप मनु माना जाता है। भागवत के अनुसार, यह प्रियव्रत राजा का पुत्र, एवं तामस राजा का भाई था। विष्णु में इसे प्रियव्रत राजा का वंशज कह कर, इसके माता एवं पिता के नाम क्रमशः रेवती एवं प्रमुच दिये गये हैं (विष्णु ३.१.२४; रेवती ४. देखिये)।

यह श्रेष्ठ धर्मवेत्ता था, एवं इसने बीजमंत्र का जप कर प्रजा की वर्णाश्रमधर्म के अनुसार पुनर्रचना की थी। मृत्यु के पश्चात् यह इंद्रलोक गया (दे. भा. १०-८)

२. एकादश रुद्रों में से एक (म. शां. २०३.१८-१९)

रैवत ककुद्मिन्—(सू. शर्याति.) एक राजा, जो शर्यातिवंशीय रेव राजा का पुत्र था (रेव देखिये)।

२. (सू. इ.) एक सुविख्यात धर्मप्रवृत्त इक्ष्वाकुवंशीय राजा। एक बार दक्षिण दिशा में स्थित मंदराचल में इसने गंधर्वों से सामगान सुना, जिस कारण इसके मन में विरक्ति उत्पन्न हो कर, यह राज्य छोड़ कर वन में चला गया (म. उ. १०७.९-१०)। अपने पूर्ववर्ती मरुत्त राजा से इसे दिव्य खड्ग की प्राप्ति हुई थी, जो इसने अपने वंशज युवनाश्व राजा को प्रदान किया था (म. शां. १६०.७६)।

रैवस—भृगुकुलोत्पन्न एक प्रवर।

रोचन—स्वारोचिष मन्वंतर का इंद्र, जो भागवत के अनुसार यज्ञ एवं दक्षिणा का पुत्र था।

२. तुषित देवों में से एक।

रोचना—वसुदेव की एक पत्नी, जो देवक राजा की कन्या थी। इसके हेम एवं हेमांगद नामक दो पुत्र थे (भा. ९.२४.४५)।

२. विदर्भराज रुक्मिन् की पौत्री, जो कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध की पत्नी थी। इसका विवाह भोजकटपुर में संपन्न हुआ था (भा. १०.६५)।

रोचनामुख—एक दैत्य, जो गरुड के द्वारा मारा गया था (म. उ. १०३.१२)।

रोचमान—एक राजा, जो अश्वग्रीव नामक असुर के अंश से उत्पन्न हुआ था (म. आ. ६१.१८)। महाभारत में प्राप्त निर्देशों से यह पांचालदेशीय, अथवा चेदिदेशीय प्रतीत होता है। इसके पुत्र का नाम हेमवर्ण था (म. द्रो. २२.५७)।

यह द्रौपदी के स्वयंवर में उपस्थित था (म. आ. १७७.१०)। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के समय, भीम ने अपने पश्चिम दिग्विजय में इसे जीता था (म. स. २६.८)।

भारतीय युद्ध में यह पांडवों के पक्ष में शामिल था (म. उ. १६९)। इसके अश्व तारकाओं से अंकित अंतरिक्ष के समान चितकबरे वर्ण के थे (म. द्रो. २२.४०)। यह अत्यंत पराक्रमी महारथी था, जिसका कर्ण के द्वारा वध हुआ था (म. क. ४०.५१)।

२. उरगा देश का एक राजा, जिसे अर्जुन ने अपने उत्तरदिग्विजय में जीता था (म. स. २४.१८)।

३. (सो. वसु.) एक राजा, जो मत्स्य के अनुसार वसुदेव एवं उपदेवी का पुत्र था।

४. (सू. शर्याति.) एक शर्यातिवंशीय राजा, जो आनर्त राजा का पुत्र था।

५. एक राजद्वय, जो भारतीय युद्ध में द्रोण के द्वारा मारा गया (म. द्रो. ४.७१)।

६. विश्वेदेवों में से एक।

रोचमाना—स्कंद की अनुचरी एक मातृका (म. श. ४५.२८)।

रोचिष्मत्—स्वारोचिष मनु के पुत्रों में से एक।

रोधक—पिशाचयोनि में प्रविष्ट हुये पापी लोगों का एक समूह, जिसमें निम्नलिखित लोग शामिल थे :—पर्युषित, सूचक (सूचिमुख), शीघ्रग, (शीघ्रक), रोधक (रोहक), वाग्दुष्ट, विदैवत, एवं नित्यवाचक।

इनमें से प्रथम पाँच लोगों का पृथु नामक वेदवेत्ता ब्राह्मण के नीतिपर उपदेश से उद्धार हुआ (पद्म. सृ. ३२)। पद्म में अन्यत्र मुनिशर्मा नामक ब्राह्मण के द्वारा वैशाख स्नान का उपदेश दिये जाने से, इन लोगों का उद्धार होने की कथा प्राप्त है (पद्म. पा. ९४)।

रोमक—एक लोकसमूह, जो युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में उपहार ले कर उपस्थित हुआ था (म. स. ४७.१५ पाठ.)।

रोमपाद—(सो. अनु.) अंगदेश का एक सुविख्यात राजा, जो धर्मरथ (बृहद्रथ) राजा का पुत्र था। इसे लोमपाद, चित्ररथ, एवं दशरथ आदि नामांतर प्राप्त थे (ह. वं. १.३१.४६)।

यह अयोध्या के दशरथ राजा का परम स्नेही था (म. ११३.१७)। इसे चतुरंग नामक पुत्र था। इसकी शान्ता नामक कन्या का विवाह ऋष्यशृंग ऋषि से इसने कराया था (म. व. ११३, ११; शां. २२६.३५; अनु. १३८.२५)।

२. (सो. क्रोष्टु.) एक राजा, जो विदर्भराज के तीन पुत्रों में से कनिष्ठ था।

रोमशा—एक वैदिक सूक्तद्रष्ट्री, जो भावयव्य राजा की पत्नी थी (ऋ. १.१२६.७; बृहद्दे. ३.१५६)। ऋग्वेद के इसी सूक्त में 'रोमशा-भावयव्य संवाद' प्राप्त है, जिससे प्रतीत होता है कि, रोमशा इसका वास्तव नाम न हो कर, केवल 'बालवाली' इस अर्थ से विशेषण के रूप में इसके लिये प्रयुक्त किया गया है।

रोमहर्षण 'सूत'—एक सूतकुलोत्पन्न मुनि, जो समस्त पुराणग्रंथों का आद्य कथनकर्ता माना जाता है।

पुराणों में प्राप्त परंपरा के अनुसार, यह कृष्ण द्वैपायन व्यास के पाँच शिष्यों में से एक था। समस्त वेदों की चार शाखाओं में पुनर्रचना करने के पश्चात्, व्यास ने तत्कालीन समाज में प्राप्त, कथा, आख्यायिका, एवं गीत (गाथा) एकत्रित कर, आद्य पुराणग्रंथों की रचना की, जो उसने सूतकुल में उत्पन्न हुए रोमहर्षण को सिखाई। रोमहर्षण ने इसी पुराणग्रन्थ के आधार पर आद्य पुराण-संहिता की रचना की, एवं यह पुराणों का आद्य कथन-कर्ता बन गया। भांडरकर संहिता में इसके नाम के लिए 'लोमहर्षण' पाठभेद प्राप्त है (म. आ. १.१)।

पुराण ग्रन्थों में इसका निर्देश कई बार केवल 'सूत' नाम से ही प्राप्त है, जो वास्तव में इसका व्यक्तिगत नाम न हो कर, जातिवाचक नाम था।

कुलवृत्तान्त—पुराणों में प्राप्त जानकारी के अनुसार, सूतकुल में उत्पन्न लोग प्राचीनकाल से ही देव, ऋषि, राजा आदि के चरित्र एवं वंशावलि का कथन एवं गायन का काम करते थे, जो कथा, आख्यायिका, गीत आदि में समाविष्ट थी। इसी प्राचीन लोकसाहित्य को एकत्रित कर, व्यास ने अपने आद्य पुराण ग्रंथ की रचना की।

रोमहर्षण स्वयं सूतकुल में ही उत्पन्न हुआ था, एवं इसका पिता क्षत्रिय तथा माता ब्राह्मणकन्या थी। इसे रोमहर्षण अथवा लोमहर्षण नाम प्राप्त होने का कारण भी इसकी अमोघ वक्तृत्वशक्ति ही थी—

लोमानि हर्षयांचक्रे, श्रोतॄणां यत् सुभाषितैः।
कर्मणा प्रथितस्तेन लोकेऽस्मिन् लोमहर्षणः॥

(वायु. १.१६)।

(अपने अमोघ वक्तृत्वशैली के बल पर, यह लोगों को इतना मंत्रमुग्ध कर लेता था कि, लोग रोमांचित हो उठते थे, इसीलिए इसे लोमहर्षण वा रोमहर्षण नाम प्राप्त हुआ)

पुराणों की निर्मिती—व्यास के द्वारा संपूर्ण इतिहास, एवं पुराणों का ज्ञान इसे प्राप्त हुआ, एवं यह समाज में 'पुराणिक' (म. आ. १.१); 'पौराणिकोत्तम' (वायु. १.१५; लिंग. १.७१; ९९); 'पुराणज्ञ' आदि उपाधियों से विभूषित किया गया था। व्यास के द्वारा प्राप्त हुआ पुराणों का ज्ञान इसने अच्छी प्रकार संवर्धित किया, एवं इन्हीं ग्रन्थों का प्रसार समाज में करने का काम प्रारंभ किया (भा. १.४.२२; विष्णु. ३.४.१०; वायु. ६०.१६; पद्म. सृ. १; अग्नि. २७१; ब्रह्मांड २. ३४; कूर्म. १.५२)।

शिष्यपरंपरा—व्यास के द्वारा प्राप्त आद्य पुराण ग्रंथों की इसने छः पुराणसंहिताएँ बनायीं, एवं उन्हें अपने निम्नलिखित शिष्यों में बाँट दी:-१. आत्रेय सुमति; २. काश्यप अकृतवर्ण; भारद्वाज अग्निवर्चस् ४. वासिष्ठ मित्रयु; ५. सावर्णि सोमदत्ति; ६. शांशपायन सुशर्मन् (ब्रह्मांड. २.३५.६३-७०; वायु. ६१.५५-६२)। इनमें से काश्यप, सावर्णि एवं शांशपायन ने आद्य पुराणसंहिता से तीन स्वतंत्र संहिताएँ बनायी जो, उन्हींके नाम से प्रसिद्ध हुयीं। इस प्रकार रोमहर्षण की स्वयं की एक संहिता, एवं इसके उपर्युक्त तीन शिष्यों की तीन संहिताएँ इन चार संहिताओं को 'मूलसंहिता' सामूहिक नाम प्राप्त हुआ। इन संहिताओं में से प्रत्येक संहिता निम्न-लिखित चार पादों (भागों) में विभाजित थी:-प्रक्रिया, अनुषंग, उपोद्घात एवं उपसंहार। इन सारी संहिताओं का पाठ एक ही था, जिनमें विभेद केवल उच्चारों का ही था। शांशपायन की संहिता के अतिरिक्त बाकी सारे संहिताओं की श्लोकसंख्या प्रत्येकी चार हजार थी।

पुराणों का निर्माण—इन संहिताओं का मूलसंस्करण आज उपलब्ध नही है। फिर भी आज उपलब्ध वायु, ब्रह्मांड जैसे प्राचीन पुराणों में रोमहर्षण, सावर्णि, काश्यपेय, शांशपायन आदि का निर्देश इन पुराणों के निवेदक के नाते प्राप्त है। इन आचार्यों का निर्देश पुराणों में जहाँ आता है, वह भाग आद्य पुराणसंहिताओं के उपलब्ध अवशेष कहे जा सकते हैं।

उपलब्ध पुराणों में से चार पादों में विभाजित ब्रह्मांड एवं वायु ये दो ही पुराण आज उपलब्ध हैं। उदाहरणार्थ वायु पुराण का विभाजन इस प्रकार है:—प्रथम पाद,—अ. १—६; द्वितीय पाद,—अ. ७—६४; तृतीय पाद,—अ. ६५—९९; चतुर्थ पाद,—अ. १००—११२। अन्य पुराणों में आद्य पुराण संहिता का यह विभाजन अप्राप्य है।

रोमहर्षण के छः शिष्यों में से पाँच आचार्य ब्राह्मण थे, जिस कारण पुराणकथन की सूतजाति में चलती आयी परंपरा नष्ट हो गई, एवं यह सारी विद्या ब्राह्मणों के हाथों में चली गई। इसी कारण उत्तरकालीन इतिहास में उत्पन्न हुए बहुत सारे पुराणज्ञ एवं पौराणिक ब्राह्मण जाति के प्रतीत होते हैं। इस प्रकार वैदिक साहित्यज्ञ

ब्राह्मण, एवं पुराणज्ञ ब्राह्मण ऐसी दो शाखाएँ ब्राह्मणों में निर्माण हुयीं गयीं।

इसके पुत्र का नाम उग्रश्रवस् था, जिसे इसने व्यास के द्वारा विरचित 'आदि पुराण' की शिक्षा प्रदान की थी (व्यास, एवं सौति देखिये)। कई अभ्यासकों के अनुसार, आदि पुराण का केवल आरंभ ही व्यास के द्वारा किया गया था, जो ग्रंथ बाद में रोमहर्षण तथा इसके शिष्यों के द्वारा पूरा किया गया।

युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के समय, यह अपने पुत्र उग्रश्रवस् के साथ उपस्थित था, एवं इसने उसे पुराणों का कथन किया था (म. स. ४.१०)।

उत्तरकालीन पुराण ग्रंथों में इसका एवं इसके पुत्र उग्रश्रवस् का नामनिर्देश क्रमशः 'महामुनि' एवं 'जगद्गुरु' नाम से प्राप्त है (विष्णु. ३.४.१०; पद्म. उ. २१९.१४-२१)।

पुराण-कथन—एक बार नैमिषारण्य में दृषद्वती नदी के तट पर एक द्वादशवर्षीय सत्र का आयोजन किया गया। शौनक आदि ऋषि इस सत्र के नियंता थे, एवं नैमिषारण्य के साठ हज़ार ऋषि इस सत्र में उपस्थित थे। एवं शौनक आदि ऋषियों ने व्यास के प्रमुख शिष्य के नाते रोमहर्षण को इस सत्र के लिए अत्यंत आदर से निमंत्रण दिया, एवं इसका काफ़ी गौरव किया (वायु. ८.२. ब्रह्मांड १.३३. नारद. १.१)।

इस सत्र में शौनक आदि ऋषियों के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर रोमहर्षण ने साठ हज़ार ऋषियों के उपस्थिति में निम्नलिखित पुराणों का कथन किया:—१. ब्रह्मपुराण (ब्रह्म. १); २. वायुपुराण (वायु. १. १९). ३. ब्रह्मांडपुराण (ब्रह्मांड. १.१.१७); ४. ब्रह्मवैवर्त-पुराण (ब्रह्मवै. १.१-३८); ५. गरुडपुराण (गरुड. १.१); ६. नारदपुराण (नारद. १. १-२); ७. भागवतपुराण (भा. १.३-११) इत्यादि।

मृत्यु—इस प्रकार दस पुराणों का कथन समाप्त कर, यह ग्यारहवें पुराण का कथन कर ही रहा था कि, इतने में सत्रमंडप में बलराम का आगमन हुआ। उसे आता हुआ देख कर, सत्र में भाग लेने बाकी सारे ऋषियों ने उसे उत्थापन दिया। किन्तु व्रतस्थ होने के कारण, यह उत्थापन न दे सका। फिर क्रोध में आ कर बलराम ने इसका वध किया (बलराम देखिये)। इसकी मृत्यु के पश्चात्, पुराणकथन का इसका कार्य इसके पुत्र उग्रश्रवस् ने आगे चलाया। अपने मृत्यु के पूर्व, इसने साढ़ेदस पुराणों का कथन किया था, बाकी बचे हुए साडेसात पुराणों के कथन का कार्य इसके पुत्र उग्रश्रवस् ने पूरा किया।

मृत्युतिथि—पद्म में इसका वध किये जाने की तिथि आषाढ शुक्ल १२ बताई गई है (पद्म. उ. १९८)। इस दिन के इसी दुःखद स्मृति के कारण, हरएक द्वादशी के दिन आज भी पुराणकथन का कार्यक्रम बंद रक्खा जाता है।

महाभारत में प्राप्त कालनिर्देश से बलराम भारतीय युद्ध के समय तीर्थयात्रा करने निकल पड़ा था, उसी समय सूत का द्वादशवर्षीय सत्र चल रहा था। इससे प्रतीत होता है कि, भारतीय युद्ध, नैमिषारण्य का द्वादशवर्षीय सत्र, एवं रोमहर्षण का पुराणकथन एक ही वर्ष में संपन्न हुये थे। यह जानकारी विभिन्न पुराणों में प्राप्त उनके रचनाकाल से काफ़ी विभिन्न प्रतीत होती है। पुराणों में प्राप्त जानकारी के अनुसार, प्रमुख पुराणों की रचना निम्नलिखित राजाओं के राज्यकाल में हुयीं थीः—१. वायुपुराण-पूरुराजा असीमकृष्ण; २. ब्रह्मांड पुराण—इक्ष्वाकुवंशीय राजा दिवाकर; ३. मत्स्यपुराण-मगधदेश का राजा सेनजित् (व्यास देखिये)।

ग्रंथ—इसके नाम पर निम्नलिखित ग्रंथ उपलब्ध हैं:—

१. सूतसंहिता—रोमहर्षण के द्वारा लिखित सूत संहिता स्कंद पुराण का ही एक भाग मानी जाती हैं। स्कंद पुराण की कुल छः संहिताओं की रचना की गई थी, जिनके नाम निम्न थेः-१. सनत्कुमार; २. सूत; ३. शांकरी; ४. वैष्णवी; ५. ब्राह्मी; ६. सौरी। इन छः संहिताओं में मिल कर कुल पचास खण्ड थे।

इनमें से सूत के द्वारा लिखित 'सूतसंहिता', आनंदाश्रम पूना के द्वारा प्रकाशित हो चुकी है, जो निम्नलिखित खण्डों में विभाजित हैः—१. शिवमाहात्म्यखण्ड; २. ज्ञानयोगखण्ड; ३. मुक्तिखण्ड; ४. यज्ञवैभवखण्ड; (अधोभाग एवं उपरिभाग)।

इस ग्रंथ में शैवसांप्रदायान्तर्गत अद्वैत तत्वज्ञान का प्रतिपादन किया गया है। इस ग्रंथ पर माधवाचार्य के द्वारा लिखित एक टीका प्राप्त है। सूत के द्वारा लिखित 'ब्रह्मगीता' एवं 'सूतगीता' नामक दो ग्रंथ भी सूत संहिता में समाविष्ट हैं।

२. ब्रह्मगीता—उपनिषदों के अर्थ का विवरण करनेवाला यह ग्रंथ सूतसंहिता के यज्ञवैभवकाण्ड में समाविष्ट है। इस

ग्रंथ के कुल बारह अध्याय है, एवं उसमें शैवसांप्रदाय के तत्त्वों का प्रतिपादन किया गया है।

३. **सूतगीता**--सूत-व्याससंवादात्मक यह ग्रंथ सूत संहिता के यज्ञवैभवकाण्ड में अंतर्भूत है। इस ग्रंथ के कुल आठ अध्याय हैं, एवं उसमें शैवसांप्रदाय के मतों का प्रतिपादन किया गया है। इस ग्रंथ पर भी माधवाचार्य की टीका उपलब्ध है।

सूतजाति की उत्पत्ति—जैसे पहले ही कहा गया है, रोमहर्षण का निर्देश अनेकानेक प्राचीन ग्रंथों में 'सूत' नाम से प्राप्त है, जो वास्तव में इसके जाति का नाम था। इस जाति के उत्पत्ति के संबंध में एक कथा वायु में प्राप्त है। पृथु वैन्य राजा के द्वारा किये गये यज्ञ में, यज्ञीय ऋत्विजों के हाथों एक दोषार्ह कृति हो गई। सोम निकालने के लिए नियुक्त किये गये दिन (सुत्या), ऐन्द्र हविर्भाव में बृहस्पति का हविर्भाग गलती से एकत्र किया गया, एवं उसे इंद्र को अर्पण किया गया। इस प्रकार, शिष्य इंद्र के हविर्भाग में गुरु बृहस्पति का हविर्भाग संमिश्र करने के दोषार्ह कर्म के कारण, मिश्रजाति के सूत लोगों की उत्पत्ति हो गई।

क्षत्रिय पिता एवं ब्राह्मण माता से उत्पन्न संतान को प्रायः 'सूत' कहते थे। किंन्तु कौटिलीय अर्थशास्त्र में मिश्रजाति के सूत लोग सूतवंशीय लोगों से अलग बताये गये हैं। पुराणों में इन लोगों के कर्तव्य निम्नप्रकार बतायें गयें है—

स्वधर्म एवं सूतस्य सद्भिर्दृष्टः पुरातनैः।
देवतानामृषीणां च राज्ञां चामिततेजसाम्॥
वंशानां धारणं कार्यं श्रुतानां च महात्मनाम्।
इतिहासपुराणेषु दिष्टा ये ब्रह्मवादिभिः॥
(वायु. १.२६-२८; पद्म. सृ. २८)।

(देवता, ऋषि एवं राजाओं में से श्रेष्ठ व्यक्तियों के वंशावलि को इतिहास, एवं पुराण में ग्रथित एवं संरक्षित करना, यह सूत लोगों का प्रमुख कर्तव्य है)।

किन्तु सूतों का यह कर्तव्य उच्च श्रेणि के सूतों के लिए ही कहा गया है। इनमें से मध्यम श्रेणि के लोग क्षात्रकर्म करते थे, एवं नीच श्रेणि के लोग रथ, हाथी एवं अश्व का सारथ्यकर्म करते थे। इसी कारण इन लोगों को रथकार नामान्तर भी प्राप्त था।

इन तीनो श्रेणियों के सूतवंशीय लोग प्राचीन इतिहास में दिखाई देते है। उनमें से रोमहर्षण एवं इसका पुत्र उग्रश्रवस् उच्चश्रेणि के सूत प्रतीत होते हैं। कीचक, कर्ण आदि राजाओं को भी महाभारत में सूतपुत्र कहा गया है। किन्तु वहाँ उनके सूत जाति पर नहीं, बल्कि उनके हीन जन्म की ओर संकेत प्रतीत होता है।

वैदिक साहित्य में राजकर्मचारी के नाते सूतों (रथपालों) का निर्देश प्राप्त है (पं. ब्रा. १९.१.४; का. सं. १५.४)। भाष्यकार इसमें राजा के सारथि एवं अश्वपालक का आशय देखते हैं। एग्लिंग के अनुसार, ये लोग चारण एवं राजकवि थे। महाभारत में भी सूतों का निर्देश राजकीय अग्रदूत एवं चारण के रूप में आता है।

यजुर्वेद संहिता में इनके लिए 'अहन्ति' (वा. सं. १६.१८); अथवा 'अहन्त्य' (तै. सं. ४.५.२.१) शब्द प्रयुक्त किया गया है, जो एक साथ ही चारण एवं अग्रदूत के इनके कर्तव्य की ओर संकेत करता है। राजसेवकों में इनकी श्रेणि महिषी एवं ग्रामणी इन दोने के बीच मानी जाती थी (श. ब्रा. ५.३.१.५)।

जैमिनि अश्वमेध में सूत जाति का निर्देश सेवक जातियों में किया गया है, एवं सूत, मागध एवं बन्दिन् लोग क्रमशः प्राचीन, मृत, एवं वर्तमान राजाओं के इतिहास एवं वंशावलि सम्हालने का काम करते थे, ऐसा निर्देश प्राप्त है (जै. अ. ५५.४४.१)।

इससे प्रतीत होता है कि, मुगल बादशहाओं के बखरनवीस जिस प्रकार का काम करते थे, वही काम प्राचीन काल में सूत लोगों पर निर्भर था। इनके समवर्ती मागध एवं बन्दिन् लोग राजा के स्तुतिपाठक का काम ही केवल करते थे, जिस कारण वे सूत लोगों से काफी कनिष्ठ माने जाते थे। सूत एवं मागध लोगों का देश पुराणों में क्रमशः अनूप एवं मगध बताया गया है। पद्म में पृथु वैन्य राजा के द्वारा सूत, मागध, बन्दिन् एवं चारण लोगों को कलिंग देश दान में देने का निर्देश प्राप्त है (पद्म. भू. २९.)।

पद्म के अनुसार, सूत लोगों को वेदों का अधिकार प्राप्त था, एवं इनके आचारविचार भी ब्राह्मण जाति जैसे थें। मागध लोगों को वेदों का अधिकार प्राप्त न था, जो उनकी कनिष्ठता दर्शाता है।

परिवार—इसके पुत्र का नाम उग्रश्रवस् था, जिसे रोमहर्षणपुत्र, रोमहर्षणि, एवं सौति आदि नामांतर भी प्राप्त थे (म. आ. १.१-५; सौति देखिये)।

रोहक—रोधक नामक पिशाचयोनि समूह में रहनेवाला एक पिशाच (रोधक देखिये)।

रोहिणी--चन्द्रमा की पत्नी, जो दक्ष प्रजापति की सत्ताईस कन्याओं में से एक थी। यह रूपयौवन में अपनी अन्य बहनों की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ थी, जिस कारण यह अपने पति की हृदयवल्लभा थी। इस कारण, इसकी बहने इससे नाराज हुयीं, एवं इसके पिता दक्ष ने भी चन्द्रमा को क्षयरोगी बनने का शाप दिया (म. श. ३४.५५)। इसी प्रकार की कथा शिवपुराण में भी प्राप्त है (शिव. कोटि. १४)।

एक नक्षत्र के रूप में इसे आकाश में अक्षय्यस्थान प्राप्त हुआ था, जो इसके द्वारा किये गये गौरीव्रत का फल था (भवि. ब्राह्म. २१)।

परिवार--इसे बुध नामक एक पुत्र, एवं सुरूपा, हंसकाली, भद्रा एवं कामदुघा नामक चार कन्याएँ थीं।

२. वसुदेव की एक पत्नी, जो बलराम की माता थी (म. मौ. ८.१८; भा. २४.४५; पद्म. सृ. १३)। बलराम का गर्भ पहले देवकी के उदर में था, जो योगमाया के कारण इसके उदर में प्रविष्ट हुआ। उस समय यह गोकुल में रहती थी (भा. १०.५-७; वसुदेव देखिये)।

कृष्णनिर्याण के पश्चात् इसने अग्निप्रवेश कर देहत्याग किया (ब्रह्म. २१२.४)। बलराम के अतिरिक्त, इसे एकानंगा नामक एक कन्या एवं रोहिताश्व नामक पुत्र उत्पन्न हुए थे।

३. कृष्ण की पत्नियों में से एक।

४. एल गाय जो कश्यप एवं सुरभि की कन्याओं में से एक थी। इसकी विमला एवं अनला नामक दो कन्याएँ थी, जिनसे आगे चल कर सृष्टि के गाय एवं वृषभों का वंश उत्पन्न हुआ (म. आ. ६०.६५)।

५. हिरण्यकशिपु की पत्नी, जो भानु नामक अग्नि की कन्या थी। इसकी माता का नाम निशा था, जो भानु अग्नि की तृतीय पत्नी थी। यह 'स्विष्टकृत' मानी गयी है, जिस अशुभ कर्म के कारण यह हिरण्यकशिपु की पत्नी हो गई।

रोहित--(सू.इ.) एक सुविख्यात इक्ष्वाकुवंशीय राजा, जो हरिश्चन्द्र राजा का पुत्र था। विष्णु एवं मार्कंडेय में इसे रोहिताश्व, एवं रोहितास्य कहा गया है (मार्क २.७-९)। इसकी माता का नाम तारामती था।

शुनःशेपाख्यान--ऐतरेय ब्राह्मण में प्राप्त शुनःशेप संबंधी सुविख्यात कथा में इसका निर्देश प्राप्त है (ऐ. ब्रा.७.१४; सां. श्रौ. १५.१८.८)। हरिश्चन्द्र का यह पुत्र वरुण देवता की कृपा से उत्पन्न हुआ था। इस कृपा का बदला चुकाने के लिए, इसे बलि के रूप में प्रदान करने का आश्वासन हरिश्चन्द्र ने वरुण देवता को दिया था। अपत्यवात्सल्य के कारण, हरिश्चन्द्र अपना यह आश्वासन बाईस वर्षों तक पूरा न कर सका।

अपने पिता के आश्वासन का रहस्य ज्ञान होते ही, उससे छुटकारा पाने के लिये यह अरण्य में भाग गया। किन्तु वरुण को यह ज्ञात होते ही, उसने इसके पिता हरिश्चन्द्र के उदर में रोग उत्पन्न किया, जिसकी वार्ता सुनते ही यह अयोध्या लौट आया। किन्तु इसके पुरोहित देवराज वसिष्ठ ने इसे पुनः एकबार विजनवासी होने की सलाह दी।

इस प्रकार बाईस वर्ष बीत जाने के बाद, इसे भार्गव वंश के अजीगर्त ऋषि का मँझला पुत्र शुनःशेप आ मिला, जो सौ गायों के मोल में इसके बदले वरुण को बलि जाने लिये तैयार हुआ। तत्पश्चात् हुए यज्ञ में विश्वामित्र ने शुनःशेप की यज्ञस्तंभ से मुक्तता की, एवं उसे अपना पुत्र मान लिया (शुनःशेप देखिये; भा. ९.७.७-२५; ब्रह्म १०४)।

विश्वामित्र की दक्षिणा की पूर्ति करने के लिए, हरिश्चन्द्र ने इसे काशी नगरी के वृद्ध ब्राह्मण को बेचा था। विश्वामित्र के द्वारा ली गई सत्वपरीक्षा में, इसे सर्पदंश हो कर यह मृत भी हुआ था, किन्तु पश्चात् देवताओं की कृपा से यह पुनः जीवित हुआ।

हरिश्चन्द्र के पश्चात् यह अयोध्या का राजा हुआ, जहाँ इसने रोहितपुर नामक दुर्गयुक्त नगरी की स्थापना की। वहाँ इसने काफ़ी वर्षों तक राज्य किया। अंत में विरक्ति प्राप्त होने पर इसने रोहितपुर नगरी एक ब्राह्मण को दान में दी, एवं यह स्वर्लोक चला गया।

परिवार--इसकी पत्नी का नाम चंद्रवती था, जिससे इसे हरित नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था (ह. वं. १.१३)।

२. लोहित ऋषि का नामांतर (विश्वामित्र देखिये)।

रोहितक--लोहितक देश का यवन राजा, जिसे कर्ण ने अपने दक्षिण दिग्विजय में जीता था (म. व. परि. १. क्र. २४. पंक्ति ६७)

रोहिताश्व--(सो. वसु.) वसुदेव का रोहिणी से उत्पन्न पुत्र।

२. हरिश्चन्द्रपुत्र रोहित राजा का नामान्तर।

रोहितास्य--हरिश्चन्द्र पुत्र रोहित राजा का नामान्तर।

रोहीतक--एक लोकसमूह, जिसे नकुल ने अपने राजसूययज्ञीय पश्चिम दिग्विजय के समय जीता था (म.

स. २९.४)। इसको आजकल 'रोहतक' (पंजाब) कहते है।

रौक्मायण (णि)--एक ब्रह्मर्षि, जो भृगुकुल का गोत्रकार था (भृगु. ३. देखिये)।

रौक्मिणेय--एक राजा, जो द्रौपदी के स्वयंवर में उपस्थित था (म. आ. १७७.१६)।

रौक्षक--विश्वामित्रकुलोत्पन्न एक ऋषि।

रौच्य--एक राजा, जो रौच्य नामक मन्वंतर का अधिपति था। यह रुचि राजा का पुत्र था, एवं इसकी माता का नाम मालिनी था (मार्के. ९५.७) इसे देवसावर्णि नामांतर भी प्राप्त था (ब्रह्मवै. २.५४. ६४; भा. ८.१३)।

रौद्र--शुक्राचार्य के चार पुत्रों में से एक

२. कैलास एवं मंदर पर रहनेवाला एक राक्षससमूह। उत्तरखंड की यात्रा के समय, इससे सावधान रहने के लिए लोमश ऋषि ने युधिष्ठिर को कहा था।

रौद्रकर्मन्--(सो. कुरु.) धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों में से एक। भीम ने इसका वध किया था (म. द्रो. १०२.९६)।

रौद्रकेतु--अंगदेश का एक ब्राह्मण, जिसकी पत्नी का नाम शारदा, एवं पुत्रों का नाम नरांतक एवं देवांतक थे।

रौद्राश्व--(सो. पुरूरवस्.) एक राजा, जो पूरु राजा का पुत्र था। इसकी माता का नाम पौष्टी था। इसके प्रवीर एवं ईश्वर नामक दो भाई थे।

इसे मिश्रकेशी नामक अप्सरा से ऋचेयु, अन्वग्भानु, आदि दस महाधनुर्धर पुत्र उत्पन्न हुए थे (म. आ. ८९.९-१०; ८७३)। वायु आदि पुराणों में घृताची नामक अप्सरा इसकी पत्नी बताई गयी है (वायु ९९.११९; ह. वं. १.३१; मत्स्य ४९.४; भा. ९.२०५)।

२. (सो. पुरूरवस्.) एक राजा, जो वायु के अनुसार संजाति राजा का, एवं भागवत एवं विष्णु के अनुसार अहंयाति राजा का पुत्र था।

३. एक ऋषि, जो कात्यायन ऋषि का शिष्य था। एक सुंदर स्त्री का रूप धारण कर, महिषासुर इसके तप में बाधा डालने के लिये उपस्थित हुआ, जब इसने उसे नारी के ही द्वारा ही वध होनेका शाप दिया (कालि. ६२)।

रौपसेवकि--कश्यपकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

रौम्य--शिवगणों का एक दल, जिसे शिव के मानसपुत्र वीरभद्र ने अपने रोमकूपों से उत्पन्न किया था (म. शां. परि. १.२८.८१-८२)।

रौरालय--शैलालय नामक वसिष्ठकुलोत्पन्न गोत्रकार का नामांतर।

रौरुकि--एक आचार्य, जो 'रौरुकि ब्राह्मण' नामक ग्रंथ का रचयिता माना जाता है।

रौहिम--विश्वामित्रकुलोत्पन्न एक ऋषि।

२. एक दानव, जो इंद्र का शत्रु था (ऋ. १.१०३.२; २.१२.१२; अ. वे. २०.१२८.१३)।

रौहिण वासिष्ठ--एक ऋषि, जो वसिष्ठ का वंशज था (तै. आ. १.१२.५)। रोहिणी नक्षत्र में उत्पन्न होने के कारण, इसे 'रौहिण' उपाधि प्राप्त हुई होगी।

रौहिणायन--एक आचार्य, जो शौनक ऋषि का शिष्य था (श. ब्रा. १४.७.३.२६)।

२. प्रियव्रत नामक आचार्य का पैतृक नाम (श. ब्रा. १०.३.५.१४)। 'रौहिण' का वंशज होने से, उसे यह पैतृकनाम प्राप्त हुआ होगा।

रौहिण्यायनि--अंगिराकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

रौहित्यायनि--भृगुकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

रौहिदश्व--वसुमनस् नामक आचार्य का पैतृक नाम।

ल

लकुलिन्--एक शिवावतार, जो वाराहकल्प के वैवस्वत मन्वंतर के अठ्ठाईस वें युगचक्र में उत्पन्न हुआ था। वायु के अनुसार शिव (महेश्वर) का यह अवतार, कृष्ण द्वैपायन व्यास, एवं वासुदेव कृष्ण का समकालीन था (वायु २३.)। यह अवतार हाथ में डंडा (लकुट, लगुड, अथवा लकुल) धारण कर अवतीर्ण हुआ, जिस कारण इसे लकुलिन् नाम प्राप्त हुआ।

स्मशान में डाले गए एक प्रेत के शरीर में योगमाया

से प्रविष्ट हो कर, यह कायावतार अथवा कायावरोहण नामक तीर्थ में अवतीर्ण हुआ। इसके कुशिक, गर्ग, मित्र, एवं कौरुष्य नामक चार शिष्य थे, जो जाति से ब्राह्मण, वेदवेत्ता, एवं ऊर्ध्वरेतस् थे (शिव. शत. ५)। इसके इन शिष्यों ने पाशुपत नामक शिवोपासना की प्रतिष्ठापना की।

उदयपुर के उत्तर में १४ मैल पर स्थित नाथ-द्वार मंदीर में ई. स. ९७१ एक शिलालेख प्राप्त है, जहाँ भृगु ऋषि के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर लकुलिन् नामक शिवावतार भृगुकच्छ गांव में अवतीर्ण होने का निर्देश प्राप्त है। ई. स. १२९६ के 'चित्रप्रशस्ति' नामक शिलालेख में 'भट्टारक श्रीलकुलीश' नामक शिवावतार लाट देश में कारोहण नामक ग्राम में निवास करने का निर्देश प्राप्त है। मैसूर राज्य में हेमावती ग्राम में प्राप्त ई. स. ९४३ के अन्य एक शिलालेख में लकुलिन् के द्वारा मुनिनाथ चिल्लुक नाम से पुनः अवतार लेने का निर्देश प्राप्त है (डॉ. भांडारकर, वैष्णविजम, पृ. १६६)।

डॉ. भांडारकरजी के अनुसार, लकुलिन् एक जीवित व्यक्ति था, जिसने पाशुपत नामक आद्य शैव संप्रदाय की स्थापना की। इसके वासुदेव कृष्ण का समकालीन होने के पुराणों में प्राप्त निर्देशों से प्रतीत होता है कि, पाशुपत संप्रदाय स्थापन करने की प्रेरणा इसे पांचरात्र नामक वैष्णव संप्रदाय से प्राप्त हुई थी। इसी कारण, इसका काल ई. पू. २ री शताब्दी माना जाता है (रुद्र-शिव देखिये)।

लक्षणा—लक्ष्मणा नामक अप्सरा का नामान्तर।

२. दुष्यन्त राजा की पत्नी लक्ष्मणा का नामान्तर (म. आ. ८९.८७७*; लक्ष्मणा देखिये)।

३. कृष्ण की पत्नी लक्ष्मणा का नामान्तर (लक्ष्मणा माद्री देखिये)।

लक्ष्मण—(सो. कुरु.) दुर्योधन का एक पुत्र (म. उ. १६३.१४)। यह महारथि था, एवं कौरवसेना में इसकी श्रेणी 'रथसत्तम' थी।

भारतीय युद्ध में अभिमन्यु के साथ हुए युद्ध में यह परास्त हुआ था (म. भी. ५१.८–११; ६९.३०–३६)। अन्त में अभिमन्यु के द्वारा ही इसका वध हुआ था (म. द्रो. ४५. १७)। वध के पूर्व, निम्नलिखित योद्धाओं के साथ युद्ध कर इसने काफ़ी पराक्रम दिखाया थाः— क्षत्रदेव (म. द्रो. १३.४४); अंबष्ठ (म. क. ४.२६*); शिखंडिपुत्र क्षत्रदेव (म. क. ४.७७)।

२. अंगिरस्कुलोत्पन्न एक मंत्रकार।

लक्ष्मण दाशरथि—राम दाशरथि राजा का कनिष्ठ बन्धु, जो अयोध्या के दशरथ राजा को सुमित्रा से उत्पन्न दो पुत्रों में से ज्येष्ठ पुत्र था। इसके कनिष्ठ बन्धु का नाम शत्रुघ्न था। किन्तु इसकी विशेष आत्मीयता अपने ज्येष्ठ सापत्न बन्धु राम दाशरथि की ओर ही थी, जैसे इसके छोटे बन्धु शत्रुघ्न की सारी आत्मीयता भरत की ओर थी। इसी कारण राम एवं लक्ष्मण, तथा भरत एवं शत्रुघ्न का स्नेहभाव प्राचीन भारतीय इतिहास में बन्धुप्रेम एवं बन्धुनिष्ठा का एक उच्चतम प्रतीक बन गया है।

अपने ज्येष्ठ भाई राम के सुख एवं रक्षा के लिए तत्पर रहनेवाले एक आदर्श कनिष्ठ बन्धु के रूप में, लक्ष्मण का चरित्रचित्रण वाल्मीकिरामायण में किया गया है। इस ग्रंथ में वर्णित लक्ष्मण वृद्धों की सेवा करनेवाला, समर्थ, एवं मितभाषी है। अपने सौम्य स्वभाव, पवित्र आचरण, एवं सत्कार्यदक्षता के कारण, यह राम को अत्यंत प्रिय था (वा. रा. सुं. ३८.५९–६१)।

नाम—इसके लक्ष्मण नाम की निरुक्ति वाल्मीकि रामायण में प्राप्त है। यह लक्ष्मी का वर्धन करनेवाला (लक्ष्मीवर्धन), अथवा लक्ष्मी से युक्त (लक्ष्मीसंपन्न) होने के कारण, वसिष्ठ के द्वारा इसका नाम लक्ष्मण रक्खा गया (वा.रा.बा. १८.२८; ३०)। यह शुभलक्षणी होने के कारण, इसे लक्ष्मण नाम प्राप्त होने की कथा भी कई पुराणों में प्राप्त है (पद्म. उ. २६९)। किन्तु इसके नाम की ये सारी निरुक्तियाँ कल्पनारम्य प्रतीत होती है।

बाल्यकाल—दशरथ राजा के पुत्रकामेष्टि यज्ञ से जो पायस कौसल्या को प्राप्त हुआ था, उसी पायस के अंश से लक्ष्मण का जन्म हुआ था (अ. रा. बा. ३.४२)। इस कारण, लक्ष्मण बाल्यकाल से ही राम पर अत्यधिक प्रेम करता था। बाल्यकाल में राम जब मृगया खेलने जाता था, तब लक्ष्मण धनुष ले कर इसके साथ जाता था, एवं उसकी रक्षा करता था। सुबाहु एवं मारीच राक्षसों को परास्त कर, विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करने के लिए यह भी राम के साथ गया था। इस कार्य मे यशस्विता प्राप्त करने के पश्चात्, यह भी राम के साथ मिथिला नगरी में सीता स्वयंवर के लिये उपस्थित हुआ था।

वहाँ राम एवं सीता के विवाहमंडप में, इसका विवाह सीरध्वज जनक की कन्या उर्मिला से संपन्न हुआ (वा. रा. बा. ६७-७३; राम दाशरथि देखिये)।

वनगमन के पूर्व-- अपने पिता की वचनपूर्ति के लिए राम ने चौदह वर्षों का वनवास स्वीकार लिया। अपने पिता के द्वारा ही राम को वनगमन का आदेश दिया गया है, यह सुन कर लक्ष्मण दशरथ से अत्यंत क्रुद्ध हुआ, एवं इसने उसकी अत्यंत कटु आलोचना की। यहीं नहीं, राम को अयोध्या के सिंहासन पर बिठाने के लिए, यह अपने पिता, भाई आदि लोगों का वध करने के लिए भी सिद्ध हुआ।

किंतु राम वनवास जाने के अपने निश्चय पर अटल रहा। फिर राम के साथ वनवास जाने का अपना निश्चय प्रकट करते हुए, इसने अपनी माता सुमित्रा से कहा--

अनुरक्तोऽस्मि भावेन भ्रातरं देवि तत्त्वतः।
सत्येन धनुषा चैव दत्तेनेष्टेन ते शपे॥
दीप्तमग्निमरण्यं वा यदि राम प्रवेक्ष्यति।
प्रविष्टं तत्र मां देवि त्वं पूर्वमवधारय॥
(वा. रा. अयो. २१.१६-१७)।

(राम में मेरी भक्तिपूर्ण सच्ची प्रीति है। सत्य से, धनुष से, दान से, तथा इष्ट से तेरी शपथ खाता हूँ कि, जलती हुई अग्नि में वा वन में यदि राम जायेंगे, तो तुम मुझे उनके पहले गया समझना)।

राम को पिता की आज्ञा में तत्पर देख, लक्ष्मण ने राम के साथ वनवास में जाना अपना कर्तव्य मान लिया, एवं यह वनगमन के लिए सिद्ध हुआ। राम के साथ वन जाने का हठ करते हुए इसने कहा--

धनुरादाय सशरं खनित्रपिटकाधरः।
अग्रतस्ते गमिष्यामि पन्थानमनुदर्शयन्॥
(वा. रा. अयो. ३१.२५)।

(धनुष धारण कर, एवं हाथ में कुदाली तथा फावडा लिए, मैं आप लोगों का मार्ग प्रशस्त करने के लिए आगे रहूँगा)।

इसने राम से आगे कहा, 'वन में, तुम्हारे लिए कंद, मूल, फल, एवं तपस्वियों को देने के लिए होम के आवश्यक पदार्थ मैं तुम्हे ला कर दूँगा। जाग्रत तथा निद्रित अवस्था में मैं सदैव तुम्हारी ही सेवा करता रहूँगा' (वा. रा. अयो. ३१.२६-२७)।

वनवास--वनवास के पहले दिन के अन्त में, राम ने इसे पुनः एकबार वनवास न आने की प्रार्थना की। किन्तु इसने कहा, 'तुम्हारे वियोग में मुझे एक दिन भी रहना असंभव है; पानी के बिना मछली एक पल भर भी नहीं रह सकती है, वैसी ही मेरी अवस्था होगी (वा. रा. अयो. ५३.३१)।

वन में विचरते समय, सीता के आगे राम, एवं पीछे लक्ष्मण इस क्रम से ये चलते थे (वा. रा. अयो. ५२. ९४-९६)। यह हर प्रकार राम की सेवा करता था। यह नदियों पर लकडी के सेतु बाँध कर दूर स्थित नदी से पानी लाता था। राम की चित्रकूट एवं पंचवटी में स्थित पर्णशाला इसने ही बाँधी थी। (वा. रा. अयो. ९९. १०)। राम जब बाहर जाता था, तब यह सीता-संरक्षण के लिए उसके साथ रहता था।

सीताहरण--जनस्थान में स्थित पंचवटी प्रदेश में राक्षसों का प्राबल्य देख कर, इसने राक्षससंग्राम करने से राम को पुनः पुनः मना किया था। आगे चल कर, राम की आज्ञा से इसने शूर्पणखा राक्षसी के नाक काट कर उसे विरूप कर दिया (वा. रा. अर. १८)। इसी कारण, क्रुद्ध हो कर, रावण ने मायामृग की सहाय्यता से सीता हरण करने के लिए जनस्थान में प्रवेश किया। मायामृग के संबंध में लक्ष्मण ने राम को पुनः पुनः चेतावनी दी, किन्तु राम ने इसकी एक न सुनी।

मायामृग के पीछे राम के चले जाने पर, यह सीता के संरक्षण के लिए पर्णकुटी में ही बैठा रहा। किन्तु सीता ने इसे राम के पीछे न जाने के कारण, इसकी कटु आलोचना की, जिस कारण विवश हो कर सीता को छोड़ कर इसे राम के पीछे जाना पड़ा। यही अवसर पा कर रावण ने सीता का हरण किया (राम दाशरथि देखिये)।

राम से सांत्वना--सीताहरण का वृत्त सुन कर, राम क्रुद्ध हो कर त्रैलोक्य को दग्ध करने के लिए तैयार हुआ। उस समय इसने राम को सांत्वना दी एवं कहा--

सुमहान्त्यपि भूतानि देवाश्च पुरुषर्षभ।
न दैवस्य प्रमुञ्चन्ति सर्वभूतानि देहिनः॥
(वा. रा. अर. ६६. ११)।

(इस सृष्टि के सारे श्रेष्ठ लोग एवं साक्षात् देव भी दैवजात दुःखों से छुटकारा नहीं पा सकते। इसी कारण इन दुःखों से कष्टी नहीं होना चाहिए)।

सीता की खोज--सीता की खोज में क्रमशः जटायु, अयोमुखी, कबंध एवं शबरी आदि से मिल कर यह, राम

के साथ पंपासरोवर के किनारे पहुँच गया। वहाँ पहुँचते ही सीता के विरह में शोक करनेवाले राम को इसने अति स्नेह के दुष्परिणाम समझाते हुए कहा, 'इस सृष्टि में प्रिय व्यक्तियों का विरह अटल है, यह जान कर तुम्हें अपने मन को काबू में रखना आवश्यक है (वा. रा. कि. १.१६)।

ऋष्यमूक पर्वत पर रहनेवाले सुग्रीव आदि वानरों ने, सीता के द्वारा अपने उत्तरीय में बाँध कर फेंके गयें अलंकार इन्हें दिखायें। इस समय इसने सीता के समस्त अलंकारों से केवल उसके नूपुर ही पहचान लिये, एवं कहा—

नाहं जानामि केयूरे, नाहं जानामि कुण्डले।
नूपुरे त्वभिजानामि, नित्यं पादाभिवन्दनात्॥
(वा. रा. कि. ६.२२)

(मैं सीता के बाहुभूषण या कुण्डल नहीं पहचान सकता। किन्तु उसके नित्यपादवंदन के कारण, उसके केवल नूपुर ही पहचान सकता हूँ।)

राम-रावण-युद्ध—राम-रावण युद्ध में राम का युद्ध-निपुण सलाहगार एवं मंत्री का कार्य यह निभाता रहा। युद्ध के शुरू में ही रावणपुत्र इंद्रजित् ने राम एवं लक्ष्मण को नागपाश में बाँध लिया, एवं इन्हें मूर्च्छित अवस्था में युद्धभूमि में छोड़ कर वह चला गया (वा. रा. यु. ४२-४६)। बाद में होश में आने पर, राम ने लक्ष्मण को मूर्च्छित देख कर, एवं इसे मृत समझ कर अत्यधिक विलाप करते हुए कहा,—

शक्या सीतासमा नारी मर्त्यलोके विचिन्वता।
न लक्ष्मणसमो भ्राता सचिवः सांपरायिकः॥
(वा. रा. यु. ४९.६)

(इस मृत्युलोक में सीता के समान स्त्री दैववशात् मिलना संभव है। किन्तु मंत्री के समान कार्य करनेवाला, एवं युद्ध में निपुण लक्ष्मण जैसा भाई मिलना असंभव है)।

पश्चात् गरुड के आने पर राम एवं लक्ष्मण नागपाश से विमुक्त हो कर, युद्ध के लिए पुनः सिद्ध हुयें।

इंद्रजितवध—रावण के पुत्र इंद्रजित् के साथ राम एवं लक्ष्मण ने छः बार युद्ध किया। इनमें से पहलें तीन बार इंद्रजित् के द्वारा अदृश्य युद्ध किये गयें। चौथें युद्ध के पूर्व इंद्रजित् ने इस युद्ध में अजेय बनने के लिए यज्ञ प्रारंभ किया। किन्तु उस यज्ञ में बाधा डालने के लिए लक्ष्मण ने हनुमत्, अंगद आदि वानरों को साथ लें कर इंद्रजित् के सेना का संहार किया। उस समय अपना यज्ञ अधुरा छोड़ कर, वह लक्ष्मण के साथ द्वंद्वयुद्ध करने के लिए युद्धभूमि में प्रविष्ट हुआ। इंद्रजित् के इस पंचम युद्ध में, लक्ष्मण ने उसके सारथि का वध किया, एवं उसे पैदल ही लंका को भाग जाने पर विवश किया।

इन्द्रजित् के साथ हुए अंतिम छठे युद्ध में, लक्ष्मण ने एक वटवृक्ष के नीचे ऐंद्र अस्त्र से उस का वध किया, जिस समय वह निकुंभिला के मंदिर से होम समाप्त कर बाहर निकल रहा था (वा. रा. यु. ८५-८७; म. व. २७३.१६-२६)। इंद्रजित् का वध करना अत्यधिक कठिन था। किन्तु बिभीषण की सहायता से, इंद्रजित्का अनुष्ठान पूर्ण होने के पूर्व ही उसका वध करने में यह यशस्वी हुआ। इंद्रजित् की मृत्यु से राम-रावण युद्ध का सारा रंग ही बदल गया।

इंद्रजित् को ब्रह्मा से यह वरदान प्राप्त था कि, वह उसी व्यक्ति के द्वारा ही मर सकता है, जो बारह वर्ष तक आहार निद्रा लिये बगैर रहा हो। अयोध्यात्याग के उपरान्त वनवास के बारह वर्षों में, लक्ष्मण आहार-निद्रारहित अवस्था में रहा था, जिस कारण यह इंद्रजित् का वध कर सका (आ. रा. सार. ११)। इंद्रजित् के वध के पश्चात्, लक्ष्मण ने उसका दाहिना हाथ काट कर उसके घर की ओर फेंक दिया, एवं बाया हाथ रावण की ओर फेंक दिया। पश्चात् इसके द्वारा काटा गया इंद्रजित् का सर इसने राम को दिखाया (आ. रा. १.११.१९०-१९८)।

राक्षससंहार—इंद्रजित् के अतिरिक्त लक्ष्मण ने निम्नलिखित राक्षसों का भी वध किया था:—विरूपाक्ष (वा. रा. यु. ४३); अतिकाय (वा. रा. यु. ६९-७१)। महाभारत के अनुसार कुंभकर्ण का वध भी लक्ष्मण के द्वारा हुआ था (म. व. २७१.१७; स्कंद. सेतुमहात्म्य. ४४)। किन्तु वाल्मीकिरामायण के अनुसार, कुंभकर्ण का वध राम के द्वारा ही हुआ था।

रावण से युद्ध—इंद्रजित् के पश्चात, रावण स्वयं युद्धभूमि में उतरा, जिस समय लक्ष्मण ने बिभीषण के साथ उसका सामना किया। इस युद्ध में रावण ने बिभीषण की ओर एक शक्ति फेंकी, जिसे लक्ष्मण ने छिन्नविच्छिन्न कर दिया। पश्चात् रावण के द्वारा फेंकी गयी अमोघा शक्ति इसके छाती में लगी, जिससे यह मूर्च्छित हुआ। राम ने लक्ष्मण के छाती में घुसी हुई उस शक्ति को निकाल दिया, एवं

सुषेण तथा हनुमत् के साहाय्य से यह पुनः स्वस्थ हुआ (वा. रा. यु. १०२)।

सीतात्याग—राम को अयोध्या का राज्य पुनः प्राप्त होने पर, उसने लोकनिंदा के कारण, सीता का त्याग करने का निश्चय किया। उस समय, राजा के नाते उसका कर्तव्य बताते समय लक्ष्मण ने कहा, 'सृष्टि का यही नियम है कि, यहाँ संयोग का अन्त वियोग में, एवं जीवन का अन्त मृत्यु में होता है। पत्नी, पुत्र, मित्र एवं संपत्ति में अधिक आसक्ति रखने से दुःख ही दुःख उत्पन्न होता है। इसी कारण वियोग से उत्पन्न होनेवाले दुःख से भी कर्तव्य अधिक श्रेष्ठ है।

मृत्यु—लक्ष्मण के देहत्याग के संबंध में अनेक कथा वाल्मीकि रामायण में प्राप्त हैं। एक बार कालपुरुष एक तपस्वी के रूप में राम के पास आया, एवं उसने राम से यह प्रतिज्ञा करा ली कि, वह उससे एकान्त में बात-चित करेगा, जहाँ अन्य कोई व्यक्ति न हो। तब राम ने लक्ष्मण को द्वार पर खड़ा किया, एवं आज्ञा दी कि जो व्यक्ति अंदर आयेगा उसका वध किया जायेगा (वा. रा. उ. १०३.१३)।

एकान्त में कालपुरुष ने राम को ब्रह्मा का संदेश विदित किया कि, रामावतार की समाप्ति समीप आ रही है। इतने में दुर्वासस् ऋषि लक्ष्मण के पास आयें। उन्होंने राम से उसी समय मिलने की इच्छा की, एवं कहा, 'अगर मेरी यह इच्छा पूर्ण न होगी, तो राम, उसके तीन बन्धु एवं उनकी संतति को मैं शाप से नष्ट कर दूँगा'। लक्ष्मण ने वंशनाश की अपेक्षा अपना ही नाश स्वीकरणीय समझा, एवं दुर्वासस् को राम के पास जाने के लिए अनुज्ञा दी। पश्चात् राम ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार, लक्ष्मण को देहत्याग करने की आज्ञा दी (वा. रा. उ. १०६.१३)।

इस पर लक्ष्मण ने सरयू नदी के तट पर जा कर, एवं योगमार्ग से श्वास का निरोध कर देहत्याग किया (वा. रा. उ. १०६)। इसकी मृत्यु के पश्चात् स्वयं इंद्र ने इसका शरीर स्वर्ग में ले लिया, एवं वहाँ उपस्थित देवताओं ने इसे विष्णु का चतुर्थांश मान कर इसकी पूजा की (वा. रा. उ. १०३-१०६)। इसने जहाँ देहत्याग किया, वहाँ 'सहस्रधारा' नामक तीर्थ का निर्माण हुआ (स्कंद. २.८.२)।

हिमालय की तराई में हृषिकेश नामक स्थान में एक मंदिर है, जहाँ लक्ष्मण-झूला नामक एक पूल है। इस स्थान के संबंध में एक कल्पनारम्य कथा प्राप्त है। लक्ष्मण स्वयं शेषनाग का अवतार था, एवं रावणपुत्र इंद्रजित् की पत्नी सुलोचना शेषनाग की ही कन्या थी। इस कारण, एक दृष्टि से इंद्रजित् इसका दामात होता था। राम-रावण युद्ध में अपने दामात इंद्रजित् का वध करने का जो पाप इसे लगा, उसके निष्कृति के लिए इसने हृषिकेश में एक हज़ार वर्षों तक वायुभक्षण कर के तप किया। लक्ष्मण के इस तपश्चर्या के स्थान में ही इसका यह मंदिर बनवाए जाने की लोकश्रुति प्राप्त है।

परिवार—अपनी उर्मिला नामक पत्नी से इसे अंगद एवं चंद्रकेतु नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए (वा. रा. उ. १०२; राम दाशरथि देखिये)।

चरित्र-चित्रण—लक्ष्मण परमक्रोधी, शूरवीर था, एवं राम के प्रति अटूट भक्तिभावना रखता था। इसका क्रोधी स्वभाव दर्शानेवाले अनेक प्रसंग वाल्मीकिरामायण में प्राप्त हैं, जिनमें निम्नलिखित तीन प्रमुख हैं:—

(१) **दशरथ की आलोचना**—राम के वनगमन के संबंध में अपने पिता दशरथ की आज्ञा सुन कर इसने दशरथ राजा की अत्यंत कटु आलोचना की।

(२) **भरत से भेंट**—राम के वनवासकाल में, भरत जब उससे मिलने आया, तब उसे शत्रु समझ कर, यह उससे युद्ध करने के लिए प्रवृत्त हुआ।

(३) **सुग्रीव की आलोचना**—वालिवध के पश्चात्, राम को दी गयी अपनी आन भूल कर सुग्रीव विलास आदि में निमग्न हुआ। उस समय लक्ष्मण ने राम का संदेश सुना कर उसकी अत्यन्त कटु आलोचना की, एवं यह सुग्रीव का वध करने के लिए प्रवृत्त हुआ। किन्तु सुग्रीवपत्नी तारा ने इसका राग शान्त किया। इन सारे प्रसंगों से लक्ष्मण के क्रोधीस्वभाव पर काफ़ी प्रकाश पड़ता है। किन्तु इसकी क्रोधभावना अन्याय के प्रतिकार के लिए अथवा राम की रक्षा के लिए ही प्रकट होती थी।

मानस में—तुलसी के 'रामचरित मानस' में लक्ष्मण राम का अभिन्न संगी है। इस कारण लक्ष्मण का चरित्र राम से किसी प्रकार भिन्न नही है। इसके हृदय में भक्ति, ज्ञान एवं कर्मयोग की त्रिवेणी प्रवाहित होती हुई प्रतीत होती है—

बंदउँ लछिमन पद जल जाता, सीतल सुभग सुखदाता।
रघुपति कीरति विमल पताका, दंड समान भयउ जस राका॥

(मानस. बा. १६.५-६)।

तुलसीद्वारा चित्रित लक्ष्मण एक तेजःपुंज वीर है। वह स्वभाव से उग्र एवं असहिष्णु ज़रूर है, किन्तु इसका क्रोध राम के प्रति इसके अनन्य सेवाव्रत एवं उत्कट अनुराग से प्रेरित है। इसी कारण इसका असहिष्णु स्वभाव मोहक लगता है।

लक्ष्मणा—एक अप्सरा, जो कश्यप एवं मुनि की कन्या थी। अर्जुन के जन्मोत्सव में इसने नृत्य किया था (म. आ. ११४.५१)। पाठभेद–'लक्षणा'।

२. दुर्योधन की एक कन्या, जिसके स्वयंवर में श्रीकृष्ण पुत्र सांब ने इसका हरण किया था (भा. १०.६८.१; बलराम एवं सांब देखिये)।

३. दुष्यन्त राजा की प्रथम पत्नी (म. आ. ८९. ८७७*)। इसे लाक्षी नामान्तर भी प्राप्त था। इसके पुत्र का नाम जनमेजय था।

लक्ष्मणा-माद्री—मद्र देश के बृहत्सेन राजा की कन्या, जो कृष्ण के पटरानियों में से एक थी (पद्म. सृ. १३)। इसे लक्षणा नामान्तर भी प्राप्त था (म. स परि. १. क्र. २१. पंक्ति. १२५५–१२५६)।

स्वयंवर—द्रौपदीस्वयंवर के भाँति इसके स्वयंवर की भी रचना की गई थी। इसके स्वयंवर की शर्त थी कि, उपर टँगी मछली की छाया नीचे रखे जलपात्र में देख कर जो शरसंधान करेगा, उसीके साथ इसका विवाह होगा।

लक्ष्मणा के स्वयंवर में श्रीकृष्ण के अतिरिक्त जरासंघ, अंबष्ठ, शिशुपाल, भीम, दुर्योधन, कर्ण, अर्जुन आदि महाधनुर्धर उपस्थित थे। किन्तु उनमें से कोई भी वीर मत्स्यभेद में सफल न हुए। अर्जुन का बाण भी मत्स्य-संधान न कर सका, एवं मत्स्य को स्पर्श करता हुआ उपर से निकल गया। अन्त में मत्स्य का भेद कर, कृष्ण ने इसका हरण किया, एवं इसे अपनी आठ पटरानियों में एक स्थान दिया।

परिवार—इसे निम्नलिखित दस पुत्र थे:– प्रघोष, गात्रवत्, सिंह, बल, प्रबल, ऊर्ध्वग, महाशक्ति, सह, ओज एवं अपराजित (भा. १०.५८.५७; ६१.१५)।

लक्ष्मण्य—ध्वन्य नामक आचार्य का पैतृक नाम (ऋ. ५.३३.१०)।

लक्ष्मी—समुद्र से प्रकट हुई एक देवी, जो भगवान् विष्णु की पत्नी मानी जाती है।

ऐश्वर्य का प्रतीकरूप देवता मान कर, ऋग्वेदिक श्रीसूक्त में इसका वर्णन किया गया है। समृद्धि, संपत्ति, आयुरारोग्य पुत्रपौत्रादि परिवार, धनधान्यविपुलता आदि की प्राप्ति के लिए लक्ष्मी एवं श्री की उपासना की जाती है। इसी कारण श्रीसूक्त में प्रार्थना की गयी है—

यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम् ॥ २ ॥

(सुवर्ण, गायें, अश्व एवं चाकरनौकर आदि परिवार से युक्त लक्ष्मी मुझे प्राप्त हो)।

धनधान्यादि भौतिक संपत्ति (धनलक्ष्मी) ही नही, बल्कि सैन्यसंपत्ति (सैन्यलक्ष्मी) का भी लक्ष्मी में ही समावेश किया जाता था—

अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रबोधिनीम्।
श्रियं देवीमुपह्वये श्रीर्मा देवी जुषताम् ॥ ३ ॥

(अश्व, रथ, हाथी आदि से सुसज्जित सैन्य का रूप धारण करनेवाली लक्ष्मी मुझे प्राप्त हो, एवं उसका निवास चिरंतन मेरे घर में ही हो)।

लक्ष्मीदेवता की उत्क्रांति—ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले 'लक्ष्मी' देवता की कल्पना अथर्ववेदकालीन है। उस ग्रंथ में अनेक 'भावानात्मक' देवताओं का निर्देश प्राप्त है, जिनकी उपासना से प्रेम, विद्या, बुद्धि, वाक्चातुर्य आदि इच्छित सिद्धिओं का लाभ प्राप्त होता है। अथर्ववेद में निर्दिष्ट ऐसी देवताओं में काम (प्रेमदेवता), सरस्वती (विद्या), मेधा (बुद्धि), वाक् (वाणी) आदि देवता प्रमुख हैं, जिनमें ऐश्वर्य प्रदान करनेवाली लक्ष्मी देवता का प्रमुखता से निर्देश किया गया है।

स्वरूपवर्णन—श्रीसूक्त में लक्ष्मी का स्वरूपवर्णन प्राप्त है, जहाँ इसे हिरण्यवर्णा, पद्मस्थिता, पद्मवर्णा, पद्ममालिनी, पुष्करिणी, आदि स्वरूपवर्णनात्मक विशेषण प्रयुक्त किये गये हैं। वाल्मीकि रामायण में प्राप्त इसके स्वरूपवर्णन में, इसे शुभ्रवस्त्रधारिणी, तरुणी, मुकुटधारिणी, कुंचितकेशा, चतुर्हस्ता, सुवर्णकान्ति, मणिमुक्तादिभूषिता कहा गया है (वा. रा. बा. ४५)। पुराणों में वर्णित लक्ष्मी कमलासना, कमलहस्ता, एवं कमलमालाधरिणी है। ऐरावतों के द्वारा सुवर्णपात्र में लाये हुए तीर्थजल से यह स्नान (सुस्नात) करती है, एवं सदैव विष्णु के वक्षःस्थल में रहती है (विष्णु. १.९.९८–१०५)।

निवासस्थान—लक्ष्मी क्षीरसागर में अपने पति श्रीविष्णु के साथ रहती है, एवं अपने अन्य एक अवतार राधा के रूप में कृष्ण के साथ गोलोक में रहती है (राधा देखिये)।

महाभारत में लक्ष्मी के 'विष्णुपत्नी लक्ष्मी' एवं 'राज्य-लक्ष्मी' ऐसे दो प्रकार बताये गये हैं। इनमें से लक्ष्मी हमेशा विष्णु के पास रहती है, एवं राज्यलक्ष्मी राजा एवं पराक्रमी लोगों के साथ घूमती है, ऐसा निर्देश प्राप्त है।

लक्ष्मी का निवासस्थान कहाँ रहता है, इसका रूपकात्मक दिग्दर्शन करनेवाली अनेकानेक कथाएँ महाभारत एवं पुराणों में प्राप्त हैं, जिनमें निम्नलिखित कथाएँ प्रमुख हैं:—

(१) **लक्ष्मी-प्रल्हादसंवाद**—असुरराज प्रल्हाद ने एक ब्राह्मण को अपना शील प्रदान किया, जिस कारण क्रमानुसार उसका तेज, धर्म सत्य, वृत्त, बल एवं अंत में उसकी लक्ष्मी उसे छोड़ कर चले गयें। तत्पश्चात् लक्ष्मी ने प्रल्हाद को साक्षात् दर्शन दे कर उपदेश दिया, 'तेज़, धर्म, सत्य, वृत्त, बल एवं शील आदि मानवी गुणों में मेरा निवास रहता है, जिन में से शील अथवा चारित्र्य मुझे सबसे अधिक प्रिय है। इसी कारण सच्छील आदमी के यहाँ रहना मैं सबसे अधिक पसंद करती हूँ। 'शीलं परं भूषणम्, इस उक्ति का भी यही अर्थ है' (म. शां. १२४.४५-६०)।

(२) **लक्ष्मी-इंद्रसंवाद**—असुरराज प्रह्लाद के समान, उसका पौत्र बलि का भी लक्ष्मी ने त्याग किया। बलि का त्याग करने की कारणपरंपरा इंद्र से बताते समय लक्ष्मी ने कहा, 'पृथ्वी के सारे निवासस्थानों में से भूमि, (वित्त) जल (तीर्थादि), अग्नि (यज्ञादि) एवं विद्या (ज्ञान) ये चार स्थान मुझे अत्यधिक प्रिय हैं। सत्य, दान, व्रत, तपस्या, पराक्रम, एवं धर्म जहाँ वास करते हैं, वहाँ मेरा भी निवास रहता है। देवब्राह्मणों से नम्रता के साथ व्यवहार करनेवाला मनुष्य मुझे अत्यधिक प्रिय है'।

लक्ष्मी ने आगे कहा, 'चोरी, वासना, अपवित्रता, एवं अशांति से मैं अत्यधिक घृणा करती हूँ, जिनके आधिक्य के कारण क्रमशः भूमि, जल, अग्नि, एवं विद्या में स्थित मेरे प्रिय निवासस्थानों का मैं त्याग कर देती हूँ।

'बलि दैत्य ने उच्छिष्टभक्षण किया, एवं देवब्राह्मणों का विरोध किया, जिस कारण वह मेरा अत्यंत प्रिय व्यक्ति हो कर भी, आज मैं उसका त्याग कर रही हूँ' (म. शां. २१)।

(३) **लक्ष्मी-रुक्मिणीसंवाद**—लक्ष्मी के निवासस्थान से संबंधित एक प्रश्न युधिष्ठिर ने भीष्म से पूछा था, जिसका जवाब देते समय भीष्म ने लक्ष्मी एवं रुक्मिणी के दरम्यान हुए एक संवाद की जानकारी युधिष्ठिर को दी (म. अनु. ११)।

इस जानकारी के अनुसार, लक्ष्मी ने रुक्मिणी से कहा था, 'सृष्टि के सारे लोगों में प्रगल्भ, भाषणकुशल, दक्ष, निरलस, आस्तिक, अक्रोधन, कृतज्ञ, जितेंद्रिय, वृद्धजनों की सेवा करनेवाले (वृद्धसेवक), सत्यनिष्ठ, शांत स्वभाववाले (शांत), एवं सदाचारी लोग मुझे सब से अधिक प्रिय हैं, जिनके यहाँ रहना मैं विशेष पसंद करती हूँ।

'निर्लज्ज, कलहप्रिय, निंद्राप्रिय, मलीन, अशांत, एवं असमाधानी लोगों का मैं अतीव तिरस्कार करती हूँ, जिस कारण ऐसे लोगों का मैं त्याग करती हूँ'।

महाभारत में अन्यत्र प्राप्त जानकारी के अनुसार, गायें एवं गोबर में भी लक्ष्मी का निवास रहता है (म. अनु. ८२)।

जन्म—देवासुरों के द्वारा किये गये समुद्रमंथन से, चंद्र के पश्चात् लक्ष्मी का अवतार हुआ (म.आ. १६.३४; विष्णु. १.८.५; भा. ८.८.८; पद्म. सृ. ४)। इस 'अयोनिज' देवता को ब्रह्मा ने श्रीविष्णु को प्रदान किया, एवं विष्णु ने इसे पत्नी के रूप में स्वीकार किया। पश्चात् यह उसके सन्निध क्षीरसागर में निवास करने लगी।

ब्रह्मन् के पुत्र भृगु ऋषि की कन्या के रूप में लक्ष्मी पृथ्वीलोक में पुनः अवतीर्ण हुई। इस समय, दक्षकन्या ख्याति इसकी माता थी (विष्णु. १.८)। कालोपरान्त इसका विवाह विष्णु के एक अवतार नारायण से हुआ, जिससे इसे बल एवं उन्माद नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए।

ब्रह्मवैवर्त के अनुसार, विष्णु के दक्षिणांग से लक्ष्मी का, एवं वामांग से लक्ष्मी के ही अन्य एक अवतार राधा का जन्म हुआ (ब्रह्मवै. २.४७.४४)।

भृगु से वरदान—विष्णु के वक्षस्थल में लक्ष्मी का निवासस्थान कैसे हुआ, इस संबंध में एक रूपकात्मक कथा पुराणों में प्राप्त है।

स्वायंभुव मनु के यज्ञ के समय, ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीन देवों में से श्रेष्ठ कौन, इसका निर्णय करने का कार्य भृगु ऋषि पर सौंपा गया। इस संबंध में जाँच लेने के लिए तीनों देवों के पास भृगु स्वयं गया। उस समय, ब्रह्मा एवं शिव ने भृगु का बूरी प्रकार से अपमान किया। केवल विष्णु ने ही भृगु का उचित आदरसत्कार किया, एवं भृगु के द्वारा छाती पर किया गया लत्ताप्रहार

भी शांति से स्वीकार कर, उसे 'श्रीवत्सलांछन' के रूप में अपने वक्षःस्थल पर धारण किया (भा. १०.८९. १-१२)। इस कारण, भृगु अत्यधिक प्रसन्न हुआ, एवं उसके द्वारा दिये गये 'श्रीवत्सलांछन' के रूप में लक्ष्मी हमेशा के लिए श्रीविष्णु के वक्षःस्थल पर निवास करने लगी।

ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि देवों से भी भृगु जैसे ब्राह्मण अधिक श्रेष्ठ हैं, एवं पृथ्वी के लक्ष्मी के जनक भी वे ही है, ऐसा उपर्युक्त रूपकात्मक कथा का अर्थ प्रतीत होता है। साक्षात् श्रीविष्णु को लक्ष्मी प्रदान करनेवाले भृगु ऋषि की इस कथा से ही, ब्राह्मणों की सेवा पूजन आदि से लक्ष्मी प्राप्त होती है, यह जनश्रुति का जन्म हुआ होगा।

भृगु का शाप--एक बार लक्ष्मी ने लक्ष्मीनगर नामक नगर का निर्माण कर, जो इसने अपने पिता भृगु ऋषि को प्रदान किया। कालोपरांत इसने भृगु से वह नगर लौट लेना चाहा, किंतु उसने एक बार प्राप्त हुआ नगर लौट देने से इन्कार कर दिया। इसी संबंध में मध्यस्थता करने के लिए आये हुए श्रीविष्णु की भी भृगु ने एक न सुनी, एवं क्रुद्ध हो कर उसे शाप दिया, 'पृथ्वी पर दस मानवी अवतार लेने पर तुम विवश होंगे' (पद्म.सृ. ४)।

भृगु ऋषि के उपर्युक्त शाप के अनुसार, विष्णु ने पृथ्वी पर दस अवतार लियें, जिन समय लक्ष्मी ने पत्नी-धर्म के अनुसार दस अवतार ले कर श्रीविष्णु को साथ दिया।

लक्ष्मी के अवतार--लक्ष्मी के इन दस अवतारों में निम्नलिखित अवतार प्रमुख है:--१. कमलोद्भव लक्ष्मी (वामनावतार); २. भूमि (परशुरामवातार); सीता (रामावतार); ४. रुक्मिणी (कृष्णावतार) (विष्णु. १.९. १४०-१४१; भा. ५.१८.१५; ८.८.८)।

ब्रह्मवैवर्त में लक्ष्मी के अवतार विभिन्न प्रकार से दिये गयें हैं। वहाँ निर्दिष्ट लक्ष्मी के अवतार, एवं उनके प्रकट होने के स्थान निम्नप्रकार हैं:--१. महालक्ष्मी (वैकुंठ) २. स्वर्गलक्ष्मी (स्वर्ग); ३. राधा (गोलोक); ४. राजलक्ष्मी (पाताल, भूलोक); ५. गृहलक्ष्मी (गृह); ६. सुरभि (गोलोक); ७. दक्षिणा (यज्ञ); ८. शोभा (वस्तुमात्र) (ब्रह्मवै. २. ३५)। महालक्ष्मी के अवतार में, भृगुऋषि के शाप के कारण, इसे हाथी का शीर्ष प्राप्त हुआ था, जिसे काट कर ब्रह्मा ने इसे महालक्ष्मी नाम प्रदान किया था (स्कंद. ६.८५)।

पद्म में गोकुल की भानु ग्वाले की कन्या राधा को भी लक्ष्मी का ही अवतार कहा गया है। राधा जन्म से ही अंधी, गुंगी एवं लूली थी, किंतु उसे लक्ष्मी का अवतार जान कर, नारद ने उसका दर्शन लिया था (पद्म. पा. ७१)।

लक्ष्मी के दोष--ब्रह्म में लक्ष्मी एवं दारिद्रता (अलक्ष्मी) के दरम्यान हुआ एक कल्पनारम्य संवाद प्राप्त है, जो गोदावरी नदी के तट पर स्थित लक्ष्मीतीर्थ का माहात्म्य बताने के लिए दिया गया है (ब्रह्म. १३७)। इस संवाद में लक्ष्मी की अत्यंत कठोर शब्दों में निर्भर्त्सना की गई है।

एक बार लक्ष्मी एवं अलक्ष्मी के दरम्यान श्रेष्ठ कौन इस संबंध में संवाद हुआ था। इस समय लक्ष्मी ने अपना श्रेष्ठत्व बताते हुए कहा, 'मैं जिसके साथ रहूँ, उसका इस संसार में सर्वत्र सत्कार होता है, एवं मेरे अनुपस्थिति में निर्धन एवं याचक लोगों की सर्वत्र अवहेलना होती है। इस दुर्गति से शिव जैसा देवाधिदेव भी न बच सका, जिस कारण उसकी सर्वत्र उपेक्षा एवं अवहेलना हुई'।

इस पर लक्ष्मी के दोष बताते हुए अलक्ष्मी ने कहा, 'तुम सदैव पापी, विश्वासघाती, एवं दुराचारी लोगों में रहती हो, तथा मद्य से भी अधिक अनर्थ पैदा करती हो। राजाश्रित, पापी, खल, निष्ठुर, लोभी एवं कायर लोगों के घर तुम्हारा निवास रहता है, एवं अनार्य, कृतघ्न, धर्मघातकी, मित्रद्रोही एवं अविचारी लोगों से तुम्हारी उपासना की जाती है'।

अलक्ष्मी ने आगे कहा, 'मेरा निवास धर्मशील, पापभीरू, कृतज्ञ, विद्वान् एवं साधु लोगों में रहता है, एवं पवित्र ब्राह्मण, संन्यासी एवं ध्येयनिष्ठ लोगों से मेरी उपासना की जाती है। इसी कारण काम, क्रोध, औद्धत्य आदि तामसी विकारों को मैं दूर रखती हूँ, एवं अपने भक्तों को मुक्ति प्रदान करती हूँ' (ब्रह्म. १३७)।

भर्तृहरि के अनुसार, उपर्युक्त संवाद में लक्ष्मी एवं अलक्ष्मी का संकेत संपन्नता एवं दरिद्रता से नही, किन्तु लक्ष्मी की तामस उपासना करनेवाले बुभुक्षित लोग एवं दरिद्रता में ही तृप्त रहनेवाले सात्विक लोगों की ओर अभिप्रेत है।

परिवार—विष्णु से इसे बल एवं उन्माद नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। श्रीसूक्त में इसके निम्नलिखित पुत्रों का निर्देश प्राप्त है:- आनंद, कर्दम, श्रीद और चिक्लित।

इसके धातृ एवं विधातृ नामक दो भाई भी थे, जो इसीके तरह भृगु ऋषि एवं ख्याति के पुत्र थे।

लक्ष्मीप्रद सूक्त—इन सूक्तों में निम्नलिखित दो ग्रंथ प्रमुख माने जाते हैः– १. श्रीसूक्त (ऋ. परि. ११)। २. इंद्रकृत लक्ष्मीस्तोत्र, जो विष्णु पुराण में प्राप्त है (विष्णु. १.९.११५–१३७)।

२. दक्ष प्रजापति की एक कन्या, जो धर्मप्रजापति की पत्नी थी (म. आ. ६०–१३)।

३. वीर नामक ब्राह्मण की पत्नी, जो अपने पूर्वजन्म में तोण्डमान नामक राजा की पद्मा नामक पत्नी थी (भीम. २४. देखिये)।

लक्ष्मीनिधि—सीता का बंधु (पद्म. पा. ११)।

लगध—एक ग्रंथकार, जो 'ऋग्वेदी वेदांग ज्योतिष' का कर्ता माना जाता है। इसके नाम के लिए कई ग्रंथों में 'लगड' पाठभेद भी प्राप्त हैं। किन्तु कै. शं. बा दिक्षित के अनुसार, 'लगध' पाठभेद ही स्वीकरणीय है (दिक्षित, भारतीय ज्योतिष पृ. ७२)।

वेदांग ज्योतिष—वेदांगज्योतिष का समावेश छः वेदांगों में सर्वतोपरि माना जाता है, जिस प्रकार मयुरों की शिखाएँ एवं नागों की मणियाँ सर्वोपरि रहती है—

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वद्वेदांगशास्त्राणां ज्योतिषं मूर्धनि स्थितम्॥

(वे. ज्यो. श्लोक ४)

भारतीय ज्योतिषशास्त्र का मूल ग्रंथ 'वेदांगज्योतिष' माना जाता है, जिससे आगे चल कर, ज्योतिषशास्त्र ने संहिता, गणित एवं जातक इन तीन भागों में अपना विकास किया। आर्यभट्ट, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त एवं भास्कराचार्य जैसें ज्योतिर्विदों ने इस शास्त्र को अभिनव रूप प्रदान किया।

ऐसे महान् शास्त्रों को जन्म देनेवाले 'ऋग्वेदी वेदांग-ज्योतिष' ग्रन्थ में केवल ३६ श्लोक हैं। इसी ग्रंथ का 'यजुर्वेद वेदांगज्योतिष' नामक एक अन्य संस्करण प्राप्त है, जिसमें ४३ श्लोक प्राप्त हैं। उनमें से ३६ श्लोक ऋग्वेद-वेदांगज्योतिष के, एवं ७ श्लोक नयें है। मॅक्स म्यूलर के अनुसार, इस छोटे ग्रन्थ का उद्देश्य ज्योतिष की शिक्षा देना नहीं है, बल्कि आकाशीय ग्रह आदि के बारे में वह ज्ञान प्रदान करना है, जो वैदिक यज्ञों के दिन एवं मुहूर्त के निश्चयार्थ आवश्यक है।

जन्मस्थान—वेदांगज्योतिषशास्त्र का प्रणयन करनेवाला लगध एक भारतीय व्यक्ति था, या विदेशी, इसके बारे में निश्चित जानकारी अप्राप्य है। इस ग्रन्थ में लगध का जन्मस्थान ३४।४६ अथवा ३४।५५ अक्षांश पर निर्देशित है, जिससे प्रतीत होता है कि, यह उत्तर काश्मीर अथवा अफगाणिस्थान का निवासी था।

कालनिर्णय—इस ग्रन्थ में बतायी गई विषुवस्थिति के आधार पर कै. शं. बा. दिक्षित ने इस ग्रन्थ का काल पाणिनि एवं यास्क के पूर्व अर्थात् ई. पू. १४०० निश्चित किया है (दिक्षित, भारतीय ज्योतिष पृ. ८८; पाणिनि देखिये)। किन्तु कई अन्य अभ्यासकों के अनुसार, तारों के सापेक्ष सूर्य की स्थिति के आधार पर इस ग्रन्थ का रचनाकाल का अनुमान लगाना योग्य नहीं है। इसी कारण, कई अन्य अभ्यासकों ने इसका कालनिर्णय निम्न प्रकार दिया है :—१. मॅक्सम्यूलर– ई. पू. ३ रीं शताब्दी; २. वेबर–ई. पू. ५ वीं शताब्दी; ३. लोकमान्य तिलक—ई. पू. १२६९–११८१ (ओरायन. पृ. ३७–३८); ४. विल्यम जोन्स—ई. पू. ११८१; ५. कोलब्रुक— ई. पू. १३८१; ६. चिं. वि. वैद्य—ई. पू. १२००।

ऋग्वेद वेदांगज्योतिष का अंग्रेजी अनुवाद प्रो. थिबो के द्वारा ई. स. १८८९ में प्रकाशित किया गया है। ऋग्वेद एवं यजुर्वेद वेदांगज्योतिष का मराठी अनुवाद ई. स. १८८५ में प्रसिद्ध हो चुका है, जो कै. ज. बा. मोडक के द्वारा किया गया है।

लघु—(सो. यदु) एक राजा, जो वायु के अनुसार यदु राजा का पुत्र था।

लध्विन्—अंगिराकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

लज्जा—दक्षप्रजापति की एक कन्या, जो धर्मप्रजापति की पत्नी थी। (म. आ. ६०.१४)।

लता—एक अप्सरा, जो वर्गा नामक अप्सरा की सखी थी। ब्रह्मा के शाप के कारण, इसे ग्राहयोनि में जन्म प्राप्त हुआ था। किन्तु अर्जुन ने इसे ग्राहयोनि से विमुक्त कराया (म. आ. २०८.१९)।

२. मेरु की एक कन्या, जो आग्नीध्रपुत्र इलावृत्त राजा की पत्नी थी (भा. ५.२.२३)।

लपिता—एक शार्ङ्गी, जो मंदपाल ऋषि की द्वितीय पत्नी थी। इसकी सौत का नाम जरितृ था (म. आ. २२०.१७; मंदपाल देखिये)।

लब ऐंद्र—एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. १०.११९)।

लंपाक—एक लोकसमूह, जो भारतीय युद्ध में कौरवों के पक्ष में शामिल था। इन्होंने यादव राजा सात्यकि पर आक्रमण किया, जिसने इन्हे परास्त किया (म. द्रो. ९७. ४८; पाठ–अम्बष्ठ)।

लंब--एक असुर, जो खर नामक दैत्य का भाई था (मत्स्य. १७३.२२)।

लंबन--एक राजा, जो ज्योतिष्मत् राजा के सात पुत्रों में से एक था। इसका राज्य 'लंबनवर्ष' पर था, जो कुशद्वीप का उपविभाग माना जाता था (मार्क. ५०)।

लंबपयोधरा--स्कंद की अनुचरी एक मातृका (म. श. ४५.१७)। पाठभेद-'लंबा'।

लंबा--प्राचेतस दक्ष की एक कन्या, जो धर्म ऋषि की पत्नी थी। इसके विद्योत एवं घोष नामक दो पुत्र थे (भा. ६.३.४)।

२. लंबपयोधरा का नामांतर।

लंबनी--स्कंद की अनुचरी एक मातृका (म. श. ४५.१७)।

लंबाक्ष--तप नामक शिवावतार का शिष्य।

लंबायन--वसिष्ठकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

लंबोदर--(आंध्र. भविष्य.) एक आंध्रवंशीय राजा, जो भागवत के अनुसार पौर्णिमास राजा का, एवं विष्णु एवं मत्स्य के अनुसार शातकर्णि राजा का पुत्र था।

२. तप नामक शिवावतार का शिष्य।

लय--यमसभा में उपस्थित एक प्राचीन नरेश (म. स. ८.१९ पाठ.)।

ललाटाक्ष--एक लोकसमूह, जो युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के समय भेंट ले कर उपस्थित हुआ था (म. स. ४७.२)।

ललाटाक्षी--एक राक्षसी, जो अशोकवन में सीता के संरक्षण के लिए नियुक्त की गयी थी।

ललाटि--लालाटि नामक भृगुकुलोत्पन्न गोत्रकार का नामांतर।

ललित--एक गंधर्व, जो शाप के कारण राक्षस हुआ था। 'कामदा एकादशी' का व्रत करने के कारण यह शापमुक्त हो गया (पद्म. उ. ४७)।

ललिता--दक्षकन्या सती का एक नामांतर (पद्म. सृ. २९)।

२. कृष्ण की पत्नियों में से एक (पद्म. पा. ७४)।

ललित्थ--(सो. अज.) एक राजा, जो वायु के अनुसार इंद्रसख अथवा विद्योपरिचरवसु राजा का पुत्र था।

२. एक राजा, जो भारतीय युद्ध में कौरवों के पक्ष में शामिल था (म. द्रो. ३३.२५)। इसने अभिमन्यु पर बाणों की वर्षा की थी (म. द्रो. ३६.२५)।

३. एक लोकसमूह, जो भारतीय युद्ध में त्रिगर्तराज सुशर्मन् के साथ उपस्थित था, एवं कौरवों के पक्ष में शामिल था। इन्होंने अर्जुन का वध करने की प्रतिज्ञा की थी (म. द्रो. १६.२०)। किंतु अंत में अर्जुन ने इनका संहार किया (म. क. ४.४६)।

अपने उत्तरदिग्विजय के समय, कर्ण ने इन्हें जीता था (म. द्रो. ६६.३८)।

लव--राम दाशरथि राजा के दो पुत्रों में से कनिष्ठ पुत्र (कुशलव, एवं राम दाशरथि देखिये)।

लवंगा--एक गोपी, जो पूर्वजन्म में पुण्यश्रवस् नामक कृष्णभक्त ऋषि थी।

लवण--मधुवननिवासी एक राक्षस, जो मधु नामक राक्षस का पुत्र था। इसकी माता का नाम कुंभीनसी था।

रुद्र की कृपा से इसे एक शूल प्राप्त हुआ था, जो हाथ में रहते यह अमर एवं युद्ध में अजेय रहता था। इसी शूल से इसने मांधातृ राजा का उसके सैन्य के सहित संहार किया था (वा. रा. उ. ६७.२१; म. अनु. १४.२६७-२६८)।

राम दाशरथि की आज्ञा से शत्रुघ्न ने इसपर आक्रमण किया, एवं इसे शूलरहित स्थिति में पकड़ कर इसका वध किया (शत्रुघ्न देखिये)।

२. रामणीयक द्वीप में रहनेवाला एक असुर, जिसे नागों ने इस द्वीप में प्रवेश करते समय देखा था (म. आ. २३.३०७*)।

३. (सू. इ.) हरिश्चंद्र के वंश का एक राजा। इसने कई राजसुय यज्ञ किये थे, जिनके करने के अभिमान के कारण इसका नाश हुआ (यो. वा. ३.१०४-११५)।

लवणाश्व--एक ऋषि, जो पाण्डवों के साथ वन में रहता था (म. व. २७.२३)।

लह्य--एक ऋषि, जो भुज्यु ऋषि का पिता था।

लाक्षी--कृष्णपत्नी लक्ष्मणा माद्री का नामान्तर।

लांगलायन मौद्गल्य--ब्रह्मन् मौद्गल्य नामक आचार्य का पैतृक नाम (ऐ. ब्रा. ५.३)। लांगल का वंशज होने के कारण, उसे यह पैतृक नाम प्राप्त हुआ होगा।

लांगलि--एक शतशाखाध्यायी आचार्य, जो विष्णु, वायु एवं ब्रह्मांड के अनुसार, व्यास की सामशिष्यपरंपरा में से पौष्यंजि नामक आचार्य का शिष्य था। भागवत में इसे 'मांगलि' कहा गया है। इसे 'शालिहोत्र' एवं 'सामवेदी श्रुतर्षि' आदि उपाधियाँ भी प्राप्त थी।

इस प्रकार राजा के द्वारा बेगुनाह साबित होने पर भी, इसने आत्मग्लानि को वशीभूत हो कर, खुद के दोनों हाथ कटवाये। पश्चात् यह नदी पर स्नान करने के लिए गया, जहाँ शंख ऋषि के तपोबल से इसके दोनों हाथ इसे पुनः प्राप्त हुए (म. शां. २४; अनु. १३७.१९)।

यह एवं इसके भाई शंख के द्वारा लिखित 'शंख स्मृति' नामक एक स्मृतिग्रंथ उपलब्ध है (शंख ६. देखिये)।

२. चंपकापुरी के हंसध्वज राजा का एक दुष्टकर्मा पुरोहित। इसे शंख नामक एक भाई था, जो इसीके ही समान हंसध्वज राजा का पुरोहित था, एवं इसीके ही समान दुष्टबुद्धि था।

पाण्डवों का अश्वमेधीय अश्व हंसध्वज राजा के द्वारा रोंक गया, जिस कारण उसका अर्जुन के साथ युद्ध हुआ। उस समय हंसध्वज राजा ने अपने सैन्य को ऐसी आज्ञा दी कि, हरएक सैनिक सूर्योदय पूर्व सैन्यसंचलन के लिए उपस्थित हो, एवं जो इस आज्ञा का भंग करेगा उसे उबलते तेल में डाला दिया जाए।

दूसरे दिन हंसध्वज राजा के पुत्र सुधन्वन् को ही संचलन के लिए आने में देर हुई, एवं राजा के आज्ञानुसार सजा भुगतने की आपत्ति आई। अपने पुत्र को इतनी कड़ी सजा देने में राजा का मन हिचकिचाने लगा। किन्तु इस दुष्टबुद्धि पुरोहित ने राजा को इस कार्य करने पर विवश किया।

फिर राजा की आज्ञानुसार, सुधन्वन् को उबलते तेल में डाला गया, किन्तु वह सुरक्षित ही रहा। फिर तेल बराबर उबला नहीं है, इस आशंका से इसने एक नारियल तेल में छोड़ दिया। तत्काल उस नारियल के दो टुकडे हो कर, उनके द्वारा यह एवं उसके भाई शंख का कपालमोक्ष हुआ (जै. अ. १७)

लिंबुकि--नाकुलि नामक भृगुकुलोत्पन्न गोत्रकार का नामान्तर।

लील—सारस्वत नगरी के वीरवर्मन् राजा का पुत्र।

लीला--पद्मराज की पत्नी, जिसने अपने पति की मृत्यु के पश्चात् सरस्वती की कृपा से उसे पुनः प्राप्त किया (यो. वा. ३.१५-४९)।

लीलाढ्य--विश्वामित्र ऋषि के ब्रह्मवादी पुत्रों में से एक (म. अनु. ४.५३)।

लीलावती--कोसल देश के ध्रुवसंधि राजा के दो पत्नियों में से एक। इसके पुत्र का नाम शत्रुजित् था।

२. रत्न नगरी के मयूरध्वज राजा की पत्नी। इसे कुमुद्वती नामांतर भी प्राप्त था। इसके पुत्र का नाम ताम्रध्वज था।

३. साधु वैश्य की पत्नी, जिसका जीवनचरित्र 'सत्यनारायण माहात्म्य' की कथा में प्राप्त है (सत्यनारायण ३)। सत्यनारायण व्रत की पूर्ति न करने के कारण, इसे अनेकानेक कष्ट सहने पड़े।

४. वीर राजा की कन्या, जिसका अविक्षित् राजा ने हरण किया था (मार्क. ११९.१७)।

५. एक वेश्या, जिसका राधाष्टमी का व्रत करने के कारण उद्धार हुआ था (पद्म. ब्र. ७)।

६. एक वेश्या, जिसने पुष्करक्षेत्र में चतुर्दशी के दिन लवणाचल एवं सुवर्णवृक्ष की पूजा कर, उन्हें ब्राह्मणों को दान में दिया था। इस पुण्यकर्म के कारण, मृत्यु की पश्चात् इसे शिवलोक की प्राप्ति हुई (पद्म. सृ. २१)।

लुब्ध--भृगुकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

लुंपक--चंपावती नगरी के माहिष्मत राजा के पाँच पुत्रों में से एक। 'सफला एकादशी' का व्रत करने के कारण इसे मुक्ति प्राप्त हुई (पद्म. उ. ४०)।

लुश धानाक--एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. १०.३५-३६; ३८)। इंद्र की कृपा प्राप्त करने में इसका एवं कुत्स ऋषि का हमेशा द्वंद्व चलता था, जिसके अनेकानेक निर्देश ऋग्वेद एवं ब्राह्मण ग्रंथों में प्राप्त है।

एक बार इसने एवं कुत्स ने एक ही समय पर इंद्र को निमंत्रण दिया। पूर्वस्नेह के कारण, इंद्र कुत्स के पास गया। उस समय अपना आदरातिथ्य छोड़ कर, इंद्र लुश के पास जाएगा इस आशंका से कुत्स ने उसे चमडी के सौ रस्सियों से बाँध रखा। किन्तु उसी अवस्था में अपने पास आने के लिए लुश के द्वारा इंद्र की प्रार्थना की गई। (ऋ. १०.३८.५. मं. ब्रा. ९.२.२२; जै. ब्रा. १.१२८)।

लुशाकपि खार्गलि--एक आचार्य, जो केशिन् दाल्भ्य नामक आचार्य का समकालीन था (क. सं. ३०.२)। खृगल का वंशज होने के कारण, इसे 'खार्गलि' पैतृक नाम प्राप्त हुआ था।

कुषीतक सामश्रवस नामक आचार्य ने शमनीचमेढ्र नामक व्रात्य लोगों का आचार्यत्व का स्वीकार किया, जिस कारण इसने उसे एवं उसके कौषीतकी नामक अनुगामियों को भ्रष्ट होने का शाप दिया (पं. ब्रा. १७.४.३; कुषीतक सामश्रवस देखिये)।

लेख--रैवत मन्वन्तर का एक देवगण, जिसमें निम्नलिखित आठ देव शामिल थेः—ध्रुव, ध्रुवक्षिति, प्रघास, प्रचेतस्, बृहस्पति, मनोजव, महायशस् एवं युवनस् (ब्रह्मांड. २.३६.७६)।

२. चाक्षुष मन्वन्तर का एक देवगण।

लेखक--सूर्य का एक प्रिय अनुचर (भवि. ब्राह्म. ५६)।

लेश--(सो. क्षत्र.) एक राजा, जो विष्णु के अनुसार सुनहोत्र राजा का पुत्र था। वायु में इसे 'शल' कहा गया है।

लैद्राणि—अत्रिकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

लैंद्राणि—अंगिरस्कुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

लोकाक्षि—एक शिवावतार, जो वाराहकल्पान्तर्गत वैवस्वत मन्वन्तर में लोकाक्षि नामक वेदविभाग निर्माण करनेवाले मृत्यु नामक व्यास के साहय्यार्थ अवतीर्ण हुआ था। यह स्वयं निवृत्तिमार्गी था। इसके निम्नलिखित चार शिष्य थेः- सुधामन, विरजस्, संजय, एवं अंडज (शिव. शत. ४-५)।

२. व्यास की सामशिष्यपरंपरा में से लौगाक्षि नामक आचार्य का नामान्तर।

३. जटामालिन् नामक शिवावतार का एक शिष्य।

लोपामुद्रा--अगस्त्य ऋषि की पत्नी, जो विदर्भ राजा की कन्या थी।

एक वैदिक मंत्रद्रष्ट्री के नाते लोपामुद्रा का निर्देश ऋग्वेद में प्राप्त है (ऋ. १.१७९.१-२)। उसी ग्रंथ में अन्यत्र अगस्त्य ऋषि की पत्नी के नाते इसका निर्देश प्राप्त है, जहाँ यह उसके आलिंगन की इच्छा प्रकट करती है (ऋ. १.१७९.४; बृहद्दे. ४.५७)।

जन्म--महाभारत में इसे वैदर्भ राजा की कन्या कहा गया है, एवं दो स्थान पर इसके पिता का नाम विदर्भराज निमि दिया गया है। पार्गिटर के अनुसार, विदर्भराजवंश में निमि नामक कोई भी राजा न था, एवं लोपामुद्रा के पिता का नाम निमि न हो कर भीम था, जो विदर्भदेश के क्रथ राजा का पुत्र था (पार्गि. १६८)। विदर्भराज की कन्या होने के कारण, इसे वैदर्भी नामान्तर प्राप्त था।

इसके जन्म के संबंध में एक कल्पनारम्य कथा महाभारत में प्राप्त है। अपने पितरों को मुक्ति प्रदान करने के लिए, अगस्त्य ऋषि के मन में एक बार विवाह करने की इच्छा उत्पन्न हुई। किन्तु उसके योग्यता की कोई भी कन्या उसे इस संसार में नज़र न आई। फिर अपनी पत्नी बनाने के लिए, उसने अपने तपोबल से एक सुंदर कन्या का निर्माण किया, एवं पुत्र के लिए तपस्या करनेवाले विदर्भराज के हाथ में उसे दे दिया। यहीं कन्या लोपामुद्रा नाम से प्रसिद्ध हुई।

अगस्त्य से विवाह—धीरे धीरे यह युवावस्था में प्रविष्ट हुई। सौ दासियाँ एवं सौ कन्याएँ इसकी सेवा में रहने लगी। अपने शील एवं सदाचार से यह अपने पिता एवं स्वजनों को संतुष्ट रखती थी।

एक दिन महर्षि अगस्त्य विदर्भराज के पास आये, एवं उसने लोपामुद्रा से विवाह करने का अपना निश्चय प्रकट किया। राजा इसका विवाह अगस्त्य जैसे तपस्वी के साथ नहीं करना चाहता था, किंतु महर्षि के शाप के डर से वह उसे इन्कार भी नहीं कर सकता था। अपने माता पिता को संकट में पड़ा देख, लोपामुद्रा ने अपने पिता से कहा, 'आप मुझे महर्षि के सेवा में दे कर अपनी रक्षा करे' [illegible] पके पिता ने इसका विवाह अगस्त्य ऋषि के [illegible] या।

विवाह के पश्चात् इसने अगस्त्य ऋषि की आज्ञा से अपने राजवस्त्र एवं आभूषण उतार दिये, एवं वल्कल एवं मृगचर्म धारण किये। पश्चात् अगस्त्य इसे ले कर गंगाद्वार गया, एवं घोर तपस्या में संलग्न हुआ। यह पति के समान ही व्रत एवं आचार का पालन करने लगी, एवं तप करनेवाले अगस्त्य की सेवा कर इसने उसे प्रसन्न किया।

पुत्रप्राप्ति—पश्चात् इसका रूपयौवन, पवित्रता एवं इंद्रियनिग्रह से प्रसन्न हो कर, अगस्त्य ऋषि ने इससे संभोग करने की इच्छा प्रकट की। तब इसने अगस्त्य से कहा, 'इस तापसी वेष में एवं तपस्वी के पर्णशाला में नहीं, बल्कि मेरे पिता जैसे राजमहल में मैं आपसे समागम करना चाहती हूँ'। फिर अगस्त्य ने अपने तपःसामर्थ्य से इल्वल से विपुल संपत्ति ला कर इसे प्रदान की, एवं इसकी इच्छा के अनुसार, हजारों को जीतनेवाला एक महान् पराक्रमी पुत्र इसे प्रदान किया।

इस पुत्र का गर्भ सात वर्षों तक इसके पेट में पलता रहा, एवं सात वर्ष बिताने पर वह अपनी माता के उदर से बाहर निकला। अगस्त्य से उत्पन्न इसके पुत्र का नाम दृढस्यु अथवा इध्मवाह था (म. व. ९४-९७)

काशी के सुविख्यात राजा प्रतर्दन का पौत्र अलर्क को लोपामुद्रा के द्वारा विपुल धनसंपत्ति एवं राज्यश्री प्राप्त होने की कथा पुराणों में प्राप्त है (वायु. ९२.६७; ब्रह्म. ११.५३)। आनंद रामायण के अनुसार इसके पास एक 'अक्षय स्थाली' थी, जिससे अपरिमित अन्न की प्राप्ति होती थी (आ. रा. विवाह. ५)।

दक्षिण भारत में--अगस्त्य ऋषि का सर्वाधिक संबंध दक्षिण भारत से था, जिसकी पुष्टि देनेवाली लोपामुद्रा की एक जन्मकथा भागवत में प्राप्त है। इस कथा में इसका निर्देश कृष्णेक्षणा नाम से किया गया है, एवं इसे मलयध्वज नामक पाण्डय राजा की कन्या कहा गया है। यहाँ इसकी माता का नाम वैदर्भी दिया गया है, एवं इसके सात भाईयों को द्रविड देश के राजा कहा गया है। अगस्त्य ऋषि से इसे दृढच्युत नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसके पुत्र का नाम इध्मवाहन था (भा. ४.२८)।

लोभ--ब्रह्मा का एक मानस पुत्र, जो उसके अधरोष्ठ से उत्पन्न हुआ था (मत्स्य. ३.१०)। भागवत में इसे अधर्मपुत्र दंभ एवं माया का [illegible] गया है।

लोभालोभ--एक ऋग्वेदी [illegible]।

लोमगायनि अथवा **लोमगायिन**--एक आचार्य, जो वायु एवं ब्रह्मांड के अनुसार, व्यास की सामशिष्य परंपरा में से लांगलि नामक आचार्य का शिष्य था।

लोमपाद--अंगदेश के रोमपाद राजा का नामान्तर (रोमपाद १. देखिये)।

लोमश--एक दीर्घजीवी महर्षि, जिसका हृदय धर्मपालन से विशुद्ध हो चुका था (म. व. ३२.११)। इसके शरीर पर अत्यधिक लोम (केश) थे, जिस कारण इसे लोमश नाम प्राप्त हुआ था। इसकी आयु इतनी अधिक थी कि, प्रत्येक कल्पान्त के समय इसका केवल एक ही बाल झडता था। एक बार इसने सौ वर्षों तक कमल के फूलों से शिव की उपासना की थी, जिस कारण इसे प्रत्येक कल्प के अन्त में एक एक बाल झडने का, एवं प्रलयकाल के समय मुक्ति प्राप्त होने का आशीर्वाद प्राप्त हुआ था (स्कंद १.२.१३)।

इंद्र से भेंट--एकबार घूमते घूमते यह इंद्र के पास पहूँचा। वहाँ इंद्र के पास अस्त्रविद्या के प्रप्ति के लिए इंद्रलोक में आया हुआ अर्जुन इसे दिखाई पड़ा, जो इंद्र के अर्धासन पर विराजमान हुआ था। इंद्र ने लोमश से कहा, 'अर्जुन साक्षात नरनारायण का ही अवतार है, जो कौरवों पर विजय पानेवाले अस्त्रों की प्राप्ति करने के लिए यहाँ आया है। काम्यकवन में रहनेवाला युधिष्ठिर अर्जुन के कारण चिंताग्रस्त हो चुका है; मैं यही चाहता हूँ कि, तुम युधिष्ठिर के पास जा कर अर्जुन का कुशल वृत्तांत उसे बता देना, एवं उसके मनबहलाव के लिए भारत के अन्यान्य तीर्थों का दर्शन उसे कराना' (म. व. ४५.२९-३३)।

तीर्थयात्रा--इंद्र की आज्ञानुसार, यह काम्यकवन में आया। इसने अर्जुन का कुशलवृत्त युधिष्ठिर को सुनाया, एवं तीर्थयात्रा प्रस्ताव उसके सम्मुख रखा। पश्चात् यह युधिष्ठिर के साथ तीर्थयात्रा करने के लिए निकला। पहले ये महेंद्र पर्वत पर गयें, एवं चतुर्दशी के दिन परशुराम का दर्शन कर प्रभासक्षेत्र में गयें। वहाँसे यमुना नदी के किनारे ये कैलास पर्वत के पास आ पहूँचे (म. व. ८९-१४०)।

पश्चात् गंधमादन पर्वत की तराई में सुबाहु नामक किराताधिपति का सत्कार स्वीकार कर, इन्होंने गंधमादन पर्वत का आरोहण करना प्रारंभ किया। किन्तु ये दोनों थकने के कारण, भीम ने घटोत्कच की सहाय्यता से इन्हें गंधमादन पर्वत पर स्थित 'नरनारायण' आश्रम में पहुँचा दिया (म. व. १४१-१४६)।

बाद में सत्रह दिनों तक प्रवास कर ये वृषपर्वन् के आश्रम में पहूँच गयें, एवं चार दिनों के उपरान्त आर्ष्टिषेण ऋषि के आश्रम में आयें (म. व. १५५)। वहाँ धौम्य ऋषि ने युधिष्ठिर को सूर्य चंद्र की गति के संबंध में जानकारी बतायीं (म. व. १६०)।

इतने में इंद्र की सहाय्यता से अर्जुन गंधमादन पर्वत पर आ पहूँचा (म. व. १६१.१९)। पश्चात् यह युधिष्ठिर एवं अर्जुन के साथ चार वर्षों तक गंधमादन पर्वत पर ही रहा (म. व. १७३.८)। पाण्डवों के वनवास के दस साल पूर्ण होने के पश्चात्, लोमश उन्हें पुनः एक बार नरनारायण आश्रम में ले आया। किराताधिपति सुबाहु के घर एक महिने तक रहने के पश्चात्, ये यामुनगिरि पर स्थित विशाखयूप में गयें, एवं वहाँसे द्वैतवन में गयें। वहाँ सरस्वती नदी के किनारे बरसात के चार महिने व्यतीत करने के पश्चात्, पौर्णिमा होते ही, इसने पाण्डवों को काम्यकवन में पहूँचाया, एवं यह स्वयं तपस्या के लिए चला गया (म. व. १७८-१७९)।

आख्यानकथन--तीर्थयात्रा के समय, लोमश ऋषि ने युधिष्ठिर को अनेक देवता एवं धर्मात्मा राजाओं के आख्यान सुनायें, जिनमें निम्न आख्यान प्रमुख थे:

अगस्त्यचरित्र (म. व. ९६-९९); भगीरथचरित्र (म. व. १०६-१०९); ऋश्यशृंगचरित्र (म. व. ११० -११३); च्यवनकन्या सुकन्या का चरित्र (म. व. १२१-१२५); मांधातृचरित्र (म. व. १२६-१२७)।

वरप्रदान—लोमश ने दुर्दम राजा को देवी भागवत का पाठ पाँच बार पढ़ कर सुनाया था, जिस कारण उसे पाँचवे मन्वन्तर के अधिपति रैवत नामक पुत्र की प्राप्ति हुई थी (दे. भा. महात्म्य. ५)। पिशाचयोनि में प्रविष्ट हुए सुशाला, सुस्वरा, सुतारा एवं चंद्रिका आदि गंधर्व-कन्याओं का, एवं वेदनिधि नामक ऋषिपुत्र का इसने नर्मदास्नान का उपदेश कर उद्धार किया था (पद्म. स्व. २३)।

ग्रंथ--इसके नाम पर 'लोमशसंहिता' एवं 'लोमश-शिक्षा' नामक दो ग्रंथ उपलब्ध है (C. C.)। उनमें से लोमशशिक्षा सामवेद का शिक्षा ग्रंथ है, जो आठ खण्डों में विभाजित है। इस ग्रंथ के पहले ही श्लोक में इसका गर्गाचार्य के साथ निर्देश प्राप्त है, जिसका संदर्भ ठीक प्रकार से ध्यान में नहीं आता है।

कश्यपसंहिता में प्राप्त ज्योतिषशास्त्र के प्रवर्तक अठारह महर्षियों में, लोमश ऋषि का निर्देश प्राप्त है। उन आचार्यों के द्वारा सिद्धान्त, होरा एवं संहिता इन तीन स्कंदों में विभाजित ज्योतिषशास्त्र की रचना किये जाने का निर्देश वहाँ प्राप्त है।

लोमशकथित रामकथा--पद्म में प्राप्त रामकथा का वक्ता लोमश ऋषि बताया गया है (पद्म. पा. ३६)। महाभारत में प्राप्त परशुराम के तेजोभंग के आख्यान का वक्ता लोमश ही है (म. अनु. ३५१)।

लोमश के नाम पर 'लोमशरामायण' नामक एक ग्रंथ भी उपलब्ध है, जिसमें बैतीस हज़ार श्लोक हैं। उस ग्रंथ में राजा कुमुद एवं वीरमती के द्वारा दशरथ एवं कौसल्या के रूप में जन्म लेने की कथा प्राप्त है, एवं जालंधर के शाप के कारण रामावतार होने का आख्यान भी वहाँ दिया गया है।

तुलसी के द्वारा विरचित 'रामचरितमानस' में भी भृशुण्डि ऋषि को लोमश के द्वारा रामकथा प्राप्त होने का निर्देश है (मानस. उ. ११३)। रसिक संप्रदाय में भी एक 'लोमशसंहिता' प्रचलित है, जिसमें इसका एवं पिप्पलाद ऋषि का एक संवाद प्राप्त है।

आश्रम—लोमश ऋषि के आश्रम निम्नलिखित दो स्थानों में दिखायें जाते हैं:— १. राजस्थान में बुंदी शहर के उत्तर में सत्रह मील पर स्थित तिमाणाग्राम में उपर्या नामक शिवमंदिर एवं लोमश ऋषि का आश्रम प्राप्त है; २. पंजाब में स्थित ज्वालामुखी ग्राम से पचपन मील पर स्थित रिवालसर (रेवासर) ग्राम में लोमश आश्रम सुविख्यात है।

इसके अतिरिक्त गया जिले में स्थित बराबर पहाड़ी में दशरथ राजा के द्वारा खोदी गई एक गुफा 'लोमश गुफा' नाम से प्रसिद्ध है।

२. रावणपक्षीय एक राक्षस (वा. रा. सुं. ६)।

लोमहर्षण--पुराणों का आद्य कथनकर्ता रोमहर्षण 'सूत' का नामांतर (रोमहर्षण देखिये)।

लोमायन--वसिष्ठकुलोत्पन्न एक गोत्रकार। ब्रह्मांड में निर्दिष्ट व्यास के शिष्यपरंपरा में इसका निर्देश प्राप्त है।

लोल--सिद्धवीर्य ऋषि का पुत्र। अपने अगले जन्म में, इसने उत्पलावती नामक रानी के उदर में तामस मनु के रूप में जन्म लिया (मार्क. ७१; तामस देखिये)।

लोलजि--एक राक्षस, जो धर्मारण्य जलाने के लिए प्रवृत्त हुआ था। इस कारण विष्णु ने इसका वध किया (स्कंद ३.२.११)।

लोला--मधु नामक राक्षस की माता (वा. रा. उ. ६१.३)।

लोलाक्षि—भृगुकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

लोह--एक असुर, जिसके नाम से लोहतीर्थ नामक एक तीर्थ प्रचलित हुआ (स्कंद. ३.२.२९)।

२. एक असुर। अज्ञातवास के समय पाण्डवों ने अपने शस्त्र नीचे रख दियें। यही सुअवसर पा कर इसने उन पर आक्रमण किया, किन्तु देवताओं ने इसे अंधा बन कर पाण्डवों की रक्षा की। उस स्थान को लोहणपुर कहते है। (स्कंद. १.२.६५)।

३. एक लोकसमूह, जिसे अर्जुन ने उत्तर दिग्विजय के समय जीता था (म. स. २४.२४)।

लोहगंध--गार्ग्यकुलोत्पन्न एक ऋषि, जिसका जनमेजय पारिक्षित (प्रथम) राजा ने वध किया था। इस ब्रह्महत्या के कारण, लोगों ने जनमेजय पारिक्षित को राज्यभ्रष्ट कर, उसे हद्दपार किया (वायु. ९३.२०-२६)। इस पाप से छुटकारा पाने के लिए जनमेय राजा ने 'इंद्रोत शौनक' नामक आचार्य के द्वारा एक अश्वमेध यज्ञ किया (जनमेजय पारिक्षित १. देखिये)।

कई अभ्यासकों के अनुसार, 'गार्ग्य' लोहगंध की उपाधि न हो कर जनमेजय (प्रथम) की उपाधि थी, जो उसके शरीर से आनेवाली दुर्गंधी के कारण उसे

प्राप्त हुई थी। जनमेजय को ब्रह्महत्त्या के पातक से मुक्त करानेवाले इंद्रोत शौनक ने उसके शरीर की यह दुर्गंधी भी दूर करायी (ब्रह्मांड. ३.६८.२३-२६; ह. वं. १.३० १०-१४; म. शां १४१.११)।

लोहलय--वसिष्ठकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

लोहवैरि--वसिष्ठकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

लोहिशवक्त्र--स्कंद का एक सैनिक (म. श ४४.७०)।

लोहित--विश्वामित्र ऋषि के ब्रह्मवादी पुत्रों में से एक।

२. रुद्रसावर्णि मन्वन्तर का एक देवगण।

३. एक स्मृतिकार (C. C.)।

४. एक राजा, जिसे अर्जुन ने उत्तरदिग्विजय के समय जीता था (म. स. २४.१७)।

५. वरुणसभा का एक नाग (म. स. ९.८; ११)।

लोहिताक्ष--एक ऋषि, जो जनमेजय के सर्पसत्र में स्थपति (वास्तुविद्याविशारद) नामक ऋत्विज था। यज्ञ के लिए भूमि शुद्धि करते समय ही इसने भविष्यवाणी की थी, 'यह सत्र एक ब्राह्मण के द्वारा जल्द ही बन्द हो जायेगा (म. आ. ४७.१५; ५१.६; ५३.१२)।

२. ब्रह्मा को द्वारा स्कंद को दिये गयें चार पार्षदों में से एक। अन्य तीन पार्षदों के नाम नन्दिषेण, घण्टाकर्ण, एवं कुमुदमलिन् थे (म. श. ४४.२१-२२)।

लोहितायनि--स्कंद की धाय, जो लालसागर की कन्या थी। इसकी कदंब के वृक्षों पर पूजा होती है (म. व. २१९.३९)।

लोहितारण--(स्वा. प्रिय.) एक राजा, जो घृतपृष्ठ राजा के सात पुत्रों में से एक था। इसका वर्ष इसीके ही नाम से प्रसिद्ध था।

लोहिताश्व--वसुदेवपुत्र रोहिताश्व का नामान्तर।

लौक्य--बृहस्पति का नामान्तर। 'लोकपुत्र' होने के कारण बृहस्पति को यह नाम प्राप्त हुआ था (बृहस्पति १. देखिये)।

लौक्षि--अंगिराकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

लौक्षिण्य--भृगुकुलोत्पन्न एक गोत्रकार। पाठभेद--'लौगाक्षि'।

लौगाक्षि--एक शतशाखाध्यायी सामवेदी आचार्य, जो व्यास की सामशिष्य परंपरा में से पौष्यंजि नामक आचार्य का शिष्य था।

एक स्मृतिकार के नाते से इसका निर्देश मिताक्षरा में प्राप्त है, जहाँ इसके अशौच एवं प्रायश्चित के संबंधी श्लोक उद्धृत किये गयें हैं (याज्ञ. ३.१.२; २६०; २८९)। अपरार्क के द्वारा भी इसके निम्नलिखित विषयों के संबंधी गद्यापद्यात्मक उद्धरण दिये गयें हैं:--संस्कार, वैश्वदेव, चातुर्मास्य, द्रव्यशुद्धि, श्राद्ध, अशौच एवं प्रायश्चित।

योग एवं क्षेम शब्दों की व्याख्या करनेवाला, एवं उन दोनों का अभिन्नत्व प्रस्थापित करनेवाला लौगाक्षि का एक श्लोक प्रसिद्ध है, जो मिताक्षरा आदि धर्मशास्त्र ग्रंथों में प्राप्त है।

ग्रंथ--१. आर्षाध्याय; २. उपनयनतंत्र; ३. काठक गृह्यसूत्र; ४. प्रवराध्याय; ५. श्लोकदर्पण।

२. लौक्षिण्य नामक भृगुकुलोत्पन्न गोत्रकार का नामान्तर।

लौपायन--एक पैतृक नाम, जो निम्नलिखित आचार्यों के लिए व्यवहृत है:--बन्धु (ऋ. ५.२४.१); विप्रबन्धु (ऋ. ५.२४.४); श्रुतबन्धु (ऋ. ५.२४.३); सुबन्धु (ऋ. ५.२४.२)। इस पैतृक नाम का 'गौपायन' पाठभेद भी प्राप्त है।

लौमहर्षणि--रोमहर्षण सूत के सौति नामक पुत्र का नामान्तर (सौति देखिये)।

लौहवैरिण--भृगुकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

लौहि--अष्टक ऋषि का पुत्र, जो विश्वामित्र ऋषि का पौत्र था।

२. (शिशु. भविष्य.) एक राजा, जो अजातशत्रु राजा का पुत्र था।

लौहित्य--एक पैतृक नाम, जो जैमिनीय उपनिषद ब्राह्मण में निम्नलिखित गुरु के लिए प्रयुक्त किया गया है:-- कृष्णदत्त, कृष्णरात, जयक, त्रिवेद कृष्णरात, दक्ष जयन्त, पल्लिगुप्त, मित्रभूति, यशस्विन् जयन्त, विपश्चित् दृढ-जयन्त, वैपश्चित् दार्ढजयन्ति, वैपश्चित दार्ढजयन्ति, दृढ-जयन्त, श्यामजयन्त, श्यामसुजयन्त, सत्यश्रवस् (जै. उ. ब्रा. ३.४२.१)।

लोहित का वंशज होने से इन आचार्यों को यह पैतृक नाम प्राप्त हुआ होगा।

२. एक आचार्य (सां. आ. ७.२२)।

व

वंशक--इक्ष्वाकुवंशीय वत्सक राजा का नामान्तर।

वंशा--एक अप्सरा, जो कश्यप एवं प्राधा की कन्याओं में से एक।

वक दाल्भ्य--बक दाल्भ्य नामक आचार्य का नामान्तर (बक दाल्भ्य देखिये)। कई अभ्यासकों के अनुसार, जैमिनीय उपनिषद ब्राह्मण में निर्दिष्ट 'बक दाल्भ्य' एवं छांदोग्य उपनिषद एवं काठकसंहिता में निर्दिष्ट 'वक दाल्भ्य' दो अलग व्यक्ति थे। किंतु इस संबंध में निश्चित रूप से कहना कठिन है।

वकनख-- विश्वामित्र के बकनख नामक पुत्र का नामान्तर (म. अनु. ४.५८)।

वक्र--करुष राजकुमार वक्रदंत (दंतवक्र) का नामंतर। यह द्रौपदी के स्वयंवर में उपस्थित था (म. आ. १८.२४*)।

वक्रदन्त--करुष राजकुमार दंतवक्र का नामान्तर (दंतवक्र देखिये)।

वक्राक्ष--एक राक्षस, जो कश्यप एवं खशा के पुत्रों में से एक था।

वक्षेयु--(सो. पूरु.) एक राजा, जो वायु के अनुसार रौद्राश्व राजा का पुत्र था।

वक्षोग्रीव—विश्वामित्र के ब्रह्मवादी पुत्रों में से एक (म. अनु. ४.५३)।

वंग—(सो. अनु.) वंग देश का एक राजा, जो बलि आनव राजा के पाँच पुत्रों में से एक था। इसीके ही कारण इसके देश को 'वंग' नाम प्राप्त हुआ (बलि आनव देखिये)।

२. एक लोकसमूह, जिसका निर्देश मगध एवं मत्स्य लोगों के साथ अथर्ववेद परिशिष्ट में प्राप्त है (अ. वे. परि. १.७.७)। वंग एवं मगध लोगों का संयुक्त निर्देश ऐतरेय आरण्यक में भी प्राप्त है (ऐ. आ. २.१.१)। आधुनिक बंगाल देश में स्थित लोगों के लिए 'वंग' शब्द का निर्देश सर्वप्रथम बौधायन धर्मसूत्र में प्राप्त है (बौ. ध. १.१.१४)।

पूर्व भारत के एक लोकसमूह के नाते वंग का निर्देश महाभारत में प्राप्त हैं। महाभारतकाल में इस देश में म्लेंच्छ लोग रहते थे, जिन्हें राजसूययज्ञ के समय भीमसेन ने, एवं अश्वमेधयज्ञ के समय अर्जुन ने जीता था (म. स. २७.२१; आश्व. ८३.२९)। परशुराम ने इस देश के क्षत्रियों का संहार किया था।

वंगिरी—(किलकिला. भविष्य.) एक राजा, जिसका निर्देश भागवत में प्राप्त है।

वंगृद—एक दानव, जो अतिथिग्व (दिवोदास) राजा का शत्रु था। इंद्र ने अतिथिग्व के संरक्षण के लिए इसका शिरच्छेद किया था (ऋ. १.५३.८)।

वचक्नु—एक ऋषि, जो गार्गी वाचक्नवी नामक विदुषी का पिता था।

वज्र—विश्वामित्र के वज्रनाभ नामक पुत्र का नामान्तर।

२. श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध का पुत्र, जो वज्र यादव नाम से सुविख्यात था। इसकी माता का नाम रोचना था। मौसल युद्ध में यादवों का संहार होने पर, अर्जुन इसे इंद्रप्रस्थ ले गया, एवं उसने इसे यादवी युद्ध से बचे हुए यादवों का राजा बनाया। इसके पुत्र का नाम प्रतिबाहु था (म. मौ. ८.७०; भा. १.१५.३९)। महाप्रस्थान के समय, युधिष्ठिर ने सुभद्रा से इसकी रक्षा के लिए कहा था (म. महा. १.८-९)।

वज्रकाय—लंका का एक राक्षस (वा. रा. सुं. ६)।

वज्रज्वाला—कुंभकर्ण की पत्नी, जो विरोचन दैत्य की प्रपौत्री थी (वा. रा. उ. १२.२४)।

वज्रदंष्ट्र—त्रिपुरासुर का सेनापति। इसने पाताललोक जीत लिया, जिस कारण त्रिपुर ने गाँव, वस्त्र आदि देकर इसका सन्मान किया (गणेश. १.४)।

२. रावणपक्ष का एक राक्षस, जो अंधक के द्वारा मारा गया (वा. रा. यु. ९.३; ५३-५४)।

वज्रदत्त--प्राग्ज्योतिषपुर का एक राजा, जो भगदत्त राजा का पुत्र था। इसे यज्ञदत्त नामान्तर भी प्राप्त था।

पाण्डवों के द्वारा छोड़ा गया अश्वमेधीय अश्व इसने पकड़ लिया, एवं तीन दिनों तक अर्जुन के साथ अत्यंत शूरता से लड़ता रहा। अंत में अर्जुन ने इसका पराजय किया (म. आश्व. ७४.७५)।

वज्रनाभ--(सू. इ.) अयोध्या देश का एक राजा, जो भागवत के अनुसार स्थल का, विष्णु के अनुसार उक्थ का, एवं वायु के अनुसार औक राजा का पुत्र था।

२. एक राक्षस, जो निकुंभ राक्षस का भाई, एवं वज्रपुर नगरी का राजा था। कृष्णपुत्र प्रद्युम्न ने इसका वध किया, एवं नाटक का खेल ले कर वह इसके नगरी में पहुँच गया। वहाँ उसने इसकी प्रभावती नामक कन्या से बलात्कार किया। इस कारण, निकुंभ ने द्वारका नगरी पर हमला किया, जहाँ हुए युद्ध में कृष्ण ने निकुंभ का वध किया (ह. वं. २.९०)।

३. एक दुष्ट राक्षस, जो ब्रह्मदेव के हाथ में स्थित कमल के प्रहार के द्वारा मारा गया।

४. मथुरा नगरी का एक राजा, जो परीक्षित राजा का मित्र था। शांडिल्य ऋषि की आज्ञा के अनुसार, उद्धव ने इसे भागवत महात्म्य सुनाया था (स्कंद. २.६.१-६)। इसे वज्र नामान्तर भी प्राप्त था।

५. स्कंद का एक सैनिक (म. श. ४४.५८)।

वज्रबाहु—रामसेना का एक वानर, जिसका कुंभकर्ण ने भक्षण किया (म. व. २७१.४)।

वज्रमित्र—(शुंग. भविष्य.) एक राजा, जो भागवत एवं ब्रह्मांड के अनुसार घोष का, विष्णु के अनुसार घोषवसु का, एवं मत्स्य के अनुसार पुलिंद राजा का पुत्र था। वायु में इसे 'विक्रमित्र' कहा गया है।

वज्रमुष्टि—एक राक्षस, जो मैंद वानर के द्वारा मारा गया (वा. रा. यु. ४३.२८)।

वज्रविष्कंभ—गरुड की प्रमुख संतानों में से एक (म. उ. ९९.१०)।

वज्रवेग—एक राक्षस, जो दूषण का छोटा भाई, एवं कुंभकर्ण का अनुगामी था। इसके भाई का नाम प्रमाथी था। हनुमत् के द्वारा यह मारा गया (म. व. २७१.१९-२४)।

वज्रशीर्ष—भृगु प्रजापति के सात पुत्रों में से एक, जिसे निम्नलिखित छः भाई थे—च्यवन, शुचि, और्व, शुक्र, वरेण्य एवं सवन (म. अनु. ८५.१२७-१२९)।

वज्राक्ष—एक दानव, जो कश्यप एवं दनु का पुत्र था।

वज्रांग—एक दैत्य, जो कश्यप एवं दिति के पुत्रों में से एक था। एक बार इसकी माता दिति ने इसे इंद्र पर आक्रमण करने के लिए कहा। किंतु ब्रह्मा के विरोध के कारण, इस आक्रमण में यह यशस्विता प्राप्त न कर सका। फिर इसकी पत्नी वरांगी ने इससे इंद्र का पराजय करनेवाला महापराक्रमी पुत्र माँग लिया, जो तारकासुर नाम से प्रसिद्ध हुआ (मत्स्य. १४५-१४६; पद्म. सृ. ४२; शिव. रुद्र. पार्वती. १४)।

वज्रांगद—पांड्य देश का एक राजा, जिसे 'अरुणाचलेश्वर' की पूजा करने के कारण सद्‌गति प्राप्त हुई (स्कंद. १.३.२-२४)। पाठभेद—'रत्नांगद'।

वज्रिन्—एक सनातन विश्वेदेव (म. अनु. ९१.१३)।

वंचुलि—विश्वामित्रकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

वंजुल—एक वैश्य, जिसका कालिंजर पर्वत पर स्थित 'वाराणसी तीर्थ' में सोमवती अमावस्या के दिन स्नान करने के कारण उद्धार हुआ (पद्म. भू. ९१-९२)।

वंजुलि—विश्वामित्रकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

वट—स्कंद का एक पार्षद, जो अंश के द्वारा दिये गये पाँच पार्षदों में से एक था। अन्य चार पार्षदों के नाम परिघ, भीम, दहति एवं दहन थे (म. श. ४४.३१)।

वटिका—व्यास की पत्नी, जिसके पुत्र का नाम शुक था (व्यास देखिये)।

वडवा—सूर्य की पत्नी संज्ञा का नामांतर, जो उसे अश्विनी (वडवा) का रूप धारण करने के कारण प्राप्त हुआ था। सूर्य ने अश्व का रूप धारण कर इससे संभोग किया, जिससे इसे अश्विनीकुमार नामक जुड़वे पुत्र उत्पन्न हुए (भा. ६.६.४०)।

२. एक अग्नि, जो समुद्र के भीतर वास्तव्य करती है। और्व नामक अग्नि जन्म लेते ही समस्त पृथ्वी को जलाने लगी। तब उसके पितरों ने आ कर उसे समझाया, एवं उसे अपनी क्रोधाग्नि को समुद्र मे डाल देने के लिए कहा। पितरों के आदेश से, और्व ने अपने क्रोधाग्नि को समुद्र में डाल दिया।

वहाँ आज भी अश्व की मुख जैसी आकृति बना कर, यह समुद्र का जल पीती रहती है (म. आ. १७१.२१-२२)। वायु के अनुसार, यह एवं और्व अग्नि दोनों एक ही है (वायु. १.४७; और्व २. देखिये)।

वडवा प्रातिथेयी—एक ब्रह्मवादिनी, जो ब्रह्मचर्यव्रत से रहती थी। कई अभ्यासकों के अनुसार, लोपामुद्रा की बहन गभस्तिनी एवं यह दोनों एक ही हैं (गभस्तिनी देखिये)। ब्रह्मयज्ञांगतर्पण में इसका निर्देश प्राप्त है (आश्व. गृ. ३.३.)।

वत्स—(सो. पूरु.) एक राजा, जो सेनाजित राजा का पुत्र था।

२. (स्वा. उत्तान.) एक राजा, जो भागवत के अनुसार चक्षु राजा का पुत्र था। इसकी माता का नाम नड्वला था।

३. (सो. क्षत्र.) काशी देश का एक राजा, जो वायु के अनुसार प्रतर्दन राजा का पुत्र था। परशुराम के भय से, यह गोशाला में गायों के बछड़ो (वत्सों) के बीच पालपोस कर बड़ा हुआ, जिस कारण इसे 'वत्स' नाम प्राप्त हुआ (म. शां. ४९.७१)।

४. (सू. इ. भविष्य.) एक राजा, जो विष्णु के अनुसार गुरुक्षेप राजा का पुत्र था। इसे 'वत्सद्रोह', 'वत्सवृद्ध', एवं 'वत्सव्यूह' आदि नामांतर प्राप्त थे।

५. कोसल देश का एक राजा, जो द्रौपदीस्वयंवर में उपस्थित था (म. आ. १७७.२०)।

६. सोम नामक शिवावतार का एक शिष्य।

७. कंस के पक्ष का एक दैत्य, जो 'गोवत्स' का रूप धारण कर कृष्ण का नाश करने गोकुल में उपस्थित हुआ था। इसे 'वत्सक' नामांतर भी प्राप्त था (भा. १०. ४३.३०)। कपित्थ के वृक्ष पर पटक कर, कृष्ण ने इसका वध किया (भा. १०.११.४२)।

८. एक वैश्य, जो मंत्रविद्या में प्रवीण था (ब्रह्मांड, २.३२.१२१)।

९. एक आचार्य, जो ब्रह्मांड के अनुसार, व्यास की यजुःशिष्यपरंपरा में से याज्ञवल्क्य का वाजसनेय शिष्य था (व्यास देखिये)।

१०. एक आचार्य, जो व्यास की ऋक्शिष्यपरंपरा में से देवमित्र नामक आचार्य का शिष्य था। पाठभेद- 'वास्य'।

११. पूर्व भारत में रहनेवाला एक लोकसमूह, जो भारतीय युद्ध में पांडवों के पक्ष में शामिल था (म. उ. ५२.२)। इस देश के योद्धा धृष्टद्युम्न के द्वारा निर्मित क्रौंचव्यूह के वाम पक्ष में खड़े थे (म. भी. ४६.५१)। काशिराज की कन्या अंबा इन्हीं लोगों के देश में तपश्चर्या करने आयी थी (म. उ. १८७.२३)।

वत्स आग्नेय—एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. १०. १८७)। यह एवं अन्य एक सूक्तद्रष्टा कुमार आग्नेय, एक ही वंश में उत्पन्न हुए होंगे।

वत्स काण्व—एक वैदिक सूक्तद्रष्टा, एवं 'चरकाध्वर्यु सूत्र का रचयिता (ऋ. ८.६.११)। कण्व ऋषि का पुत्र होने से, इसे 'काण्व' पैतृक नाम प्राप्त हुआ था (ऋ. ८.८.८)।

तिरिंदर पारशव्य राजा से इसे विपुल धन प्राप्त हुआ था (ऋ. ८.६.४६; सां. श्रौ. १६.११.२०)। मेधातिथि नामक इसके प्रतिद्वंद्वी ने इसे शूद्रपुत्र कहा, किंतु अग्निदिव्य कर इसने अपनी जातिविषयक शुद्धता प्रस्थापित की (पं. ब्रा. ८.६.१)। हेमाद्रि के 'परिशेष खंड' में इसका निर्देश प्राप्त है।

वत्सक--(सू. इ.) एक इक्ष्वाकुवंशीय राजा, जो मत्स्य के अनुसार श्रावस्त राजा का पुत्र, एवं बृहदश्व राजा का भाई था। पुराणों में इसे 'वंशक' कहा गया है।

२. (सो. क्रोष्टु.) एक यादववंशीय राजा, जो वसुदेव का भाई, एवं शूर राजा के दस पुत्रों में से एक था। इसकी माता का नाम मारिषा था। मिश्रकेशी नामक अप्सरा से इसे वृक आदि पुत्र उत्पन्न हुए (भा. ९.२४. २९-४३)।

३. वत्स नाम कंसपक्षीय राक्षस का नामांतर (वत्स. ७. देखिये)।

वत्सद्रोह--(सू. इ. भविष्य.) इक्ष्वाकुवंशीय वत्स राजा का नामान्तर (वत्स. ४. देखिये)। मत्स्य में इसे उरुक्षय राजा का पुत्र कहा गया है।

वत्सनपात् बाभ्रव्य--एक आचार्य, जो पथिन् सौभर नामक आचार्य का शिष्य था (बृ. उ. १.५.२२; ४.५.२८. माध्यं.)। बभ्रु का वंशज होने से इसे 'बाभ्रव्य' पैतृक नाम प्राप्त हुआ होगा।

वत्सनाभ--एक महर्षि। एक बार यह वर्षा में फँस गया, जब इंद्र ने भैंस का रूप धारण कर इसकी रक्षा की। आगे चल कर, इसने कृतघ्नता से उसी भैंस को भक्षण करने चाहा, किंतु योग्य समय पर इसे अपने विचारों से लज्जा उत्पन्न हुई, एवं यह प्राणत्याग करने निकला (म. अनु. १२)। किंतु धर्म ऋषि ने इसे रोक लिया, एवं मनःशांति के लिए 'शंखतीर्थ' में इसे स्नान करने के लिए कहा (स्कंद. ३.१.२५)।

वत्सपाल--(सू. इ. भविष्य.) एक राजा, जो भविष्य के अनुसार उरुक्षेप राजा का पुत्र था।

वत्सप्रि भालंदन—एक वैदिक सूक्तद्रष्टा, जो 'वात्सप्र सामन्' नामक साम का द्रष्टा था (ऋ. ९.६८; १० ४५-४६; तै. सं. ५.२.१.६; क. सं. १९.१२; मै. सं. ३. २.२; पं. ब्रा. १२.११.२५; श. ब्रा. ६.४.४.१)। प्रजा के दीर्घायुष्य के लिए, इस साम का पठन किया जाता है।

२. (सू. दिष्ट.) एक राजा, जो विष्णु के अनुसार भलंदन राजा का पुत्र था। भागवत में इसे 'वत्सप्रीति' कहा गया है, एवं इसके पुत्र का नाम प्रांशु बताया गया है। इसने कुजृंभ राक्षस का वध कर, विदूरथ राजा की कन्या

सौनंदा अथवा मुदावती से विवाह किया था (मार्क. ११३)।

वत्सप्रीति--दिष्टवंशीय वत्सप्रि राजा का नामांतर (वत्सप्रि भालंदन २. देखिये)।

वत्समित्र गोभिल--एक आचार्य, जो गौल्गुलवीपुत्र गोभिल नामक आचार्य का शिष्य था। इसके शिष्य का नाम मूलमित्र गोभिल था (वं. ब्रा. ३)।

वत्सर--(स्वा. उत्तान.) एक राजा, जो ध्रुव राजा के दो पुत्रों में से कनिष्ठ था। इसकी माता का नाम भ्रमी था। इसका ज्येष्ठ भाई उत्कल प्रारंभ से ही विरक्त था, जिस कारण कनिष्ठ होते हुए भी यह राजगद्दी पर बैठा।

इसकी पत्नी का नाम स्वर्वीथी था, जिससे इसे निम्नलिखित छः पुत्र उत्पन्न हुए थेः--पुष्पार्ण, तिग्मकेतु, ईश, ऊर्ज, वसु एवं जय (भा. ४.१०.१; १३.११)।

२. कश्यपकुलोत्पन्न एक प्रवर।

वत्सराज--कोसल नरेश वत्स राजा का नामान्तर (वत्स ५. देखिये)।

वत्सल--वसन नामक स्कंद के एक सैनिक का नामान्तर।

वत्सला--अभिमन्यु की पत्नी, जिसकी जीवनकथा मराठी 'वत्सलाहरण' नामक लोकप्रिय काव्य में प्राप्त है।

२. श्रीकृष्ण की एक गोपी (पद्म. भू. ७७)।

वत्सवालक--(सो. क्रोष्टु.) एक यादव राजा, जो विष्णु के अनुसार शूर राजा का पुत्र था।

वत्सवृद्ध--(सू. इ. भविष्य.) इक्ष्वाकुवंशीय वत्स राजा का नामान्तर (वत्स. ४. देखिये)। भागवत में इसे उरुक्रिय राजा का पुत्र कहा गया है।

वत्सव्यूह--(सू. इ. भविष्य.) इक्ष्वाकुवंशीय वत्स राजा का नामान्तर (वत्स ४. देखिये)। वायु में इसे क्षय राजा का पुत्र कहा गया है।

वत्सार--कश्यप ऋषि के अवत्सार काश्यप नामक पुत्र का नामान्तर (अवत्सार काश्यप देखिये)। काश्यप कुलोत्पन्न एक मंत्रकार के नाते इसका निर्देश प्राप्त है, किन्तु ऋग्वेद में इसके नाम पर एक भी मंत्र उपलब्ध नहीं है। इसे निध्रुव एवं रेभ्य नामक दो पुत्र थे।

वत्स्य--वात्स्य नामक भृगुकुलोत्पन्न गोत्रकार का नामान्तर (वात्स्य ७. देखिये)।

वदान्य--एक ऋषि, जिसकी कन्या का नाम सुप्रभा था। अष्टावक्र राजा ने सुप्रभा से विवाह करने की इच्छा प्रकट की, जिस पर इसने उसे उत्तरदिशा की यात्रा करने के लिए कहा। वह यात्रा पूरी होने पर इसने सुप्रभा का विवाह अष्टावक्र से कराया (म. अनु. ५०.११; अष्टावक्र देखिये)।

वध--एक राक्षस, जो यातुधान नामक राक्षस का पुत्र था। इसके पुत्रों के नाम विघ्न एवं शमन थे (ब्रह्मांड. ३.७.९४)

वध्रिमती--पुरंधि नामक स्त्री का नामान्तर (ऋ. ११६.१२)। अश्वियों की कृपा से इसके पति को पुनः पुरुषत्व प्राप्त हुआ था। आगे चल कर इसे हिरण्यहस्त नामक पुत्र भी उत्पन्न हुआ था (ऋ.१. ११६.१३; ११७.२४; ६.६२.७; १०.३९.७; ६५.१२)।

लो. तिलक के द्वारा वध्रिमती के इस कथा का अन्वयार्थ अन्य प्रकार से लगाया गया है, जिसमें उन्होंने आर्यों के मूलस्थान उत्तरध्रुव में होने के अपने सिद्धान्त का संकेत पाया है (आर्यों का मूलस्थान, पृ. २२८)।

वध्र्यश्व--(सो. नील.) एक राजा, जो मुद्गल राजा का पुत्र था।

ऋग्वेद में अग्निपूजा के समर्थक राजा के रूप में इसका निर्देश प्राप्त है, एवं सरस्वती के द्वारा इसे दिवोदास नामक पुत्र प्रदान किये जाने का निर्देश प्राप्त है (ऋ. ६.३१.१; १०.६९.१; अ. वे. २.२९.४)। इसका पुत्र दिवोदास भी इसीके तरह श्रेष्ठ यज्ञकर्ता था। वध्र्यश्व का शब्दशः अर्थ 'बधिया अश्वोंवाला' होता है। कई अभ्यासकों के अनुसार, इसे सुमित्र नामान्तर भी प्राप्त था।

पुराणों में इसके 'बध्यश्व,' 'वध्रश्व,' 'वध्र्याश्व' एवं 'विंध्याश्व' नामान्तर प्राप्त हैं। मत्स्य में इसे इंद्रसेन राजा का, एवं वायु में 'ब्रह्मिष्ठ' राजा का पुत्र कहा गया है। मत्स्य में इसका वंशक्रम ब्रह्मिष्ठ-इंद्रसेन-विन्ध्याश्व-दिवोदास इस क्रम से दिया गया है। कई अभ्यासकों के अनुसार, यह ब्रह्मिष्ठ एवं इंद्रसेना का पुत्र था। किन्तु मत्स्य में 'इंद्रसेना' के बदले 'इंद्रसेन' पाठ का स्वीकार कर, इसे इंद्रसेन राजा का पुत्र कहा गया है, जो गलत प्रतीत होता है।

इसकी पत्नी का नाम मेनका था, जिससे इसे दिवोदास एवं अहल्या नामक संतान उत्पन्न हुई (मत्स्य. ५०.७; वायु. ९९.१९५; ह. वं. १.३२.७०)।

२. भृगुकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

वध्र्यश्व अनूप--एक सामद्रष्टा आचार्य (पं. ब्रा. १३.३.१७)। अनूप का वंशज होने के कारण, इसे 'अनूप' पैतृक नाम प्राप्त हुआ था।

वन—(सो. अनु.) एक राजा, जो भागवत के अनुसार उशीनर राजा का पुत्र था। इसे 'नववत्' एवं 'नर' नामान्तर प्राप्त थे।

वनजात—(सो. विदू.) एक राजा, जो मत्स्य के अनुसार हृदीक राजा का पुत्र था।

वनस्पति--घृतपृष्ठ राजा के सात पुत्रों में से एक (भा. ५.२०.२१)।

वनायु--एक दानव, जो कश्यप एवं दनु के दस प्रधान पुत्रों में से एक था।

२. पुरूरवस् राजा को उर्वशी से उत्पन्न छः पुत्रों में से एक पुत्र। अन्य पाँच पुत्रों के नाम निम्नप्रकार थेः- आयु, धीमत्, अमावसु, दृढायु एवं शतायु (म. आ. ७०.२२)।

वनार्ह—एक यादव राजा, जो वायु के अनुसार हृदीक राजा का पुत्र था।

वनेन--प्रसूत देवों में से एक।

वनेयु--(सो. पुरूरवस्) एक राजा, जो भागवत, वायु एवं विष्णु के अनुसार रौद्राश्व राजा का पुत्र था। इसकी माता का नाम मिश्रकेशी था। मत्स्य में इसे विनेयु कहा गया है।

इसके निम्नलिखित नौ भाई थेः- ऋचेयु, कक्षेयु कृकणेयु, स्थण्डिलेयु, वनेयु, तेजेयु, स्थलेयु, धर्मेयु एवं संतनेयु (म. आ. ८९.९-१०)।

वंदन—एक ऋषि, जिस पर अश्वियों की कृपा थी। यह जब कुएँ में गिरा था, तब अश्वियों ने इसे बाहर निकाला (ऋ. १.११६.११; ११७.५; १०.३९.८)। पुराना रथ जिस प्रकार नया बनाया जाता है, उसी प्रकार अश्वियों ने इसे तरुण बनाया (ऋ.१. ११९.७); इसकी आयु बढाई; एवं इसका उद्धार किया (ऋ. १.११६)। सायण के अनुसार, कुएँ में गिरने के कारण इसे अपने पत्नी का विरह हुआ था, जिसे भी अश्वियों ने दूर किया।

वंदिन्--बंदिन् नामक पंडित का नामान्तर (बंदिन् देखिये)।

वपु—एक अप्सरा, जिसने दुर्वासस् के तपोभंग का असफल प्रयत्न किया था। दुर्वासस् ने इसे शाप दिया, जिस कारण अगले जन्म में यह कंधर एवं मेनका की तार्क्षी नामक कन्या बन गई (मार्क. १.४९-५६; २.४१)।

वपुष्टमा—काशिराज सुवर्णवर्मन् की कन्या, जो जनमेजय पारिक्षित राजा की पत्नी थी। इसके शतानीक एवं शंकुकर्ण नामक दो पुत्र थे (म. आ. ४०.८; ९०. ९४)।

वपुष्मत्--स्वायंभुव मनु के पुत्रों में से एक।

२. धर्मसावर्णि मन्वन्तर के सप्तर्षियों में से एक।

३. एक राजा, जो विदर्भराज संक्रंदन राजा का पुत्र था। सुविख्यात दिष्टवंशीय राजा दम के साथ इसका शत्रुत्व था। दशार्ण देश के राजा चारुवर्मन् की कन्या सुमना का दम ने हरण किया, जिस कारण दम से इसका शत्रुत्व बढता ही गया।

कालोपरान्त दम से बदला लेने के लिए, इसने उसके पिता नरिष्यन्त का वध किया। पश्चात् दम की माता इंद्रसेना ने अपने पति नरिष्यन्त के मृत्यु की बात उसे कह दी, एवं स्वयं पति के साथ सती हो गई।

माँ एवं पिता की मृत्यु की बात सुन कर दम अत्यधिक क्रुद्ध हुआ, एवं उसने इस पर आक्रमण कर के इसका वध किया। पश्चात् उसने इसके रक्त से पितृतर्पण किया, एवं इसके ही मांस से पिंडदान कर, राक्षसकुलोत्पन्न ब्राह्मणों को खाने के लिए दिया (मार्क. १३३; सुमना देखिये)।

वपुष्मती--सिंधुराज की कन्या, जो मरुत्त राजा की पत्नी थी (मार्क. १२०.४७)।

२. स्कंद की अनुचरी एक मातृका।

वप्रिन्--द्वापरयुगों में उत्पन्न अठ्ठाईस व्यासों में से एक (व्यास देखिये)।

वमक--तामस मन्वन्तर के सप्तर्षियों में से एक।

वम्र--सोमयज्ञ करनेवाला एक ऋषि, जिस पर अश्वियों की कृपा थी (ऋ. १.५१.९; ११२.१५; १०.९९.५)।

वम्र वैखानस--एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. १०.९९. १२)। ऋग्वेद के इसी सूक्त में अन्यत्र इसका निर्देश वम्र एवं वम्रक नाम से किया है, एवं इसे इंद्र की उपासना करनेवाला धनाढ्य ऋषि कहा गया है (ऋ. १०.९९. ५-१२)।

वम्रक—वम्र वैखानस नामक आचार्य का नामान्तर।

वम्री—एक व्यक्ति (ऋ. ४.११.९)। वम्र का शब्दशः अर्थ 'चींटी' होता है। पिशेल के अनुसार, यह एक ऐसा व्यक्ति था कि, जो अविवाहित माता से उत्पन्न होने के कारण वन में छोड़ा गया था। वहाँ यह चींटियों के द्वारा भक्षण किये जानेवाला था, जितने में इसकी मुक्तता की गई।

वय—वसिष्ठकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

वयस्य—पयस्य नामक अंगिरस्पुत्र का नामान्तर।

वयुन--एक ऋषि, जो कृशाश्व ऋषि का पुत्र था। इसकी माता का नाम धिषणा था (भा. ६.६.२०)।

वयुना--एक पितृकन्या, जो भागवत के अनुसार पितर एवं स्वधा की कन्या थी।

वय्य--एक राजा, जिसका निर्देश ऋग्वेद में प्रायः सर्वत्र तुर्वीति राजा के साथ प्राप्त है (ऋ. १.५४.६; २.१३.१२; ४.१९.६)। अश्वियों ने इसका रक्षण किया था (ऋ. १.११२.६)।

सायण के अनुसार, तुर्वीति राजा का पैतृक नाम वय्य था, किन्तु रौथ इसे तुर्वीति राजा का एक मित्र मानते है।

वर—पितरों में से एक।

वरंवरा—एक अप्सरा, जो कश्यप एवं मुनि की कन्याओं में से एक थी।

वरतंतु—एक व्याकरणाचार्य, जिसका निर्देश एक शाखाप्रवर्तक आचार्य के नाते पाणिनि के अष्टाध्यायी में प्राप्त है (पाणिनि देखिये)।

वरत्रिन--शुक्र के चार पुत्रों में से एक। इसके पृथुरश्मि, बृहदांगिरस एवं रजत नामक तीन पुत्र थे, जो यज्ञकर्मविरोधी होने के कारण इंद्र के द्वारा मारे गयें। कालोपरान्त उनके कटे हुए सर से खजूर के पेड़ निर्माण हुए (ब्रह्मांड. ३१.८३-८४)।

पंचविंश ब्राह्मण में पृथुरश्मि के संबंध में विभिन्न कथा दी गयीं हैं, जहाँ उसे यज्ञविरोधी कहते हुए भी, वह इंद्र के द्वारा बचाया जाने का निर्देश प्राप्त है (पृथुरश्मि देखिये)।

वरद—पितरों में से एक।

२. स्कंद का एक सैनिक (म. स ४४. ५९)।

वरप्र--महौजस वंश का एक कुलांगार राजा, जिसने दुर्व्यवहार के कारण अपने ज्ञातिबांधवों का एवं स्वजनों का नाश किया (म. उ. ७२.१५)। पाठभेद-'वरयु'।

वररुचि--एक सुविख्यात प्राकृत व्याकरणकार, जिसके द्वारा रचित 'प्राकृतप्रकाश' नामक ग्रंथ प्राकृत व्याकरण का आद्य ग्रंथ माना जाता है।

यह पाणिनीय व्याकरण के सुविख्यात वार्तिककार कात्यायन वररुचि से भिन्न, एवं उससे काफ़ी उत्तरकालीन था। विक्रम संवत् के प्रवर्तक सम्राट् विक्रमादित्य के विद्वत्सभा का यह एक सभासद, एवं उसका धर्माधिकारी था (वाररुच निरुक्त सम्मुच्चय पृ. ४२)।

वार्तिककार वररुचि के समान इसका गोत्र भी कात्यायन ही था, एवं इसे श्रुतिधर नामान्तर भी प्राप्त था (सदुक्तिकरणामृत पृ. २९७)। इसने पाणिनि के अष्टाध्यायी पर एक वृत्ति लिखी थी, जिसका निर्देश-हस्तलेखों के सूचि में प्राप्त है (C. C.)।

कातंत्र व्याकरण के वृत्तिकार दुर्गसिंह के अनुसार, उस व्याकरण का कृदंत नामक उत्तरार्ध इसके द्वारा विरचित था।

वररुचि के द्वारा यास्क के निरुक्त पर 'निरुक्त समुच्चय' नामक टीका का निर्माण किया गया था। स्कंद-स्वामिन् के द्वारा विरचित निरुक्त टीका में 'वाररुच निरुक्त समुच्चय' की पर्याप्त सहाय्यता ली गयी हैं, एवं इसके अनेकानेक उद्धरण भी लिये गयें हैं।

प्राकृतप्रकाश—वररुचि का 'प्राकृतप्रकाश' उपलब्ध प्राकृत व्याकरणों में सब से अधिक प्राचीन माना जाता है। इस ग्रंथ में बारह परिच्छेद हैं, जिनमें से पहले नौ परिच्छेदों में 'महाराष्ट्री' प्राकृत के लक्षणों का वर्णन है। दसवें परिच्छेद में 'पैशाची', एवं ग्यारहवें परिच्छेद में 'मागधी' के लक्षण बतायें गये हैं। बारहवें परिच्छेद में 'शौरसेनी' का विवेचन प्राप्त है।

इस ग्रंथ में से आखिरी तीन परिच्छेद उत्तरकालीन माने जातें हैं, जो स्वयं वररुचि के द्वारा नहीं, बल्कि भामह अथवा अन्य कोई टीकाकार के द्वारा लिखे गये होंगे।

इस ग्रंथ की प्राचीनतम टीका कात्यायन द्वारा विरचित 'प्राकृतमंजरी' है, जिसका रचनाकाल लगभग ई. स. ६ वी-७ वीं शताब्दी माना जाता है। इस ग्रंथ की अन्य सुविख्यात टीकाएँ निम्न है:—भामहकृत 'मनोरमा'; वसंतराजकृत 'प्राकृत संजीवनी' तथा सदानंद कृत 'सदानंदा'।

प्राकृत व्याकरण का सर्वमान्य संस्करण कॉवेल द्वारा संपादित, एवं ई. स. १८६८ में लंदन में प्रकाशित किया गया है, जिसमें भामह की टीका के साथ अंग्रेजी अनुवाद एवं टिप्पणियाँ भी प्राप्त है:—

ग्रंथ--वररुचि क नाम पर निम्नलिखित ग्रंथ प्राप्त है—१. तैत्तिरीयप्रातिशाख्यव्याख्या (त्रिभाष्यरत्न १.१८.२.१४); २. निरुक्तसमुच्चय; ३. लिंगविशेषविधि (लिंगानुशासन); ४. प्रयोगविधि; ५. कातंत्रउत्तरार्ध ६. प्राकृतप्रकाश; ७. उपसर्गसूत्र; ८. पत्रकौमुदी ९. विद्यासुंदर काव्य; १०. यंत्रकौमुदी।

२. एक सुविख्यात व्याकरणकार, जो पाणिनीय व्याकरण के वार्तिकों का कर्ता माना जाता है। इसका संपूर्ण नाम कात्यायन वररुचि था (कात्यायन देखिये)।

३. एक सुविख्यात नाट्यशास्त्रप्रणेता (मत्स्य. १०. २५)।

वरशिख—एक ज्ञातिप्रमुख, जिसके ज्ञाति का अभ्यावर्तिन् चायमान एवं वृचिवत् राजाओं ने पराजय किया था। (ऋ. ६.२७.४-५)। झिमर के अनुसार, वरशिख तुर्वश एवं रुचीवन्त लोगों का नेता था (अल्टिन्डिशे लेवेन. १३३)। किन्तु यह विधान केवल अनुमानात्मक ही प्रतीत होता है। ऋग्वेद के इसी सूक्त में अभ्यावर्तिन् चायमान के भय से इसका पुत्र मृत होने का निर्देश प्राप्त है।

बृहद्देवता में वारशिख लोगों का विर्देश प्राप्त है, जो संभवतः इसके ही वंशज होंगे (बृहद्दे. ५.१२४)।

वरस्त्री—बृहस्पति की एक बहन, जो प्रभास नामक वसु की पत्नी थी (म. आ. ६०.२६; वायु. ८४.१५)। यह ब्रह्मवादिनी थी, एवं योगसामर्थ्य के कारण समस्त सृष्टि में संचार करती थी।

वरा—हेमधर्म राजा की कन्या, जिसने अविक्षित् राजा का स्वयंवर में वरण किया था (मार्क. ११९. १६)।

वरांग--(पौर. भविष्य.) एक राजा, जो विष्णु के अनुसार धर्म राजा का पुत्र था।

वरांगना--मथुरा के उग्रसेन राजा की कन्या।

वरांगिन्--दिवंजय राजा का एक पुत्र (ब्रह्मांड. २. ३६.१०१)।

वरांगी—वज्रांग नामक असुर की पत्नी (मत्स्य. १४५)। ब्रह्मा ने इसे वज्रांग दैत्य की पत्नी बनने के लिए ही उत्पन्न किया था (पद्म. सृ. ४२)। वज्रांग से इसे तारकासुर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था (वज्रांग देखिये)। इसे वरांगा नामान्तर भी प्राप्त था।

२. सोमवंशीय संयाति राजा की पत्नी, जो दृशद्वत् राजा की कन्या थी। इसके पुत्र का नाम अहंयाति था (म. आ. ९०.१४)।

वराह—विष्णु का तृतीय अवतार, जो हिरण्याक्ष नामक असुर के वध के लिए उत्पन्न हुआ था। इसे 'यज्ञवराह' नामांतर भी प्राप्त था (म. स. परि. १ क्र. २१ पंक्ति. १४०)।

वैदिक साहित्य में—वराह अवतार का अस्पष्ट निर्देश वैदिक साहित्य में प्राप्त है। किन्तु वहाँ कौनसी भी जगह वराह-अवतार को विष्णु का अवतार नहीं बताया गया है।

ऋग्वेद में इंद्र के द्वारा वराह का वध होने की कथा दी गई है (ऋ. १०.९९.६)। प्रजापति के द्वारा वराह, का रूप लेने की कथा तैत्तिरीय-संहिता में प्राप्त है। पृथ्वी के उत्पत्ति के पूर्वकाल में प्रजापति वायु का रूप धारण कर अंतरिक्ष में घूम रहा था। उस समय समुद्र के पानी में डूबी हुई पृथ्वी उसने सहजवश देखी। फिर प्रजापति ने वराह का रूप धारण कर पानी में प्रवेश किया, एवं पानी में डूबी हुई पृथ्वी को उपर उठाया। तत्पश्चात् उसने पृथ्वी को पोंछ कर स्वच्छ किया, एवं वहाँ देव, मनुष्य आदि का निर्माण किया (तै. सं. ७.१.५.१)।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में यही कथा कुछ अलग ढँग से दी गई है, जिसके अनुसार ब्रह्मा के नाभिकमल के निचले भाग में स्थित कीचड़ प्रजापति ने वराह का रूप धारण कर क्षीरसागर से उपर लाया, एवं उसे ब्रह्मा के नाभिकमल के पत्रों पर फैला दिया। आगे चल कर उसी कीचड़ ने पृथ्वी का रूप धारण किया (तै. ब्रा. १.१.३)।

पुराणों में--इन ग्रंथों में निर्दिष्ट विष्णु के अवतार प्रायः 'वराहअवतार' से ही प्रारंभ होता हैं। हिराण्याक्ष नामक असुर पृथ्वी का हरण कर उसे पाताल में ले गया। उस समय विष्णु ने वराह का रूप धारण कर, अपने एक ही दाँत से पृथ्वी को उपर उठा कर समुद्र के बाहर लाया, एवं उसकी स्थापना शेष नाग के मस्तक पर की। तत्पश्चात् उसने हिराण्याक्ष का भी वध किया (म. व. परि. १. क्र. १६. पंक्ति. ५६-५८; क्र. २७. पंक्ति. ४७-५०; शां. २६०; मत्स्य. ४७.४७.२४७-२४८; भा. १.३.७; २.७.१; ३.१३.३१; लिंग. १.९४; वायु. ९७.७; ह. वं. १.४१; पद्म. उ. १६९; २३७)।

विष्णु का यह अवतार वाराह-कल्प के प्रारंभ में हुआ (वायु. २३.१००-१०९)। कई पुराणों में इसका स्वरूपवर्णन प्राप्त है, जहाँ इसे चतुर्बाहु, चतुष्पाद, चतुर्नेत्र एवं चतुर्मुख कहा गया है। हिरण्याक्ष के वध के पश्चात् इसने यथाविधि श्राद्ध किया था (म. शां. ३३३. १२-१७)।

वराहस्थान--जिस स्थानपर इसने पृथ्वी का उद्धार किया, उस स्थान को 'वराहतीर्थ' कहते हैं (म. व. ८१.१५; पद्म. उ. १६९)। वराह पुराण के अनुसार, यह 'वराहक्षेत्र' अथवा 'कोकामुखक्षेत्र' बंगाल में त्रिवेणी नदी के तट पर नाथपूर ग्राम के पास स्थित है (वराह. १४०.)। गंगानदी के तट पर सोरोन ग्राम में वराह-लक्ष्मी का मंदीर है (वराह. १३७)।

वराह-अवतार का अन्वयार्थ--विष्णु के दस अवतारों में से मत्स्य, कूर्म एवं वराह ये 'दिव्य,' अर्थात मनुष्यजाति के उत्पत्ति के पूर्व के अवतार माने जाते हैं। विष्णु के मानुषी अवतार अर्धमनुष्याकृति नृसिंह से, एवं वामन अवतार से प्रारंभ होते है। इससे प्रतीत होता है कि, मत्स्य, वराह एवं कूर्म अवतार पृथ्वी के उस अवस्था में उत्पन्न हुए थे, जिस समय पृथ्वी पर कोई भी मनुष्य प्राणि का अस्तित्व नहीं था। प्राणिजाति की उत्क्रान्ति के दृष्टि से भी मत्स्य, कूर्म, वराह यह क्रम सुयोग्य प्रतीत होता है। क्यों कि, प्राणिशास्त्र के अनुसार सृष्टि में सर्वप्रथम जलचर प्राणि (मत्स्य) उत्पन्न हुए, एवं तत्पश्चात् क्रमशः जमीन पर घसीट कर चलनेवाले (कूर्म), स्तनोंवाले (वराह), एवं अन्त में मनुष्यजाति का निर्माण हुआ। इस प्रकार पुराणों में निर्दिष्ट विष्णु के दैवी अवतार प्राणिजाति के उत्क्रान्ति के क्रमशः विकसित होनेवाले रूप प्रतीत होते हैं।

प्राणिशास्त्र की दृष्टि से, प्राणीजाति के उत्पत्ति के पूर्व समस्त सृष्टि जलमय थी, जहाँ के कीचड़ में सर्वप्रथम प्राणिज़ाति की उत्पत्ति हुई। इस दृष्टि से देखा जाये तो, प्रजापति ने वराह का रूप धारण कर समुद्र का सारा कीचड़ पांनी के बाहर लाया, एवं उसी कीचड़ से सर्वप्रथम पृथ्वी का, एवं तत्पश्चात् पृथ्वी के प्राणिसृष्टि का निर्माण किया, यह तैत्तिरीय ब्राह्मण में निर्दिष्ट कल्पना उत्क्रान्तिवाद की दृष्टि से सुयोग्य प्रतीत होती है।

वैदिक वाङ्मय में सर्वत्र ब्रह्मा को सृष्टि का निर्माण करनेवाला देवता माना गया है, जिसका स्थान ब्राह्मण एवं पौराणिक ग्रंथों में क्रमशः प्रजापति एवं विष्णु के द्वारा लिया गया है (ब्रह्मन्, विष्णु एवं प्रजापति देखिये)। यही कारण है कि, ब्राह्मण एवं पौराणिक ग्रंथों में वराह को क्रमशः प्रजापति एवं विष्णु का अवतार कहा गया है।

२. युधिष्ठिर की सभा का एक ऋषि (म. स. ४.१५)।

वराहक—धृतराष्ट्रकुलोत्पन्न एक नाग, जो जनमेजय के सर्पसत्र में दग्ध हुआ था (म. आ. ५२. १८)।

वराहक--कुबेरसभा में उपस्थित एक यक्ष (म. स. १०.१६)।

वराहाश्व—एक दानव (म. शां. २२०.५२)।

वरिष्ठ—चाक्षुष मनु के पुत्रों में से एक (म. अनु. १८.२०)। इसने गृत्समद ऋषि को साम के अशुद्ध पाठन के कारण शाप दिया था (म. अनु. १८.२३-२५: गृत्समद १. देखिये)।

वरिन्—एक सनातन विश्वदेव (म. अनु. ९१. ३३)।

वरीताक्ष--एक असुर, जो पूर्वकाल में पृथ्वी का शासक था (म. शां. २२०.५६)। पाठभेद-'वीरताम्र'।

वरीयस्--(स्वा.) एक राजा, जो भागवत के अनुसार पुलह राजा का पुत्र था। इसकी माता का नाम गति था।

२. सावर्णि मनु के पुत्रों में से एक।

वरु--एक व्यक्तिनाम (ऋ. ८.२३.२८; २४.२८; २६.२)। इसका निर्देश प्रायः सर्वत्र सुषामन् के साथ प्राप्त है (सुषामन् देखिये)।

वरु आंगिरस--एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. १०. ९६)।

वरुण—एक सर्वश्रेष्ठ वैदिक देवता, जो वैदिक साहित्य में आकाश का, एवं वैदिकोत्तर साहित्य में समुद्र का प्रतीक माना गया है।

वैदिक साहित्य में— इंद्र के साथ वरुण भी एक महत्तम देवता माना गया है। नियमित रूप से प्रकाशित होनेवाले मित्र (सूर्य) देवता से संबंधित होने के कारण, वैदिक साहित्य में वरुण सृष्टि के नैतिक एवं भौतिक नियमों का सर्वोच्च प्रतिपालक माना गया है। वैदिकोत्तर साहित्य में, सृष्टि के सर्वोच्च देवता के रूप में प्रजापति का विकास होने पर, वरुण का श्रेष्ठत्व धीरे धीरे कम होता गया, एवं इसके भूतपूर्व अधिराज्य में से केवल जल पर ही इसका प्रभुत्व रह गया। इसी कारण उत्तर-कालीन साहित्य में यह केवल समुद्र की देवता बन गया।

स्वरूपवर्णन--वरुण का मुख (अनीकम्) अग्नि के समान तेजस्वी है, एवं सूर्य के सहस्र नेत्रों से यह मानवजाति का अवलोकन करता है (ऋ. ७.३४; ८८)। इसी कारण इसे 'सूर्यनेत्री' कहा गया है (ऋ. ७.६६)। मित्र एवं त्वष्ट्र के भाँति यह सुंदर हाथोंवाला (सुपाणि) है, एवं एक स्वर्णद्रापि एवं द्युतिमत् वस्त्र यह परिधान करता है (ऋ. १०.२५)। इसका रथ सूर्य के समान् द्युतिमान् है, जिसमें स्तंभों के स्थान पर नभ्रियाँ लगी है (ऋ. १. १२२)।

शतपथ ब्राह्मण में इसे श्वेतवर्ण, गंजा एवं पीले नेत्रोंवाला वृद्ध पुरुष कहा गया है (श. ब्रा. १३.३.६)।

निवासस्थान--मित्र एवं वरुण का गृह स्वर्णनिर्मित है, एवं वह द्युलोक में स्थित है (ऋ. ५.६७)। इसके गृह में सहस्त्रद्वार है, जहाँ यह सहस्त्र स्तंभोवाले आसन (सदस) पर बैठता है (ऋ. ५.६८)। अपने इस भवन में (पस्त्यासु) बैठ कर यह समस्त सृष्टि को अवलोकन करता है (ऋ. १.२५)।

सर्वदर्शी सूर्य अपने गृह से उदित हो कर, मनुष्यों के कृत्यों की सूचना मित्र एवं वरुणों को देता है (ऋ. ७.६०)।

गुप्तचर--वरुण के गुप्तचर (स्पशः) द्युलोक से उतर कर संसार में भ्रमण करते हैं, एवं सहस्त्र नेत्रों से युक्त होने के कारण, संपूर्ण संसार का निरीक्षण करते है (अ. वे. ४.१६)। संभवतः आकाश में स्थित तारों को ही वरुण के दूत कहा गया है। ऋग्वेद में सूर्य को ही वरुण का स्वर्ण पंखोंवाला दूत कहा गया है (ऋ. १०.१२३)। ईरान के 'मिथ्र' देवता के गुप्तचर भी 'स्पश्' नाम से प्रसिद्ध हैं, जो वैदिक साहित्य में निर्दिष्ट मित्र एवं वरुणों के गुप्तचरों से काफ़ी मिलते जुलते हैं।

सृष्टि का राजा--अकेले एवं मित्र के साथ वरुण को देवों का, मनुष्यों का तथा समस्त संसार का राजा (सम्राट्) कहा गया है (ऋ. १.१३२; ५.८५)। ऋग्वेद में यह उपाधि प्रायः इंद्र को प्रदान की जाती है, किन्तु वह वरुण को इंद्र से भी अधिक बार प्रदान की गयी है। ऋग्वेद में अन्यत्र इसके सार्वभौम सत्ता (क्षत्र) का, एवं एक शासक के नाते (क्षत्रिय) इसका अनेक बार निर्देश प्राप्त है।

वरुण को प्रकृति के नियमों का महान् अधिपति कहा गया है। इसने द्युलोक एवं पृथ्वी की स्थापना की, एवं इसके विधान के कारण ही द्युलोक एवं पृथ्वी अलग अलग हैं (ऋ. ६.७०; ८.४२)। इसने ही अग्नि की जल में, सूर्य की आकाश में, एवं सोम की पर्वतों पर स्थापना की (ऋ. ५.८५)। वायुमंडळ में भ्रमण करनेवाला वायु वरुण का ही श्वास है (ऋ. ७.८७)।

पृथ्वी पर रात्रि एवं दिनों की स्थापना वरुण के द्वारा ही की गई है, एवं उनका नियमन भी यही करता है। रात्रि में दिखाई देनेवाले चंद्र एवं तारका इसके कारण ही प्रकाशित होते है (ऋ. १.२४)। इस प्रकार जहाँ मित्र केवल दिन के दिव्य प्रकाश का अधिपति है, वहाँ वरुण को रात एवं दिन दोनों के ही प्रकाश का अधिपति माना गया है।

असुर वरुण--ऋग्वेद में मित्र एवं वरुण को अनेक बार असुर (रहस्यमय व्यक्ति) कहा गया है (ऋ. १.३५.७; २.७.१०; ७.६५.२; ८.४२.१)। इसे एवं मित्र को रहस्यमय एवं उदात्त (असुरा आर्या) भी कहा गया है (ऋ. ७.६५)। ऋग्वेद में अन्यत्र इसके माया (गुह्य-शक्ति) का निर्देश प्राप्त है, एवं अपनी इस माया के द्वारा सूर्यरूपी परिमापनयंत्र के द्वारा यह पृथ्वी को नापता है, ऐसा भी कहा गया है (ऋ. ५.८५)। यहाँ 'असुर' एवं 'गुह्यशक्ति' ये दोनों शब्द गौरव के आशय में प्रयुक्त किये गये हैं।

वरुण-देवता का अन्वयार्थ--डॉ. रा. ना. दांडेकरजी के अनुसार, समस्त सृष्टि का संचालन करने की 'यात्वामक' अथवा आसुरी शक्ति वरुण के पास थी, जिस कारण इसे वैदिक साहित्य में असुर (असु नामक शक्ति से युक्त) कहा गया है। इसी आसुरी माया के कारण, वरुण निसर्ग, देव एवं मनुष्यों का सम्राट् बन गया था, एवं इसी अपूर्व शक्ति के कारण, वैदिक साहित्य में वरुण को यक्षिन् (जादुगर) कहा गया है (ऋ. ७.८८.६)।

वरुण की इस आसुरी शक्ति का उद्गम निम्नप्रकार बताया जा सकता है। वैदिक आर्यों ने जब देखा कि, इस सृष्टि का जीवनक्रम प्रचंड हो कर भी अत्यंत नियमबद्ध एवं व्यवस्थापूर्ण है, तब इस नियमबद्ध सृष्टि का संचालन करनेवाले देवता की कल्पना उनके मन में उत्स्फूर्त हो गयी।

आकाश में प्रतिदिन प्रकाशित हो कर अस्तंगत होनेवाले सूर्य चंद्र एवं तारका; अपने नियत मार्ग से बहनेवाली नदियाँ; एवं अपने नियत क्रम से बदलनेवाली ऋतु को देख कर, इस सारे विश्वचक्र का संचालन करनेवाली कोई न कोई अदृश्य देवता होनी ही चाहिए, ऐसी धारणा उनके मन में उत्पन्न हुई। इसी अदृश्य शक्ति अथवा देवता को वैदिक आर्यों के द्वारा वरुण कहा गया, एवं यह अपने दैवी शक्ति (माया) के द्वारा सृष्टि का संचालन करता है, यह कल्पना प्रसृत हो गई।

वैदिक साहित्य के अनुसार, वरुण अपने सृष्टिसंचालन का यह कार्य सृष्टि के सारे चर एवं अचर वस्तुमात्रों को बंधन में रख कर करता है। अपनी 'माया' के कारण वरुण ने अनेक पाश निर्माण कियें हैं, जिनकी सहाय्यता से पृथ्वी के समस्त नैसर्गिक शक्तियों को यह

बाँध देता है, एवं इसी प्रकार सारे सृष्टि का नियमन करता है।

इतना ही नहीं, यह धैर्यशाली (धृतवत्) देवता अपने नियमनों के द्वारा वैश्विक धर्म (ऋत) का संरक्षण करने के लिए पापी लोगों का शासन भी करता है। इस तरह वैदिक साहित्य में वरुण देवता के दो रूप दिखाई देते हैं:– १. **बंधक वरुण**, जो सृष्टि के सारे नैसर्गिक शक्तियों को बाँध कर योजनाबद्ध बनाता है, २. **शासक वरुण**, जो अपने पाशों के द्वारा आज्ञा पालन न करनेवाले लोगों को शासन करता है।

आगे चल कर वैदिक आर्यों को अनेकानेक मानवी शत्रुओं के साथ सामना करना पड़ा, जिस कारण युद्ध में शत्रु पर विजय प्राप्त करनेवाले विजिगिषु एवं जेतृस्वरूपी नये देवता की आवश्यकता उन्हें प्राप्त होने लगी। इसीसे ही इंद्र नामक नये देवता का निर्माण वैदिक साहित्य में निर्माण हुआ, एवं आर्यों के द्वारा अपने नये युयुत्सु ध्येय–धारणा के अनुसार, उसे राष्ट्रीय देवता के रूप में स्वीकार किया गया। इंद्र के प्रतिष्ठापना के पश्चात्, वरुणदेवता की 'विश्वव्यापी सम्राट्' उपाधि धीरे धीरे विलीन हो गई, एवं सृष्टि के अनेक विभागोंमें से, केवल समुद्र के ही स्वामी के रूप में उसका महत्व मर्यादित किया गया।

जल का स्वामी—अथर्ववेद में वरुण एक सार्वभौम शासक नहीं, बल्कि केवल जल का नियंत्रक बताया गया है (अ. वे. ३.३)। ब्राह्मण ग्रंथों में भी मित्र एवं वरुण को वर्षा के देवता माने गयें हैं। जलोदर से पीडित व्यक्ति का निर्देश वैदिक साहित्य में 'वरुणगृहीत' नाम से किया गया है (तै. सं. २.१.२.१; श. ब्रा. ४.४.५.११, ऐ. ब्रा. ७. १५)।

अथर्ववेद में निर्दिष्ट यह कल्पना ऋग्वेद में निर्दिष्ट वरुणविषयक कल्पना से सर्वथा भिन्न है। ऋग्वेद में वरुण को नदियों का अधिपति एवं जल का नियामक जरूर बताया गया है। किन्तु वहाँ इसे सर्वत्र सामान्य जल से नहीं, बल्कि अंतरिक्षीय जल से संबधित किया गया है। यह मेघमंडळ के जल में विचरण करता है, एवं वर्षा कराता है। ऋग्वेद का एक संपूर्ण सूक्त इसकी वर्षा करने की शक्ति को अर्पित किया गया है (ऋ. ५.६३)। किन्तु वहाँ सर्वत्र वरुण का निर्देश नैसर्गिक शक्तियों का संचालन करनेवाले देवता के रूप में है, जहाँ जल का महत्व प्रासंगिक है। वैदिकोत्तर साहित्य में वरुण का सारा सामर्थ्य लुप्त हो कर, यह केवल समुद्र के जल का अधिपति बन गया।

व्युत्पत्ति—वरुण शब्द संभवतः वर (ढकना) धातु से उत्पन्न हुआ है, एवं इस प्रकार इसका अर्थ 'परिवृत करनेवाला' माना जा सकता है। सायण के अनुसार, 'वरुण' की व्युत्पत्ति 'पापियों को बंधनो से परिवेष्टित करनेवाला' (ऋ. १.८९) अथवा 'पापियों को अंधकार की भाँति अच्छादित करनेवाला' (तै. सं. २.१.७) बतायी गयी है। किंतु डॉ. दांडेकरजी के अनुसार, वैदिक साहित्य में वरुण शब्द का अर्थ 'बन्धन में रखना' अभिप्रेत है, एवं इस शब्द का मूल किसी युरोभारतीय भाषा में ढूँढना चाहिए।

सेमेटिक साहित्य में—ओल्डेनबर्ग के अनुसार, वैदिक साहित्य में निर्दिष्ट मित्र एवं वरुण मारोपीय देवता नहीं है, बल्कि इनका उद्‌गम ज्योतिषशास्त्र में प्रवीण सेमेटिक लोगों में हुआ था, जहाँसे वैदिक आर्यों ने इनका स्वीकार किया। इस प्रकार वरुण एवं मित्र क्रमशः चंद्र एवं सूर्य थे, तथा लघु आदित्यगण पाँच ग्रहों का प्रतिनिधित्व करते थे (ओल्डेनबर्ग, वैदिक रिलिजन २८५.९८)।

महाभारत में—इस ग्रंथ में इसे चौथा लोकपाल, आदिति का पुत्र, जल का स्वामी एवं जल में ही निवास करनेवाला देवता बताया गया है। कश्यप के द्वारा अदिति से उत्पन्न द्वादश आदित्यों में से यह एक था (म. आ. ५९.१५)। १५)। इसे पश्चिम दिशा का, जल का एवं नागलोक का का अधिपति कहा गया है (म. स. ९.७; उ. ८६. २०)।

इसने अन्य देवताओं के साथ 'विशाखयूप' में तपस्या की थी, जिस कारण वह स्थान पवित्र माना गया है (म. व. ८८.१२)। इसे देवताओं के द्वारा 'जलेश्वर-पद' पर अभिषेक किया गया था (म. श. ४६.११)।

सोम की कन्या भद्रा से इसका विवाह होनेवाला था। किंतु उसका विवाह सोम ने उचथ्य ऋषि से करा दिया। तत्पश्चात् क्रुद्ध हो कर इसने भद्रा का हरण किया, किन्तु उचथ्य के द्वारा सारा जल पिये जाने पर इसने उसकी पत्नी लौटा दी (म. अनु. १५४.१३–२८)।

वरप्रदान—अग्नि ने इसकी उपासना करने पर, इसने उसे दिव्य धनुष, अक्षय तरकस एवं कपिध्वज-रथ प्रदान किये थे (म. आ. २१६.१–२७)। इसने अर्जुन को पाश नामक अस्त्र प्रदान किया था (म. व. ४२. २७)। ऋचीक मुनि को इसने एक हज़ार श्यामकर्ण अश्व

प्रदान किये थे (म. व. ११५.१५-१६)। इसने स्कंद को यम एवं अतियम नामक दो पार्षद प्रदान किये थे (म. श. ४४.४१ पाठ.)। इसने अपने पुत्र श्रुतायुध को एक गदा प्रदान की थी, एवं उसके प्रयोग के नियम उसे बताये थे (म. द्रो. ६७.४९)। रावण के बंदिशाला से सीता की मुक्ति होने के पश्चात्, वह निष्कलंक होने के संबंध में इसने राम को विश्वास दिलाया था (म. व. २७५.२८)।

परिवार—इसकी ज्येष्ठ पत्नी का नाम देवी (ज्येष्ठा) था, जो शुक्राचार्य की कन्या थी। उससे इसे बल, अधर्म एवं पुष्कर नामक एक पुत्र, एवं सुरा नामक एक कन्या उत्पन्न हुई थी (म. आ. ६०.५१-५२; उ. ९६.१२)।

इसकी अन्य पत्नी का नाम वारुणी अर्थात् गौरी था, जिससे इसे गो नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था (म. स. ९. ६.९७*; ९.१०८*))

इसकी तृतीय पत्नी का नाम शीततोया था, जिससे इसे श्रुतायुध नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था (श्रुतायुध देखिये)।

इनके अतिरिक्त, जनक की सभा का सुविख्यात ऋषि बन्दिन् इसीका ही पुत्र था (म. व. १३४.२४)। रुद्र के यज्ञ से उत्पन्न हुए भृगु, अंगिरस् एवं कवि नामक तीन पुत्रों में से, इसने भृगु का पुत्र के रूप में स्वीकार किया था। इसके कारण यही पुत्र 'भृगु वारुणि' नाम से सुविख्यात हुआ (म. अनु. १३२.३६; भृगु वारुणि देखिये)। अगस्त्य एवं वसिष्ठ ऋषियों को भी मित्रावरुणों के पुत्र कहा गया है (विवस्वत् देखिये)।

२. एक आदित्य, जो बारह आदित्यों में से नौवाँ आदित्य माना जाता है। यह श्रावण माह में प्रकाशित होता है (भवि. ब्राह्म. ७८)। भागवत के अनुसार, यह शुचि (आषाढ) माह में प्रकाशित होता है, एवं इसकी चौदह सौ किरणें रहती हैं (भा. १२.११)। इसकी पत्नी का नाम चर्षणी था, जिससे इसे भृगु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था (भा. ६.१८.४)।

३. एक मरुत्, जो मरुतों के तीसरे गण में शामिल था।

४. एक देवगंधर्व, जो कश्यप एवं मुनि के पुत्रों में से एक था (म. आ. ५९.४१)।

वरुणमित्र गोभिल—एक आचार्य, जो मूलमित्र नामक आचार्य का शिष्य था (वं. ब्रा. ३)।

वरुत्रिन्—शुक्राचार्य के पुत्र वरत्रिन् का नामान्तर। वायु में इसके ब्रह्मिष्ठ एवं सुरयाजक पुत्रों के नाम निम्न-प्रकार दिये गये हैं:—रंजन, पृथुरश्मि, विद्वस् एवं बृहद्गिरस् (वायु. ६५.७८; वरत्रिन् देखिये)।

वरूथ—एक गंधर्व, जो कश्यप एवं अरिष्टा के पुत्रों में से एक था।

२. एक ब्राह्मण, जिसने अपनी कदंबा नामक कन्या दुर्गम नामक असुर को विवाह में दी थी (मार्के. ७२. ४२)।

वरूथप—एक ग्वाला, जो कृष्ण का समवर्ती था (भा. १०.२२.३१)।

वरूथिनी—एक अप्सरा, जो अर्जुन के स्वागत-समारोह में उपस्थित थी (म. व. ४४.२९)।

वरेण्य—भृगु वारुणि के सात पुत्रों में से एक, जिसे विभु नामान्तर प्राप्त था। इसके अन्य छः भाइयों के नाम निम्न थे:—च्यवन, शुचि, और्व, शुक्र, वज्रशीर्ष एवं सवन (म. अनु. ८५.१२६-१२९)।

२. पितरों में से एक।

३. एक देवगँधर्व, जो कश्यप एवं अरिष्टा के पुत्रों में से एक था।

४. माहिष्मति देश का एक राजा (गणेश. २.१३१-१४८)।

वर्कु वार्ष्णि—एक राजा, जो वृष्णि राजा का पुत्र था। इसे 'वार्ष्णि' पैतृक नाम प्राप्त था।

वर्गा—एक अप्सरा, जो कुबेर की प्रेयसी थी। इसकी सौरभेयी, समीची, बुद्बुदा एवं लता नामक चार सखियाँ थी।

किसी ब्राह्मण के शाप के कारण, यह एवं इसकी चार ही सखियाँ ग्राह बन गयी थी (म. आ. २०८. १९)। अर्जुन ने इनका ग्राहयोनि से उद्धार किया, जहाँ 'पंचाप्सरतीर्थ' नामक तीर्थ का निर्माण हुआ।

वर्चस्—सोम नामक वसु का पुत्र, जो अगले जन्म में अभिमन्यु बन गया (म. आ. ६०.२१)।

२. एक राक्षस (भा. १२. ११.४०)।

३. सुचेतस् ऋषि का एक पुत्र, जिसके पुत्र का नाम विहव्य था (म. अनु. ३०.६१)।

वर्चिन्—एक असुर, जो शंबर नामक दस्यु (असुर) का सहकारी था। इंद्र के द्वारा इसका वध हुआ (ऋ. ७. ९९.५)। ऋग्वेद में अन्यत्र इसे दास भी कहा गया है, एवं इसे वृचीवन्त लोगों से संबंधित किया गया है (ऋ. ४.३०.१५; ६.२७.५-७)।

वर्चोधामन्—सत्यदेवों में से एक।

वर्णिका—अधर्मकन्या माया के सात रूपों में से एक (माया देखिये)।

वर्तिवर्धन—(प्रद्योत. भविष्य.) प्रद्योत वंश में उत्पन्न हुआ एक राजा (प्रद्योत २. देखिये)। वायु में इसे अजक राजा का पुत्र कहा गया है।

वर्धन—कृष्ण एवं मित्रविंदा के पुत्रों में से एक (भा. १०.६१.१६)।

२. एक स्कंदपार्षद, जो अश्वियों के द्वारा स्कंद को प्रदान किये गये दो पार्षदों में से एक था। दूसरे पार्षद का नाम नंदन था (म. स. ४४.३४)।

वर्धमान—(सो. वसु.) एक राजा, जो मत्स्य के अनुसार वसुदेव एवं उपदेवी का पुत्र था।

वर्मक—पूर्व भारत में स्थित एक लोकसमूह, जिसका भीमसेन ने अपने पूर्वदिग्विजय के समय पराजय किया था। इस देश के राजा का नाम भी वर्मक ही था (म. स. २७.१२)।

वर्वरि—अट्टहास नामक शिवावतार का एक शिष्य।

वर्ष—वसुदेव एवं उपदेवी के पुत्रों में से एक।

२. (सो. सह.) एक राजा, जो वायु के अनुसार सहस्रार्जुन राजा का पुत्र था।

३. एक व्याकरणाचार्य, जो पाणिनि का गुरु था।

वल—एक असुर, जिसका इंद्र ने अंगिरस् की आज्ञा के अनुसार वर्ष के अन्त में (परिवत्सरे) वध किया था (ऋ. १०.६२.२)। पुराणों में भी इसका निर्देश प्राप्त है (पद्म. भू. २२-२३)।

वलया—मगधनिवासी देवदास नामक ब्राह्मण की कन्या (पद्म.उ .२१२)।

वलल—भीमसेन का गुप्तनाम, जो उसने अज्ञातवास के समय धारण किया था (म. वि. २.२)। महाभारत के कई अन्य संस्करणों में, भीमसेन का अज्ञातवासकाल का नाम 'पौरोगव बल्लव' दिया गया है (भीमसेन पांडव देखिये)।

वलीमुख—रामसेना का एक प्रमुख वानर (वा. रा. यु. ४.३६)।

वल्गुजंघ—विश्वामित्र ऋषि के ब्रह्मवादी पुत्रों में से एक (म. अनु. ४.५२)।

वल्गूतक—अत्रिकुलोत्पन्न एक मंत्रकार। इसे 'ववल्गु,' 'बलास्क', एवं 'बल्गुतक' नामांतर भी प्राप्त थे।

वल्लभ—कांचनपुर का एक ब्राह्मण, जिसकी पत्नी का नाम हेमप्रभा था (हेमप्रभा देखिये)।

२. बलाकाश्व नामक राजा का पुत्र, जो साक्षात् धर्म के समान था। इसके पुत्र का नाम कुशिक था (म. अनु. ४.४-५)।

वल्लिक—एक राक्षस, जो देवासुरसंग्राम में अग्नि के द्वारा दग्ध किया गया था (पद्म. सृ. ७५)।

ववल्गु—वल्गूतक नामक अत्रिकुलोत्पन्न गोत्रकार का नामान्तर।

वव्रि आत्रेय—एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. ५.१९)।

वश—मध्यदेश में रहनेवाला एक जातिसमूह, जिसका निर्देश ऐतरेय ब्राह्मण में कुरुपांचाल एवं उशीनर लोगों के साथ प्राप्त है (ऐ. ब्रा. ८.१४.३)। कौषीतकि उपनिषद में इन लोगों का निर्देश मत्स्य लोगों के साथ प्राप्त है (कौ. उ. ४.१)। अन्य कई ग्रंथों में इनका निर्देश केवल उशीनर लोगों के साथ प्राप्त है (गो. ब्रा. १.२.९)।

ओल्डेनबर्ग के अनुसार, वश एवं उशीनर ये दोनों शब्द 'वश्' धातु से व्यवहृत हुए थे, जिस कारण इन दोनों का काफ़ी घनिष्ठ संबंध प्रतीत होता है (ओल्डेनबर्ग, बुद्ध. ३९३)।

वश अश्व्य—एक वैदिक सूक्तद्रष्टा, जो अश्वियों का आश्रित था (ऋ. ८.४६)। इसे हज़ारो प्रकारों से धनप्राप्ति कराने की व्यवस्था अश्वियों ने की थी (ऋ. १.११६.२१)। पृथुश्रवस् कानीत नामक राजा ने भी इसे काफ़ी धन दान में दिया था (ऋ. ८.४६)। सायण के अनुसार, यह एक ऋषि न हो कर वश नामक लोगों का राजा था (ऋ. १०.४०.७; सां. श्रौ. १६.११.१३)।

वशवर्तिन्—उत्तम मन्वन्तर का एक देवगण, जिस में निम्नलिखित दस देव शामिल थेः—ज्योति, बृहद्वसु, मानस, विभास, विरजस्, विश्वकर्मन्, विश्वधा, विश्वायु, समितार, सहस्रधार (ब्रह्मांड. २.३६. २९-३०)।

वश्यायु—पुरूरवस् का उर्वशी से उत्पन्न एक पुत्र (पद्म. सृ. १२)

वश्याश्व—एक ऋषिक (ब्रह्मांड. २.३२.१०१-१०२)।

वसन—स्कंद का एक सैनिक (म. श. ४४.६७)। पाठभेद-'वत्सल'।

वसाति—दुर्योधन के पक्ष का एक राजा। अभिमन्यु के द्वारा चक्रव्यूह में प्रवेश करने पर इसने प्रतिज्ञा की थी कि, यह अभिमन्यु का वध करेगा, अथवा प्राणत्याग करेगा। जब यह अभिमन्यु का वध करने के लिए आगे

बढ़ा, तब अभिमन्यु ने इसका वध किया (म. द्रो. ४३. ८-१०)।

२. (सो. कुरु.) एक राजा, जो जनमेजय पारीक्षित का आठवाँ पुत्र था (म. आ. ८९.५०)।

३. एक लोकसमूह, जो भारतीय युद्ध में भीष्म की रक्षा करता था (म. भी. ४७.१४)। अर्जुन ने इन लोगों का संहार किया।

वसातीय—अभिमन्यु के द्वारा मारे गये 'वसाति' राजा का नामान्तर (म. द्रो. ४३.८)। इसे 'वसात्य' नामान्तर भी प्राप्त था (म. द्रो. ४३.११; वसाति १. देखिये)।

वसित—दक्षसावर्णि मन्वन्तर का एक ऋषि।

वसिष्ठ—एक ऋषि, जो स्वायंभुव मन्वंतर में उत्पन्न हुए ब्रह्मा के दस मानसपुत्रों में से एक माना जाता है। वसिष्ठ नामक सुविख्यात ब्राह्मणवंश का मूलपुरुष भी यही कहलाता है। यह ब्राह्मणवंश सदियों तक अयोध्या के इक्ष्वाकु राजवंश का पौराहित्य करता रहा।

जन्म--यह ब्रह्मा के प्राणवायु (समान) से उत्पन्न हुआ था (भा. ३.१२.२३)। दक्ष प्रजापति की कन्या ऊर्जा इसकी पत्नी थी। इस प्रकार यह दक्ष प्रजापति का जमाई एवं शिव का साढू था। दक्षयज्ञ के समय दक्ष के द्वारा शिव का अपमान हुआ, जिस कारण क्रुद्ध हो कर शिव ने दक्ष के साथ इसका भी वध किया।

विश्वामित्र से शत्रुत्व--वसिष्ठवंश के सारे इतिहास में एक उल्लेखनीय घटना के नाते, इन लोगों का विश्वामित्र वंश के लोगों के साथ निर्माण हुए शत्रुत्व की अखंड परंपरा का निर्देश किया जा सकता है। देवराज वसिष्ठ से ले कर मैत्रावरुण वसिष्ठ के काल तक, प्राचीन भारत के इन दो श्रेष्ठ ब्राह्मण वंशों में वैर एवं प्रतिशोध का अग्नि सदियों तक सुलगता रहा। प्राचीन भारतीय राजवंशों में भार्गव वंश (परशुराम जामदग्न्य) एवं हैहयों का, तथा द्रुपद एवं द्रोण का शत्रुत्व इतिहासप्रसिद्ध माना जाता है। उन्हींके समान पिढीयों तक चलनेवाला ज्वलंत वैर, वसिष्ठ एवं विश्वामित्र इन दो ब्राह्मणवंशों में प्रतीत होता है।

परिवार—इसकी कुल दो पत्नियाँ थी :—१. ऊर्जा, जो दक्ष प्रजापति की कन्या थी; २. अरुन्धती, जो कर्दम प्रजापति के नौ कन्याओं में से आठवीं कन्या थी। इनके अतिरिक्त इसकी शतरूपा नामक अन्य एक पत्नी भी थी, जो स्वयं इसकी ही 'अयोनिसंभवा' कन्या थी।

(१) **ऊर्जा की संतति**—ऊर्जा से इसे पुंडरिका नामक एक कन्या, एवं 'सप्तर्षि' संज्ञक निम्नलिखित सात पुत्र उत्पन्न हुए थे :—दक्ष (रत्न), गर्त, ऊर्ध्वबाहु, सवन, पवन, सुतपस्, एवं शंकु। भागवत में ऊर्जा के पुत्रों के नाम चित्रकेतु आदि बताये गये हैं (भा. ४.१.४१)।

इसकी कन्या पुंडरिका का विवाह प्राण से हुआ था, जिसकी वह पटरानी थी। प्राण से उसे द्युतिमत् नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था।

इसके पुत्र 'रत्न' का विवाह मार्कंडेयी से हुआ था, जिससे उसे पश्चिम दिशा का अधिपति केतुमत् 'प्रजापति' नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था (ब्रह्मांड. २.१२.३९-४३)।

इनके अतिरिक्त इसे हवींद्र आदि सात पुत्र उत्पन्न हुए थे। सुकात आदि पितर भी इसीके ही पुत्र कहलाते हैं।

(२) **शतरूपा की संतति**--इसकी 'अयोनिसंभवा' कन्या शतरूपा से इसे वीर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। वीर का विवाह कर्दम प्रजापति की कन्या काम्या से हुआ था, जिससे उसे प्रियव्रत एवं उत्तानपाद नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। इनमें से प्रियव्रत को अपनी माता काम्या से ही सम्राट, कुक्षि, विराट एवं प्रभु नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए। उत्तानपाद को अत्रि ऋषि ने गोद में लिया था। (ह. वं. १.२)।

वसिष्ठकुल में उत्पन्न प्रमुख व्यक्ति—पार्गिटर के अनुसार, कालानुक्रम से देखा जाये तो, वसिष्ठ के वंश में उत्पन्न निम्नलिखित व्यक्ति प्राचीन भारतीय इतिहास में विशेष महत्त्वपूर्ण प्रतीत होते हैं:—

(१) **वसिष्ठ देवराज**, जो अयोध्या के त्र्यय्यरुण, त्रिशंकु एवं हरिश्चंद्र राजाओं का समकालीन था (वसिष्ठ देवराज देखिये)।

(२) **वसिष्ठ आपव**, जो हैहय राजा कार्तवीर्य अर्जुन का समकालीन था (वसिष्ठ आपव देखिये)।

(३) **वसिष्ठ अथर्वनिधि** (प्रथम), जो अयोध्या के बाहु राजा का समकालीन था (वसिष्ठ अथर्वनिधि १. देखिये)।

(४) **वसिष्ठ श्रेष्ठभाज**, जो अयोध्या के मित्रसह कल्माषपाद सौदास राजा का समकालीन था (वसिष्ठ श्रेष्ठभाज देखिये)।

(५) **वसिष्ठ अथर्वनिधि** (द्वितीय), जो अयोध्या के दिलीप खट्वांग राजा का समकालीन था (वसिष्ठ अथर्वनिधि २. देखिये)।

(६) वसिष्ठ, जो अयोध्या के दशरथ एवं राम दाशरथि राजाओं का समकालीन था (वसिष्ठ २. देखिये)।

(७) वसिष्ठ मैत्रावरुण, जो उत्तर पांचाल देश के पैजवन सुदास राजा का समकालीन था, एवं जिसका निर्देश ऋग्वेद आदि वैदिक ग्रंथों में प्राप्त है (वसिष्ठ मैत्रावरुण देखिये)।

(८) वसिष्ठ शक्ति, जो वसिष्ठ मैत्रावरुण का पुत्र था (वसिष्ठ शक्ति देखिये)।

(९) वसिष्ठ सुवर्चस्, जो हस्तिनापुर के संवरण राजा का समकालीन था (वसिष्ठ सुवर्चस् देखिये)।

(१०) वसिष्ठ, जो अयोध्या के मुचकुंद राजा का समकालीन था (वसिष्ठ ३. देखिये)।

(११) वसिष्ठ, जो हस्तिनापुर के हस्तिन् राजा का समकालीन था (वसिष्ठ ४. देखिये)।

(१२) वसिष्ठ 'धर्मशास्त्रकार,' जो 'वसिष्ठस्मृति' नामक धर्मशास्त्रविषयक ग्रंथ का कर्ता माना जाता है (वसिष्ठ धर्मशास्त्रकार देखिये)।

वसिष्ठ की वंशावलि—महाभारत एवं पुराणों में वसिष्ठ ऋषि की तीन विभिन्न वंशावलियाँ प्राप्त हैः—१. अरुंधती-शाखा; २. घृताचीशाखा; ३. व्याघ्रीशाखा। इनमें से अरुंधती एवं घृताची क्रमशः ब्रह्मामानसपुत्र वसिष्ठ एवं वसिष्ठ मैत्रावरुण ऋषियों की पत्नियाँ थी। व्याघ्री कौनसे वसिष्ठ की पत्नी थी, यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता।

(१) अरुंधतीशाखा--वसिष्ठ (अरुंधती)— शक्ति (स्वागज अथवा सागर)—पराशर (काली)--कृष्ण-द्वैपायन (अरणी)—शुक (पीवरी)—भूरिश्रवस्, प्रभु, शंभु, कृष्ण, गौर, एवं कीर्तिमती (ब्रह्मदत्त की पत्नी)।

(२) घृताची शाखा—वसिष्ठ मैत्रावरुण (घृताची)-इंद्रप्रमति अथवा कुणीति अथवा कुशीति-वसु (पृथुसुता)-उपमन्यु (ब्रह्मांड. ३.८०.९०-१००; वायु. ७१.८३-९०; लिंग. १.६३.७८-९२; कूर्म. १.१९; मत्स्य. २००)।

(३) व्याघ्री शाखा—वसिष्ठ को व्याघ्री से व्याघ्रपाद मन्ध, बादलोम, जाबालि, मन्यु, उपमन्यु, सेतुकर्ण आदि कुल १९ गोत्रकार पुत्र उत्पन्न हुए (म. अनु. ५३. ३०-३२ कुं.)।

वसिष्ठकुल के गोत्रकार—वसिष्ठकुलोत्पन्न गोत्रकारों में एक प्रवरात्मक (एक प्रवरवाले), एवं त्रिप्रवरात्मक (तीन प्रवरोंवाले) ऐसे दो प्रमुख प्रकार हैं।

(१) **एकप्रवरात्मक गोत्रकार**--वसिष्ठकुल के निम्नलिखित गोत्र एकप्रवरात्मक हैं, जिनका वसिष्ठ यह एक ही प्रवर होता हैः—अलब्ध, आपस्थूण (ग), उपावृद्धि, औपगव (अपगवन, ग), औपलोम (अपष्टोम, ग), कट (ग), कपिष्ठल (ग), गोपायन (गोपायन, ग) गौडिनि (जौडिलि), चौलि, दाकव्य (ग), पालिशय (ग), पौडव (खांडव), पौलि, बालिशय (ग), ब्राहुरि (ग), बोधप (ग), ब्रह्मबल, ब्राह्मपुरेयक (ब्रह्मकृतेजन, ग), याज्ञवल्क्य (याज्ञदत्त), लोमायन (ग), वाम्रंथि, वाडोहलि, वाह्यक (ग), वैक्लव (ग), वौलि, व्याघ्रपाद (ग), शट (ग) (षटाकुर, शठकठ), शांडिलि, शाद्वलायन (ग), शीतवृत्त (ग), श्रवस् (श्रवण), सुमन् (ग), स्तरितकर (ग)।

(२) **त्रिप्रवरात्मक गोत्रकार**--वसिष्ठकुल के निम्नलिखित गोत्रकार त्रिप्रवरात्मक हैं, जिनके इंद्रप्रमदि (चंद्रसंमति), भरीवसु (भर्गिवसु) एवं वसिष्ठ ये तीन प्रवर होते हैंः-उद्राह (उद्घाट, ग), उपलप (ग), उहाक (ग), औपमन्यव, कपिंजल (ग), काण्व (ग), कालशिख, कोरकृषा (कौरकृष्ण, ग), कौरव्य, कौलायन (कौमानरायण), क्रोडोदरायण, क्रोधिन, गोरथ (ग), तर्पय, डाकायन, पन्नागारि (पर्णागारि), पालंकायन, (पादपायन), प्रलंबायन (ग), बलेक्षु (दलेषु, ग), बाल्वय, ब्रह्ममालिन् (ग), मागविचायन (ग) (मागवित्रासन), महाकर्ण, मातेय (ग), माषशरावय (ग), लंबायन (ग), वाकय (ग), वालखिल्य (ग), वेदशेरक (ग), शाकधिय, शाकायन (ग), शाकाहार्य (ग), शैलालय (रौराल्य, शैवलेय), श्यामवय, सांख्यायन, सुरायण।

वसिष्ठकुल के निम्नलिखित गोत्रकार भी त्रिप्रवरात्मक ही हैं, किन्तु उनके कुंडिन, मित्रावरुण एवं वसिष्ठ ये तीन प्रवर होते हैंः-औपस्थल (जपस्वस्थ, ग), कुंडिब, त्रैशृंगायण (त्रैशृंग, ग), पैप्पलादि, बाल (घव), माध्यति (ग), माध्यंदिन, लोहल्य (हाल-हल का पाठभेद), विचक्षुष (विवर्धक), सैवल्क (सर्वसैलाव), स्वस्थलि (ग)।

वसिष्ठकुल के निम्नलिखित गोत्रकार अत्रि, जातुकर्ण एवं वसिष्ठ इन तीन प्रवरों के होते हैं :--आलंब (ग), क्रोडोदय, दानकाय (ग), नागेय (ग), परम (ग), पादप, महावीर्य (ग), वय, वायन, शिवकर्ण (शवकर्ण)।

जातुकर्ण्य लोग--वसिष्ठगोत्रीय लोगों में 'जातुकर्ण्य' पैतृक नाम धारण करनेवाले लोग प्रमुख थे। इसी नाम के एक ऋषि ने व्यास को वेद एवं पुराणों की शिक्षा प्रदान

की थी। इसी कारण जातुकर्ण्य को अठ्ठाईस द्वापारों में से एक युग का व्यास कहा गया है (वायु. २३.११५-२१९)।

वसिष्ठकुल के मंत्रकार—वसिष्ठकुल के मंत्रकारों की नामावलि वायु, मत्स्य एवं ब्रह्मांड पुराणों में प्राप्त है (वायु. ५९.१०५-१०६; मत्स्य. १४५.१०९-११०; ब्रह्मांड. २.३२.११५-११६)।

इनमें से वायु में प्राप्त नामावलि, मत्स्य एवं ब्रह्मांड में प्राप्त पाठान्तरों के सहित नीचे दी गयी है :—इंद्रप्रमति (इंद्रप्रतिम,), कुंडिन, पराशर, बृहस्पति, भरद्वसु, भरद्वाज, मैत्रावरुण (मैत्रावरुणि), वसिष्ठ, शक्ति, सुद्युम्न।

२. एक आचार्य, जो अयोध्या के दशरथ एवं राम दाशरथि राजाओं का पुरोहित था। एक नीतिविशारद प्रमुख मंत्री, एवं पुरोधा के रूप में इसका चरित्रचित्रण वाल्मीकि रामायण में प्राप्त है।

यह सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी, एवं तपस्वियों में श्रेष्ठ था (वा. रा. बा. ५२.१; २०)। अपनी तपस्या के बल पर इसने ब्रह्मर्षिपद प्राप्त किया था। यह अत्यधिक शांति-संपन्न, क्षमाशील एवं सहिष्णु था (वा. रा. बा. ५५-५६)।

दशरथ राजा के पुरोहित के नाते, उसके पुत्र-कामेष्टि यज्ञ में यह प्रमुख ऋत्विज बना था। राम एवं लक्ष्मण का नामकरण भी इसने ही किया था। राम दाशरथि को यौवराज्याभिषेक की दीक्षा भी इसीके ही हाथों प्रदान की गयी थी (राम दाशरथि देखिये)।

३. एक ऋषि, जो अयोध्या के मांधातृ राजा के पुत्र मुचकुंद राजा का पुरोहित था (म. शां. ७५.७)।

४. एक ऋषि, जो भरतवंशीय सम्राट रंतिदेव सांकृत्य का पुरोहित था। रंतिदेव राजा हस्तिनापुर के हस्तिन् राजा का समकालीन था। उसने इसे ब्रह्मर्षि मान कर अर्घ्यप्रदान किया था (म. शां. २९.१७; अनु. २००. ६)।

५. रैवत मन्वंतर का एक ऋषि।

६. सावर्णि मन्वंतर का एक ऋषि।

७. ब्रह्मसावर्णि मन्वंतर का एक ऋषि।

८. धर्मनारायण नामक शिवावतार का एक शिष्य।

९. एक ऋषि, जो श्राद्धदेव का पुरोहित था। श्राद्धदेव को कोई भी पुत्र न था, जिस कारण इसने मित्रवरुणों को उद्देश्य कर एक यज्ञ का आयोजन किया।

श्राद्धदेव की पत्नी श्रद्धा की इच्छा थी कि, उसे कन्यारत्न की प्राप्ती हो। इस इच्छा के अनुसार, इसके यज्ञ से उसे इला नामक कन्या प्राप्त हुई। किन्तु श्राद्धदेव पुत्र का कांक्षी था, जिस कारण इसने उस कन्या का सुद्युम्न नामक पुत्र में रूपांतर किया (भा. ९.१.१३-२२)। अंबरीष राजा के अश्वमेध यज्ञ में भी यह उपस्थित था (मत्स्य. २४५. ८६)।

१०. आठवा वेदव्यास, जिसे इंद्र ने ब्रह्मांड पुराण सिखाया था। आगे चल कर, यही पुराण इसने सारस्वत ऋषि को सिखाया (ब्रह्मांड. २.३५.११८)। इसका आश्रम उज्जेन्त पर्वत पर था (ब्रह्मांड. ३.१३.५३)।

११. एक ऋषि, जो वारुणि यज्ञ के 'वसुमध्य' से उत्पन्न हुआ था। इसी कारण इसे 'वसुमत्' कहते थे। आगे चल कर, इसीसे ही सुकात नामक पितर उत्पन्न हुए (ब्रह्मांड. ३.१.२१; मत्स्य. १९५. ११)।

१२. बृहत्कल्प के धर्ममूर्ति राजा का पुरोहित (मत्स्य. ९२.२१)। इसने त्रिपुरदहन के हेतु शिव की स्तुति की थी (मत्स्य. १३३. ६७)।

१३. एक शिल्पशास्त्रज्ञ (मत्स्य. २५२.२)।

१४. एक ऋषि, जो शरशय्या पर पड़े हुए भीष्म से मिलने के लिए उपस्थित हुआ था (भा. १.९.७)। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के समय भी यह उपस्थित था (भा. १०.७४.७)।

१५. अगस्त्य ऋषि का छोटा भाई, जो विदेह देश के निमि राजा का पुरोहित था (वसिष्ठ मैत्रावरुणि देखिये; मत्स्य. ६१.१९)।

महाभारत के अनुसार, यह ब्रह्माजी के मानसपुत्रों में से एक था। भागवान् शंकर के शाप से ब्रह्माजी के सारे पुत्र दग्ध हो कर नष्ट हो गयें। वर्तमान मन्वन्तर के प्रारंभ में ब्रह्माजी ने उन्हें पुनः उत्पन्न किया। उनमें से वसिष्ठ एक था। यह अग्नि के मध्यम-भाग से उत्पन्न हुआ था। इसकी पत्नी का नाम अक्षमाला था (म. उ. ११५. ११)।

एक बार निमि राजा से इसका झगड़ा हो गया, जिसमें दोनों ने एक दूसरे को विदेह (देहरहित) बनने का शाप दिया। उन शापों के कारण इन दोनों की मृत्यु हुयी (निमि देखिये)।

वसिष्ठ अथर्वनिधि—एक ऋषि, जो अयोध्या के हरिश्चंद्र राजा के आठवें पिढी में उत्पन्न हुए बाहु राजा का राजपुरोहित था। हैहय तालजंघ राजाओं ने

कांबोज, यवन, पारद, पह्लव आदि उत्तरपश्चिम प्रदेश में रहनेवाले लोगों की सहाय्यता से बाहु राजा को राज्यभ्रष्ट किया। आगे चल कर बाहु राजा के पुत्र सगर ने इन सारे शत्रुओं का पराजय कर पुनः राज्य प्राप्त किया। सगर राजा इन सारे लोगों का संहार ही करनेवाला था किन्तु वसिष्ठ ने इसे इस पापकर्म से रोक दिया।

इसने सगर को परशुराम की कथा कथन की थी। इसने सगर के पुत्र अंशुमत् को यौवराज्याभिषेक किया (ब्रह्म. ३.३१.१; ४७.९९)।

ब्रह्मांड एवं बृहन्नारदीय पुराणों में इसे क्रमशः आपव एवं अथर्वनिधि कहा गया है (ब्रह्मांड. ३.४९.४३; बृहन्नारदीय. ८.६३)। महाभारत में, इसके नंदिनी नामक गाय के द्वारा शक, कांबोज, पारद आदि म्लेंच्छ जाति के निर्माण होने का, एवं उनकी सहाय्यता से इसके के द्वारा विश्वामित्र का पराजय होने का निर्देश प्राप्त है (म. आ. १६५; वा. रा. बा. ५४.१८-५५)। किन्तु वहाँ वसिष्ठ अथर्वनिधि को वसिष्ठ देवरात समझने की भूल की गई सी प्रतीत होती है, क्यों कि, विश्वामित्र ऋषि का समकालीन वसिष्ठ देवरात था, वसिष्ठ अथर्वनिधि उससे काफ़ी पूर्वकालीन था।

२. एक ऋषि, जो अयोध्या के दिलीप खट्वांग राजा का पुरोहित था। इसीके ही सलाह से दिलीप राजा ने नंदिनी नामक कामधेनु की उपासना की, जिसकी कृपा से उसे रघु नामक सुविख्यात पुत्र उत्पन्न हुआ (रघु. १-३; पद्म उ. २०२-२०३; दिलीप खट्वांग देखिये)।

वसिष्ठ आपव—एक ऋषि, जिसका आश्रम हिमालय पर्वत में था। हैहय राजा कार्तवीर्य अर्जुन ने इसका आश्रम जला दिया, जिस कारण इसने उसे शाप दिया (वायु. ९४.३९-४७; ह. वं. ३३.१८८४)। ब्रह्मांड पुराण में इसके 'मध्यमा भक्ति' का निर्देश प्राप्त है ब्रह्मांड. ३.३०.७०; ३४.४०-४१)। मत्स्य में इसे ब्रह्मवादिन् कहा गया है (मत्स्य. १४५.९०)।

वायु में इसे वारुणि कहा गया है (वायु. ९४.४२-४३)। इसका पैतृक नाम आपव था, जिससे यह अप् (जल) का पुत्र होने का संकेत मिलता है। इस प्रकार इसके वारुणि एवं आपव ये दोनों पैतृक नाम समानार्थी प्रतीत होते है।

वसिष्ठ चैकितानेय—एक आचार्य, जो स्थिरक गार्ग्य नामक आचार्य का शिष्य था (वं. ब्रा. २)। गौतमी आरुणि नामक आचार्य से वादसंवाद करनेवाला चैकितानेय वासिष्ठ एवं यह दोनों संभवतः एक ही होगे (जै. उ. ब्रा. १.४.२.१)।

वसिष्ठ देवराज—एक ऋषि, जो अयोध्या के त्रय्यारुण, सत्यव्रत त्रिशंकु एवं हरिश्चंद्र राजाओं का पुरोहित था। हरिश्चंद्र के यज्ञ में यह 'ब्रह्मा' था (ऐ. ब्रा. ७.१६; सां.श्रौ. १५.२२.४; श. ब्रा.१२.६.१.४१; ४.६.६.५)। इसका त्रिशंकु राजा से हुआ विरोध एवं उसीके ही कारण इसका विश्वामित्र ऋषि से हुआ भयानक संघर्ष, प्राचीन भारतीय इतिहास में सुविख्यात है (त्रिशंकु देखिये)।

सत्यव्रत त्रिशंकु के राज्यकाल में शुरू हुआ इसका एवं विश्वामित्र ऋषि का संघर्ष सत्यव्रत के पुत्र हरिश्चंद्र, एवं पौत्र रोहित के राज्यकाल में चालू ही रहा। सत्यव्रत के सदेह स्वर्गारोहण के पश्चात् उसके पुत्र हरिश्चंद्र ने विश्वामित्र को अपना पुरोहित नियुक्त किया। किंतु उसके राजसूय-यज्ञ में बाधा उत्पन्न कर, वसिष्ठ ने अपना पौरोहित्यपद पुनः प्राप्त किया (हरिश्चंद्र देखिये)

हरिश्चंद्र के ही राज्यकाल में, उसके पुत्र रोहित के बदले विश्वामित्र के रिश्तेदार शुनःशेप को यज्ञ में बलि देने का षड्यंत्र देवराज वसिष्ठ के द्वारा रचाया गया, किंतु विश्वामित्र ने शुनःशेप की रक्षा कर, उसे अपना पुत्र मान लिया (रोहित देखिये)।

वसिष्ठ 'धर्मशास्त्रकार'—एक स्मृतिकार, जिसका तीस अध्यायों का 'वसिष्ठस्मृति' नामक स्मृतिग्रंथ आनंदाश्रम के 'स्मृतिसमुच्चय' में प्राप्त है। उसमें आचार, प्रायश्चित्त, संस्कार, रजस्वला, संन्यासी, आततायि आदि के लिए नियम दिये हैं। उसी प्रकार दत्तकप्रकरण, साक्षिप्रकरण, प्रायश्चित्त आदि विषयों का भी विवेचन किया है। व्यंकटेश्वर प्रेस के संस्करण में भी उपर्युक्त विषयों का विवेचन करनेवाली इसकी स्मृति उपलब्ध है, परन्तु वह केवल २१ अध्यायों की है। वह तथा जीवानन्द संग्रह की प्रति एक ही है। दोनों प्रतियों में प्रायः एक सौ ही श्लोक हैं।

इसकी ९-१० अध्यायोंवाली भी एक स्मृति है, जिसमें वैष्णवों के दैनिक कर्तव्यों का विवेचन किया गया है (C. C.)। 'वसिष्ठधर्मसूत्र' गौतमधर्मसूत्र के सूत्रों से बहुत से विषयों में मिलते जुलते हैं। उसी तरह बौधायनधर्मसूत्रों के बहुत से सूत्रों से वसिष्ठधर्मसूत्र के सूत्रों का साम्य है। वसिष्ठधर्मसूत्र ऋग्वेद का है। तन्त्रवार्तिक में भी पुरातन गृह्यसूत्रकार के रूप में वसिष्ठ का उल्लेख है (१.३.२४)।

मिताक्षरादि ग्रन्थों में वसिष्ठ के धर्मशास्त्र से उद्धरण लिये गये हैं। उसी तरह बृहदारण्यकोपनिषद के शंकराचार्यभाष्य में भी वसिष्ठ के धर्मसूत्र के बहुत से सूत्र लिये गये हैं। वसिष्ठ ने अपने ग्रन्थों में वेद तथा संहिता से उद्धरण लिए हैं। निदानसूत्रों की भाल्लविन द्वारा विरचित एक गाथा भी वसिष्ठ ने अपने स्मृति में दी है। इसके अतिरिक्त मनु, हरीत, यम एवं गौतम आदि धर्मशास्त्रप्रकारों के मत भी कई बार दिये गये हैं। मनुस्मृति तथा याज्ञवल्क्यस्मृति में वसिष्ठस्मृति का उल्लेख प्राप्त है।

'वृद्धवसिष्ठ' नामक अन्य एक ग्रंथ की रचना इसने की थी, जिसका निर्देश विश्वरूप (१.१९,) एवं मिताक्षरा (२.९१) में प्राप्त हैं। इसके 'ज्योतिर्वसिष्ठ' नामक ग्रंथ के कुछ उद्धरण 'स्मृतिचंद्रिका' में लिये गये हैं।

ग्रन्थ--उपर्निर्दिष्ट ग्रंथों के अतिरिक्त, इसके नाम पर निम्नलिखित ग्रंथ प्राप्त हैः—१. वसिष्ठ-कल्प; २.वसिष्ठ-तंत्र, ३. वसिष्ठपुराण, ४. वसिष्ठ लिंगपुराण, ५. वसिष्ठ-शिक्षा, ६. वसिष्ठश्राद्धकल्प, ७. वसिष्ठसंहिता, ८. वसिष्ठ-होमप्रकार (C. C.)

• **वसिष्ठ मैत्रावरुणि**--एक ऋषि, जो उत्तरपांचाल के सुविख्यात सम्राट् पैजवन सुदास राजा का पुरोहित था।

वैदिक परंपरा के सर्वाधिक प्रसिद्ध पुरोहित में से यह एक माना जाता है। ऋग्वेद के सातवे मंडल के प्रणयन का श्रेय इसे दिया गया है (ऋ. ७.१८.३३)।

ऋग्वेद सर्वानुक्रमणी में, ऋग्वेद के नवम मंडलांर्गत सत्तानवे सूक्त के प्रणयन का श्रेय भी वसिष्ठ एवं उसके वंशजों को दिया गया है। इस ग्रंथ के अनुसार, इस सूक्त की पहली तीन ऋचाओं का प्रणयन स्वयं वसिष्ठ ने किया, एवं इस सूक्त के चार से तीस तक की ऋचाओं का प्रणयन, वसिष्ठ ऋषि के कुल में उत्पन्न निम्नलिखित नौ वसिष्ठों के द्वारा किया गया थाः–इंद्रप्रमति—ऋचा ४–६; वृषगण–ऋचा ७–९; मन्यु—ऋचा १०–१२; उपमन्यु–ऋचा १३–१५; व्याघ्रपाद—ऋचा १६–१८; शक्ति—ऋचा १९–२१; कर्णश्रुत–ऋचा २२–२३; मृलीक—ऋचा २५—२७; वसुक्र—ऋचा २८—३०।

इस सूक्त में से ३१–४४ ऋचाओं की रचना पराशर शाक्त्य (शक्ति पुत्र) के द्वारा की गई थी, जो स्वयं वसिष्ठपुत्र शक्ति का ही पुत्र था। किन्तु पार्गिटर के अनुसार, इन अंतिम ऋचाओं की रचना वसिष्ठकुलोत्पन्न पराशर के द्वारा नही, बल्कि शंतनु राजा के समकालीन किसी अन्य पराशर के द्वारा हुई होगी (पार्गि. पृ. २१३)।

जन्म--ऋग्वेद में वसिष्ठ ऋषि को वरुण एवं उर्वशी अप्सरा का पुत्र कहा गया है (ऋ. ७.३३.११)। ऋग्वेद के इसी सूक्त में इसे मित्र एवं वरुण के पुत्र अर्थ से 'मैत्रावरुण' अथवा 'मैत्रावरुणि' कहा गया है। एक बार मित्र एवं वरुण ने उर्वशी अप्सरा को देखा, जिसे देखते ही उनका रेत स्खलित हुआ। उन्होंने उसे एक कुंभ में रख दिया, जिससे आगे चल कर वसिष्ठ एवं अगस्त्य ऋषिओं का जन्म हुआ (ऋ. ७.३३.१३)। इसी कारण, इन दोनों को 'कुंभयोनि' उपाधि प्राप्त हुई, एवं उनके वंशजों को 'कुण्डिन्', 'कुण्डिनेय' एवं 'कौण्डिन्य' नाम प्राप्त हुए (ऋ. सर्वानुक्रमणी. १,१६६; नि. ५.१३)। ऋग्वेद में अन्यत्र वसिष्ठ का जन्म कुंभ में नहीं, बल्कि उर्वशी के गर्भ से होने का निर्देश प्राप्त है (ऋ. ७.३३. १२)।

पार्गिटर के अनुसार 'मैत्रावरुण' वसिष्ठ का पैतृक नाम न हो कर, उसका व्यक्तिनाम था, जो मित्रावरुण का ही अपभ्रष्ट रूप था (पार्गि. पृ. २१६; बृहद्दे. ४.८२)। इसी कारण, वसिष्ठ के 'मैत्रावरुण' पैतृक नाम का स्पष्टीकरण देने के लिए, इसकी जो जन्मकथा ऋग्वेद में प्राप्त है, वह कल्पनारम्य प्रतीत होती है। वसिष्ठ मित्रावरुण का पुत्र कैसे हुआ इसके संबंध में, अपनी पूर्वजन्म में इसने विदेह के निमि राजा के साथ किंये संघर्ष की जो कथा बृहद्देवता एवं पुराणों मे प्राप्त है, वह भी कल्पनारम्य है (बृहद्दे. ५.१५६; मत्स्य. २०१.१७–२२; निमि विदेह देखिये)।

विश्वामित्र से विरोध—वसिष्ठ ऋषि का विश्वामित्र के प्रति विरोध का स्पष्ट निर्देश ऋग्वेद में प्राप्त है। वसिष्ठ ऋषि के पूर्व सुदास का पुरोहित विश्वामित्र था (ऋ. ३. ३३.५३)। किन्तु उसके इस पद से भ्रष्ट होने के पश्चात्, वसिष्ठ भरत राजवंश का एवं सुदास राजा का पुरोहित बन गया। तदोपरान्त विश्वामित्र ऋषि सुदास के शत्रुपक्ष में शामिल हुआ, एवं उसने सुदास के विरुद्ध दाशराज्ञ युद्ध में भाग लिया था।

गेल्डनर के अनुसार, ऋग्वेद में वसिष्ठ एवं विश्वामित्र के शत्रुत्व का नहीं, बल्कि वसिष्ठपुत्र शक्ति के साथ हुए विश्वामित्र के संघर्ष का निर्देश प्राप्त है। ऋग्वेद के तृतीय मंडल में 'वसिष्ठ द्वेषिण्यः' नामक वसिष्ठविरोधी मंत्र प्राप्त है, जो वसिष्ठपुत्र शक्ति को ही संकेत कर रचायें गये थे (ऋ. ३.५३.२१–२४)। कालोपरांत शक्ति से प्रतिशोध लेने के लिए, विश्वामित्र ने सुदास राजा के

सेवकों के द्वारा उसका वध किया (तै. सं. ७.४.७.१; पं. ब्रा. ४.७.३; ऋ. सर्वानुक्रमणी ७.३२)।

किंतु उपर्युक्त सारी कथाओं में, वसिष्ठ का सुदास राजा के साथ विरोध होने का निर्देश कहाँ भी प्राप्त नही है। ऐतरेय ब्राह्मण में, वसिष्ठ को सुदास राजा का पुरोहित एवं अभिषेककर्ता कहा गया है (ऐ. ब्रा. ७. ३४.९)।

फिर भी सुदास राजा की मृत्यु के पश्चात्, विश्वामित्र पुनः एक बार सुदास के वंशजों (सौदासों) का पुरोहित बन गया (नि. २.२४; सां. श्रौ. २६.१२.१३)। तत्पश्चात् अपने पुत्र के वध का प्रतिशोध लेने के लिए, वसिष्ठ ने सौदासों को परास्त कर पुनः एक बार अपना श्रेष्ठत्त्व स्थापित किया।

किंतु सौदासों के साथ वसिष्ठ का यह शत्रुत्त्व स्थायी स्वरूप में न रहा। भरत राजकुल एवं राज्य का कुलपरंपरागत पुरोहित पद वसिष्ठवंश [illegible] रहा, जिसके अनेकानेक निर्देश ब्राह्मणग्रंथों में प्राप्त हैं (पं. ब्रा. १५.४.२४; तै. सं. ३.५.२.१)।

यज्ञकर्ता आचार्य—शतपथ ब्राह्मण में एक यज्ञकर्ता आचार्य के नाते वसिष्ठ का निर्देश अनेकबार प्राप्त है। यज्ञ के समय, यज्ञकर्ता पुरोहित ने 'ब्रह्मन् के रूप में कार्य करना चाहिए,' यह सिद्धान्त वसिष्ठ के द्वारा ही सर्वप्रथम प्रस्थापित किया गया। शुनःशेप के यज्ञ में वसिष्ठ ब्रह्मन् बना था (ऐ. ब्रा. ७.१६; सां. श्रौ. १५.२१.४)। एक समय, केवल वसिष्ठगण ही 'ब्रह्मन्' के रूप में कार्य करनेवाले पुरोहित थे, किन्तु बाद में अन्य सारे पुरोहितगण भी इस रूप में कार्य करने लगे (श. ब्रा. १२.६.१.४१)।

कर्तृत्व—वसिष्ठ ने सुदास पैजवन राजा को सोम के विशेष सांप्रदाय की दीक्षा दी, जिस कारण सुदास को समस्त राजर्षियों में उँचा पद प्राप्त हुआ।

एक बार यह तीन दिनों तक भूखा रहा। चौथे दिन अपनी क्षुधा को शांत करने के लिए, इसने वरुण के भोजनगृह में घुसने का प्रयत्न किया। किन्तु रसोईघर के द्वार पर कुत्ते थे, जिन्होंने इसे अंदर जाने को मना किया। उन रक्षक कुत्तों को सुलाने के लिए इसने कुछ ऋचाएँ कही। ऋग्वेद की यही ऋचाएँ 'निद्रासूक्त' नाम से प्रसिद्ध है (ऋ. ७. ५५)। ऋग्वेद में प्राप्त सुविख्यात 'महामृत्युंजय' मंत्रों की रचना भी वसिष्ठ के द्वारा ही की गयी है (ऋ. ७.५९.१२)।

मित्रावरुणों से उत्पन्न होने के कारण, इसे स्वयं का गोत्र नहीं था। इस कारण इसने पैजवन सुदास राजा के 'तृत्सु' गोत्र को ही अपना लिया। इसी कारण, ऋग्वेद में इसे अनेकबार 'तृत्सु' कहा है (ऋ. ७.६३.८)। यह एवं इसके वंश के लोग दाहिनी ओर शिखा रखते थे।

ऋग्वेद में 'राक्षोघ्न' सूक्त नामक सूक्त के प्रणयन का श्रेय भी वसिष्ठ को दिया गया है (ऋ. ७.१०४)। इस सूक्त में वसिष्ठ अपने पर गंदे आक्षेप करनेवाले लोगों को गालीगलौज दे रहा है, ऐसी इस सूक्त की कल्पना है। बृहद्देवता के अनुसार, इस सूक्त का संदर्भ वसिष्ठ–विश्वामित्र के विरोध से जोड़ा गया है (बृहद्दे. ६.२८–३४)।

तैत्तिरीय संहिता में प्राप्त 'एकोनपंचाशद्रात्रयाग' का जनक वसिष्ठ माना गया है (तै. सं. ७.४.७.)। उसी संहिता में प्राप्त 'स्तोमभाग' नामक मंत्रों का भी प्रवर्तक यही है (तै. सं. ३.५.२)।

आश्रम—विपाश नदी के किनारे वसिष्ठ का 'वसिष्ठशिला' नामक आश्रम था। इसका 'कृष्णशिला' नामक अन्य एक आश्रम भी था, जहाँ इसने तपस्या की थी (गो. ब्रा. १.२.८.)। इसी तपस्या के कारण, यह पृथ्वी के समस्त लोगों का पुरोहित बन गया (गो. ब्रा. १.२.१३)।

वैदिकोत्तर साहित्य में—वसिष्ठ एवं विश्वामित्र के विरोध की कथा वैदिकोत्तर साहित्य में भी प्राप्त है। बृहद्देवता के अनुसार, वसिष्ठ वारुणि के सौ पुत्रों का सौदासस् (सुदास) राजा ने वध किया, जिस कारण क्रुद्ध हो कर, इसने उसे राक्षस बनने का शाप दिया (बृहद्दे. ५.२८; ३३–३४)। लिंग के अनुसार, विश्वामित्र के द्वारा निर्माण किये गये राक्षसों ने कल्माषपाद सौदास राजा को घिरा लिया, एवं उसके द्वारा शक्ति आदि वसिष्ठ के सौ पुत्रों का वध किया। शक्ति की मृत्यु के पश्चात् उसकी पत्नी अदृश्यन्ती को पराशर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ (लिंग. १.६३.८३)। किंतु पार्गिटर के अनुसार, अयोध्या के कल्माषपाद सौदास के द्वारा मारे गये वसिष्ठपुत्रों का पिता वसिष्ठ मैत्रावरुणि न हो कर, इससे काफ़ी उत्तरकालीन वसिष्ठ श्रेष्ठभाज् नामक वसिष्ठकुलोत्पन्न अन्य ऋषि था, एवं अयोध्या के सुदास राजा के द्वारा वसिष्ठ मैत्रावरुणि के शक्ति नामक केवल एक ही पुत्र का वध हुआ था (पार्गि. २०९)।

पुराणों में—इन ग्रंथों के अनुसार, निमि राजा के द्वारा शाप दिया जाने पर वायुरूप मे वसिष्ठ ब्रह्मा के पास गया,

तथा ब्रह्मा की इच्छा से, उर्वशी को देख कर स्खलित हुए मित्रावरुणों के वीर्य से यह कुंभ में उत्पन्न हुआ (वा. रा. उ. ५७; मत्स्य. ६०.२०-४०; २००)।

विश्वामित्र से शत्रुत्व—एक बार विश्वामित्र ऋषि इसके आश्रम में इसे मिलने आया। कामधेनु की सहायता से विश्वामित्र का उत्कृष्ट आतिथ्य वसिष्ठ ने किया। तब उसने कामधेनु माँगी। किन्तु इसने अनाकानी की, तब उसने कामधेनु को जबरदस्ती ले जाने का प्रयत्न किया। परंतु धेनु के शरीर से शक, पल्लव इत्यादि म्लेंच्छ उत्पन्न हुए, जिन्होंने विश्वामित्र को पराजित किया। पराजित हो जाने के उपरांत, विश्वामित्र ने यह अनुभव किया कि, क्षत्रियबल की अपेक्षा ब्राह्मणबल श्रेष्ठ है, तथा तपश्चर्या करना आरंभ किया। विश्वामित्र ने वसिष्ठ से ब्रह्मर्षि कहलाने का काफ़ी प्रयत्न किया था। उक्त कथा संभवतः वसिष्ठ देवराज की होगी।

बाद में क्रोध से विश्वामित्र ने वसिष्ठ के सौ पुत्र राक्षसों के द्वारा भक्षण करवाये। इससे यह जीवन से विरक्त हो कर नदी में प्राण देने गया, किन्तु बच गया। इसीलिए उस नदी को विपाशा नाम दिया गया (म. व. १३०.८-९)। क्यों कि, उस नदी ने वसिष्ठ को पाशमुक्त कर के उसे बचाया था, उसे शतद्रु नाम प्राप्त हुआ। उसे यह नाम क्यों प्राप्त हुआ उसका कारण यही है कि, जब यह शतद्रु (आधुनिक सतलज नदी) में व्याकुल होकर कूद पड़ा, तब वह नदी इसे अग्नि के समान तेजस्वी समझ कर सैकडों धाराओं में फूट कर इधर उधर भाग चली। शतधा विद्रुत होने से उसका नाम 'शतद्रु' हुआ (म. आ. १६७.९)।

वसिष्ठ ने जब विश्वामित्र पर सौ पुत्रों के समाप्त करने का आरोप लगाया, तब पैजवन के समक्ष शपथपूर्वक उसने यह बात अमान्य की (मनु. ८.१०)। किन्तु कालदृष्टि से यह कथा असंगत प्रतीत होती है (शक्ति देखिये)।

व्रतवैकल्य—कक्षसेन ने इसे अपनी संपत्ति दी थी (म. अनु. २००.१५. कुं.)। इसने पक्षवर्धिनी एकादशी का व्रत किया था (पद्म. उ. ३६)। इसने बकुला-संगम पर परमेश्वर की सेवा की थी (पद्म. उ. १३९)। इन्द्रप्रस्थ के सप्ततीर्थ के प्रभाव से इसे महापवित्र पुत्र हुए थे (पद्म. उ. २२२)। ब्रह्मदेव के पुष्करक्षेत्र के यज्ञ में यह होतृगणों का ऋत्विज था (पद्म. सृ. ३४)। इसने भीष्मपंचक व्रत किया था (पद्म. उ. १२४)। यह एक व्यास भी था (व्यास देखिये)।

परिवार—ऋग्वेद के अनुसार, इसे शक्ति नामक एक पुत्र था (ऋ. ३.५३.१५-१६)। उसी ग्रंथ में अन्यत्र शतयातु एवं पराशर को क्रमशः इसका पुत्र एवं पौत्र कहा गया है (ऋ. ७.१८.२१)।

पुराणों में प्राप्त जानकारी के अनुसार, वसिष्ठ के पुत्र का नाम शक्ति, एवं पौत्र का नाम पराशर शाक्त्य था, जो कृष्ण द्वैपायन व्यास का पिता था।

इन्हीं ग्रंथों में वसिष्ठ की पत्नी का नाम कपिंजली घृताची दिया गया है, जिससे इसे इंद्रप्रमति (कुणि अथवा कुणीति) नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। इंद्रप्रमति को पृथु राजा की कन्या से वसु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसके पुत्र का नाम उपमन्यु था। इस प्रकार वसिष्ठ, शक्ति, वसु, उपमन्यु एवं अन्य छः वसिष्ठ के वंशजों से 'वसिष्ठवंश' का प्रारंभ हुआ।

वसिष्ठ वैडव—एक आचार्य, जिसने 'वासिष्ठ साम' नामक साम की रचना कर, सुखसमृद्धि एवं ऐश्वर्य प्राप्त किया (पं. ब्रा. ११.८.१४)। वीड का पुत्र होने के कारण, इसे 'वैडव' पैतृक नाम प्राप्त हुआ था।

वसिष्ठ श्रेष्ठभाज्—एक ऋषि, जो अयोध्या के मित्रसह कल्माषपाद राजा का पुरोहित था (म. आ. १६७. १५;१६८.१०)। महाभारत में अन्यत्र इसे 'ब्रह्मकोश' उपाधि प्रदान की गई है।

कल्माषपाद राजा ने एक दुष्टबुद्धि राक्षस के वशीभूत हो कर इसे नरमांसयुक्त भोजन खिलाया, जिस कारण इसने उसे नरमांसभक्षक होने का शाप दिया। बारह वर्षों के पश्चात् कल्माषपाद राजा शापयुक्त हुआ। तत्पश्चात् इसने उसकी पत्नी मदयन्ती को अश्मक नामक पुत्र उत्पन्न होने का वर दिया (ब्रह्मांड. ३.६३.१५; वा. रा. सुं. २४.१२)।

वसिष्ठ सुवर्चस्—एक ऋषि, जो हस्तिनापुर के संवरण राजा का पुरोहित था (म. आ. ८९.३६-४०)। यह सुदास राजा के पुरोहित वसिष्ठ ऋषि का पुत्र था, एवं इसके भाई का नाम शक्ति था।

पांचाल देश के राजा सुदास ने संवरण राजा को राज्यभ्रष्ट किया। तदुपरान्त वसिष्ठ की सहाय्यता से ऋक्षपुत्र संवरण ने पुनः राज्य प्राप्त किया, एवं इसीकी सहाय्यता से विवस्वत् की कन्या तपती से उसका विवाह हुआ (म. आ. १८०)। कालोपरान्त संवरण के राज्य में अकाल

छा गया, जिस समय उसके न होते हुए भी इसने बारह वर्षों तक हस्तिनापुर के राज्य का कारोबार योग्य प्रकार से चलाया (म. आ. १६०-१६४)। तारकामय युद्ध के बाद, सृष्टि में महान अकाल आ गया, जिस समय इसने फल-मूल-औषधि आदि का निर्माण कर देव, मनुष्य एवं पशुओं के प्राणों की रक्षा की (ब्रह्मांड. ३.८. ८९.९०; म. शां. २२६.२७; अनु. १३७.१३)।

वसिष्ठ हिरण्यनाभ कौशल्य--एक आचार्य, जो जैमिनि नामक आचार्य का शिष्य था। जैमिनि ने इसे वेदों की पाँच सौ संहिताएँ सिखायी थी, जो आगे चल कर इसने अपने याज्ञवल्क्य नामक शिष्य को प्रदान की (वायु. ८८.२०७)।

वसिष्ठपुत्र--वसिष्ठ ऋषि के ऊर्ज नामक पुत्र का नामान्तर, जो सप्तर्षियों में से एक था (वायु. ६२.१६)।

वसु--प्राचेतस दक्ष की कन्या, जो धर्म ऋषि की पत्नी थी। विभिन्न कल्पों में इसने अनेकानेक अवतार लिये, जिस कारण इसे विभिन्न नाम प्राप्त हुए। महाभारत में प्राप्त इसके विभिन्न नाम निम्नप्रकार हैं:--१. शांडिल्या; २. श्वासा; ३. रता; ४. धूम्रा; ५. प्रभाता; ६. मनस्विनी। इन वसुओं को अनेकानेक पुत्र उत्पन्न हुए, जो वसु नामक देवतासमूह कहलाते है (भा. ६.६.४; ब्रह्मांड. २.९.५०; वसु. २. देखिये)।

२. एक देवतासमूह, जिसकी संख्या आठ होने के कारण ये 'अष्टवसु' नाम से प्रसिद्ध हैं (ऐ. ब्रा. २.१८; श. ब्रा. ४.५.७)।

तैत्तिरीय संहिता में इनकी संख्या ३३३ दी गयी हैं (तै. सं. ५.५.२)। ऋग्वेद में देवताओं का त्रिपदीय विभाजन निर्देशित है, जहाँ वसु, रुद्र एवं आदित्यों को क्रमशः पृथ्वी, अंतरिक्ष एवं स्वर्ग में निवास करनेवाले देव कहा गया है (ऋ. ७.३६.१४)। ब्राह्मणग्रंथों में वसु, रुद्र एवं आदित्यों की संख्या क्रमशः आठ, ग्यारह एवं बारह बतायी गयी है। इन्हीं देवों में द्यौः एवं पृथ्वी मिला कर देवों की कुल संख्या तैतीस बतायी गयी है।

पौराणिक साहित्य में--इन ग्रंथों में वसुओं को धर्म एवं वसु के पुत्र माने गये हैं। किन्तु वहाँ वसु एक स्त्री न हो कर, कल्पभेदानुसार अनेकानेक स्त्रियाँ मानी गयी हैं (भा. ६.६.१०; ब्रह्मांड. २.३८.२; वसु १. देखिये)।

ऐश्वर्यप्राप्ति के लिए वसुओं की उपासना की जाती है (भा. २.३.३)। ये वासुदेव के अंश माने जाते हैं, एवं वैवस्वत मन्वन्तर के सात देवतासमूह में इनका निर्देश प्राप्त है (मत्स्य. ५. २०-२१; ९.२९)।

वैदिक ग्रंथों में तथा पुराणों में, अग्नि को वसुओं का नायक बताया गया है (ब्रह्मांड. २. २७. २४; मत्स्य. ८.४)। देवासुर संग्राम में इन्होंने कालेय नामक दैत्यों से युद्ध किया था (भा. ८.१०.३४)। इन्हें साध्य देवों के बन्धु कहा गया हैं, एवं वसिष्ठ ऋषि से इन्हें लैंगिक समागम से पुनः जन्म प्राप्त होने का शाप प्राप्त हुआ था।

अष्टवसु--पुराणों में अष्टवसु नाम निम्नप्रकार दियें गये हैं:--१. अनल; २. अनिल; ३. अप्; ४. धर; ५. ध्रुव; ६; प्रत्यूष; प्रभास; ८. सोम।

परिवार--अष्टवसुओं की माता, पत्नियाँ एवं पुत्र आदि के बारे में विस्तृत जानकारी महाभारत एवं पुराणों में प्राप्त है (पृ. ८१२ पर दी गयी 'अष्टवसुओं का परिवार' की तालिका देखिये)।

भागवत में--इस ग्रंथ में अष्टवसुओं के नाम एवं परिवार के संबंध में अन्य सारे पुराण एवं महाभारत से विभिन्न जानकारी प्राप्त है, जो निम्नप्रकार है:--

वसु	पत्नी	पुत्र
(१) द्रोण	अभिमति	हर्ष, शोक, भय।
(२) प्राण	ऊर्जस्वती	सह, आयु, पुरोजव।
(३) ध्रुव	धरणि	पुरस्थ देवता।
(४) अर्क	वासना	तर्ष।
(५) अग्नि	वसोर्धारा कृत्तिका	द्रविणक, स्कंद, विशाख।
(६) दोष	शर्वरी	शिशुमार
(७) वसु	आंगिरसी	विश्वकर्मन्
(८) विभावसु	उषा	व्युष्ट, रोचिष, आतप, पंचयाम।

(भा. ६.६.११-१६)।

३. वैवस्वत मन्वन्तर का देवगण।

४. प्रतर्दन देवों में से एक।

५. आद्य देवों में से एक।

६. दस विश्वेदेवों में से तीसरा देव। यह भृगु ऋषि का पुत्र था (मत्स्य. १९५.१३)।

७. ब्रह्मज्योति अग्नि का नामान्तर। पाठभेद-'वसुधाम' (ब्रह्मांड. २.१२.४३)।

अष्टवसुओं का परिवार

वसु का नाम	माता	पत्नी	पुत्र
(१) अनल	शांडिल्या		स्कंद, शाख, विशाख, नैगमेय।
(२) अनिल	श्वासा	शिवा (कृत्तिका) कल्याणिनी	मनोजव, जीव, अविज्ञातगति। रमण, शिशिर।
(३) अप् (अह)	रता		वैतण्ड्य (दंड); श्रम (शांब, शम), श्रांत (शांत); मुनि (ध्वनि, मणिवक्र), ज्योति।
(४) धर	धूम्रा	मनोहरा	शिशिर, रमण (द्रविण), प्राण, हव्यवाह।
(५) ध्रुव	धूम्रा		काल।
(६) प्रत्यूष	प्रभाता		देवल।
(७) प्रभास	प्रभाता	वरस्त्री आंगिरसी (बृहस्पतिभगिनी)	विश्वकर्मन्।
(८) सोम (चंद्र)	मनस्विनी		वर्चस्, बुध, धर (धार), ऊर्मि, कालिल।

(ब्रह्मांड. ३,३.२१–२९; वायु. ६६.२०–२८; विष्णु. १.१५.१११–१२०; मत्स्य. ५.१७–२७; ब्रह्म. ३.३६–४४; ह. वं. १.३; म. आ. ६०. १७–२६)।

८. सोम की अनुचरी देवताओं में से एक।

९. दक्षसावर्णि मन्वन्तर का एक ऋषि।

१०. सावर्णि मनु का एक पुत्र (मत्स्य. ९.३३; मनु आदिपुरुष देखिये)।

११. स्वायंभुव मनु का एक पुत्र (मत्स्य. ९.५; मनु आदिपुरुष देखिये)।

१२. एक राजा, जो मत्स्य के अनुसार पुरूरवस् एवं उर्वशी का पुत्र था (मत्स्य. २४.३३)। पाठभेद–'अमावसु'।

१३. (स्वा. उत्तान.) एक राजा, जो भागवत के अनुसार वत्सर राजा का पुत्र था। इसकी माता का नाम स्वर्वीथि था।

१४. (सो. अमा.) एक राजा, जो भागवत के अनुसार कुश राजा के चार पुत्रों में से एक था। विष्णु एवं वायु में इसे क्रमशः 'अमावसु' एवं 'यशोवसु' कहा गया है। इसने गिरिव्रज नामक नगरी की स्थापना की, जो रामायणकाल में 'वसुमती' नाम से सुविख्यात थी (वा. रा. बा. ३२.७)।

१५. (सो. ऋक्ष.) चेदि देश के उपरिचर वसु राजा का नामांतर (उपरिचर देखिये)। भागवत एवं विष्णुमें इसे क्रमशः 'कृति' एवं 'कृतक' राजा का पुत्र कहा गया है।

१६. (स्वा. उत्तान.) एक राजा, जो उत्तानपाद राजा का पुत्र था। इसकी माता का नाम सुनृता था। एक बार पशुयज्ञ के संबंध में वादविवाद का निर्णय देने के लिए कई ऋषि इसके पास आये। उस समय इसने पशुयज्ञ हिंसक, अतएव त्याज्य होने का अपना मत प्रकट किया, जिस कारण ऋषियों ने इसे रसातल में जाने का शाप दिया। आगे चल कर तपस्या के कारण, इसे स्वर्गलोक की प्राप्ति हो गयी (मत्स्य. १४३.१८–२५)।

इसकी कन्या का नाम अच्छोदा-मत्स्यगंधा-सत्यवती था, जिसे पराशर ऋषि से व्यास नामक पुत्र उत्पन्न हुआ (मत्स्य. १४.१४)। स्कंद के अनुसार, इसके वीर्य से एक मत्स्यी के गर्भ से सत्यवती अथवा मत्स्यगंधा नामक कन्या का जन्म हुआ था (स्कंद ५.३.९७)।

१७. (सू. इ.) एक राजा, जो नृग राजा का पुत्र था।

१८. (सू. नृग.) एक राजा, जो सुमति राजा का पुत्र था।

१९. (सो. वसु.) एक राजा, जो वसुदेव एवं देवरक्षिता के पुत्रों में से एक था। कंस ने इसका वध किया।

२०. (सो. वसु.) एक राजा, जो कृष्ण एवं सत्या के पुत्रों में से एक था। भागवत में इसकी माता का नाम नाग्नजिति दिया गया है (भा. १०.६१.१३)।

२१. (सो.) एक राजा, जो ईलिन एवं रथंतरी के पाँच पुत्रों में से एक था। इसके अन्य चार भाईयों के नाम दुष्यंत, शूर, भीम एवं प्रवसु थे (म. आ. ८९.१५)।

२२. कृमिकुल का एक कुलांगार राजा, जिसने दुर्व्यवहार के कारण अपने ज्ञातिबांधव एवं स्वजनों का नाश किया (म. उ. ७२.१३)। पुराणों में इसे चेदि देश का राजा एवं पृथु राजा का प्रपौत्र कहा गया है। इसके पुत्र का नाम उपमन्यु था, जिससे औपमन्यव कुल का निर्माण हुआ (मत्स्य. ५०.२५-२६)।

२३. एक राजा, जो भूतज्योति नामक राजा का पुत्र था। इसके पुत्र का नाम प्रतीक था (भा. ९.२.१७-१८)।

२४. एक ऋषि, जो इंद्रप्रमति वसिष्ठ नामक ऋषि का पौत्र, एवं भद्र नामक ऋषि का पुत्र था। इसके पुत्र का नाम उपमन्यु था।

२५. एक ऋषि, जो जमदग्नि एवं रेणुका के पाँच पुत्रों में से एक था। इसके अन्य भाईयों के नाम रुमण्वत्, सुषेण, विश्वावसु एवं परशुराम थे। पिता की मातृवध संबंधी आज्ञा न मानने के कारण, इसे पिता के द्वारा शाप प्राप्त हुआ था। परशुराम के द्वारा उस शाप से इसका उद्धार हुआ।

२६. एक आंगिरसवंशीय ऋषि, जो पैल ऋषि का पिता था (म. स. ३०.३५)। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में यह 'होता' था।

२७. (स्वा. प्रिय.) एक राजा, जो कुशद्वीप के हिरण्यरेतस् राजा के सात पुत्रों में से एक था (भा. ५.२०.१४; हिरण्यरेतस् देखिये)। कुशद्वीप का इसका राज्यविभाग इसीके ही नाम से सुविख्यात हुआ।

२८. एक यक्ष, मणिभद्र एवं पुण्यजनी के पुत्रों में से एक था (ब्रह्मांड. ३.७.१२३)।

२९. एक दैत्य, जो मुर दैत्य के पुत्रों में से एक था। कृष्ण ने इसका वध किया (भा. १०.५९.१२)।

३०. एक वसु, जिसकी पत्नी का नाम आंगिरसी, एवं पुत्र नाम विश्वकर्मन् था (भा. ६.६.११; वसु २. देखिये)।

३१. कर्दम ऋषि के दस पुत्रों में से एक (ब्रह्मांड. २.१४.९)।

३२. मारीच कश्यप नामक ऋषि की पत्नी, जिसने सोम के लिए अपने पति का त्याग किया (मत्स्य. २३.२५)।

३३. एक ऋषि, जो भृगु वारुणि एवं पौलोमी के सात ऋषिपुत्रों में से एक था।

३४. एक ऋषि, जो कुणीति एवं पृथुकन्या के पुत्रों में से एक था। इसके पुत्र का नाम उपमन्यु था।

३५. काश्मीर देश का एक राजा, जिसने पुष्करतीर्थ पर तपस्या की थी। इसने पुंडरिकाक्ष के स्तोत्र का पठन किया, जिस कारण इसे मोक्ष की प्राप्ति हुई (वराह. ५-६)।

अपने पूर्वजन्म में, चाक्षुष मनु के राज्यकाल में यह ब्रह्मा का पुत्र था। एक बार इसने रैभ्य ऋषि के द्वारा बृहस्पति को प्रश्न किया, 'कर्म से मोक्ष प्राप्त होता है, या ज्ञान से?' उस समय बृहस्पति ने इसे जवाब दिया, 'ज्ञानपूर्वक किये कर्म से मनुष्य को मोक्षप्राप्ति होती है'। उस जन्म में इसके पुत्र का नाम विवस्वत् था।

अपने इस पूर्वजन्म का स्मरण एक व्याध के द्वारा इसे हुआ, जिस कारण इसने उस व्याध को अगले जन्म में 'धर्मव्याध' होने का वर प्रदान किया।

३६. केरल देश में रहनेवाला एक ब्राह्मण (पद्म. उ. ११९)। पापकर्म के कारण इसे पिशाचयोनि प्राप्त हो गयी। पश्चात् गंगोदक से यह मुक्त हुआ।

३७. वेंकटाचल पर रहनेवाला एक निषाद। इसकी पत्नी का नाम चित्रवती था, जिससे इसे वीर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। विष्णु की उपासना करने से यह मुक्त हुआ।

वसु काश्यप—रोहित मन्वन्तर का एक ऋषि (ब्रह्मांड ४.१.६२)।

वसु भारद्वाज—एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. ९.८०-८२)।

वसुकर्ण वासुक्र—एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. १०.६५.६६)।

वसुकृत वासुक—एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. १०.२०-२६)।

वसुक्र ऐंद्र—एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. १०.२७-२९)। किन्तु ऐतरेय अरण्यक में इन सूक्तों के प्रणयन का श्रेय इसे नहीं, बल्कि इसकी पत्नी को दिया गया है (ऐ. आ. १.२.२; सां. आ. १.३)।

एक बार इसके द्वारा किये गये यज्ञ में, इंद्र गुप्तरूप में उपस्थित हुआ। किन्तु इसकी पत्नी के द्वारा अनुरोध

किये जाने पर, अपने वास्तव रूप में इंद्र ने इसे दर्शन दिया। उस समय इंद्र ने इसके साथ किया हुआ संवाद ऋग्वेद में प्राप्त है (ऋ. १०.२८)।

वसुक्र वासिष्ठ--एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. ९.९७. २८-३०)।

वसुक्रपत्नी--एक वैदिक सूक्तद्रष्ट्री (ऋ. १०.२८. १)।

वसुचंद्र--एक राजा, जो भारतीय युद्ध में पांडवों के पक्ष में शामिल था (म. द्रो. १३३.३७)।

वसुज्येष्ठ--(शुंग. भविष्य.) एक राजा, जो मत्स्य के अनुसार पुष्यमित्र राजा का पुत्र था (मत्स्य. २७२. २८)। भागवत, विष्णु एवं ब्रह्मांड में इसे 'सुज्येष्ठ' कहा गया है। इसने सात वर्षों तक राज्य किया।

वसुद--एक देव, जो भृगु एवं पौलोमी के पुत्रों में से एक था (ब्रह्मांड. ३.१.२९)।

२. (सू. इ.) एक राजा, जो मत्स्य के अनुसार पुरुकुत्स एवं नर्मदा के पुत्रों में से एक था (मत्स्य. १२. ३६)। इसे 'त्रसदस्यु' नामांतर भी प्राप्त था।

वसुदत्त--एक राजा, जो अपने पूर्वजन्म में सुव्रत नामक राजा था। विष्णु के आशीर्वाद से इसे इंद्रपद की प्राप्ति हुई (पद्म. सृ. २२; भू. ५)।

वसुदा--मालि नामक राक्षस की पत्नी।

२. अंगिरस् ऋषि के सुभा नामक पत्नी का नामान्तर (म. व. २०८.१; शिवा देखिये)।

वसुदान--शिवदेवों में से एक (ब्रह्मांड. २.३६. ३२)।

२. एक राजा, जो कुशद्वीप के हिरण्यरेतस् राजा के पुत्रों में से एक था (भा. ५.२०.१४)।

३. पांशुराष्ट्र का अतिरथि सम्राट्, जो भारतीय युद्ध में पाण्डवों के पक्ष में शामिल था (म. उ. १६८.२५)। इसे 'वसुमत्' नामान्तर भी प्राप्त था (म. स. ४.५१*)।

युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के समय, इसने २६ हाथी, २००० घोडे आदि भेंटवस्तुएँ उसे अर्पित की थी (म. स. ४८.२६-२७)।

भारतीय युद्ध में, इसने युधिष्ठिर के साथ युद्धभूमि में प्रवेश किया था (म. उ. १४९.५८), जहाँ इसने काफ़ी पराक्रम दिखाया (म. क. ४.८६)। इस युद्ध में यह एवं इसका पुत्र क्रमशः द्रोण एवं कर्ण के द्वारा मारे गये (म. द्रो. १६४.८४; क. ४.७४)।

४. पाण्डवों के पक्ष का अन्य एक राजा, जो द्रोण के ही द्वारा मारा गया (म. द्रो. २०.४३)।

५. (सो. कुरु. भविष्य.) एक राजा, जो विष्णु के अनुसार बृहद्रथ राजा का पुत्र था। मत्स्य एवं भागवत में इसे क्रमशः 'वसुदामन्' एवं 'सुदास' कहा गया है (मत्स्य. ५०.८५)।

वसुदानपुत्र--कौरवपक्ष का एक राजा, जिसने भारतीय युद्ध में काशिराज का पुत्र अभिभू का वध किया था (म. क. ४.७४)।

वसुदामन्--बृहद्रथपुत्र वसुदान राजा का नामान्तर।

वसुदामा--स्कंद की अनुचरी एक मातृका (म. श. ४५.५)।

वसुदेव--(सो. वृष्णि.) एक यादव राजा, जो श्रीकृष्ण का पिता था। यह मथुरा के उग्रसेन राजा का मंत्री, एवं (पांडुपत्नी) कुंती का बन्धु था। इसके पिता का नाम शूर (देवमीढ) एवं माता का नाम मारिषा था। इसके जन्म के समय देवताओं ने आनक एवं दुंदुभियों का घोष किया, जिस कारण इसे 'आनकदुंदुभि' नामान्तर भी प्राप्त था (भा. ९.२४.२८; वायु. ९६.१४४; ब्रह्म. १४)।

कृष्णजन्म--उग्रसेन के भाई देवक के सात कन्याओं के साथ इसका विवाह हुआ था, जिसमें देवकी प्रमुख थी। इस विवाह के समय, देवकी का चचेरा भाई एवं उग्रसेन राजा का पुत्र कंस, स्वयं रथ का सारथ्य करने बैठा था। बारात के समय, देवकी के आठवें पुत्र के द्वारा कंस का वध होने की आकाशवाणी उसने सुनी, जिस कारण कंस ने इसे एवं देवकी को कारागृह में रख दिया। किन्तु इसके आठवें पुत्र श्रीकृष्ण का जन्म होते ही, यह रात्री में ही व्रज में नंद गोप के घर गया, एवं वहाँ श्रीकृष्ण को छोड़ कर उसके बदले नंद गोप एवं यशोदा की नवजात कन्या ले आया। यशोदा एवं देवकी सहेलियाँ थी, जिन्होंने यह संकेत पहले से ही निश्चित किया था (दे. भा. ४.२३)।

पश्चात् कंस ने इसे मुक्त किया, एवं इसने गर्ग ऋषि के द्वारा नंद गोप के घर में रहनेवाले अपने बलराम एवं कृष्ण इन दो पुत्रों के जातकर्मादि संस्कार किये (भा. १०.५.२०-२१)। भागवत के अनुसार, स्वयं श्रीकृष्ण ने इसकी कंस के कारागृह से मुक्तता की थी (भा. १०. ३६.१७-२४)।

पराक्रम--पौण्ड्रक वासुदेव राजा के साथ यादवों का युद्ध हुआ था, जिस समय यह भी उपस्थित था। नारद ने इसे भागवतधर्म का उपदेश किया था, जिसमें उसने

इसे निमि जनक एवं नौ योगेश्वरों के बीच हुआ तत्त्वज्ञान-पर उपदेश कथन किया था (भा. ११.२-५)।

अश्वमेधयज्ञ—इसने स्यमन्तपंचकक्षेत्र में अश्वमेध यज्ञ किया था, जिस समय इसके अश्वमेधीय अश्व का जरासंध ने हरण किया था (म. स. ४२.९)। किन्तु श्रीकृष्ण ने वह अश्व लौट लाया, एवं इसका यज्ञ भलीभाँति समाप्त हुआ। इस यज्ञ के समय इसने नंद गोप का विपुल भेटवस्तुएँ दे कर सत्कार किया था (भा. १०.६६)।

मृत्यु—कृष्ण की मृत्यु की वार्ता सुन कर, यह अत्यंत उद्विग्न हुआ (म. मौ. ५)। इसने अपने पुत्रो में से सोमी एवं कौशिक को अपने भाई वृक के गोद में दिया, एवं प्रभासक्षेत्र में देहत्याग किया। पश्चात् अर्जुन की नेतृत्व में, एक अत्यंत मौल्यवान् मनुष्यवाहक यान से इसका शव स्मशान में ले जाया गया। इसकी स्मशान-यात्रा के अग्रभाग में इसका आश्वमेधिक छत्र था, एवं पीछे इसके स्त्रियों का परिवार था। इसके अत्यंत प्रिय स्थान पर इसका दाहकर्म किया गया (म. मौ. ८.१९-२३)। इसकी पत्नियों में से देवकी, भद्रा, रोहिणी एवं मदिरा आदि स्त्रिया इसके शव के साथ सती हो गयीं।

परिवार—इसकी पत्नियाँ एवं परिवार की जानकारी विभिन्न पुराणों में प्राप्त हैं, किंतु वह एक दूसरे से मेल नही खाती।

पत्नियाँ—इसकी पत्नियों की संख्या वायु एवं हरिवंश में क्रमशः १३ एवं १४ दी गयी हैं (वायु. ९६.१५०-१६१; ह. वं. १.३५.१)। मत्स्य एवं भागवत में पत्नियों की कुल संख्या अप्राप्य हैं, किंतु भागवत में इसके १३ पत्नियों का अपत्यपरिवार दिया गया हैं।

इसकी पत्नियों में निम्नलिखित स्त्रिया प्रमुख थीः-

(१) **देवककन्याएँ**--१. देवकी; २. सहदेवा; ३. शांतिदेवा, जिसे वायु एवं मत्स्य में क्रमशः 'शार्ङ्गदेवा' एवं 'श्राद्धदेवा' कहा गया है; ४. श्रीदेवा; ५. देवरक्षिता; ६. वृकदेवा (धृतदेवा); ७. उपदेवा।

(२) **पूरुकुलोत्पन्न स्त्रियाँ**--१. रोहिणी, जिसे हरिवंश एवं ब्रह्मांड में बाह्लीक राजा की, एवं वायु में वाल्मीक राजा की कन्या कहा गया है; २. मदिरा (इंदिरा-ह. वं.); ३. भद्रा; ४. वैशाखी (वैशाली-विष्णु.); ५. सुनाम्नी।

उपर्युक्त पत्नियों में से वैशाखी एवं सुनाम्नी का निर्देश भागवत में अप्राप्य हैं, जहाँ उनके स्थान पर 'रोचना' एवं 'इला' नाम प्राप्त हैं।

(३) **भोगांगना**--१. सुगंधा (सुतनु-ह. वं.); २. वनराजी (रथराजी-मत्स्य.; वडवा-ह. वं.)। भागवत एवं विष्णु में इनके निर्देश अप्राप्य हैं।

(४) **अन्य पत्नियाँ**--१. वैश्या; २. कौसल्या।

पुत्र-(१) **रोहिणीपुत्र**--१. राम; २. सारण; ३. दुर्दम (दुर्मद); ४. शठ (गद-भा., निशव-वायु.); ५. दमन (विपुल-भा., भद्राश्व-विष्णु); ६. शुभ्र (सुभ्रु-मत्स्य., श्वभ्र-ह. वं., कृत-भा., भद्रबाहु-विष्णु.); ७. पिंडारक (कृत-भा., दुर्गमभूत-विष्णु.); ८. कुशीतक (उशीगर-ह. वं., महाहनू-मत्स्य., सुभद्र-भा.)।

सारे पुराणों में रोहिणी की पुत्रसंख्या आठ बतायी गयी हैं। केवल भागवत में उसके बारह पुत्र दिये गयें है, जिनमें से उर्वरीत चार निम्नप्रकार हैंः— १. भद्रबाह; २. दुर्मद, ३. भद्र, ४. भूत।

इनके अतिरिक्त रोहिणी को दो निम्नलिखित कन्याएँ भी थी, जिनका उल्लेख हरिवंश में प्राप्त हैंः- १. चित्रा (चित्राक्षी-मत्स्य.), २. सुभद्रा (चित्राक्षी- मत्स्य.)।

(२) **मदिरापुत्र**—१. नंद, २. उपनंद; ३. कृतक (स्थित-वायु.); ४. कुक्षिमित्र; ५. मित्र; ६. पुष्टि; ७. चित्र; ८. उपचित्र; ९. बेल; १०. तुष्टि।

इनमें से पहले तीन पुत्रों का निर्देश हरिवंश एवं मत्स्य के अतिरिक्त बाकी सारे पुराणों में प्राप्त हैं। ४-८ पुत्रों के नाम केवल वायु एवं विष्णु में प्राप्त है। ९-१० पुत्रों के नाम केवल विष्णु में प्राप्त हैं। वायु में इन दो पुत्रों के स्थान पर 'चित्रा' एवं 'उपचित्रा' नामक दो कन्याओं का निर्देश प्राप्त हैं। भागवत में ४-१० पुत्रों के नाम अप्राप्य हैं, किंतु वहाँ 'शूर' आदि बिल्कुल नये नाम दिये गयें हैं।

(३) **भद्रापुत्र**--(अ) **वायु एवं ब्रह्मांड में**—१. बिंब; २. उपबिंब; ३. सत्वदंत; ४. महौजस्। (ब) **विष्णु में**—१. उपनिधि; २. गद।

(४) **वैशाखी (वैश्या) पुत्र**—कौशिक, जिसे भागवत में कौसल्यापुत्र कहा गया है।

(५) **सुनाम्नीपुत्र**—१. वृक; २. गद (ह. वं.)।

(६) **सहदेवापुत्र**--(अ) **ब्रह्मांड में**—१. पूर्व। (ब) **भागवत में**--१. पुरु; २. विश्रुत आदि (क) **वायु में**--१. भयासख।

(७) **शांतिदेवापुत्र** (अ) **ब्रह्मांड में**- १. जनस्तंभ। (ब) **भागवत में** —१. श्रम; २. प्रतिश्रुत आदि। (क) **हरिवंश में**--१. भोज; २. विजय।

(८) श्रीदेवापुत्र--(अ) भागवत में--१. वसु; २. हंस; ३. सुवंश। (ब) ब्रह्मांड में--१. मंदक।

(९) देवरक्षितापुत्र--(अ) भागवत में--१. उपासंग; २. वसु। इन दोनों पुत्रों का कंस ने वध किया (ब) हरिवंश में--१. उपासंगधर। (क) भागवत में--१. गद। (ड) मत्स्य में--एक कन्या, जिसका कंस ने वध किया।

(१०) वृकदेवापुत्र-(अ) हरिवंश एवं ब्रह्मांड में-१. अगावह। (ब) वायु में-१. स्वगाहष; २. अगाहिन्। (क) मत्स्य में--१. अवागह; २. नंदक। (ड) भागवत में--विपुष्ठ।

(११) उपदेवापुत्र--(अ) वायु एवं मत्स्य में--१. विजय; २. रोचन (रोचमत्); ३. वर्धमत्; ४. देवल। (ब) भागवत में--१. कल्प; २. वृक्ष।

(१२) देवकीपुत्र (अ) मत्स्य में--१. सुषेण; २. कीर्तिमत्; ३. भद्रसेन; ४. भद्रविदेह (भद्रदेव-ब्रह्मांड; भद्रविदेक-वायु; भद्र-भागवत.); ५. ऋषिदास (ऋजुकाय -ब्रह्मांड.; यजुदाय-वायु; ऋजु-भागवत); ६. दमन (उदर्षि-ब्रह्मांड.; तदय-वायु; संमर्दन-भागवत.); ७. गवेषण। ये सारे पुत्र कंस के द्वारा मारे गये।

इनके अतिरिक्त देवकी के कृष्ण एवं सुभद्रा नामक संतानों का निर्देश वायु एवं मत्स्य में, तथा संकर्षण नामक पुत्र का निर्देश भागवत एवं विष्णु में प्राप्त है।

(१३) वाम्रापुत्र--सहदेव।

(१४) सुगंधपुत्र--१. पुंड्र, जो राजा बन गया; २ कपिल, जों वन में गया।

(१५) वनराजीपुत्र--१. जरस्, जो धनुर्विद्याप्रवीण था, किन्तु कालोपरांत निषाद बन गया (ब्रह्मांड. ३.७१; वायु. ९६.१५९-२१४; मत्स्य. ४६; भा. ९.२४.२७-२८; विष्णु. ४.१५; ह. वं. १.३५.१-१०)।

२. (सू. इ.) एक इक्ष्वाकुवंशीय राजा, जो विष्णु के अनुसार चंचु राजा का पुत्र था। वायु एवं भागवत में इसे 'सुदेव' कहा गया है।

३. एक दुराचारी ब्राह्मण, जो अपने ईश्वरभक्ति के कारण, अगले जन्म में असुरराज प्रल्हाद बना (पद्म. उ. १७४)।

वसुदेव काण्व--(कण्व. भविष्य.) काण्वायन राजवंश का आद्य राजा, जो शुंग राजा देवभूति (देवभूमि) का अमात्य था। देवभूति का वध कर यह शुंगराज्य का अधिपति बना। इसने पाँच वर्षों तक राज्य किया। इसके पुत्र का नाम भूमित्र था (भा. १२. १.१९-२०; मत्स्य. २७२.३२; ब्रह्मांड. २.७४.१५६)।

वसुदेवा--गंदिनी की कन्या (वायु. ९६.१११)।

वसुंधर--शाल्मलिद्वीप में रहनेवाला एक लोकसमूह (भा. ५.२०.११)।

वसुप्रभ--स्कंद का एक सैनिक (म. श. ४४.५८)।

वसुभृद्यान--(स्वा.) स्वायंभुव मन्वन्तर के वसिष्ठ ऋषि के सात पुत्रों में से एक। इसकी माता का नाम ऊर्जा था (भा. ४.१.४१)। कई अभ्यासकों के अनुसार 'वसुभृद्यान' एक व्यक्ति न हो कर, यहाँ 'वसुभृत्' एवं 'यान' ऐसे दो व्यक्तियों के नाम की ओर संकेत किया गया है।

वसुमत्--वैवस्वत मनु के पुत्रों में से एक।

२. (सो. पुरूरवस्.) एक राजा, जो भागवत के अनुसार श्रुतायु राजा का पुत्र था।

३. जमदग्नि एवं रेणुका के वसु नामक पुत्र का नामान्तर (वसु २५. देखिये)

४. कृष्ण एवं जांबवती के पुत्रों में से एक।

५. युधिष्ठिर की सभा का एक राजा (म. स. ४.३८)। भारतीय युद्ध में यह पाण्डवों के पक्ष में शामिल था (म. उ. ४.१८)।

६. (सू. निमि.) एक जनकवंशीय राजकुमार, जिसे एक ऋषि के द्वारा धर्मज्ञान प्राप्त हुआ था (म. शां. २९७. २)।

७. (सू. इ.) इक्ष्वाकुवंशीय वसुमनस् कौसल्य राजा का नामान्तर।

वसुमती--वालेय गंधर्वों की एक कन्या, जिससे आगे चल कर 'वसुमती सूतगण' की उत्पत्ति हुई (वायु. ६९. २१-२३)।

२. पृथ्वी का नामान्तर (वायु. ९७.१६)।

वसुमनस्--वैवस्वत मनु के वसुमत् नामक पुत्र का नामान्तर (भा. ८.१३.३)।

२. जमदग्नि के वसु नामक पुत्र का नामान्तर (भा. ९. १५.१३)।

३. श्रीकृष्णपुत्र वसुमत् का नामांतर (भा. १०.६१.१२)।

४. एक सप्तर्षि, जो वैवस्वत् मन्वन्तर में उत्पन्न वसिष्ठ के सात पुत्रों में से एक था (ब्रह्मांड. २.३८.२९)। भागवत में इसे वसुमत् कहा गया है।

५. (सो. पुरूरवस्.) श्रुतायु राजा के वसुमत् नामक पुत्र का नामान्तर।

६. युधिष्ठिर की सभा का एक राजा, जो भारतीय युद्ध में पाण्डवों के पक्ष में शामिल था (म. स. ४.५१*, उ. ४.२१)।

वसुमनस् कौसल्य—(सू. इ.) कोसल देश का एक इक्ष्वाकुवंशीय राजा, जो वायु के अनुसार हर्यश्व राजा का पुत्र था। ययाति राजा की कन्या माधवी इसकी माता थी। वायु में इसे वसुमत् कहा गया है (वायु. ८८.७६)। इसके भाइयों के नाम अष्टक वैश्वामित्रि, प्रतर्दन, एवं शिवि औशीनर थे (म. व. परि. १. क्र. २१. पंक्ति ६)।

ययाति को पुण्यदान--एक बार यह अपने भाइयों के साथ यज्ञ कर रहा था, जहाँ स्वर्ग से भ्रष्ट हुआ इसका मातामह ययाति आ गिरा। पश्चात् अपनी माता माधवी की आज्ञा से, इन्होंने अपना पुण्य ययाति को प्रदान किया, जिस कारण उसे पुनः एक बार स्वर्ग की प्राप्ति हुई (मत्स्य. ३५.५; माधवी देखिये)। ययाति राजा को पुण्यफल प्रदान करने के कारण, यह 'दानपति' नाम से सुविख्यात हुआ।

संवाद—इसने बृहस्पति ऋषि से राजधर्म का ज्ञान प्राप्त किया था (म. शां. ६८)। वामदेव ऋषि ने इसे राजनीति कथन की थी (म. शां. ९२-९४)। तीर्थयात्रा एवं विद्वत्सहवास के कारण, इसने काफ़ी पुण्यसंचय किया था, जिस कारण इसे स्वर्गप्राप्ति हुई (मत्स्य. ४२.१४)।

यह यमसभा का सभासद था (म. स. ८.१३)। घोषयात्रा युद्ध में अर्जुन एवं कृप का संग्राम देखने के लिए, यह इंद्र के रथ पर आरूढ हो कर उपस्थित हुआ था (म. वि. ५१.९-१०)।

वसुमनस् रौहिदश्व--एक वैदिक मंत्रद्रष्टा (ऋ. १०. १७९.३)।

वसुमित्र—एक क्षत्रिय राजा, जो दनायुपुत्र विक्षर नामक असुर के अंश से उत्पन्न हुआ था। भारतीय-युद्ध में यह कौरवों के पक्ष में शामिल था (म. आ. ६८.४१)।

२. (शुंग. भविष्य.) एक शुंगवंशीय राजा, जो भागवत, विष्णु एवं ब्रह्मांड के अनुसार सुज्येष्ठ राजा का, वायु के अनुसार पुष्पमित्र का, एवं मत्स्य के अनुसार वसुज्येष्ठ राजा का पुत्र था। इसने दस वर्षों तक राज्य किया। इसके पुत्र का नाम भद्रक (उदंक) था (भा. १२.१.१७)।

वसुरुच्—एक आचार्य (ऋ. ९.११०.६)।

वसुरुचि—एक यक्ष, जो कश्यप एवं अरिष्टा के पुत्रों में से एक था। इसीके ही वेष में यक्ष ने क्रतुस्थला उपभोग लिया था (वायु. ६९.१४०)।

२. एक अप्सरा (ब्रह्मांड. ३.७.११)।

वसुरोचिस् आंगिरस—एक वैदिक मंत्रद्रष्टा (ऋ.८. ३४.१६)। लुडविग इन्हें हज़ार गायकों का एक परिवार मानते है, जिन्होंने इंद्र से विपुल संपत्ति प्राप्त की थी (लुडविग, ऋग्वेद अनुवाद. ३.१६२)। किन्तु ग्रिफिथ इस शब्द का एकवचनी रूप ग्राह्य मानते है, एवं इसे एक राजा समझते है (ग्रिफिथ, ऋग्वेद के सूक्त. २. १७५)।

वसुश्री—स्कंद की अनुचरी एक मातृका (म. श. ४५.१२)। पाठभेद-'केतकी'।

वसुश्रुत आत्रेय--एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. ५. ३-६)।

वसुषेण--अंगराज कर्ण का मूल नाम, जो अधिरथ सूत एवं राधा के द्वारा उसकी बाल्यावस्था में रखा गया था।

वसुहोम—अंगदेश का एक प्राचीन राजा, जिसे 'वसुहुम' नामान्तर प्राप्त था। मुंजपृष्ठ पर्वत पर तप करते समय, मांधातृ राजा ने इसे दण्डनीति के संबंध में उपदेश प्रदान किया था (म. शां. १२२)।

वसूयव आत्रेय—एक वैदिक सूक्तद्रष्टा (ऋ. ५. २५-२६)।

वसोर्धारा—अग्नि नामक वसु की पत्नी (भा.६.६.१३)।

वस्तु—(सो. क्रोष्टु.) यादव राजा बभ्रु का नामांतर (बभ्रु २. देखिये)। वायु में इसे लोमपाद राजा का पुत्र कहा गया है (वायु. ९५.३७)।

वस्वनंत—(सू. निमि.) विदेह देश का एक राजा, जो भागवत के अनुसार उपगुप्त राजा का पुत्र था। इसके पुत्र का नाम युयुध था (भा. ९.१३.२५)।

वहीनर--(सो. कुरु. भविष्य.) एक राजा, जो भागवत के अनुसार दुर्दमन राजा का, एवं मत्स्य के अनुसार उदयन राजा का पुत्र था। विष्णु में इसे अहीन कहा गया है। इसके पुत्र का नाम दंडपाणि था (भा. ९.२२.४३)।

२. यमसभा का एक क्षत्रिय (म. स. ८. १५)। पाठभेद-'इषीरथ'। यह 'वह+नर'(= नरवाहन) शब्द का फारसी रूपान्तर होगा।

वह्नि—शिवदेवों में से एक।

२. (सो. तुर्वसु.) एक राजा, जो भागवत, विष्णु एवं वायु के अनुसार तुर्वसु राजा का पुत्र था। इसके पुत्र का नाम भर्ग (गोभानु) था (भा. ९.२३.२६; ब्रह्मांड. ३.७४.१)।

३. (सो. कुकुर.) एक राजा, जो कुकुर राजा का पुत्र था। इसके पुत्र का नाम विलोमन् था। विष्णु में इसे धृष्ट कहा गया है (धृष्ट ५. देखिये)।

४. कृष्ण एवं मित्राविंदा के पुत्रों में से एक (भा. १०.६१.१६)।

५. रामसेना एक वानर।

६. अग्नि का नामांतर (अग्नि ५. देखिये)।

वाकय--वसिष्ठकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

वाका--माल्यवत् राक्षस की कन्या, जो विश्रवस् ऋषि की चार पत्नियों में से एक थी। महाभारत में विश्रवस् ऋषि के पत्नियों के पुष्पोत्कटा, राका एवं मालिनी ये तीन ही नाम प्राप्त है। किन्तु ब्रह्मांड एवं वायु में विश्रवस् ऋषि की चतुर्थ पत्नी वाका बतायी गयी है (ब्रह्मांड. ३.८.३९-५६; वायु. ७०.३४-५०)। इसके त्रिशिरस्, दूषण एवं विद्युत्जिह्व नामक तीन पुत्र, एवं अनुपालिका नामक कन्या थी।

वाक्पति--सत्यदेवों में से एक (ब्रह्मांड. २.३६.३४)।

वागायनि--भृगुकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

वागिंद्र--एक ऋषि, जो गृत्समदवंशीय प्रकाश ऋषि का पुत्र था। इसके पुत्र का नाम प्रमति था। यह वीतहव्य नामक ब्रह्मक्षत्रिय के वंश में उत्पन्न हुआ था (म. अनु. ३०.६३; वीतहव्य देखिये)।

वाग्ग्रंथि--वसिष्ठकुलोत्पन्न एक गोत्रकार। पाठभेद --'बाहुरि'।

वाग्दुष्ट--कौशिक ऋषि के सात पुत्रों में से एक (मत्स्य. २०.३)। इसके कनिष्ठ भाई का नाम पितृवर्तिन् था (पितृवर्तिन् देखिये)।

वाग्मिन्--(सो. पूरु.) एक राजा, जो पूरुराजा के पौत्र मनस्यु के तीन पुत्रों में से एक था। इसकी माता का नाम सौवीरी था। इसके अन्य दो भाइयों के नाम सुभ्रू एवं संहनन थे (म. आ. ८९.७)।

वाच्--सावर्णि मनु के नौ पुत्रों में से एक (वायु. १००.२२)।

वाच् आम्भृणी--एक वैदिक सूक्तद्रष्ट्री (ऋ. १०. १२५)। इसके द्वारा रचित ऋग्वेद का सूक्त तेजस्वी विचारों से ओतप्रोत भरा हुआ है, जहाँ इसने वाणी का सामर्थ्य निम्नलिखित शब्दों मे बताया है, 'जो ज्ञान देव एवं मानवों के लिए अप्राप्य है, वह मैं बता सकती हूँ। इस ज्ञान के कारण, किसी भी व्यक्ति को मै श्रेष्ठ बना सकती हूँ, ब्राह्मण बना सकती हूँ, ऋषि बना सकती हूँ, बुद्धिमान् बना सकती हूँ। मेरे पास रुद्र का धनुष सदैव सज्ज है, जिसकी सहाय्यता से मैं समस्त ब्रह्मद्वेष्टा शत्रुओं का नाश कर सकती हूँ' (ऋ. १०. १२५.५-७)।

वाचःश्रवस्--शिखंडिन् नामक शिवावतार का शिष्य, जो अठारहवें द्वापारयुग में उत्पन्न हुआ था (वायु. २३. १८३)।

वाचक्नवी--गार्गी नामक ब्रह्मवादिनी स्त्री का पैतृक नाम (बृ. उ. ३.६.१; ८.१)। 'वचक्नु' का वंशज होने से इसे यह पैतृक नाम प्राप्त हुआ होगा।

वाचस्पत--अलीकयु नामक आचार्य का पैतृक नाम (सां. ब्रा. २६.५; २८.४)।

वाचावृद्ध--भौत्य मन्वन्तर का एक देवगण (ब्रह्मांड. ४.१.१०७)।

वाच्य--प्रजापति नामक वैदिक सूक्तद्रष्टा का पैतृक नाम।

वाच अथवा **वाजिन्**--सावर्णि मनु के नौ पुत्रों में से एक।

वाजंभर--सप्ति नामक वैदिक सूक्तद्रष्टा का पैतृक नाम।

वाजरत्नायन--सोमशुष्मन् नामक आचार्य का पैतृक नाम (ऐ. ब्रा. ८.२१.५)।

वाजश्रव-अंगिरस् कुल में उत्पन्न हुआ एक ऋषि। इसे वायुपुराण की संहिता निर्यन्तर नामक आचार्य से प्राप्त हुई, जो आगे चल कर इसने सोमशुष्म नामक शिष्य को प्रदान की (ब्रह्मांड. २.३५.१२२; वायु. १०३.६४)। इसके नाम के लिए 'वाजिश्रव' पाठभेद भी प्राप्त है।

वाजश्रवस्-- एक आचार्य, जो जिह्वावत् बाध्योग नामक आचार्य का शिष्य था (बृ. उ. ६.४.३३ माध्यं.) इसके शिष्य का नाम कुश्रि था। नचिकेतस् इसका पुत्र था। पुराणों में इसे ऋषिक एवं चौबीसवाँ वेद व्यास कहा गया है।

२. एक व्यास, जो बाईसवें द्वापारयुग में उत्पन्न हुआ था।

वाजश्रवस--कुश्रि नामक आचार्य का पैतृक नाम (श. ब्रा. १०.५.५.१)। नचिकेतस् का पैतृक

नाम भी यही बताया गया है (तै. ब्रा. ३.११.८.१)। वाजश्रवस् के वंशज होने से उन्हे वाजश्रवस पैतृक नाम प्राप्त हुआ होगा।

२. एक ऋषिकुल, जो गोतम कुल में उत्पन्न हुआ था (तै. ब्रा. ३.११.८)। इस कुल के लोग अत्यंत पूज्य माने जाते थे (तै. ब्रा.१.३.१०३)।

वाजसनेयि अथवा **वाजसनेय**—याज्ञवल्क्य नामक सुविख्यात आचार्य का पैतृक नाम (बृ. उ. ६.३.७; ५. ३ काण्व; जै. ब्रा. २.७६)। इसकी शिष्यपरंपरा 'वाजसनेयिन' नाम से सुविख्यात है (अनुपद. सूत्र. ७.१२.८.१), जिसमें याज्ञवल्क्य के पंद्रह शिष्य प्रमुख थे। एक शाखाप्रवर्तक आचार्य के नाते, याज्ञवल्क्य का निर्देश पाणिनि के अष्टाध्यायी में प्राप्त है (पाणिनि देखिये)।

२. एक आचार्यसमूह, जो व्यास की यजुःशिष्य परंपरा में से याज्ञवल्क्य नामक आचार्य के पंद्रह शिष्यों से बना हुआ था।

याज्ञवल्क्य ने सूर्य से यजुःसंहिता को प्राप्त किया था। आगे चल कर उसने उस संहिता के पंद्रह भाग किये, एवं वे अपने काण्व, माध्यंदिन आदि शिष्यों में बाँट दिये। इसी कारण याज्ञवल्क्य के ये पंद्रह शिष्य 'वाजसनेय' नाम से सुविख्यात हुए। याज्ञवल्क्य के ही कारण, शुक्लयजुर्वेदसंहिता 'वाजसनेयि संहिता' नाम से प्रसिद्ध हुई है।

वाजिजि—मरीचिगर्भ देवों में से एक (ब्रह्मांड. ४.१.५८)।

वाजिन्—सावर्णि मनु के वाज नामक पुत्र का नामांतर।

२. याज्ञवल्क्य के पंद्रह शिष्यों का सामूहिक नाम (वायु. ६१.२४-२६; वाजसनेयि २. देखिये।

वाजिश्रवस्—अंगिराकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

वाज्य—केतु नामक आचार्य का पैतृक नाम (वं. ब्रा. १)।

वाटधान--एक राजा, जो क्रोधवश नामक दैत्य के अंश से उत्पन्न हुआ था (म. आ. ६१.५८)। इसका राज्य उत्तर भारत में बसा था, एवं भारतीययुद्ध के समय वह कौरवों की सेना से घिरा गया था (म. उ. १९.३०)। भारतीय युद्ध में यह कौरवों के पक्ष में शामिल था।

२. एक लोकसमूह, जिसे नकुल ने अपने पश्चिम-दिग्विजय के समय जीता था (ब्रह्मांड २.१६.४६; म. स. २९.७)। भारतीययुद्ध में, ये लोग कौरवों के पक्ष में शामिल थे, एवं भीष्म के द्वारा निर्मित गरुड़-व्यूह के शिरोभाग में खड़े हुए थे (म. भी. ५२.४)। अर्जुन ने इन लोगों का संहार किया था (म. क. ५१.१६)।

वाटिक--पराशरकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

वाडव—एक व्याकरणकार, जो पतंजलि के व्याकरण महाभाष्य में निर्दिष्ट सात वार्तिककारों में से एक था (महा. ८.२.१०६)। उस ग्रंथ में अन्यत्र इसका निर्देश दो बार किया गया है, जहाँ इसे सौर्यनगर का रहिवासी कहा गया है (महा. ३.२.१४; ७.३.१)। कैयट के अनुसार, सौर्य एक नगर का ही नाम था।

वाडोहवि—वसिष्ठकुलोत्पन्न एक गोत्रकार।

वात--(सो. क्रोष्टु) एक राजा, जो वायु के अनुसार शूर राजा का पुत्र था।

२. एक क्रूरकर्मा राक्षस, जो यातुधान राक्षस का पुत्र था। इसके पुत्र का नाम विरोध था (ब्रह्मांड ३.७.९६)।

३. स्वारोचिष मन्वंतर के सप्तर्षियों में से एक।

वातघ्न-विश्वामित्र ऋषि के ब्रह्मवादी पुत्रों में से एक।

वातजूति (वातरशन)—एक वैदिक मंत्रद्रष्टा (ऋ. १०.१३६.२)।

वातपति—द्रौपदीस्वयंवर में उपस्थित एक राजा (म. आ. २०१.२०)।

वातरशन—नग्न मुनियों का एक समुदाय (ऋ. १०.१३६.१०२; तै. आ. १.२३.२; २४.४; २.७.१)। इससे प्रतीत होता है कि, भारत में आज दिखाई देनेवाले नग्न गोसाइयों की परंपरा काफ़ी पुरातन है।

ऋग्वेद में निम्नलिखित ऋषियों को 'वातरशन' उपाधि प्रदान की गई है:—ऋष्यशृंग, एतश, करिक्रत, जूति, वातजूति, विप्रजूति (ऋ. १०. १३६)।

वातवत्--एक ऋषि, जो दृति नामक आचार्य का मित्र था (पं. ब्रा. २५.३.६)। एक बार इसने एवं दृति ने एक यज्ञ का आयोजन किया। किन्तु इसने उस यज्ञ का कार्य बीच में ही छोड़ दिया। इस कारण; इसे अनेकानेक कष्टों का सामना करना पड़ा, एवं इसके वंशज 'वातवत्-गण' दृति के वंशजों (दार्तेयों) की अपेक्षा कम संपन्न हो सके।

वातवेग--(सो. कुरु.) धृतराष्ट्र के शतपुत्रों में से एक। भीम ने इसका वध किया।